जेम्स टॉड लिखित

पश्चिमी भारत की यात्रा

[कर्नल जेम्स टॉड की प्रसिद्ध पुस्तक 'ट्रैवेल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' का अनुवाद]

●

TRAVELS IN WESTERN INDIA

[JAMES TOD]

●

अनुवादक—

श्री केशवकुमार ठाकुर 'इतिहासकार'

●

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४६२ मालवीय नगर

इलाहाबाद

●

प्रथम संस्करण] अगस्त १९६६ [मूल्य १८) रुपये

प्रकाशक
गिरिधर शुक्ल
४६२ मालवीय नगर
इलाहाबाद

मुद्रक—
त्तम प्रिन्टिंग प्रेस
३६ ए, सदियापुर
इलाहाबाद

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक 'पश्चिमी भारत की यात्रा' कर्नल जेम्स टाड की प्रसिद्ध पुस्तक 'ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' का अनुवाद है। मूल पुस्तक के सम्बन्ध में 'जेम्स टाड का सक्षिप्त परिचय' के साथ आवश्यक प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ पर दो शब्दो के शीर्षक मे कुछ उन बातो को अङ्कित कर देना आवश्यक मालूम होता है, जो पुस्तक के अनुवाद के सम्बन्ध में हैं।

जेम्स टाड के प्रसिद्ध इतिहास 'एनाल्ज एण्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान' का हिन्दी अनुवाद मैंने किया था, जो 'राजस्थान का इतिहास' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उनके दूसरे ऐतिहासिक ग्रन्थ 'पश्चिमी भारत की यात्रा' का अनुवाद भी मुझे करने का अवसर मिला है, यह उदारता इन दोनो प्रसिद्ध ग्रन्थों के प्रकाशक श्री गिरिधर जी शुक्ल, अध्यक्ष आदर्श हिन्दी पुस्तकालय इलाहाबाद को है। शुक्ल जी ने इधर लगातार कई एक प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थो का अनुवाद करा के प्रकाशित किया है और इस प्रकार अप्राप्य पुस्तको के प्रकाशन की योजना उनकी ठीक से चल रही है। ये दोनो ऐतिहासिक ग्रन्थ कितने अधिक प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण है, इस विषय में मुझे कुछ लिखने की आवश्यकता नही है, इसलिए कि वे स्वय प्रसिद्ध हैं।

टाड साहब के इन ग्रन्थो मे सबसे पहली कठिनाई पैदा होती है, नामो के सम्बन्ध मे। स्थानो और आदमियो के नाम जैसे कुछ मूल लेखक के द्वारा अंगरेजी में लिखे गये है, उनको सही-सही समझ सकना और उच्चारण कर लेना प्राय: अनेक स्थानो पर कठिन हो जाता है, इसलिए उनके सम्बन्ध मे अनुवादक से भूल हो जाना बहुत स्वाभाविक है। दूसरी भूल की प्राय: सम्भावना उस समय होती है, जब मूल लेखक का लिखा हुआ कोई स्थल स्पष्ट नही होता। इसका कारण है। टाड साहब ने अपनी यात्रा की अधिकाश सामग्री उन लोगो से प्राप्त की है, जो स्वयं अपने विवरण दूसरे को सही रूप मे बता सकने में अपने आप को असमर्थ पाते हैं, विशेषकर उस अवस्था में जब सामग्री प्राप्त करने वाला कोई विदेशी होता है। यह कठिनाई [illegible] विदेशी के सामने ही नही आती बल्कि देश वालो के सामने भी प्राय: उस सम[illegible] होती है, जब कभी एक प्रान्त के लोगो को दूसरे प्रान्त के देहाती आदमि[illegible] पडता है। ऐसे अवसरो पर कभी-कभी ऐसा ही होता है। जब कहने [illegible] वाला—दोनो एक दूसरे को समझ सकने मे भली प्रकार समर्थ न[illegible] कही-कही पर ऐसे स्थल आ जाते है, जहाँ अनुवादक को [illegible] लेना पडता है, उस दशा मे कुछ स्थल भ्रामक हो जाते [illegible]

इस प्रकार की त्रुटियो को मैंने सदा स्वीकार किया है और यहाँ पर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि श्रद्धेय गिरिधर जी शुक्ल इतिहासो के सम्बन्ध मे अच्छे जानकार और सूक्ष्मदर्शी हैं। उसका सबसे स्पष्ट प्रमाण यह है कि वे जिन ऐतिहासिक ग्रन्थो के प्रकाशन का निर्णय करते हैं, वे ग्रन्थ न केवल प्राचोन और महत्वपूर्ण होते हैं, बल्कि आज हिन्दी के विकास-काल में उनकी उपयोगिता बहुत अधिक हो गयी है। शुक्ल जी मे एक विशेषता और भी हैं, वे मूल लेखक की चीज ही अपने अनुवाद में चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि अनुवादक मूल लेखक को एक तरफ़ करके अपनी पसन्द के वर्णन से पुस्तक के पृष्ठो को भरने की चेष्टा करे। शुक्ल जी की इस पसन्द को वे सभी भली-भाँति जानते हैं, जो अब तक उनके सम्पर्क मे आये हैं अथवा आते रहते हैं।

एक भाषा से दूसरी भाषा के अनुवाद में और विशेष कर उन अवसरो पर जब कोई पुस्तक प्राचीन काल के इतिहास अथवा साहित्य से सम्बन्ध रखती है, प्रायः भूलें होती हैं। अनुवादक न समझ सकने की अवस्था मे क्षम्य हो सकता है, लेकिन जब वह मूल लेखक की भूल अथवा अदूरदर्शिता समझ कर पचीसो पृष्ठो की सामग्री बदल कर अपनो रुचि तथा जानकारो के अनुसार कर देता है तो उसका यह अपराध अक्षम्य होता है, जिसके लिये वह अधिकारी नही होता। मुझे भय है कि मैंने पहले इस तरह की भूले की होगी। लेकिन मूल लेखक के विचारो, भावनाओ और विश्वासो को तोडने अथवा बदलने का अपराध मैंने कभी नही किया।

एक बात और लिख कर मैं इसे समाप्त कर दूंगा। कुछ ऐसे आलोचक भी देखे जाते हैं, जो अधिकारी न होने पर भी मूल ग्रन्थ के तथ्यो और प्रमाणो पर सन्देह करते हैं, यह अच्छा नही मालूम होता। अधिकारियो को भी ऐसा नही करना चाहियें, किसी महान कार्य की त्रुटियो पर प्रकाश डालने की अपेक्षा उसकी प्रशसा करना विद्वानो का कार्य होता है, मेरी यह धारणा मूल लेखक और किसी प्रसिद्ध इतिहास-लेखक तक ही सीमित है।

मेरे जैसे अनुवादको को बडे उत्तरदायित्व से काम लेना चाहिये और अपनी भूलो को स्वीकार करने के लिये सदा तैयार रहना चाहिये।

—अनुवादक

जेम्स टॉड का संक्षिप्त परिचय

यह पुस्तक 'पश्चिमी भारत की यात्रा' स्वर्गीय जेम्स टॉड की दूसरी पुस्तक है, जो 'ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' का हिन्दी रूपान्तर है। 'एनाल्ज एण्ड ऐन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' नामक ग्रन्थ उनकी पहली रचना है। वह ग्रन्थ 'टॉड-राजस्थान' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। (१) इन दोनो ग्रन्थो की रचना ने टाड साहब को इतिहास के क्षेत्र में अमर बना दिया है। अतएव यहाँ पर यह आवश्यक हो गया है कि इस प्रसिद्ध ग्रन्थ के आरम्भ मे पाठको की जानकारी के लिये संक्षेप में उनके जीवन पर प्रकाश डाला जाय।

जेम्स टाड अँगरेजी सेना मे भर्ती होकर सन् १८०० ईसवी मे इङ्गलैण्ड से भारत आये थे और वो पहले पहल बङ्गाल मे पहुँचे थे। वहाँ से उनको दिल्ली भेजा गया। चार-पाँच वर्ष तक वहाँ पर वो रहे। उसके बाद उनको सिन्धिया के दरबार मे सहायक पोलीटिकल एजेन्ट की हैसियत से भेजा गया। वहाँ पर रह कर मध्य भारत, राजस्थान और उसके निकटवर्ती प्रदेशो मे सैनिक कार्यवाही करने के लिए अनेक स्थानो और मार्गों का सर्वेक्षण सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्य उनको करना पड़ा। इस समय कितने ही प्राचीन स्थानो और उनके निवासियो के विषय मे जानकारी प्राप्त करने की उनमे अभिलाषा उत्पन्न हुई। अतएव उन्होने अपने भ्रमण के साथ-साथ, अभीष्ट सामग्री जुटाने का कार्य आरम्भ कर दिया।

सन् १८१७ और १८ ईसवी में जब मेवाड़, मारवाड़, गोड़वाड़, हाड़ौती और ढूंढास आदि राजपूत राज्यो का अँगरेजो के साथ संधि का होना आरम्भ हुआ, उस समय अङ्गरेज गवर्नर-जनरल ने पश्चिमी भारत के राजपूत राज्यों मे कर्नल जेम्स टाड को अपना राजनीतिक प्रतिनिधि अर्थात् पोलीटिकल एजेन्ट बना कर उदयपुर भेज दिया।

जेम्स टाड अपने जीवन के आरम्भ से इतिहास के प्रेमी थे। इसलिये उदयपुर मे रहने पर उनको उस क्षेत्र का ऐतिहासिक सम्पर्क प्राप्त हुआ। उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार सामग्री जुटाना आरम्भ किया। इस कार्य मे लगातार उनकी रुचि बढ़ती गयी। आवश्यकता के अनुसार, उन्होंने इसमें धन खर्च करना भी आरम्भ किया और अधिक से-अधिक परिश्रम भी किया।

---

(१) कर्नल जेम्स टाड के मशहूर ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड ऐण्टीक्विटीज आफ राजस्थान' का हिन्दी अनुवाद, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, ४६२ मालवीय नगर, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।

जेम्स टाड ने अपने इस कार्य की सफलता के लिये इस देश की कई एक भाषाओ को सीखा और यहाँ के लोगो के साथ वो उनकी बोली मे भली प्रकार बात भी करने लगे। उन्होने सस्कृत, प्राकृत, अरबी और फारसी के विद्वानो को अपने साथ रख कर अन्वेषण का काम कराना आरम्भ किया। प्राचीन शिला-लेखों, ताम्रपत्रो और पट्टो को वो एकत्रित करने लगे। भाट, बरहठ, चारण और राव आदि से जो उन्होने सुना अथवा जिस प्रकार की सामग्री उनसे उनको प्राप्त हुई, उसको उन्होने अपने अधिकार मे ले लिया।

इस प्रकार के लगातार कार्य से टाड साहब के पास राजपूत राज्यो के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली एक विशाल मात्रा मे सामग्री एकत्रित हो गयी। उस एकत्रित सामग्री से और उस समय के राजस्थान के निवासियो के सहानुभूति सम्पर्क से उनके हृदय पर इस देश के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। अन्य अँगरेज अधिकारियो की अपेक्षा वो यहाँ के अधिक शुभचिन्तक बन गये और अपने अधिकारो का प्रयोग वो सबके कल्याण के लिये करने लगे। अगरेज सरकार के एक अधिकारी होकर भी वो यहाँ के राजाओ और जागीरदारो को जनहितकारी तथा न्यायप्रिय कार्य करने के लिये प्रोत्साहन देते रहे। उनके रहन-सहन और कार्यों को देखकर यह साफ-साफ जाहिर होता था कि वो अँगरेज सरकार के एक अधिकारी है, लेकिन वो अपनी सरकार के स्वार्थ पूर्ण शासन के पक्षपाती नही है। इसीलिये समय-समय पर वो अँगरेजी शासन की प्रणाली का विरोध करने लगते थे। इसका प्रभाव राजस्थान की जनता पर बहुत पडा। सभी उनको अपना हितैषी समझने लगे और राजाओ तथा जागीरदारो के साथ उसकी मित्रता बढने लगी।

कोई भी सरकार अपने कर्मचारियो और अधिकारियो को प्रजा के प्रति उदार नही बनाना चाहती। अंगरेजी सरकार को भी उसके ये तरीके खटकने लगे और उसका परिणाम यह हुआ कि वो अपने सरकार के कार्यों मे सन्देह की नजर से देखे जाने लगे। वो स्वाभिमानी, न्यायप्रिय, निष्पक्ष और स्पष्ट वक्ता थे। उन्हे चापलूसी पसद नही थी। जब उनको मालूम हुआ कि सरकार मुझ पर सदेह करने लगी है तो उन्होने अपने सरल स्वभाव से निश्चय करके अपने पद से इस्तीफा दे दिया। लेकिन उन्होने जो कार्य आरम्भ किया था, उससे उनको अरुचि नही हुई। उस अवसर पर उन्हे विश्वास हो गया कि जो कार्य मैंने आरम्भ किया है, उसकी सहायता के लिये ही यह परिस्थिति मेरे सामने आयी है। उनके यह समझने मे देर न लगी कि मेरी कुछ कठिनाइयां बढेगी, लेकिन सरकार के पद को निभाते हुए मैं अपने इस प्रिय कार्य को सफलता पूर्वक कर नही सकता था, इसलिये यह अच्छा ही हुआ।

उदयपुर मे रहकर मि० टाड ने जोधपुर, जैसलमेर, कोटा, बूंदी, सिरोही आदि राजस्थान के प्रसिद्ध राज्यो की यात्राये की थी और उन सभी राज्यो से अपन

आवश्यकता के अनुसार सामग्री एकत्रित की थी। अंगरेजी सरकार से सम्बन्ध तोड़कर जब वो उदयपुर से इङ्गलैण्ड जाने के लिये रवाना हुए तो उस समय तक की सम्पूर्ण एकत्रित की हुई सामग्री अपने साथ लेते गये।

प्राचीन गुजरात और सौराष्ट्र का सम्बन्ध राजस्थान के साथ था, इसलिये उनको वहाँ की यात्रा करनी थी। अतएव उदयपुर से चलकर वो आबू-सिद्धपुरा, अनहिलवाड़ा-पाटण, बड़ौदा, भावनगर, पालीताना, जूनागढ़, द्वारका और सोमनाथ होते हुये कच्छ गये और फिर वहाँ से जहाज में बैठकर बम्बई पहुँचे। सन् १८२३ के फरवरी महीने मे वो भारत भी भूमि से विदा होकर इङ्गलैण्ड चले गये। इस तरह मि० टाड पूरे बाईस वर्ष भारत में रहे। उन्होने अपने जीवन का महत्वपूर्ण भाग इस इतिहास की सामग्री एकत्रित करने मे जिस प्रकार व्यय किया, उसके वर्णन और विवरण रोमाञ्चकारी हैं। उनकी अभिलाषा, लगन, कर्तव्य परायणता और निष्टा उनके अत्यन्त महान होने का स्पष्ट प्रमाण देती है।

मि० टाड के सैकड़ो और हजारो गुणो में सबसे अधिक विशेषता यह थी कि वो न केवल एक शूरबीर सैनिक और सेना से अधिकारी थे, बल्कि वो शूरबीरो के भक्त थे। वो राजपूतो के प्रबल पक्षपाती थे और उसका केवल यही कारण था कि वो सौन्दर्य और सम्पदा के स्थान पर शौर्य के पुजारी थे। वो एक शूरमा थे और शूरो के प्रशंसक थे।

उदयपुर से जब उन्होंने अपने देश इङ्गलैण्ड जाने के लिये प्रस्थान किया तो उन्होने बम्बई का रास्ता पकड़ा, बीच में जितने भी महत्वपूर्ण स्थान हो सकते थे उन्होंने उन सब मे पहुँचने का कार्य किया। कोई भी प्राचीन स्थान, चाहे वह किसी भी अर्थ मे प्रसिद्ध हुआ, मि० टाड वहाँ पर गये और उन्होंने उसकी कोई भी ऐसी स्थिति बाकी नही छोडी, चाहे वह नयी हो अथवा पुरानी, जिसके तथ्य और प्रवाह सुनकर, देखकर और पढ़कर उन्होने अपने अधिकार में न ले लिए हों। इस प्रकार छोटी और बड़ी सभी जगहो का—उसके तथ्यों और रहस्यो को उन्होने विशाल रूप में संकलन किया।

भारत के बाईस-तेईस वर्षों के निवास में पूर्व की तरफ कलकत्ता से लेकर पश्चिम में बम्बई तक के महत्वपूर्ण क्षेत्र के वो अपने समय में एक अद्वितीय जानकार बन गये। निस्सन्देह मि० टाड एक अत्यन्त बुद्धिमान सैनिक और सरदार थे। वे जितने ही राजनीतिक थे, उतने ही आध्यात्मिक और ऐतिहासिक थे। जीवन के आरम्भ से उनके अन्तरतर में एक प्रबल जिज्ञासा थी। उसको पूरा करने मे उन्होंने अपने जीवन का सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया और उसके बदले में उन्होने साहित्य और

छै वर्षों के अथक प्रयासो के बाद जो परिणाम निकला, उसमें राजस्थान का विस्तृत इतिहास ससार के सामने आया। सन् १८२६ ईसवी में उनका पहला भाग और सन् १८३२ ईसवी में उसका दूसरा भाग प्रकाशित हुआ।

राजस्थान का इतिहास प्रकाशित हो जाने के पश्चात् उन्होंने अपनी यात्रा का इतिहास लिखना आरम्भ किया, जिसका संकलन उदयपुर से रवाना होने के बाद बम्बई पहुँचने के सम्पूर्ण मार्ग मे, भयानक कठिनाइयों मे किया था। इस यात्रा मे उन्होंने समस्त स्थानों, तीर्थों, मन्दिरो, दुर्गों, राजधानियों और शासको के नवीन और प्राचीन रहस्यो के चित्र खीचे। इन चित्रों मे योरप और दूसरे देशो के मिलते-जुलते चित्रो की झाँकियो का समन्वय किया। भारतीय जीवन मे अपने कार्य को पूरा करने में मि० टाड ने अपने स्वस्थ और सुन्दर जीवन को जुए की बाजी लगायी थी। या तो सफलता मिलती है अथवा स्वास्थ्य से हाथ धोना पडता है। उनका यह सोचना गलत नहीं हुआ। उनका कार्य पूरा हुआ, सफलता मिली, लेकिन उनको जिन्दगी से हाथ धोना पडा। 'पश्चिमी भारत की यात्रा' के लिखने का कार्य जैसे ही समाप्त हुआ, उनका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता जा रहा था, पुस्तक की पाण्डुलिपि को लेकर वो लण्डन में अपने प्रकाशक के पास गये और उसके प्रकाशित कराने की कोशिश कर रहे थे, अकस्मात् उनको मृगी रोग का भयानक दौरा हुआ और उसी में सन् १८३५ ईसवी के नवम्बर महीने में उनकी मृत्यु हो गयी। उस समय उनकी अवस्था तिरेपन वर्ष की थी।

मि० टाड की मृत्यु के चार वर्षों के बाद सन् १८३६ ईसवी में उनकी यात्रा का विवरण प्रकाशित हुआ। राजस्थान के इतिहास का प्रकाशन उनके जीवन-काल मे हो गया था, उससे उनको बहुत सतोष मिला था, जैसा कि स्वाभाविक होता है। लेकिन उनकी 'पश्चिमी भारत की यात्रा' का प्रकाशन न हो सका और उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। यात्रा की सामग्री एकत्रित करने के लिए उनको भीषण कठिनाइयो का सामना करना पडा था, वे घटनायें और कथानक कितने रोमाञ्चकारी हैं, इसका अनुमान इस ग्रन्थ को पढने के बाद ही हो सकता है। हम यहाँ पर इतना ही कह सकते हैं कि उन्होंने इसके लिये अपना सब कुछ खोया था, सम्पत्ति और प्रभुता के साथ-साथ उन्होंने अपने प्राणो को उत्सर्ग किया लेकिन जिसके लिये किया, उसे वह छपा हुआ देख न सके और अकस्मात् वो इस ससार से बिदा हो गये!

मि० टाड का लिखा हुआ 'राजस्थान का इतिहास' अङ्गरेजो में प्रकाशित होते ही योरप के सारे देशो में उसकी खपत हुई और माँग बढी, उस इतिहास में टाड साहब ने जो कुछ लिखा, उसकी ओर संसार की आँखें कभी गयी नही थी। लेकिन मि० टाड ने उन सब की आँखे खोली और अपने कथानकों से उन्होंने सबको आश्चर्य-चकित कर दिया। इस प्रकार यदि मि० टाड ने उस ग्रन्थ को—अथक परिश्रम और आत्म

त्याग के साथ—लिखा न होता तो जो सम्मान भारत को मिला, वह कभी—किसी सूरत मे सम्भव नही था। परिस्थिति यह थी कि भारत के लोग स्वयं अपने इस गौरव को नही जानते थे, उनकी और संसार के देशों की आँखें, उस समय खुली, जब मि० टाड ने 'राजस्थान का इतिहास' लिखकर घोषणा की ! "भारत के राजपूतों में यदि उनकी व्यक्तिगत खराबियाँ न होती और उन लोगों ने आपसी फूट, ईर्षा और विरोध मे अपना ही विनाश न किया होता तो यह निश्चय है कि संसार की कोई भी जाति इसकी बराबरी नही कर सकती थी।"

इतिहास के इस महान ग्रन्थ के प्रकाशित होने के बाद से लेकर अब तक अनेक विद्वानों, शोधको और आलोचको ने अपने-अपने मतो को प्रकट किया है। ये आलोचनायें आज भी चल रही हैं। किसी भी ग्रन्थ की विशेषता और लोकप्रियता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है। न जाने कितने इतिहास के विद्वानो ने इसकी जी खोलकर प्रशंसा की है और इसके तैयार करने में मि० टाड ने जिस परिश्रम, कष्ट-सहन और त्याग से काम लिया है, उसकी सराहना की है। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने उनकी त्रुटियो और अभावो को अधिक खोजने की कोशिश की है। मि० टाड ने उस जमाने में इस विशाल इतिहास को तैयार करने का काम किया था, जब लोग इतिहास लिखने की सामग्री जुटाना भी नही जानते थे। पृथ्वीराज रासो, मेवाड और मारवाड के इतिहास और राजाओ की वंशावलियो के सिवा किसी के पास और था ही क्या। लेकिन टाड साहब ने उस इतिहास को लिखने के लिये जिस प्रकार की सामग्री जुटाई और जिस आत्म-त्याग के द्वारा उसको एकत्रित करने का कार्य किया, वह न केवल प्रशसा के योग्य है, बल्कि उसकी प्रणाली से इतिहास लिखने वालो का मार्ग-प्रदर्शन होता है। लोग सीखेगे कि इतिहास इस प्रकार लिखे जाते हैं और उनके लिए इतिहासकार किस प्रकार अपने आपको बलिदान करता है। अभावो का सकेत करना अथवा उन पर प्रकाश डालना कोई महत्व नही रखता।

इतिहास न तो कहानी है और न उपन्यास, वह कविताओ के मार्ग से बहुत दूर है। इतिहास को कल्पनाओ के द्वारा न तो रोचक बनाया जाता है और न उसके लिये रसीली भाषा की आवश्यकता होती है। मि० टाड इतिहास लिखना जानते थे, उसके लिये उनकी भाषा स्वाभाविक रूप से काम करती थी। उनके इस ग्रन्थ की आलोचना करते हुये इतिहास के विद्वानो ने लिखा है :—

कर्नल टाड अपने समय के महान इतिहासकार और शोध के कार्यों के सम्बन्ध मे आश्चर्यजनक अन्वेषक थे। उन्होंने राजस्थान का इतिहास लिखकर अपने को और राजस्थान को अमर बना दिया है। ग्रन्थ की रचना-शैली लोकप्रिय और रोमांचकारी है।

मि० टाड की दूसरी पुस्तक 'पश्चिमी भारत की यात्रा'—जिसके साथ उनका सक्षेप में यह परिचय प्रकाशित हो रहा है—राजस्थान के इतिहास की तरह मौलिक, खोजपूर्ण और पढ़ने मे अत्यन्त रोचक है। यात्रा के सम्पूर्ण कथानक मनोरञ्जक और आकर्षक हैं। यहाँ पर हम तो यह कहने का भी साहस करेंगे कि मि० टाड ने यात्रा के विवरण खोजने और लिखने मे अपनी उस विशाल ऐतिहासिक विद्वत्ता का परिचय दिया है, जिसका अनुमान 'राजस्थान का इतिहास' पढ़ने में नही होता।

जेम्स टाड के जीवन की परिचय-पंक्तियाँ अब उनके ग्रन्थ 'पश्चिमी भारत की यात्रा' से सम्बन्ध रखती हैं। उनका यह दूसरा ग्रन्थ ऐतिहासिक शोध का कार्य है, जो उनके प्रथम ग्रन्थ से भी अधिक कष्ट-साध्य है। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ मे लिखा है कि उन्होने भारत क्यो छोड़ा, स्वास्थ्य की गिरती हुई दशा मे भी निकटवर्ती बन्दरगाह पर न जाकर, चक्कर खाते हुये उनके खोजपूर्ण यात्रा का कारण क्या था।

इस कार्य में लगे रहने के दिनो मे जब उनका स्वास्थ्य गिर रहा था, उस समय भी उन्होने उसको सम्हालने का प्रयत्न नही किया और उत्तरोत्तर वह अपने निर्धारित कार्य के लिये सामग्री जुटाने मे लगे रहे। वह जानते थे कि जिस कार्य मे मैंने हाथ लगाया है, उसकी सफलता के लिये अथक परिश्रम और अध्ययन की आवश्यकता है। उनको अपने इस कार्य मे लगन थी और उसी का परिणाम था कि यह समझते हुए भी कि मेरा स्वास्थ्य गिर रहा है, फिर भी वो अपने कार्य मे लगे रहे और अपने स्वास्थ्य के प्रति असावधान हो गये।

१६ नवम्बर १८२६ ईसवी को मि० टाड ने लण्डन के प्रसिद्ध डाक्टर क्लटरबक की लडकी के साथ विवाह किया। उससे मि० टाड के दो पुत्र और एक लडकी हुई। विवाह के बाद सन् १८२७ ईसवी मे जब वो मिलान मे थे वक्षस्थल को एक बीमारी से उनको बड़ा कष्ट हुआ, उस समय उनमे लिखने की क्षमता नहीं रही थी, फिर भी उन्होने विश्राम नही किया और पीडा की अवस्था में भी उन्होंने एक शोध-पत्र तैयार किया था और उसको उन्होने पेरिस की एशियाटिक सोसाइटी मे भेजा था। उनका वह लेख वहाँ की पत्रिका मे प्रकाशित हुआ था।

जेम्स टाड का शरीर साधारण कद से कुछ लम्बा था, शारीरिक गठन अच्छी थी और उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। चेहरा खुला हुआ और वो स्वभाव के हँसमुख थे। किसी भी विषय मे जब वो किसी से बाते करते थे तो अपने विचारो के प्रति वो अटूट दृढता का प्रदर्शन करते थे। उनका ज्ञान व्यापक था और प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके लेख प्रायः ऐतिहासिक होते थे। उनमे अपार उत्साह था, अपूर्व साहस था, उनकी सूझ निर्णयात्मक थी। उनका स्वभाव दयालु था। उनके जैसे पारदर्शी मनुष्य बहुत कम ससार मे पाये जाते हैं।

—गिरिधर शुक्ल

———

विषय-सूची

—:: ❀ ::—

पहला प्रकरण

उदयपुर से प्रस्थान

दूसरा प्रकरण

यात्रा का आरम्भ : उसके दृश्य

तीसरा प्रकरण

परम्परायें और अन्ध विश्वास

चौथा प्रकरण

आदिवासी जातियाँ, पुराने सिक्के और तरीके

पाँचवाँ प्रकरण

मन्दिर, पुजारी और पण्डे

छठाँ प्रकरण

मन्दिर, मूर्तियाँ और गुफायें

सातवाँ प्रकरण

स्मारक और घूमनेवाली जातियाँ

आठवाँ प्रकरण

राज्यों के विध्वंस और विकास

नवाँ प्रकरण

राज्य, राजा और उनके कार्य

दसवाँ प्रकरण

शासन, वैभव, युद्ध और विजय

ग्यारहवाँ प्रकरण

अनहिलवाड़ा के अन्तिम दिन

बारहवाँ प्रकरण

अन्वेषण के कार्य की कठिनाइयाँ

अठारहवाँ प्रकरण

पहाड़ों के कुछ अनोखे दृश्य

उन्नीसवाँ प्रकरण

नगर, राजवंश और विवरण

बीसवाँ प्रकरण

प्राचीन काल की ग्रन्थियाँ

इक्कीसवाँ प्रकरण

दासता की मिटती हुई प्रथा

बाईसवाँ प्रकरण

इतिहास और समाज के कुछ विचित्र-चित्र

तेईसवाँ प्रकरण

राजनीति के दाँव पेच

———

पश्चिमी भारत की यात्रा

पहला प्रकरण

उदयपुर से प्रस्थान

यात्रा और उसकी प्रस्तावना—आत्म-प्रशंसा का अपराध—यात्राओ के साथ मेरा स्नेह—कार्यों का बोझ और उत्तरदायित्व—उदयपुर के निवासियो के साथ सम्पर्क—विदायी और वियोग—राणा के उद्गार—सामन्तो के साथ राज्य के झगडे—मेरा गिरता हुआ स्वास्थ्य— जङ्गली जातियाँ और उनका अध्ययन करने की अभिलाषा !

जिसने हमारा लिखा हुआ राजस्थान का इतिहास [एनाल्स ऐण्ड एन्टीक्विटीज़ आफ राजस्थान] पढा है, उसको हमारी इस दूसरी पुस्तक "पश्चिमी भारत की यात्रा" को पढने के लिए यह आवश्यक नही है कि वह पहले हमारी किसी प्रस्तावना को पढे। राजस्थान का इतिहास पढने के बाद वह इसको पढ सकता है। उसके लिये हमारे वक्तव्य की आवश्यकता नही है। फिर भी अपनी इस यात्रा के सम्बन्ध मे मैं कुछ न लिखूं, यह बहुत अच्छा नही मालूम होता। इसलिये अपने पाठको को यह बताना कि उस इतिहास को लिखने के बाद—जिसमे मेरे स्वास्थ्य और सामर्थ्य को भयानक रूप से आघात पहुँचा—इस यात्रा की आवश्यकता क्यो पड़ी और इस ऐतिहासिक यात्रा के लिखने का मेरा अभिप्राय क्या था, बहुत आवश्यक हो गया है।

अपनी यात्राओ के वर्णन मे सभी प्रकार की परिस्थितियो का सामना करना पडता है। अनेक स्थलो के वर्णन करने मे आत्म-प्रशंसा के अपराध का एक भय उत्पन्न होने लगता है, उसको सही रूप मे न लिखना और उस भय के कारण कुछ अंशो को छोड़ देना, उन घटनाओ को अपूर्ण बनाता है, ऐसी अवस्था में उस प्रकार का संकोच कुछ महत्व नही रखता।

एक बात और है—किसी भी विषय को जटिल बनाकर लिखना पाठको को प्रिय नही मालूम होता। अतएव उस प्रकार किसी भी विवरण को लिखने की भाषा और शैली बहुत स्पष्ट सादगी लिये हुए होना चाहिए। क्लिष्टता और जटिलता से कोई भी विवरण न तो स्पष्ट बन पाता है और न उसमे आकर्षण पैदा होता है। इतिहास और यात्रा के वर्णन सदा सरल, सुबोध, मधुर और प्रिय होने चाहिए। इस सादगी के

अभाव मे जो घटनाये सामने आती हैं, उससे पाठक अनेक अंशो में अपरिचित बने रहते हैं। इस अवस्था मे उन घटनाओ के साथ पाठको का सामन्जस्य स्थापित नही हो पाता। कोई भी पाठक, पुस्तक की घटनाओ के साथ जितना सम्पर्क स्थापित करना चाहता है, उतना ही वह उसके लेखक से परिचित होना चाहता है। वह जानना चाहता है कि इन यात्राओ के साथ लेखक की ममता क्यो है और जिन घटनाओ के विवरण उसने सामने रखे हैं, उनमे उसका उद्देश्य क्या है। इस तरीके से घटनाओं के साथ-साथ, पाठक लेखक का परिचय प्राप्त करते हैं। लेखक अपनी यात्राओ और उनकी घटनाओ का वर्णन इस प्रकार करता है, जिससे उनके प्रति पाठको की अभिरुचि उत्पन्न हो सके और यह उसी दशा मे सम्भव होता है, जब उसके वर्णन की भाषा और शैली सरल, सुरुचिपूर्ण और स्पष्ट हो। ऐसी दशा मे मेरे लिए यह आवश्यक है कि अपनी यात्राओ की घटनाओ को वर्णन करने के समय आत्म-प्रशसा के अपराध के भय को अपने निकट आने न दूं और मैं यह भूल जाऊँ कि मैं जो कुछ लिख रहा हूँ, वह सब अपने लिये लिख रहा हूँ, वल्कि मैं यह समझूं कि यात्रा की घटनाओ का वर्णन मुझे ईमानदारी के साथ करना है; उसको कही पर घटाना बढाना नही है।

मुझे इस प्रकार की यात्राये आरम्भ से प्रिय रही हैं। इङ्गलैण्ड को छोडे हुए मैं वाईस वर्ष विता चुका था और तेईसवाँ वर्ष भी खत्म होने जा रहा था। इनमे से अठारह वर्ष मैंने पश्चिमी भारत की राजपूत जातियो के साथ व्यतीत किये थे और पांच वर्षों में मैंने सरकार के पोलीटिकल एजेण्ट की हैसियत से मेवाड, मारवाड़, जैसलमेर, कोटा और बूंदी की पांच बडी रियासतो मे एवम् सिरोही की एक छोटी रियासत मे काम किया था। मेरे सामने एक बडी जुम्मेदारी थी, जिसके लिए बाद मे चार अन्य एजेण्ट मुकर्रर किये गये थे। मैंने अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार निभाने की चेष्टा की थी और किसी प्रकार कहो पर त्रुटि नही आने दी थी। इसका परिणाम यह हुआ था कि मेरा स्वास्थ्य लगातार गिरता गया। उन दिनो की कठोर जुम्मेदारी को अदा करते हुए भी मैंने अपने उन कार्यों मे कोई कमी नही आने दी, जिनके साथ मेरी अलग से दिलचस्पी थी। उन दिनो मे जुम्मेदारी का कितना वडा वोझ मेरे सिर पर था, उसको वताने के लिए मैं इतना ही कह सकता हूँ कि वारह घन्टे से लेकर चौदह घन्टे तक मैं रोजाना रियासतों के झगडो मे व्यस्त रहता था। विश्राम करने के लिए समय नही मिलता था। खाने-पीने की व्यवस्था ठीक नही चल पाती थी। चिन्तनाओ का बोझ हमेशा लदा रहता था। इस प्रकार की परिस्थितियो के परिणाम स्वरूप, सिर मे निरन्तर पीडा रहा करती थी। उस हालत मे भी मैं काम करता था। शरीर की अस्वस्थ अवस्था मे भी विश्राम के लिए मौका निकालने की आदत न थी।

मेरी यह परेशानी की हालत मेरे मित्रो से छिपी न थी, मैं किसी से कुछ कहता नही था, लेकिन जानते सभी थे। मेरी दशा को देखकर प्रायः मेरे मित्र आश्चर्य करते

थे, लेकिन फिर भी अपने उत्तरदायित्व को निभाने में मैंने कभी अपने सामने कमजोरी नहीं आने दी। इसका कारण था, मेरा विश्वास—जिससे कि मेरे इस प्रकार कष्ट-सहन से हजारों पीडित मित्रो और स्त्री-पुरुषों का उपकार हो सकता है। अपने इस विश्वास से मुझे बल मिलता था।

इसी प्रकार के दिनो में उस प्रिय स्थान से बिदा होने का समय भी सामने आया, जिसे मैंने अपनी जन्मभूमि के रूप मे स्वीकार किया था। मैंने कभी नहीं सोचा था कि ऐसे प्यारे स्थान को छोड़कर मुझे अन्यत्र कही अपनी जीवन-लीला समाप्त करनी होगी।

दुख मे दुख मिलता है और पीड़ा मे वेदना होती है। लेकिन अगर किसी दुख और पीड़ा मे भी सुख और समान का अनुभव होता है तो उसी समय, जब मनुष्य किसी के उपकार मे दुख और पीडा का सामना करता है। मैं जीवन की इन्ही परिस्थितियों में पहुँच गया था, जिनमे मेरे कष्टो और कठिनाइयो की सीमा नही थी। लेकिन उन कष्टो और कठिनाइयो को सहन करके मैं अगणित साधारण स्त्री-पुरुषो का ही नही, वल्कि कितने ही राज्यो, राजाओं और राज-परिवारो का उपकार कर रहा था। आपसी झगडों के कारण बढी हुई गरीबी, कङ्गाली, बेहाली और बेचैनी मे पडे हुए राजाओं, नरेशो और राज-परिवारो ने शान्ति और खुशहाली का जीवन बिताने के अवसर प्राप्त किये। उनकी प्रजा के जीवन में भी परिवर्तन हुआ। उनके निराश जीवन मे शान्ति और सुख का आभास हुआ। मेरे रवाना होने के समय राणा से लेकर प्रजा तक सबकी तरफ से जो मेरे लिये कहा गया, उसका वर्णन करना मेरे लिये अच्छा नही साबित होगा। राजाओ और रईसो ने कृतज्ञता के भाव प्रकट किये और उपस्थित स्त्री-पुरुषों का विशाल जन-समूह उस बिदाई के समय अपने शुभचिन्तक के वियोग की व्यथा को अनुभव कर रहा था। सर्वसाधारण मे लोग मुझे बाबा कहकर पुकारा करते थे। उनका इस प्रकार सम्बोधन करना इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि मेरे व्यवहारो और उपकारो के कारण उन सभी ने मुझको अपना सगा, सम्बन्धी और शुभचिन्तक मान लिया था।

प्रस्थान करने की तैयारी मे पन्द्रह दिन बीत गये। मेरे जाने की खबर सभी लोगो मे फैल गयी थी। इसलिए मुझसे मिलने के लिए आने वालो की सख्या रोजाना बढती जाती थी। इससे मेरी तैयारी में विलम्ब हो रहा था। इसको बचाने के लिए मैं राजधानी से उत्तर की तरफ एक मील की दूरी पर हाडारानी के एक प्रासाद (महल) में चला गया था। (१) वह प्रासाद विभिन्न प्रकार के खूबसूरत और सुगन्धित फूलो से भरा हुआ था।

---

(१) यह प्रासाद (महल) राणा सग्रामसिह दूसरे ने (१७११-१७३४ ईसवी) मे बनवाया था। (वीर विनोद पृ० १५४ और ६८१ मे)। कहा जाता है कि बादशाह

मुझे अन्तिम विदाई देने के लिये अपने दरबार के लोगो के साथ जब राणा (१) का आगमन हुआ, उस समय मैं अपनी मूर्तियो, शिला-लेखो, धातुपात्रो और हस्तलिखित पुस्तको को ले जाने के लिये सन्दूके वनवाने मे लगा हुआ था और वहुत से कारीगरो तथा कर्मचारियो से मैं घिरा हुआ था। मुझे इस हालत मे देखकर राणा को हँसी आ गयी।

राणा और साथ मे आये हुये सभी लोगो के दिलों मे एक पीडा थी। मैं उनको छोडकर जा रहा हूँ। इसलिये उनको विभिन्न प्रकार की चिन्ताओ ने घेर लिया था। मेरे आने के पहले और आने के दिनो मे भी उनकी जिन्दगी के दिन शान्ति और सुख के नही थे। एक शत्रु का आक्रमण समाप्त नही होता था, कि दूसरे के आने के समाचार मिलने लगते थे। ये आक्रमणकारी शत्रु केवल डाकुओ और लुटेरो के रूप मे आते थे और लूटमार कर चले जाते थे। राज शक्तियाँ इतनी निर्वल हो चुकी थी कि उन आक्रमण-कारियो को वे रोक नही पाती थी। शत्रु एक न एक वहाना करके राज्य मे आक्रमण करते थे। पुराने शत्रुओ का अन्त नही होने पाता था। नये शत्रु पैदा हो जाते थे। उनकी शत्रुता के कोई कारण नही होते थे। किसी पुराने शत्रु के आक्रमण से उत्पन्न जख्म सूखने नही पाते थे, कि पहाडी धडैत हमला कर देते थे और लूटपाट के वाद जव वे लोग लौटकर जाते तो पहाड के सगठित भील लोग आकर प्रजा मे लूट मार आरम्भ कर देते। राज्यो की यह साधारण अवस्था चल रही थी।

फर्रुखशियर ने राणा सग्रामसिंह को भेट मे सर्केशियन कुमारी दासियाँ दी थी। उनके रहने के लिये राणा सग्रामसिंह ने यह महल वनवाया था। जो सहेलियो की बाड़ी के नाम से प्रसिद्ध था। वे कुमारियाँ जीवन-भर उसी मे रहीं। वताया जाता है कि दूध-तलाई पर जो कब्रे वनी हुई हैं, वे उन्ही कुमारियो की है। यह भी कहा जाता है कि इन कुमारियो को पोलो खेलने का वडा शौक था। उनके पोलो खेलने के चित्र उदयपुर की चित्रशाला मे लगे हुए वताये जाते हैं।

कुछ लोगो का कहना है कि इस महल के आस-पास शैन नामक एक घास इफरात पैदा होती है। उस घास के नाम पर उस स्थान को शैल वाटिका कहा जाता है। यह घास अव वरू के नाम से मशहूर है। इसके डठल से कलमें वनायी जाती थी और वे कलमे लिखने के काम आती थी।

कुछ लोगो का यह भी अनुमान है कि इस प्रकार जो वाते कही जाती हैं। उनका कोई आधार नही है। ऐसा मालूम होता है कि राणा के महलो में रहने वाली रानियो, उनकी सखियो और मिलने-जुलने वाली स्त्रियो के मनोरञ्जन के लिये इस रम-णीक स्थान का निर्माण कराया गया था। लेकिन यह भी एक अनुमान मात्र है।

(१) राणा भीमसिंह, १७७८-१८२८ ईसवी।

इस प्रकार के दुर्दिनों का अब अन्त हो गया था। आक्रमणकारी मराठों और निष्ठुर पठानों के अत्याचारो का भय नही रहा था। जङ्गलो और पहाड़ो पर रहने वाले भील लोग लूटमार करने के लिये अब राज्यो में आने का साहस नही करते थे। इसलिये राजाओ को शान्ति मिल गयी थी। सरदार और सामन्त लोग अफीम खा-खाकर कुम्भकर्ण की नींद सोते थे। उनको अब किसी शत्रु का भय नही रह गया था। वे अब बिना किसी चिन्ता के अपना जीवन व्यतीत करते थे।

परन्तु इस प्रकार की शान्ति उनमे से सभी लोगो को पसन्द न थी। वे इसे चाहते भी नही थे। वे लोग इसको अपने जीवन की एक भयानक अकर्मण्यता समझते थे। ऐसे लोगो मे भेदसर का सरदार हमीर और बहारसिंह—जो पहाड़ी शेर कहलाते थे—दोनो ही असन्तोष पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनकी और उनके बहुत से साथियो की ज़मीने मराठो ने आक्रमण करके अपने अधिकार मे कर ली थी। उन सबके सामने यह एक असन्तोष था जो रह-रह कर उनके दिलो में पीडा उत्पन्न करता था। वे सभी मराठो के अधिकार से अपने इलाके वापस लेना चाहते थे।

जहाँ कही गम्भीर सम्बन्ध कायम हो जाते हैं, वहाँ वियोग के समय दोनो पक्ष के लोगो को मानसिक वेदना का होना स्वाभाविक होता है। हम लोगो मे एक बहुत बड़ी भ्रान्ति फैली हुई है और उसके आधार पर यह मान लिया गया है कि जिनके रङ्ग गोरे नही होते, उनमें योग्यता और प्रतिभा नही होती। इस प्रकार का विश्वास कोई आधार नही रखता। मैं उन लोगो के बीच में—जिनके रङ्ग गोरे नही हैं—अपनी जिन्दगी के बहुत दिनो तक रहा हूँ और उन दिनो मे जो मैंने अनुभव किया है, उनके आधार पर मैं इस प्रकार के विश्वास को सही नही मानता।

इस समय हम सबके साथ राणा चुपचाप बैठे थे। यो तो वे अपनी हास्यप्रियता के लिये सभी लोगों में बहुत प्रसिद्ध हैं और वे खूब बाते भी करते हैं। लेकिन इस समय कुछ देर से वे बहुत गम्भीर हो रहे थे और उस गम्भीरता को भङ्ग करते हुए वे कभी-कभी कह उठते थे।

"मै आपको तीन वर्षों की छुट्टी दे रहा हूँ। इस बात को भूल न जाना। अगर तीन वर्षों से अधिक ठहरने का आपने वहाँ पर इरादा किया तो मैं स्वय आपको लाने के लिये आऊँगा और जहाँ कही मिलेंगे, पकड़कर ले आऊँगा।"

उस समय कितने ही सरदार और सामन्त वहाँ पर मौजूद थे। उनकी तरफ देखकर राणा ने गम्भीरता के साथ कहा—"पांच वर्ष तक इन्होने हमारे यहाँ काम किया। हमारी रियासत की हर तरीके से हिफ़ाज़त की।" पतन के रास्ते से हटाकर उसको उत्थान के रास्ते पर लाये। लेकिन यहाँ से जाते समय ये मेवाड की एक चुटकी मिट्टी भी अपने साथ नही ले जा रहे हैं।"

यह कहते-कहते राणा अत्यन्त गम्भीर हो उठे। उनके इन शब्दों को सुनकर

मैं अवाक हो उठा। राणा ने मराठो के आक्रमण और अत्याचार देखे थे। मराठे विदेशी नही, देशी थे। फिर भी उन्होने सम्पत्ति के लोभ मे लूटमार करते हुये राजस्थान मे क्या नही किया था ? ऐसी दशा में एक विदेशी के सम्बन्ध मे राणा का ऐसा सोचना और कहना अस्वाभाविक न था। योरप के चरित्र का यह प्रभाव है कि जिसके कारण योरप के एक व्यक्ति ने भारत के राजपूत-दरबार मे इस प्रकार सम्मान प्राप्त किया। नैतिकता और कृतज्ञता राजपूतो के जीवन का प्रधान गुण है। उसको देखने, समझने और अनुभव करने का जिसे अवसर प्राप्त हुआ है, वह कम सौभाग्यवान नही है।

दो घन्टे तक राणा और उनके साथियो के साथ बाते होती रही। उसके पश्चात् मुझसे मिलकर सब लोग जाने के लिये तैयार हुये। उसी समय समाचार मिला कि राणा को लेने के लिये उनका घोडा आ गया है। मेरे लिये आई हुई विदाई की भेंटे उपस्थित की गयी। उन भेटो को मैंने देखा। उसी समय अपने भतीजे कप्तान वाघ पर मेरे ही समान कृपा-भाव बनाये रखने के लिये मैंने राणा से प्रार्थना की। मेरे शब्दो को उन्होंने सुना और विदा होते समय हम दोनो ने एक-दूसरे को प्रणाम किया" मेरी और राणा—दोनो की एक सी अवस्था हो रही थी। दोनों के गले रुँधे से मालूम होते थे। हम दोनो ने एक-दूसरे को देखा और दोनो ने एक-दूसरे को विदा किया।

कुछ सरदार उस समय रुक गये। ऐसा मालूम होता था, मानो वे कुछ कहना चाहते है। जो लोग रुके, उनमें भीडर का मोटा ठाकुर भी था। वह रुक कर और कुछ देर उपस्थित रहकर एक राजपूत की कृतज्ञता का व्यवहार प्रकट करना चाहता था। राणा और जागीरदारो के बीच मे बहुत पुराने झगडे चल रहे थे। उनको खतम कराने के लिये दोनो तरफ से मुझे मध्यस्थता स्वीकार करनी पडी थी। जिन सामन्तो और जागीरदारो के साथ राणा के झगडे थे, उनमे यह मोटा ठाकुर भी था। उन सभी लोगो ने राणा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और उस विद्रोह मे जागीरदारो ने अपने पट्टो के अतिरिक्त जायदादो पर अधिकार कर लिया था। भीडर के उस मोटे ठाकुर ने भी अपने पट्टे के अतिरिक्त बहुत से गाँवो मे अधिकार कर लिया था। मध्यस्थ होने के बाद मैंने उन झगडो को खतम कराने की चेष्टा की। उस समय इस ठाकुर के अधिकार से भी लगभग तीस छोटे-बडे ग्राम वापस लिये गये, जिन पर उसने अपना अधिकार कर लिया था और राणा की कोई परवा नही की थी। उस ठाकुर ने उस समय अपने अधिकार के इन कस्बो और गाँवो को ही वापस नहीं दिया था, बल्कि वह मेरी सहायता कर रहा था और जिन जागीरदारो ने इस प्रकार बिना किसी अधिकार के बडी-बडी जायदादों पर कब्जा कर लिया था, उनसे वापस लेने में वह हमारी सहायता कर रहा था। ये झगडे राणा और जागीरदारो के बीच लगभग पचास वर्षों से चल रहे थे और उनके सुलझने का कोई रास्ता दिखाई नही देता था। राज्य और

सामन्तो के बीच के इन झगडों ने राणा को और भी कमजोर बना डाला था। गलत तरीके से अधिकार में ली गई इस प्रकार की जायदादें ही मैंने राणा को सामन्तों से वापस नही दिलायी, बल्कि दोनों तरफ के दिलों को भी साफ कराया और वे जागीरदार फिर से राज्य के भक्त हो गये। उस मौके पर इस भीडर के ठाकुर ने मेरी मौजूदगी में सबके सामने कहा था—

"मैं तो इतना ही जानता हूँ कि अगर आप न होते और स्वयं भगवान भी आकर इस झगडे को खतम कराने की कोशिश करते तो भी न तो झगडे शान्त होते और न यह जायदादे राज्य को वापस दी जाती।"

इस प्रकार के संस्मरण मेरे पास बहुत अधिक है और मैं उनको महत्वपूर्ण समझता हूँ। पचास वर्षों से बढती हुई अराजकता किस प्रकार मिटी और जिन लोगो ने उस अराजकता को उत्पन्न किया था, वे स्वय किस प्रकार उसके मिटाने में सहायक हो गये, ये रहस्य साधारण नही हैं। जागीरदार ठाकुर लोग शासन के भूखे नही थे, वे भूखे थे सहृदयता के। उनको अपनाने मे मुझे शासन के द्वारा सफलता नही मिली। सफलता मिली, उनको अपनाने मे, न कि कठिनाइयो के प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट करने मे। मैं इन घटनाओ को—इन संस्मरणो को महत्व देता हूँ। लेकिन यहाँ पर विस्तार के भय से उनको लिखना नही चाहता। जो कुछ लिखा है, वही कौन कम है। मैंने संक्षेप मे लिखने की कोशिश की है, परन्तु फिर भी वह चीज लम्बी हो गई है। इसलिये अब और उसे बढ़ाना नही चाहता। परन्तु अपने पाठकों को यह जरूर बताना चाहता हूँ कि स्वास्थ्य की इस गिरी हुई हालत में योरप जाने के लिये किसी निकटवर्ती बन्दरगाह की तरफ न जाकर मैंने यह लम्बा और टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता क्यों पकड़ा और इस भूल-भुलैया के रास्ते में चलकर मैं अपनी यात्रा क्यों आरम्भ की ?

मैंने पहले ही लिखा है कि मुझको यात्रा प्रिय है, वह यात्रा प्रिय है, जिसमें मैं खोज का काम कर सकू। इस प्रकार की खोज को मैं अपने लिये उपयोगी और उपकारी समझता हूँ और दूसरो के लिये भी वह उपयोगी है। इस प्रकार खोज का कार्य सब कोई नही कर सकता। जिसको यह कार्य प्रिय नही है, जो सहज ही ऊबने लगता है और जो कर्त्तव्य-परायणता के नाम पर कभी कष्ट उठाना नही जानता, वह इस कार्य को नही कर सकता। इसे करने के लिये हृदय मे उत्सुकता होनी चाहिये। धुन, लगन और उत्सुकता के बिना कोई भी महान् कार्य नही किया जा सकता। खोज सम्बन्धी कार्य, महान् कार्य है और बहुत अशो मे रूखा कार्य है। लेकिन जो उसके महत्व को समझता है, उसके लिये वह कार्य रूखा नही होता।

मुझे सरकार के कार्य से अवकाश मिल चुका था। उस दशा में मैने अपने इस प्रिय कार्य को हाथ मे लिया। मेरा स्वास्थ्य इसके लिये बिल्कुल अनुकूल नही था। लेकिन इस कार्य के प्रति मेरे हृदय में जो प्रियता और उत्सुकता थी, उसने मुझे प्रेरणा

दी और उस प्रेरणा में मैंने गिरते हुये स्वास्थ्य की परवा न की। इस प्रकार अवकाश ग्रहण करने के समय यह कार्य मेरे लिये एक प्रिय कार्य बन गया।

पहले भी अनेक बार मेरे सामने ऐसे अवसर आये हैं, जब मैंने कुछ इसी प्रकार के कार्य किये हैं। जब कभी मैं कार्य की अधिकता से अथवा रियासतो की चिन्ताओ से ऊब उठता और देखता कि मेरा स्वास्थ्य भी साथ नही दे रहा है, तो स्वास्थ्य-लाभ करने के नाम पर मैं राजधानी के बाहर चला जाता और ऐसे अवसरो पर मैं अपना शामियाना या तो किसी घाटी के बीच के रमणीक स्थान मे लगवाता अथवा उदय सागर के करीब किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान पर ठहरता। किसी हालत मे एकान्तवास करता और राजस्थान से सम्बन्ध रखने, ऐतिहासिक सामग्री को देखने-सुनने और मनन करने मे लगा रहता। मैंने बड़ी श्रद्धा के साथ इस प्रकार की सामग्री जुटाने का काम किया था और जो कुछ एकत्रित किया था, उसमे से ऐतिहासिक घटनाओं को निकालना मैं एक कठिन कार्य समझता था। इस प्रकार के चुनाव मे मुझसे कही कोई भूल न हो जाय, इसके लिये मैं बहुत सावधान रहता था और अपनी पाण्डुलिपि को बराबर देखता रहता था। पृथ्वीराज और प्राचीन काल के वीर पुरुषो के सम्बन्ध मे जो ग्रन्थ मुझे पढने को मिले थे, मैंने उन्हे सम्हाल कर अपने साथ रखा था। उनको पढने में मुझे बहुत सुख मिलता था, इसीलिये अपने अवकाश का सारा समय उन्ही को देखने और विचार करने मे व्यतीत करता था। मैंने बहुत पहले से यहाँ के सम्बन्ध मे जो कुछ सुना था, उससे मेरे अन्तरतर मे एक आन्दोलन-सा उठा करता था और मैं उनको सही-सही जानने को अभिलाषा रखता था। सरकारी कार्यों को करने के बाद जितना समय मुझे मिलता था, मैं इसी प्रकार के अध्ययन और अनुसधान मे व्यतीत करता था। अपने इस कार्य के प्रति मेरी उत्सुकता लगातार बढती गई। मैंने गङ्गा और ब्रह्मपुत्र दोनो की बाढ़ों की माप का कार्य भी किया था।

इस कार्य के सिलसिले मे मैंने उन स्थानो के निरीक्षण का भी कार्य किया है, जहाँ चट्टानो से टक्कर लेती हुई गङ्गा और जमुना प्रवाहित होती हैं। सिन्धु नदी की यात्रा करने का विचार बहुत दिनो तक मेरे सामने रहा। मेरी अभिलाषा यह थी कि इस देश की प्रमुख नदियो को यात्रा करके उनकी अनेक बातो की जानकारी प्राप्त करूँ। अपनी यात्रा के सम्बन्ध मे सबसे पहले आबू पहाड पर जाने का विचार किया। मैंने उसके विषय मे जो बातें सुनी थी, उनके कारण उस पहाड को देखने और उसकी यात्रा करने का विचार बहुत मजबूत हो गया था। रास्ते मे अरावली पर्वत की श्रेणियाँ मिलती हैं, उनको देखने की भी तबियत थी। सुना था, औगुना पनरावा मे भीलो की स्वतन्त्र जातियाँ रहती हैं। उनकी जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा भी मेरे मन मे थी। उन पहाडों से कुछ प्रसिद्ध नदियाँ निकलकर प्रवाहित होती हैं, उनके आरम्भ

से लेकर अन्त तक के दृश्य देखने के योग्य होते हैं।

इस प्रकार की यात्रा करते हुये अरावली के किनारे-किनारे सिरोही को पार करते हुये आबू जाने का निश्चय किया। जो आदिवासी भील जातियाँ किन्हीं कारणों से समाज के साथ सम्बन्ध और सम्पर्क नही रखती, उनके जीवन की जानकारी प्राप्त करने का भी इरादा था। लेकिन कुछ ऐसे कारण उपस्थित हुये, जिनसे मजबूर होकर मुझे दूसरा ही रास्ता अपनाना पड़ा। मेरे साथ के एक गिरोह ने सन् १८०८ ईसवी में इस क्षेत्र की यात्रा की थी और उन लोगो ने वहाँ के निवासियो की जीवन-कथाओ का मुझसे वर्णन किया था। उसको सुनने के बाद वहाँ जाने और उनके जीवन का अध्ययन करने की तीव्र अभिलाषा मेरे मन मे उत्पन्न हुई।

मैं जानता था कि जिस यात्रा की मैं कामना करता हूँ, वह आसान नही है। उसके रास्ते टेढे-मेढे होने के साथ-साथ सङ्कटो से खाली नही हैं। वहाँ की घाटियाँ आसानी के साथ पार नही की जा सकती। फिर भी मैंने वहाँ की यात्रा का इरादा किया था और वहाँ के भीषण मार्गों को पार करते हुये सादड़ी दर्रे के मैदानो से निकल कर रईपुर अथवा राणापुर के मशहूर जैन-मन्दिर को देखने का विचार था।

इस यात्रा के सम्बन्ध मे एक आसानी पैदा करने के लिये मैंने कुछ आदमियो के एक दल को तैयार किया था और उसे समझा-बुझा कर रवाना कर दिया था कि वे इस यात्रा के सम्बन्ध में किसी और मार्ग की खोज करे और आबू पर आकर मुझसे मिलें। जिन लोगों को इसके लिये रवाना किया था, वे समझदार थे और एक नया मार्ग खोजने मे सफलता प्राप्त कर सकते थे। यह समझकर उनको भेज दिया था।

सन् १८०६ ईसवी में आबू का स्थान मैंने अपने नकशे मे पूरा किया था। उन दिनो मे मैं बनास नदी के निकास को खोज रहा था। उसी वर्ष हम लोगो ने सिन्धिया की छावनी की तरफ जाते हुये कई बार उस नदी को पार किया था। मैंने लोगो से उस नदी के निकास के सम्बन्ध मे पूछा तो लोगो ने मुझे बताया कि उसका निकास-स्थान यहाँ से बहुत दूर आबू की पहाड़ियो मे है।

मैंने उन लोगो से पूछा—और आबू कहाँ है?

मेरे इस प्रश्न को सुनकर उन लोगो ने उत्तर दिया—उदयपुर से पश्चिम की तरफ सिन्धिया से साठ मील के फासिले पर।

अब मैंने बनास को आबू के साथ अपने नकशे मे स्थान दिया और उसके पश्चात् मैंने बनास नदी के निकास का पता लगा लिया। वह नदी आबू की चोटी से निकलकर प्रवाहित होती है। इसके बाद मैंने सिन्धु नदी का भी पता लगाया।

इस यात्रा के सम्बन्ध मे मैंने कुछ और विचारो को भी स्थान दिया था। उनके साथ मेरा बडा स्नेह था। अरावली और आबू की खोज के पश्चात् मेरा विचार पश्चिमी भारत के प्राचीन नहरवाला की खोज करने का था। यह कार्य कुछ बाकी

रह गया था। कुछ और भी काम थे। राणा वंश की अनेक बातो का अनुसन्धान करना था और उनके लिये वलभी की तरफ जाकर कुछ खोज करना था। इस कार्य के लिये खम्भात की खाडी के रास्ते से मुझे सौराष्ट्र के करीब पहुँचना था। इसलिये मैंने विचार किया कि मैं जैन-धर्म के केन्द्र पालीताना और गिरनार के पहाडो की यात्रा भी इसके साथ कर लू और फिर हिन्दुओ के जगतकूट जाकर द्वारका मे कृष्ण के मन्दिरो के दर्शन करते हुये अपनी यात्रा समाप्त करूँ और वहाँ से कच्छ की खाडी होकर जाडेचो की राजधानी भुज की यात्रा करूँ और फिर माण्डवी की प्रसिद्ध मण्डी चला जाऊँ। इसके पश्चात् सिन्धु नदी के पूर्वी किनारे के रास्ते से नाव मे चलकर हिन्दुओ के मन्दिरो के दर्शन करूँ।

अपनी यात्रा का यह भाग मैंने इस प्रकार पूरा कर लिया। यदि वायु अनुकूल चलती तो सत्रह घण्टे की नाव के द्वारा चलकर अन्तिम कार्यक्रम को भी पूरा कर सकता था। परन्तु कुछ कारणो से—जिनका वर्णन आगामी पृष्ठो मे किया गया है—समुद्री यात्रा करते हुये मुझको बम्बई की ओर रवाना होना पडा।

हमारी इस यात्रा का यह प्रारम्भिक रूप है, जो यहाँ पर समाप्त होता है। इसके साथ-साथ उदयपुर का सम्पर्क भी छूटता है और आगामी प्रकरण से हमारी यात्रा का वर्णन आरम्भ होता है।

अपनी इस यात्रा के सम्बन्ध में इस प्रकरण के अन्तर्गत जो विवरण किये गये हैं, उनका लिखना मेरे लिये आवश्यक था। मेरी इस यात्रा के सम्बन्ध मे पाठको को जिन बातो के जानने की आवश्यकता हो सकती थी, वे सभी बाते सक्षेप मे यहाँ पर दे दी गई हैं।

दूसरा प्रकरण

यात्रा का प्रारम्भ : उसके दृश्य

मछलियो के साथ ममता—ऊँचे-नीचे रास्ते के कष्ट—नाथद्वारा के श्रीनाथ—विपदा में प्रतिष्ठा नही होती—विदाई की यात्रा में सरदार और मुसाहिब—बरूनी की घाटी—गोगुंदा का पहाडी प्रदेश—मेवाड़ की बडी जागीरे—राणा का श्रेष्ठ वंश—राजपूतो मे बेमेल और बहुविवाह की पुरानी प्रथा—मराठो मे लूट-मार करने की पुरानी प्रवृत्ति—राव मानिकचन्द—चरित्रवान व्यक्ति और चुगुलखोर—पहाड़ी जङ्गलो मे मेवो के वृक्ष—यात्रा मे लोगों के साथ मुलाकातें।

१ जून सन् १८२२ ईसवी को मैंने सीसोदिया की राजधानी से प्रस्थान किया। प्रभात का मनोहर समय था। सबेरे के पाँच बज रहे थे। उस समय की गर्मी का माप ९६° था।

प्रस्थान करने के बाद हम लोग घँस्यार की तरफ जाने वाली घाटी की ओर चलते हुये परिचित स्थानों की तरफ देख रहे थे। दाहिने हाथ की तरफ घने पेड़ो और पत्तो के बीच में गाँव के मन्दिर का ऊपरी भाग दिखाई दे रहा था। बँगले के निकट झरने के ऊपर महराबदार पुल बना हुआ था। प्रातः काल मैं इस झरने के करीब घूमा करता था और जल में दौड़ती हुई मछलियो को देखा करता था। मैं उनके खाने के लिये चीजे डाला करता था। (१) वे मछलियाँ इस बात से परिचित हो चुकी थी। उसके कुछ आगे की तरफ बेदला के सरदार के किले की बुर्जें दिखाई दे रही थी। वे खजूर के पेड़ों से घिरी हुई थी। उसके आगे चट्टानों की एक मशहूर घाटी थी, जो देलवाडा को पार करके मैदानो की तरफ चली गई थी। अठारह वर्ष पहले एक सरकारी कर्मचारी की हैसियत से मैं इस घाटी में आया था और उसके बारह वर्षों के बाद एक राजनैतिक अधिकारी होकर मैंने उसमें प्रवेश किया था।

(१) मेरी इस बात से कदाचित् कुछ लोगो को विस्मय मालूम हो। परन्तु जिन विदेशियो को हिन्दुस्तान में रहने का अवसर मिला है, वे जानते हैं कि इस देश में बहुत से ऐसे तालाब हैं, जिनकी मछलियाँ खाना पाती हैं। मैंने एक दूसरे स्थान पर लिखा है कि महानदी मे—जिसकी चौडाई लगभग तीन मील है—उबले हुये चावलो के लालच मे मछलियाँ मीलो साथ-साथ पानी में भागती हुई चली जाती हैं। जल मे भागती हुई मछलियों को लोग उनको बेत अथवा छडी से मार देते है और फिर हाथ से पकड़ लेते हैं। इस प्रकार के तरीके अमेरिका और अबीसीनिया के लोगों में भी पाये जाते है।

इस घाटी के पीछे की तरफ राता माता की ऊँची चोटी दिखाई पड़ती है। उस पर कुछ बुर्जे बनी हुई हैं, जिनको इस घाटी के दूरवर्ती स्थानो से देखा जाता है।

अपने बंगले से लगभग डेढ मील का रास्ता चलकर हम घाटी के उस रास्ते पर पहुँचे, जो बहुत तङ्ग था और गोगुन्दा की तरफ जाता है। इस मार्ग के बाई तरफ घूम जाने से हम उस भूमि पर पहुँच जाते हैं, जहाँ अभी तक योरप का कोई भी आदमी नही गया था। उस रास्ते पर कुछ समय तक हम चलते रहे। वह रास्ता कही ऊंचा था और कही नीचा। परन्तु चढाई का मार्ग बहुत थोडा था। दोनो तरफ की पहाडियाँ अपनी चोटी तक काँटेदार वृक्षो से ढकी हुई थी, जो बडे-बडे वृक्षो के नीचे झाडियो के रूप मे प्रकट होती थी।

यहाँ की यात्रा करने से आदमियो और पशुओ—दोनो को एक बडी थकावट मालूम होती है। इसलिये कि ये रास्ते बहुत लम्बे-लम्बे हैं। ऐसी दशा में यह मुनासिब नही मालूम होता कि इन लम्बे रास्तो को पार करने के बाद विश्राम किया जाय। राजधानी से रवाना होकर छै मील दूर घस्यार पहुँचकर हम लोगो ने विश्राम किया। घाटी के शुरू से ही चढाई लगातार ऊँची होती गई थी और इस समय जहाँ पर हम पहुँचे थे, वह स्थान उदयपुर से कई सौ फीट की ऊँचाई पर था। घँस्यार में प्रवेश करने का जो स्थान है, वह देखने से अरावली की पूर्वी पहाडियो की तरह मालूम होता है।

घँस्यार एक साधारण सा गाँव है। मुसीबत के दिनो मे जब भारत के भगवान को मराठो और पठानो से सम्मान नही प्राप्त हुआ तो वे जमुना के किनारे बने हुये आदि मन्दिरो से औरङ्गजेब के द्वारा भगाये गये नाथद्वारा से श्रीनाथ ने राजपूतो के राजाओ के यहाँ शरण ली। उस समय श्रीनाथ की फिर से प्रतिष्ठा की गई और इस स्थान को ख्याति प्राप्त हुई। कोटा के ज़ालिमसिह के प्रार्थना करने पर वर्तमान गोस्वामी जी के पिता महाराणा की आज्ञा से श्रीनाथ को नाथद्वारा से यहाँ लाये थे। इस स्थान को चारो तरफ से एक मजबूत परकोटा बनाकर उसकी किलेबन्दी की गई है और परकोटे के ऊपर बुर्जे बनी हुई हैं। यहाँ की रक्षा के लिये पैदल सेना की दो टुकडियो की नियुक्ति की गई है। (१) किले की इन दीवारो से यहाँ के जङ्गल बडे सुन्दर मालूम होते हैं। अनेक सुन्दर वनस्पतियो के होने से यहाँ का स्थान एक आकर्षक झाडी के रूप में दिखाई देता है। उनमे छोटे-छोटे लाल रङ्ग के फल लगे हुये हैं, जो झडबेरी के बेरो से अधिक बडे नही हैं। यह फल आकोलिया कहलाते हैं।

---

(१) मथुरा के करीब गिरिराज पर्वत पर पहले श्रीनाथ जी का मन्दिर था। औरङ्गजेब ने गोस्वामी जी से अपना चमत्कार दिखाने के लिये कहा। गोस्वामी जी को औरङ्गजेब के प्रति कुछ आशका उत्पन्न हुई। गोस्वामी जी विट्ठलनाथ जी के पौत्र गिरधारी लाल के बेटे दामोदर जी श्रीनाथ जी की मूर्ति को रथ मे बिठाकर अपने काका

इस प्रकार के दृश्यो को देखने के लिये मेरे पास मौका बहुत कम था । इसलिये कि इस यात्रा मे मुझे विदा करने के लिये जो सरदार और मुसाहिब लोग आये थे, वे सब साथ चल रहे थे । मेरे साथ कुछ सवार भी थे, जो अपने-अपने घोड़ो पर थे । उनके सिवा हमारा बहुत सा सामान ऊँटो पर लदा हुआ था । टूटी हुई मूर्तियाँ, शिला लेख और बहुत सी किताबे हमारे सामान मे थी । रास्ता बहुत टूटा-फूटा था । इसलिये ऊँटो को चलने मे तकलीफ हो रही थी । धूप बहुत तेज थी । उसी हालत मे एक विशाल इमली के पेड के नीचे छाया मे नाश्ते की मेज तैयार कराई गई । उस समय मुझको एक अजीब परिस्थिति का सामना करना पडा । मैं अस्वस्थ तो रहता ही था । इसलिये राजस्थान के वैद्यो की तजवीज के अनुसार, मैं क्वाथ का सेवन करता था । नौकर के उसे तैयार करके देने मे देर न लगी । मैंने उसका एक घूंट सदा की भाँति पी

गोविन्द जी, बालकृष्ण जी, बल्लभ जी और गङ्गाबाई के साथ कुंवार शुक्ल ५ सम्वत् १७२६, तारीख १० अक्टूबर १६६६ ईसवी को जब एक घडी दिन बाकी रह गया, उस समय निकले और आगरा पहुँच गये ।

सोलह दिन आगरा में रहकर कार्तिक शुक्ल २, तारीख २६ अक्टूबर १६६६ ईसवी को बूंदी के महाराजा राव अनिरुद्धसिह के पास पहुँचे । बरसात के मौसम को कोटा के कृष्ण-विलास मे व्यतीत कर पुष्कर होते हुये कृष्णगढ पहुँच गये । वहाँ के राजा मानसिह ने जाहिरा तौर पर उनको अपने यहाँ रखने मे असमर्थता प्रकट की । उस दशा में बसन्त और गर्मी के दिनो को वहाँ पर व्यतीत करके मारवाड़ मे चौपासनी मे आ गये और वहाँ पर बरसात बिताई । इस तरह पहली बरसात सजोतीधार के पास कृष्णपुर मे, दूसरी कोटा के कृष्ण-निवास मे और तीसरी चौपासनी में व्यतीत हुई ।

जब राजस्थान के किसी भी राजा के यहाँ श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा न हो सकी तो गोस्वामी दामोदर दास जी के काका गोविन्द जी महाराणा राजसिह प्रथम के पास गये । महाराणा ने श्री नाथ जी को स्वीकार करते हुये कहा—'जब मेरे एक लाख राजपूत मारे जायँगे तो उसके बाद आलमगीर श्रीनाथ जी की मूर्ति को स्पर्श कर सकता है । यह सुनकर गोविन्द जी बहुत प्रसन्न हुये और कार्तिक शुक्ल १५ सम्वत् १७२८ तारीख १७ नवम्बर सन् १६७१ ईसवी को रवाना होकर उदयपुर से चौबीस मील उत्तर की तरफ बनारस नदी के किनारे सिहाड़ ग्राम के निकट मन्दिर बनवाकर फागुन कृष्ण ७ सम्वत् १७२८ तारीख २० फरवरी १६७२ ईसवी शनिवार को श्रीनाथ जी की स्थापना की गई ।.........[वीर विनोद ६-४५२-५३]

नाथद्वारा में आने के पहले श्रीनाथ जी की मूर्ति का पूजन केशवदेव के नाम से किया जाता था । नाथद्वारा का पहला नाम सिहाड़ था ।

गया, इसी समय मुझको एक तेज गन्ध का अनुभव हुआ। हुआ यह कि रवाना होने के पहले जब मेरा सामान और असबाब बाँधा जा रहा था, उस समय नौकर ने तारपीन के तेल की एक बोतल चाय के बण्डलों के साथ लगा दी। उसकी डाट निकल गई और तारपीन का सारा तेल क्वाथ की चीजो में पहुँच गया। उस तेल की एक बोतल के लिये कीमत में मुझे दो मोहरे देनी पड़ी थी। मेरा उतना ही नुक्सान नहीं हुआ। उस तेल के क्वाथ मे मिल जाने से सारा क्वाथ ही बेकार हो गया। मैं अपने स्वास्थ्य के लिये औषधि के स्थान पर उस क्वाथ का सेवन करता था। नौकर को थोड़ी सी असावधानी के कारण मेरे तीन नुकसान हुए। एक तो वह कीमती तेल नष्ट हो गया, दूसरे मेरी औषधि खराब हो गई और तीसरे अब मैं बिना औषधि के रह गया।

मेरा वह दिन बडी परेशानी का था। उस दिन दो विरोधी अनुभूतियाँ एक साथ मेरे सामने आयी। मुझे भेजने के लिये मेरे पुराने और अत्यन्त विश्वासी नौकर मेरे साथ आये थे। अब मुझे उनको वापस करना था। उनको इनाम और इकराम के साथ लौटाना था, जो मेरे लिए एक बडी प्रसन्नता की बात थी। इन नौकरो मे बहुतो ने आराम से मेरा काम किया था और श्रद्धापूर्वक सेवा करते हुये वे लोग बूढ़े हो रहे थे। क्वाथ का पहला ही घूंट पाने पर मेरी दशा हुसेन की तरह हो गयी। (१)

मेरे जिन नौकरो ने इतने लम्बे समय तक मेरी सेवायें की थी, उनको किसी प्रकार भुलाया नही जा सकता। उनको स्वामि-भक्ति, उनकी श्रद्धा पूर्ण सेवायें और कृतज्ञतायें उनकी सहायता करने के लिये मुझे वाध्य करती है। जिन लोगो ने अपनी धारणा बना ली है कि काले आदमियो में कृतज्ञता और श्रद्धा की भावना नहीं होती, मैं उनसे जरा भी सहमत नही हूँ। मेरा तो विश्वास है कि दूसरे देशो के जिन लोगों को हिन्दुस्तान मे आने का अवसर मिला है और अधिक दिनो तक जो यहाँ पर रहकर लोगो के साथ मिले-जुले हैं, उनमे एक भी ऐसा आदमी न मिलेगा, जो हमारी बातो का समर्थन न करे। एशिया के लोगों में ईमानदारी, सेवा की भावना और उदारता की कमी नही है, इसे मैं खुलेदिल से स्वीकार करता हूँ।

२ जून सन् १८२२ ई०—हमारा रास्ता गोगुन्दा के करीब की भूमि से होकर था। वहाँ पर विभिन्न प्रकार के मनोहर दृश्य सामने आये। सूरज डूबने के समय हम

(१) मोहम्मद पैगम्बर की लड़की फातिमा और अबूतालिब के लड़के इमाम अली का बेटा इमाम हुसेन जब युद्ध मे निराश और ना-उम्मेद हो रहा था, उसके सभी साथी मारे गये थे। वह स्वयं जख्मी और निहायत थका हुआ था। वह अपने शिविर के बाहर जब बैठकर पानी पीने लगा तो उसके पहले घूंट के लेते ही शत्रु का एक बाण आकर उसके सीने पर लगा।

—गिबन का लिखा हुआ रोम साम्राज्य का पतन भा० ४ पृ० २८७

ऊपर की तरफ चढ़ रहे थे और घाटी के बारह मील के ऐसे घेरे मे हम पहुँच गये थे, जहाँ के स्वस्थ जलवायु का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था। कल पश्चिम की तरफ से आकर पानी वर्षा था और आज का रुख पलट कर दक्षिण-पश्चिम की तरफ हो गया था। ऐसा मालूम हुआ कि इस मौसिम मे हवा का रुख कुछ इसी प्रकार का रहा करता है।

लगभग आधा रास्ता चलने के बाद जब हम बरूनी की घाटी में पहुँचे तो वहाँ का एक छोटा सा मन्दिर दिखायी पडा। उसे देखकर यह साफ जाहिर होता था कि पहले यहाँ किसी समय मनुष्यो की आबादी थी। इसका प्रमाण वहाँ के खजूर और ताड के वृक्षो से भी मिल रहा था। वहाँ पर विभिन्न प्रकार के वनस्पति के पेड भी दिखायी दे रहे थे, उन हरे-भरे वृक्षो को देखकर इस बात का अनुमान होता था कि इस पहाडी प्रदेश में जल का अभाव नही है।

उस पहाड में इमारतो के बनाने के लिए अनेक प्रकार के रङ्ग-बिरगे पत्थर भी पाये जाते हैं, इसकी जानकारी भी हुई। वहाँ पर पतले और मोटे सभी प्रकार के और अनेक रङ्गो में पत्थर पाये जाते हैं। भूरे और स्लेटी रङ्ग की प्रस्तर पटियाँ जो वहाँ पर मिलती हैं, वे बडी खूबसूरत होती हैं। गोगुन्दा के पहाडी प्रदेश मे स्लैटी रङ्ग के पत्थर अधिक मात्रा मे पाये जाते हैं। वहाँ पर जो मकान बने हुए हैं, उन सभी की छते इन्ही पहाडी पत्थरो के द्वारा पाटी गयी हैं। सभी मकानो की छते एक सी देखने मे मालूम होती हैं। वहाँ पर छोटे और बडे जितने भी मन्दिर बने हुये हैं। उन सभी मे इन पत्थरो का प्रयोग किया गया है, उनके द्वारा उन मन्दिरो की न केवल शोभा बढ गयी है, बल्कि उनके कारण वे मन्दिर बहुत मजबूत हो गये हैं।

यह पहाड हमारे रास्ते मे सैकडो फीट ऊँचा है। उसकी ऊँची चोटियाँ गुलाबी रङ्ग के पत्थरो की हैं। जिनके द्वारा इमारती पत्थर बहुत प्राप्त होता है। उन पत्थरो का रङ्ग सूर्य के प्रकाश में चमकता हुआ बहुत सुन्दर मालूम होता है।

मेवाड में सोलह (१) बडी जागीरे है, उनके अन्तर्गत होने के कारण गोगुन्दा इस प्रदेश का एक प्रमुख स्थान है। गोगुन्दा की जागीर ५०,००० (पचास हजार) रुपये के वार्षिक आय की कही जाती है। परन्तु यह कहने भर के लिए है। यहाँ के जागीरदारो ने न तो कभी बुद्धि का प्रयोग किया और न कभी किसी व्यवसाय का। दोनो ही बातो मे वे कमजोर रहे है और आज भी है। इसका सबसे अधिक प्रमाण यह है कि

---

(१) राणा अमरसिह द्वितीय (१६९६-१७१० ईसवी) ने मेवाड के श्रेष्ठ सरदारो की सख्या सोलह निश्चित की थी। वे लोग सोलह उमराव कहे जाते थे। उन जागीरो के नाम इस प्रकार है—सादडी, गोगुन्दा, देलवाडा, कोठारिया, वेदला, पारसोली, सलुम्बर, देवगढ, वेगूँ, आमेट, भीडर, बानसी, घाणेराव, बदनोट, कानोड़ और बीजोल्या। [उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ८७०-९९१]।

जो जागीर इतनी बडी आय की मानी जाती है, उसके जागीरदार उसका दसवाँ भाग भी कभी वसूल नही कर सके। इस पहाडी क्षेत्र की खेती का तरीका यह है कि पानी के लिये तालाब अथवा तालाब की तरह के कुछ स्थान बना लिये जाते हैं और उनसे जो कुछ सहायता खेती को पानी पहुँचाने की हो सकती है, उतनी होती है। परन्तु अनेक शताब्दियाँ बीत गयी, उस जागीर मे खेती को पानी देने के लिये उसकी व्यवस्था भी नही हो पायी। इसका कारण यह है कि वहाँ पर मराठो के आक्रमण हुये थे और उस समय से लेकर कई शताब्दी तक वहाँ का अधिकार मराठो के हाथो मे रहा।

उन मराठो को गोगुन्दा रियासत के बनने-बिगडने की परवा कभी नही रही। वे अपनी जरूरत पर लूटमार करके रकम वसूल कर लेते थे। लेकिन वहाँ के स्त्री-पुरुष कैसे जीवित रहेगे, इसकी भी परवाह उन्होने कभी नही की। गोगुन्दा का सरदार झाला राजपूत है। इस जाति के लोग और प्रायद्वीप मे अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ का वर्तमान जागीरदार मानसिंह है। उसको मेवाड के बडे सरदारो मे नही माना जा सकता। रियासत के अतिरिक्त इसके कुछ और भी कारण हैं। उसका कद ठिगना है, रङ्ग काला है और आकृति भद्दी है। वह शरीर से जितना कमजोर है, उतना ही बुद्धि मे भी निर्बल है। उसे तो एक ऐसा जीव कहा जा सकता है। जो मनुष्य की तरह बोलना जानता है। आकृति, रङ्ग, रूप के सिवा उसकी लम्बी भुजाये उसके मनुष्य होने का प्रमाण नही देती। शराब के अधिक पीने के कारण उसके दाँत नष्ट हो गये हैं। जो रह गये है, उनके रङ्ग काले तथा बदसूरत हैं। हिलने के कारण वे सोने के तारो से बँधे हुये हैं। उसके इन दाँतो से उसका भद्दापन और भी अधिक हो गया है।

इस जागीरदार के सम्बन्ध मे वहाँ के लोगो की धारणा किसी अर्थ मे अच्छी नही है। 'कौए का बच्चा कौआ ही होता है, इस कहावत का हम यहाँ पर समर्थन नही कर सकते। हमारे समर्थन न करने का स्पष्ट कारण है। गोगुन्दा जागीरदार का लडका अपने बाप से बिल्कुल विपरीत है। उसके पिता को भी कौआ नही कहा जा सकता। शरीर के रङ्ग, रूप और भद्देपन के लिये वह स्वयं अपराधी नही है। इसकी जुम्मेदारी तो बहुत कुछ प्रकृति के ऊपर है। राजस्थान के इतिहास मे मैंने वर्णन किया है कि राम के वशज मेवाड के राजाओ को भी परिस्थितियो के बस मे मुसलमान बादशाहो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोडने पडे थे और इसके परिणामस्वरूप दूसरे राजाओ ने उनके साथ सामाजिक सम्बन्ध विच्छेद कर दिये थे। इस प्रकार बहिष्कृत राजपूत राजा और नरेश अपनी बेटी-बेटो के विवाह-सम्बन्ध राजपूत सरदारो के यहाँ करने मे भी वञ्चित हो गये थे। इस अवस्था मे उनके सामने एक बडी कठिनाई उत्पन्न हो गई थी और अन्य गोत्रीय राजपूतो मे अपने वैवाहिक सम्बन्ध करने के लिये उनको विवश होना पडा था। उनको किसी प्रकार अपने पूर्वज बप्पा रावल की प्रतिष्ठा को कायम रखना था। राणा-वश के राजपूतो ने जिन राजपूतो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध किये,

उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ी। इसलिये कि राजस्थान के राजपूतों में राणा वंश एक ऊँचा वंश माना जाता है। इसलिये उनकी मान-मर्यादा को प्रतिष्ठा मिली।

वर्तमान महाराणा की माता गोगुन्दा सरदार की लड़की थी। वे अपनी योग्यता और साहसपूर्ण प्रतिभा के लिये प्रसिद्ध थी। अगर राजमाता के पुत्र को देखकर अनुमान लगाया जाय तो स्वीकार करना पडेगा कि उसका भविष्य ऊँचा होगा। इसलिये कि राजस्थान मे राणा का वश बहुत प्रतिष्ठिन माना जाता है।

वर्तमान राजकुमार राव जवानसिह की शारीरिक छवि की प्रशसा कौन न करेगा? उसकी रानी की भतीजी मेवाड के श्रेष्ठ सरदार सलुम्बर के ठाकुर की माता है। राजघराने के साथ उसके दो सम्बन्ध हैं। उससे पैदा होने वाली लडकियो के विवाह-सम्बन्ध, वेदला के चौहान ठाकुरो अथवा छाजेराव के राठौरो के यहाँ हो सकते हैं। ये दोनो ही जागीरे मेवाड की श्रेष्ठ जागीरो मे मानी जाती है और उन दोनो जागीरदारो की लडकियाँ महाराणा के यहाँ व्याही जा सकती है।

इस तरह इन राजपूत वशो का रक्त आपस मे एक दूसरे के साथ मिश्रित हो गया है और उस मिश्रण के द्वारा दिल्ली, कन्नौज और अनहिलवाडा के चौहान, राठौर और चावडा राजपूत एक-दूसरे के सम्बन्धी बन गये है।

राजपूतो मे वेमेल सम्बन्धो के अतिरिक्त बहुविवाह की प्रथाएँ भी हैं। उनके दुष्परिणाम इन राजपूतो के सामने सदा आये हैं और भविष्य मे भी उस समय तक आते रहेगे, जब तक इस प्रकार की प्रथाओ में परिवर्तन नही होता। अनमेल विवाह के सम्बन्ध मे सादडी के सरदार का राणा की लडकी के साथ सगाई के विवरण राजस्थान के इतिहास मे लिखे जा चुके हैं। उस एतिहासिक ग्रन्थ मे ऐसे विवरण भी दिये गये हैं, जिनमे बहु-विवाह के दूषित परिणाम स्पष्ट रूप मे दिखाई देते हैं। भाइयो के आपसी झगडो का कारण बहुत-कुछ राजपूतो की प्रचलित बहुविवाह की प्रथा है। इस प्रकार के झगडो से राजपूतो का सारा इतिहास भरा हुआ है। उनमे दूसरे प्रकार के जो झगडे होते हैं और जिनके कारण राजपूतो का अब तक विनाश और विध्वंस हुआ है, उनके कारण भी बहुत-कुछ राजपूतो की वैवाहिक प्रथाये है। इस विषय मे यहाँ पर एक कहानी का उल्लेख करना हमे उचित और आवश्यक मालूम होता है। उसके द्वारा भी इस पवित्र विवाह की बहुत-कुछ अनावश्यक बातें सबके सामने आती है।

दिल्ली के अन्तिम सम्राट के वशज कोठारिया के चौहान राव ने जो मेवाड़ के सोलह श्रेष्ठ सरदारो मे से था—दो विवाह किये थे। एक विवाह उसने भीडर के शक्तावत वश की लडकी के साथ किया था और दूसरा विवाह राज-परिवार के एक राणावत सरदार की लडकी के साथ किया था। प्रेम न तो जन्म देखता है और न घराना और परिवार देखता है। मनुष्य के जीवन मे चरित्र को श्रेष्ठता दी गई है।

भीडर के ठाकुर की लड़की में एक सफल गृहणी होने के गुण मौजूद थे। वह अच्छा व्यवहार करना जानती थी। उसकी बातचीत में दूसरो के लिये स्नेह और बडप्पन रहता था। अपने इन गुणो के कारण वह अपने पति के निकट सम्मानित हो गई। उसके पति को जो दूसरी लडकी ब्याही गई थी, उसमे वंश के बडप्पन के सिवा और गुणो का अभाव था।

उन दोनो के सन्ताने उत्पन्न हुई। जो लडका पहले पैदा हुआ, वह स्वाभाविक रूप से कोठारिया के सिंहासन का अधिकारी हुआ। वह शक्तावत वश की लडकी से पैदा हुआ था। उसको सभी सरदार आदर और प्रेम की नजर से देखते थे। संयोग-वश वह लडका बीमार होकर मर गया। उस मृत बालक की माता ने स्पष्ट रूप से यह कहना आरम्भ किया कि मेरा यह बालक मेरी सौत के कारण मरा है। उसने यह भी कहा—कि उसी ने पिशाचिनी को बुलाकर और कुछ ले-देकर मेरे लडके का खून कराया है।

इस प्रकार की बातो को उठाने से लोगो मे उस बालक की मृत्यु का कारण बनने लगा। अब सोचने की बात यह है कि जिन परिवारो मे स्त्रियाँ इस प्रकार के अन्धविश्वासो मे रहा करती हैं, उस परिवार और वश का कैसे कल्याण हो सकता है।

इस अविश्वास का परिणाम लोगो मे घर करने लगा। पत्नी के उस अन्ध-विश्वास का उसके पति पर भी प्रभाव पडा। वह अपनी दूसरी पत्नी का विरोधी हो गया। इस परिस्थिति से व्याकुल होकर उसकी दूसरी पत्नी ने एक षड्यन्त्र की रचना की। उसने अपने अधिकारो को प्राप्त करने के लिये पिता से शिकायत की और अनेक प्रकार के झूठे दोषारोपण उसने अपने पति के विरुद्ध पैदा किये। यह मामला महाराणा तक पहुँचा। उस दरबार के लोग कोठारिया के राव के पहले से ही विरोधी थे। उन विरोधियो मे कई एक उस राव के बिरादरी के लोग भी थे। प्राय: राजपूतो में कहा जाता है कि चौहान वश के लोग अच्छे नही होते। उस वश का कोई भी आदमी अपने सगे भाई को भी देख नही सकता। कोई भी चौहान वश ऐसा नही मिलता, जिसके परिवार मे सगे भाई एक दूसरे के शत्रु न हो।

महाराणा को समझा-बुझाकर इस बात का विश्वास कराया गया कि कोठा-रियाँ का राव अपनी उस स्त्री के बहकावे मे आ गया है, जिसके लडके की मृत्यु हो गई है और उसके कहने-सुनने का राव पर इतना प्रभाव पडा है कि वह दूसरी स्त्री से उत्पन्न बालक को मरवा डालने की कोशिश मे है।

राजपूतो में प्रचलित बहुविवाह की प्रथा का एक दुष्परिणाम यह भी होता है कि पारिवारिक सङ्कट उत्पन्न होते हैं और उस सङ्कट मे छोटे-छोटे बालक मार दिये जाते हैं। जिसको इस राजपूत जाति के सम्पर्क मे आना पडा है, उससे इस प्रकार के रहस्य अधिक समय तक छिप नही सकते।

महाराणा को जो बातें बताई गयी, उन पर उसने विश्वास किया और कोठारिया के राव को दण्ड देने के लिये उसने तरीके ढूढने की कोशिश की। अन्त में महाराणा को इसके लिए एक रास्ता मिल गया। इस राज्य में गैर-मेवाड़ी सामन्तों को जो जमीन दी जाती है, उसका पट्टा, काला पट्टा कहा जाता है और इस प्रकार का कोई भी काला पट्टा उस सामन्त से वापस लिया जा सकता है, जबकि पुराने पट्टे वापस नहीं लिये जा सकते। इस प्रकार पट्टे वाले कोठारिया के राव पर दबाव डालने के कारण विरोधी भी हो सकते थे। लेकिन उसकी जागीर राज्य के मध्यवर्ती भाग में थी और मराठो के साथ लगातार लडते-लडते उसकी शक्तियाँ बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी।

मेवाड़ का राज्य उन दिनो के दृश्य देख चुका था, जब उसके सरदारों और सामन्तो में उसके प्रति स्वामि-भक्ति नही रह गई थी। यहाँ पर इस विषय में एक छोटी-सी घटना का उल्लेख अनावश्यक नही होगा—

किसी समय कोठारिया का यही राव महाराणा के दरबार से अपनी नौकरी पूरी करके वापस जा रहा था। उसके साथ पच्चीस राजपूत सैनिक सवारो की एक टुकड़ी भी थी। रास्ते में मराठो ने उन सब को घेर लिया और उनको आत्म समर्पण करने के लिये मजबूर किया। यह देखकर राव अपने घोडे से उतर पडा और उसने अपने घोडे के घुटने के पास की एक नस को काट दिया। उसने ऐसा ही करने के लिये अपने साथियो को भी संकेत किया। उन सभी ने उसके सकेत का पालन किया। सभी के घोडे खून से डूब उठे। उनके बदन का रक्त लगातार गिरने लगा। इसके बाद अपने साथियो के साथ तलवार लेकर मराठो से युद्ध करने के लिये खडा हो गया।

आरम्भ से ही मराठे लोग युद्ध करने और विजय प्राप्त करने की अपेक्षा लूट को ही अधिक महत्व देते थे और जहाँ पर उनको कुछ मिलने की आशा नही होती थी, वहाँ वे युद्ध को बचा देते थे। यहाँ पर भी यही हुआ। उन मराठो ने राव और उसके साथ के राजपूतो से युद्ध करना पसन्द नही किया। इसलिये वे उनको छोडकर वहाँ से चले गये। (१)

कोठारिया के राव के पूर्वजो के अधिकार मे किसी समय आगरा के करीब चन्डावर की जागीर थी। उस जागीर को सिकन्दर लोदी ने उससे छीन लिया था। क्योकि उसने चौहान सरदार से उसकी लडकी माँगी थी और उसने अपनी लडकी देने

---

(१) महाराणा भीमसिंह के समय की घटना है। फ़तेहसिंह का बेटा विजयसिंह ऊनवास नामक गाँव से कोठारिया जाते समय होल्कर का सेना के कुछ लोगो से घिर गया। मराठो के माँगने पर उसने और उसके साथियो ने अस्त्र शस्त्र और घोड़े नही दिये। उन सब ने अपने घोडो को मार डाला और उन मराठो से लडता हुआ अपने राजपूतो के साथ वह मारा गया। [उदयपुर राज्य का इतिहास जि० २ पृ० ८७९]

से इन्कार कर दिया । उसके बाद ही राव मानिक चन्द अपने परिवार को लेकर गुजरात चला गया। वहाँ पर मुजफ्फरशाह ने उसका स्वागत किया और उसकी काठी की सीमा पर सेना का अध्यक्ष बना दिया ।

काठियो के साथ युद्ध करते हुये वह बुरी तरह जख्मी हो गया। उस समय सुल्तान स्वय उसको युद्ध के क्षेत्र से ले गया। डूंगरशी रावल की सहायता करते हुये उसका लडका दलपत हार गया और वह मारा गया । इस पर उसका लडका सग्रामसिंह अपने पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ और गुजरात के बहादुरशाह के चित्तौर पर चढाई के समय साथ था। उस समय हुमायूँ राणा की सहायता करने के लिये आया था। उस समय मेवाड का राणा उदयसिंह ने उस चौहान को अपने यहाँ रखने के लिये कोशिश की थी और उसे दो हजार सवारो, पन्द्रह सौ पैदल एव पैंतीस हाथियो को देकर सेना का एक अधिकारी बनाना स्वीकार कर लिया था। उस समय उसके और राणा के बीच यह शर्त मान ली गई थी कि वह चौहान सरदार उसी समय युद्ध मे जायगा, जब राणा जायँगे। अपने मे छोटे दर्जे के सरदार के नेतृत्व मे वह युद्ध करने नही जायगा और न उसकी अधीनता मे काम करेगा। सप्ताह मे एक बार केवल दरबार मे हाजिरी देने आवेगा। यह भी निश्चय हो गया कि उसका पद सीसोदिया वश के श्रेष्ठ सरदारो के समान माना जायगा।

मैं जब राणा के दरबार मे गया था, उसके कुछ पहले ही राणा ने राव के गुजारे के लिये बचे हुये कोठारिया के दो गाँवो पर अधिकार करने के लिये भेजा था। कोठारिया की जागीर का बाकी हिस्सा शत्रुओ के हमलो से पहले ही नष्ट हो चुका था।

राणा ने उन दोनो गाँवो को राव के पुत्र के नाम लिखवा दिये थे। मेरे पहुँचने पर राणा ने अपने सरदारो के साथ परामर्श किया और शत्रुओ तथा सामन्तो के सभी झगडो मे मुझको अधिकारी बना दिया। ऐसी दशा मे कोठारिया का झगडा भी निर्णय होने के लिये मेरे अधिकार मे आया। जिसने उत्तर के सुल्तान के खिलाफ सेना का नेतृत्व किया था और मुस्लिम इतिहासकारो ने जिसकी प्रशसा की है, उस दिल्ली के अन्तिम चौहान सम्राट के काका और सेनाध्यक्ष कान्हराय के वशज (१) कोठारिया

---

(१) कर्नल वाल्टर ने पृथ्वीराज रासो के आधार पर कोठारिया के चौहानो को पृथ्वीराज के काका कान्हराय का वशज माना है, यह सही नही है। कान्हराय नाम का पृथ्वीराज का कोई काका नही था। यह रणथम्भोर के राव हम्मीर के वशज हैं। बाबर और राणा साँगा की लडाई के मौके पर उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले के राजौर नामक स्थान से माणिक चन्द चौहान ४००० सैनिक लेकर राणा की सहायता करने के लिये आया था। उसने उस युद्ध मे अपने पराक्रम का प्रदर्शन किया था। लेकिन अन्त मे मारा गया। उसके बाद उसके बचे हुये सैनिक राणाओ के यहाँ रहने लगे थे। (उदयपुर राज्य का इतिहास जि० २ पृ० ८७७)।

के राव के साथ मेरी सहानुभूति थी। कान्हराय ने जिसको फरिश्ता ने अजयराय लिखा है—अपने सैनिकों के साथ शहाबुद्दीन के मुकाबिले में युद्ध करना स्वीकार किया था। युद्ध के मैदान में वह गया था और शाह का उसने मुकाबिला किया था। उस अवसर पर सरदार शहाबुद्दीन का कवच मजबूत न होता तो सरदार के वार से वह बच न सकता। जिस वंश के लोग इस प्रकार शूर-वीर रहे हो, उनका आदर और सम्मान न होना एक भयानक अन्याय है, जो किसी भी राज्य को शोभा नही देता।

किसी भी चरित्रवान की कुशलता चुगलखोरो की कृपा पर निर्भर होकर रहे, यह तो बड़ी लज्जा की बात मालूम होती है। यदि ऐसा होगा तो दुनिया में चुगलखोर ही रह जायँगे और यह पृथ्वी चरित्रवानो तथा शूरमाओ से खाली हो जायगी। अपने मामले मे वक्तव्य दे ते हुये राव ने जोरदार शब्दो मे अपील की थी—"मेरी गरीबी ही मेरी शत्रु है। अन्याय के प्रहारो से बचने और न्याय को प्राप्त करने के लिये मेरे पास सम्पत्ति नही है कि मैं हुजूर के आस-पास रहने वालो को रिश्वत दे सकूं और अपनी रक्षा कर सकूं।"

राव के वाक्यो से मैं बहुत प्रभावित हुआ। राव का व्यक्तिगत चरित्र, उसका विनम्र निवेदन और मामले मे न्याय प्राप्त करने का अधिकार—सभी कुछ तो मुझे प्रभावित कर रहा था। मैंने राव को उसके मामले में आश्वासन दिया और उसके मामले मे महाराणा के सामने वकालत करने का भी मैंने विश्वास दिलाया।

इस मामले में जब मैं राणा के सामने पहुँचा और बाते भी तो मुझे उसका पक्षपात साफ-साफ जाहिर हुआ। उस समय मैने राणा को चौहान की उन सेवाओ की याद दिलाई, जब लोग झूठा विश्वास दिलाने के बाद मौके पर मुख दिखाने नही आते थे। मैंने कहा—उन दिनों में चौहान सरदार ने जो सेवाएँ की थी और जिस साहस से काम लिया था, उनको भूल जाना अथवा उनको सम्मान न देना, चरित्र और त्याग का अपमान करना है।

मेरे शब्दो को राणा ने ध्यानपूर्वक सुना और वे गम्भीर होकर सोचने लगे। मैंने उसी समय फिर उनसे कहा—राव आपकी सहानुभूति और सहायता प्राप्त करने का उसी प्रकार अधिकारी है, जिस प्रकार आप ईश्वर की दया और सहायता पाने के अधिकारी हैं।

राणा के उस समय की मुखाकृति उसकी प्रसन्नता और उसके सन्तोष का परिचय दे रही थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि राणा ने राव के सम्बन्ध में मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया। राणा में हठ करने की आदत नही थी। राव के सम्बन्ध मे उनके पक्षपात की भावना उनके चापलूसो और चुगलखोरो को पैदा की हुई थी। इस देश के राजाओ और नरेशों के पतन के बहुत कुछ कारण यहाँ के चापलूस और चुगलखोर हैं, जिनका विश्वास किया जाता है।

हमारा उस दिन का कार्य राणा के इस प्रकार आश्वासन देने पर समाप्त हुआ कि राव अपने भाञ्जे भाणा जी के साथ असङ्गत व्यवहार करना छोड़ दे और उसको दरबार मे उपस्थित करे तो इसके बदले राव के सभी हितो की रक्षा करने का मैं विश्वास दिलाता हूँ।

राणा की आज्ञा पालन करने के लिये मैंने उसी समय राव से कहा। राव के प्रतिकूल दरबार मे जो झगडा था, वह साधारण नही था। राव अपनी पत्नी के सन्देहो पर विश्वास करता था, फिर भी उसने मेरे समझाने पर राणा की आज्ञा को पालना करना स्वीकार कर लिया। लेकिन कहने और करने में बहुत अन्तर होता है। राणा जो चाहते थे, राव की तरफ से उसके पालन मे विलम्ब होने लगी। कुछ दिनो तक त टल गया। लेकिन अधिक बहाने छिपाये नही जा सकते। कभी तो बच्चे को चेचक निकल आयी थी तो कभी किसी काम मे उलझ जाने के कारण मौका नही मिला। कभी यह कहा कि स्त्री और बच्चे को राजधानी मे लाने का इसलिये मौका नही मिला कि उसके पास आर्थिक अभाव था और वहाँ लाकर उसको भेटे देनी पडती हैं।

राव की इस प्रकार की बातो मे कुछ सत्य भी था। लेकिन राणा को कैसे विश्वास कराया जाय। मेरी अपेक्षा राव को राणा अधिक समझता था। मैंने जो कुछ उसे समझाया था, उसे राव ने आसानी से स्वीकार कर लिया था। लेकिन उसके पारिवारिक मामलो मे राणा का हस्तक्षेप उसको मन्जूर नही था।

मैं समझता था कि राव का कल्याण इसी मे है कि वह राणा के आदेशो का पालन करे। मैंने उसको समझाने की चेष्टा भी की। लेकिन मेरी बातो को सुनकर उसने कहा—

यदि मैं इस प्रकार की बातो को स्वीकार करता हूँ तो इसका अर्थ यह है कि मुझे अब अपने घर मे ही गुलाम बनकर रहना पडेगा। मेरे अपने शत्रु तो मुझसे जान बचाने के रास्ते तलाश कर रहे हैं। उनका कहना है कि मैं अपने लडके के मार्ग से अलग हो जाऊँ और नाथद्वारे मे चला जाऊँ।

मैंने राव की इन सभी बातो को सुना और उसे विश्वास दिलाया कि तुम अगर राणा के हिसाब से चलोगे और उनके कहने के अनुसार आचरण करोगे तो तुम अधिक सुखी रहोगे।

मैंने राव के साथ अनेक बार बाते की और उसकी सभी बातो को सुनने के बाद मैंने उसे समझाया। वह प्रभावित हुआ और सभी बातो पर उसने अपनी सहमति प्रकट की। सब कुछ निश्चय हो गया। राव ने बुद्धिमानी के साथ सारी बाते स्वीकार कर ली, इससे मुझे बहुत सन्तोष मिला और सबसे बडी खुशी मुझको उस समय हुई, जब मैंने सुना कि राणा की तरफ से राव को कोठारिया का नया पट्टा मिल गया।

उस पट्टे मे वे दोनो ग्राम भी शामिल कर दिये गये थे, जिनको राज्य की तरफ से जप्त कर लिया गया था।

नया पट्टा पा जाने के बाद राव भी मिला। उस समय तक उसकी हालत अच्छी थी और अफीम तथा अफीमचियो के चक्कर मे वह अभी तक नही पड़ा था। वह मेवाड़ी राजपूतो मे एक होनहार जवान लडका था। अगर वह बुरी आदतो से बच गया तो कान्हराय का यह वशज किसी दिन अपने वंश का मस्तक ऊँचा करेगा।

इन प्रसङ्गो को मैं अब यही पर छोडे देता हूँ। गोगुन्दा के झाला और कोठारिया के चौहानो की घटनाओ को लेकर हम बहुत कुछ लिख चुके। मैं चाहता हूँ कि इन दोनो राजपूत वंशो की सन्ताने भविष्य मे तरक्की करे और उनके कार्यों की दुनिया में प्रशंसा की जाय।

३ जून—सैमूर : इस समय जहाँ पर हम थे, वहाँ चारो तरफ ऊँची-ऊँची पहाडी चोटियाँ थी। परन्तु अरावली का जो भाग बोया-जोता है, उसका यह सबसे ऊँचा स्थान है। दोपहर के दो बजे बैरोमीटर २७°३८ पर और थर्मामीटर ८२° पर था। सूर्य डूबने के समय बैरोमीटर २७°३२ पर और थर्मामीटर ७६° पर था। इन दिनो मे यहाँ का मौसिम बडा सुहावना मालूम हो रहा था। राजधानी की घाटी के मुकाबिले में यहाँ का मौसम अधिक अच्छा लग रहा था। मेरे प्रस्थान करने के दिनो में वहाँ सूर्योदय और सूर्यास्त-दोनो समय थर्मामीटर ९५° तक ही था, गर्मी की यह हालत देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और अधिक सोच-विचार में न पडकर मैंने अपने बँगले की खस की टट्टियाँ नष्ट करवा दी। यह सब मैंने जल्दबाजी में किया, जिसके लिये मुझे बाद मे पछताना पड़ा।

उस दिन हवा का रुख दक्षिण-पश्चिम की तरफ से था। शाम के समय कुछ पानी की बूँदे भी पडी। मैंने पहले भी लिखा है कि नये-नये स्थानो और देशो की यात्रा करना मुझे बहुत प्रिय है। अपनी उसी आदत के अनुसार, इस पहाड़ी प्रदेश की यात्रा मुझे अत्यन्त प्रिय लग रही थी और यहाँ के अगले स्थानो की यात्रा करने के सम्बन्ध में मेरी उत्सुकता लगातार बढती जाती थी। इस प्रकार की यात्रा, प्रकृति के अध्ययन से सम्बन्ध रखती है। प्रकृति के प्रत्येक जीवन मे नवीनता रहती है, उसमें प्राणो का सञ्चार करने की शक्ति रहती है और सबसे बड़ी बात यह है कि मुझको अपने जीवन की सही जानकारी उससे प्राप्त होती है। इसलिये मुझे यात्रा सदा से बहुत प्रिय रही है।

मैंने बहुत पहले सुना था कि इन पहाडी जङ्गलो मे बादाम और आड़ू के पेड बहुत हैं। यह भी सुना था कि यहाँ पर इन वृक्षो की संख्या इतनी अधिक है कि इस फल का गूदा—जिसे यहाँ के लोग आड़ू बादाम कहते हैं—अधिक तादाद मे निर्यात किया जाता है।

मैंने इन वृक्षों को कुम्भलमेर की घाटी और देलवाडा के दर्रे मे देखा था, मैं समझता था कि आडू वोया जाता है। यह क्षेत्र वहुत दिनो तक मराठा-सरदारो के अधिकार में रहा है। यहाँ पर उन्होने इसे अपना निवास स्थान वना लिया था। इस-लिये हमारी जो धारणा थी, वह वहुत दिनों तक कायम रही। लेकिन जब हमने एक कुएं के अगले हिस्से मे, पत्थर को दरारो में अपने आप इसे उगा हुआ देखा तो उस समय से हमारा ख्याल वदल गया और मैंने उस दिन से समझ लिया कि यह पेड वोया नही जाता। अपने आप उगता है।

आज की यात्रा मे भी मैंने इसी प्रकार की दरारें देखी। जब मैंने प्रकृति के इस रहस्य को देखकर आश्चर्य किया तो मुझे लोगो ने वताया कि कुम्भलमेर की घाटी मे इस प्रकार की वहुत सी दरारें हैं, जिनमें वडे उपयोगी पौधे उगे हुए हैं। खट्टे सेवो के अतिरिक्त सालू अथवा सालू मिश्री होती है, वह या तो अरारोट है अथवा इसी प्रकार का कोई दूसरा पौधा है।

इसी मौके पर मुझे लोगो ने यह भी बताया कि यह कोई जडदार पेड़ नहीं है, बल्कि एक प्रकार की वेल है, जिसमे हाथों की उंगलियो की तरह गुच्छे निकलते हैं। उस समय उन लोगो ने उसका उपयोग नही कराया। ऐसा क्यो किया, इसे मैंने नही समझा। हो सकता है कि उनको इसका स्मरण न रहा हो अथवा उन लोगो ने आवश्यक नही समझा हो, जो कुछ हो, मैं नही जानता। उन लोगों ने उसे सेम को फलियो की तरह बताया था, मुझे ठीक-ठीक स्मरण नही है। यह कदाचित वही चीज है, जिसे डायोडोरस सीक्यूलस (१) ने कैलेमस बताया है, जो लङ्का मे पाया जाता है। मैंने अपने भतीजे कैप्टेन वाघ को—जिसे राजधानी मे मैंने कार्य-भार सौंपा है—लिखा है और उसको ग्राम का नाम भी लिख दिया है कि कुम्भलमेर के पहाडो क्षेत्र मे कडियाँ नामक गाँव से—जहाँ पर जङ्गली दाख, सेव और सालू मिश्री पैदा होती है—इन सब

---

(१) ग्रीक—इतिहासकार—जिसने ६०-५७ ईसा से पूर्व मिश्र देश का भ्रमण किया था और अपनी यात्रा के द्वारा उसने डायोडोरस आफ सिसली नाम का इतिहास लिखा था। उसने लिखा है—यहाँ पर केलामु बहुत अधिक मात्रा में पैदा किया जाता है। उसके फल देखने में श्वेत रङ्ग के चौला की तरह के होते हैं। उनको एकत्रित करके गरम जल मे रख देते हैं और जव वे फूलकर कबूतर के अण्डों के बराबर हो जाते हैं तो हाथो से गूंधकर उसकी रोटियाँ बनाते हैं, वे खाने मे बडो स्वादिष्ट होती है। इस प्रकार उसका उपयोग आम तौर पर किया जाता है। उसको गरम जल मे उसी समय रखा जाता है, जब उसकी रोटियाँ बनाने की आवश्यकता पडती है।

चीजो को एकत्रित करके मेरे लिये भेजे ।

यहाँ के पहाडी क्षेत्रो की भूमि अनेक प्रकार से उपयोगी और काम की है । यहाँ की ऊँची-ऊंची चट्टानो और अगणित झरनो के बीच की भूमि चरागाहों के लिये ही श्रेष्ठ नही है, बल्कि खेती के लिये भी वह अत्यन्त उपयोगी है । यहाँ पर मैंने लोगो को जोतते और भूमि को तैयार करते हुए देखा । वे लोग अपनी भूमि को आवश्यकता के अनुसार मक्का, गेहूँ, जौ और गन्ने तैयार कर रहे थे । खेती के व्यवसाय के लिये जो प्रयोग होते है, उनका आनन्द तो इन्ही पहाडी दर्रों मे देखने को मिलता है । यहाँ के विस्तृत जङ्गलों को समतल बनाकर हल चलाने के योग्य तैयार कर लिया गया है ।

इस क्षेत्र की अनेक बाते विचारणीय हैं । एक समझदार आदमी के लिये यह सोचना आवश्यक हो गया है कि वे यहाँ के प्राचीन भूमि के मालिकों के वशजो और पहाड़ी राजपूतो को देखे और फिर उनकी प्राचीन अथवा अर्वाचीन परिस्थितियो पर विचार करे ।

यहाँ के इन लोगो का कद लम्बा, शरीर मजबूत और उनके विचार स्वतन्त्र हैं । ये लोग जीवन निर्वाह के लिये कडी-से-कडी मेहनत करते हैं । लेकिन अपने पूर्वजों की मर्यादा को कभी भूलते नही है । मैदानो और जङ्गली स्थानो मे रहने वालो की तरह यहाँ के लोग भी सदा ढाल तलवार के साथ दिखायी देते हैं । लेकिन इनका जीवन उन लोगो से बिल्कुल भिन्न है, जो उनके आस-पास रहते हैं और मेर, मीणा और भीलो की जाति के कहलाते है । इन लोगो की तरह इन पहाडी स्थानो के लोग कोई भी अपराध का काम नहीं करते । यह बात जरूर है कि ये लोग अपनी रक्षा के लिये युद्ध करने मे कभी पीछे नही हटते ।

जब मेरे आने का समाचार यहाँ के निवासियो मे फैला तो सभी ठाकुर और गाँवो के मुखिया लोग मेरे पास आकर एकत्रित हुए । जो लोग मेरे पास आये, उनमे से कितने ही मेरे कैम्प मे बने रहे और अपने पुराने जमाने की बाते मुझे सुनाते रहे ।

यहाँ के लोगो से मैं बडे प्रेम से मिला । ऐसा मालूम होता था, मानो वे मेरे पुराने मुलाकाती है । वे लोग भी कुछ अपनेपन के साथ मुझसे मिले । मेरे डेरे मे बैठे और आजादी के साथ वे मुझसे बाते करने लगे । मुझे खुशी है कि वे लोग मुझसे इस प्रकार बातें करने लगे, जिनमें मैं एक विदेशी नही रहा ।

मेरे डेरे मे बैठकर आये हुए ठाकुरो और दूसरे लोगो ने हँस-हँस कर बाते करना आरम्भ किया। मुझे उनको सुनने मे मनोरञ्जन मालूम हो रहा था। अपनी बातो मे उन लोगो ने बताना शुरू किया कि उनके पूर्वजो ने अपने क्षेत्रो की भूमि और उसके दर्रों की रक्षा करने के लिये किस प्रकार अपने प्राणो की आहुतियाँ दी थी। उन लोगो ने बताया कि उनके यहाँ किस प्रकार बाहरी लोगो के आक्रमण होते थे, किस प्रकार वे लोग अचानक आकर लूट-मार करते और बिना किसी सूचना के वे लोग हमारा विनाश करते थे।

अपनी बातो मे उन लोगो ने बताया कि उन दिनो मे युद्ध के बादल बने ही रहते थे और किसी भी समय लूटमार का खतरा पैदा हो जाता था। उन्होने यह भी बताया कि हमारे महाराणा पर आक्रमण करने के लिये किस प्रकार तुर्क लोग आये थे और उन मौको पर हमारे पूर्वजो ने किस प्रकार राणा का साथ दिया था। अपनी इन कथाओ को वे बड़ी श्रद्धा के साथ बयान करते थे और मैं बड़ी उत्सुकता के साथ उनको सुनता था।

मेरे डेरे मे बैठे हुये लोगो ने एक घने जङ्गल की तरफ सकेत किया और बताया कि अपने शत्रुओ से दुखी होने पर प्राणो की रक्षा के लिए राणा प्रताप इसी जङ्गल मे आकर शरण लिया करते थे। जहाँपर वे शरण लेते थे, उस स्थान को लोगो ने राणा-पाज अर्थात् राणा के पद-चिह्न का नाम दे रखा है। उस समय की घटनाओ का वर्णन लोगो ने बडे प्रेम से किया और मैंने भी बडी उत्सुकता के साथ सुना। इन लोगो ने अपने धनुष और बाणो के बनाने के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की बातें सुनायी। उनकी इन रोचक कथाओ को सुनने मे बहुत-सा समय बीत गया और उस समय मालूम नही पड़ा। यहाँ के पहाडी सरदारो की पोशाक मैदानो और जङ्गलो मे रहने वालो से बहुत कुछ भिन्न है।

मेरे डेरे मे जब दशागोह का सरदार आया तो उसे देखकर मैं प्राचीन ग्रीक के सरदारो की कल्पना करने लगा। उसकी छाती और बाहे खुली थी और एक चद्दर उसके बाये कन्धे पर गाँठ से बँधी हुई थी। उसकी कमर मे जो कपडा लिपटा हुआ था, उसको देखकर घाघरे की याद आती थी। उसके हाथ में धनुष था और तरकश उसके कन्धे पर लटक रहे थे। पहाडी लोगो की पोशाक कुछ इसी प्रकार की होती है। सिरोही तक मैंने इसी पोशाक मे सरदारो को देखा है। पोशाक के सम्बन्ध मे कुछ लोगो ने परिवर्तन भी किये हैं। वे लोग अपने ढीले पाजामे पर इस प्रकार के कपडे पहनते हैं। उनके इस प्रकार के परिवर्तन उनकी पुरानी पोशाको से अधिक भिन्न नही है।

यहाँ के लोगो के गाँवो की बहुत-सी बाते कुछ विशेषता रखती हैं। उनकी पोशाको की तरह उनके गाँव भी कुछ दूसरी तरह के पाये जाते हैं। उनके मकान कुछ

गोलाकार होते हैं। उन पर (छप्पर) बाँस की लकड़ीकी छतें होती हैं। गाँव के भीतर मकानों के साथ-साथ प्रायः नीम के पेड देखने को मिलते हैं। उनकी घनी छाया बडी सुहावनी मालूम होती है। पजारो जैसे अनेक स्थानो में कुछ दृश्य अपनी महानता का परिचय देते है। लेकिन ऐसे स्थान अधिक नही हैं।

जब मैं उस तरफ से निकला तो वहाँ के एक अन्धे सरदार को मिलाने के लिये लोग मेरे पास लाये। उसको देखकर मैंने इस बात का अनुभव किया कि खूँखार धर्मान्ध मुसलमानो के मुकाबले मे राजपूत कितने सहनशील होते है। मुससमानो ने आक्रमण करके और इस क्षेत्र को जीत कर विजय के स्मारक स्वरूप एक विशाल ईद-गाह बनवाई है जो अब तक सुरक्षित बनी हुई है और पजारो का मशहूर मन्दिर उस आक्रमण के दिनो मे जो तोडा गया था, वह आज भी उस आक्रमण की स्मृतियो का स्मरण दिलाता है।

आज के दिन का मेरा दूसरा कार्य बनास नदी के निकास को खोजने के सम्बन्ध मे था। यह नदी अपनी विशालता और उपयोगिता के लिये यहाँ पर बहुत प्रसिद्ध है। मैं उसके निकास स्थान को देखना चाहता था। उससे कितनी ही बातो की मुझको जानकारी होती। मैंने उसकी खोज के सम्बन्ध मे बहुत-सा भ्रमण किया। चम्बल नदी में उसके सङ्गम के स्थान की तलाश की। वह स्थान मेरे मुकाम से दक्षिण-पश्चिम की तरफ लगभग पाँच मील के फासिले पर पठार के सबसे ऊँचे भाग पर था। कितने ही झरनो का जल वहाँ आकर मिल जाता है। यहाँ के राजपूतों की पोशाक और उनका तर्ज-अमल बहुत-कुछ गाल (१) लोगो से मिलता जुलता है।

४ जून—सवेरे के दस बजे थर्मामीटर ८६° पर और बैरोमीटर २८° १२ पर था। दिन के एक बजे थर्मामीर ९३° पर और बैरोमीटर २८°६ पर एवम् शाम को ६ बजे थर्मामीटर ९२° पर और बैरोमीटर २८° पर था।

आज प्रातःकाल हमने अपनी यात्रा अरावली की पश्चिमी भूमि पर आरम्भ की। वह क्षेत्र मरुभूमि के मैदानो की तरफ चला गया है। जहाँ से ढालू स्थान आरम्भ होता है, वहाँ से नाल (२)—जिसमे मोड नही के बराबर है—पूरी २२ मील की

(१) फ्रास की एक प्राचीन जाति का नाम।

(२) नाला शब्द आमतौर से पहाडी झरने के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। यह नाल अथवा नाला घाटी से निकला है। इसलिये कि झरना पहाड़ी प्रदेश मे होकर आगे बढने के लिये कोई न कोई रास्ता खोज लेता है। नाल शब्द का अर्थ नली भी है। उसी से नाल गोला बना है जो पुराने जमाने की हाथ-बन्दूक तोडा के काम में आता है। यानी किसी प्रकार से नली मे से फेकी, गई गोली। इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग भारत के सैनिक कवि अधिक करते रहे है। कदाचित् उन दिनो मे इस प्रकार के अस्त्र इस देश में बनने लगे थे और उन अस्त्रो का प्रयोग लड़ाइयो मे किया जाता था।

लम्बाई मे है और कुम्भलमेर की उससे और भी अधिक कठिन है। उसके द्वारा पिछले वर्ष हमने मारवाड मे प्रवेश किया था। वहाँ जाने में जो कष्ट उठाना पड़ा था, वह साधारण न था। फिर भी उसकी कठिनाइयाँ इसलिये नही खलती थी कि मार्ग की विचित्र घटनाएँ और उनके दृश्य एक नया प्रोत्साहन देते थे।

इस रास्ते मे यात्रा करते हुये यदि बीच मे मुकाम न किया जाय तो यात्रा करने वाले आदमियो और उनके साथ के पशुओ—दोनो को महान कष्ट हो सकता है। इसलिये मैंने बीच मे मुकाम करने का निश्चय किया और इस ख्याल से यात्रा करता रहा कि कोई उपयोगी स्थान मुकाम करने के लिये मिल जावे तो वहाँ पर रुककर विश्राम किया जाय। चलते हुये एक साफ पानी के झरने के करीव, बनास के निक— से कुछ फासले पर एक स्थान मिला, जो विश्राम करने के लिये साधारणतया अच्छ था। इसलिये वहाँ पर ठहर गया। वह झरना बनास के निकास के करीव से निक कर पहाड के पश्चिमी ढाल की तरफ बहकर मारवाड प्रदेश मे होता हुआ जालोर पास खारी नदी मे मिल जाता है।

यह रास्ता कही-कही पर चौडा हो गया है। लेकिन पूरी घाटी का रास इतना तङ्ग है कि उसको एक नाला ही कहना चाहिये। इसलिये कि यह रास्ता मील की लम्बाई में एक स्थान पर इतना तङ्ग हो जाता है कि थोडे से आदमी शत्रु मुकाबिला कर सकते हैं। इसलिये कि इस तङ्ग रास्ते में शत्रु की विशाल सना आक्रमण करने का कोई भय नही हो सकता। कुछ इसी आधार पर हमको आसानी साथ इस बात का पता चल जाता है कि यहाँ के राणा आक्रमणकारी मुसलमानो कैसे दीर्घ-काल तक सामना करते रहे होंगे।

यहाँ के सभी दृश्य आकर्षक और महान थे। उनकी प्रियता और सुन्दर को वे सभी प्रशसा करेंगे, जो प्रकृति के प्रेमी हैं। यहाँ पर मनुष्य के विकारो स्थान नही मिलता। उनके लिये यहाँ कोई अवसर नही है। पृथ्वी की शान्ति, आका की निर्मलता, घने वृक्षो की शीतलता, प्रकृति की पवित्रता और नीरवता—सभी कु यहाँ पर था। सूर्य का सुन्दर प्रकाश, प्राण-पद वायु, पक्षियो के मीठे स्वर जीवन एक नई हलचल पैदा करते हैं। यहाँ के फूलो का सौन्दर्य और उनकी सुगन्धि कि मोहित नही कर सकती। सारा क्षेत्र विभिन्न प्रकार के वृक्षो से भरा हुआ है। उन पैदा होने वाले मधुर फल प्रकृति की उदारता का अद्भुत परिचय देते हैं। यहाँ जीवन मे किसी का शासन नही है, किसी का कोई बन्धन भी नही है। प्रकृति स्व सब को शिक्षा देती है। काम्बीर और कानोआ के लाल और सफेद फूलो के गुच्छे बड़े लुभावने मालूम होते थे। वे देखने में बकाइन की तरह लगते थे। झरने के आस-पास की भूमि विभिन्न प्रकार के वृक्षो से घिरी हुई थी। वहाँ पर एरण्ड के बहुत से वृक्ष भी थे। सरपतो की लहराती हुई पत्तियाँ मानो आगन्तुको का अभिवादन कर रही थी।

इस प्रकार के पेड़ो और पौधो के सिवा दूसरे वृक्षो की सख्या इतनी अधिक थी, जिनके परिचय एक बडा स्थान चाहते हैं। बहुतो के नामो का जानना ही एक बडा काम हो जाता है। यहाँ के विभिन्न प्रकार के फलो मे आड़ू-बादाम (१) के अतिरिक्त अजीर जिसके फल टहनियो में न लगकर डठलो मे लगा करते हैं, शरीफा, खतूम, रायगुडा, जिसको ल्हेपवा भी कहा जाता है, उसका फल लसदार और सुपारी की तरह का होता है, इनके सिवा टेरडू अथवा कोविदार के फल हैं। ये सभी फल यहाँ पर अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

उस पहाड़ो क्षेत्र में और भी बहुत से दृश्य देखने को हमे मिले, जिनको विस्तार के भय से लिखना आवश्यक नही मालूम होता। फिर भी, कुछ चीजो पर प्रकाश डालना आवश्यक हो गया हैं। फूलो की इस पहाडी क्षेत्र में अधिकता होने के कारण जो शहद यहाँ पर मिलता हैं, वह बरबान (२) और नरबान (३) द्वीप के शहद से अधिक अच्छा होता है। इन दोनो स्थानो के शहद को मैंने खाया है। बरबान का शहद मैंने झरने के मुहाने पर खाया था और नरबान का शहद तो द्वीप से आया हुआ बिल्कुल ताजा था (४)।

---

(१) वनस्पति शास्त्र के कुछ जानकार आड़ू को उगाया हुआ बादाम मानते हैं, उनका यह कहना कहाँ तक सही है, यह नही कहा जा सकता। लेकिन इस फल के सम्बन्ध में दो राये जरूर हैं।

(२) फ्रांस के बीच मे विशी के समीप। यहाँ के एक परिवार मे से राज्य करने के लिये फ्रांस के सिंहासन पर बैठा करते थे।

(३) फ्रांस के दक्षिण में एक द्वीप।

(४) मेरे पास अब भी अरावलो का कुछ शहद है। वह दस वर्ष का पुराना हो चुका है। लेकिन उसकी मूल सुगन्ध मे अब तक कोई अन्तर नही आया। इसका बहुत कुछ कारण कदाचित यह है कि उसको आँच पर (आग पर) रखकर पकाया नही गया। केले के बड़े-बडे पत्तो को टोकरियो पर रखकर उस शहद को निकाला गया था और उसके बाद उस शहद को बोतलों मे भरकर उनमें डाट लगा दी गई थी। मैं अपने साथ बीस बोतले इंगलैण्ड लाया था और उनको अपने मित्रो मे बाँट दिया था। हमारे उन सभी मित्रो ने स्वीकार किया कि मेरा दिया शहद योरप के सभी प्रकार के शहदो से उत्तम है। हम जो शहद ले गये थे, उसमे दो किस्मो का शहद था। पहाडी के ऊपर जो शहद लिया गया था, उसमें कोई रङ्ग नही था। परन्तु आम के बगीचो से लिये हुये शहद का रङ्ग कुछ भूरे रङ्ग का था।

समूचा दिन पूछने और बताने मे बीत गया। उन बातो के सम्बन्ध में उत्सुकता इतनी अधिक थी कि दिन व्यतीत होने मे देर न लगी। मित्रो के साथ होने के कारण जो दृश्य देखने को मिले, उनकी रोचकता और सुन्दरता अधिक हो गई थी। रात का समय आने के पहले ही मैंने उन लोगों को घर जाने के लिये विदाई दी। उन सबके जाने के समय मैंने उनको आवश्वासन दिया कि उनके सम्बन्ध मे मैं राणा को लिखूंगा। उन लोगो ने यह शिकायत की थी कि हम लोगो की सेवाएँ और स्वामि-भक्ति को जानने और समझने के बाद भी, लगान वसूल करने के लिये सम्बन्धित मन्त्री, वसूल करने वाले प्यादो को भेज देता है।

तीसरा प्रकरण

परम्परायें और अन्ध-विश्वास

राजपूतों की कर्त्तव्य परायणता—पुराने जमाने के सघर्षों की कथाएँ—भीलो की स्वतन्त्र जाति—अशिक्षितो मे शिष्टाचार की अधिकता—सङ्कट के समय भीलो के द्वारा राणा की सहायता—भीलो का सङ्गठन और उनकी जुम्मेदारी—मनुष्यो और देवताओ के भोजन—भारत की आदिवासी जातियाँ—मनुष्य जाति की उत्पत्ति—पतन का कारण गरीबी और अत्याचार—अपराधों की क्षमा कानून की उपेक्षा है।

५ जून—बीजीपुर अथवा बीजापुर—रात मे किसी प्रकार का खतरा नही हुआ, न तो जङ्गली जानवरों से और न आदमियो से। लेकिन रवाना होने के लिये जब मैं आदेश देने के अभिप्राय से बाहर निकला तो मैने अपने विश्वस्त और सशस्त्र राजपूतो को रात को जलाई गई आग के पास खडे देखा। मैं वडे विस्मय में पड़ गया। वे राजपूत सारी रात जागकर और आग के सहारे रहकर भीलो, रीछो तथा दूसरे जानवरो से हमारी रक्षा करते रहे और मैं आराम से सोता रहा। वे राजपूत कल शाम को विदा होकर अपने अपने गाँव नही गये थे। यह देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मैं नही समझ सका था कि उनके यहाँ से न जाने का कारण क्या है, मैंने जब इस विषय मे उन लोगो से पूछा तो वे सभी एक साथ बोल उठे—"ओ महाराजा, आपने हम लोगो के साथ जो उपकार किया है, उसके बदले में क्या हम लोगो का यह कर्त्तब्य नही है कि सङ्कट और खतरे के समय हम आपके जानोमाल की हिफाजत करे और आपको किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने दे। हमारी यह अन्तिम सेवा हैं। इसे हम लोग अपनी तरफ से कहते हैं, आपकी तरफ से अथवा किसी दूसरे की तरफ से नही। यह हमारा कर्त्तव्य है, जिसे पूरा करके हम लोग सन्तोष प्राप्त करेगे।"

उन राजपूतो की बातों को सुनकर मैं अवाक रह गया। कुछ देर तक उन राजपूतो की तरफ देखकर मैं सोचने लगा—यह है भारत के राजपूतो की कृतज्ञता। क्या अब भी कोई इसे महत्व न देगा। इन राजपूतो का यह एक चरित्र बल है, जिसकी कीमत नही अदा की जा सकती। यहाँ के लोगो की इस कृतज्ञता को मैं बहुत पहले से जानता हूँ। इसमे सन्देह करने की कोई गुञ्जाइश नही है। जिस जाति मे और जिस जाति के लोगो मे कृतज्ञता की यह भावना है, निश्चय ही वह एक श्रेष्ठ जाति है और उसकी यह भावना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि वह किसी समय अपने नैतिक

चरित्र के लिए बहुत प्रसिद्ध रही है । जो मेहमान एक विदेशी है और जो कुछ घन्टो के बाद विदा होकर लौटकर नही आवेगा, उसके प्रति इतनी श्रद्धा की और कृतज्ञता ! चरित्र का इतना अच्छा उदाहरण जल्दी न मिलेगा ।

इस विषय मे मैं अब अधिक न लिखूंगा । रवाना होने के लिये मैं तैयार हुआ । उपस्थित धनवानो और किसानो ने गम्भीर होकर मेरे प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की । मैंने उन सब के व्यवहारों को प्रशसा की । इसके बाद प्रणाम और अभिवादन करता हुआ मैं उन सभी से विदा हुआ ।

अब मैं उस घाटी का बचा हुआ रास्ता पार करने के लिये आगे बढा और चलता हुआ मरुभूमि के जलते हुये मैदानो मे पहुँच गया ।

कल की घाटी के द्वार पर नायन माता नामक देवी की एक भद्दी सी मूर्ति देखी । कुछ देर के बाद जब हम और आगे बढे तो एक ऐसे नाले पर पहुँच गये, जो नाल की गरदन के समान मालूम होता है और वही से दूसरी नाल आरम्भ हो जाती है, अथवा यह कहा जाय कि इन जङ्गली स्थानो को जो बहुत से नाम दिये गये हैं, उनमे से एक दूसरा नाम सामने आता है । यहाँ का शेष भाग शीतला माता के नाम से प्रसिद्ध है । वह शीतला माता बच्चो को शीतला अथवा चेचक की बीमारी मे रक्षा करती है । इस प्रकार की बातें वहाँ पर लोगो ने मुझे बतायी ।

हम इस स्थान पर सवेरे नौ बजे पहुँचे, जब थर्मामीटर ८२° पर और बैरोमीटर २८°२५ पर था । हम थोडा सा और आगे की तरफ बढे । वहाँ पर घाटी की चौडाई बहुत तङ्ग हो गई है और कुछ दूर तो यह क्षितिज से ४५° का ही कोण बनाती है । वहाँ की जमीन ऊँची-नीची और बहुत खराब हालत मे है । यहाँ पर हाथी और ऊंट वालो को बहुत सम्हाल कर चलना पडता है । अगर वे ऐसा न करे तो उनको पेडो की डालियो से टकरा जाने का पूरा अन्देशा है और ऐसा होने पर उन पर जो सामान लदा हुआ हो, उसको भी नुकसान पहुँच सकता है ।

यहाँ पर हमने पत्थरो से बने हुये एक चबूतरे को देखा । यह चबूतरा पुजारो के भतीजे का स्मारक था, जो ऊटवण के मीणो के द्वारा जख्मी जानवरो को छुडाते हुये मारा गया था । वे लोग आक्रमण करने वालो से बचने के लिए नाल का रास्ता छोडकर बायी तरफ के जङ्गलो मे घूमकर घाटी को मुडी हुई दूसरी शाखा के मुँह पर पहुँच गये थे । उनका ख्याल था कि ऐसा करने से वे हमलावरो से बच जायँगे । उन्होंने इस समय जिस साहस और बुद्धि से काम लिया, उसमे उनको किसी हद तक सफलता भी मिली ।

उस घाटी से इस शाखा के मोड पर एक गहरी ढाल है, जिसकी निचाई बीस फीट की है और यह ढाल बिल्कुल खडी है । उस ढाल मे एक बरसाती नाले ने अपना एक रास्ता बना लिया है । इसी रास्ते मे पहुँच कर उन लोगो ने अपनी रक्षा का

विश्वाम किया था। भेड वाली कहावत यहाँ के पहाड़ी जानवरो पर पूरे तौर पर घटित होती है। यहाँ के जानवर घाडो के बछेड़ो की तरह उछलते और कूदते फांदते हुए चलते हैं। भेडो की तरह उनमे भी यह आदत पाई जाती हे कि उनमे एक जिघर चल देता है, उसी तरफ सभी चले जाते हैं।

वहाँ के पशुओ की इस आदत को मीणा लोग जानते थे। इसलिए वे लोग चट्टान पर पहुँच गये और उन पशुओ में जो आगे आया, उसको डराडा मार कर गिरा दिया। उसके बाद एक-एक करके शेष पशुओ का उस स्थान पर आना आरम्भ हुआ। मीणा लोगो ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। लेकिन उनकी पराजय हुई। उस सङ्घर्ष में दोनो तरफ के कुछ आदमो मारे गये। उनमे पुजारो (१) का भतीजा भी मारा गया। उसके कुछ सम्बन्धो मुझे घाटी तक पहुँचाने आये थे।

पुराने जमाने के यहाँ के सङ्घर्षों और झगडो से भरे हुये उपाख्यान उन लोगों के बडे काम के हैं, जो उनके सुनने और जानने के शौकोन है। उनके सम्बन्ध मे यहाँ के लाग अगणित कहानियाँ और घटनाएँ सुनाते हैं, इन घटनाओ को और भी अधिक सख्या मे और विस्तार के साथ मैं यहाँ पर बयान करता, लेकिन ऐसा करके मैं पाठकों के धैर्य की परीक्षा नही लेना चाहता। मै यह भी जानता था कि उनके पास इन घटनाओ को विस्तार मे पढ़ने के लिये कदाचित समय न होगा। इसलिए मैं अधिक विस्तार में नही जा सका और मै ऊटवण के मीणा लोगो के द्वारा होने वाले अरा-

(१) पुजारो शब्द पुजारा अथवा पुजारो का अङ्गरेजी रूपान्तर मालूम होता है। यह शब्द भीलो और इस प्रकार अन्य पहाडी जातियो के गुरू ब्राह्मणो का परिचय देता है। उन जातियो में नियोग की प्रथा प्रचलित होने के कारण उनको ऊँचे ब्राह्मणों मे नही माना जाता। मेवाड़ के कुम्भलगढ़, सेवन्त्री, सायरा और जरगा के पहाडी इलाको मे इन लोगो की आबादी अधिक पायी जाती है। इसी आधार पर दस्साणा भी किसी स्थान का नाम है, बल्कि दसाणा अथवा दस्साणा नामक निम्न श्रेणी के क्षत्रियो की एक शाखा है। उस शाखा के लोग उपरोक्त इलाको में पाये जाते है। उन लोगो को मेवाड़ मे दहाणा अथवा दुसाना कहते है। इन लोगो मे भी नियोग की प्रथा का प्रचलन है। इन जातियो के लोग अब खेती करते हैं।

इस प्रकार की सूचनायें भेजने के सम्बन्ध मे मैं अपने मित्र श्री ब्रजमोहन जावलिया एम० ए० का बहुत कृतज्ञ हूँ।

ठाकुर बहादुरसिंह पट्टेदार बीदासार ने क्षत्रिय जाति की नामावली (श्री ज्ञान सागर प्रेस बम्बई १९७४ विक्रम) के १२२ पृष्ठ पर दुस्साना जाति के जेनगढ़ से खुमाण के साथ चित्तौर मे आने का वर्णन किया है।

वली की गोशालाओ पर आक्रमणो के सम्बन्ध मे अधिक रोचक विवरण लिखता और ओगणा, पानरवा, तथा मेरपुर के सभ्य लोगो से मिलकर छप्पन (१) के भीलो के आक्रमणो का वर्णन करता, लेकिन मैं जानता हूँ कि मीणो का सक्षिप्त इतिहास (२) स्वय काफी स्थान ले लेगा और भीलो (३) के सम्बन्ध मे पहले ही पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। फिर भी यहाँ के स्थानो का वर्णन करते हुये मैंने भील जाति के सम्बन्ध मे आवश्यकतानुसार कुछ प्रकाश डाला है और जो कुछ लिखा है, उनके रहन-सहन, रस्मो रिवाज और अन्य व्यवहारो के सम्बन्ध मे, वह बहुत मनोरञ्जक है। मैं पहले लिख चुका हूँ कि मेरा निश्चय इन गाँवो से होते हुए आबू जाने का था। परन्तु मेरे उस इरादे मे कुछ परिवर्तन हो गया है और मैं समझता हूँ कि अब जो रास्ता मैंने चुना है, उसके वर्णन अधिक दिलचस्प साबित होंगे।

मैं भीलो को स्वतन्त्र मानता हूँ और उनके साथ मेरे इस शब्द के प्रयोग का अर्थ भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से है। ऊँचे पहाडो से आवृत घाटियो और घने जङ्गलो मे वे अपनी सैनिक टोलियां बनाकर स्वतन्त्रता का जीवन व्यतीत करते हैं। उनके रहने के स्थान कुछ ऐसे दुर्ग के रूप मे हैं, जहाँ पर शत्रुओ के आक्रमण आसानी से नही हो सकते।

इन भीलो का अपना एक सरदार होता है और भील लोग उसी के शासन मे काम करते हैं। ये सरदार लोग अपनी घाटियो की रक्षा के लिये जब भीलो को एकत्रित करते है तो एक एक भील के नेतृत्व मे धनुष वाण लिए हुए पन्द्रह-पन्द्रह हजार भील इकट्ठा हो जाते हैं। इनके सङ्गठन वश अथवा बिरादरी के नाम पर चलते हैं। और उनके गांवो के नाम भी कुछ इसी आधार पर जैसे पानरवा, ओगणा, जूडा, मेरपुर, जवास, सुमाइजा, मादड़ो, ओजा, आदिवास, बरोठी, नवागांव आदि हैं। इन भीलो के प्रमुख लोग अपनी उत्पत्ति अपना वश और रक्त राजपूतो से बतलाते हैं।

पानरवा का सरदार इन सब लोगो का अधिकारी माना जाता है और दशहरे के सैनिक त्यौहार पर सभी लोग उसके यहाँ उपस्थित होते हैं। वह सरदार राणा का ऊंचा पद धारण करता है। उसके अधिकार मे छोटे और बडे मिलाकर बारह सौ गांव होते है। इनमे कुछ तो इतने छोटे हैं कि उनका दायरा एक बडी घाटी मे कुछ भीलो के

---

(१) दक्षिणी मेवाड का भीलो का प्रदेश।

(२) मैं इसको "ट्रान्जेक्सन्स आफ दी रायल सोसायटी" के लिये एक निबन्ध के रूप मे तैयार करना चाहता हूँ।

(३) इस जाति के अधिक विवरण के लिये "ट्रान्जेक्सन्स आफ दि रायल ऐशियाटिक सोसाइटी" भाग (१) पेज ६५ मे स्वर्गीय सर जान मेलकम का लेख पढना चाहिये।

भीतर रह जाता है। उनके यहाँ की भूमि मे गेहूँ, चना, मूंग-मोठ, रतालू, हल्दी, खाने के योग्य कन्द, अरबी, जो जेरूसलम के चुकन्दर की तरह का होता है, अधिक मात्रा मे बोया जाता है।

यहाँ के निवासी लोग अपनी पैदावार का जो हिस्सा अधिक समझते है, पड़ोसी रियासतो को भेज देते हैं। आडू और अनार जो इन पहाड़ियो की खास चीजे हैं, ओगणा और पानरवा में अधिक पैदा होती हैं। ओगणा का सरदार—जिसका नाम लालसिह है—पद मे दूसरी श्रेणी का माना जाता है। उसकी पदवी रावल है और वह अपने आपको पानरवा की अधीनता मे मानता है। उसके इलाके मे छोटे-बडे साठ गाँव हैं। ओगणा—जो पानरवा के बीस मील के फासले पर है—छोटा नाथद्वारा कहलाता है और वह मेरपुर की तरह सम्पन्न माना जाता है। गोगुन्दा सरदार के द्वारा निकला हुआ मुखिया ओगणा के मोमियाँ भील के यहाँ उसी पद पर मौजूद है। यहाँ के लोग मोमियाँ शब्द के प्रयोग को अधिक महत्व देते है। इसलिये कि उसके साथ भूमि का सम्पर्क है और उस शब्द से भूमि का एक स्वामीत्व प्रकट होता है।

पानरवा के राणा का एक छोटा-सा दरबार है। उस दरबार मे राणा के दरबार की अनेक बातो में नकल की गयी है। मुझे लोगो ने बताया है कि इस दरबार में शिष्टाचार को अधिक महत्व दिया जाता है और यहाँ का राणा भी अपने अधीनस्थ दरबारी लोगो के साथ उसी प्रकार का सम्मान प्रकट करता है, जिस प्रकार अपने यहाँ महाराणा प्रदर्शन करते हैं।

पानरवा, ओगणा और दूसरे अधीन सरदार अपना वंश और रक्त परमार राजपूतो से बताते हैं। वे लोग जूडा-मेरपुर, जवास, और मादडी के भूमिया लोगो के यहाँ अपने सम्बन्ध करते हैं और वे लोग अपने आपको चौहान राजपूतो की शाखा मानते हैं। जूडा और मेरपुर दो अलग-अलग स्थान हैं और दोनो के बीच मे पाँच मील का फासला है। लेकिन दोनो के नाम साथ-साथ लिये जाते हैं। ये दोनो स्थान नादर नाम के क्षेत्र में है। वह क्षेत्र ईडर की सीमा से मिला हुआ है। उसमे नौ सौ से अधिक झोपड़ियाँ है। जब मैंने सैमूर मे मुकाम किया था, तो वहाँ मालूम हुआ था कि जूड़ा उस मुकाम से केवल बारह मील के फासले पर है और ओगुणा उसके आगे आठ मील पर है। वहाँ जाने का रास्ता एक भीषण जङ्गल से था जो सङ्कटो से भरा हुआ था। गोगुन्दा से भी ओगणा लगभग उतनी ही दूर था।

वही कुछ फासले पर राणा जी की सीमा के करीब सूरजगढ़ की एक चौकी थी। वह चौकी या तो इन स्वतन्त्र निवासियो को नियन्त्रण मे रखने के लिये कायम की गई थी, अथवा आवश्यकता पड़ने पर सहायता लेने के लिये। उस चौकी मे एक दस्ता फौजी सिपाही बराबर रहा करते थे। प्राचीन काल मे पहाडो के निवासी भील लोग महाराणा के अनुशासन मे रहते थे। मुगल सेनाओ के आक्रमण करने पर इन

भीलो ने राणा की वहुत बडी सहायता की थी। उनकी उन सेवाओ का ही यह फल था कि इन भीलो की आजादी को कभी आघात नही पहुँचाया गया। एक बात और भी है, उन पर आक्रमण करना किसी प्रकार खतरे से खाली नही था। एक बार की घटना है, उदयपुर और ओगणा के वीच की सीमा-चौकी पर जीरोल के ठाकुर और ओगणा के भीलो मे झगडा हो गया। उस संघर्ष के बढने मे देर न लगी। जोधराम की तरफ से वहुत से सैनिक सवार उस चौकी पर पहुँच गये और उनका मुकाबिला करने के लिये धनुप-वाण लिये हुए हजारो भील वहाँ पर एकत्रित हुए। उस मौके पर केवल पच्चीस राजपूत सैनिको ने हजारो भीलो पर आक्रमण किया और कुछ देर की मार-काट के बाद राजपूतो ने भीलो को पराजित किया। वहुत-से भील मारे गये और जो बचे, वे भाग गये।

राजपूतो ने भीलो के गांवो मे जाकर लूट मार की और उनका बारह हजार का माल अपने साथ ले आये। हजारो भीलो को पराजित करने के लिये केवल पच्चीस राजपूत सैनिक काफी साबित हुए और भीलो की वह भीड उनका सामना न कर सकी।

खरड अथवा खरक नामक एक दूसरा क्षेत्र है। उसकी राजधानी जवास है। उस क्षेत्र की सीमाये डूंगरपुर और सनुम्बर की सीमाओ से मिली हुई है। यहाँ के ठाकुरो और इस क्षेत्र के निवासियो मे हमेशा झगडा रहता है। उनके बीच की शत्रुता बहुत दिनो से चली आ रही है। उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थिति आक्रमणकारियो के लिये अनुकूल नही थी। ऊँची पहाडियो पर बसे हुए उन लोगो के गांवो और निवास स्थान इस प्रकार जङ्गलो से घिरे हुए हैं, जिनमे शत्रु का प्रवेश नही हो सकता। यही कारण है कि जिन लोगो ने सेनाये लेकर उनके विरुद्ध आक्रमण किया था, वे सफल नही हो सके। अगर उन लोगो पर एकाएक आक्रमण किया जाय और वह आक्रमण उनके स्थानो से कही बाहर हो तो आक्रमणकारी काफी मारे जायँगे।

घाटी के रास्ते मे यदि कोई पेड काटने का साहस करता है तो समझ लेना चाहिए कि उसकी मृत्यु उसके सिर पर मंडरा रही है। आग के अस्त्र केवल गाँवो के ठाकुरो और सरदारो के द्वारा ही प्रयोग मे लाये जा सकते हैं। उनका जातीय शस्त्र बाँस का बना हुआ धनुष होता है, उसको वे लोग कुम्प्टा कहते हैं। ये लोग बिना धनुप-वाण के कभी बाहर नही निकलते और अपनी उत्पत्ति राजपूतो से मानते हैं। उनकी बहुत-सी बाते चौहानो, गहलोत ठाकुरो और परमार राजपूतो से मिलती-जुलती हैं। इसीलिये वे लोग अपने को चौहान-भील, गहलोत-भील और परमार-भील कहते हैं।

इन लोगो को उत्पत्ति की ठीक-ठीक जानकारी तो उन देवताओ से होती है, जिनकी वे पूजा करते हैं और उनके उन भोजन के पदार्थों से भी होती है, जिनका उनमे प्रचलन है। ये लोग स्वेत रङ्ग की कोई भी चीज नही खाते। सफेद भेड और सफेद

बकरी अथवा सफेद मेढ़े इन लोगो की प्रसिद्ध शपथ होती है। इन बातो को इनमे से वही लोग मानते है, जो अपने आपको शुद्ध भील कहते हैं। लेकिन उनकी शुद्धता को समझने की यदि चेष्टा की जाय तो हमारा ख्याल है कि उनमे से बहुत थोडी संख्या में लोग निकलेगे, जो शुद्ध भील कहे जा सके।

सही बात यह है कि ये भील लोग अब भी सभ्य कहलाने के अधिकारी नही है। उनके जीवन का अध्ययन करने के बाद उन्हे अर्ध सभ्य ही कहा जा सकता है। उनकी पुरानी परम्परायें और उनके अन्धविश्वास उनको जिन्दगी के सही रूप को जानने नही देते। वे यहाँ के आदिवासी हैं और माने भी जाते है। उनकी भाषा, रहन-सहन और आदते उनके पुराने होने का सच्चा प्रमाण देती हैं। इन भीलो की भाषा के बहुत-से शब्द संस्कृत के शब्दो से मिलते-जुलते हैं। वे संस्कृत नही बोलते, जानते भी नही। लेकिन उनकी भाषा के बहुत-से शब्द सस्कृत से निकले हैं और उनकी भाषा में अब उनका रूप बिगड गया हैं। लेकिन वे अपने हिसाब से उन शब्दो का उच्चारण स्पष्ट करते है। इन सब बातो के सम्बन्ध में मेरा इस प्रकार उल्लेख, मेरी खोज की अपेक्षा, उनके पडोसियो के वर्णन पर अधिक आधारित और आश्रित है।

भील लोगो की बोली अन्य जाति वालो से कुछ भिन्न है। मैं उसका केवल अध्ययन ही नही करना चाहता था, बल्कि उन्ही की तरह उसको बोलना और समझना चाहता था। परन्तु मैं ऐसा कर नही सका। इसका मुझे दुख है, यदि मैं ऊपर लिखी हुई आबादो मे जा सकता और अपनी खोज का काम वही पूरा करता तो निश्चित रूप से अनेक बातो मे अपनी इच्छा के अनुसार सफलता प्राप्त करता। वहाँ जाकर मैं उनके घरो पर जाता और उनकी सजावट देखता, चित्रकारी को समझने की कोशिश करता। उनके घरो की दीवारो पर मेढे और घोड़ो के चित्रित चित्र लारेस और पिनेट्स (१) के स्मरण दिलाते हैं। मैं भली प्रकार उनके विषय मे अध्ययन कर सकता।

इस प्रकार की खोजो से उनकी जिज्ञासा की पूर्ति अधिक हो सकेगी, जो प्राकृतिक जीवन का प्रत्यक्ष अध्ययन करना चाहते हैं। जो इस प्रकार के रहस्यो को जानने के इच्छुक है, उनको यह जानकर और सुनकर आश्चर्य होगा कि एक पुरानी कहावत के अनुसार दो अन्तो का मिलन होता है। इन असभ्य परिवारो मे दो चीजे देखने को मिलेगी, प्रकृति का सही जीवन और असभ्यता तथा अशिक्षा जो आज के ससार की शिक्षा और सभ्यता भीलो के इन परिवारो मे नही है। लेकिन जीवन का सत्य और अतिथि सत्कार अपनी पराकाष्ठा मे उनके यहाँ देखने को मिलता है। जीवन के इन

---

(१) रोमन लोगो के देवता, जिनके चित्र वे अपने घरो को दीवारो पर बनाया करते थे।

सच्चे गुणो का योरप के जीवन मे अभाव हो गया है और धीरे-धीरे, जो कुछ रह गया है, उसका भी लोप होता जाता है।

इन भीलो के जीवन का अध्ययन करने के बाद आज की सभ्यता का एक प्रेमी उनकी अवहेलना कर सकता हैं। इसलिये कि वह जिन अच्छाइयो के साथ घुल-मिल गया है, वे उसको इन प्राकृतिक परिवारो मे देखने को न मिलेगा। परन्तु उनमे जो सच्चा जीवन मिलता है। वह आज की सभ्यता के कच्चे रङ्ग मे न मिलेगा। शरणार्थी को शरण देना पहाडी और जङ्गली जातियो के ही जीवन में मिलता है। जो उनके यहाँ आ जाता है, उसका वे सभी प्रकार आदर और सत्कार ही नही करते, उसकी रक्षा और हिफाजत भी करते हैं। उस शरणार्थी की वे यहाँ तक सहायता करते हैं कि वे अपनी जान देकर उसके निकट किसी प्रकार का सङ्कट आने न देगे। मैं नही समझता कि इन गुणो से भी अच्छा कोई दूसरा गुण मनुष्य के जीवन मे हो सकता है।

जब कोई शरणार्थी यात्री उसकी घाटी का कर अदा कर देता है तो उसके जान-माल की रक्षा का भार वे लोग अपने ऊपर ले लेते हैं और यदि उसके ऊपर कोई सङ्कट आता है तो ये भील उसका मुकाबला करते हैं। इन भीलो मे किसी भी मौके के लिये उनके साकेतिक शब्द होते हैं। उन शब्दो की जानकारी सभी भीलो को होती है और आवश्यकता पडने पर वे सभी उन्ही शब्दो का प्रयोग करते हैं। अपने यात्री की रक्षा वे यहाँ तक करते हैं कि उसकी रक्षा के लिए अपनी घाटी को पार करने के लिये वे अपने आदमी देते हैं। किसी अवस्था मे जब वे आदमी नही दे सकते तो वे अपने तरकश मे का एक वाण उसको दे देते हैं और उसके कारण फिर उस पर कोई आक्रमण नही करता। ये पहाडी भील अपने शरणार्थी अथवा मेहमान की मेहमानदारी उन अफगानो की तरह नही करते, जो उनके मकानो और दरवाजो पर तो वह सुरक्षित रहता है, लेकिन जब वह उनके स्थानो से कुछ दूर निकल जाता है तो वे उसको शिकार समझकर आक्रमण करते हैं और उसको लूट लेते हैं।

अमेरिका के एक इतिहासकार का कहना है—'जो जातियाँ शिकार करने वाली होती हैं, वे प्राय धन-सग्रह करने की कला से अपरिचित होती हैं। इस प्रकार के किसी प्रदेश के रहने वालो मे कोई भी जङ्गल अथवा शिकार करने का स्थान सार्वजनिक माना जाता है।"

सभ्यता के मार्ग पर भील लोग कुछ आगे मिलते हैं। उनमे शिकार के स्थानो का आपसी विभाजन होता है। इसके सम्बन्ध में यहाँ पर मैं एक विवरण का उल्लेख करना चाहता हूँ। इस विवरण को कई वर्ष पहले मैंने तैयार कर लिया था। मेवाड और नर्वदा के निर्जन और भयानक जङ्गलो में रहने वाले भील लोग आज भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं। शराब और पके हुए मांस को छोडकर उनके जीवन मे और कोई विलासिता की चीज नही पायी जाती। ऊँचे पहाडों पर रहने वाले एस्कीमो

जाति के उन लोगो से ये भील लोग अधिक सभ्य नही होते, जो सड़ी हुई व्हेल मछली की चर्बी उसी प्रकार स्वाद से खाते हैं, जैसे भील लोग गीदड और छिपकली को पका-कर खाते हैं।

अपने आप उगने वाले जङ्गली मेवो से पहाड़ी भीलो के दस्तरखान सजे होते हैं। उनके ये फल उसी तरीके से खाने मे स्वादिष्ट होते है जैसे मराथान (१) और थर्मापली (२) के शूरवीर पूर्वज अपने मेवो को स्वादिष्ट समझते थे। लेकिन उन लोगो के रात के भोजन मे शाहबलूत अथवा जैतून के फल जो काम आते थे, उनकी अपेक्षा भीलो के आहार में अधिक और अनेक प्रकार के पदार्थों का सम्मिश्रण मिलता है, जैसे—तेदुआ, इमली, आम, जङ्गली अगूर एवम् लसदार जमीकन्द आदि।

भीलो के खाने के इन पदार्थों मे केवल उन्ही का हिस्सा नही रहता, वल्कि उनके हिस्सेदार जङ्गल मे रहने वाले अनेक प्रकार के जानवरो, रीछो और बन्दरो के अतिरिक्त वे जानवर भी होते हैं जो इन फलो और पदार्थों में अपना हिस्सा प्राप्त करते रहते है। अब मैं उस विवरण का लिखना आरम्भ करता हूँ, जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया हैं—एक भील ने अपने जमाता से कहा—सामने के ये पहाड़ मैं अपनी लड़की के दहेज मे देता हूँ। अब मैं इन पहाड़ो में खरगोश अथवा लोमड़ी नही पकड़ूँगा, वहाँ के फलो को नही तोड़ूँगा, कन्द नही लाऊँगा और ईंधन के लिये लकड़ी का प्रयोग नही करूँगा। अव ये सब चीजे तुम्हारी हैं।

उस भील ने अपने जामाता से यह बात कह तो दी। लेकिन पहाडो के रीछ अपना हिस्सा छोडने वाले न थे। एक दिन की बात है, एक भील जवान उस महुए के वृक्ष के नीचे सो गया, जो उस पहाड़ पर था। उसके पास ही एक टोकरा उसी वृक्ष के फलो से भरा हुआ रखा था जो उसने अपने परिवार के लोगो के खाने के लिये तोडे थे अथवा उनका अर्क निकालने के लिये उन्हे एकत्रित किया था। जब वह युवक सो रहा था, एक रीछ घूमता हुआ उस तरफ आ गया। उसने उस युवक भील को गहरी नीद से जगाया और उस पर उसने आक्रमण किया। रीछ ने उसको खा डालने की कोशिश

---

(१) मराथान—यूनान की राजधानी एथेन्स के उत्तर-पूर्व मे चौबीस मील के फासिले पर एक मैदान, जहाँ ४७० वर्ष ईसा से पूर्व फारस और यूनान की फौजो में भयानक युद्ध हुआ था।

(२) थर्मापली—यूनान का मशहूर दर्रा जो पूर्वी समुद्र और पहाडो के वीच उत्तर से दक्षिण की तरफ चला गया है। वहाँ पर यूनान वालो की अनेक लड़ाइयाँ हुई है। उनमे वहुत से यूनानी वीरो ने अपने जीवन को वलिदान किया है। ४८० वर्ष ईसा से पूर्व स्पार्टा के वादशाह ल्योनीडस के नेतृत्व मे ३०० ग्रीक शूर-वीरो ने फारस की सेना का डट कर मुकाबिला किया और वे सभी वहाँ पर मारे गये।

की। लेकिन वह भील युवक खून मे डूबा हुआ किसी तरह से अपने को छुडाकर वहां से भागा। उसने अपने पिता से जाकर रीछ के आक्रमण का हाल वताया। युवक का पिता अपना धनुष-वाण लेकर वेटे का वदला लेने के लिये रवाना हुआ। आक्रमणकारी रीछ उसी स्थान पर मौजूद था। उस भील ने वाण चलाकर उसे मार डाला और उसका चमडा निकलवाकर उसने अपने पडोसी सरदार को भेट मे दिया। वह भील अपने इसी सरदार की मातहाती मे था। रीछ के चमडे को भेट मे देते हुये भील ने सरदार से कहा—यह खाल उस जालिम की है, जो वन मे अपने सिवा किसी दूसरे को जिन्दा नही रखना चाहता।

मनुष्यो के साधारण भोजन मे और उनके देवताओ को दी गयी वलि मे कभी किसी प्रकार का अन्तर नही रहा। मनुष्य प्राचीन काल मे अपने देवताओ को वही चीजे अथवा उनका अश चढाता आ रहा है, जिनको वह अपने खाने के पदार्थों मे उपयोगी मानता था। पुराने जमाने मे मनुष्य अपने देवताओ पर विभिन्न प्रकार के फल और फूल चढाते थे। उन दिनो मे मनुष्य का आहार इन्ही फलो और पौधो तक ही था। लेकिन जव मनुष्य शिकार करके जानवरो को खाने लगा तो उसने उन्ही पशुओ को देवताओ पर चढाना आरम्भ किया।

मनुष्य की ये पुरानी वाते इस वात का प्रमाण देती है कि मनुष्य और देवताओ के भोजन विना किसी भिन्नता के चलते थे और मनुष्य जो स्वय खाता था, उन्ही को वह अपने देवताओ पर चढाता था। इस वात के बहुत प्रमाण हैं कि हिन्दू और अङ्गरेज अपने कुछ देवताओ को – जिनसे अनिष्ट होने का डर रहा करता था—मनुष्य का वलिदान देते थे। परन्तु इस वात के प्रमाण नही मिलते कि मनुष्य की वलि देकर वे लोग इस भोजन मे भी शामिल होते थे, फिर चाहे वे केलटिक वेलिनू (१) हो अथवा हिन्दू भक्त लोग हो।

अघोरी लोगो मे मनुष्य का आहार करने के प्रमाण मिलते है और खोजने पर उसके प्रमाण दिये जा सकते हैं। लेकिन इसको प्रथा के रूप मे नही माना जा सकता। मनुष्य, किसी समय मनुष्य का आहार करता था, इसका स्पष्ट कोई प्रमाण नही है। फिर भी जव हम अपनी खोज मे यह वात पाते हैं कि जङ्गलो मे रहने वाले शूद्र श्रेणी के लोग मल खाने वाले गीदड, जहरीली छिपकली और सडे हुए गो-मास के खाने मे परहेज नही करते थे तो उस युग में इस प्रकार के लोग अगर मनुष्य का आहार करने

(१) केल्टिक वेलिनू—आल्प पर्वत के उत्तर मे वसनेवाली जाति। पुराने लेखको ने केल्ट जाति के लोगो को लम्वे, नीली आंखो और सुन्दर वालो वाले होना अपने उल्लेखो मे स्वीकार किया है। ताम्र-युग मे ये लोग गॉल, स्पेन, इटली, ग्रीस और एशिया माइनर की तरफ आये थे।

की आदत रखते हों तो उसमें अधिक आश्चर्य की बात नहीं हो सकती।

हिन्दुओ के जीवन मे ऐसे किसी समय का अनुसन्धान नही किया जा सकता। जब उसको आग के उपयोग का ज्ञान न रहा हो। वे किसी न किसी समय इसकी उपयोगिता से परिचित हुए ही होगे, जैसा कि संसार की अन्य जातियो को होना पड़ा है। अग्नि का अविष्कार किया गया अथवा उसकी खोज की गयी, यह नही कहा जा सकता, इस प्रकार की धारणा समझ के बाहर है। इसलिये कि प्रकृति ने सम्पूर्ण पृथ्वी को आग से भर रखा है। जिसने प्रकृति के रहस्यो का अध्ययन किया है, उससे यह छिपा नही है कि आग ही जीवन है। आग ही शक्ति है। आग का अभाव मृत्यु है। जब तक हमारे शरीर मे गर्मी रहती है, उस समय तक हम जीवित रहते हैं और जब वह शरीर ठण्डा हो जाता है, उसी को मृत्यु कहते हैं। इस आग का आभास हमे चारो तरफ मिलता है। चाहे आकाश मे चमकने वाली बिजली को देखा जाय, चाहे ज्वालामुखी से उसको अनुभव किया हैं, जो पृथ्वी को फाड़कर और धरातल को तोड़कर अग्नि की वर्षा करता है। अगणित जलते हुये पानी के कुएँ पृथ्वी पर फैले हुये हैं। जो आग इतनी अधिक मात्रा मे पृथ्वी पर आरम्भ से मौजूद है, उसका किसी ने आविष्कार किया अथवा किसी ने उसकी खोज की, किसी का यह कहना समझ मे नही आता। वनस्पति और वृक्षो से लेकर पशुओ, पक्षियो, विभिन्न प्रकार के जीवो से लेकर मनुष्य की जिन्दगी तक प्राणो के रूप में यह आग ही काम करती है। सूर्य की गर्मी उस आग का ही एक अंश है, जिसकी बदौलत सभी की जिन्दगी कायम है।

इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिये हमको प्लिनी (१) और प्लूटार्क (२) के पृष्ठो को उलटने की आवश्यकता नही है। विश्व के जीवन में यह आग आरम्भ से है और आज भी वह मौजूद है। यह दूसरी बात है कि भिन्न-भिन्न जातियो ने उसको भिन्न-भिन्न रूप मे समझा और माना है। हमारा आज का इतिहास भी इस बात को मानता है कि अटलांटिक महासागर के कुछ द्वीपो मे रहने वाली और अमेरिका तथा अफ्रीका की कुछ जातियाँ अग्नि को एक खतरनाक जानवर मानती थी।

---

(१) प्लिनी इटली मे पैदा हुआ था। वह महान विद्वान था। उसके अनेक ग्रन्थो मे अब केवल हिस्टोरिया नैचुरेलिस प्राप्त है। वह ३७ भागो मे है। प्राकृतिक विज्ञान की वह महान पुस्तक है। उसने आग और उसके उपयोग पर विस्तार के साथ लिखा है।

(२) प्लूटार्क एक ग्रीक विद्वान हुआ है। उसने अनेक देशो की यात्रा की थी। उसके साठ प्रसिद्ध लेख मोटेलिया मे संगृहीत है। अरली हिस्ट्री आफ मैन काइन्ड मे— जो १८१७ ईसवी मे लन्दन से प्रकाशित हुई थी—प्लूटार्क लिखित सूर्य-कुमारियो का वर्णन किया है, जो अग्नि की रक्षा करने वाली मानी गयी है।

सन् १५२१ ईसवी मे लिखी गई इतिहास की विशाल पुस्तको मे भी इस प्रकार के सत्य को स्वीकार किया गया है। लगभग चार सौ शताब्दी पहले मगेलन ने जो अन्वेषण किये हैं। उनमे उसने मैरियन द्वीप के लोगो के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार की बाते बताई हैं कि वे लोग आग को सहारकारी मानते थे और समझते थे कि यह आग इतनी सहारक है कि उससे कुछ बच नही सकता। वह सर्वनाश करती है।

आग के सम्बन्ध मे पुराने लोगो की धारणाये क्या थी, उस पर वर्कहार्ट ने बहुत कुछ लिखा है। उसको ब्रूस ने भी माना है कि नील नदी के निकास के करीब रहने वाले लोग आग के प्रयोगो से जानकार न थे। इसी बात को दूसरे शब्दो मे वर्क ने लिखा है कि उन लोगो मे सभ्यता का इतना विकास नही हुआ था कि वे माँस को पकाये जाने के सम्बन्ध में जानकार होते और उसकी आवश्यकता तथा उपयोगिता को अनुभव करते।

हिन्दुस्तान के आदिवासी भीलो, कोलियो और गोडो ने भोजन को पकाने की उपयोगिता को बहुत पहले समझ लिया था। वे लोग यह भी जानते थे कि यह आग कैसे पैदा की जाती है। आग जलाने के सामान और चकमक पत्थर बाँसो की कोठियो मे मौजूद रहते थे। वे आग पैदा होने के समय इस बात से बहुत सावधान रहते थे कि हवा की तेजी के कारण इन स्थानो के बाँसो के आपसी रगड से ऐसी आग न भडक उठे, जिससे बाँसो के जङ्गल ही जलकर साफ हो जाय। इस प्रकार का डर उनको इसलिये और भी रहने लगा था कि बाँसो से उत्पन्न होकर आग तेज होकर रहने वाले लोगो की बस्तियो को जलाकर खाक कर देगी। आपस की रगड से बाँसो मे अपने-आप आग उत्पन्न हो जाती है और मैंने खुद भी इस प्रकार पैदा हुई आग से जलते हुये चटखते हुये और आग को भडकाते हुये बाँसो की कोठियो का भयानक दृश्य देखा है।

बाँस हो नही, कोई भी दो चीजे—जो कठोर हो और एक दूसरे के साथ रगड़े तो गर्मी उत्पन्न होती है। यह गर्मी आग का प्रारम्भिक रूप है। दो काष्ठ एक दूसरे के साथ रगडकर आग पैदा करते हैं। पत्थरो के आपस मे टकराने से आग पैदा होती है। बाँस के ऊपर की प्रस्तर-समान सफेद परत से (१) बहुत आसानी के साथ आग पैदा हो जाती है। उन दिनो मे आग बनाने के लिये उसको लोग प्रमुख साधन मानने लगे थे। प्राचीन काल से हिन्दुओ मे आग की पूजा करने का जो प्रचार हुआ था, उसका आधार यही था। उनको इस बात का ज्ञान था कि यह आग, जो उष्णता पैदा करती

(१) बाँस के रस को तबाशिर (तबाशीर) अथवा वशलोचन कहा जाता है। जिनका प्रयोग हिन्दू चिकित्सक अनेक मौको पर औषधि के रूप मे करते हैं। यह शुद्ध चकमक है। यह इस बाँस से निकलकर ऊपर जम जाता है और फिर पत्थर के समान कठोर हो जाता है।

है, हमारा जीवन है। उसके इस महत्व को जानने और समझने के बाद उन लोगो में आग की पूजा करने की एक प्रथा जारी हुई थी, जो अब तक जारी है और हिन्दुओ में सभी जातियो की तरफ से इस प्रथा को मान्यता दी जाती है।

अनेक देशो की पुरानी और बर्बर जातियो का अध्ययन करके ब्रूस (१) ने जो लिखा है, वर्क (२) के शब्दो में पूरे तौर पर उसका समर्थन होता है। प्राचीनकाल मे मनुष्य-जाति आज की तरह विकास के प्रकाश मे नही आयी थी। उस युग मे हिन्दुओ की तरह कुछ ही जातियाँ ऐसी थी जो भिन्न-भिन्न तरीको से आग का उपयोग करने लगी थी।

भारत की प्राचीन जातियो भीलों, कोलियो, गौडो और मेर आदि लोगो के सम्बन्ध मे गम्भीरता-पूर्वक खोज करने से उस जमाने के इतिहास की बहुत-सी छिपी हुई कड़ियाँ सामने आ जाती है। उन आदिवासी जातियो के लोगो की आकृति और प्रकृति दूसरे लोगो के साथ एक बडी भिन्नता रखती है। उनके स्वभाव, विश्वास और रीति-रिवाज आज भी कुछ दूसरी ही प्रकार के पाये जाते है। यह बात जरूर है कि इन सारी बातो की मौलिकता सभी प्रकार की जातियो मे समान रूप से है। फिर भी अनेक बातो की प्रतिकूलता भी पायी जाती है।

प्रसिद्ध इतिहासकारो का मत है कि समस्त मनुष्य जाति की उत्पत्ति किसी एक ही महानवंश से है। यह बात बडी छान-बीन के बाद स्वीकार कर लेनी पडती है। लेकिन अनेक पुरानी जातियो के जीवन की न केवल स्वभाव की प्रतिकूलता बल्कि उनके शरीर की रचना हमारे सामने एक सन्देह पैदा करने लगती है और जल्दी इस बात पर विश्वास नही करने देती कि सम्पूर्ण मनुष्य जाति किसी एक ही वश से उत्पन्न हुई है।

---

(१) जेम्स बर्क स्काटलैण्ड का रहने वाला था। वह कई वर्षों तक अपनी खोज के सिलसिले में देशाटन करने के बाद प्राच्य भाषाओ के अध्ययन करने मे लग गया। बर्बर जातियो के पुराने अवशेषो के अनुसन्धान और अध्ययन करने के लिये वह ब्रिटिश कमीशन का सलाहकार हो गया और अलजीयर्स गया। इसी सिलसिले मे वह अल्जीरिया, ट्यूनिस, ट्रिपोली, क्रीट और सीरिया घूमने गया था। सन् १७६९ ईसवी मे वह अलेक्जैण्ड्रिया से नील नदी का निकास खोजने के लिये रवाना हुआ और ब्लो नील को ही प्रमुख नदी मानकर उसके निकास-स्थान तक पहुँचा। इङ्गलैण्ड लौटने पर उसकी अपनी खोज सही नही मालूम हुई। इसलिये वह अपनी जागीर चला गया और १७९० ईसवी तक उसने अपनी पुस्तक "ट्रैवेल्स टू डिसकवर दी सोरसेस आफ दी नील" नही छपवाई। बाद मे यह पुस्तक पाँच भागो मे लन्दन से प्रकाशित हुई।

(२) इङ्गलैण्ड का प्रसिद्ध विधान सभासद एडमण्ड बर्क जिसने भारत के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के अपराधो की विस्तृत आलोचना पार्लियामेण्ट में की थी।

नाटे चपटी नाक वाले और तातारी मुखाकृति के लोग एस्किमो एवम् प्राचीन तथा महान मोहिकन (१) लोगो मे और मेवाड के भील तथा सिरगूजर के कोली लोगो मे कोई विशेष अन्तर नही है और ध्रुव के करीब समुद्र के किनारे रहने वाले लोगो तथा मसूरी की घुमक्कड जातियो मे उतनी ही प्रतिकूलता है, जितनी यहाँ की आदिवासी जातियो और घुमक्कड राजपूतो मे है। मनुष्य के जन्म की कथाएँ प्राचीनकाल से लेकर अब तक एक सी है। उसका जन्म अपने-आप जमीन के किसी मुकाम से पेडो और पौधो की तरह नही हुआ। इसलिये यह नही माना जा सकता कि मनुष्य का जन्म भिन्न-भिन्न तरीके से विभिन्न जङ्गलो और चट्टानो मे पौधो और वृक्षो की भाँति किसी समय हुआ होगा। विचारो की गहराई मे जाने से मनुष्यो की आकृति और प्रकृति मे विभिन्नता और प्रतिकूलता का इतना ही कारण है कि उनके स्थान अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर लगातार बदलते रहे और वे क्रमशः एक दूसरे से दूर होते गये। देशो और उनकी आवहवा का प्रभाव उन पर पडा। जीवन की आवश्यकताओ और स्थानो की परिस्थितियो ने उनमे अनेक प्रकार के शारीरिक और स्वाभाविक परिवर्तन किये।

मनुष्य के जीवन का इस प्रकार अध्ययन करते हुये हम प्राय. उस मोनबोडो सिद्धान्त (२) की तरफ आकर्षित होते हैं, जिसमे बताया गया है कि ये लोग दुमदार आदमियो की सन्तान के बदले हुये रूप हैं। भील लोगो के रहने के अपने स्थान होते हैं और वे स्थान पहाडो तथा घने जङ्गलो मे पाये जाते हैं। लूट मार करना उनका एक व्यवसाय होता है। वे जहाँ पर लूटमार करने जाते हैं, वहाँ से लौट कर वे अपने स्थानो को उसी प्रकार चले जाते हैं, जैसे कुतुबनुमा यन्त्र की सुई उत्तर दिशा पर आ जाती है। भील लोग किसी दूसरे प्रदेश मे जाकर बसने का कभी इरादा नही करते। इस बात की पुष्टि बहुत कुछ उनके नामो से भी होती है जैसे वनपुत्र, वन अथवा जङ्गल का लडका, मेरोत, पर्वत से पैदा हुआ यानी मेरुपुत्र, गोविन्द जो गोप और इन्द्र के मेल से बना है, जिसका अर्थ गुफा का स्वामी, पाल, इन्द्र, घाटी का मालिक। इसी तरह 'को' (पर्वत) शब्द से बने हुये 'कोल' का अभिप्राय है—पर्वत पर रहने वाला। यद्यपि यह 'को' शब्द 'गिरी' शब्द की अपेक्षा बहुत कम प्रयोग मे आता है। फिर भी यह निश्चित

---

(१) उत्तर-अमरीकी इण्डियन।

(२) लार्ड जेम्स बर्नेट मोनबोडो स्काँटलैण्ड का निवासी था उसका सिद्धान्त है कि मनुष्य का जन्म अत्यन्त प्राचीनकाल मे एक जानवर के रूप हुआ था। आज का मनुष्य उसका विकसित रूप है। उसके मस्तिष्क की गति से अत्यन्त परिवर्तन है। इस विषय मे उसने "एनसिएन्ट मेटाफिसेस" और "ओरिजिन एण्ड प्रोगेस आफ लागवेज" उसके लिखे हुए दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उसने अपनी खोज के अनुसार मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विशेष प्रकाश डाला है। उसकी मृत्यु १७९३ ईसवी मे हुई।

है कि यह शब्द इराडोसीथिक जाति के मूल शब्द से बना है।

भीलो का अपना कोई पुरोहित नही होता, इसलिये वे बलाइयो के पुरोहितो को ही अपना गुरू मानते है, जो शूद्रो में अधम श्रेणी के माने जाते हैं। विवाह के समय पर वह पुरोहित अपने आप ब्राह्मण का जनेऊ पहन लेता है और इस प्रकार वह ब्राह्मण बन जाता है। विवाह के अवसर पर भोजन के साथ शराब के प्याले चलते हैं। वह उसमें भाग लेता है। ऐसे मौको पर एक भयानक दृश्य उपस्थित होता है और उनमे प्रायः कलह बढ जाती है।

भीलो मे विवाह की प्रथा कुछ अजीब बातो के साथ होती है। बधू को दहेज मे शक्ति-भर देने की प्रथा है। लेकिन फिर भी वर के लिये यह जरूरी हो जाता है कि वह पिता को प्रसन्न करने के लिए एक भैस, बारह रुपये और दो बोतले शराब की भेंट मे दे।

भील-परिवारो मे जब किसी बच्चे का जन्म होता है तो वह बना हुआ ब्राह्मण नवजात बच्चे का नाम करण सस्कार करता है। शिशु का नाम भील परिवार के देवता के नाम पर रखा जाता है। दिन के नाम पर भी नामकरण होता है, जैसे बुध-वार को पैदा होने पर लड़के का नाम बुधुवा और लड़की का नाम बुधिया रखा जाता है।

जन्म और मृत्यु के समय भीलो मे प्रचलित प्रथा के अनुसार गायक बुलवाया जाता है। ये गायक लोग भीलो के प्रायः सभी बडे गाँवो मे पाये जाते हैं। उसकी वेश-भूषा एक जोगी अथवा बैरागी की होती है। वह कबीर के सिद्धान्तो को मानने वाला होता है। इसीलिये उसको बहुत-से लोग कामड़ा जोगी अथवा कबीर पन्थी कहते हैं।

जन्म के समय यह जोगी अपनी स्त्री के साथ आता है और दरवाजे के देहली के पास एक घोडे की मूर्ति को रखकर खडा हो जाता है। उसके हाथ मे एक तम्बूरा होता है। द्वार पर खडे होकर वह बच्चो की रक्षिका शीतला माता की स्तुति करता हुआ भजन गाता है। उसकी स्त्री उसके स्वर-मे-स्वर मिलाकर भजन गाने मे सहायता करती है। पुरुष तम्बूरा बजाता है और उसकी स्त्री मजीरा बजाती है।

भीलो के प्रत्येक गाँव में एक बडा ढोल रहता है। उसको बजाकर गाँव के लोगो को सूचना दी जाती है। उस ढोल के बजने पर गाँव के सभी लोग एकत्रित होते हैं और पैदा होने वाले शिशु के माता-पिता को अपने व्यवहार के अनुसार उपहार देते हैं।

मृत्यु के समय भी सूचना देने के लिये ढोल बजाया जाता है। उस ढोल के बजने पर प्रत्येक परिवार से एक एक आदमी अपने साथ एक सेर अनाज लेकर आता है। मृतक के दरवाजे के पास जोगी बैठता है। उसके निकट घोडे की एक मूर्ति रखी रहती है और जल से भरा हुआ मिट्टी का एक घड़ा होता है। आने वाला प्रत्येक व्यक्ति

घडे के पास पहुँच कर अपने चुल्लू मे थोडा सा जल लेता है और मृतक का नाम लेकर उस जल को वह घोडे की मूर्ति पर छिडक देता है। इसके बाद वह जो अनाज अपने साथ लाता है, उसे वह जोगी को दे देता है।

इस अवसर पर घोडे की उस मूर्ति का इस प्रकार आदर क्यो होता है, यह मेरी समझ मे नही आया। मैंने उसको जानने की कोशिश की। लेकिन जो मुझे बताया गया, उमसे कुछ स्पष्ट जानकारी न हो सकी। मैंने जो कुछ जान पाया, वह कहाँ तक सही है, यह नही कहा जा सकता। ऐसा मालूम होता है कि घोडे की यह मूर्ति सूर्य का चिह्न है। भीलो की सभी जातियाँ सूर्य को पूजा करती हैं। उसके सम्बन्ध मे इससे अधिक मैं और कुछ नही जान सका।

हिन्दुस्तान मे राजपूतो की एक लडाकू जाति मानी जाती है। लेकिन इस देश के अनेक क्षेत्रो और प्रदेशो मे आदिवासी जातियाँ युद्ध करने मे निर्बल नही हैं। उनके रहने के स्थानो पर सुरक्षा के लिये प्राचीन परकोटे बने होते हैं। वे इतने मजबूत होते हैं कि उनके द्वारा उनके गाँवो की रक्षा होता है ओर किसी शत्रु का आक्रमण उनकी बस्ती पर सीधा नही हो पाता।

अभी एक शताब्दो पहले की बात है। इन आदिवासी लोगो मे जो उनका स्वामी होता था। उसके अधिकार मे वाणो से युद्ध करने वालो के सिवा अश्वारोही सैनिको की अच्छी खासी सेना होती थी। मुझे इस प्रकार के लोगो की जानकारो प्राप्त करने का अवसर मिला है। उनके एक स्वामी के सम्बन्ध मे मुझे बताया गया कि उसके पास धनुष-बाण रखने वालो के अतिरिक्त आठ सौ सवारो की सेना है। उसकी फौज मे प्रमुख लोग सामन्त कहे जाते थे। वे लोग पीतल की कमर-पेटी बाँधते थे और कवच धारण करके युद्ध मे जाते थे। ये लोग युद्ध मे पीछे की तरफ देखना अपराध समझते थे। जब कोई सामन्त मारा जाता था तो उसका पद उसके बेटे, भतोजे अथवा भाई को दिया जाता था। किसी निकटवर्ती सम्बन्ध के न होने पर मारे गये सामन्त का पद किसी योग्य व्यक्ति को दिया जाता था, जिसको वह पद दिया जाता था, उसका चुनाव होता था।

यह बात जरूर है कि इन लोगो मे एक लम्बे समय तक विद्रोही भावनाये चली और उन भावनाओ के दुष्परिणाम-स्वरूप इनके प्रदेश को क्षति पहुँची। इन जातियो मे राजभक्ति बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी। उसे ये लोग अपना धर्म मानते थे और उसके पालन मे ये सभी लोग जीवन की आहुतियाँ देते थे। लेकिन उस अराजकता ने उनकी भक्ति और कर्त्तव्य परायणता मे बडी बाधाये डाली। वे लोग जिस राज-भक्ति के बन्धन मे बंधे हुये थे, वे बन्धन छिन्न-भिन्न हो गये, उनकी बस्तियाँ एक-दूसरे से अलग-अलग होते हुये भी एक आदर्श मे बँधी हुई थी। वह आदर्श ढीला पड़

गया। राज-भक्ति का प्रेम फीका पड़ गया। उनकी उस अराजकता और विद्रोही भावना का यह दुष्परिणाम था, जो अर्से तक उन लोगो मे चली।

फिर भी, भील लोग अपने समाज और रक्त के प्रबल पक्षपाती बने रहे। राणा लोगो के साथ दिल्ली के बादशाहो के जो विनाशकारी युद्ध हुए, उनमे इन पहाडी और जङ्गली जातियो ने राणाओ का पूरा साथ दिया। युद्ध के उन दिनो मे अपने प्राणो की बलि देकर इन लोगो ने राणा और उसके राज्यो की ही रक्षा नहीं की, बल्कि उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उन्होने राजपूतो की स्त्रियो और लडकियो को शत्रुओ के हाथो मे नही जाने दिया।

इन भीलो के सम्बन्ध मे हमने उन घटनाओ का वर्णन किया है, जब अमर प्रताप अपने शत्रु के साथ युद्ध कर रहा था, उस समय ये लोग उसका खजाना जावर की खानो में ले जा रहे थे और जब इन लोगो को मालूम हुआ कि यह स्थान भी सुरक्षित नही है तो वे उस खजाने को घाटियो के रास्ते से होकर ऐसे स्थानो पर ले गये, जो स्थान केवल उन्ही लोगो को मालूम थे। इसके बाद की भी एक घटना है, जब सीधिया (१) ने राजधानी को घेर लिया था, उस समय राजधानी की सुरक्षा सङ्कट में पड गयी थी। लेकिन इन साहसी और बहादुर भीलों ने झील को पार करके राजधानी मे घिरे हुये लोगो को रसद पहुँचायी थी।

लेकिन अब वे दिन नही रहे। प्राचीन काल का एक बहुत बड़ा समय ऐसा बीता है, जिसमे अपने प्रभु राणाओं के प्रति उनमे श्रद्धा थी, उनकी मर्यादा की रक्षा के लिये ये भील अपने प्राण देते थे और अपने इस कर्त्तव्य-पालन की वे कोई कीमत नहीं चाहते थे। दोनो के बीच के वे दिन गौरव पूर्ण दिन थे। एक दूसरे के प्रति दोनो मे—भीलो मे भी और राणा लोगो मे भी—अपने पन की अटूट भावना थी। राणा उनकी रक्षा मे अपनी पूरी शक्तियाँ लगा देता था और राणा की मर्यादा की रक्षा के लिये ये भील अपने प्राण अर्पित कर रहे थे। वह गौरव पूर्ण जीवन दोनो की तरफ से था लेकिन वह स्तुत्य सम्बन्ध अब नही रह गया। दोनो तरफ की कर्त्तव्य परायणता अब अकर्मण्यता मे बदल गयी है। इन भीलो के इस पतन और परिवर्तन का कारण उनकी गरीबी और उनके विरुद्ध होने वाले दमन तथा अत्याचार हैं।

गरीबी और अत्याचार मे पडे हुये लोगो का इस प्रकार पतन और परिवर्तन स्वाभाविक होता है। इन भीलो मे जो अवगुण पैदा हो गये हैं, वे भी किसी से छिपे नही हैं। इन प्राचीन जातियो और राणा लोगो के बीच बिगडे हुये सम्बन्धो और उनके परिणाम-स्वरूप पतन को देखकर आश्चर्य होता है। यह एक महान दुख का विषय

---

(१) यह घटना सन् १७६९ ईसवी में उस समय की है, जब माधवराव सीधिया ने आक्रमण किया था।

है। उनके प्राचीन गुणों को देखकर और जानकर मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी ही और उससे भी अधिक पीड़ा इनके पतन को देखकर होती है। ये भील लोग जिनकी सहायता के द्वारा सुरक्षित रहते थे और सम्मानपूर्ण माने जाते थे, अब गरीबी और अत्याचार के शिकार होने पर वे उन्हीं के यहाँ चोरियाँ करते हैं। जो भील रक्षा करने के नाम पर सबसे अधिक ईमानदार और विश्वासनीय माने जाते थे, वही अब बेईमान, झूठे, आचरणहीन और अविश्वासी माने जाते हैं। यही भील, जो जान और माल की हिफाजत करते थे, अब उन्ही को बरबाद करने के लिये नित नये रास्ते निकाला करते हैं। जिनका पहले वे सम्मान करते थे, उन्ही को वे अब अत्यन्त घृणा से साथ देखते हैं।

इस प्रकार का मतभेद और अन्तर मुझे उन दिनो मे अधिक समझने का मौका मिला, जब १८१७-१८ ई० मे मुझको उनके और उनके अधिकारियो के बीच स्वत्वो की माँग मे मध्यस्थ बनना पडा। मैं पहले लिख चुका हूँ कि मेरे ब्राह्मण प्रतिनिधि ने पश्चिमी पहाडो पर बसे हुये ७५० ग्रामो और उनके रहने वालो से सन्धियाँ की और सूर्य को साक्षी बनाकर तथा 'मेरा रकाब साथ न दे' इस प्रकार सैनिक-सौगन्ध लेकर उनको पूरा किया।

उन सन्धियो के बाद शान्ति और व्यवस्था कायम हो गयी। लेकिन बहुत दिनो तक चल न सकी। शक्तिशाली राजपूतो ने अपनी पुरानी हरकते फिर आरम्भ कर दी और पहले के झगडो का बदला लेना आरम्भ कर दिया। कावा का भी एक इसी प्रकार का मामला था। कावा राजधानी से पश्चिम की तरफ दस मील के फासिले पर रहने वाली एक बडी बिरादरी है। उस बिरादरी के दो आदमियो को सलुम्बर सरदार के एक सामन्त ने मरवा डाला। उसका यह अमानुषिक कार्य दिन दोपहर ग्राम के परकोटे के भीतर एक सार्वजनिक कुएँ पर किया गया। ऐसा मालूम हुआ कि अपने इस राक्षसी कार्य के करने मे उसने राणा की भी कोई परवाह न की।

इसके साथ-साथ सरना अथवा शरण का भी एक मामला सामने आया और वह भी मेवाड के एक प्रसिद्ध सरदार के खिलाफ था। इस समय दो बाते सामने थी। एक बात तो यह थी कि राणा ने अपने प्रतिनिधि के द्वारा अङ्गरेज सरकार को विश्वास दिलाकर राज्य के अन्तर्गत शान्ति और सुरक्षा की प्रतिज्ञा की थी और दूसरी बात इस समय यह पैदा हुई कि सलुम्बर सरदार के द्वारा सरना के अधिकार पर अत्याचार हुआ। इन दोनो बातो मे इस समय एक की ही रक्षा की जा सकती है। चाहे की हुई प्रतिज्ञा का समर्थन किया जाय अथवा सलुम्बर सरदार की उपेक्षा की जाय। इन दो रास्तो मे एक पर ही चला जा सकता था। यहाँ पर संशय और दुविधा मे पडने की कोई गुञ्जाइश न थी।

खोज का काम आरम्भ कर दिया गया। लेकिन कोई नतीजा न निकला। रात के अन्धकार मे अपराधी निकलकर भाग गया। परन्तु मैंने भी उसका पीछा नही छोडा,

सलुम्बर की सीमा के अन्दर मैंने गम्भीरता के साथ उसको तलाश कराया। मैंने सलुम्बर के सरदार राव को आने के लिए खबर भेजी और उसके आने पर मैंने उससे साफ-साफ कहा—

या तो तुम अपने स्वामी राणा की अप्रसन्नता और हमारी शत्रुता का परिणाम भोगना पसन्द करो और यदि तुम ऐसा मुनासिब न समझो तो उस हत्यारे को शरण मत दो और उसे कानूनी सजा पाने के लिये सुपुर्द कर दो।

उस अपराधी को मालूम है कि मै उसका कितना आदर करता था। लेकिन अपराधी को क्षमा करना कानूनो की उपेक्षा करना है।

उस सरदार ने उत्तर देते हुये कहा—वह अपनी जागीर को छोड़कर बनारस चला जायगा। उसके किसी पूर्वज ने किसी समय ऐसा किया था और उसने ज़मीन की अपेक्षा इज्जत को अधिक महत्व दिया था। वह बनारस जाकर घोडो के कोडे बनाने लगा था और उनको बेचकर उसने अपनी ज़िन्दगी के दिन काटे थे। यह अपराधी भी यही कर लेगा। यदि उस शरणागत को सौंपा जाता है तो अपनी बिरादरी में ही उसकी वेइज्जती हो जावेगी।

उस सरदार ने बताया कि मुझे इसके सम्बन्ध में पहले से कोई जानकारी नही थी। इसको मैं शपथ पूर्वक आपके सामने कह रहा हूँ। मैं अपने नौकर को वही सजा दूंगा, जिसके लिये राणा की आज्ञा होगी।

कुछ देर की बातचीत के बाद सरदार के साथ एक समझौता हो गया। उसमें यह मान लिया गया कि अपराधी को सलुम्बर से निकाल दिया जायगा और उसको कही अन्यत्र चले जाने को आदेश दिया जायगा। जब वह कही बाहर जाने के लिये निकलेगा तो राणा के आदमी उसे कैद कर लेंगे। इस प्रकार का निर्णय हो जाने के बाद उस अपराधी को राजधानी मे लाया गया। उस समय परिस्थिति बदलती हुई दिखायी पडी। कुछ ऐसे नियम ढूंढ निकाले गये कि उस अपराधी के सम्बन्ध मे जो कुछ किया जा रहा था, उसकी सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर आ गयी और उसके फलस्वरूप मैं घृणा का पात्र वन गया।

यह परिणाम गलत निकाला गया। मैं अपनी तरफ से कुछ नही कर रहा था। मेरा समर्थन राणा के पक्ष में था। ऐसी दशा मे मैं इस बात को नही चाहता था कि विना किसी कारण के अङ्गरेज सरकार के प्रतिनिधि पर दोषारोपण हो। इसलिये मैंने स्पष्ट जवाब दिया कि जहाँ तक राणा की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, उसमे मुझसे कुछ भी पूछने की आवश्यकता नही है। उसके बाद दूसरे दिन उस अपराधी के सम्बन्ध मे मुझे उस समय जानकारी हुई जबकि उसकी हत्या कर दी गई। उसके मारने मे भी जङ्गली

पन और राक्षसीपन से काम लिया गया। अपराधी को एक गहरा गड्ढा खोदकर उसमे खडा कर दिया गया और उसके सिर को छोडकर मिट्टी से पाट दिया गया। उसका सिर मिट्टी की सतह से ऊपर था। बाकी सब जमीन मे गडा हुआ था। जब वह मरने के करीब पहुँच गया तो आखीर मे हथौडे से उसकी खोपडी को चूर-चूर कर डाला गया।

इस प्रकार की घटना यदि कुछ वर्ष पहले हुई होती तो राणा की तरफ से इस प्रकार कोई भी कार्यवाही न की गयी होती। यहाँ तक कि उस अपराधी को इस प्रकार दण्ड देने की बात सोची भी न गयी होती। उस अपराधी को इस प्रकार मृत्यु दण्ड देने के बाद राणा ने उन भीलो को बुलाने के लिये आदमी भेजे, जो मारे गये भील के प्रतिनिधि थे। उन लोगो के आने पर पगडियो और चाँदी के वडो के रूप मे भेटे देकर काबा जाति को प्रसन्न किया गया। ऐसा करने से राणा का कई प्रकार से लाभ हुआ और उसकी सैनिक शक्ति को सहायता पहुँची।

यह एक दुर्भाग्य की बात है कि इन पहाडी लोगो के शुभ चिंतक कम हैं और सभ्य समाज से वहिष्कृत होने के कारण उनको ईसाउ (१) के लड़को के समान समझा जाता है। एक दूसरी घटना का दायित्व मेरे ऊपर आ पड़ा और वह भी उस समय

---

(१) बाइबिल क अनुसार ईसाउ आइजक और रैवैका का वेटा और जैकब का बडा जुडवाँ भाई था। उसके शरीर मे जन्म से ही वहुत से बाल थे। इसीलिए उसको ईसाउ कहा गया। उसको शिकार का निहायत शौक था। इसी अभिप्राय से किसी समय वह बहुत दूर चला गया, जब वह बहुत भूखा और प्यासा हुआ। उस समय उसका छोटा जुडवाँ भाई जैकब दस्तरखान पर वैठा हुआ माँस के साथ अच्छी चीजे खा रहा था। उसके साथ वैठकर जब ईसाउ ने खाना चाहा तो जैकब ने इस शर्त पर उसको भोजन मे शामिल होने दिया कि वह अपने वडे होने का हक छोड दे। ईसाउ भूख के मारे तडप रहा था, इसलिए उसने अपने समस्त अधिकारो को जैकब के पक्ष मे छोड दिया, इसके बाद उसने दो विदेशी कनाटिश जिसको अब सीरिया पैलस्टाइन कहा जाता है—स्त्रियो से विवाह कर लिया। इससे उसका अब्राह्म के पवित्र वश से विच्छेद हो गया। लाल दाल के शोरवे के लिए अपने अधिकारो को छोड देने के कारण इसका नाम एडोम जिसका अर्थ लाल होता है—पडा। उस समय से उसके अनुयायी और साथी इडोमाइट्स कहे जाने लगे। वही लोग ईसाउ के वेटो के नाम से मशहूर हैं। वे लोग उस समय के समाज मे निम्नकोटि के समझे जाते थे। इसका कारण सिर्फ यह था कि कनाटिश स्त्रियो के साथ विवाह करके उसने अब्राह्म का वश छोड दिया था, जो श्रेष्ठ और पवित्र माना जाता था। अन्यथा उसके समाज से गिरने का और कोई भी कारण नही था।

जब मैं उनके बीच से चले जाने की तैयारी कर रहा था। यह दूसरी घटना भी कम दुख पूर्व नही थी। राठौरो और हाडा राजपूतो के राज्य मे लगातार आने-जाने से उदयपुर मे मुझे रहने का बहुत कम समय मिला। उन दिनों मे मेरी अनुपस्थिति के कारण इन गरीब भीलो को उनके शत्रुओ ने बेजा तरीके से दबाया और अपराधी कार्य करने के लिए उनको मजबूर कर दिया था। उनके साथ इतना ही नही होता था, बल्कि उनके इस प्रकार कार्यों की निगरानी होती थी। इसका सीधा अर्थ यह था कि जो कार्य वे नही करना चाहते थे, उनसे वे कार्य कराये जाते थे। राजपूत लोग उनको बहकाने और उकसाने का काम करते थे, जिससे वे अन्याय पूर्ण कार्य कर सके। उनकी यह स्वाभाविक कमजोरी थी कि वे इस प्रकार के बहकावे मे आ जाते थे और उस प्रकार के वे गन्दे काम करने लगते थे। इसी प्रकार के बहकावे का यह परिणाम था कि वे यात्रियो को लूट लेते और प्रायः नीमच की छावनी के अङ्गरेज सिपाहियो के साथ छेड़छाड़ करके उनको तङ्ग करते थे।

उस समय छावनी का प्रधान अधिकारी कर्नल लडलो (१) था। उसके यहाँ से इस प्रकार की शिकायते लगातार मेरे पास आ रही थी। उन्ही दिनो मे एक और भी दुर्घटना हुई, एक फौज के कुछ आदमियो के साथ लूटमार कर ये लोग जङ्गल में भाग गये। यह समाचार पाने के बाद अपनी ही सेना के द्वारा उन लोगो को इसका बदला देने के लिए मुझे राणा के पास आदेश लेने के लिए जाना पडा। राणा से मिलकर और आदेश पाते ही लेफ्टीनेण्ट हेपबर्न के नेतृत्व मे एक टुकड़ी तैयार की गयी। उस टुकडी के थोडे से लोगो ने इतनी होशियारी से काम किया कि अचानक जाकर उस गाँव को घेर लिया और वहाँ के तीस आदमियो को—जिनको पीडित लोगो ने न केवल पहचाना, बल्कि उनके घरो मे लूट का माल भी पाया गया—गिरफ्तार कर लिया।

लेफ्टीनेण्ट हेपबर्न उन कैदियो को छावनी मे ले आये। उनको देखकर कर्नल लडलो और मैं—दोनो ही असमन्जस मे पड़ गये। यह समाचार मैंने राणा के पास भेजा। इसके साथ ही मै इस सोच विचार मे पड गया कि इन कैदियों के सम्बन्ध मे होना क्या चाहिये। बहुत सोच विचार कर कर्नल लडलो को यह अधिकार दिया गया कि जो लोग गिरफ्तार किये गए हैं, उनमे पाँच-छै प्रमुख आपराधियो का चुनाव कर ले। इन चुने हुए अपराधियो को राणा के एक राजपूत अधिकारी को सौंप दिया गया। उन्हे फाँसी की सजा दी जा चुकी थी। उन अपराधियो को फाँसी दे दी गयी और उनके मृत-शरीर उन स्थानो पर लटका दिये गये, जहाँ पर उन लोगो ने लूट-मार की थी।

उन कैदियों मे छै प्रमुख अपराधी चुने गये थे। उनमे पाँच को तो फाँसी दे दी गयी। लेकिन छठा आदमी अपनी युवावस्था मे था। उसके लिए मैंने और

राणा—दोनो के सिफारिश की, इसलिए राजपूत अधिकारी ने उसको छोड़ दिया। इसके बाद उस बचे हुए छठे अपराधी को जीवन दान दिये जाने के बदले मे धन्यवाद देने के लिए मेरे पास लाया गया। उसने मेरे सामने इस प्रकार के कभी अपराध न करने की प्रतिज्ञा की।

उस युवक अपराधी की अवस्था केवल उन्नीस वर्ष की थी, मझोला कद और शरीर का दुबला-पतला था। परन्तु उसका शरीर गठीला, चेहरा खुश नुमा, चमकदार, खूबसूरत आंखे और बाल घने काले थे। उसकी मुखाकृति से प्रकट होता था कि वह अब भी डरा हुआ है। उसके यौवन की सरलता को देखकर सहज ही आभास होता था कि उसको अपराधो का ज्ञान नही है। मैं इन घटनाओ के सम्बन्ध मे बहुत समय तक सोच विचार करता रहा, इन्ही दिनो मे मुझे यह भी बताया गया कि फौजी टुकडो के लोग और किसी मतलब से नही, बल्कि भीलिनियो की खोज मे घूमा करते थे। हत्या के अपराध मे मृत्यु दण्ड अच्छा नही मालूम-होता बल्कि ऐसे अपराधो मे जुर्मानो की सजा काफी होती है और धन की चोट कम प्रभावशाली नही होती।

भीलो के विस्तृत परिवार मे अथवा उनके वंश मे सैरिया जाति के लोग भी माने जाते है। ये लोग मालवा और हाडोती को एक-दूसरे से पृथक करने वाले पहाडो और उनकी ऊँची-नीची जगहो मे बसे हुए है। उनकी कुछ शाखाएँ मालवा के किनारे से लेकर चन्देरी और नरवर के साथ-साथ गोहद तक पायी जाती है। कुछ शाखाये बुन्देलखण्ड की पहाडियो मे जाकर मिल गयी है। उनमे पहले कभी सरजा जाति के लोग रहा करते थे। वे लोग अब वहाँ पर नही मिलते। वे लोग मध्य भारत के सैरिया लोग थे। राजपूतो की छत्तीस जातियो मे एक जाति सरीअस्व भी है, सैरिया उसी का सक्षिप्त अथवा छोटा नाम है।

पुराने मिले हुए शिला लेखो से पता चलता है कि सैरिया हिन्दुस्तान की पुरानी जातियो मे से एक है। उसके वश परिचय के सम्बन्ध मे अधिक खोज करने की आवश्यकता नही है। अस्प और अश्व एक ही जाति है। भेद केवल थोडा-सा उच्चारण का है। यह जाति निश्चित रूप से इण्डो-सीथिक जाति से सम्बन्ध रखती है। फारसी मे अस्प शब्द का अर्थ घोडा होता है और सस्कृत मे भी अश्व का अर्थ घोडा होता है। यह नाम इस बात का बहुत बडा प्रमाण है कि यह जाति मौलिक रूप से इण्डो-सीथिक है।

मध्य एशिया की प्राचीन जातियों में चौपायो के नामो के आधार पर नाम रखने की प्रथा थी, इस पर मैं अन्यत्र प्रकाश डाल चुका हूँ। अस्प और अश्व के सिवा ट्रान्सोजाइना (१) के गेटी और जोतो की प्रसिद्ध शाखा नोमरिस अथवा लोमडो एवम्

(१) आमू और सर नदियो के बीच का भाग।

मुल्तान तथा उत्तरी सिन्धु के बराह अथवा शूकर भी यही अर्थ रखते है। इस प्रकार पशुओ और वनस्पतियों के आधार पर जो नाम रखे जाते थे, उनके विभिन्न प्रकार के अर्थ लगाकर वशो और परिवारो की विभिन्नता मानने की एक प्रथा सर्वत्र पायी जाती है।

जातियो और मनुष्यो के नाम कुछ आधार लेकर रखे जाते है। यह अवस्था संसार की प्राय: सभी जातियो में प्राचीन काल से लेकर अब तक पायी जाती है। इस प्रकार का आधार पूर्वजो के नामो और पदो के आधार पर भी होता है और देवताओं अथवा महापुरुषो के नाम पर भी नाम रखे जाते हैं। इस प्रकार की प्रथाये सभी देशों के समस्त जातियो मे प्राचीन काल से रही है और आज तक उनके अस्तित्व चले जा रहे हैं।

कुछ जातियो के नामो के आधार इतने साधारण होते हैं कि जो एक कुतूहल उत्पन्न करने हैं। जैसे प्लाण्टाजैनेट शौर्य का अर्थ देता है। लेकिन उसकी उत्पत्ति बुहारी से है। (१) इण्डस और आक्सस की उत्पत्ति अश्व, लोमडी और शूकर से, सीसोदिया राजपूत वश का उत्पत्ति शशक अर्थात् खरगाश से और कुशवाहा राजपूतो की उत्पत्ति का आधार कुश नामक घास है। इमी प्रकार सभी जातियो, वशो और परिवारो के नामो का आधार कुछ अर्थ रखता है। परन्तु बहुत से नामो के साथ वह उपयुक्त नही मालूम होता।

इम सैरिया जाति का निकास और विकास कही से भी हुआ हो, परन्तु उमके जीवन की बहुत-सी बाते ठीक उसी प्रकार भी हैं, जैसी कि भील लोगो मे पायी जाती हैं। लेकिन उनमे दुर्गुण नही पाये जाते। सैरिया जाति के लोगो में किसी प्रकार का परहेज नही है। कुत्ता और बिल्ली छोडकर वे लोग सभी कुछ खाते हैं। उनमें खाने-पीने की आदते कहाँ से आयी और पश्चिम तथा दक्षिण मे रहने वाले बिरादरी के लोगो मे ये बाते पायी जाती हैं या नही, यह मैं नही जानता।

इन लोगो का अधिकांश जीवन शिकार पर निर्भर है। वे शिकार करना खूब जानते भी है। वे लोग नील गाय और जङ्गली सुअर से लेकर खरगोश तक का शिकार

---

(१) एन्जू के काउण्ट (ज्योफ्री) ने बीरता का परिचायक प्लान्ट जेनिम्लैक (बुहारी की तरह का तुर्रा) सबसे पहले अपने शिरस्त्राण में रखना आरम्भ किया था। वह जेरूसलम के राजा फुल्क का बेटा था। ज्योफ्री अत्यन्त सुन्दर था। इसलिये इङ्गलैण्ड के बादशाह हेनरी प्रथम ने अपनी विधवा लडकी एम्प्रेस माड का विवाह उसके साथ कर दिया था। उन दोनों से जो लडका उत्पन्न हुआ, वह हेनरी द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह ११५४ ईसवी में गद्दी पर बैठा और प्लाटा जैनेट वंश का राजा कहलाया। तीन सौ वर्षों तक यह पद इङ्गलैण्ड के बादशाहो की उपाधि बनकर रहा।

करते हैं। लोमडी, गीदड, साँप और छोटी-बडी सभी प्रकार की छिपकलियाँ उनके खाने के स्वादिष्ट पदार्थों मे है। ये चीजे जङ्गलो मे बहुतायत से पायी जाती हैं। सही बात यह है कि जिन जीवो और पशुओ को मनुष्य ने पालतू बना लिया है, उनको छोड-कर वे सभी कुछ खाते हैं। जङ्गल के फलो मे वे तेन्दुआ, चिरौंजी, आँवला, इमली इत्यादि को एकत्रित कर लेते है। उनको वे स्वय अपने और अपने परिवार के खाने-पीने के काम मे लाते है और जो अधिक होता है, उसे देकर वे अनाज ले लेते हैं। किसी भी बीमारी में वे लोग पेडो, पत्तो और जडो का प्रयोग करते हैं। इन चीजो से वे तरह तरह की दवाये आवश्यकता पडने पर बना लेते हैं, इन जडो को वे जमीन खोद कर निकालते हैं। ये जडे विभिन्न प्रकार की हैं। उन्ही मे से कोलीकाटा एक जड होती है, उससे माँडी अथवा कलफ तैयार किया जाता है। कुश-जो एक प्रकार की घास होती है, उसकी रेशेदार जडो से ब्रश बनाते हैं। उन ब्रशो से कपडो की धूलि साफ की जाती है।

इस जाति के लोग अपने आस-पास के जङ्गली स्थानो की लकडी काटते हैं और उसका व्यवसाय करते हैं। लकडियाँ काटते हुये वे लोग बहुत-सा गोद इकट्ठा कर लेते हैं। वह गोद दवाओ और अन्य मौको पर काम आता है। इस प्रकार के व्यवसाय मे इस जाति के लोग बडे होशियार और अनुभवी होते हैं। अपने अनेक कार्यों मे वे ऐसे जानकार होते है, जिसको दूसरी जातियाँ नही जानती। ये लोग अनेक प्रकार के पेडो की छालो और जडो को भिगोकर और मुलायम बनाकर मोटी-पतली रस्सियाँ तैयार करते हैं, उनका यह एक प्रमुख व्यवसाय है।

जिन वृक्षो की छाल और जड रस्सियाँ बनाने मे अधिक उपयोगी साबित होती है, उनमे वेशूला प्रमुख है। उसकी जड और छाल-दोनो का उपयोग रस्सियाँ बनाने मे होता है। छाल और जड को मिलाकर भी वे रस्सी बनाते हैं, यह मैं नही जानता। मुझे जो कुछ जानने और समझने को मिला है, उसके आधार पर मैं यही कह सकता हूँ कि वे छालो और जडो को भिगोकर और फिर कूटकर मुलायम और लसदार बना लेते हैं। उसके बाद वे लोग उसमे से बहुत महीन रेशे निकालते हैं और उन्हे छाया मे सुखाते हैं। उसके पश्चात् इच्छानुसार छोटे, लम्बे, पतले और मोटी रस्सी अथवा रस्मे तैयार करते है।

वे लोग बहेडा और हर्ड के फलो को भी एकत्रित करते हैं, ये फल शाहाबाद की पहाडियो मे अधिक पाये जाते हैं। उन फलो से अङ्गरेज लोग पीला रङ्ग तैयार करते हैं। इसी प्रकार रीठा एक दूसरा फल होता है, जो कपडे को सफेद करने मे काम आता है। हाडौती के वर्णन मे सैरिया जाति के लोगो का बयान स्पष्ट रूप मे किया गया है। ये लोग महुआ नाम का फल एकत्रित करते हैं। उन फलो से वे एक अच्छी शराब तैयार करते हैं, जो व्हिस्की से मिलती-जुलती है।

सैरिया जाति के लोग निडर और साहसी होते हैं। वे लोग चटखी हुई चट्टानों मे चढ जाते है और मक्खियो के लगाये हुये शहद को वडी निर्भीकता के साथ निकाल लाते हैं। ये लोग खेती का काम भी करते हैं। लेकिन उन लोगों को अपनी खेती मे कुछ अधिक नही करना पडता। अपने खेतो को वे खुरपे से थोडा-सा खोद देते हैं और उस खोदी हुई ज़मीन मे वे वीज डाल देते है। जब उनके खेत पकने की अवस्था मे आते हैं, उससे पहले ही वे उनमे खाना-पीना आरम्भ कर देते हैं।

सैरिया-लोगों के आचरण और विश्वास हमें बहुत प्रिय मालूम हुए। उन लोगो में कृतज्ञता की भावना वहुत अधिक पायी जाती है। (१) उनके सम्बन्ध में आम तौर पर कहा जाता है कि किसी सैरिया को एक वार खाना खिला दीजिए, वह जिन्दगी-भर के लिये आपका प्रशसक वन जायगा। वे किसी भी सहायता और सहानुभूति को वहुत अधिक महत्व देते है। नरवर, श्योपुर चम्वल नदी के वायें तरफ की पहाडियों में वे अधिक पाये जाते है।

यहाँ के उत्तर और पश्चिम—दोनो भागो मे भील लोग रहा करते हैं। लेकिन उनके रङ्ग-रूप मे कोई विशेष अन्तर नही होता। शरीर की गठन मे कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है। उत्तरी भाग मे जो भील रहते हैं, उनके होठ कुछ आगे की तरफ निकले हुए होते हैं। शरीर मोटा, तगडा और पेट वड़ा होता है। शरीर के इस निर्माण में वे मेवाड के भीलो की अपेक्षा छोटा नागपुर और सरगुजा के लोगो से अधिक मिलते-जुलते होते हैं।

---

(१) फतह नामक मेरा एक डाकिया था। राजस्थान के इतिहास में मैंने उसका उल्लेख किया है। उसने इन लोगो को डाक ले जाने का काम दिलाने के लिये चेष्टा की थी। वे उस काम मे रख भी लिये गये थे। इन्ही जङ्गली जातियो के वल और विश्वास पर मैंने उन दिनो में वम्वई और गङ्गा तटवर्ती प्रान्त के वीच डाक का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। यद्यपि मेरे ऊपर अनेक कार्यों का वोझ था, फिर भी मैंने अपना कर्त्तव्य पालन के नाम पर सिन्धिया की छावनी के पोस्ट मास्टर के कार्य का वोझ भी अपने सिर पर ले लिया था और १८१५ ईसवी मे मार्कुइस हेस्टिंग्स को—जो उन दिनो मे गङ्गा के किनारे फर्रुखावाद मे था—विलायत से आयी हुई डाक वम्वई से इतनी दूरी पर केवल नौ दिनों में मैंने पहुँचायी थी। यह फासिला नौ सौ मील से अधिक था और रास्ता उन देशो मे होकर गया था, जहाँ न तो ब्रिटिश का और न उसके किसी मित्र का कोई अधिकार था। उस समय मेरी सफलता का कारण यही लोग थे।

चौथा प्रकरण

आदिवासी जातियाँ, पुराने सिक्के और तरीके

गर्मी मे रेतीले मैदानो की यात्रा—वल्लभी के निवासी—खोज सम्बन्धी मेरी अभिलापा—राज्य की जागीरो पर जैनियो के अधिकार—राणा की धर्म भीरुता—बालनगर का शिवमन्दिर—मूर्ति पूजा का प्राचीन विस्तार—मीणा लोगो के ग्राम—ऊटवण के मीणा लोग और राजपूत—बालू के मैदानो मे आग की चिनगारियाँ—भारत की गर्मी और विदेशी यात्री—देवडा के राजपूत—सारणेश्वर मन्दिर का जल-कुण्ड—सिरोही की रियासत का अभिनन्दन—सिरोहो की स्वाधीनता—सिरोही और मारवाड़ में सन्धि।

शीतला माता की घाटी को पार करने के समय दोपहर हो चुकी थी, आबू का ऊचा शिखर देखने के साथ ही मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मैं सायराक्यूस के महात्मा की तरह प्रसन्न होकर कह उठा—'मिल गया।' (१)

इसके आध घन्टे के बाद मैं बीजीपुर अपने मुकाम पर पहुँच गया। उस समय थर्मामीटर मे ९८° और वैरोमीटर २८°६० था। उनके द्वारा मेवाड के मैदानो और अरावली के तटवर्ती दोनो तरफ फैले हुए मारवाड़ के ऊँचे मैदानो का फर्क मालूम हो रहा था। दिन के तीन बजने पर वैरोमीटर २८°५० पर और थर्मामीटर १०२° पर था।

उस समय पश्चिम की तरफ आकाश मे बादल जमा हो रहे थे और गर्म हवाये चलकर सिराको (२) तूफान की स्मृतियाँ जागृत कर रही थी। मैं गरम और सूखी बालू पर—जहाँ पर मेरा मुकाम था—खडा हुआ और उन ऊँचे स्थानो पर नज़र डाली, जिनको मैं पीछे की तरफ छोड आया था। उस समय मैंने अनुभव किया कि

---

(१) प्रसिद्ध ग्रीक वैज्ञानिक आर्कमिडोस को धातुओ के वजन मे अन्तर होने का कारण उस समय मालूम हुआ, जब वह अपने स्नानागार के टब में बैठा था। उस समय की अपनी सूझ मे वह इतना खुश हो गया कि वह 'मिल गया, मिल गया' चिल्लाता हुआ बादशाह के दरबार में पहुँच गया और उसको अपने नगे होने का ज्ञान न रहा। बादशाह ने इस खोज का काम उसको दे रखा था।

(२) सिरोको उस तूफानी हवा को कहते हैं, जो भयानक धूलि के साथ समुद्र को पार करती हुई अफ्रीका की तरफ से चलकर इटली की तरफ आती है। दक्षिण की तरफ से चलने वाली गरम और तेज वायु को भी इस नाम से पुकारा जाता है।

टङक पहुँचाने वाले साधनो को फेककर मैंने भूल की है। वहाँ का दृश्य आकर्षक था और मेवाड के चढाव की तरफ के किसी भी स्थान से अधिक प्रभावशाली मालूम होता था। उस स्थान से मैंने अरावली के उस मुकाम को देखा, जो बिल्कुल सीधा दिखाई देता था। वहाँ का दृश्य अनोखा था। अनेक प्रकार के पत्थरो से बने हुए स्थान और भाग, गुम्बद के समान ऊची चोटियाँ, जङ्गलो झाडियो से घिरी हुई अन्धकार पूर्ण गुफाये, साफ और स्वच्छ जल देने वाले पानी के अनेक झरने आदि से वहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर मालूम हो रहा था।

गर्मी असाधारण रूप से बढ रही थी। अगर मुझे अपने कार्यों से छुट्टी मिली होती तो मैं दो सप्ताह पहले वहाँ से रवाना हुआ होता। इसलिये कि मानसून का आना आरम्भ हो गया है। कही ऐसा न हो कि मेरी अभिलाषाये मेरे मन मे ही रह जाँय। मेरे इरादो का एक आवश्यक अङ्ग तो अभी से छूटा जा रहा है, जिसके लिये भीलो के जङ्गलो मे जाने की अपेक्षा इस मार्ग को अधिक पसन्द किया था। मैं सादडी की नाल मे रायपुर जो (राणपुर) का मन्दिर देखना चाहता था। इसीलिये मैं इस तरफ से आया था।

मुझे सुनने को मिला है कि यह नाल अरावली के उन दरारो मे से है, जहाँ से केवल पैदल यात्री ही निकल सकते हैं। वह स्थान मेरे इस मुकाम से सामने दिखायी पडता है। लेकिन वहाँ पहुँचने का मेरा साहस नही होता। इसका कारण यह है कि मेरी यात्रा का प्रमुख मार्ग उस स्थान के बिलकुल विपरीत पडता है। इसे तो मैंने दो वर्ष पहले ही देख लिया होता। इसलिये कि उदयपुर से जोधपुर जाते समय कभी भी उसको देखा जा सकता था। लेकिन मैंने इसका पहले कभी ख्याल नही किया।

मैंने अपना आदमी बाली नामक जैन कस्बे की तरफ पहले ही रवाना कर दिया था। वहाँ पर सौराष्ट्र की पुरानी राजधानी बल्लभी के निवासी पाँचवी शताब्दी में इण्डो-सीथिक लोगो मे लगातार आक्रमणो से घबरा कर आ गये थे और वही रहने लगे थे। उन लोगो ने यहाँ आकर बहुत से पुराने सिक्के एकत्रित किये थे। उनमे से कुछ तो इण्डो-सीथिक सिक्के थे, उनमे एक तरफ वहाँ के किसी राजा की तस्वीर थी और दूसरी तरफ जो कुछ बना हुआ था, वह क्या था, यह साफ जाहिर नही होता था। उसमे लिखे हुए अक्षर वही की लिपि मे थे।

दूसरे सिक्के अन्य प्रकार के थे। किसी सिक्के मे घोडे पर सवार, भाला लिए हुए कोई चित्र था और किसी मे किसी शूरवीर का अथवा घुटनो के बल बैठे हुए नन्दीश्वर की मूर्ति बनी थी। दूसरी तरफ सस्कृत मे किसी राजपूत राजा का नाम लिखा हुआ था। उन सिक्को मे यह सब ठप्पे के द्वारा किया गया था। किसी सिक्के मे तिथि तारीख, देश और जाति का जिक्र नही था। एक तीसरे किस्म का सिक्का मिला। उसमे एक तरफ नागरी लिपि में किसी हिन्दू नरेश का नाम था और दूसरी तरफ मह-

मूद का। ऐसा मालूम होता है कि बादशाह गजनवी (१) ने विजय करने के बाद य
ठप्पा लगवाया होगा, जैसे की फ्रास की आजादी के समर्थको ने लुई सोलहवे के सिक्क
मे दूसरी तरफ स्वतन्त्रता की देवी की प्रतिमा अङ्कित करा दी थी। (२)

मेरी बडी अभिलापा थी कि इस प्रदेश के प्राचीन नगरो मे जाने और वहाँ
सम्बन्ध मे खोज करने का अवसर मिले, इसलिये कि अरावली के करीब अनहिलवाड
और सौराष्ट्र के निवासियो ने ग्रीक, पार्थियन और हूण जातियो के लगातार आक्रमण
से क्षत विक्षत होकर यहाँ पर शरण ली थी।

बाली मे मुझको मेवाड के राजाओ के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण ऐतिहासि
नामावली प्राप्त हुई और आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस साधु पुरुष ने यह नामा
वली मुझे दी थी, वह तेरह शताब्दी बीत जाने के बाद भी गुरु के नाम से सम्बोधित
किया जाता था। धर्म पर राजपूतो की श्रद्धा होती है। वर्तमान राणा तो विशेष रू
से धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। इसलिये जैन सम्प्रदाय वालो के साथ उनकी अधिक सहानुभूति
और आस्था रहती है। इस सहानुभूति और श्रद्धा का कारण जैनियो और जैन-धर्माव
लम्बियो की कोई विशेषता थी, यह नही कहा जा सकता। उसका कुछ भी कारण रह
हो। लेकिन उनके प्रति श्रद्धा और आस्था आज तक राजपूतो मे और राणा के वशज
मे पायी जाती है, यह सही है।

मैंने यह जानने की कोशिश की कि जैन सम्प्रदाय वालो के द्वारा यहाँ के राणा
वश वालो पर क्या उपकार हुए हैं, परन्तु इसके सम्बन्ध में कोई ठोस सामग्री मुझे नहीं

---

(१) सुल्तान महमूद गजनवी ने १०२१ ईसवी मे पञ्जाब पर अधिकार कर
लिया था। १०२१ ईसवी के पश्चात् लाहौर मे उसके वशजो की राजधानी कायम हुई,
उन्ही दिनो मे उन लोगो ने वहाँ के प्रचलित सिक्को मे एक तरफ अरबी लिपि के चौकोर
अक्षरो मे ठप्पा लगवाया और दूसरी तरफ राजपूती नन्दोश्वर की मूर्ति बनी रहने दी।
महमूद ने स्वय लाहौर मे एक सिक्के पर ठप्पा लगवाया था। उस ठप्पे के द्वारा उस
सिक्के पर लाहौर को महमूदपुर लिखा गया। उस सिक्के पर एक तरफ उसका अरबी
मे नाम लिखा है और दूसरी तरफ उसी को सस्कृत मे लिखा गया है—"दि क्वाइन्स
आफ इन्डिया—(सी० जे० ब्राउन, १९२२ पेज ६६)।

(२) लुई १६ वाँ, फ्रास के बादशाह लुई १५ वे का पौत्र था। अपने पितामह
की मृत्यु के पश्चात् वह १७७४ ईसवी मे सिंहासन पर बैठा। १७८९ ईसवी में वहाँ
पर क्रान्ति हुई, जिसके कारण वह पेरिस से भाग गया। लेकिन गिरफ्तार कर लिया
गया। १७९२ ईसवी तक विधान को स्वीकार कर लेने पर वह राज्य करता रहा।
उसके बाद राजा की सत्ता का ही अन्त हो गया और वह जान से मार डाला गया।
(एन० एस० ई० पेज० ८१८)।

मिल सकी । जैनियो के अधिकार मे राणा के राज्य को बड़ी-बडी जायदादे है, जिन पर उन लोगो का कानूनी तौर पर कोई हक नही है । उनको ये जायदादे और जागीरे क्यों मिली हुई हैं, इसका भी राज्य के पास कोई उत्तर नही है ।

अनेक मौको पर उन जैनियो के विरुद्ध मामले पैदा हुए है, जिनके सम्बन्ध मे राज्य के अधिकारियो ने स्वीकार किया है कि इस प्रकार न जाने कितनी जागीरो पर जैनियो के अधिकार हैं, जिनका कोई आधार नही है । लेकिन राणा की तरफ से उनके विरुद्ध कभी कुछ किया नही गया । ऐसे मामलो पर विचार किये जाने और निर्णय करने के पहले ही हमेशा कहा गया कि इन लोगो को तङ्ग न किया जाय । इसलिए कि राणा-वश पर इन जैनियो के बहुत बडे उपकार हैं । उनसे राणा के वश का कभी उद्धार नही हो सकता ।

इस भावना की प्रेरणा से जब कभी जैन-साधु अपने भक्तो को दर्शन देने के लिये आते है और उस सिलसिले मे वे उदयपुर से होकर गुजरते हैं तो राणा स्वय उनका स्वागत करने के लिये राज्य के प्रमुख अधिकारियो को लेकर जाते है और उनके साथ-साथ राजधानी तक लौटकर आते है । राज्य की तरफ से उन लोगो को जो रियायते और अधिकार मिले हुए है, उनका विस्तार मे हम राजस्थान के पृष्ठो मे वर्णन कर चुके हैं ।

बीजोपुर (विजयपुर) चार हिस्सो मे विभाजित है और उन पर राजपूतो का अधिकार है । वे लाग नाणावेडा की कायाा अथवा बिरादरी कहलाते है । वे लोग राणा प्रताप के वशज है । बाबा उनकी उपाधि है । वहाँ के लोग राणा के दरबार मे सनवाड के सरदार (१) के बराबर सम्मान पाते थे । लेकिन कुछ कारणो से वे सब बाते अब नष्ट हो गयी है और राणा प्रताप के वे वशज अब जोधपुर की अधीनता में है । वे अपने पूर्वजो के गौरव को भूले नही हैं और जिसके शासन मे हैं, उसके प्रति भी वे सम्मान प्रकट करते है । उनकी यह प्रवृत्ति राजपूतो के ऊँचे चरित्र का परिचय देती है ।

राजस्थान का एक राजपूत मुझको एक बार मिला । वह मारवाडी पोशाक मे था । लेकिन उसको देखने से उसके श्रेष्ठ वशीय होने के सभी लक्षण जाहिर होते थे । बीजीपुर के राजपूतो का समय अब बिगड चुका था, फिर भी उनका व्यक्तित्व उनके श्रेष्ठ वश का परिचय देता था । उसका सुदृढ़ और लम्बा कद, गोरा रङ्ग, प्रभावशाली मुखमण्डल और गम्भीर आचरण अपने-आप आकर्षण पैदा करता था । मैंने बहुत समय

---

(१) सनवाड के सरदार महाराणा उदयसिंह के तीसरे पुत्र वीरमदेव के वंशज होने के कारण वीरमदेवोत राणावत कहलाते है । बाबा उनका खिताब है, खेराबाद के बाबा सग्रामसिंह के छोटे लड़के शम्भूसिंह को सनवाड की जागीर मिली थी ।

तक बैठकर उसके साथ बाते की। उस बातचीत मे वर्तमान परिस्थितियों की अपेक्षा हमने अतीत कालीन बाते अधिक की। मेरी बातो से वह इसलिये और भी बहुत खुश हुआ कि उसके पूर्वजो के सम्बन्ध मे उसकी अपेक्षा मुझे अधिक जानकारी थी।

६ जून—बीरगांव : हमारा रास्ता अरावली के बराबर बराबर चल रहा था। लेकिन वह कभी-कभी उसकी पतली चट्टानो के बहुत करीब पहुँच जाता था। सूर्य का प्रकाश न मिलने की हालत मे वे चट्टाने बडी भयानक मालूम होती थी। सूर्य के निकलते ही और उसका प्रकाश पडते ही हालत एक साथ बदल जाती थी।

हमने एक छोटा सा नाला पार किया, जो जूओ नला (१) के नाम से प्रसिद्ध है। सिरोही और गोडवाड जिलो की सीमा पर होने के सबब से उसका राजनीतिक महत्व भी कम नही है। इसके पश्चात् हमने सूकडी नदी को भी पार किया, जो लाहौर के किले के पास से होकर बहती हुई लूनी नदी मे जाकर गिरती है।

जिस स्थान मे मैंने इस नदी को पार किया, उसके करीब मे एक छोटे से मन्दिर मे भी गया। वह मन्दिर बालपुर-शिव अथवा बाल नगर के शिव का मन्दिर कहलाता है। उसके देवता की प्रतिभा के सामने उसके वाहन पीतल के बैल की प्रतिभा है। मालूम होता है कि इस प्रायद्वीप मे किसी समय इसी देवता की पूजा होती थी। ऐतिहासिक काल के आरम्भ मे, जब हिरम (२) और टायर के नाविक जेरुसलम के बादशाह के यहाँ नौकर थे और नाव के खेने का काम करते थे, उससे बहुत पहले भारत के लाल-सागर के किनारे मिश्र और फिलिस्तीन के जलयान आते-जाते थे। बाल और पीतल का बछडा—जिनका पूजन हर महीने की पन्द्रहवी तारीख को होता है—वे हिन्दुस्तान के बालेश्वर और नन्दो, मिश्र देश के ओसिरिस (३) और मुविस (४) के सिवा और कुछ नही है। भारत मे उनकी पूजा प्रत्येक अमावस्या को होती है। यह बालपुर अथवा बाल नगर ठीक वैसा ही है, जैसे सीरिया का बेलबेक अथवा हीलियोपोलिस (५)। धार्मिक रीति-रिवाज और विश्वास इस बात के प्रमाण हैं कि सभी देशो

---

(१) जवाई नाला, जहाँ आजकल बाँध बाँधा गया है।

(२) हिरम प्रथम टायर का बादशाह और अबीबाल का बेटा था। उसने इजरायल के बादशाह सुलेमान के यहाँ बहुत से इमारती सामान के साथ, कारीगर भेजे थे। (ए० ब्रीफ सरवे आफ ह्यूमन हिस्ट्री) पेज १७।

(३) मिश्र का प्राचीन सुख-सौभाग्य का देवता, जिसकी पूजा इसलिए होती थी कि वह मृतको के पाप-पुण्य का निर्णय करता था।

(४) मुविस—मिश्र का वृषभाकृति देवता।

(५) मिश्र देश का प्राचीन नगर अब कैरो का छोटा नगर मतारिया कहलाता है। वहाँ पर सूर्य की पूजा होती थी। यहाँ प्रसिद्ध पण्डो की ख्याति को सुनकर प्लेटो और अन्य दार्शनिको ने वहाँ की यात्रा की थी।

की इन बातो में समानता रही है। सूर्य का पूजन अनेक देशो मे होता था। देवताओ के नाम और उनसे सम्बन्धित चीजे एक-सी लेकिन विभिन्न नामों से रही हैं। मूर्ति-पूजा का आरम्भ कहाँ से हुआ, इसका अन्वेषण अनावश्यक मालूम होता है। वह थी और संसार में सर्वत्र फैली थी। उसको आधारहीन समझकर अनेक देशों के सुधारको ने चेष्टा की और सफलता भी प्राप्त की। यूफ्राटिस (१) ऑक्सस अथवा गङ्गा के मैदानों मे या सिनाई पहाड़ी प्रायदीप (२) या सौरद्वीप? इस प्रकार उसके प्रारम्भ के लिए कोई भी नाम लिया जा सकता है। मूर्ति-पूजा और उसके तरीके सीरिया मे भी थे और वही से हिन्दुस्तान मे इसका और इसके तरीकों को आगमन हुआ, इसके ऐतिहासिक तथ्य पाये जाते है। परन्तु एक ही चीज जब दो देशो मे अथवा अनेक देशो मे प्रचलित हो जाती है तो एक होने पर भी उसकी कितनी ही बातो मे भिन्नता और नवीनता आ ही जाती है।

अब हम बीरगांव और भव-बनास मे फिर लौटकर आते हैं। इस नदी का नाम करण कहाँ से हुआ और कैसे हुआ, इसका कोई उल्लेख नही मिलता। यह निश्चित है कि आबू का केन्द्र दक्षिण को था, २५° पश्चिम चौबीस मील दूरी पर, यहाँ से अरावली की चोटियाँ, जिनको मैं अपने दूरदर्शक यन्त्र से देख सका था, सादडी और रूपनगढ से सबसे ऊँची दिखायी पड़ी। उन दोनों के बीच मे कुम्भलमेर कुछ दबा हुआ दिखाई दे रहा था। लेकिन वहाँ के निवासियो ने जाहिर किया कि सैमूर के करीब जरगावाली चोटी दिन के प्रकाश मे सभी चोटियो से ऊँची दिखायी देती है। लूटमार करने वाले मीणो के कितने ही स्थान और ग्राम मुझे दिखायी पडे, जिनसे लोग अब तक भयभीत होते रहते है। वे लोग उन पहाड़ो के ऐसे स्थानो मे रहा करते थे, जो अरावली की शाखाओ के रूप मे माने जाते है और भयानक जङ्गलो से ढके होने के कारण शत्रु के लिये प्रवेश असम्भव बना देते है।

मीणो के इन निवास स्थानो को मेवास कहा जाता है। उन लोगो के प्रमुख स्थान ऊटवण द० प० २५° पश्चिम १२ मील, कोलूर ८०.१०° पूर्व ६ मील, राडर द० ३०° पश्चिम १० मील, रेवाडी उ० ६५° पश्चिम १२ मील है। अन्तिम स्थान को प्रधान माना जाता है। माचल है, वह १३ मील पश्चिम मे है। ऐतिहासिक लेखको के लिए मीणो मे बहुत सामग्री मिल सकती है। उनके आपसी झगडो, एक दूसरे पर

(१) पश्चिमी एशिया की प्रसिद्ध नदी।

(२) सिनाई—लाल सागर के ऊपर स्वेज और अकाबा की खाडियो के बीच मिश्र का प्रायद्वीप। बाइबिल मे सिनाई पर्वत को उस प्रायद्वीप के दक्षिण मे जेबेल कैथरीना लिखा गया है। उसके दो शिखर हैं। उनमें एक जेबेल मूसा कहलाता है। कहा जाता है कि हजरत मूसा को ईश्वरत्व की प्रेरणा (इलहाम) इसी पर्वत पर मिली थी।

आक्रमणो और पडोसी राजपूतो के साथ होने वाले सङ्घर्षों से उनका जीवन भरा हुआ है। इस प्रकार के हमले और आपसी झगडे उनके रोजाना के हैं। आज ही मैंने इन मीणा लोगो के झगडो की जो कथा सुनी है, वह अगर लिखी जाय तो एक अच्छा ग्रन्थ तैयार हो जाय।

यह झगडा—जो आज मैंने सुना—ऊटवण के मीणो और पिराई के राजपूतों के बीच मे हुआ। इस प्रकार के झगडे दोनो तरफ से चलते ही रहते हैं। इन्ही दिनो मे पिराई के राजपूतो के यहाँ कोई उत्सव था। जो राजपूत हमेशा किसी न किसी झगडे और मारकाट मे रहा करते हैं और खतरो से सदा सावधान रहते हैं, वे इस उत्सव के अवसर पर कैसे असावधान हो गये, यह समझ में नही आया।

यह घटना कुछ इस प्रकार बतायी गयी। इस उत्सव मे पहले किसी मौके पर यहाँ के राजपूतो ने मेवास पर आक्रमण किया था। उनके गाँवो को जला दिया था और ऊटवण के प्रधान की माँ को कैद कर जोधपुर के करीब एक सैनिक मुकाम मे रखा था। उस कैदी स्त्री ने चाहे अपने किसी आदमी के आदेश को पाकर अथवा स्वयं अपनी इच्छा से कैद मे रहने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझा। इसके लिये उसको साधन कहाँ से प्राप्त हुआ, यह नही मालूम हो सका। लेकिन हुआ यह कि उसने मौका पाकर कोई विषैली चीज खा ली और आत्म-हत्या कर ली।

यह समाचार ऊटवण में भी पहुँच गया। उसके लडके ने अपने आदमियो के साथ कोलूर को पहाडी पर जाकर माचल और राघवा के लोगो को एकत्रित किया। ऐसे कठिन और सङ्कट के अवसरो पर एकत्रित होने के लिये यह स्थान पहले से ही निश्चित था। वहाँ पर जमा होकर हमेशा से वे लोग आक्रमण की तैयारी किया करते थे और शत्रु से लडने के लिये शकुन देखा करते थे। अपनी तैयारी के बाद उस दिन भी उन्होंने शकुन के लिये वाण चलाया। वह निशाने पर ठीक लगा। उन्होने अपना वह समय अनुकूल समझा। इस समय उनको तैयारी हो चुकी थी। उत्सव के समय राजपूतो पर आक्रमण करने के लिये वे लोग रवाना हो गये।

अभी रात समाप्त होने मे कुछ समय बाकी था और राजपूतो का उत्सव भी समाप्त नही हुआ था। किसी राजपूत को इस बात की आशका न थी कि हम लोगो पर कोई आक्रमण करेगा। उसी असावधानी के समय आक्रमणकारियो की एक भीड ने आक्रमण किया और ऊटवण की माता का बदला लेने के लिए छियालीस राजपूतो की हत्या की गयी।

आज सवेरे दस बजे जब मैं अपने मुकाम पर गया, उस समय थर्मामीटर ९६° पर था। दो बजे तक १०८ पर पहुँच गया। शाम को ५ बजे बादल आ गये और तापमान ८८° हो गया। लेकिन सात बजे ८९° ही रह गया। बैरोमीटर इन्ही मौको

पर क्रमशः २८°, ७७°, २८°, ७३° २८°, ६५° और २८°, ७० पर रहा। छाया के समय थर्मामीटर १०८° से ऊपर नही गया। इस तापमान का प्रभाव मौसिम पर भी रहा। जानवर बराबर घूमते रहे। लेकिन मैं गर्मी की अधिकता को अनुभव करता रहा। जब मैं सामने के मैदानो की तरफ़ देखता तो मुझको सूखी रेत मे आग की चिनगारियाँ उठती हुईं दिखायी देती। एक तिपाई पर लटकते हुए बैरोमीटर को जब मैं ठीक करने लगता तो उसके पीतल के भाग को छूने मे जलन मालूम होती। इतनी गर्मी उन लोगो के लिये आसानी से सहन नही हो सकती, जो ठण्डे देशो के रहने वाले और ठण्डे खून वाले होते है। मेरे डेरे के बाहर की वायु, जो २५° अधिक गरम थी। असह्य नही थी। हिन्दुस्तान मे रेगिस्तान की गरम हवा की अपेक्षा मुझको इङ्गलैण्ड के गर्म मौसिम मे अधिक कष्ट मिला था।

यहाँ पर मैं इटली के प्रसिद्ध नगर नेपल्स के जाडे के दिनो का उल्लेख नही करना चाहता, इसलिये कि वहाँ तो गर्मी का प्रभाव होते हुये भी मैं अपनी यात्रा को बराबर लिखता रहा। यहाँ पर मैं गर्मी की अधिकता की ही चर्चा करूँगा। यह गर्मी कितनी भयानक है और उसको सहन करने के लिये क्या साधन तथा उपाय हो सकते हैं, इस खोज पूर्ण कार्य को मैं उसके अन्वेषको पर छोडता हूँ।

जब तापमान १०८° अथवा इससे भी कुछ कम होता है, उसी समय शरीर के रोम-कूप खुल जाते हैं और लगातार पसीना आना आरम्भ हो जाता है। लेकिन वह पसीना सूखने के पहले वायु का सम्पर्क पाने के साथ ही ठडक पहुँचाने का कार्य करता है। लेकिन तापमान की यह अवस्था एक-सी नही रहती। प्रभातकाल तो ऐसा मालूम होता है कि पाला के से लक्षण हैं और दो-तीन घन्टे के बाद सूर्य के निकल आने पर खेमे के भीतर ९०° से १००° तक और उसके बाहर खुली धूप मे १३०° तक पहुँच जाता है। एक भयानक अन्तर है। इस अन्तर को मैंने किसी प्रकार सहन किया है। परन्तु जब मैं गुजरे हुए दिनो का स्मरण करता हूँ और मुझे अपने उन साथियो की याद आती है, जो इस भीषण गर्मी के कारण ही इस दुनिया से विदा हो गये हैं। इस विषय का विवरण लिखते हुये मुझे कष्ट का अनुभव हो रहा है। हम लोग बीस थे। उनमे से दो जीवित है और उन दोनो मे मैं ही एक ऐसा हूँ। जो अपने देश लौट जाने की आशा करता हूँ। उनके सम्बन्ध मे लोगो की जानकारी के लिये यहाँ पर सूची दे रहा हूँ। मैं बडी पीडा के साथ यह लिख रहा हूँ कि जो लोग हिन्दुस्तान आते है, उन सबका यही हाल होता है। वह सूची इस प्रकार है—

रामगढ—देशी बटालियन— कर्नल ब्राँटन, मेजर रफसेज, लेफ्टीनेण्ट हिगाँट, ले० ब्राँटन, डाक्टर लेडलाँ और लिमाण्ड, सभी स्वर्गवासी, २० वी अथवा मेराइन रेजीमेण्ट, ले० कर्नल मेकलीन, मेजरयूल, कैप्टन ह्विमेनवाटिंग, वेस्टन, पोर्टयूस, सीली,

ले० मेनर्लीं—सभी स्वर्गवासी। ले० टॉड, १८३८ मे जीवित, ओसिया के अनुवाद का लडका मैकफर्सन, मृत, माण्टेग्यू ने कुछ दिन नौकरी करके हिन्दुस्तान छोड दिया था। मैकनॉटन मृत, आर्टीलरी कैप्टन ग्राहन मृत।

७ जून—वही : हमारा आज का रास्ता साढे बारह मील का था, जो साफ़ और समतल था। बीरगांव से तीन मील चलकर हमने फिर सूकडो नदी को पार किया और पवौरी अथवा पावरी पर पहुँच गये, जहाँ पर जोधपुर की एक फौजी चौकी थी।

सात मील के फासिले पर पोसलिया से एक मील पहले, सिरोही की एक रियासत मे हमने एक और जाति के लोगो को देखा। उसके राजा ने ब्रिटिश सरकार के सरक्षण मे आने के बाद अपने यहाँ एक फौजी चौकी कायम कर ली थी।

बीरगांव की भाँति वही का भी कोई अपना महत्व नही है। वह बहुत दिनो तक लुटेरो का शिकार होता रहा और समय-समय पर उचित और अनुचित उसमे वसूलयाबी की गयी थी। परन्तु अब वही और बीरगांह दोनो की हालत बदल गयी थी। अब वे दोनो स्थान धीरे-धीरे पनप रहे थे, आबू यहाँ से द० १०° पूर्व और दक्षिण २०° प० के बीच मे १३ कोस अथवा पच्चीस मील पर था। मेवास के ऊट-वण और माचन क्रमश. द० २०° पू० तथा उ० २०° प० मे थे।

ऊटवण, मावल और पोसालिया के लुटेरो के कुछ नेता मुलाकात करने के लिये मेरे पास आये। बातचीत के सिलसिले मे उन लोगो ने अपनी पुरानी गलत आदतो को छोड देने के लिये वादा किया। ये लोग शरीर से पुष्ट और तेज होते हैं। ये लोग अपने साथ धनुप-वाण लिये रहते हैं और कमर की पेटी मे कटार खोंसे रहते हैं।

मीणा लोगो की तरह अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर देवड राजपूत भी मुझसे मिलने के लिए आये। उनके साथ मैंने तीरंदाजी की होड की। सौभाग्य और सयोग से मेरा तीर देवडा के राजपूतो के तीरो से कुछ गज आगे निकल गया। उसके बाद एक बार फिर तीर चलाने का प्रस्ताव हुआ। लेकिन अपनी विजय को जोखिम मे डालने की भूल मैंने नही की। देवडा राजपूतो की पोशाक का अन्तर केवल उनकी पगडी बांधने मे ही नही था, बल्कि उनके बडे-बडे पाजामे और घेरदार लपेटे हुए वस्त्रो मे भी था। चमेली के तेल से डूबी हुई जुल्फे उनके गालो पर आ गयी थी। आज सुबह के ६ बजे और दोपहर के ३ व ५ बजे थर्मामीटर क्रमशः ८६°, ८९°, और ९६° पर था। बैरोमीटर उतने ही बजे क्रमशः २८°, ८०, २८°, और २८° ७५ पर था। दूसरा बैरोमीटर इनसे १४° नीचे था। लेकिन मैं उस पर यकीन नही करता था।

८ जून—आज का रास्ता जगलो था। सम्पूर्ण रास्ते मे विभिन्न प्रकार के वृक्ष थे। सात मील के बाद हम ऊटवण की पहाडी-पक्तियो को पार करके उस घाटी मे पहुँचे, जहाँ पर देवडा-राजपूतो की राजधानी थी। उसके एक मील आगे चलने के

बाद हमको एक पहाडी दुर्ग के खण्डहर मिले, जिसको उदयपुर के राणा कुम्भा ने कुम्भलमेर से मालवा के गोर वशीय सुल्तान के द्वारा निकाले जाने पर, बनवाया था। वहाँ पर हमने सारणेश्वर मंदिर के दर्शन किये। वहाँ पर एक कुण्ड बना हुआ है। उसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उसका जल चर्म रोगो को सेहत करता है। हिन्दुस्तान के अन्यान्य गर्म पानी के सोतो की तरह इसका नाम भी शिव के नाम पर है। मन्दिर की छत गोल और महराबदार है, जो खम्भों के ऊपर बनी हुई है। उसके गुम्बद का आकार -प्रकार अण्डा के रूप मे है, जैसा कि इस प्रदेश में प्रायः देखने को मिलता है।

मदिर के भीतर शिवलिंग की मूर्ति है। बाहर एक बहुत बड़ा त्रिशूल गड़ा हुआ है, वह बारह फीट ऊँचा है। कहा जाता है कि उसका निर्माण सात प्रकार की धातुओ से किया गया है। उसके दरवाजे पर दो प्रस्तर निर्मित हाथी है। पूरा मन्दिर एक मजबूत परकोटे से घिरा हुआ है। उसको माँडू के मुसलमान सुल्तान ने बनवाया था। कहा जाता है कि उस सुल्तान को कोढ़ का रोग था। यहाँ के कुण्ड मे स्नान करके उसने उस रोग से मुक्ति पायी थी।

उस सुल्तान के कोढ़ से मुक्त होने की घटना सही है अथवा नही, इसके सम्बन्ध मे तो कुछ नही कहा जा सकता। लेकिन किसी मंदिर की मरम्मत या उसकी भेट कुरान तथा मोहम्मद पैगम्बर की शरियत के खिलाफ है। ऐसी हालत मे उस सुल्तान ने यहाँ के मदिर का परकोटा बनवाया था या नही, सही तौर पर यह नही कहा जा सकता।

नन्दिकेश्वर की मूर्ति असली नही है। उसको शिला-लेख के साथ ले जाकर मेवाड के एक नये मदिर में स्थापित कर दिया गया है। देवडा-राजपूतो की समाधियाँ कुछ बातो मे विशेषता रखती हैं। उनकी प्रत्येक समाधि के साथ एक शिला-लेख लगा हुआ है। वर्तमान महाराव के पिता की छतरी मे एक मदिर बना हुआ है। उस मन्दिर के पास ही मृतक की मूर्ति अश्वारोही रूप मे है। रावगज की छतरी मे और भी विशेषता है। उसमे चार सतियो के सिवा उसके राजपूत सामन्तो की एक पक्ति भी है। सभी लोग तलवारो और ढालें लिए हुए हैं। चौहान जाति इन्डो-गेटिक जाति की ही एक शाखा है, इसका यहाँ एक स्पष्ट प्रमाण मिलता है। ये लोग बाद मे ब्राह्मण हो गये थे।

देवड़ा-राजपूतो की राजधानी सिरोही मे मेरे आने पर अभिनन्दन मनाया गया। उस अभिनन्दन मे सिरोही की श्रेष्ठ सुन्दरियों ने मेरे स्वागत मे गाने गाये। उस समय का सुन्दर दृश्य हिन्दुस्तान को छोडकर मैंने अन्यत्र कही नही देखा। उनके गानो

मे ... मे मजीरो की ताल बडी प्रिय और आकर्षक-मालूम हो रही थी। वे सुन्दरियाँ गाना गाती हुई राव के आगे-आगे चल रही थी। अभिनन्दन करने वालो का यह जुलूस मुझे अपने नगर मे ले जाने के लिए आया था। मैं उनके नगर मे होता हुआ अपने उस खेमे मे पहुँच गया, जो दक्षिण की तरफ लगभग आधा मील के फासिले पर था।

हमारी यात्रा आवू के साथ-साथ चल रही थी। अव वह यहाँ से द० १०° पू० से द० २५° प० मे था। प्रातः काल ६ बजे, दोपहर को ३ बजे और शाम को ६ बजे थर्मामीटर ८६°, ९८°, और ९२° पर था, एवम् वैरोमीटर २८° ७५°, २८° ७० और २८° ७५ पर था।

६ जून—सिरोही—आज सवेरे ८ बजे, दोपहर को ३ बजे और शाम को ५ बजे बैरोमीटर क्रमशः २८° ७५, २८° ७५ और २८ ७० पर था, जब कि थर्मामीटर ८४°, ९५°, ९२° और ९२° जाहिर करता था। दोपहर के बाद मुझको यहाँ पर कुछ ठडक मिल सकी। इस रियासत के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्राप्त करने के लिए एक दिन ठहरा। यह रियासत बहुत छोटी है। लेकिन इसकी प्रसिद्धि राजपूताना की किसी भी रियासत से कम नही है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, इस रियासत को कुछ विशेष अधिकार मिले हुए हैं। इसलिए कि १८१७-१८ ईसवी की पूरी शान्ति के पश्चात् इसके समस्त राजनीतिक अधिकार मेरी अधीनता मे रहे हैं। मैंने अपनी पूरी शक्ति लगाकर मारवाड से इसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा की थी। मारवाड के नरेश ने इसको अपने अधीन बनाये रखने के लिए न जाने कितने वहाने तैयार किये थे। जो अधिकारी मारवाड और ब्रिटिश सरकार के बीच मे मध्यस्थ थे, उनको समझा-बुझाकर विभिन्न प्रकार की दलीलो और तहरीरो के द्वारा यह साबित करने की पूरी कोशिश की गयी थी कि सिरोही मारवाड-राज्य का एक अग है। अपने इस प्रकार के पुष्ट प्रमाणो के द्वारा गवर्नर-जनरल मार्कुइस हेस्टिग्स की मजूरी भी प्राप्त कर ली गयी थी। लेकिन मैं समझता था कि इन दलीलो और तहरीरो मे केवल राजनीतिक चाले हैं। मैंने उस समय तक न जाने कितने राज्यो और रियासतो के बीच के झगडो को ईमानदारी के साथ तय कराने मे सफलता पायी थी। सिरोही के मामले मे भी मैं मारवाड का अन्याय समझता था। सारे अधिकारियो का मत एक तरफ था मेरा निर्णय दूसरी तरफ था। मैं सिरोही की समस्या भी न्याय के साथ सुलझाना चहता था। अन्त मे मुझे सफलता मिली और मैं देवड़ो की रियासत को शक्तिशाली विरोधियो के चगुल से बचा सका।

सिरोही की समस्या वडी उलझन से भरी हुई थी। जोधपुर के अधिकारी, राजा अभयसिंह के समय से सिरोही के रावो से कर और नौकरी लेने का अधिकार साबित करते थे। मैंने इसको सही-सही समझने की कोशिश की और मुझे उन्ही के

इतिहास से इसके विपरीत प्रमाण मिले, जिनमे साफ जाहिर होता था कि सिरोही रियासत के अधिकारियो ने जोधपुर के राजाओ को नौकरी दी है। परन्तु यह मारवाड के राजा के लिए नही थी, बल्कि साम्राज्य के प्रतिनिधि के लिए थी। इसके सिवा गुजरात के युद्धों में जब देवड़ा राजपूत लडाई पर गये थे, उस समय अभयसिंह का नेतृत्व उन लोगो ने स्वीकार किया था।

इस प्रकार के राजनीतिक और ऐतिहासिक प्रमाण थे, जो सिरोही रियासत की स्वतंत्रता का समर्थन करते थे। मारवाड के अधिकारियो का यह भी कहना था कि सिरोही के प्रमुख और प्रधान सरदार नीमाज के ठाकुर ने जोधपुर की नौकरी की थी। इस प्रमाण को काटने के लिए यह दलील काफी थी कि सभी रियासतो मे कुछ न कुछ देशद्रोही और अवसरवादी लोग सदा से रहे हैं। सिरोही मे भी ऐसे लोग थे, जो सिरोही की मर्यादा के विरुद्ध कार्य करते थे और उन दिनो मे सिरोही की शक्तियाँ इतनी कमजोर पड़ गयी थी कि उसकी तरफ से ऐसे लोगो को दबाने और रोकने की व्यवस्था नही की जा सकती थी। इसलिए किसी सरदार में ऐसा करने से उसकी ज़ुम्मेदारी सिरोही-रियासत पर नही आती थी।

इस सिलसिले में एक बात और भी थी। नीमाज मारवाड़ की सीमा पर था। इसलिये उसके लिये यह आवश्यक था कि उचित और अनुचित किसी भी तरीके से यह मारवाड़ को अप्रसन्न होने का मौका न दे। सिरोही की शक्तियाँ क्षीण हो चुकी थी। अपने सामन्तो और सरदारो पर भी उसका प्रभाव काम नही करता था। ऐसी हालत मे जो लोग अवसरवादी होते हैं, वे सभी प्रकार का लाभ उठाने की कोशिश करते हैं। नीमाज के समझदार और अवसरवादी ठाकुर ने जोधपुर की प्रबल शक्तियो की चाप-लूसी करके लाभ उठाने की कोशिश की। पहले भी सरदारों मे उसका स्थान ऊँचा था। वह इस मौके पर लाभ उठाकर और मिल मिलाकर अपना स्थान और पद मे भी अधिक ऊँचा बना लेना चाहता था।

ऊँचा पद प्राप्त करने की अपनी अभिलाषा मे नीमाज के ठाकुर के सामने एक ही रास्ता था कि वह हर तरीके से जोधपुर-नरेश को प्रसन्न करने की कोशिश करे। उसकी अभिलाषा इसी मे पूरी हो सकती थी। उस हालत मे जोधपुर ने जो कुछ चाहा, उस अवसरवादी ठाकुर ने उसे पूरा किया। मारवाड़ ने उस ठाकुर का फायदा उठाया। लेकिन सिरोही को अपने अधिकार मे बनाये रखने के लिए इतना ही काफी नही था कि नीमाज का ठाकुर उनके यहाँ नौकरी देता है। मारवाड का राजनीतिक पहलू सिरोही से कर वसूल करने मे था।

सिरोही मारवाड़ के अधिकार मे नही था और न वह कर देता था। इसलिए मारवाड़ की तरफ से अत्याचार, अनाचार और छुटपुट-हमले किये गये। ऐसा करके

जबरदस्ती जो वसूल किया, लूट-मार करके उसकी एक सूची कर वसूल करने के सम्बन्ध मे तैयार की। इस मौके पर मारवाड के प्रतिनिधि ने उस सूची को सामने लाकर इस बात को साबित करने की कोशिश भी की कि सिरोही से मारवाड कर वसूल किया करता था। परन्तु कर वसूल करने के सम्बन्ध मे यह सूची काफी नही थी। उसको देखकर साफ जाहिर होता था कि यह सूची कर वसूल करने की नही है। मारवाड के अधिकारियो के सिवा उस सूची मे कही पर भी सिरोही की तरफ से किसी के हस्ताक्षर नही थे। इस कर वसूली के सम्बन्ध मे मारवाड की ओर से कोई भी ऐसा कागज सामने नही लाया गया, जो सही साबित होता और न किसी कागज अथवा तहरीर मे सिरोही के किसी अधिकारी के हस्ताक्षर थे, जो कर देने की स्वीकृति को प्रमाण देते। राज्य और रियासत के बीच मे होने वाला कोई भी इकरारनामा भी देखने को नही मिला और न कोई प्रमाण इस विषय मे पेश किया गया कि मारवाड को सिरोही पर आक्रमण करने की अवश्यकता क्यो पडी। प्रत्येक अवस्था मे यह प्रमाणित होता था कि मारवाड के इन हमलो का कारण-सिरोही की कमजोरी थी और जो कर वसूल किया हुआ दिखाया गया, वह सिरोही में की गयी लूट-मार का धन था। किसी प्रकार यह साबित नही हो सका कि सिरोही की रियासत मारवाड के अधिकार मे रही है।

मारवाड की ओर से एक कागज ऐसा अवश्य पेश किया गया, जिसमे सिरोही के वर्तमान राव के बडे भाई के हस्ताक्षर थे। अपनी किसी परिस्थिति और बेवसी मे पकडकर बडे राव ने जोधपुर की अधीनता को स्वीकार करने के लिए हस्ताक्षर किये थे। परन्तु उस परिस्थिति और बेवसी को छिपाया गया। घटना यह थी कि बडे राव अपने पिता की भस्म गगा मे प्रवाहित करने को लिये जा रहे थे, उसी मौके पर वे कैद कर लिये गये और उनसे अधीनता स्वीकार करने के लिए यह तहरीर लिखा ली गयी। देवडा के राजपूत सरदार इस तहरीर को जायज और सही नही मानते थे। मेरी समझ में भी जो तहरीर किसी बेबसी मे करायी गयी है, वह रद्दी के सिवा और क्या हो सकती है। न्याय के सामने उसका कोई महत्व नही हो सकता। वास्तव मे अपनी इच्छा से सिरोही के अधिकारियो ने एक पैसा भी जोधपुर को कभी अदा नही किया।

मारवाड की पेश की गयी जब सभी दलीलें बेकार साबित हो गयी तो एक नयी चीज पेश की गयी। उसमे कुछ जान जरूर मालूम पड़ती थी। सिरोही की रियासत बहुत कमजोर पड गयी थी और उसमे यह क्षमता नही रह गयी थी वह लुटेरो का सामना कर सके और उनके अपराधो का दण्ड दे सके। इस दशा मे लुटेरों के जो हमले सिरोही मे होते थे, उनसे जोधपुर को नुकसान पहुँचता था। इसलिए

जोधपुर को यह अधिकार होना चाहिए कि वह सिरोही की रक्षा के लिए लुटेरो का दमन कर सके।

जोधपुर के प्रतिनिधि ने अपनी माँग को प्रमाणित करते हुए एक हाल की घटना पेश की। उसमें बताया गया कि ऊटवण और माचल के लोगो ने मारवड की सीमा पर हमले किये और भयानक रूप से लूटमार करके जान-माल का नुकसान पहुँचाया। इस घटना को बडी बुद्धिमनी के साथ सामने रखा गया, उसका मध्यस्थ लोगो पर प्रभाव भी पडा।

लेकिन इस घटना को स्पष्ट करते हुए दूसरे पक्ष की तरफ से कहा गया कि जोधपुर के विरुद्ध किये गये हमले मे केवल मीणो का ही अपराध था। सही बात यह है कि वे मीणा लोग जोधपुर के थे और मारवाड को ओर से उन लोगो को उकसाया गया था। उनकी उत्तेजना का कारण था, जिसके सम्बन्ध मे हमले का उत्तरदायित्व मारवाड़ पर ही आता है।

इसके बाद ही सिरोही के प्रतिनिधि ने बडे साहस के साथ प्रश्न किया। यदि हमारे मीणो के हमलो से—जिनको रोक सकने की क्षमता आज हममे नही है—जोधपुर की फौज हमारी सीमा के भीतर प्रवेश करती है और हमारी सीमा के अन्तर्गत अपनी चौकियाँ कायम करती है, जैसा कि किया भी गया है तो जोधपुर की पहाड़ी जातियों से पड़ोसियो को जो नुकसान लगातार पहुँच रहा है, उसका उत्तर मारवाड़ के पास क्या है ? यदि हमारे मीणो के हमलो के अपराध मे हमको मारवाड़ की अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश किया जा सकता है, तो मारवाड़ की पहाडी जङ्गली जातियों के आक्रमण करने के अपराध मे मारवाड के सम्बन्ध में क्या होना चाहिए ? मारवाड़ और जोधपुर के पास इस प्रश्न का क्या उत्तर है ?

मारवाड़ की तरफ से सभी प्रमाण बडी बुद्धिमानी के साथ रखे गये थे। लेकिन सच्चाई न होने के कारण उनके धराशायी होने मे देर न लगी। मैं मारवाड की राजनीति को भली भाँति समझ रहा था। मैं जानता था कि मारवाड के अधिकारी सिरोही की स्वाधीनता के साथ खेलवाड कर रहे हैं। इसे अन्याय समझकर मैंने सिरोही की स्वतन्त्रता को सुरक्षित बनाने मे पूरी शक्ति से काम लिया और इस कार्य मे भी मुझको सफलता मिली। इस ईमानदारी और सच्चाई के बदले मुझे जोधपुर के राजा और उसके चापलूस मुसाहिबो की घृणा का शिकार होना पडा। देवडा राजपूत मेरे इस कार्य से सन्तुष्ट हुए, उन्होंने कृतज्ञता प्रकट की। लेकिन शङ्काओ का भूत उनके दिमागो मे बना रहा और इसके कारण भी थे। उनकी भूमि और सीमा का विभाजन नही हुआ था।

गवर्नर-जनरल मार्कुइस हेस्टिंग्स का इरादा था कि राज्यो और रियासतो के

सभी आपसी झगडो को शान्त कर दिया जाय। उनकी इस अभिलाषा मे जोधपुर के राजा के होने वाले अपमान का प्रतिकार भरा हुआ था। वह देवडा राजपूतो पर जो आधिपत्य कायम करना चाहता था, उसमे उसको सफलता नही मिली। इसलिये हेस्टिंग्स का इरादा किसो प्रकार उसको शान्ति और सन्तोष देने का था।

मैंने गवर्नर-जनरल के मन्सूबे को भली-भाँति समझ लिया था, अतएव एक सुझाव देते हुये मैंने कहा कि इसके लिये एक आसान तरीका है और वह यह कि जोधपुर के राजा से पिछले दस वर्षों की वसूली का हिसाब तलब कर लिया जाय और उसकी एक निश्चित रकम उसको ब्रिटिश सरकार से बराबर मिलती रहे।

मेरा यह सुझाव जोधपुर के राजा के अधिकारो को भविष्य में अरक्षित बनाने का काम कर रहा था। न्याय की इस कसौटी पर कसे जाने के लिये वह राजा तैयार नही हुआ। यद्यपि मैंने अपना यह सुझाव जाहिरा तौर पर उसके पक्ष मे उपस्थित किया था। लेकिन यह तो उसी दशा मे सम्भव हो सकता था, जब उसके साथ कुछ भी ईमानदारी होती। सच्चाई तो उसमे कुछ थी नही। इसलिये उसको अपने चारो तरफ खाईं दिखायी दे रही थी।

मैंने अपना यह सुझाव अपनी सरकार के सामने रखा। मेरा अभिप्राय यह था कि ऐसा होने से सिरोही पर किसी प्रकार का आर्थिक बोझ नही आता और न उसकी स्वाधीनता को किसी प्रकार आघात पहुँचता है। इसमे राज्य और रियासत—दोनों की सुरक्षा होती है। मेरे सुझाव को अमली जामा पहनाया गया। लेकिन जोधपुर का राजा मान नियमित रूप से वसूली का कोई हिसाब नही दे सका। उसका कारण यह था कि उसने सिरोही में कभी कर तो वसूल किया नही था। आवश्यकता पडने पर झगडे और फसाद करके जबरदस्ती कुछ वसूल कर लेते थे। ब्रिटिश अधिकारी इस बात से डर रहे थे कि आगे चलकर इन दोनो के बीच फिर कोई सङ्घर्ष पैदा न हो जाय। इसलिये दोनो के मध्य एक सन्धि की गयी और एक निश्चित रकम जोधपुर को वार्षिक सिरोही से दिलाकर हमेशा के लिये झगडा शान्त कर दिया गया। सिरोही अब अपने सभी मामलो मे स्वतन्त्र है और उस समय से वह ब्रिटिश सरकार की अधीनता मे है।

उस सन्धि के बाद सिरोही की हालत बदलने लगी। वहाँ के युवक राव ने अपने कर्त्तव्यो का पालन किया। अपराध और आक्रमण करने से मीणा जाति को रोक दिया गया है। सम्पूर्ण रियासत मे सुरक्षा के लिये चौकियाँ कायम की गयी है। किसानो, गृहस्थो और व्यापारियो को अभय पत्र देकर विश्वास करा दिया गया है कि उनको अब किसी भी खतरे से बेफिक्र हो जाना चाहिए। पूरी रियासत जो उजाड हो रही थी, फिर से आबाद हुई। लुटेरे और आक्रमणकारियो के भय से जो किसान खेती नही करते थे, उन्होंने निर्भय होकर खेती करना आरम्भ किया। जो व्यापारी सिरोही

रियासत मे व्यापार करना चोरो के घरो मे अपनी धरोहर रखना समझते थे, उन्होंने व्यापार आरम्भ कर दिया। रियासत मे दूकानदारो का पता नही था, अब वहाँ पर दूकाने खुल गयी हैं और जो मीणे लोग गिरोह बनाकर लूट-मार किया करते थे, वे सब भले आदमी बनकर सबके बीच मे आते-जाते और अपना काम करते हैं।

इस प्रकार छोटे और बडे कार्य न जाने कितने मैंने यहाँ पर किये हैं। सिरोही की तरह का एक भीषण सङ्घर्ष भीलवाडा मे भी था। उसका वर्णन मैं राजस्थान के इतिहास में कर चुका हूँ। देवडा राजपूतो और पहाडी जाति के मीणा लोगो के चरित्र बहुत भयानक थे। ये मीणा जो उस सन्धि के बाद मनुष्य बन गये, पहले चीतो के समान खतरनाक थे। उनके आतङ्क चारो तरफ फैले हुए थे। वे न तो स्वयं सुखी थे और न दूसरों को वे सुख शान्ति से रहने देते थे। इन जङ्गली जातियों को कैसे मनुष्य बनाया गया, इसे देखकर लोग आश्चर्य करेगे। जो लोग मनुष्य जाति के हितैषी हैं, मैं उनको अपना एक परामर्श देना चाहता हूँ कि जो जातियाँ किसी प्रकार हमारे संरक्षण मे आ जावे, उनके सुधार-कार्य मे हमको बहुत धैर्य और सहनशीलता से काम लेना चाहिए। किसी के विद्रोह करने पर भी बुद्धि से काम लेने की आवश्यकता होती है। उचित और अनुचित का ज्ञान हमको बुद्धि के द्वारा ही होता है। यदि उसका प्रयोग न किया जाय तो फिर मनुष्य और पशु मे क्या अन्तर रह जाता है।

विद्रोही को दण्ड दिया जाना चाहिये। लेकिन उसके सुधार की दृष्टिकोण से। यदि ऐसा न किया गया तो विद्रोह शान्त होने की अपेक्षा प्रज्वलित भी हो सकता है और उसको शान्त करना उसी दशा में सम्भव हो सकता है, जब समझ से और दूरन्देशी से काम लिया जाय।

मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि जो प्रान्त और प्रदेश ब्रिटेन के अधिकार मे आये हैं, उनको नियन्त्रण मे रखने के लिये दण्ड देने की जो व्यवस्था की गयी है, उसमें बुद्धि की अपेक्षा बर्वरता से अधिक काम लिया गया है। हमे यह कभी न भूलना चाहिए कि न्याय को भूल जाने वाला कभी भी सफल शासक नही हो सकता। जो सबल और शक्तिशाली होता है, उसको न्याय और सहानुभूति से काम लेना पडता है। शासन करने वाली जातियाँ यह भूल जाती है कि मनुष्य मे कर्त्तव्य-पालन का ज्ञान स्वाभाविक रूप से नही होता। उसकी प्रवृत्तियाँ उकसाकर विरुद्ध आचरण के लिये मजबूर कर देती हैं। ऐसी दशा मे बड़ी समझदारी से काम लेना पडता है।

तलवार के बल पर चलने वाला शासक स्थायी नही होता। लेकिन इस सत्य का ज्ञान शासको मे रह नही जाता। गवर्नर जनरल से लेकर छोटे-से-छोटे सरकारी कर्मचारी भी शासन करते हुए तलवार का ही प्रयोग करना चाहते हैं। इन अपराधो को जो सही-सही नही समझते, वे सारा अपराध उस पर मढते हैं, जो वास्तव मे अपराधी नही होता। कितने लोग इस बात को जानते है कि अधिकारियो के इन अपराधों

में हमारी इङ्गलैण्ड की सरकार का हाथ नही है। वह प्रजा का अनिष्ट नहीं चाहती। लेकिन उसके कानूनो को अमल मे लाना तो उन अधिकारियो का काम होता है, जिनको जुम्मेदारी दी जाती है।

शासन के मूल में और उसके अधिकारियो मे एक बडा अन्तर रहा करता है। प्रत्येक अधिकारी-छोटा और बडा-अपने कार्यों की सफलता दिखाकर सरकार से प्रशंसा प्राप्त करने के लिए बेचैन रहा करता है। और सरकार भी ऐसे अधिकारियो की सफलता को देखकर प्रसन्न होती है। इन परिस्थितियो मे सरकार की वही अवस्था होती है, जो अवस्था उस परिवार की होती है, जिसका कोई बेटा, भतीजा अथवा कोई व्यक्ति जायज और नजायज—किसी भी तरीके से नौकरी के द्वारा धन पैदा करके लाता है और उस धन को पाकर परिवार के लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, वे नही जानते की इस धन के प्राप्त करने मे उसको कितना अधिक अन्याय एवम् पाप करना पडा है।

शासन की बागडोर जिनके हाथो मे होती है, अपराधी वास्तव मे वे ही होते हैं। शासन की व्यवस्था करते हुए लोग न्याय और अन्याय बहुत कम देखते हैं और जब कभी उनके कार्य-सचालन मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होती है तो उसका विनाश कर दिया जाता है। लेकिन ऐसा नही होना चाहिए और न हमारी सरकार का यह उद्देश्य है।

किसी जाति अथवा देश के विजय करने मे विजेता की एक क्रमबद्ध योजना होती है। उसके अनुसार विजित लोगो मे उस योजना का प्रचार और प्रसार किया जाता है। वह योजना किसी भी विजित जाति और देश को राजनीतिक दासता से मुक्ति दिलाने की तरफ ले जाने का कार्य करती है। शासन मे आज बहुतो ने हमको अपने जीवन का एक लक्ष्य मान लिया है। लेकिन मानव जाति का हित इस प्रकार के शासन के द्वारा आसानी के साथ नही पनपता। उसके साधनो में योग्यता के स्थान पर अयोग्यता का ही अधिक प्रयोग होता है।

प्रजा पर जब करो का बोझ इतना बढ जाता है कि उससे उनकी गरीबी लगातार बढती जाती है तो हम यह कहने का साहस किसी भी दशा मे नही कर सकते कि हमारे शासन का बोझ अधिक और असह्य नही है। इस दशा मे कोई कुछ करें, हम तो स्पष्ट रूप से यह कह देना चाहते हैं कि हमारी सरकार के द्वारा प्रजा से वसूल करने के लिए जो कर लगाये जाते हैं, वे प्रजा के आर्थिक ढाँचे को उठाने के लिए नही, बल्कि सरकारी खजाने भरने के लिए लगाये जाते है। आज अर्से से भारत हमारी सरकार के सम्पर्क मे हैं और इन दिनो मे जो कुछ यहाँ पर सरकार की तरफ से किया गया है; वह किसी से छिपा नही है। ईमानदारी के साथ यहाँ की पहले की परिस्थि-

तियो का आज के जीवन के साथ मुकाबिला किया जाय तो जो अन्तर सामने आता है, उस पर धूल नही डाली जा सकती ।

इस देश में जिन भागो का संरक्षण हमारे द्वारा हो रहा है, उसका सामाजिक विकास आज किसी से छिपा नही है । रोम ने जो राष्ट्रों की जननी है—योरप के दूरवर्ती प्रदेशो को जीतकर अच्छी आबादी कायम की, लोगो के जीवन को विकसित करने की चेष्टा की, जिन प्रान्तो और प्रदेशो को जीता, उन्हे अपनी सरकार मे शामिल किया और उनको गौरव प्रदान करने के लिए अनेक प्रकार के साधनो की व्यवस्था की । शिक्षा का विस्तार किया, व्यवसाय की वृद्धि की और उनमे एक अच्छा जीवन पैदा किया । इन सभी बातों ने योरप में रोम के अच्छे शासन का प्रमाण दिया । एक अच्छे शासक को ऐसा करना चाहिए । ब्रिटेन ने प्रजा के हित में क्या इस प्रकार किया है और यदि नही किया तो उसमे जिम्मेदारी किसकी है ?

हम ऊपर लिख चुके हैं कि शासको और शासन के अधिकारियो मे प्रायः एक बड़ा अन्तर पाया जाता है । हमारी सरकार की भावना भारत की प्रजा को सुखी और सम्पन्न बनाने की है । लेकिन उसकी वह भावना उसी दशा में सफल हो सकती है, जब हम लोग उसी भावना से काम लेगे । हमारे आने के पहले इस देश की सामाजिक और राजनीतिज्ञ-किसी प्रकार की सुरक्षा नही थी । यहाँ के लोग आपस मे लूटमार करते थे । एक जोरदार, कमजोर का खून चूसा करता था और देश की इस अवस्था मे बाहर की जातियो ने आकर जिस प्रकार लूटमार की थी, वह परिस्थिति किसी से छिपी नही है । मराठो के हमलो से और उनकी लूट से राजस्थान भयानक रूप से वीरान हो चुका था । उन्ही दिनो मे इङ्गलैण्ड के अंग्रेजो का यहाँ आगमन हुआ और सरकार के अधिकारियो ने यहाँ की सुरक्षा कायम करने की कोशिश की लेकिन जो कुछ किया गया, उतना सब काफी है ?

इस देश का शासन प्राप्त करने में तलवार को महत्व दिया जाता है । उसके सम्बन्ध मे मैं यहाँ पर एक उदाहरण देना आवश्यक समझता हूँ । इस देश की प्रजा में जो कानून हम चलाने की चेष्टा करते हैं, उनकी रचना इङ्गलैण्ड मे हुई है । वहाँ के रहने वाले अँग्रेजो को यहाँ के निवासियो का अधिक अनुभव नही है । जब तक देश की प्रजा का अनुभव नही होता, उसकी आवश्यकताओ का ज्ञान नही होता, उस समय तक कोई भी शासक प्रजा के साथ अच्छी भावना रखते हुए भी अपने ऐसे कर्त्तव्यो का पालन नही कर सकता, जिसमे राजा और प्रजा दोनो का हित हो ।

इङ्गलैण्ड से जो लोग गवर्नर होकर इस देश मे आते हैं, उनको एक ऐसी नयी दुनियाँ का सामना करना पडता है, जिसकी भाषा, बोली, आवश्यकता और रहन-सहन—सभी से वे अपरिचित होते हैं और इससे भी अधिक अनजान वहाँ की प्रजा अपनी सरकार और अधिकारियो से होती है । दोनो के बीच एक सामञ्जस्य और समन्वय कायम

करने के लिए कुछ समय की आवश्यकता पडती है। उस समय के पहले ही वे गवर्नर वापस चले जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे आ जाते हैं।

भारत जैसे महान और विशाल देश के जन-समूह के लिए ऐसे कानून बनाना, जो यहाँ की अव्यवस्था को बदलने मे सफल हो सके, यह कार्य साधारण नही है। इस देश मे भी अनेक प्रान्त और प्रदेश हैं, उनकी बोली और वाणी, एक दूसरे से भिन्न है। उनकी प्रवृत्तियाँ भी प्राय: एक दूसरे के विरोध का काम करती हैं। इस दशा मे और देश की इन परिस्थितियो मे प्रजा का हित करने मे आसानी से सफलता नही मिल सकती। यहाँ की वर्तमान व्यवस्था मे बहुत परिवर्तन की आवश्यकता है। जो राज्य हमारे सरक्षण मे आ चुके हैं, उनके साथ संधियाँ करके हम अपने अच्छे व्यवहार कायम कर सकते हैं और उनके बिगडे हुए रास्तो को अच्छा बना सकते हैं।

यहाँ के राज्यो मे भी बडी भिन्नता है। एक होने पर भी उनमे परस्पर सद्भावना और शुभचिन्तना नही है। इसलिए एक बडा भारी कार्य यह है कि किसी स्थायी व्यवस्था के द्वारा इन राज्यो की आपसी प्रतिकूलता दूर की जाय और उनको एक रूप-रेखा मे लाने की कोशिश की जाय। ऐसा किया जा सकता है लेकिन उसमें शासन के साथ-साथ सद्भावना की अधिक आवश्यकता है। (१)

---

(१) मैंने अपने इन विचारो को बहुत पहले लेख के रूप मे तैयार कर लिया था। उसके बाद मुझे मिस्टर मैकाले के उस भाषण को पढने का सयोग और सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो भारत की समस्या पर दिखाया था। मैकाले ने अपने उस भाषण मे उन अनेक समस्याओ पर प्रकाश डाला था, जिन पर मैं स्वय अपने विचारो को जाहिर कर चुका था और उनकी पाण्डुलिपि तैयार करके छपने के लिए प्रेस मे भेजने वाला था। वे विचार इस प्रकार हैं—जहाँ तक मैं समझता हूँ, किसी दूसरे देश को कानूनो की इतनी अधिक आवश्यकता नही है, जितनी कि भारत को। यहाँ के न्यायकर्ता को सबसे पहले यह समझने की जरूरत है कि यहाँ पर किन कानूनो को लागू करना है और यहाँ की प्रजा को यह समझ लेने की आवश्यकता है कि उसको किन कानूनो की अधीनता मे रहना है। मैं पूरे तौर पर समझता हूँ कि यहाँ के विभिन्न नियमो और कायदो को मिलाकर एक करने मे और उन्हे सबके लिए हितकर बनाने मे उसी दशा मे सफलता मिल सकती है, जब कि उस एकीकरण के द्वारा किसी भी जाति और धर्म को आघात न पहुँचाया जाय। यह एक बहुत बडी आवश्यकता है। सबसे पहिले अपने इस उद्देश्य को समझ लेने की जरूरत है। हम किसी जाति और धर्म को चोट पहुँचा कर कोई बडा कार्य नही कर सकते। यह बात सही है कि हम कोई नई योजना किसी पर जबरदस्ती लादना नही चाहते और न हम किसी को ठेस पहुँचाना चाहते हैं। सब की भलाई को सामने रखकर हमको कानून बनाने और उनको बर्तने की जरूरत है।

अब हम देवड़ा रियासत के विषय मे कुछ लिखना चाहते हैं। यह रियासत हमारे किसी साधारण अङ्गरेजी प्रान्त से बडी नही है। इसकी लम्बाई सत्तर मील और चौड़ाई पचास मील है। इसकी जमीन का एक बड़ा भाग पहाडी है और जो हिस्सा बराबर जमीन का है। वह रेगिस्तान का किनारा पड़ता है (१) और वह किसी कदर रेतीला भी है। रियासत के पहाडी हिस्से मे कितनी ही उपजाऊ घाटियाँ हैं। रेतीले और समतल जमीन मे मक्का, गेहूँ और जौ अधिक पैदा होता है।

इसके सभी झरने अरावली और आबू पहाड से निकले है। इन झरनो के द्वारा रियासत कई भागो मे बँट जाती है। इसकी सीमा नक्शा देखने से साफ-साफ समझ में आती है—पूर्व मे अरावली पहाड है, उत्तर और पश्चिम मे मारवाड के पश्चिमी जिले गोडवाडा और जालोर है। पश्चिम की तरफ पालनपुर को रियासत है। यह रियासत अब ब्रिटिश सरकार के अधिकार मे है।

वादशाहत के दिनो में जब गुजरात सबसे अधिक सम्पन्न तथा धनी सूबो में गिना जाता था, उन दिनो मे सिरोही का अपना एक अलग से महत्व था। इसलिए कि समुद्री किनारे के भागो से राजधानी और भारत के दूसरे वडे-बडे नगरो मे जाने वाले व्यापारी लोगो के काफिले इसी सिरोही मे ठहरा करते थे। यही कारण है कि हर्वर्ट, (२) ऑलिरियस, (३) डेलावेले बर्नियर, (४) और थीवनाँट आदि सभी यात्रियों ने अपनी यात्रा-सम्बन्धी पुस्तके मे सिरोही के वर्णन किये हैं। इन यात्रियों मे किसी ने

---

(१) ऐसा मालूम होता है कि सिरोही रियासत का नाम उसकी भौगोलिक स्थिति के अनुसार रखा गया है। सिर अर्थात् ऊपरी भाग और रोही अर्थात् जङ्गल इस प्रकार बना सिरोही।

(२) यार्क निवासी सर थामस हर्बर्ट ने सन् १६२६ से १६२६ तक पूर्वी देशो की यात्रा की थी, जिसका वर्णन उसने "सम ईयर्स ट्रैवेल्स इन्टु एशिया एण्ड अफ्रीका" नामक अपनी पुस्तक मे किया है और उसको वह पुस्तक सन् १६३४ ईसवी मे प्रकाशित हुई थी। पूर्वी देशो की यात्रा सम्बन्धी पुस्तको मे यह पुस्तक अत्यन्त श्रेष्ठ मानी जाती हैं।

(३) एडम ऑलिरियस जर्मनी मे "ड्यूक आफ हाल्स्न" का पुस्तकाध्यक्ष था, इसके पश्चात् उसने कई सरकारी पदो पर रहकर काम किया।

(४) पीटर डेलावेले बर्नियर नामक यात्री इटली का रहने वाला था। सन् १६२३-२४ मे उसने वादशाह जहाँगीर के समय हिन्दुस्तान की यात्रा की थी। उसका पश्चिमी भारत की यात्रा का वर्णन वहुत अच्छा है। उसके जीवन चरित्र के साथ, उसकी यात्रा का वर्णन एडवर्ड ग्रे ने दो भागो मे प्रकाशित किया था और वह प्रकाशन लन्दन से १८९२ ईसवी में हुआ था।

भी राजपूतो का वर्णन करते हुए किसी प्रकार की प्रशसा नही की। ऐसा मालूम होता है कि उन दिनो मे लूटमार की सभी आदतें इन राजपूतो ने अपने मातहत मीणा लोगों से सीख ली थी और उनके उस समय के इन आचरणो का किसी यात्री पर अच्छा प्रभाव नही पडा। उस समय मे राजपूत ऐसा क्यो करते थे, इसको समझने और खोजने की उन यात्रियो ने चेष्टा नही की। हुआ यह कि जो कुछ उनके सामने आया और जो कुछ उनको सुनने तथा जानने को मिला, उसी को सत्य समझकर उन लोगो ने अपनी यात्राओ के वर्णन मे लिखा।

वह जमाना मुगल बादशाहो का था। बादशाह के कार्यकर्ता और अधिकारी लोग अनियन्त्रित रहकर लोगो से धन वसूल करने का काम करते रहते थे। इस प्रकार के अत्याचार मारवाड के उन राजाओ की तरफ से भी कम नही हुए थे, जिन्होंने बादशाह की मातहती मजूर कर ली थी और जो रियासतें उनसे कमजोर थी, उनको वे लूटा करते थे। इस प्रकार के कितने ही कारणो से वहाँ की रियासतो का सही तौर पर विकास नही हो सका।

इस रियासत के स्थानीय महत्व का कारण था। आबू पर्वत का सरक्षण यहाँ के राजा के अधिकार में था। उस पर्वत पर जो मन्दिर थे, उनमे भारत के सभी स्थानो से जैन-धर्मावलम्बी आया करते थे। उन मदिरो में जाने का प्रयास इन यात्रियो मे किसी ने नही किया। यह एक आश्चर्य की बात है। यह सम्भव नही है कि उन मन्दिरो की प्रसिद्धि से वे जानकार न हुए हो। इन विख्यात स्थानो की अवहेलना करना किसी अच्छे यात्री का काम नहीं है और इस प्रकार के विवरण का अभाव यात्रा का एक बडा अभाव होता है। फ्रांसिस बर्नियर एक प्रसिद्ध अङ्गरेज यात्री था। सन् १६५६ से १६६८ ईसवी तक उसने मुगल दरबार में रहकर वह एक चिकित्सक की हैसियत से मरीजो का इलाज करता रहा। यात्रा-सम्बन्धी इसके दो ग्रन्थ प्रकाशित हुए—"ट्रैवेल्स इन दि मुगल इम्पाइर" (१६५६—१६६६) और "बर्नियर ट्रैवेल्स,।"

इसी प्रकार जीन डी थीवनॉट भी प्रसिद्ध यात्री था। १६३३ ईसवी में वह पेरिस में पैदा हुआ था। वह भूगोल और भौतिक विज्ञान के अध्ययन का अधिक प्रेमी था। उसने अनेक स्थानो की यात्रा की थी। जहाँ पर वह गया था, उनके सभी प्रकार के विवरण उसने लिखे है। ३४ वर्ष की अवस्था मे ही उसकी मृत्यु हो गयी। मरने के दस बारह दिन पहले तक वह अपनी यात्रा के विवरण लिखता रहा। उसके इन लेखों को ठीक करके उसके दो मित्रो ने प्रकाशित कराया था।

दूसरे दिन उस रियासत मे ठहर कर मैंने राव से मुलाकात की और भेंटो का आदान-प्रदान किया। इस मौके पर राव के सभी सरदार एकत्रित थे। राजा के सम्मान मे इस प्रकार महत्वपूर्ण समारोह कदाचित पहले कभी नही हुआ था। माणिक राय के वशज के तोशाखाने मे जिस प्रकार की सामग्री की कमी थी, उसको समझकर मैंने

अपनी सरकार की तरफ से नजराना पेश किया। ऐसा करने मे हमे अधिक खर्च नही करना पड़ा। इसलिए कि जवाहिरात और कीमती पोशाके तो मुझे मेवाड के राणा जी के यहाँ से भेटो मे मिली थी। उनके सिवा, कीमती साज से सज़ा हुआ एक हाथी, एक घोडा, जवाहिरात से जडी हुई मोतियो की माला, एक कीमती सिरपेच और अच्छी सख्या में ढाले, दुशालो, पारचो, मलमल के थानो अच्छो पगडियो, साफो और कितने ही योरप के बने हुए कपडो से भरा हुआ थाल, भेट मे दिया गया।

दोपहर के समय मैं वापसी मुलाकात के लिए उनके पास गया। उस समय वे अपने दरबारियो के साथ, मेरे खेमे की आधी दूर तक मुझे लेने के लिए आये और अपने महलो तक वे साथ ले गये। वहाँ पर जो बैठक हुई। उसमे शान्ति की व्यवस्था पर, शत्रुओ के आक्रमणों की सुरक्षा पर और ब्रिटिश-सरकार का संचरण प्राप्त करने पर परामर्श होता रहा अन्त मे भेंटो को सामने लाया गया। मैंने उनको स्वीकार करते हुए कहा कि इन सब चीजो को यही इस समय रहने दिया जाय, बाद मे मैं यहाँ से ले लूंगा। पूर्वीय देशो में भेटो के लेने-देने में ऐसा प्रायः होता है और यह तरीका एक प्रथा के रूप में है। इसलिये जो सामान मुझे भेटो मे देने के लिये लाया गया था, वह तोशाखाने में वापस भेज दिया गया।

राव श्योसिंह सत्ताईस वर्ष का जवान लड़का था। उसका कद छोटा था। उसकी मुखाकृति से बुद्धिमत्ता का परिचय नही मिलता था। उसके बदन का रङ्ग गोरा था और देखने-सुनने मे बुरा नही था। लेकिन उसके शरीर मे वह शौर्य था, जिसको चौहान जाति अपना वैभव मानती है। उसमे शासन के अनुभव की कमी मालूम होती थी। उसका कारण था। अब तक उसने अपनी जिन्दगी मे मीणा लोगो, कोलियो और अपने पडोसी जोधपुर के भयानक लोगो के हमलो का मुकाबिला किया था और उसको अपने ये दिन नीमाज़ मे ठाकुर के छल-फरेबो मे व्यतीत करने पडे थे। शान्ति और सन्तोष का जीवन बिताने के लिये उसे अवसर ही नही मिला था। इन सङ्कटो और कठिनाइयो ने उसको अपने जीवन मे अनुभव प्राप्त करने का और शान्ति पूर्ण जीवन व्यतीत करने का मौका नही दिया था।

नीमाज़ के सरदार की शत्रुता का परिणाम अब तक राव श्योसिंह के महलो में मौजूद था, जहां पर वह सरदार एक जङ्गली जानवर की तरह आकर घुसा था और उसने वहाँ की सभी सजावट की कीमती चीज़ो को टुकडे-टुकडे कर डाले थे। वह सरदार स्वभाव से ऐसा ही था। इसलिये कि एक बार उसने विद्रोही जोधपुर की सहायता से अपने स्वामी के विरुद्ध सेना लाकर आक्रमण किया था। उसका अभिप्राय राव को पदच्युत कराने का था और राठौर नरेश दोनो को इस प्रकार लड़ाकर अपनी अधीनता मे लाना चाहता था। सरदार की वह योजना सही और मौके की नही थी। अन्यथा

उस सरदार ने राव की रियासत पर अधिकार कर लिया होता। लेकिन सन् ८०७ ईसवी मे जो सन्धि हो चुकी थी, उसने उसको सफल नही होने दिया।

सिरोही की रियासत विस्तार मे बडी है। उसके मकान खूबसूरत और ईंटों से बने हुये हैं। लेकिन आबादी में अब भी लगभग आधे मकान खाली पडे है। पानी बीस हाथ से लेकर तीस हाथ के नीचे पाया जाता है। राव का महल एक छोटी सी पहाडी की ढाल पर बना हुआ है। लेकिन उसके निर्माण मे किसी प्रकार की सुन्दरता का आभास नही होता। देवडा राजपूतो का आबू प्राकृतिक किला है। परन्तु राव मान के मरने के बाद—जिसको विष दिया गया था—इस किले की वही हालत हो गयी थी, जो चित्तौर की हो गयी थी।

सिरोही राजस्थान के उन राज्यो मे से एक है। जो यह मानते हैं कि राज्य करने का हमारा दैवी अधिकार है और उनका यह अधिकार उनके वशजो के लिये पूर्ण रूप से सुरक्षित रहता है। ये लोग इस बात को कभी नही सोचते कि अपने कर्त्तव्यो का पालन न करने से जो प्रजा में एक अशान्ति उत्पन्न होती है, उसके फलस्वरूप बडे-बडे राज्य उलट दिये जाते हैं। देवडा राजपूतो के यहाँ एक इस प्रकार का उदाहरण मौजूद है। इन राजपूतों के वर्तमान शासक राव के बडे भाई को सरदारो और नागरिको ने मिलकर सिहासन से उतार दिया था। इसका कारण यह था कि उसके अत्याचार बहुत बढ गये थे और वह सरदारो तथा नागरिको की स्त्रियो के सम्मान को भी नष्ट करने के प्रयास आरम्भ कर दिये थे।

उसके आचरण यही तक पतित नही हुए थे। जब उसको एक बार किसी प्रकार जोधपुर ले जाया गया था, उस समय उसने देवड़ा राजपूतो की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाने के सम्बन्ध मे भी सकोच नही किया था। उसके इस प्रकार के आचरण देखकर उसे सिहासन से उतारा गया और आजीवन कैद मे रखने का निर्णय किया गया।

राव श्योसिह को उसके स्थान पर सिहासन आरूढ कराया गया। युवक श्योसिह की योग्यता और उदारता का इससे अधिक अच्छा क्या प्रमाण हो सकता है कि वह अपने अयोग्य और कैदी भाई के साथ पूरे तौर पर दया का भाव रखता है और उसके सम्बन्ध मे कोई अनुचित व्यवहार न किया जाय, इसके लिये वह बराबर प्रयत्नशील रहता है। इसलिये कि जिस राजा को सिहासन से उतार दिया जाता है, उसको दण्ड के रूप मे प्राय: मृत्यु की सजा मिलती है।

सिरोही की मालगुजारी से होने वाली आमदनी शान्ति के दिनो में तीन लाख रुपये से लेकर चार लाख रुपये तक वार्षिक होती है। और लगभग इससे आधी आमदनी रियासत को जागीरदारो से हो जाती है। इस रियासत मे पाँच बडे जागीरदार हैं—नीमाज, जावाला, पारिया, कालिन्द्री और बोआडिया। ये पाँचों जागीरे राजधानी से

चौदह से बीस मील की दूरी पर हैं। सिरोही को आबू के संगमरमर से अधिक व्यापारिक आमदनी होती है। वहाँ की तलवारे भी श्रेष्ठ मानी जाती हैं, ठीक उसी प्रकार, जैसे फारसी और तुर्क लोगो में दमिश्क की तलवार। सिरोही की तलवार हिन्दुस्तान मे बड़े सम्मान के साथ खरीदी जाती है। काठियावाड़ी घोडे पर सवार, हाथ मे भाला, और सिरोही की तलवार देवड़ा राजपूत की निर्भरता का परिचय देती है।

मैं चाहता था कि देवड़ा राजपूतो की वंशावली यहाँ से आरम्भ करूँ, परन्तु यह विषय मुझे बहुत जटिल मालूम हुआ और यह भी मालूम हुआ की हमारे अंग्रेज पाठको को यह वंशावली बहुत रूचि कर न मालूम होगी। साथ ही मुझे इसका भी ख्याल हुआ कि अजमेर के राजा माणिक राय के पूर्वजो के विषय में एक विस्तृत विवरण हम राजस्थान के इतिहास मे दे चुके हैं। उसके पहले की जो सामग्री हमको प्राप्त होती है, वह कोरी काल्पनिक है, उसमे इतिहास के सत्य और तथ्य नही पाये जाते। इस प्रकार की पुरानी सामग्री ग्रीक, रोमन, फारसी और राजपूत—सभी के सम्बन्ध मे पायी जाती है। उस सामग्री मे इतिहास नही होता, कवियो की कल्पनाये होती है। उनके साथ इतिहासकारो और इतिहास-प्रेमियों की कुछ भी रूचि नही होती।

पौराणिक सामग्री जो मिलती है और भाट लोग समर्थन करते हुए जिसे गाते हैं, वह इस प्रकार है—

देवड़ा राजपूतों की वंशावली सतयुग से आरम्भ होती है, जब मनुष्य की आयु एक लाख वर्ष की होती थी और उसका कद बीस हाथ का होता था। उन दिनो मे हस मनुष्यो की तरह बाते करते थे, उनको वाणी का-वरदान मिला हुआ था।'

इस प्रकार पौराणिक वर्णन पाये जाते है, जिनके साथ इतिहास के किसी पाठक की ममता नही हो सकती। इसके आगे और पीछे जो सामग्री पढ़ने को उन पुराणो मे मिलती है, वह इतिहास के पृष्ठो में स्थान पाने के योग्य नही होती।

वंशावली की खोज मे जब हम पौराणिक कथाओ के पृष्ठ उलटते हैं तो उनमे आपसी युद्ध, घरेलू सघर्ष, राक्षसी व्यवहार और गुप्त हत्याओ के सिवा और कुछ नहीं मिलता, यह सामग्री कल्पित घटनाओ के रूप मे रोमाञ्चकारी बनाकर तैयार की गयी है, जो किसी कहानी लेखक अथवा चमत्कारी कवि के काम की हो सकती है, एक इतिहासकार अथवा विचारक उस प्रकार की सामग्री के द्वारा अपने मस्तिष्क को खराब

करना पसन्द न करेगा। जिनको सत्य से कोई मतलब नहीं है और जिनका अध्ययन केवल मनोरंजन के लिए होता है, ऐसे लोग उस पौराणिक सामग्री को पसन्द करेंगे, जो सत्य पर प्रकाश डालने के बजाय आश्चर्य चकित करने का ही काम करती है।

प्राचीन काल के उपाख्यानो के आधार पर भाटो ने विभिन्न वशो की वंशावली तैयार करके जो सुनाने का एक व्यावसायिक कार्य कायम किया है, उसमे मनोरजन है, आमोद है और प्रसन्न करने की सामग्री है। जो लोग इसी को इतिहास समझते हैं, वे दूसरो को नही, अपने आप को धोखा देते हैं।

इसलिए यहाँ पर देवडो की वशवली देने का विचार मैंने पूर्ण रूप से छोड दिया है।

पाँचवाँ प्रकरण

मन्दिर, पुजारी और पण्डे

मेरिया के जैन मन्दिर—सीरोरिया का झरना—आबू पर्वत की चढ़ाई—ऊँचे शिखरों पर पहुँचने के लिए इन्द्रबाहन—रात में पहाड़ो पर गीदडो और लोमड़ियों की आवाजें—बुद्धि मन्दिर की पूजा—पहाडो पर विभिन्न प्रकार के वृक्ष—हिन्दुओ के गणेश देवता—पुजारियो की लूट—हिन्दू देवताओ की सवारियाँ—आबू पर्वत के विचित्र दृश्य—मन्दिरो के महन्त—पहाडों के झरने—अघोरी और उनका पुराना सम्प्रदाय—जैनियो और अन्य लोगों के मन्दिर।

१० जून—मेरिया : साढ़े ग्यारह मील। दस मील तक सीधा रास्ता चलना पडा। प्रारम्भ के पाँच मील का रास्ता एक घाटी से होकर गया है। वहाँ बहुत दिनो से खेती के लिए हल नही चलाया गया। आजकल वहाँ पर चारो तरफ जङ्गल दिखायी देता है।

पहले मील के साथ-साथ पालड़ी ग्राम के करीब एक छोटे-से नाले को पार किया। उस नाले का कोई नाम नही था। उसके बाद चौथे मील पर एक झरना पार करना पड़ा। वह झरना आबू की चोटी से निकलकर कालिन्द्री के सरदार के निवास-स्थान से होते हुए सूकड़ी तक बहकर लूनी नदी मे जाकर मिल जाता है।

पाँचवे मील पर हम घाटी के दाहिने तरफ मुडे। उसके दक्षिण के आखीर में सिदुढ़ नाम का एक ग्राम है। यहाँ से आबू की पूर्वी ढाल पर दो मशहूर गाँव दाँता और नेटोरा थे जो एक दूसरे से पाँच मील के फासिले पर है। यहाँ तक हमारे मार्ग की दिशा दक्षिण ५०° थी, अगले तीन मील तक द० १५° प० की ओर हमको घूमना पडा। वहाँ पर हमने सिरोही के मार्ग को हमीरपुर गाँव के पास पार किया। वहाँ पर एक चट्टान थी। उसके एक तरफ बहुत ऊँचा ढेर था, जो एक खम्भे की सूरत मे दिखायी देता था और कुछ फासिले से वह एक छोटा-सा मीनार मालूम होता था। वह पहाड के नाम मशहूर था।

वहाँ से हमारा मुकाम तीन मील के फासिले पर मेरिया मे था। पहाड़ियो के बीच मे वसा हुआ यह एक पुराना गाँव था। वहाँ पर कम से कम पाँच जैनियो के मदिर थे। वह गाँव तीन भागो में वँटा हुआ था, एक भाग खालसा कहलाता है।

उसका लगान राज्य की तरफ से वसूल किया जाता है। दूसरा भाग एक देवडा जागीर-दार का है और तीसरा भाग किसी भाट को मिला हुआ है। आबू का सबसे बडा हिस्सा अब द० ७०° पू० से द० १५° पू० को था।

	८ बजे प्रातः	दोपहर	तीन बजे शाम	६ बजे शाम
वैरोमीटर	२८°७१	२८°७१	२८°६५	२८°६२
थर्मामीटर	८६°	६४°	६८°	६४°

११ जून—पालडी: सात मील छै फर्लांग पर। आरम्भ के चार मील द० ५५° प० दिशा मे जाकर हम सुनवेरा नामक गांव मे पहुँच गये। वहाँ से आबू का सबसे ऊँचा भाग द० ८५° पू० से द० मे है और उसकी सबसे ऊँची चोटी द० पू० मे है। दो मील और चलने पर नीची वाली श्रेणी मे सरोरिया गांव में पहुँच गये। वहाँ पर हमने दूसरा झरना पार किया। उस स्थान से दक्षिण की तरफ दो मील चलने पर हम अपने मुकाम पालड़ी मे पहुँच गये। उसके उत्तर मे उसी के नाम की एक छोटी-सी नदी है, जो पहली नदी की तरह आबू की दरारो से निकलती है। उसकी सीमाये उ० ७०°पू० और द० ५०° के बीच मे है। सबसे ऊँचा शिखर उस स्थान से द० ७०° पू० मे चार मील अथवा पांच मील की दूरी पर है। सवेरे ८ बजे, दोपहर मे १ बजे और ३ बजे और फिर शाम को ६ बजे वैरोमीटर क्रमशः २८° ७५, २८°७०, २८° ६५ और २८° ६५ पर था। एवम् थर्मामीटर ८६°, ६६° ६८° और ६२° पर था। मेरे पास एक दूसरा थर्मामीटर था उसका मैं विश्वास कम करता था। शाम को ६ बजे २८° ४३ वता रहा था। इस तरह उससे २२ का अन्तर पडता था। लेकिन बाद में देखनेसे मालूम हुआ कि मैंने जिस थर्मामीटर पर विश्वास किया था, वह सबसे अधिक गलत था।

इसके पश्चात् हम आबू के करीब आ गये और उसके एक सुविधाजनक स्थान पर अपना खेमा लगवाया। उस स्थान पर चौबीस घन्टे ठहरना और उन चट्टानो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करना, जिनके ऊपर हमे पहुँचना था, हमारे लिए साहस का कार्य था।

सारा दिन उस पर्वत पर चढने के सम्बन्ध मे तैयारियाँ करने मे व्यतीत हुआ। इस साहसपूर्ण चढाई के लिए बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता थी। सिरोही के राव ने अपने चालीस मजवूत आदमियो को इसलिए हमारे पास भेजा था कि वे मुझे और मेरे आदमियो को उठाकर चोटी पर ले जायेंगे। उन आदमियो के पास दो सवा-रियाँ थी। उनको वे इन्द्रवाहन कहते थे। उन सवारियो मे दो लम्वे बाँस थे और उनके बीच मे एक फुट लम्बी-चौडी बैठने के लिए चौकी थी। उस पर बैठकर कोई भी आदमी उस पहाड पर पहुँच सकता था, जो बोध पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। स्वास्थ्य

अच्छा न होने के कारण मुझे इन आदमियो की सहायता लेने में किसी प्रकार का असमजस नही हुआ।

उन आदमियो के पास जो दूसरी सवारी थी, वह हमारे उस गुरू के काम मे आ गयी, जो हमारे साथ था और यहाँ के मन्दिरो के दर्शन करने के लिए आया था। हमारा सारा समय उन लोगो के साथ बाते करने और अपने उद्देश्य की पूर्ति के सम्बन्ध मे विचार करने में व्यतीत हुआ। उसके बाद रात आरम्भ हुई। कुछ समय के बाद गीदडो की आवाजें और लोमडियो की तेज बोलियाँ शुरू हुई। मैं बडी सावधानी के साथ उनकी इन आवाजो को सुन रहा था। ऐसा मालूम हो रहा था कि वे लोमड़ियाँ अपनी बोली और भाषा मे जङ्गल के जानवरो को खबर दे रही थी कि शिकार होने के लिए कुछ लोग अपने-आप इस पहाडी जङ्गल मे आ गये हैं और शिकार के लिए यहाँ के जानवरो को इससे अच्छा मौका फिर न मिलेगा।

मैं थका तो था ही। दूसरे दिन वही फिर यात्रा का कार्यक्रम था। इसलिए विश्राम प्राप्त करने के अभिप्राय से मैं भी अपने स्थान पर पहुँच गया।

१२ जून—मैंने क्रेमलिन (१) मे जो भी देखा है और अलहम्ब्रा (२) के सम्बन्ध में जो कुछ जाना है, उन सबसे बढकर यहाँ दो महल मुझे बहुत पसन्द आये। एक तो आम्बेर का दूसरा जयपुर का। तीसरा महल जोधपुर (३) का भी है, जो अपनी प्रतिष्ठा रखता है। परन्तु पश्चिमी रेगिस्तान के करीब आबू के जैन-मन्दिर है। उनके लिए लोगो का कहना है कि वे इन सभी से बहुत श्रेष्ठ है। यह धारणा बिशप हेबर (४)

---

(१) रूसी भाषा मे क्रेमलिन का अर्थ राजदुर्ग होता है। वहाँ का सबसे अधिक प्रसिद्ध क्रेमलिन (दुर्ग) मास्को का है। वह एक पहाडी के ऊपर माँस्कवा नदी के सामने बना हुआ है और एक ऊँची दीवार से घिरा हुआ १०० एकड़ मे फैला हुआ है।

(२) स्पेन का राजमहल, एक पहाडी पर ग्रानाडा नदी के सामने है। उसके भीतर अद्भुत कारीगरी देखने को मिलती है।

(३) आमेर के प्राचीन महलों को महाराजा पृथ्वीराज ने (१५०३-१५२७ ई०) बनवाया था। बिशप हेबर ने आमेर के उन राजमहलो को देखा था। जयपुर के महल भी महाराजा सवाई सिंह के बनवाये हुए हैं। जोधपुर का राजदुर्ग, जोधपुर राज्य के सस्थापक राव जोधा ने सन् १४५६ ई० मे बनवाया था।

(४) रेनाल्ड हेबर का जन्म सन् १७८३ ई० मे हुआ था। वह एक विद्वान कवि था। पैलेस्टाइन नामक कविता पर उसको ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रथम पुरस्कार मिला था। १८२३ मे वह कलकत्ता का बिशप होकर आया था। सन् १८२६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरने के बाद उसकी एक पुस्तक का सम्पादन उसकी विधवा पत्नी एमिला ने किया था, जिसका प्रकाशन सन् १८२८ ई० में हुआ था।

की है, जिसने सबसे पहले भारतीय विषयो की जानकारी ब्रिटिश जनता को करायी थी।

सबेरे के चार बजे से ही मेरे खेमे मे तैयारियाँ होने लगी। उसके आध घण्टे के बाद मैं अपने घोडे पर सवार हो गया। मेरे गुरू और वैरोमीटर दाहिने बाये थे। हमारे पहाडी साथी पोछे पीछे चल रहे थे। उनके पास इन्द्रवाहन सवारियाँ थी और टोकरो मे खाने पीने का समान भरा हुआ था। वे चीजे ऐसी थी, जो ब्राह्मणो और जैनियो के लिए भी परहेज वाली नही थो।

मेरे माथ जो सिपाही थे, उनमे हिन्दू, ब्राह्मण और राजपूत भी थे। वे सभी मेरी सहायता के लिए आये थे लेकिन उनके आने का मुख्य उद्देश्य वुद्धि की पूजा करना था और जो पूजा वे उसके मन्दिर मे ही करना चाहते थे।

हम लोग पूरे एक घण्टे तक उस जङ्गल के टेढे-मेढे रास्ते में भटकते रहे। वे जङ्गली रास्ते पहाड को चारो तरफ से घिरे हुए थे। रास्ता न मिलने पर मैं वहाँ से लौटकर उस स्थान पर आया, जहाँ से चढाई आरम्भ हुई थी। वहाँ पर मैंने वैरोमीटर एक तिपाई पर लटकाया और देखा कि वह-२८'५५ वता रहा था। उससे मालूम हुआ कि समतल भूमि के कम से कम ऊँचाई से दस सेकेण्ड कम थे। प्रातः काल ६ वजे हमने चढाई की तरफ चलना आरम्भ किया और सात बजकर वीस मिनट पर उस चढाई के देवता गणेश के मन्दिर पर पहुँच गये, वह स्थान गणेशघाट कहलाता है।

वहाँ तक पहुँचने मे हम लोगो को वहुत परिश्रम करना पडा, कुछ विश्राम प्राप्त करने और अगले रास्ते के सम्बन्ध मे समझने-बूझने के लिए हम चौथाई घन्टा वहाँ पर ठहरे। मेरे माथ के सिपाहियो और राहतियो ने यानी आवू के जङ्गली निवासी लोगो ने मन्दिर के पास के छोटे-से झरने के जल से-जो गणेशकुन्ड अथवा वुद्धि का झरना कहलाता है—अपने सूखते हुए गलो को तर किया। उस झरने का जल एस्फाल्टोइटीज (१) के जल की तरह गधक मिला हुआ खारी था।

मेरे साथ जो पहाडी लोग आ गये थे, उनका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। वे अपने शरीर मे काफी मजवूत और साहसी थे। मेरा ध्यान पहले से ही उनकी ओर था। मैंने देखा कि वे एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर वडी खूबसूरती के साथ पहुँच जाते हैं और कई गज गहरे गड्ढो को वे लोग आसानो के साथ लाँघ जाते हैं। उनके इस साहस और पुरुपार्थ को देखकर मैं वहुत प्रसन्न होता। वे लोग अपने इन्द्रवाहनो को लांघने के समय मजवूती से पकड़ लेते थे, क्योंकि वे ऐसे मौको पर लचक जाते थे। चट्टानो और

(१) स्विटजरलैण्ड का एक झरना, जिसका जल खारी, गधक मिश्रित और चूना मिला है। अस्पल (वालू-बजरी) मिश्रित होने के कारण उसको एस्फाल्टाइटीज कहा जाता है।

गढ्ढो के स्थानो पर भी वे लोग बिना किसी संकोच और भय के चल रहे थे। उनकी इन हालतों से हमारे साथ का वृद्ध गुरू बहुत नाराज होता। इसलिए कि वह दुबला-पतला और कमजोर आदमी था। वह चाहता था कि ये लोग चट्टानों को पार करने और गढ्ढो को लाँघने में तेजी न करे और सावधानी से कदम उठावे। गुरू की इन हिदायतो पर वे लोग ध्यान नही देते थे। इसलिए गुरू लगातार उन लोगो की शिकायतें करता रहा। उसका शिकायत करना ठीक ही था। उन आदमियो की चालो से बेचारे गुरू की हड्डिवों को तकलीफ पहुँचती थी। जब गुरू उनकी शिकायत करते तो वे पहाड़ी लोग हँसते और जवाब देते हुए कहते—पहाड़ो पर चढना और बैकुण्ठ की सीढ़ियाँ पार करना बराबर होता है।

ये पहाडो लोग राहती कहलाते हैं और वे अपने-आपको राजपूत कहते हैं। जो लोग मेरे साथ थे, वे अधिक तो परमार राजपूत थे, शेष लोग चौहान और परिहार जाति के थे। उनमे सोलंकी एक भी न था। यदि इस अवसर पर उस जाति के लोग भी होते तो हमारे पास अग्नि कुल के चारो वशो के लोग होते, जो पुराणो के आधार पर अपनी उत्पत्ति आवू के अग्नि कुण्ड से बतलाते है। उनका कहना है कि जब दैत्यो अथवा आदिवासी (टीटन्स) (१) लोगो ने शिव की पूजा करने वालो को यहाँ के देवगिरि से भगा देने के लिए युद्ध आरम्भ किया था।

जो पहाडी लोग हमारे साथ थे, वे प्रतिष्ठित राजपूतो की अपेक्षा पहाड़ो की जङ्गली जातियो से अधिक मिलते-जुलते थे। इसका कारण इन लोगो का पहाड़ी जातियो के साथ रहन सहन है। उसके कारणो मे जलवायु का भी प्रभाव है। कम आमदनी होने के कारण इनके जीवन-स्तर बहुत गिरे हुए हैं। शरीर और उनकी अन्याय बाते उनकी गरीवी का परिचय देती हैं। यह भी सम्भव है कि ये अपनी गरीबी मे पहाड़ी जाति के साथ रहकर न केवल उनके ऊपरी जीवन से भिन्न हो, बल्कि उन जातियो के साथ रहते-रहते, दोनो के रक्त भी मिश्रित हो गये हो। यह असम्भव नही है कि इनके पूर्वज राजपूत रहे हो। लेकिन अपनी गरीबी और कगाली के कारण इनके पूर्वज पहाड़ो पर चले गये हो और वहाँ की जङ्गली जातियो के साथ रहकर और उनकी तरह काम-काज करके अपना जीवन-निर्वाह करने लगे हो।

पहाडो की इस चढाई मे बाँसो के पेड़ बहुतायत से मिलते हैं। थूहर के वृक्ष भी यहाँ पर कम नही हैं। यहाँ पर ऊँचे पेड़ नही दिखायी पडते। लोगो का कहना है कि थूहर के वृक्ष तो अरावली की विशेषता है। वहाँ पर एक झरना देखा, उसका जल एक तेज धारा के रूप मे निकलता था। इसका नतीजा यह हुआ था कि प्रवाह के लिए

(१) ग्रीक की पौराणिक कथाओ मे टीटन (आरम्भिक मनुष्यो) को जादूगर माना गया है और वे अपने जादू के चमत्कार से जो चाहते थे, कर लेते थे।

जल ने स्वयं पहाडी स्थानो को काटकर रास्ता बना लिया था। इस पहाड पर गुलाबी और बिल्लौरी पत्थर अधिक पाये जाते हैं। वे एक-से नही मिलते। कही पर दोनो प्रकार के पत्थर मिलते हैं और कही पर एक कम मिलता है और दूसरा अधिक मिलता है। दोनो प्रकार के मिलने वाले पत्थरो मे इस प्रकार के क्रम पाये जाते हैं। कुछ ऐसे पत्थर भी वहाँ पर मिलते है, जो इन दोनो प्रकार के पत्थरो से भिन्न होते हैं। इन पत्थरो की भिन्नता और भी कई प्रकार की है। कुछ भूरे और खुरदरे भी होते है और कही-कही पर स्लेटी रग के पत्थर पाये जाते हैं। इस प्रकार मिलने वाले पत्थर कुछ मोटे और कुछ पतले भी होते हैं।

मेरे साथ के गुरु बडे मजे के आदमी हैं। उनका नाम ज्ञानचन्द्र है और मैं उनको वैसे भी ज्ञान का प्रकाश मानता हूँ। इस पहाडी रास्ते के सम्बन्ध मे वे जो बातें बताते, वे बडे मनोरजन की होती। इस पहाडी चढाई का कोई रास्ता नही था। यहाँ की चट्टानो मे स्थापित गणेश माने जाते हैं। मेरा ख्याल यह है कि अगर पहाड की चढाई के आरम्भ मे ही इस देवता की स्थापना की गयी होती तो अधिक अच्छा होता। इस लिए कि गणेश-देवता को देखकर चढाई चढने वालो को शक्ति मिलती और उनका रास्ता बहुत कुछ सुलभ हो जाता। लेकिन गणेश की स्थापना यहाँ पर उस स्थान पर की गयी है, जहाँ चढाई की भयानक स्थिति लगभग खतम हो जाती है इसलिए देवता के भक्तो को जो शक्ति और सहायता मिल सकती थी, उससे उनको वन्चित हो जाना पडता है और वहाँ पर आकर वे अपने देवता के दर्शन करते हैं, जब उनकी यात्रा के कष्टो का खात्मा हो जाता है।

हिन्दुओ के पौराणिक ग्रन्थो मे इन देवताओ के विवरण बडे विस्तार के साथ लिखे हैं और प्रत्येक देवता की अलग-अलग प्रतिष्ठा और परिभाषा की गयी है। उन पुराणो मे किसी भी देवता का एक ही गुण बताया गया है। प्रत्येक देवता का अलग मन्दिर बताया गया है। मन्दिरो के पुजारियो और देवताओ की रूप-रेखा भी उन ग्रन्थो मे भिन्न भिन्न लिखी गयी हैं। इस प्रकार इन पुराणो ने सम्पूर्ण देश को, देवताओ और मन्दिरो का देश बना दिया है। इन देवताओ के साथ-साथ, इन पुजारि-यो की एक जाति बन गयी है।

इन पुजारियो की प्रतिष्ठा और परिभाषा कम नही है। भक्त लोग अपनी जेबो में जो रुपये-पैसे लेकर आते हैं, वे सब इन पुजारियो को जेबो मे चले जाते हैं और उन भक्तो की कमाई हुई सम्पत्ति लेकर ये पुजारी अपने उपदेशो के द्वारा उनके प्राणो मे पाप और पुण्य के नाम पर भयानक भय उत्पन्न करते रहते हैं। विभिन्न प्रकार के देवताओ के कार्यों और कर्तव्यो के सम्बन्ध मे इन भक्त लोगो को जो समझाया जाता है, उसको बिना समझे हुए उस पर विश्वास कर लेना और सिर झुका कर मान लेना ही एक मात्र काम होता है। पारसी लोगो के पुराणो मे भी उनके देवताओ के सम्बन्ध

मे कुछ इसी प्रकार की मिलती-जुलती बाते पायी जाती है, जिनके वर्णन मैं अपने राजस्थान के इतिहास में कर चुका हूँ ।

इस बौद्धिक देवता का मुख और मस्तक हाथी का मुख माना गया है। इसके सम्बन्ध मे व्याख्या करने की आवश्यकता नही है। देवताओ के सम्बन्ध मे कुछ इसी प्रकार की बाते प्रायः सर्वत्र पायी जाती हैं। लेकिन उसका वाहन चूहा माना जाता है, यह समझ मे नही आता। ग्रीक लोगो ने सरस्वती माइनीरवा के साथ उल्लू को जोडा है। वह बुद्धि को धारण करता है। लेकिन गणेश की सवारी मे चूहा क्यो माना गया है यह किसी प्रकार समझ मे नही आता।

कुछ विश्राम करने के बाद हम फिर आगे की तरफ बढ़े और बीच मे रुकते हुए दस बजे पठार के सबसे नीचे के भाग मे पहुँच गये। मेरे बैरोमीटर मे आज प्रातः काल से ही कुछ बढती के लक्षण दिखायी दे रहे थे, विशेषकर उसमें, जिस पर मैंने अधिक विश्वास किया था।

गणेश-मन्दिर पर मेरा यह बैरोमीटर २७° ६५ पर था, अर्थात् रेगिस्तान के मैंदानो से सिर्फ एक अंश यानी ६०० फीट ऊँचाई पर, लेकिन मुझे स्वय अपने नेत्रों से दिखायी दे रहा था कि हम अरावली के पठार से भी ऊँचे आ चुके हैं।

पहाड की चोटी पर पहुँचने के बाद यह बात और भी अधिक साफ हो गयी, जब कि दो घटे तक लगातार चढाई पर चलने के बाद भी पारा केवल ३०° पर ही बना रहा। उस समय बैरोमीटर २७° ३५ पर था। थर्मामीटर ७७° पर था। इसका अर्थ यह कि उस समय के मैदानी गर्मी से १५° कम था। इस तरह वह चढाई के सम्बन्ध मे ठीक-ठीक जानकारी दे रहा था। दो वर्ष पहले अरावली से मारवाड मे उतरने के समय भी मुझे पारा ने धोखा दिया था और उस समय घिरे हुए स्थानो की ऊँचाई के सम्बन्ध मे मेरा सन्देह वैसा ही बना रहा था। लेकिन उसके पश्चात् मैंने यह साबित कर दिया कि मारवाड के मैदान मेवाड के मैदानो से पाँच सौ फीट ऊँचे है। यही कारण है कि इस मौके पर मैंने दोनो नलियो को फिर से भरा। इसके पहले उसको साफ कर लिया था और चाल मे किसी प्रकार का अन्तर न आ सके, इसलिए पारा को चढाई के स्थान पर लाकर उसकी जांच कर ली थी। अब हम सत-शिखर की तरफ आगे बढ़े। वह अधिकाश चोटियो से ऊँचाई पर था।

हमारा रास्ता एक जङ्गल मे होकर गया था। उस जङ्गल मे करौदो और काँटो के तरह की बहुत-सी झाडियाँ थी और उन सभी मे विभिन्न प्रकार के फल और फूल थे। यहाँ पर करौदे के पेड अधिक संख्या मे थे और इन दिनो मे उसके फल पका करते है। इन जङ्गली फलो का जायका लेने के लिए हम स्थान-स्थान पर ठहर जाते थे। परिश्रम और थकावट के मौके पर ये फल खाने मे बडे अच्छे लगते थे। उनसे थकान और प्यास-दोनो की रोक होती थी।

कांटी का छोटा- सा फल भी खाने मे स्वादिष्ट था। लेकिन मैं उसमे पहले से परिचित नही था। इसलिए वह मेरे लिए नया था। करौदे के समान खटाई की ताजगी लाने का गुण नही था।

आधे रास्ते के बाद हम उरिया मे होकर निकले। यह आबू को चढाई की बारह ढाणियो मे से है। हम जितना ही आगे की तरफ बढ़ते थे, आबू की नयी और विचित्र चीजे सामने आती जाती थी। उसकी सुन्दरता और अनोखेपन की कोई सीमा नही थो। एक चीज खतम होती थी और दूसरी नयी सामने आ जाती थी। विविध प्रकार की वनस्पतियो से सारा मार्ग भरा हुआ था। उनके सम्बन्ध मे अधिक वर्णन अन्यत्र करने का हम प्रयास करेगे।

जब हम आबू की सबसे अधिक ऊँची चोटो पर पहुँचे, जहाँ पर अब तक योरप का कोई यात्री नही पहुँचा था, उस समय सूर्य आकाश के बीच मे पहुँच चुका था। लेकिन जब हम मारवाड के मैदान मे होकर गुजरे तो यहाँ पर पठार की सतह से सात सौ फोट की ऊँचाई थी। उस समय भी मेरा बैरोमीटर केवल १५° की ही ऊँचाई बता रहा था और अभी तक २७° १० पर हो रुका हुआ था। लेकिन थर्मामीटर ७२° पर आ गया था और बैरोमीटर की अपेक्षा सही रास्ता बता रहा था।

दक्षिण की तरफ से शीतल वायु तेजी के साथ चल रही थी। उसके कारण सर्दी बढ गयी थी और उससे बचने के लिए पहाडी लोगो ने अपने साथ की कम्बलियाँ ओढ ली थी। उस समय का एक दृश्य बडा अनोखा था। बादलो के समूह हमारे पैरो के नीचे नीचे आ गये थे और उन्ही मे से कभी-कभी सूर्य की किरण दिखायी दे जाती थी।

यहाँ की इस ऊँचाई पर एक छोटा-सा गोल चबूतरा है। उसके चारो तरफ छोटी-सी चार दीवारी बनी हुई है। उसके एक तरफ एक गुफा है। उसमे ग्रयानेट पत्थर के एक बडे भाग पर विष्णु के औतार भृगु के चरण-चिह्न बने हुए हैं। यहाँ पर आये हुए यात्री उनके दर्शन करके अपना अहोभाग्य मानते हैं। उसके दूसरी तरफ सीता सम्प्रदाय के प्रवर्तक और सचालक रामानन्द (१) की खडाऊँ हैं। यह स्थान अत्यन्त अन्धकार पूर्ण है। वहाँ पर उसी सम्प्रदाय का एक शिष्य रहता है। वह जब किसी

---

(१) रामानन्द स्वामी का अपना एक सम्प्रदाय है और उस सम्प्रदाय के स्वतंत्र रूप से कुछ उद्देश्य हैं। रामानन्द स्वामी ने सीता लक्ष्मण सहित श्रीराम की उपासना का एक विधान तैयार किया है। रामानन्द के सिद्धान्तो के अनुसार सीता को प्रकृति के रूप मे माना गया है। इसी प्रकार लक्ष्मण और राम के सम्बन्ध मे भी उस सम्प्रदाय की अपनी एक अलग से विचारधारणा है। इस सम्प्रदाय का मूल आधार सीता जी को माना गया है।

विदेशी को अपने यहाँ आया हुआ देखता है तो वह घंटा बजाने लगता है और यह घंटा उस समय तक बजता रहता है, जब तक उस विदेशी की तरफ से मन्दिर की भेंट चढाई नही जाती है। वहाँ के महात्मा के चारो तरफ यात्रियो के डण्डो का एक ढेर रहता है, जो इस बात का प्रमाण देता है कि आये हुए यात्रियों ने बिना किसी विघ्न के अपनी यात्रा समाप्त कर ली है।

पहाड के ऊपर कई स्थानों पर गुफाये देखने को मिली। उनसे प्राचीन काल की आबादी के कुछ संकेत मिलते हैं। कितने ही स्थानो पर गोल सूराख देखने को मिले उनकी तुलना तोपो के गोलो से होने वाले सूराखो के साथ दी जा सकती हैं।

उस स्थान पर रोशनी के मुकाबले अन्धकार अधिक था। मै धैर्य के साथ सारा दृश्य देखता रहा और उस सन्यासी के साथ बातें करता रहा। उसने मुझको बताया कि बरसात के दिनो में जब आकाश का वातावरण स्वच्छ और साफ हो जाता है तो यहाँ से जोधपुर का राजदुर्ग और लूनी पर बने हुए मकान एवं बालोतरा का रेगिस्तानी मैदान साफ साफ दिखायी देता है। उसके इस कथन की सच्चाई मे कुछ समझने मे कुछ समय की आवश्यकता थी। कभी-कभी सूर्य के निकलने पर सिरोही तक फैली हुई भीतरिल नामक घाटी और पूर्व की तरफ लगभग बीस मील के फासले पर बादलो से ढकी हुई अरावली की चोटियो मे अम्बा भवानी के मन्दिर को देखकर उसकी कही बात का अनुमान किया जा सकता था।

कुछ समय के बाद सूर्य अपने पूरे प्रकाश के साथ आकाश पर दिखायी पड़ा। उस समय हमारी नजर काले बादलो को पीछा करती हुई दूर तक चली गयी। उस समय का दृश्य गम्भीर था। फैले हुए आकाश मे एक अजीब नीरवता थी। अगर यहाँ के विस्तृत स्थान से नजर को दाहिनी ओर की तरफ को घुमाया जाय तो पर-मारो के टूटे हुए किले दिखायी देंगे। उसकी टूटी हुई दीवारो पर जब सूर्य की किरणें पडती हैं तो वहाँ का दृश्य पुरानी स्मृतियो को जागृत करता है। वहाँ पर एक खजूर का पेड़ है। वह काफी ऊँचा है और उसकी पत्तियाँ बहुत ऊँचाई पर जाकर उस वृक्ष के मस्तक को बताती हुई संकेत करती हैं। इसके कुछ ही दाहिने तरफ घने जङ्गलो के पीछे देलवाडा की गुम्बदे दिखायी पडती हैं। वहाँ पर और भी दृश्य हैं जो स्पष्ट होने लगते हैं।

यहाँ के पठार के धरातल पर कितने ही झरने बहते हुए दिखायी देते हैं। वे सभी अपने निकास के लिए जहाँ जैसा स्थान पाते हैं, ग्रहण कर लेते हैं और उनका जल ऊँचे-नीचे रास्तो से होकर जहाँ कही रास्ता पाता है, प्रवाहित होता है। यहाँ पर अनेक दृश्य सामने थे, सभी में प्रतिकूलता और भिन्नता थी। नीला आकाश, रेतीला मैदान, संगमरमर से बने हुए महल और प्रासाद एवम् विभिन्न प्रकार के छोटे-

बड़े भवन अपने अलग-अलग दृश्यो का परिचय देते हैं। पहाड़ की टूटी-फूटी चट्टानो और वहाँ के जङ्गलो के दृश्य ही दूसरी तरह के थे।

वायु जो चल रही थी, उसमें शीतलता थी। उसकी ठढक मे इस प्रकार के दृश्य देखने मे अधिक से अधिक आनन्द आता था। जो लोग ऐसे स्थानों पर पहुँचने का कभी कष्ट नही उठाते, वे इन प्राकृतिक दृश्यो की सुन्दरता को अनुभव नही कर सकते मेरे साथ के सभी लोग यहाँ के दृश्य देखकर प्रसन्न हो रहे थे, ऐसा मालूम पड़ता है, इसलिए कि हम लोगो मे कोई किसी से अधिक बाते नही कर रहा था।

इसी समय मुझे ख्याल हो आया कि अब हम लोगो के यहाँ से लौटाने का समय है। हम लोग बहुत अधिक चल चुके थे और थकावट अनुभव करते थे। यदि पहाड़ो के ये दृश्य देखने को न मिले होते तो कदाचित इतना परिश्रम करना सबके लिये सम्भव न होता। लेकिन जो विभिन्न प्रकार के दृश्य नेत्रो के सामने आये, उनसे न केवल मनोरंजन हुआ, बल्कि एक बड़ी ताजगी भी प्राप्त हुई। उसके परिणाम स्वरूप हम सभी लोग इस कठोर यात्रा को हसते और खेलते हुए पार कर सके। अब यहाँ से लौटना आवश्यक हो गया था। इसलिए कि हमारे ठहरने का स्थान अब भी यहाँ से दो मील की दूरी पर था।

लौटने के समय हमारे सामने उतार था। चढाई की अपेक्षा उतार की तरफ चलने मे बहुत कुछ आसानी होती है। इस सुविधा के साथ चलने मे भी दोपहर के बाद तीन बजे के पहले हम अचलेश्वर नही पहुँच सके। खुले स्थान मे बैरोमीटर २७° ८५, और थर्मामीटर ७८° पर था चार बजे उसका पारा ८२° पर पहुँच गया। उससे दिन की गर्मी के एक असाधारण परिवर्तन हो गया। बैरोमीटर मे भी उस समय ५° का परिवर्तन हुआ। अब वह २७° ९० पर था। साढे पाँच बजे यह २७° १७ पर और थर्मामीटर ७८° पर आ गया।

हमारा रास्ता सुगधित पेड़ो और वृक्षो के बीच से होकर गया था। इन स्थानो की सुन्दरता और उपयोगिता का वर्णन नही किया जा सकता, आज का मनुष्य उसे न समझे और अपने झूठे विश्वासो और ज्ञान के अभाव मे कृतिम निवास-स्थान की रचना करे, यह दूसरी बात है। लेकिन जिसको प्रकृति के सौन्दर्य को समझने का ज्ञान है, वह झूठे प्रपच मे कभी न फँसेगा।

पाखण्डी पण्डो की दासता मे फँसे हुसे भारतवर्ष के अगणित स्त्री-पुरुषो को देखा था और उनके अन्धविश्वास के सम्बन्ध में सुना भी था, न जाने कितना पढा था, परन्तु आज जो कुछ मैंने देखा, वह अब तक के सारे मामलो से विचित्र और अनोखा साबित हुआ। मैंने अभी तक पण्डो और पुजारियो को देखा था। उनके व्यव-सायो का अध्ययन किया था और जो कुछ उनके सम्बन्ध मे जानकारी हो सकी थी,

उस पर प्रायः विस्मय किया करता था। मैं सोचा करता था कि आज के युग में मनुष्य इस प्रकार के अन्धकार मे कैसे पड़ा हुआ है।

हिन्दुस्तान मे पण्डो, पुजारियो और साधु सन्तो के द्वारा जो पाखण्ड फैला हुआ है, वह इतने अधिक विस्तार मे है कि उस पर पूरे तौर पर प्रकाश डालने के लिए एक बडा स्थान चाहिए। लेकिन उन सबके आगे और भी ऐसे लोग है कि जो उनके सम्बन्ध मे धूल डालते है।

मेरा अभिप्राय भारत के अघोरी लोगो से है। इस देश में इनका एक अलग से सम्प्रदाय चलता है। मैं इस सम्प्रदाय को और उस सम्प्रदाय मे रहने वालो को बहुत अधिक पतित मानता हूँ। जङ्गल के पशुओ मे सियार नाम का एक जानवर होता है। मनुष्यो मे अघोरी को मैं वही स्थान देना चाहता हूँ। यद्यपि वह सियार इन अघोरियो से अनेक अर्थों मे अच्छा होता है। पशु होकर भी वह इतना अधिक गन्दा नही होता, जितने गन्दे ये अघोरी होते हैं। आधी रात को कब्रो और स्मशानो मे घूमने वाले अघोरी से कोई भी पशु स्वच्छ और साफ हो सकता है। इसलिए सियार जैसे पशुओ को भी दुर्गन्धि और सडान से घृणा होती है। परन्तु अघोरी लोगो को उससे भी घृणा नही होती।

अघोरी लोगो की बहुत विचित्र हालत होती है। उनकी तरह का पतित मनुष्य नही, कोई पशु नही मालूम होता। भूख के समय अघोरी के लिये मरा हुआ मनुष्य और मरा हुआ कुत्ता बराबर समझता है। उसके जीवन का पतन यही तक नही है। वह इससे भी बहुत आगे है। एक अघोरी मल और पाखाना भी खा लेता है और इसमे उसको कुछ भी घृणा नही होती। मैंने सुना था कि ये अघोरी लोग आबू मे ही नही, बल्कि दूसरे पहाडो की कन्दराओ और गुफाओ मे भी पाये जाते है। प्रसिद्ध द आनविले (१) ने इन आघोरियो को राक्षसो की एक जाति माना है। इन अघोरियो के सम्बन्ध

---

(१) द आनविले का जन्म १६९७ ईसवी मे पेरिस मे हुआ था। उसने प्राचीन भूगोल शास्त्र का अध्ययन करके बहुत-से खोज के काम किये थे, पुराने विश्वासो मे सही बातो का निष्कर्ष निकाला था और विभिन्न प्रकार के संशोधन किये थे। भौगोलिक परिस्थितियो में खोज की थी और जिनके सम्बन्ध मे सही प्रमाण नही मिलते थे, उनको उसने अपने मानचित्र मे स्थान नही दिया था। अपने अनुसन्धानो और संशोधनो को अधिक उपयोगी बनाने के लिये उसने १७६८ ईसवी मे अपनी एक पुस्तक प्रकाशित की थी, उसका अङ्गरेजी मे अनुवाद प्रकाशित हुआ था।

सन् १७७५ ईसवी में उसको भूगोल का एक विद्वान मानकर एकेडेमी आफ साइन्स का सभासद बनाया गया और बड़े सम्मान के साथ उसे राजकीय प्रथम भूगोल शास्त्री नियुक्त किया गया। जनवरी १७८२ ईसवी मे उसकी मृत्यु हो गयी।

मे उसने अपने देशवासी विद्वान लेखक थीवनाट के लेखो के उदाहरण देते हुए सन्देह प्रकट किया है। उसने लिखा है कि थीवनाट ने वहाँ के निवासियो मे ऐसी वीरता और साहसपूर्ण वहादुरी को अनुभव किया कि उनके करीव पहुँचने के लिये अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर जाना आवश्यक हो गया। वे उन लोगो से कुछ और अधिक आगे होते हैं। जिनको मुर्दाखोर अथवा मुर्दा खाने वाला कहते हैं। इस प्रकार की जानकारी पहले किसी यात्री को न थी। इससे जाहिर होता है कि इसके लिखने वाले को मुर्दा-खोरी के सम्वन्ध मे कोई जानकारी नही थी।

हिन्दुस्तान मे ये लोग अघोरी के नाम से प्रसिद्ध हैं, लेकिन उनके और भी नस्ल हैं। वे नाम दूसरे देशो की भाषा से सम्वन्ध रखते हैं। फारसी मे इन लोगो को मुर्दानखोर कहा जाता है। ग्रीक लेखको के द्वारा इस विषय मे जो विवरण पाये जाते है, उनसे भी पता चलता है कि इस प्रकार के लोगो का एक समुदाय बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा है। उस समुदाय मे लोगो से थीवनाट (१) और आनविले के सिवा आरिस्याटिल, टीटियस जैसे प्राचीन विद्वान अपरिचित नहीं रहे होंगे।

मैं आज के युग के एक मशहूर राक्षस की गुफा से होकर गुजरा। उस राक्षस ने आवू और उसके आस-पास के क्षेत्रो को वहुत भयभीत कर रक्खा था। उस राक्षस का नाम फतहपुरी था। वह बुड्ढा था, फिर भी जव कोई वहाँ पहुँच जाता तो वह उसको मार कर खा जाता।

कुछ दिनो के पश्चात् उस राक्षस ने अपने-आपको उसी गुफा मे समाधिस्थ करने का निश्चय किया। ऐसे लोगो के आदेशो का पालन वहुत जल्दी होता है। उसके निश्चय की पूर्ति की गयी। उसकी गुफा का द्वार वन्द कर दिया गया। इसके साथ ही यह भी निश्चय हो गया कि उस गुफा का द्वार उस समय तक वन्द रहेगा, जव तक कोई मृत शरीर की खोज करने वाला आकर उसे न खोले अथवा जव तक मस्तिष्क का अध्ययन हिन्दुओ की जानकारी का एक अङ्ग न वन जावे।

उसके सस्मरणो और शोधपत्रो की सख्या ७८ और मानचित्रो की सख्या २११ थी। डो मश्ने नामक एक प्रकाशक ने उसकी सम्पूर्ण कृतियो को प्रकाशित करने का निश्चय किया था। लेकिन सन् १८३२ ईसवी मे उसकी भी मृत्यु हो गयी। इसलिये वह प्रकाशक अपने जीवन काल मे उसकी दो ही रचनाये प्रकाशित कर सका।

(१) इस व्यावसायिक नगर मे पहले वे लोग रहते थे, जिनको नर-भक्षी, मुर्दों का माँस भक्षी अथवा इस प्रकार कुछ और कहा जाता था और अभी वहुत दिन नहीं बीते, जव यहाँ के वाजारो मे मनुष्य का माँस विका करता था और उसे लोग अपने खाने के लिये खरीदकर ले जाते थे।

—ट्रैवेल्स आफ एम० डी० थीवनाट

मुझे जाहिर किया गया कि अब भी ऐसे भाग्यहीन पहाड़ी गुफाओ में रहते हैं, वे कभी-कभी गुफाओ से बाहर भी निकलते हैं। परन्तु वे उन फलो अथवा खाने के पदार्थों की खोज में रहते हैं, जिनको लेकर राहती लोग उनके रास्तो में आते हैं।

इसी मौके पर मुझे एक देवड़ा के राजपूत सरदार ने बताया कि थोड़े दिन पहले जब वह अपने मृत भाई के शव को जलाने को लिये जा रहा था, उस समय एक दानव या राक्षस—जो अघोरी कहलाता है—अर्थी के सामने आया और यह कहकर कि इस शव की बहुत बढिया चटनी बनती है, मृत शरीर को माँगा। उस सरदार ने यह भी मुझे बताया कि ऐसे लोगो पर अर्थात् अघोरी लोगो पर आदमी के मारने का अपराध नही लगाया जाता। (१)

जैन मन्दिर के हाते मे अथवा उसके निकट किसी नर-भक्षक को गुफा का होना आश्चर्य की बात है। जैन सम्प्रदाय का सबसे पहला सिद्धान्त यह है कि मनुष्य की ही नही, किसी छोटे-से-छोटे प्राणी को मत मारो। जो सम्प्रदाय अहिंसा पर ही आधारित हो, उसके किसी मन्दिर के निकट ऐसी गुफा का होना निहायत विचित्र और आश्चर्य की बात है। अपने सिद्धान्तो के कट्टर—फिर चाहे वे शैव हो अथवा वैष्णव—किसी दूसरे सम्प्रदाय से कोई सम्पर्क नही रखते। कुछ यह भी होता है कि एक सम्प्रदाय के लोग, दूसरे सम्प्रदाय वालो के साथ साधारण व्यवहार और शिष्टाचार कायम रखते हैं। जब मनुष्य को ज्ञान नही होता, उस दशा में वह जो कुछ करता है, उसी को वह सही समझता है। अज्ञान के अन्धकार में पडे हुए लोग दयालु होकर घृणित अघोरी को भी खाने के लिये भोजन देते है और ऐसा करने मे वे कभी संकोच नही करते।

ओरिया और अचलेश्वर के मन्दिरो के बीच में हमे कितने ही छोटे-छोटे मन्दिर देखने को मिले। उनमे सबसे अधिक प्रसिद्ध नन्दीश्वर का मन्दिर था। उसके द्वारा एक बात की सच्चाई का आभास हुआ। जिसके सम्बन्ध मे अभी तक कुछ निश्चय नही हो सका था। हमने सुना है कि इन देवताओ की स्थापना विभिन्न तरीको से होती है और देवताओ की मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न अपना आकार-प्रकार रखती है।

यह मन्दिर, चम्बल के झरनो पर बने हुये गङ्गा-भ्यो और उदयपुर के निकट बने हुए मन्दिरो की बिल्कुल नकल मालूम होती है। इसको सादी किन्तु मजबूत बना-

---

(१) इस जाति का विशेष रूप से रहने का स्थान बडोदा है। वहाँ पर अब भी इस सम्प्रदाय की सरक्षिका अघोरेश्वरी माता का मन्दिर पुराने स्थान पर बना हुआ है। वह माता जीर्ण-शीर्ण स्त्री के रूप मे मनुष्य का भोजन करती है, ऐसा कहा जाता है। इस माता के भक्त लोग उस समाज के अन्तर्गत माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के मानने वालो की हालत यह है कि जो कुछ उनके सामने आता है। उसे वे खा लेते हैं, कच्चा माँस हो, पका हुआ हो, जिन्दा का हो या मरे हुये का हो, शराब हो अथवा उनका अपना पेशाब हो। उनके सामने परहेज की कोई बात नही रहती।

वट, उसके चौकोर खम्भे, जो देखने मे पुराने ढङ्ग के मालूम पड़ते हैं, विल्कुल उसी ढाँचे मे ढले हुये दिखायी देते हैं। उनको देखकर इस बात का विश्वास हो जाता है कि यह मन्दिर भी उन्ही दिनो मे कारीगरो के द्वारा बनाया गया है। वहाँ पर एक ही शिला लेख है। उससे यह साफ जाहिर होता है कि अनहिलवाडा के भीमदेव सोलङ्की ने इसका पुनरोद्धार कराया था।

लगातार साढे दस घन्टे तक चलते रहने के बाद दिन के तीन बजे तक रावमान के यहाँ पहुँचे और उनके कुञ्ज मे ठहरे। उनका यह स्थान उनकी छतरी और अग्निकुड के बीच मे था। यहाँ पर मैं एक जैन-धर्मावलम्बी वैश्य यात्री के सत्कार और सद्व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपनी रावटी मे विश्राम करने के लिये यह कहकर मजबूर किया—कि 'मुझे तो खुली हवा मे लेटना ही है। यदि आप इसको प्रयोग मे न लावेगे तो इसकी उपयोगिता बेकार हो जावेगी।' मुझे उसका यह तर्ज बडा प्रिय मालूम हुआ। क्या समझकर उसने मुझसे इस प्रकार आग्रह किया और अपनी मधुर तथा आकर्षक बातचीत से उसका प्रयोग करने के लिये मुझे विवश किया, मैं बडी देर तक गम्भीरतापूर्वक इस पर विचार करता रहा। मुझे इसके समझने मे देर न लगी कि उस जैन-यात्री के इस सत्कार मे हिन्दुस्तान का आतिथ्य सत्कार भरा हुआ है। यहाँ के लोग अपने पास आये हुये किसी भी देशी अथवा परदेशी का आदर करना खूब जानते हैं।

मैंने उसके आग्रह और अनुरोध को धन्यवाद देकर स्वीकार किया। मैं रात मे ओस को बहुत बचाता हूँ। यदि मैं उसका परहेज न करू तो निश्चय ही मुझे कोई शारीरिक कष्ट हो जाय और मेरी यात्रा का कार्यक्रम सङ्कट मे पड जाय। ऐसी हालत मे उसकी रावटी मे रात को लेटने से मुझे बहुत आराम मिला।

खेमे का सामान खोले जाने के समय तक मैं अचलेश्वर के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने के लिये बाते करता रहा। मैं जानता था कि हिन्दुओ के पुराणो मे अचलेश्वर की प्रसिद्धि बहुत है। इसलिये उसके गम्बन्ध की एक-एक बात को जानने और समझने की मैं कोशिश करता रहा।

मान अग्नि कुण्ड लगभग नौ सौ फीट लम्बा और दो सौ चालीस फीट चौडा है। वह एक मजबूत चट्टान को खोदकर बनाया गया है। उसके भीतर के हिस्से मे मजबूत ईटे लगाकर उसका निर्माण किया गया हैं। कुण्ड के बीच मे एक चट्टान पर जगत जननी माता के मन्दिर को देखा। वह बहुत कुछ गिर चुका था और अब एक खण्डहर के रूप मे रह गया था। कुण्ड के उत्तर की तरफ कितने ही छोटे-छोटे मन्दिर बने हुए हैं। उनका निर्माण पाण्डवो भाइयो के नाम पर किया गया है। उनकी हालत भी अब अच्छी नही रह गयी। मरम्मत न होने के कारण वे भी अब खण्डहर के सिवा और कुछ नही है।

मन्दिर, पुजारी और पण्डे

पश्चिम की तरफ अचलेश्वर का मन्दिर है। इस मन्दिर का देवता की रक्षा करने वाला देवता माना जाता है। उस मन्दिर मे भली प्रकार देखने और समझने की कोशिश की। उसके निर्माण मे मुझे कोई विशेषता नही मालूम हुई। सजावट की चीजे भी उसमे कुछ नही थी। उस मन्दिर की सादगी मुझे अधिक प्रिय मालूम हुई। मेरी समझ मे मन्दिर की सादगी, उसके सम्मान और महत्व की वृद्धि करती है। यह मन्दिर चौकोर जमीन पर बीच मे बना हुआ है। देखने से भी मालूम होता है कि यह मन्दिर बहुत पुराना है। इसके भीतर जाते ही देवी मीरा (१) की मूर्ति दिखायी पडती है। कहा जाता है कि वह देवी यहाँ के देवता की स्त्री है। नीचे एक चट्टान पर बना हुआ ब्रह्मखाल दिखलायी देता है। उसकी अनेक बाते है, जिनके सम्बन्ध मे बहुत-सी बातें यहाँ के लोगो से सुनने को मिलती है। उनको सुनकर और जानकर दर्शनार्थ जो भक्त लोग यहाँ पर आते है, वे अधिक आकर्षित और प्रभावित होते है।

मन्दिर के सामने एक बडे आकार-प्रकार मे पीतल का बैल बना हुआ है। उसके दोनो तरफ कुछ कटे हुए अथवा टूटे हुए स्थान देखने मे आते हैं, जो इस बात का सुबूत देते हैं कि पिछले किसी समय मे अहमदाबाद का बादशाह अथवा सुल्तान मोहम्मद बेगडा यहाँ पर आया था और धन के लोभ मे उसने मन्दिर के कुछ स्थानो को खोदवाकर मन्दिर को नष्ट करने की कोशिश की थी। उसको खजाना मिला या नही, इसका तो कुछ पता नही, लेकिन उसने जो इस प्रकार का अत्याचार किया था, इसका प्रमाण हमेशा के लिए कायम हो गया। कहा जाता है कि उस सुल्तान को इस अत्याचार का बदला मिल गया। जब वह आबू से उतर रहा था, उस समय वह एक घटना में शिकार होते-होते बच गया। वह घटना इस प्रकार है जिन बुर्जों के करीब से होकर वह निकल रहा था, उसमे से अगणित मधुमक्खियाँ एक साथ निकल पडी। उन सबने उस सुल्तान पर एक साथ आक्रमण किया। वह सुल्तान अपने साथ के आदमियो के साथ भागा और जालौर के आगे जाकर उसने साँस ली।

मधु-मक्खियो के इस आक्रमण से सुल्तान बडे सकट मे पड गया था लेकिन वह किसी प्रकार निकल गया। सुल्तान और उसके आदमियो पर शहद की इन मक्खियो के आक्रमण से बडी खुशियाँ मनायी गयी। मक्खियो के आक्रमण से बचने के लिए सुल्तान का भागना मन्दिर के पुजारियो और भक्तो में अपनी विजय के रूप मे माना गया। वहाँ पर इस विजय के स्मारक के रूप मे एक मन्दिर बनवाया गया, सुल्तान और उसके आदमियो के भागने पर उनके जो अस्त्र-शस्त्र गिर गये थे, उनको एकत्रित करके और उनको तोडकर एवम् गलाकर एक बहुत बडा त्रिशूल तैयार किया गया,

(१) इस ग्रन्थ के मूल लेखक ने यहाँ पर मीरा देवी की मूर्ति का उल्लेख किया हैं। यह मीरा कौन थी, यह स्पष्ट नही होता। —अनुवादक

जिसको मन्दिर के देवता के सामने स्थापित किया गया। इस प्रकार अपने देवता की सवारी नन्दी के अपमान का बदला लेकर वहाँ से साधुओ, महन्तो, पुजारियो और लाखो भक्तो ने उस त्रिशूल के सामने सिर झुकाना और उसे सम्मान देना आरम्भ किया। उस दिन से आज तक उस त्रिशूल की पूजा होती है।

वहाँ प्रधान मन्दिर के सामने और आस-पास, चारो तरफ छोटे-छोटे मन्दिर बने हुए हैं। उनमे से एक मंदिर के सामने की तरफ बाहर गहरे जल मे हजार फनवाले शेषनाग पर भगवान नारायण की मूर्ति तैर रही थी। यह दृश्य भविष्य मे किसी समय आने वाले प्रलय का भय भक्तो और दर्शको के दिलो मे उत्पन्न करता है। भगवान नारायण इस समय योगनिद्रा में है। उस निद्रा से जागने पर वे अपने-आपको सूखे स्थल पर पाते हैं। मैंने मन्दिर का वह स्थल देखा तो मेरी समझ मे कुछ आया नही। मैंने वहाँ के महन्त से पूछा—

मन्दिर मे जहाँ पर विष्णु भगवान को स्थान दिया गया है, क्या वह इस योग्य है, कि उसे भगवान को दिया जाय?

मेरी बात को सुनकर महन्त ने कुछ दबी जबान उत्तर दिया। मुझे तो चूने के लिए स्थान चाहिए था। मेरे पास और कोई स्थान नही था।

इसके बाद मैंने उस मन्दिर के भीतर जाकर देखा तो मैं आश्चर्य मे आ गया। उस पहाड से निकले हुए चूने का एक बहुत बडा ढेर उस मदिर के भीतर था और उस चूने के कारण मन्दिर की सारी अच्छाइयाँ नष्ट हो रही थी। मैंने क्षण-भर तक मन्दिर की भीतरी हालत देखी। मैं सोचने लगा, अगर इस महन्त का मतलब निकलता और जरूरत पडती तो यह भगवान के शङ्ख को पीस कर चूना बनाने मे सकोच न करता।

यहाँ पर पातालेश्वर का सबसे अधिक सम्मान है। स्वर्ग के सभी देवता पातालेश्वर के अधीन माने जाते हैं। उससे मालूम होता है कि पूजा की परिपाटी कितनी पुरानी है। ससार की समस्त असभ्य जातियाँ आदि काल से पूजा करती रही हैं।

मन्दिर से बाहर निकलने पर दरवाजे मे गधो की खुदी हुई मूर्तियो को देखा। उनकी मूर्तियाँ अच्छे ढङ्ग से नही गढी गयी थी। मदिर के बाहर चारो तरफ ऊँचे पेड खडे हुए हैं। उन वृक्षो मे आम के पेड प्रमुख हैं। उनके बीच-बीच मे अंगूरो की बेले हैं उन बेलो को कभी कलम नही किया गया। फिर भी उन बेलो मे खूबसूरत और मोटे-मोटे अंगूर लगे हुए थे। वे अभी कच्चे थे। लोगो से मालूम हुआ कि पहाड पर जो वृक्ष और फल हैं वे सब यहाँ की प्राकृतिक पैदावार है। किसी ने इनको लगाने और उपजाने की कोशिश नही की। उन वृक्षो के सिवा, चम्पा, चमेली, सेवती और मोगरा आदि के पेड भी थे, वे चारो तरफ एक बडी सख्या मे दिखायी देते थे। अचलेश्वर के

मन्दिर मे कोई शिला लेख नही था। लेकिन मुझको उसके पास ही तालाब मे शिला-लेख मिला, जिसकी मैंने प्रतिलिपि करवा ली।

इस मन्दिर की तरफ अग्नि कुण्ड के पास सिरोही के रावमान की छतरी बनी हुई है। राव का एक जैन-मन्दिर मे बलिदान हुआ था। (१) वहाँ के संगमरमर के पत्थर पर उनके मारे जाने का निशान बताया जाता है। कहा जाता है, कि वही पर उनकी मृत्यु हुई थी। उसके देवता के मदिर के सन्निकट उसका दाह-सस्कार हुआ था। उसकी पाँच रानियाँ उसके शव के साथ सती हुई। स्मारक के बीच मे एक वेदी पर उन रानियो की मूर्तियाँ खुदी हुई है। इस स्मारक की छतरी खम्भों पर आधारित है। उन मूर्तियो मे रानियो को हाथ जोडे हुए और आँखे नीची किये हुए दिखाया गया है। ऐसा मालूम होता है कि वे भगवान से प्रार्थना कर रही है। हमारे स्वामी के पापो की मुक्ति के लिये हमारी आहुतियाँ स्वीकार की जाय और उसको जमराजो से छुडाकर हिन्दुओ के वैकुण्ड में भेजा जाय।

उस मारे गये राव के पापो की मुक्ति के लिये उसकी पाँच रानियो ने अपने प्राणो की आहुतियाँ देकर, अपने स्वामी को, उसके पापो की मुक्ति के लिये और स्वर्ग भेजे जाने के लिये प्रार्थनाये की, उस स्वामी की, जो आम लोगो मे प्रसिद्ध निर्दय, सुरा पायी, अत्यन्त अन्यायी और दुराचारी था।

अग्निकुण्ड के पूर्व की तरफ परमार वश के सस्थापक आदि परमार के मन्दिर के अब खण्डहर भी गिर गये है। लेकिन आदिपाल की मूर्ति अब भी अपनी आधार शिला पर ज्यो की-त्यो खडी हुई है। उसको मैंने बडी श्रद्धा के साथ देखा। उस मूर्ति की सारी बाते प्राचीन काल की रहन-सहन और वेश-भूषा का स्मरण कराती थी। यह मूर्ति सगमरमर पत्थर की बनी हुई है और लगभग पाँच फीट ऊँची है। मैंने भारत में अब तक जितनी मूर्तियाँ देखी हैं, वह मुझको उन सबसे अच्छी मालूम हुई। इस चित्र में परमार एक तीर से भैसासुर को मार रहा है। इसलिये कि वह रात के समय अग्नि कुण्ड का पवित्र जल पी जाया करता था, कहा जाता है कि उसी की रक्षा के लिये परमार का जन्म हुआ था। तीर अब भी अपने निशाने पर लगा हुआ है, उसको देखकर परमार के अचूक बाण का सहज ही अनुमान होता है। उसने जिस स्थान पर मारने के लिये अपना तीर फेका था, ठीक उसी स्थान पर उसका तीर जाकर लगा और उससे तीन गहरे घाव हो गये।

---

(१) रावमान करे कल्ला परमार ने अपनी कटार का वार करके जान से मार डाला था। उसके मारे जाने पर, उसकी माता ने १६३४ वि० सं० मे ज्ञानेश्वर का मन्दिर बनवाया और उसमे सतही होने वाली पाँचो रानियो की मूर्तियाँ बनवाई।
—सिरोही राज्य का इतिहास

राक्षसो की बहुत सी मूर्तियाँ नष्ट हो चुकी हैं। वे मूर्तियाँ स्लेटी पत्थर पर बडे भद्दे तरीके से गढी गई थी और उन मूर्तियो मे उनके कोई विशेष चिह्न नही दिखाई देते थे। बाण मारते हुए अब तक परमार का दाहिना हाथ कान तक खिचा हुआ है। ऐसा मालूम होता है, जैसे वह अभी भी बाँण मारने की चेष्टा में है। उसकी भुजाये खुली हुई, कसीली और भली प्रकार गठित हैं। मूर्ति मे कलाई का मोड बडा खूबसूरत है। लेकिन उँगलियो का मुडना कुछ आवश्यकता से अधिक मालूम होता है।

मूर्ति मे परमार के सभी अग सुगठित दिखाये गये हैं, आकार प्रकार भी सुन्दर है। किसी मूर्ख ने धनुष के एक हिस्से को तोड दिया है। वह धनुष बांस का बना हुआ नही, बल्कि भैंसे के सीग से बनाया गया है। उसकी खिची हुई प्रत्यञ्चा देखने मे बडी अच्छी मालूम होती है। मूर्ति में परमार का मस्तक विशाल और सुन्दर है, उसमे और भी उसके प्राकृतिक लक्षण देखने को मिलते हैं। उसके शरीर पर एक घेरदार लम्बा-चौडा अँगरखा है, वह जांघो तक लटका हुआ है। उसको देखकर अरावली के रहने वाले लोगो के कपडो और अंगरखो की याद आती है, उस पर एक कमरबन्द है। उसमे कटार खोसी हुई हैं। हाथो और पैरो के आभूषणो के साथ तीन लडी की एक मोतियो की माला भी इस मूर्ति में दिखायी देती है।

मूर्ति की चरण चौकी के निम्न भाग में एक लेख था। परन्तु किसी मूर्ख ने उसके महत्वपूर्ण अंश, सम्वत् और साल को मिटा दिया है। वह इस प्रकार है—
"सम्वत् . . [मास फाल्गुण] बसन्त, बृहस्पतिवार, तिथि १३ कृष्णपक्षे, श्री . . ..रास सार्वभौम राजा अचलगढ की राजगद्दी पर बैठा। परमार श्री धारावर्ष (१) ने अचलेश्वर के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया।"

---

(१) धारावर्ष नाम कदाचित राजपूत कवियो (चरणो) के रूपक से लिखा गया है। यह धारा शब्द तलवार की तेज वार को प्रकट करता है और उसी के लिए यहाँ पर नाम के साथ धारा शब्द का प्रयोग किया गया है। शत्रु के सिर पर तलवार के आघातो को हिन्दू कवियो ने वर्षा के पानी की बूंदो के रूप मे वर्णन किया है। और अगर ऐसा नही है तो उसके नाम मे मध्य भारत की प्राचीन राजधानी धार के परमारो की शाखा का सम्पर्क प्रकट किया है। धारावर्ष ने अपने नाम की वास्तविकता का परिचय उस समय दिया जब आक्रमणकारी लोगो के सिर पर सिरोही की तलवार चल रही थी। फरिश्ता ने आबू के इस राजा की शूरता और वीरता का वर्णन बडी खूबसूरती के साथ किया है। उसको पढकर इतिहास के पाठक, हिन्दू और मुसलमान— दोनो ही बडे असमञ्जस मे पड गये है। धारावर्ष नाम के इन दोनो अर्थों मे कौन सही है, यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता।

कङ्कालेश्वर-मन्दिर के शिला-लेखो से धारावर्ष का समय सम्वत् १२६५ अथवा १२०६ ईसवी जाहिर होता है। लेकिन मुझको उस शाशक के सम्बन्ध में कुछ भी बातो की जानकारी नही है, जिसके नाम के साथ रास शब्द लगा हुआ है। इस समय के परमार राजपूत, जिनके छोटे-से राज्य में चन्द्रावती, आबू और सिरोही नामक तीन मशहूर नगर थे। वे अनहिलवाडा के राजाओ की अधीनता मे थे। मूर्ति की बनावट से इस बात का पता नही चलता कि यह लेख ठीक उसी समय लिखा गया था, अथवा आबू मे राज्य करने वाले अन्तिम राजा धारावर्ष ने अपने वश के आदि पुरुष के स्मारक मे इस मूर्ति का निर्माण कराया था। लेकिन उसके समय में कला का बहुत-कुछ पतन हो चुका था। (१) यह सम्भव है कि उसने इस स्मारक के द्वारा मन्दिर के जीर्णोद्धार की बात सोची हो और उसी भावना से उसने उसका निर्माण कार्य कराया हो।

हिन्दू भाटो की कविताओ मे प्राय: कुछ चीजो का सही,सही अनुमान हो जाता है। उन लोगो ने उसके साम्राज्य के विनाश का कारण राजनैतिक न मानकर नैतिक माना है। इसका सम्बन्ध है अचलेश्वर के रहस्यो के साथ, उनको खोजने मे एक अधर्म-पूर्ण कार्य किया गया था। यहाँ पर जो आख्यान मिलता है, उसमें कोई बात बहुत स्पष्ट नहीं मालूम होती। मुझसे लोगो ने जो कुछ भी कहा, उसे सुनकर मैं किसी सही नतीजे पर नही पहुँचा। इस तरह के आख्यान प्राय: अधूरे और स्पष्ट मिलते है अथवा उनके बताने वाले सही सही प्रकाश नही डाल पाते।

अचलेश्वर का आख्यान आबू और अग्नि वश के इतिहास के साथ पूर्ण रूप से सम्बन्ध रखता हैं। उस वश का शिव ने दैत्यो से युद्ध करने के लिए उस समय पैदा किया था, जब उन राक्षसो ने इस पहाड़ पर शिव के साथ अत्याचार करना आरम्भ किया था। कुछ इसी प्रकार का उपाख्यान टीटन लोगो (टीटन्स) के द्वारा (ज्युपीटर) के युद्ध के सम्बन्ध मे भी मिलता है। (२) उपाख्यान अलग-अलग है। परन्तु आधार एक-सा है। इसके सम्बन्ध मे स्पष्ट वर्णन राजस्थान के इतिहास मे किया जा चुका

---

(१) इस वर्णन से कुछ प्रतिकूल का आभास होता है। परन्तु इसी समय के जैन मन्दिरो मे बनी हुई मूर्तियाँ इसकी तरह सुन्दर और कलापूर्ण नही हैं। जिन लोगो ने दोनो स्थानो की मूर्तियो को देखा है, वे इसे स्वीकार करेगे।

(२) ग्रीक पौराणिक कथाओ के अनुसार टीटन स्वर्ग और पृथ्वी की आदि सन्तान माने गये हैं। उन कथाओ मे बताया गया है कि उनकी सख्या कुल दस थी— पाँच पुरुष और पाँच स्त्रियाँ। ज्युपीटर के अवैध पुत्र डायोनिसस की हत्या के षड्यन्त्र मे ये लोग ज्युपीटर की अवैध पत्नी जूनो के साथ शामिल हो गये थे। इसलिये ज्युपीटर ने युद्ध करके उनका अन्त कर दिया।

है। इसलिए यहाँ पर अर्वुद की उत्पत्ति के विषय में ही कुछ बातें जो पौराणिक कथाओ के आधार पर हैं, नीचे लिखी गयी हैं।

उस युग मे, जब मनुष्य पापो से बहुत दूर था और नैतिक विचार रखता था, यह स्थान अर्वुद शिव और उसके लाखो भक्तो का था। वे सभी इस स्थान को सबसे बडा देवस्थान मानते थे और शिव के दर्शनो के लिए एकत्रित होते थे। वे सभी ऋषि मुनि शिव के प्रतिनिधि वशिष्ठ मुनि का अध्यक्षता मे यहाँ पर रहकर और कद-मूल फल आदि खाकर एवम् दूध पीकर तपस्या करते थे। उन दिनो मे यहाँ पर पर्वत नही था और सम्पूर्ण अरावली की भूमि समतल थी। यहाँ पर एक बहुत विशाल कुण्ड अथवा जलाशय था, जो इतना गहरा था कि उसकी गहराई नापी नही जा सकती थी। उस कुण्ड मे मुनि की कामधेनु गौ गिर गयी थी। उसको चमत्कार तरीके से निकाला गया था। ऐसी दुर्घटनाये फिर न हों, इसके लिए मुनि ने वर्फीले कैलाश पर्वत पर रहने वाले शिव की आराधना की। मुनि की प्रार्थना सुनी गयी और हिमाचल को बुलाकर पूछा गया कि उनके वर्फीले स्थान से निकल कर अपने आत्म-त्याग का परिचय देने वाला कौन है? इसको सुनकर हिमाचल का छोटा लडका आत्म त्याग करने के लिए तैयार हो गया।

उस पुत्र के शरीर मे एक अभाव था, वह यह कि वह पुत्र लगडा था। इस-लिए चल सकने मे असमर्थ था। इसलिए साँपो का राजा तक्षक उसको अपनी पीठ पर बिठाकर ले जाने के लिए तैयार हुआ। उस तक्षक की सहायता से वह लडका वसिष्ठ मुनि के निवास-स्थान पर पहुँच गया और उसने अपने आने का समाचार बताकर मुनि की आज्ञानुसार उस गहरे कुण्ड मे कूद पडा। इसके लिये जो तक्षक उसे लेकर आया था, तैयार न हुआ और उसने उसके गिरने के साथ ही अपने शरीर के घेरे डाल-कर उसे लपेट लिया और उसको अपने साथ जकडे रहा। अपने इस बलिदान के साथ उसने प्रतिज्ञा की कि उसका नाम उस पर्वत के नाम के साथ सम्मिलित कर दिया जाय। उसी समय से इसका नाम अर्वुद पडा। अर अर्थात् पहाड और वुद अर्थात् बुद्धि जिसका अर्थ सर्प होता है। लेकिन या तो पर्वतो के पिता हिमालय को यह कुण्ड भरने के लिए परियाप्त नही मालूम हुआ अथवा किसी अन्य परिवर्तन से दुखी होकर तक्षक ने एक ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि एक भयानक भूकम्प आरम्भ हो गया और उस भूकम्प को रोकने के लिए वसिष्ठ को महादेव का स्मरण करना पडा। उस दशा मे शिव ने पाताल से अपना पैर पृथ्वी के केन्द्र तक फैलाया, जिससे उनका अगूठा पर्वत की चोटी पर दिखायी देने लगा। आया हुआ भूकम्प बन्द होकर अचल पर्वत हो गया और निकले हुए अगूठे पर मन्दिर का निर्माण हुआ। इसलिए इसका अचलेश्वर नाम पडा।

अचलेश्वर का यह आख्यान है। उसका अर्थ समझने के लिए बहुत कुछ इधर-उधर देखना पडता है। इस आख्यान का सक्षेप मे अभिप्राय यह है कि पृथ्वी के रूप मे

गाय कुण्ड मे गिर गयी थी। यह एक प्रकार अन्याय और अत्याचार का सूचक है। उन दिनो में राक्षस लोग अर्थात् विधर्मी शिव की पूजा करने वालो को तग करते थे और उनकी पूजा में विघ्न डालते थे। इसो अवसर पर शायद अग्नि कुण्ड से अग्नि वश की उत्पत्ति हुई है और वही पर अचलेश्वर के मन्दिर का निर्माण हुआ है।

इस चट्टान की दरार को देवडा के राजपूत सरदारो ने मढवा दिया था। वह दरार चाँदी से मढी गयी थी। कहा जाता है कि पाताल अर्थात् नरक से किसी प्रकार भय न खाने वाले किसी भील ने उस कीमती चाँदी को चुरा लिया। वह उस चाँदी को लेकर जा रहा था और एक मील भी आगे नही गया कि वह बिल्कुल अधा हो गया। उसी दशा में उसने पश्चाताप करके चाँदी की उस चद्दर को उसने एक पेड मे लटका दिया। उस चाँदी चद्दर को ढूँढने वाले आ रहे थे। उन्होने उस पेड के पास आकर चाँदी की चद्दर को प्राप्त कर लिया। उसके बाद उस भील के नेत्रो का प्रकाश लौटकर आ गया। चाँदी की उस चद्दर को अग्नि में शुद्ध किया गया और फिर उसको अपने देवता की मूर्ति मे ढालकर फिर उस दरार पर स्थापित किया गया। इसके पहले भी यही किया गया और अगर उस चाँदी मे देवता की मूर्ति न होती तो वह चद्दर लौटकर न आती और न वह ले जाने वाला भील ही अन्धा होता, यह प्रताप उस देवता की मूर्ति का था।

इस प्रकार की और भी कितनी घटनाये सुनने और जानने को मिली। नैतिक पतन मे वे एक-से एक बढकर हैं। यहाँ पर मैं एक घटना का और उल्लेख करना चाहता हूँ, जो अधार्मिकता का एक बडा उदाहरण है। उस घटना का सम्बन्ध इस मन्दिर के साथ है। आबू और चन्द्रावती के परमार राजा ने ब्रह्मखाल के एक उपाख्यान की सच्चाई का पता लगाने के सम्बन्ध मे निश्चय किया।

परमार राजा ने मन्दिर के पास के झरने से नहर निकालने का आदेश दिया। नहर निकाली गयी और छः महीने तक लगातार उसमे झरने का जल प्रवाहित होता रहा। इन्ही दिनों मे हुआ यह कि वह परमार राजा चन्द्रावती के सिंहासन से उतार दिया गया और उसके वश मे कोई दूसरा राजा नही हुआ। (१)

१३ जून—सबेरे छः बजे मैं अग्नि कुण्ड से अचलगढ के लिए रवाना हुआ। उसकी टूटी हुई छतरियाँ हमारे चारो तरफ फैले हुए घने बादलो मे छिपी हुई थी। चढ़ाई के इस स्थान पर थर्मामोटर ६६° और बैरोमीटर २७° १२ अशो पर था। सुबह ८ बजे शिखर पर बैरोमीटर २६° ९७ और थर्मामीटर ६४° पर था। राजकीय दरबार के लिए मैंने हनुमान दरवाजे से प्रवेश किया, ग्रेनिट के बडे-बडे पत्थरो से यह

(१) मूंता नेणसी की प्रख्यात और बडवो की पुस्तको मे हूण परमार नाम लिखा है। लेकिन शिला-लेखो में कोई उल्लेख नही मिलता। अन्य किसी पुस्तक मे भी उसका वर्णन नही पाया जाता।

दरवाजा विशाल छतरियों से बनाया गया था, बहुत पुरानी होने के कारण यह छतरियाँ काली पड गयी थी। वे दोनो छतरियाँ ऊपर की तरफ एक कमरे से जुडी हुई थी। वह कमरा रक्षको के रहने के लिए बनवाया गया था और दरवाजा नीचे के किले का प्रवेश द्वारा था। उसकी दीवारे टूटी हुई थी। दूसरे दरवाजे के करीब चम्पा का पेड होने के कारण वह चम्पा पोल के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन पहले उसका नाम गणेश द्वार था। किले के भीतर जाने के लिए यही दरवाजा है। इस पीछे वाले दरवाजे से अन्दर प्रवेश करने पर सबसे पहले पार्श्वनाथ का जैन-मन्दिर दिखाई देता है। उस मन्दिर को माँडू के श्रेष्ठो ने (१) अपने खर्च से बनवाया था, उसकी आजकल मरम्मत हो रही है। इसके खम्भे ठीक उसी तरह के हैं, जिस प्रकार अजमेर के प्राचीन मन्दिर के। (२)

ऊपर के किले के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उसको राणा कुम्भा ने बनवाया था, (३) जब उसको मेवाड के चौरासी किलो से निकाल दिया गया था। लेकिन यह सही नही मालूम होता। वास्तव मे उसने अचलगढ के उस दुर्ग का—जिसका अधिकांश भाग बहुत प्राचीन है—जीर्णोद्धार ही करवाया था। यही पर अनाज के वे कोठे भी हैं, जो राणा कुम्भा के भण्डार कहे जाते हैं। उनमे भीतर की तरफ बहुत मोटा और मजबूत सीमेंट का प्लास्टर है। लेकिन उसकी छत टूट गयी है। उसके पास बाँई तरफ उसकी रानी का प्रासाद है, जो हिन्दुओ के जगत कूंट ओक मण्डल (ओखा मण्डल) की होने के सबब से ओका राणी कही जाती थी। उस दुर्ग मे एक छोटी-सी झील भी है। उस झील का नाम सावन-भादो है। जून की गर्मी के दिनो मे भी जल से भरी रहने के कारण वह इस नाम को सार्थक करती है।

---

(१) मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन के प्रधान मन्त्री सघवी सहसा सालिग के बेटे ने राव जगमाल (१५४०-१५८० वि०) के समय मे यह मन्दिर बनवाया गया था और उसकी प्रतिष्ठा श्रीजय कल्याण सूरि ने स० १५६६ वि० मे करायी थी।

(२) कहा जाता है कि अजमेर का ढाई दिन का "झोपडा" एक जैन-मन्दिर था, जिसको शहाबुद्दीन गोरी ने मसजिद मे बदल दिया था, उस समय वहाँ की देव-प्रतिमा अजमेर की गोदा गली मे नया मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठित की गयी। वही यहाँ का पुराना मन्दिर माना जाता है।

—अजमेर हरबिलास शारदा, पृ० ४४७

(३) महाराजा कुम्भा ने १४५२ ईसवी, वि० सम्वत् १५०६ मे माघ सुदी १५ को अचलगढ के किले का निर्माण कराया था। इसके अनेक प्रमाण कितनी ही पुस्तको मे पाये जाते हैं।

—महाराजा कुम्भा, हरबिलास शारदा, पृ० १२१

पूर्व की तरफ सबसे ऊँचे स्थान पर परमार राजपूतों का बुर्ज बना हुआ है। उसके बाद खण्डहर ही दिखायी पडते हैं। वे आज तक राणा कुम्भा के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ से उस बहादुर जाति के स्थलो और महलो को देखा जा सकता है जिसने उस स्थान पर, जहाँ पर मैंने निरीक्षण किया था, आत्म-रक्षा के लिये अपना खून बहाया था। इसी समय मुझको अन्तिम चौहान की स्त्री इच्छिनी के बहादुर बन्धु लक्ष्मण का स्मरण आया, जिसका नाम उसके स्वामी के साथ दिल्ली के स्तूप पर लिखा हुआ है। सभी वशो के राजपूत सात शताब्दियो के बाद भी उसके प्रति अपना सम्मान प्रकट करते हैं और जो लोग पश्चिमी देशो से आते है, वे भी उसके वीरतापूर्ण कार्यों की प्रशसा करते हैं। चन्द बरदाई ने उसके कीर्ति कलाप को छन्द वद्ध कर दिया है। इस प्रकार उसका नाम सदा के लिये अजर-अमर हो गया है।

इन टूटे हुए प्रासादों के ढेरो के बीच में खडे होकर किसका मन पीड़ित न हो सकेगा ? इन गम्भीर पत्थरो पर, जिन पर हम चल रहे हैं, उन टूटी-फूटी चट्टानो के टुकडो पर आज जङ्गली बेले फैल गयी है और जहाँ पर कभी शूर-बीरो के ऊँचे झण्डे फहराये जाते थे, कितने इतिहासो की गौरवपूर्ण गाथाये छिपी पडी हैं ? ये छत-विहीन प्रासाद एक दिन छतवाले थे, जिनकी दीवारे आज विध्वस हो चुकी है, वे एक दिन किले की भाँति मजबूत थी। ये स्थल, जो आज सुनसान हो रहे है, एक दिन शूर-बीरो की तलवारो से गूजा करते थे।

सूर्य के द्वारा जिस प्रकार चारो तरफ फैला हुआ अन्धकार दूर हो जाता है, ठीक उसी तरह इस प्रभावशाली प्रदेश का क्षेत्र आँखो से दिखायी पड़ने लगा। प्रत्येक क्षेत्र के अलग-अलग दृश्य हैं। प्रदेशो मे जितने स्थान है, उतने हो उसके मनोहर दृश्य भी है। स्थान के बदलते ही दृश्य बदल जाता है और जो नया दृश्य सामने आता है, वह अनेक प्रकार की नवीनता लिये हुए होता है। प्रत्येक दृश्य की नयी-नयी खूबियाँ देखकर चित्त प्रसन्न हो उठता है।

इन दृश्यो मे सबसे पहले देलवाडा के जैन-मन्दिर (द० ८०° प० छै मील दूरी पर), उनके पीछे अर्बुदा माता का शिखर है, फिर गुरु शिखर (उ० १५° पू० ४ मील पर), जिसके क्षेत्र की वहुत-सी चोटियाँ दिखायी पड़ी, उन चोटियो मे प्रत्येक के अपने साथ एक जनश्रुति का समन्वय है, इस प्रकार दृश्यो का आगमन आरम्भ हुआ।

तीन घन्टे तक यात्रा करने के बाद अधिक सर्दी के कारण—जबकि थर्मामीटर ६४° पर था—मुझे वह स्थान छोड देने के लिये मजबूर होना पड़ा। उसी समय मेरे पथ-प्रदर्शक ने मुस्कराते हुए कहा—इन्द्र और पर्वत का झगडा बहुत पुराना है।

वहाँ से उतरने के समय मेवाड के शूर-बीरों का सरदार राणा कुम्भा की अश्वारोही पीतल की प्रतिमा को मैंने श्रद्धा के साथ नमस्कार किया। राणा कुम्भा ने

यहाँ पर अनेक युद्धो मे अपने शौर्य का परिचय दिया था। राणा कुम्भा की मूर्ति के पास ही उसके बेटे राणा मोक्ल और पौत्र उदय राणा की मूर्तियाँ हैं। उस राणा उदय ने सैकडो राणाओ की उज्जवल कीर्ति पर कालिख पोती थी। इसका सहज ही मुझको स्मरण हुआ, मैं उसकी प्रतिभा के पास खडा न रह सका और अपने हृदय में एक पीडा को दबाकर उसके पास से हट गया। उसकी कायरता और भीरुता पर मेवाड के शूर-वीरो को ही नही रोना पडा, बल्कि जिन शत्रुओ ने उसकी अकर्मण्यता का लाभ उठाया, उन्होने भी उसकी भीरुता पर उसे धिक्कारा। बाबर के साथ युद्ध करने वाले राणा उदय के पौत्र राणा सांगा ने कहा है : "अगर उदयसिंह पैदा न हुआ तो राजस्थान मे तुर्कों का राज्य कायम न होता।"

उन मूर्तियो के साथ एक चौथी मूर्ति राणा कुम्भा के पुरोहित की थी, वह देखने-सुनने मे सबसे अच्छी मालूम होती थी। उस पुरोहित की वहां पर मूर्ति क्यो थी, यह मैं समझ नही सका। लेकिन जहाँ तक मैं समझता हूँ कि उसने अवश्य ही कोई वीरता का कार्य किया होगा, जिससे उसकी प्रतिमा को यहाँ पर स्थान दिया गया। इसलिये कि ब्राह्मणो ने भी समय-समय पर तलवार चलाने और युद्ध करने का काम किया है, ऐसी दशा मे यदि किसी पुरोहित ने युद्ध करते हुये अपनी आहुति दी है तो निश्चय ही उसको इस प्रकार का स्थान मिलना चाहिए।

इन टूटी हुई दीवारो के बीच मे जो मूर्तियाँ दिखायी देती हैं, वे इस बात का प्रमाण देती हैं कि इन वीरो ने आवश्यकता पडने पर जन्म-भूमि समाज और देश की स्वाधीनता के रक्षा के लिये युद्ध किया था और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये अपने प्राणो को बलिदान किया। दुनिया मे बलिदान होने वालो की पूजा होती है। इनकी भी हो रही है और जो इनकी प्रतिमाओ के सामने आता है, वही नत-मस्तक होकर इनको नमस्कार करता है। इस पूजा का कारण यह है कि इन्होने अचलगढ की रक्षा के लिये अपने प्राणो को उत्सर्ग किया था। इसलिये उनकी प्रतिमाओ पर रोजाना केशर-चन्दन लगाया जाता है। इन प्रतिमाओ की पूजा और आराधना उस समय तक होती रहेगी जब तक ससार मे वीरो का अस्तित्व रहेगा और शौर्य के गाने गाये जायँगे।

इन मूर्तियो के सामने पूजा और प्रार्थना करने वाले उनके वशज नही हैं, उनके वंशजो को तो इन त्यागो और बलिदानो का ज्ञान भी नही है। इसलिये उनके वशजो के द्वारा ये प्रार्थनाये न होकर उनके द्वारा होती हैं, जो त्याग और बलिदान का महत्व समझते हैं और वीर पुरुषो का सम्मान करना जानते हैं। यद्यपि उनका इन वीरो के साथ जाहिरा तौर पर कोई सम्बन्ध और सम्पर्क नही होता। वे यहाँ आने पर इन प्रतिमाओं के दर्शन करते हैं और उन्हें अपनी श्रद्धा की भेंट करते हैं।

इन प्रतिमाओं पर साधारण फूस के छप्पर छाये गये हैं। इन छप्परो से मूर्तियो की जो शोभा बढती है और उनकी महानता का सबक मिलता है। वह सबक

हमे न मिलता, अगर इन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा संगमरमर के मन्दिर मे की गयी होती।

यहाँ की प्रत्येक वस्तु मे जैन-धर्म की आभा है। वृषमदेव (१) का मन्दिर देखने के लायक है। इस मन्दिर की इतनी अधिक ख्याति का कारण यह है कि इसमे चौबीस तीर्थङ्करो मे से उन बारह तीर्थङ्करो की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गयी हैं, जिनको देवत्व अथवा निर्माण प्राप्त हुआ था। इनका वजन कई हजार मन बताया जाता है और इनका निर्माण सभी प्रकार की धातुओ से हुआ है। (२)

भीतरी किले के समीप बायें हाथ की तरफ पार्श्वनाथ का मन्दिर है, वहाँ पर उसकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी है। इस मन्दिर का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार अनहिलवाडा के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल ने कराया था। वह राजा जैन धर्म का सरक्षक और जैनियो के प्रभावशाली आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था। मूर्ति को तैयार करने मे ऊपरी कला का चित्रण किया गया है। लेकिन वास्तव मे प्रतिमा के निर्माण मे जिस कला का प्रदर्शन होना चाहिये था, उसका अभाव है।

दोपहर को एक बजे अचलगढ की तलहटी मे बैरोमीटर २७° ४ और थर्मामीटर ७८° पर था। लेकिन तीन बजे बैरोमीटर २६° ६५ और थर्मामीटर ७८° जाहिर कर रहा था। दिन के ग्यारह बजे एक समझदार नौकर को भेजकर गुरू शिखर पर पारे की स्थिति देखी गयी तो मालूम हुआ कि बैरोमीटर २६° ८६° और थर्मामीटर ६८° पर था। इसके पहले जो परीक्षण किये थे, उनमे और इनमे जो अन्तर मिला, उसके सम्बन्ध में आगामी पृष्ठो मे प्रकाश डाला गया है।

दिन में सर्दी बढने पर जब मैं शिकार के लिए इधर-उधर घूम रहा था, उसी समय राजपूतो के सैनिक बाजो की आवाज मेरे कानो मे आयी। इसके थोडी ही देर बाद देवडा राजा का लवाजमा रियासती शान-शौकत के साथ दिखायी पडा। उसके साथ झण्डे लहरा रहे थे। ढोल और बाजे बज रहे थे। वे लोग आमो के पेड़ो से घिरे हुए और देवता अचलेश्वर के मन्दिर की ओर बढ रहे थे। इस दृश्य का वातावरण एक नया उत्साह उत्पन्न कर रहा था। परमार राजपूतो का टूटा हुआ किला उस दिन की याद दिला रहा था, जब वह अपनी जवानी मे था। उसके मस्तक पर झण्डे लह-

---

(१) वृषभदेव और नन्दीश्वर का एक ही अर्थ है। दोनो प्रतिमा बैल की हैं, कौन जैन-मन्दिर किस तीर्थङ्कर का है, यह जानने के लिए उसकी चौकी पर बने चित्र को देखना चाहिए, जैसे बैल, सर्प, शेर आदि। इसलिए कि जैन-मन्दिर का प्रत्येक तीर्थकर अपना अलग अलग चिह्न रखता है।

(२) इन मन्दिरो मे सब चौदह मूर्तियां है। उनका वजन मिलाकर १४४४ मन बताया जाता है।

राते थे और उसके नीचे युद्ध होते थे। लड़ने वाले मरते थे, उनको कोई कफन देने वाला न था। यह किला उस दिन की याद दिला रहा है, जब रक्त की होली खेली जाती थी। अब उसके वे दिन नही रहे और इस किले को अब उस प्रकार के दिन देखने को न मिलेंगे, जब शत्रु और मित्र अपने हाथो में तलवारे लेकर एक दूसरे पर प्रहार करते थे और बलिदानो का महत्व बढाते थे।

आबू और सिरोही का स्वामी राव श्योसिंह फिर मुझसे मिलना चाहता था। उसने इसके लिए अपना इरादा जाहिर किया। मैं इसके लिए तैयार नही था। न तो मैं उसे अनावश्यक कष्ट देना चाहता था और न मैं अपनी यात्रा मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न करना चाहता था। मैंने अपने इस इरादे को बडी नम्रता के साथ उसके सामने पेश किया। लेकिन मेरी प्रार्थना का उस पर कोई प्रभाव न पडा।

मैं अपने विचारो को जाहिर करने के बाद चुप हो गया था। उसी मौके पर उसके एक दूत ने आकर मुझे सूचना दी कि राव ने मुझसे मिलने के लिए इजाजत माँगी है।

इसके उत्तर मे मैं कुछ कह न सका। मैं कुज की तरफ रवाना हुआ और वहाँ पहुँचने पर मैंने देखा कि उसके समस्त जागीरदार दोनो तरफ श्रेणीबद्ध होकर खडे हैं। मैं उनके बीच से होकर आगे बढा तो देखा कि राव श्योसिंह मेरा स्वागत करने के लिए सामने आ रहे हैं।

राव श्योसिंह और उसके सरदारो ने मुझसे मिलकर इस प्रकार आलिंगन किया, जैसे पिता और पुत्र एक, दूसरे से मिलते हैं। सबसे मिलकर और उनका स्नेह प्राप्त करके मैं बहुत खुश हुआ। जब यह सब हो चुका तो राव ने मुझसे अपने साथ चलने और सिंहासन पर बैठने के लिए अनुरोध किया। मैंने हँसकर उसके इस सम्मान को नम्रता के साथ नामजूर कर दिया। मेरी अस्वीकृत को सुनकर राव ने गम्भीर होकर कहा : मैं अपनी वाणी और भाषा से उस व्यक्ति के प्रति अपना आभार कैसे प्रकट करूँ, जिसने मेरे राज्य और मेरे सम्पूर्ण देश को कष्टो से छुटकारा दिलाया है।

राव ने फिर कहा—मैं एक सच्चे चौहान की हैसियत से जङ्गलो के भीलों के साथ रहकर जिन्दगी के दिन काटने के लिए तैयार था, परन्तु जोधपुर की मातहती में रहकर जिन्दा रहने के लिए तैयार नही था ?

मुझे इस मौके पर राव पहले से कुछ अच्छा मालूम हुआ। उसके दिल मे आज किसी प्रकार की घबराहट न थी और आबू के पवित्र वातावरण मे स्वतन्त्रता के सुख का वह अनुभव कर रहा था। इस समय मैंने उसके साथ कुछ देर तक बाते की। ये बातें उसके राज्य की भलाई के सम्बन्ध मे थी और कुछ दूसरी बाते भी थी। मैंने राव को समझाया कि प्रजा का उत्थान कैसे हो सकता है, बेगार की प्रथा को बन्द कर देना क्यो बहुत जरूरी है, व्यापारियो को सुविधाये देना राज्य की तरफ से

क्यो आवश्यक है। इस तरह की बहुत-सी बातो के साथ-साथ मैने राव को समझाया कि जङ्गली जातियो को दबाने, अपने अधिकार मे लाने और उनको अच्छा आदमी बनाने के लिए क्या किया जा सकता है ?

इसके बाद राव के पूर्वजों के विषय मे कुछ देर बातचीत होती रही। मुझे खुशी है कि उनके सम्बन्ध में जितनी मुझे जानकारी है, उतनी उसको स्वयं अपने पूर्वजो और उनके इतिहास के सम्बन्ध में नही है। मेरी बातो को राव बडे ध्यान से सुनता रहा। मुझे भी बड़ा आनन्द आ रहा था। जब बाते हो चुकी तो दोनो ओर से एक दूसरे से बिदा होने के समय आग्रह पेश किये गये। राव ने आग्रह और अनुरोध किया कि मैं उसको कभी भूलूँगा नही, अपने स्वास्थ्य के प्रति कभी उपेक्षा नही करूँगा मैंने भी उससे आग्रह और अनुरोध करते हुए कहा कि वह अपने प्रति, अपने राज्य के प्रति और अपनी प्रजा के प्रति सदा ईमामनदार और उदार रहेगा।

अब हम दोनो के बिदा होने का समय उपस्थित हुआ दोनो ने एक दूसरे की तरफ मुस्कराते हुए देखा। उसी समय राव और उसके सारे सरदारों ने एक साथ, एक स्वर से मेरा अभिनन्दन किया। उन सबके अभिनन्दन की आवाज से मेरा मन और मस्तिष्क गूंज उठा।

इसके बाद अपने सरदारो के साथ मुझसे बिदा हुआ। जब वे लोग आबू के ढाल पर से उतर गये तो मैं भी उस स्थान से लौटा और वापस आते हुए अचलेश के मन्दिर पर एक बार जाने और वहाँ के महन्त से मिलने का इरादा किया। मुझे उस मन्दिर से और महन्त से स्नेह हो गया था और उस महन्त ने मुझको भी अपना शिष्य मान लिया था। वहाँ पहुँचने पर और मुलाकत करने पर मैंने महन्त को कुछ चीजे भेट में दी। उन्हे पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

मुझे अब इस स्थान से देलवाडा के लिए रवाना होना था। लेकिन अग्निकुण्ड और उसके आस-पास के मनोरजक स्थानो और पदार्थों को देखने मे इतना अधिक समय लग गया कि मैं वहाँ से रवाना होकर शाम होने के समय तक भी अपने स्थान पर पहुँच न सका। रास्ता अच्छा नही था। इतना अधिक ऊँचा-नीचा था कि जो लोग इस प्रकार के मार्ग पर चलने के अभ्यासी नही है, उनको बडी कठिनाई का सामना करना पडता है।

बादलो का वातावरण होने के कारण मौसिम अच्छा न था। कुछ सर्दी से जुकाम हो गया था और शरीर भारी हो रहा था। ऐसी हालत मे मुझको स्वर्ग-वाहन की सहायता लेनी पडी। यात्रा समाप्त होते-होते हमको एक झील के आस-पास चक्कर लगाना पडा। उस झील के किनारो कनेर और सफेद गुलाब के फूलो की अधिकता

थी। वहीं पर घने पत्तो के पीपल के पेड पर बैठी हुए कमेडी (१) अपने सुन्दर स्वर से गाकर एक मनोहर दृश्य पैदा कर रही थी। उस समय सूर्य लालिमा ले चुका था और उसका यह लाल प्रकाश जङ्गल के घने और छोटे-बडे वृक्षो पर पड रहा था। अपना अभीष्ट स्थान वहाँ से कुछ दूर था।

एक मन्दिर के पास रात काटनी पडी। स्थान अच्छा नही था, टूटा-फूटा खण्डहर था। घास का विछौना विछाकर लेटा और किसी तरह रात व्यतीत की। मुझे जुकाम तो था ही, रास्ते की थकावट और बेचैनी से मैं दिन मे ही बुखार का अनुभव कर रहा था। चलने मे बडा कष्ट हो रहा था। रात को जहाँ पर लेटा, वहाँ की जमीन ऊँचो-नीची थी। इसलिए वहाँ पर जो घास थी, उसी पर लेटना पडा। रात को बुखार बहुत तेज हो गया, थकान और बेचैनी भी अधिक बढ गयी, शरीर मे पीडा बेहद हो गयी थी। जुकाम तो तेजी पर था ही। अपने इस शारीरिक कष्ट मे भी मुझे यहाँ के चमत्कारपूर्ण स्थानो के देखने की लालसा थी। मैं उन सभी स्थानों को देखना और अध्ययन करना चाहता था, जिनको मैंने विभिन्न यात्रियो के द्वारा सुन रखा था।

मुझको यहाँ के उन मन्दिरो को देखना था, जिनका वर्णन पादरी (विशप) हेबर ने किया था और जिनके सम्बन्ध मे उसने कलकत्ते मे रहने वाले मेरे एक मित्र के साथ किये गये पत्र-व्यवहार के आधार पर बहुत-कुछ सुन रखा था। मेरे उस मित्र ने उन सभी बातो को दस साल पहले एक पत्रिका मे प्रकाशित कराया था। यह अनुसन्धान मेरा था। आबू के सही स्थानो और नामो का ठीक-ठीक पता सबसे पहले मैंने ही लगाया था।

यहाँ पर यह लिखना बहुत आवश्यक नही मालूम होता कि मैंने यहाँ के बहुत से ऐसे स्थानो को भी देखा, जिनके सम्बन्ध में दूसरे देशो के यात्रियों ने पहुँचने में अपनी असमर्थता को स्वीकार कर लिया था। उन्होने स्पष्ट रूप से ऐसे स्थानो के सम्बन्ध में लिख दिया है कि वे अज्ञात प्रदेश है।

मुझे सन्तोष है कि मैंने उन सभी क्षेत्रो की या ... मैं

दूसरे यात्रियो का अब तक प्रवेश नही हो सकता था।

---

(१) कमेडी का अर्थ प्रेम के देवता से है ... ई

हुई है। उसके चिह्नो में धनुष, चमेली, गुलाब ...

बडी सख्या मे चारो ओर से यात्री इमको देखने के लिए आते हैं। इसके निर्माता का नाम विमलशाह था, उसने इस मन्दिर को बनवाकर अमर-कीर्ति प्राप्त की हैं। वह अनहिलवाडा का प्रसिद्ध व्यापारी था और अनहिलवाडा भारत का एक प्रसिद्ध नगर एवम् जैन-धर्म का केन्द्र था। इस नगर के अन्तिम दिनो की वात यह है कि जब यह मन्दिर वन चुका और उसकी इमारत सबके सामने आयी, उस समय मन्दिर की और उसके निर्माता की ख्याति फैलकर पृथ्वी से लेकर आकाश तक पहुँच गयी, जैसा कि उस समय के भाट कवियों ने उसके सम्बन्ध मे कहा—उसने अपने नश्वर धन से इस मन्दिर को बनवाकर अमर कीर्ति प्राप्त की। लेकिन इस मन्दिर की दीवारे जव खडी हुई और उनके निर्माण का कार्य तेजी से चल रहा था, उन्ही दिनो मे पश्चिमी भारत की राजधानी नष्ट कर दी गयी, वहाँ के सारे व्यापारियो को लूट लिया गया और उनकी समस्त सम्पत्ति आक्रमणकारियो के अधिकार मे चली गयी। इमारत के पहले यह स्थान कट्टर शिव और वैष्णव लोगो के अधिकार मे था, वे धर्मावलम्बी किसी विरोधी मतवाले के प्रति सहानुभूति और सहनशीलता रखना नही जानते थे। लेकिन नहरवाला के साहूकारो ने बुद्धिमानी से काम लिया, उन्होंने आवू के किसी अन्य स्थान की अपेक्षा इसी स्थान को अधिक महत्व दिया और अपनी सम्पत्ति के बल पर सफलता प्राप्त करने का निश्चय किया।

कहा जाता है कि उस साहूकारो का यह निश्चय धर्म का निश्चय था। उनके इस निश्चय की विजय धर्म की विजय थी और उनका इस विजय के लिए स्वय लक्ष्मी का आगमन आरम्भ हुआ। उस समय इतनी अधिक सम्पत्ति एकत्रित हो गया कि उन्होने अपनी भूमि को चाँदी के सिक्को से पाट देने की स्वीकृति दी। सम्पत्ति का प्रलोभन साधारण नही होता। शिव और विष्णु के भक्तो के अभिशाप का डर भुलाकर परमार राजा ने जैन साहूकारो से अगणित रुपये लिए। उस राजा का नाम कही पर स्पष्ट नही किया गया। लेकिन मन्दिरो के निर्माण की तिथियो से प्रकट होता है कि यह वही देवताओ का शत्रु धारावर्ष था, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

कहा जाता है कि यह सफलता लक्ष्मी की कृपा से प्राप्त हुई। साहूकारो ने भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करने मे कमी नही की और उन्होने दरवाजे पर दाहिने हाथ की ओर एक सुन्दर ताक मे लक्ष्मी की मूर्ति को प्रतिष्ठित करके अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया।

वृषभदेव का यह जैन-मन्दिर एक समतल भूमि पर वना हुआ है। उस स्थान की लम्बाई पूर्व से पश्चिम एक सौ अस्सी फीट और चौडाई एक सौ फीट है। विमलशाह (१) के द्वारा निर्मित इस मन्दिर के भीतर चारो तरफ किनारे-किनारे कोठरियाँ बनी हुई

---

(१) विमलशाह गुजरात के राजा भीमदेव सोलकी का मत्री था, उसी ने यह

है। लम्बाई की तरफ उन्नीस-उन्नीस और चौडाई की तरफ दस-दस कोठरियाँ हैं। प्रत्येक कोठरी की लम्बाई, चौड़ाई बराबर है। इन कोठरियो के बीच की दीवारो के रूप मे दो दो खम्भे बने हुए हैं। उन पर बनी हुई छत ढालू है। प्रत्येक कोठरी के प्रवेश-द्वारा के सम्मुख एक ऊँची बेदी का निर्माण किया गया है, उसमे चौबीस जिनेश्वरो मे से एक-एक की मूर्ति स्थापित है। दो-दो खम्भो के मध्य में खूबसूरत मेहरावे हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण मन्दिर साफ और श्वेत सगमरमर पत्थर का बना हुआ है।

मन्दिर के भीतर प्रत्येक कोठरी, खम्भे, छतरी और वेदी की बनावट अजीब सजावट और कारीगरी के साथ की गयी है। उसके निर्माण मे जो कला और कारीगरी देखने को मिलती है वह असाधारण है। मन्दिर मे सब मिलाकर अट्ठावन कमरे है। उन सभी का निर्माण अनोखे ढङ्ग से किया गया है। यह कहने की आवश्यकता नही है कि एक-एक कमरे को समझने और पूरे तौर पर उसका अध्ययन करने के लिए एक दिन की जरूरत है। मन्दिर मे कितने कमरे हैं और सम्पूर्ण मन्दिर के अध्ययन के लिए कितने दिन चाहिए, इसी से मन्दिर के विस्मयपूर्ण चमत्कार का अनुमान लगाया जा सकता है।

मन्दिर मे विशेषताये अनेक और विभिन्न प्रकार की है। मुझे बताया गया है कि मन्दिर के विभिन्न कोठो और कमरो का निर्माण अनेक नगरो के विभिन्न जैन मतावलम्बी सम्पत्तिशाली व्यक्तियो ने कराया है। यही कारण है, उनमे सभी कोठो और कमरो की शैली में विभिन्नता है। परन्तु सम्पूर्ण मन्दिर का भली-भाँति निरीक्षण करने पर आसानी से समझ मे आता है कि उसकी प्रारम्भिक योजना किसी एक ही विशेषज्ञ के द्वारा बनी है। जो कुछ भिन्नता है; वह थोडी-बहुत दक्षिण-पश्चिम कोने पर है। हो सकता है उसका निर्माण किसी नयी योजना के द्वारा हुआ हो। मन्दिर का निर्माण-काल प्रत्येक दरवाजे की देहली पर खुदा हुआ है।

हम उस चौक मे उतरे हैं, जो चौकोर पत्थरो से जडा हुआ है। उसको पार करने पर वृषभदेव के मन्दिर के सामने सभा-मण्डप पडता है। शैव-मन्दिरो मे इस स्थान पर बैल अथवा नन्दी की मूर्ति बनी होती है और उसका प्रमुख देवता (शिवलिंग) भीतर के किसी स्थान पर स्थापित किया जाता है। जिसने पुजौलो के ज्यूपिटर सेरापिस (१) के मन्दिर की मूर्तिकला को ध्यानपूर्वक देखा है, उसने शैव-मन्दिरो की कोई

मन्दिर वि० सं० १०८८, सन् १०३१ मे बनवाया था और इसके लिए उसने यह जगह आबू के परमार राजा धधुक से ली थी।......सिरोही राज्य का इतिहास-पृ० ६१।

(१) ग्रीक लोगों ने मिश्र के (एपिस) और (ऑसिरिस) देवताओ के गुणो को मिलाकर इस देवता की रचना की है। वह देवता उपज का देवता माना जाता है।

-भी बात छिपी हुई नही है। जैनियो के मन्दिरो में सजावट की कोई विशेष सामग्री नही होती। भक्त लोग अपने अनुकूल आवश्यक सामग्री की व्यवस्था कर लेते हैं। इस मण्डप के ऊपर चौबीस फीट व्यास की एक छतरी है, उसका आधार उसके नीचे के स्तम्भ है। ये स्तम्भ चौकोर बने हुए हैं। भीतर के ये सब दृश्य उसी समय देखने मे आते हैं, जब उसके भीतर जाकर देखा जाता है। बाहर से एक अण्डाकार गोला-सा ही दिखायी देता है। उसका भार एक आधार पर टिका हुआ है, जो आड़ा बना है। प्रत्येक दो खम्भे एक तोरण के साथ सम्बन्ध रखते हैं और उस तोरण की आकृति तथा बनावट एक विशेष प्रकार की सुन्दरता लिये हुए है। उस पर बहुत अच्छा काम किया गया है।

पूर्व, उत्तर और दक्षिण की तरफ से खम्भे मण्डप को रविश के स्तम्भो से मिलाते हैं और इस प्रकार मिलकर वे सब मन्दिर के एक अङ्ग की पूर्ति करते हैं। स्तम्भो के बीच के स्थान पर जो छते हैं वे चपटी और गुम्बद की शक्ल मे हैं। वे बड़ी छत मे जाकर मिल जाती हैं। इन सबका निर्माण दर्शको को अपनी ओर आकर्षित करता है।

उनके भीतर सतह के सुन्दर स्थानो पर रामायण, महाभारत और दूसरे ग्रन्थो की बहुत सी पक्तियाँ लिखी हुई हैं। वे सभी पक्तियाँ दर्शको के दिलो मे अद्वैतवाद और बहुदेवतावाद के प्रति आस्था और विश्वास उत्पन्न करती हैं। उसके दूसरी तरफ रास करने वाली गोपियो से घिरे हुए, फूलो और मालाओ से सजे हुए कन्हैया की मूर्ति अपनी कारीगरी के साथ दर्शको के देखने मे आती है।

वृषभदेव के मन्दिर मे जाने के लिए छोटी-छोटी सीढियो की पक्तियाँ हैं। वे तीन भागो मे विभाजित है। अर्थात खम्भो की रविश, भीतर का दालान और तीर्थङ्कर का मन्दिर। यहाँ पर पूजा के लिए एकत्रित विभिन्न और विविध प्रकार के उपकरण एकत्रित हो जाते है। इसलिए जो यात्री केवल कला का निरीक्षण करना चाहता है, उसको यह उपकरण अपनी तरफ आकर्षित नहीं करते।

मन्दिर के भीतर जाने के समय सबसे पहले मैंने सगमरमर की बनी हुई दो शिलाये देखी। उसमे एक शिला पर वहाँ का एक भक्त केसरियानाथ पर चढाने के लिए केसर का एक सुन्दर उबटन तैयार कर रहा था केसर के द्वारा ही केसरियानाथ के नाम की प्रसिद्धि हुई है। भक्त लोग पहले उसके पास पहुँच कर श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करते हैं, फिर मूर्त्ति को स्नान कराते है और फिर धूप के बाद वे लोग अपने इस देवता को केसर अर्पण करते हैं।

उसके विशाल और विस्तृत प्राङ्गण मे पहुँचने के साथ ही मैंने उस मित्र को

उसकी मूर्ति दाढीदार और सिर पर एक टोकरा लिए है। इस देवता की पूजा का प्रमुख स्थान अलेक्जेण्ड्रिया में था।

देखा, जिसने मुझको अपने तम्बू के भीतर लेटने के लिये उदारता और आग्रह प्रकट किया था, वह उस समय अपने देवता की मूर्ति के सामने बैठा हुआ ध्यान मग्न हो रहा था। उसकी कमर में धोती का एक फेटा था और उसके शेष शरीर पर कोई कपड़ा न था। वह अपने दाहिने हाथ से देवता को धूप दे रहा था, उस धूप में गोंद, राल और कुछ अन्य उपयोगी चीजें थी। वे सब मिलकर जल रही थी। उसके मुख पर चारों तरफ से लपेटी हुई कपड़े की एक पट्टी थी उसको वह अपने मुख और नाक पर इस-लिए लपेटे हुए था कि जिससे उसकी अपवित्र श्वास निकल कर देवता की तरफ न जा सके। उसका यह भी अभिप्राय हो सकता था कि पूजा के समय उसके मुख और नाक से निकली हुई साँस के द्वारा किसी कीटाणु की मृत्यु न हो जाय, इसलिए कि ऐसा होने से जो पाप होगा, उसका दण्ड भुगतना पड़ेगा और देवता के अभिशाप का अधि-कारी बनना होगा।

उस मित्र ने मुझे देख लिया था और पहचान भी लिया, लेकिन वह देव मूर्ति की आराधना के समय कोई बाधा नही उत्पन्न होने देना चाहता था। इसीलिये वह ध्यान मग्न बना रहा, उसके मुख-मण्डल पर शान्ति पूर्ण एक शोभा थी। वह उसके मनोभावो मे भरी हुई शांति का स्पष्ट परिचय दे रही थी।

मन्दिर के भीतर के दालान में विभिन्न प्रकार की मूर्तियां थी और प्रत्येक मूर्ति के निकट पीतल के घन्टे लगे हुए थे। उन घन्टो को पूजा और अराधना के समय बजाया जाता था। वही पर एक तरफ लोहे की एक बहुत बड़ी पेटी रखी हुई थी।

मन्दिर मे एक ऊची वेदी पर ऋषभदेव की विशाल मूर्ति स्थापित थी, वह सात धातुओ के द्वारा बनायी गयी थी। धातु-निर्मित होने के कारण वह स्फटिक के रूप में अत्यन्त आकर्षक थी। उसके ललाट मे बीचो बीच एक अत्यन्त कीमती हीरा लगा हुआ था। उस मूर्ति के ऊपर एक बहुमूल्य सुनहरी जरी का चन्दवा बना हुआ था और सामने धूपदानो मे धूप तैयार की जा रही थो।

इस प्रकार इस भव्य मन्दिर मे अध्ययन के लिये एक अपार सामग्री है। परन्तु वह सामग्री सभी के लिए समान रूप मे आकर्पक नही है। दर्शको भक्तो और यात्रियो के दृष्टि कोण अलग-अलग होते हैं। जो यात्री कला के अध्ययन के लिए इन मन्दिरो में आते हैं, उनका सम्बन्ध यहाँ की अन्य अगणित वातो के साथ नही रहता। उनका ध्यान अपनी अवश्यकता और सिद्धान्त पर केन्द्रित रहता है। यही बात सम्पूर्ण मन्दिर के सम्बन्ध मे है। मेरी स्थिति अन्य यात्रियों से भिन्न है। मुझे तो मनुष्य की अथवा उसकी कारीगरी की कोई भी विशेषता सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती है। मैं तो उस प्राचीन काल के मनुष्य जीवन के एक-एक जर्रे का अध्ययन करना चाहता हूँ। जब इन मन्दिरो का निर्माण हुआ था। यहाँ पर आने के पहले मैंने बहुत-कुछ सुन

रखा था और जो कुछ सुना था, उन्ही के आधार पर यहाँ पर आने और इन देव मन्दिरो के दर्शन करने की बडी अभिलाषा उत्पन्न हुई थी परन्तु यहाँ पहुँचने के वाद मेरी मानसिक परिस्थिति मे वडा परिवर्तन हो गया है। मेरे अन्तरतर में जो उत्सुकता थी, वह यहाँ आने पर खो गयी है। मैं अपनी मानसिक स्थिति के विवेचन मे भी अपने को असमर्थ पाता हूँ। यहाँ पर अगर धूप का धुआ, घृत से भरे हुए दीपको का प्रकाश, मन्दिर के भीतर का दूपित वातावरण, केसरियानाथ की भयानक और आकर्षणहीन मूर्ति—इन सवके सामने मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मैं यमलोक में आ गया हूँ और जमराज की मूर्ति की तरह केसरियानाथ के सामने खडा हूँ।

कुछ समय तक विक्षुब्ध रहकर मैंने अपने कुतूहल को शान्त किया और शुद्ध वायु को प्राप्त करने के अभिप्राय से मैं बाहर निकल आया। मैंने चारो ओर प्रकृति के वृक्षो की हरियाली को देखा और उनसे जो मुझे स्वस्थ वायु प्राप्त हुई, उससे मुझको बडी शान्ति मिली।

वृषभदेव के दाहिनी तरफ चौक के दक्षिण-पश्चिम कोने मे एक विशाल कमरे मे देवी को स्थापित करके अनहिलवाडा के साहूकार ने अपना नाम अमर बनाने के साथ-साथ देवी के प्रति अपनी भक्ति भी प्रकट की है। उसके पास के कोठे में अत्यन्त प्रसिद्ध बाईसवे जिनेश्वर नेमिनाथ—जो अरिष्ट नेमि अथवा श्याम भी कहे जाते हैं—स्थापित हैं। यह मूर्ति—जो वहुत बडी और तीर्थङ्कर के समान है—एक सगमरमर के पत्थर की बनी हुई है। सगमरमर का यह पत्थर डूंगरपुर की खान से प्राप्त हुआ था।

यहाँ से चलकर हम एक चौकोर कोठे मे पहुँच गये। उसकी छत कई एक खम्भो पर टिकी हुई है। इस कोठे के दरवाजे पर वृषभदेव की तरफ मुँह किये हुए मन्दिर के निर्माता की अश्वारोही मूर्ति है। वह एक पुरुष को ऊंचाई से भी बड़ी है। उसके पीछे उसका भतीजा बैठा हुआ है और उसके ऊपर एक छाता लगा हुआ है जो उसके गौरव का परिचय देता है। वृद्ध साहूकार की पोशाक बडी भद्दी-सी मालूम होती है। उसके सिर पर पश्चिमी भारत के सरदारो की तरह मुकुट के समान कोई चीज मालूम होती है। उसका भतीजा कोई चीज उसको दे रहा है। ऐसा मालूम होता है कि भतीजे के हाथ मे इस विशाल मन्दिर के बनवाने के हिसाब का गोल-गाल कागजो में लपेटा हुआ एक डण्डा है। कदाचित उसी को वह उसे दे रहा है।

उस निर्माता के चारो तरफ मूर्तियाँ थी और उनकी सख्या दस थी, वे मूर्तियाँ हाथियों के साथ थी और उन पर वैठे हुए सवारो तक प्रत्येक मूर्ति की ऊँचाई छै फीट थी ये मूर्तियाँ सगमरमर की बनी हुई हैं। यहाँ के लोगो का कहना है कि ये मूर्तियाँ योरप के उन राजाओ की है, जिनको विमलशाह ने सम्पत्ति देकर यह शपथ दिलाई थी कि वे कभी भी इस मन्दिर और यहाँ के देवताओ का असम्मान नही करेगे और उन

राजाओ ने शाह से इस प्रकार सम्पत्ति लेकर इस मन्दिर और उसके देवताओ का सदा सम्मान करने के लिए बचन दिया था।

कहने वालो ने योरप के उन राजाओं की संख्या बारह बतायी। उस समय मैंने उन लोगों से कहा कि योरप के उन राजाओं की संख्या बारह तो उस दशा में होती हैं, जब उनकी मूर्तियों के साथ विमलशाह और उसके भतीजे की भी गिनती कर ली जाय और यदि उन राजाओं में शाह एवम उसके भतीजे को न गिना जाय तो वे दस ही रह जाते हैं। मेरी इस बात को सुनकर उन लोगो को बडा आश्चर्य हुआ। इस लिये कि यहाँ पर इसके सम्बन्ध मे फैली हुई जन-श्रुति मे उन राजाओ की सख्या बारह बतायी जाती है।

इसके बाद मैंने उन लोगो से फिर कहा कि योरप के इन नास्तिक राजाओ के चार-चार हाथ हैं। यह सुन कर उन लोगो के विस्मय का ठिकाना नही रहा। ऐसी दशा में उन लोगो ने साहूकार और उसके भतीजे को उन राजाओ में शामिल नही किया कि साहूकार न तो राजा था और न उसके चार हाथ थे। अब उन लोगो की जन-श्रुति का प्रश्न हमारे सामने रह जाता है। वह सही है, इस पर विश्वास करने के लिये उन लोगो ने बड़ा जोर दिया। उनका इस पर दृढ विश्वास इसलिये था कि योरप के उन राजाओं के सम्बन्ध में शताब्दियो से यह विश्वास यहाँ के लोगो का चला आ रहा है, इसलिये वह जन-श्रुति झूठी नही हो सकती

मैं इस किम्बदन्ती पर किसी प्रकार अविश्वास करने की बात नही सोचता। योरप के राजाओ ने सोना लेकर इस साहूकार से सम्भव है कि ऐसा वादा किया हो। यद्यपि ऐसा करना मूर्ति-पूजन मे शामिल है और मूर्ति-पूजकों को नास्तिक माना गया है। लेकिन मूर्ति-पूजा पहले योरप के देशो मे थी। इसलिए इस जन-श्रुति को निराधार होने का एक ही कारण हो सकता है कि इस पर विश्वास करने वाले योरप के उन राजाओ की सख्या बारह कह रहे थे। लेकिन जब मैंने उनको समझाया तो आसानी के साथ उन्होंने मान लिया और सहूकार तथा उसके भतीजे को अलग कर लेने पर उनकी संख्या दस रह गयी। शताब्दियों से इस जन-श्रुति पर लाखो आदमियों ने विश्वास किया। इसलिये यह आसानी के साथ कहा जा सकता है कि लाखो मनुष्यों का विश्वास क्या झूठा-हो सकता है। लेकिन साधारण समझ से भी अगर काम लिया जाय तो सच्चाई के नाम पर जन-श्रुतियो का महत्व मालूम हो जायगा। इन बारह राजाओ के सम्बन्ध मे जो जन-श्रुति प्राचीन काल से चली आयी है, उस पर अपने अन्ध-विश्वास के कारण यहाँ तक यकीन किया कि शताब्दियो से लेकर आज तक किसी ने आँख खोलकर उनको देखा भी नही और छै फीट ऊंची संगमरमर की दस मूर्तियों को वे बारह मूर्तियाँ मानते रहे। अंधविश्वास कितना झूठा होता है, इसके लिए इससे बड़ा प्रमाण और क्या चाहिए ?

कोई भी जन-श्रुति इतिहास को घटना नही हो सकती। जहाँ कही उसका उल्लेख करना पडता है तो उसके साथ ही किम्वदन्ती अथवा जन-श्रुति को जोड दिया जाता है। समस्त जन-श्रुतियाँ गलत और निराधार होती है, यह भी नहीं कहा जा सकता लेकिन जिनको सत्य की खोज करनी होती है, उनको आँखे खोल कर देखना पडता है और समझ से काम लेना पडता है। वे कही लिखी नही जाती और जो चीजे लिखी हुई मिलती है, प्राय: उनमे भी अतिशयोक्ति और भावावेश मिलता है। शताब्दियों से जो चीजें जबानी चली आ रही हैं। वे अपनी मौलिकता को मिटाती हुई इतने समय के बाद कितनी सही रह सकती हैं, इस पर निष्पक्ष होकर विचार किया जा सकता है।

इस जन श्रुति के सम्बन्ध मे लोग आपस मे बातें करते रहे और दूसरे दिन सवेरा होने के बाद मेरे सामने उसके सम्बन्ध मे एक नया विश्वास लोगो ने आकर प्रकट किया, उनका कहना था कि योरप के वे बारह राजा साहूकार के पारिवरिक लोगों में खप गये। उनकी इस बात को सुनकर मैंने कहा—

"मालूम होता है कि यह घटना साहूकार की कोई पौराणिक कथा है और उस कथा में साहूकार की उत्पत्ति राजपूतो की चौहान-शाखा से माना है, क्योंकि उनके देवता चतुर्भुज हैं और साहूकार को उनके बीच मे इसलिए रखा गया है कि उसने उसके वश मे एक महत्वपूर्ण धार्मिक कार्य किया है।"

मैंने अपनी यह बात बडी गम्भीरता के साथ उनसे कही। वे लोग भी बहुत सावधान होकर सोचने लगे और फिर मेरी बात का उत्तर देते हुये उन लोगो ने बडी गम्भीरता के साथ कहा—"भगवान जानें।"

उनके इस उत्तर को सुनकर मुझे हँसी आ गयी। वे लोग बडे सीधे-सादे थे और उनमे भोलापन था। उस जन श्रुति पर विश्वास करने वालो ने यह भी नही सोचा कि मनुष्य के चार हाथ नही होते और जब योरप के वे राजा मनुष्य थे तो उनके चार हाथ कहाँ से आये। अन्ध-विश्वास कितना खतरे का होता है। जिनको वे लोग योरप के राजा कहते थे, वे कदाचित् किन्ही देवताओ की मूर्तियाँ थी और इसीलिये उनके चार हाथ मूर्तियों मे बनाये गये थे। यहाँ के लोग इन मूर्तियो को योरप के राजा कैसे कहने लगे, यह समझ मे नही आया।

इसका कुछ भी आधार हो, एक तुर्क को इन मूर्तियों के साथ कोई सहानुभूति नही थी, उसने अपने आक्रमण के समय इन मूर्तियों के चारो हाथो को तोड दिया। और उनके अधकटे हाथों को छोड़ दिया। उन टूटे हुए हाथों से पता चला कि इन मूर्तियो के चार-चार हाथ बनाये गये थे। लेकिन यहाँ के लोगो ने उनके इन अधकटे हाथो पर कभी विचार नही किया। यह उनके अन्धविश्वास का परिणाम है।

मन्दिर-निर्माता की अश्वारोही मूर्ति के पीछे कुछ फीट ऊँचा एक स्तम्भ है।

वह संगमरमर की तीन सीढ़ियो पर बना है। उस स्तम्भ के तीन खण्ड हैं। एक के बाद दूसरा पहला है। इस स्तम्भ में बहुत-से ताक (आले) बने हुए हैं। प्रत्येक आले में ध्यान-मग्न जिनेश्वर की मूर्ति है। इस प्रकार के स्तम्भ प्रायः सभी जैन-मन्दिर में पाये जाते हैं।

दिल्ली का कुतुबमीनार इसकी कुछ बातो की उपमा में आ सकता है। इस्लामी कारीगरो ने उसके निर्माण में अपनी श्रेष्ठ कला का परिचय दिया है। चित्तौर के पहाड़ पर भी इसी प्रकार का एक स्तम्भ है। उसकी ऊँचाई अस्सी फीट है और उस पर भी इसी प्रकार की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उसमे सबके ऊपर एक खुली हुई गुम्बद बनी है। वह खम्भो के ऊपर रखी गयी हैं। वहाँ के सिला-लेखों की नकले लेकर मैंने अपने पास रखी हैं और उनके अनुवाद भी किये हैं। उन शिला-लेखो में एक में राणा कुम्भा के उस समय का वर्णन है, जब उसको मेवाड़ से निकाला गया था। उस समय उसने परमार राजपूतों के उजडे हुए किलों पर सूर्यवंशी राजपूतो का झण्डा फहराया था।

यहाँ के एक-एक पत्थर मे इतिहास की अपूर्व सामग्री है। लेकिन उसका प्रयोग करने के लिये यह बहुत आवश्यक है कि उनके सम्बन्ध की प्राचीन घटनाओ की अच्छी जानकारी हो। इसके अभाव मे उसका कोई उपयोगी प्रयोग नही हो सकता।

साहूकार के कार्यों का पूरा अध्ययन करने के लिए एक महीने का समय आवश्यक था। लेकिन मेरे पास इतना समय नही था। इसलिये कि इसी प्रकार के और भी कितने ही महत्वपूर्ण स्थान थे, जहाँ पर पहुँचना मेरा अत्यन्त आवश्यक था। इसीलिये यहाँ का जरूरी अध्ययन किसी प्रकार पूरा करके मैं अपनी यात्रा मे आगे बढ़ने की चेष्टा मे था।

चौक के आगे कुछ सीढ़ियो पर चढकर सब से प्रसिद्ध तेईसवे जिनेश्वर पार्श्वनाथ के मन्दिर मे गये। यह अपनी अनेक अच्छाइयो में दूसरे मन्दिरों से अधिक ख्याति रखता था। इस मन्दिर का निर्माण भी जैन धर्म के विश्वासी तेजपाल और वसन्तपाल नामक वैश्य भाइयो ने करवाया है। वे दोनों भाई धारावर्ष के राज्य में चन्द्रावती नगरी के रहने वाले थे। उन दिनो मे भीमदेव पश्चिमी भारत का एक मात्र शासक था और उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी।

इस समय में जिस मन्दिर मे पहुँचा, उसका नकशा और उसकी सजावट-बनावट पूर्ण रूप से वृषभदेव के मन्दिर की तरह की है। लेकिन कुछ बातो में यह उससे उत्तम भी है। सब से पहली बात यह है कि इसके निर्माण में बड़ी सादगी से काम लिया गया है। इसके खम्भे कामदार हैं और अधिक ऊँचे हैं। भीतर की तरफ छत में बड़ी कारीगरी का काम किया गया है और इस अर्थ में इसकी श्रेष्ठता को सभी स्वीकार करते हैं।

इसके गुम्बद का व्यास भी दो फीट अधिक अर्थात् छब्बीस फीट है। सगमर-मर के वजनी भार पट्ट लगभग पन्द्रह फीट लम्बे हैं और ऊपर के रखे हुए भारों के मुकाबिले मे ठोस तथा वजनदार हैं। यहाँ के खम्भो की पंक्ति ठीक उसी प्रकार की है, जैसी कि पहले लिखी जा चुकी है और पहले के मन्दिर की तरह इसमें भी बीच-बीच में स्तम्भ हैं और उनका सिलसिला चौक तक चला गया है।

बीच की गुम्बद और इसके आस-पास की छतरियो पर जो कारीगरी की गयी है, उसकी विचित्रता इतनी अपार है कि उसका वर्णन नही हो सकता। इसकी छत सुदृढ और विशाल है और ऐसे ढग से उसका निर्माण किया गया है, जिसको लिखना और बता सकना साधारण काम नही है। इसलिए उसकी इस कारीगरी के सम्बन्ध में इतना लिखना ही काफी होगा कि उसकी उपमा गॉथिक गिरजाघरो की ऊंची दीवारो मे उभरी हुई घोडियो के साथ दी जा सकती है। लेकिन वहाँ के गिरजाघरो की कारी-गरी मे कोई फूल-पत्तीदार ऐसी रचना नही है, जो इस मन्दिर की उपमा मे अधिक महत्व रखती हो।

छत में लटके हुए तीन-तीन फीट लम्बे बेलन की तरह के लटकन हैं और छत के जिन मुकामो पर वे लटके हुए हैं, वहाँ की शोभा देखते ही बनती है। वह कई अर्थों में बडी आकर्षक है। यहाँ के अर्द्ध गोलाकार गुम्बद बराबर के भागो मे बटे हुए हैं। उनके बीच के स्थानो मे भी कुशल कारीगरी के नमूने हैं। एक भी भाग मे मदिरा की गोष्ठी को चित्रित किया गया है। उसमे बैठे हुए सभी लोग मदिरा के नशे से मतवाले होकर आनन्द विभोर हो रहे हैं। उस उत्सव मे सभी प्रकार के लोग शामिल हैं। सम्पत्तिशाली बसन्त के इस उल्लास में अपनी लक्ष्मी का ध्यान भूल गये हैं और अपने धन को जल की तरह खर्च कर रहे हैं।

एक दूसरे विभाग मे विभिन्न प्रकार की मालाये बनी हुई है, उनमे फूलो, फलो और पक्षियो को अकित किया गया है। यह चित्रण भी बहुत स्पष्ट है। इसी विभाग मे अनेक शूरवीरो के चित्र भी दिखाये गये हैं। प्रत्येक के हाथ मे तलवार है। इन शूरवीरो मे कदाचित् एक अनहिलवाडा का राजा भी है। इसके बाद हमारा ध्यान वहाँ के तोरण की तरफ जाता है। वह देखने मे अत्यन्त मोहक है और देखने मे समुद्री परियो-सा मालूम पडता है।

अब हम मण्डप की तरफ से चलकर मन्दिर की ओर आते हैं। सीढियाँ चल-कर हम दालान मे पहुँचे। उसके दाहिने और बाये एक-एक आला बना हुआ है और प्रत्येक आला ऐसे ढंग से बनाया गया है कि उसका आधा भाग दीवार के भीतर है और आधा भाग बाहर की तरफ है। वहाँ का धरातल वेदी के रूप मे बना हुआ और उस स्थान के छोटे-छोटे खम्भे एक अत्यन्त सुन्दर कामदार चन्दोवा को अपने र रखे है। उनकी बनावट बहुत साधारण है। परन्तु उसकी सादगी मे आकर्षण है।

सादगी की इस छवि को कोई भी आसानी से कही अन्यत्र देख न सकेगा। छेनी का काम इतनी खूबसूरती के साथ किया गया है कि जो देखने में मोम में ढला हुआ मालूम होता है।

कहा जाता है कि इन आलो के बनाने मे सवा लाख रुपये खर्च किये गये हैं। इन आलो को बनवाने वाला वहाँ का एक धनिक है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उन दिनो में यहाँ के धनवानों की हालत कितनी अच्छी थी। वेदी पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित है। उनका चिह्न सर्प है। पूजा की सामग्री यहाँ पर भी वही है, जो पहले लिखी जा चुकी है। यहाँ पर भी हमको केशर का अर्पण, घी से भरे हुए दीपक, धूप मूर्ति के माथे पर हीरा और चाँदी की मूर्ति देखने को मिलती है।

अब हम उस चौक मे आते हैं, जो मन्दिर के चारो तरफ है। इस चौक का क्षेत्रफल लगभग उतना ही है, जितना पहले वाले चौक का। शायद ही कुछ अधिक हो। दोहरे खम्भो की रविश भी उतनी ही मोहक है, परन्तु इसके खम्भों मे सादगी अधिक है। उसकी छत में अच्छी कारीगरी का काम किया गया है। मन्दिर की सभी छतें मिलाकर नब्बे से कम नही हैं। उनमे आज भी काम जारी है। छत के भीतरी भाग में देवियो, देवताओ, किन्नरो और शूरवीरो के चित्र दिखाये गये है। उनके साथ-साथ जहाज भी देखने को मिलते है। यहाँ के निर्माताओ ने जहाजों के द्वारा समुद्री व्यापार करके अपरिमित सम्पत्ति एकत्रित की थी। उन दिनो में अनहिलवाड़ा का बड़ा गौरव था। यहाँ के सारे व्यापारिक स्थानो का वह केन्द्र था और आस-पास के सभी पड़ोसी राज्यो में वहाँ का व्यापार जहाजो के द्वारा होता था। पडोसी राज्यो का व्यापारिक माल इसी नगर में उतरता था और वहाँ से हिन्दुस्तान के दूसरों नगरो में जाता था।

इसी समय मेरे सामने एक दूसरी परिस्थिति आयी। यहाँ जो जहाज दिखाये गये थे, उसमे ग्रीक देवतापन (१) का चित्र बना हुआ था। इस देवता के शरीर का आधा भाग बकरे की तरह का था और उसके मुँह मे एक बाँसुरी थी। पूर्व की तरफ के खम्भो के बीच मे अच्छी सजावट की गयी है। वहाँ पर हाथियो का एक जलूस चित्रित किया गया है। उन पर सवार बैठे हैं और बहुतों पर गाने-बजाने का समान भी मौजूद है। हाथी का चित्रण एक ही सगमरमर के पत्थर पर किया गया है। उसकी बनावट मामूली है और उसकी ऊँचाई चार फीट है। सामने की तरफ एक स्तम्भ है। यह ठीक उसी प्रकार का है, जैसा कि पहले मन्दिर मे देखा था।

यहाँ पर बहुत से कोठे है और प्रत्येक कोठे की वेदी पर किसी-न किसी जिनेश्वर की मूर्ति रखी हुई है। प्रत्येक मूर्ति लगभग चार फीट की है। यहाँ पर जितने

(१) ग्रीक चरागाहो का देवता, जो आर्केडिया मे पूजा जाता है।

कोठे हैं, उन सब की वेदियो पर इसी प्रकार जिनेश्वरों की मूर्तियाँ स्थापित हैं। इनकी स्थापना बडी सुन्दरता के साथ की गयी है।

इन मन्दिरो में विशेषतायें अनेक हैं और वे सभी एक दूसरे से भिन्न हैं। आवश्यक तो यह था कि उनके वर्णन पूरे तौर पर अलग-अलग किये जाते। लेकिन मेरे लिए यह बहुत कठिन है। समय की कमी है, यहाँ पर और भी बहुत-से मंदिर हैं। समय के अभाव मे उनके सम्बन्ध मे मैं कुछ नही लिख सका। उनकी सख्या कम नही है। उदाहरण के तौर पर भीनेशाह का मंदिर, वह निर्माता के नाम से ही प्रसिद्ध है। उसकी बनावट दूसरे मदिरो से बिल्कुल विपरीत है। वह चार खण्ड का बना हुआ है और सादडी की घाटी वाले मदिर से मिलता-जुलता है। लोगो का कहना है कि इस मदिर मे स्थापित जिनेश्वर की पीतल की प्रतिमा लगभग १०८,००० पाउण्ड के बराबर है। यह प्रतिमा पीतल की भूमि पर स्थापित है। वह देखने मे धर्मोपदेशक की तरह मालूम होती है। उसके आस-पास की भूमि में कितने ही विभाग किये गये हैं और उन विभागो मे तीर्थङ्करो, मनुष्यो और विभिन्न पशुओं की मूर्तियां बनायी गयी हैं। इनके तैयार करने मे ऐसी कारीगरी से काम लिया गया है, जो देखने मे वे मूर्तियाँ ढली हुई मालूम होती है। वहाँ पर कुछ और भी मूर्तियाँ हैं, जो सात तरह के धातुओ से बनी हुई हैं।

हमने इसका आरम्भ बिशप हैवर के वर्णन के साथ किया था। हम उसी के साथ इसका अत भी करना चाहते हैं। उसने लिखा है कि उसने जैपुर के महलो में जो कुछ देखा था, वह क्रेमलिन और अलहम्बा दोनो से श्रेष्ठ था। पश्चिमी मरुभूमि के तट पर आबू के जैन मन्दिर बिशप हैवर ने नहीं देखे थे, वे मन्दिर उन सबसे श्रेष्ठ हैं, जिनको बिशप ने देखा था। यहाँ पर मैं स्पष्ट बताना चाहता हूँ कि आगरे के ताज महल को छोडकर, कही की कोई इमारत जैनियो के इन मन्दिरो से श्रेष्ठ नही है। यह दूसरी बात है कि अपनी रुचि विशेष के कारण किसी को कोई अच्छी लगे और किसी को कोई।

किसी भी इमारत की विशालता और दृढता ही उसकी श्रेष्ठता की माप-दण्ड नहीं होती। सबसे बडी विशेषता उसके निर्माण आकार-प्रकार और कलापूर्ण चित्रण की होती है। किसी निर्माता ने अपनी इमारत के निर्माण मे सबसे अधिक सम्पत्ति खर्च की है, लेकिन उसकी उपयोगिता का और उसके श्रेष्ठ होने का यह भी कोई माप-दड नही है। बल्कि कोई भी निर्माण अपनी श्रेष्ठता का दावा उसी दशा में कर सकता है, जब उसके प्रशसक अधिक सख्या मे हो और उसका निर्माण अधिकाश लोगो को अपनी ओर आकर्षित करता हो।

एक बडे विस्मय की बात तो यह है कि इस प्रकार के गौरव की सामग्री रेगिस्तान के किनारे पहाडो की उन चोटियो पर मौजूद है, जहाँ पर सीधे सादे अर्द्ध-

सभ्य, अशिक्षित और दुनिया की बातों से अनजान अपने थोड़े से आदमियो के साथ पहाड़ी और जंगली जातियाँ रहा करती हैं। इन प्रसिद्ध मंदिरो के निर्माण की योजनाये, जिनके तैयार कराने मे न जाने कितने लाख रुपये व्यय किये गये और उनसे भी अधिक हीरा जवाहिरात से मदिरो की मूर्तियो की शोभा बढायी गयी, मरु-भूमि के निकट इतने ऊँचे पहाड़ों पर उनके निर्माताओ ने क्यों बनायी; इसका सही कारण क्या है, यह तो नही कहा जा सकता। लेकिन उसका एक बहुत बडा लाभ जो इन मदिरो को मिला, वह यह है कि आक्रमणकारी इस्लाम के प्रचारक इस मरुभूमि के निकट नहीं जा सके और वे इन ऊँचे पर्वतो पर बने हुए प्रसिद्ध जैन मन्दिरो को कोई बड़ी क्षति नही पहुँचा सके।

मैं देलवाड़ा की अभी आधी यात्रा ही पूरी कर सका था कि दिन समाप्त होने पर आ गया और सायंकाल के आसार पृथ्वी पर चारो तरफ दिखायी देने लगे। उस समय पक्षियो की आवाजो को सुनकर मैंने एकाएक अनुभव किया कि वसिष्ट मन्दिर की यात्रा करने के लिये रवाना होने का समय आ गया है। वह मदिर अब भी यहाँ से पाँच मील की दूरी पर था और वहाँ पहुँचने के लिए मैं उत्सुक हो रहा था।

आबू क्षेत्र का सबसे अधिक आकर्षक भाग मुझे यहाँ पर देखने को मिला। इस भाग मे खेती अधिक होती है। यहाँ पर रहने वालो की सख्या भी अधिक है और झरनो के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की वनस्पति के पेड और पौधे अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ की कुछ भूमि में हरी-हरी घास उगी हुई और फैली हुई देखकर ऐसा मालूम होता है, मानो प्रकृति ने यहाँ पर हरे कालीन बिछा रखे हैं। एक और विशेषता है। यहाँ पर जो चीजे देखने को मिल रही हैं, वे एक दूसरे से भिन्न हैं। यहाँ पर पक्षियो की किस्मे अलग-अलग हैं। उनके स्वरो में भी भिन्नता है। इसलिए उन सबकी आवाजें अत्यन्त प्रिय और आकर्षक मालूम होती हैं। उनके स्वरो में इतनी सुन्दरता और प्रियता का अनुभव न होता, यदि उनके स्वरों मे भिन्नता न होती। कही-कही पर निर्मल जल के झरने भी देखने को मिले। इन सबको देखकर मुझे उस क्षेत्र का स्मरण हो रहा था, जहाँ पर अब मैं जाने को था।

यहाँ की खेती के दृश्य देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैंने ध्यान पूर्वक उसको देखा। यहाँ का प्रत्येक खेत बड़े परिश्रम के साथ जोतकर तैयार किया गया था। यहाँ के इस छोटे-से भाग में आबू की बारह ढाणियाँ हैं और मैं उनको चार में से होकर गुजरा था। यहाँ पर बने हुए घर बहुत साफ-सुथरे दिखायी दे रहे थे और उनके भीतर और बाहर प्रकृति का सौन्दर्य था। ये घर झोपड़ियों के रूप में तैयार किये गये हैं, जिनमें से अधिकांश गोल हैं और उनमें मोटी मिट्टी पोती गयी है। इन

झोपडीदार घरों को सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद बनाने के लिये विभिन्न प्रकार की योजनाओ को काम में लाया गया है। खेतो को पानी देने के लिये झरनों के जल का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर पानी बहुत नजदीक निकलता है, इसलिए कुओ को गहरा नही खोदना पडता।

इन खेतो के किनारो पर जगली गुलाब के बहुत-से पेड़ हैं। उन पेडो में गुच्छे दिखायी देते थे। उनको यहाँ पर खूजा कहा जाता है। उनके बीच-बीच मे शिवप्रिया के वृक्ष हैं, जो हिन्दुस्तान के बगीचो मे बहुतायत से पाये जाते हैं।

दाडिम के पेड जिनको यहाँ पर आमतौर से अनार कहा जाता है ग्रेनिट की पहाडी पर टूटी-फूटी चट्टानो मे उगे हुये थे। अनेक स्थानो पर खूबानी के पेड़ भी थे। वे पेड फलो से लदे हुए थे। वे कच्चे थे और उनके रग हरे थे।

मेरे पास अगूर लेकर कुछ लोग आये। उनको देखकर मालूम हुआ कि ये अगूर यहाँ के वृक्षो के हैं। यहाँ पर अगूर और चकोतरा, जिसको मैंने देखा नही, आबू के प्रमुख फलो मे माने जाते हैं। यहाँ पर आम भी बहुत होते थे और लोबेलिया की तरह नीले और सफेद फूलो के गुच्छो की एक घनी बेल ने सेवार से ढकी हुई शाखाओ पर मजबूती के साथ अपना स्थान बना लिया है।

यहाँ के लोग आम को बहुत उपयोगी मानते हैं और उसे अम्बाली कहा करते हैं। इन लोगो को अन्य फलो के मुकाबिले में आम बहुत पसन्द आता है। अचलगढ़ मे ऊँचे-ऊचे खजूर के बहुत-से पेड थे। ये वृक्ष अपने आप पैदा होते हैं। विभिन्न प्रकार के फूलो की यहाँ पर अधिकता है। इन फूलो मे चमेली और गुलाब की सभी किस्में जंगली झाडियो की तरह उगी हुई हैं। सुनहरी चम्पा—जिसका पौधा फूल वाले पौधो में सभी से अच्छा माना जाता है, वह मैदानो मे बहुत कम पाया जाता है। लोगो का कहना है कि वह शताब्दी मे एक ही बार फल देता है। उस चम्पा के पौधे यहाँ पर लगभग सौ-सौ गज के फासिले पर फूलो से भरे हुए लहरें ले रहे थे उसकी सुगन्ध से वायु प्राणो को शक्ति दे रही थी।

सक्षेप मे यहाँ के सम्बन्ध मे इतना ही कहा जा सकता है कि यहाँ पर झरने हैं, घाटियाँ हैं, विभिन्न प्रकार के वृक्ष हैं, वनस्पति के पोधे हैं, चट्टाने हैं, जगल हैं, अनाज के अच्छे खेत हैं, अगूर की बेले हैं, टूटे-फूटे किले हैं जिन पर आजकल घास और पौधे हैं।

देलवाडा से आधा रास्ता चलने के बाद एक मील की दूरी पर ऊंची चोटी पर एक चट्टान थी। वहाँ की एक दरार के निकट आबू की रक्षा करने वाली देवी का एक मन्दिर है, उस देवी को यहाँ के लोग आर्बुद की माता कहते हैं, कुछ लोग उसे बुद्धि-पर्वत की माता कहते हैं। उसका लगभग आधा भाग पत्तो से ढका हुआ है, उस दरार से एक छोटा-सा नाला निकलकर चक्कर लगाता हुआ, पहाडी की पूर्वी ढाल पर

कैरिली की घाटी में बहती हुई कई एक दूसरी नालियों के साथ बनास नदी में जाकर मिल जाता है। वह नदी पहाड़ी के किनारे बिलकुल करीब बहती है।

हमने यहाँ पर कुछ पुराने मन्दिरो, घरो के खण्डहरों और गुफाओं को देखा, जिनमे उन दिनो ऋषि लोग रहा करते थे और ईश्वर की आराधना करते थे। बहुत-से वृक्षो की छाया मे एक बड़ी सुन्दर कुटी देखने को मिली, उसमें कितनी ही ऐसी बाते थी, जो दर्शकों के मन को आकर्षित करती थी। वहाँ पर फलो की इतनी अधिकता थी कि उनको खाकर कोई भी आराम के साथ गर्मी के दिन व्यतीत कर सकता है। यहाँ पर एक ही अभाव है। पानी यहाँ का खारा है, लेकिन उसको शुद्ध किया जा सकता है।

कुछ दूर चलने के बाद हमने एक झील देखी, वह लगभग चार सौ गज लम्बी है, उसको देखने-समझने के लिए चौबीस घंटो की आवश्यकता थी, लेकिन समय के अभाव के कारण मैं उसका पूरा आनन्द नही ले सका।

जिसने राहन नदी पर एण्डरनाच से तीन मील ऊपर की झील को देखा है, उनको मालूम है कि उसके चारो तरफ चट्टाने हैं। उसके पास तक जङ्गल है। उस झील में जलमुर्गाव आजादी के साथ घूमा करते हैं। इस पहाड़ी स्थान पर किसी शिकारी को चाहे वह बन्दूक वाला हो अथवा जाल वाला हो—शिकार खेलने की इजाजत नही है। यहाँ के लोग 'अहिसा परमोधर्मः' पर पूर्ण रूप से विश्वास करते हैं। इसके विरुद्ध यहाँ पर शिकार करने वाले को मृत्यु का दण्ड दिया जाता है।

लोगों का कहना है कि इस झील का जल अगाध है। उसकी कभी कोई थाह नही पा सका। यहाँ पर मुझको ज्वालामुखी के लावा के चिह्न कही पर दिखायी नही पड़े।

दो तीन ढाल पार करने के बाद मैं उस चोटी पर पहुँच गया, जहाँ से बसिष्ठ के मन्दिर के लिये रास्ता गया है। मैं उसके दृश्य को देखने के लिये तैयार नही था। इसलिये कि उसको देखने के लिये दिन का खुला प्रकाश आवश्यक था। यहाँ पर मैंने अपनी गाड़ी छोड दी थी, इसलिये कि उसमे बैठे-बैठे मै थक गया था। हमारे सामने एक गहरी खोह पड गयी। उसको पार करने के लिये एक ही रास्ता था कि चट्टान के टूटे-फूटे पत्थरो पर चलकर उसे पार किया जाय। उस स्थान पर एक बहुत पतली चट्टान थी। वृद्ध गुरु मेरे आगे-आगे चल रहे थे, वे बहुत थक गये थे। इसलिये वे बैठ गये। उनके बैठने का तरीका भी कुछ विचित्र था। वे इस प्रकार थक गये थे कि वे बैठने के समय पहाडी पथ प्रदर्शको का सहारा लेकर बैठे थे।

गुरु महाराज यहाँ की विभिन्न बोलियाँ जानते थे, लेकिन वे किसी को अपनी बात समझा नही सके। लेकिन उन पहाड़ी आदमियो ने गुरु की बात को समझने की

कोशिश की और वे किसी प्रकार यह समझे कि गुरु यह पूछ रहे हैं कि अगर मेरा पैर फिसल जाय तो फिर क्या होगा ?

गुरु के इस प्रश्न का उत्तर देते हुये उन लोगो ने कहा—"ओ बाप, आप अगर फिसल गये तो पाताल के नीचे पहुँचेंगे, उसके पहले कही रुकेंगे नही।" यह कहकर वे लोग गुरु की तरफ देखने लगे।

आवू का धरातल वहाँ से वहुत नीचा था और उसकी तरफ देखने मे बडा भय लगता था। आधा रास्ता उतर आने के बाद ऊपर की तरफ देखने पर डरावनी चट्टानें लटकी हुई दिखाई पडती है और नीचे की तरफ देखने पर बडी दूरी पर जमीन दिखायी देती हैं। नीचे दिखायी देने वाले विशाल वृक्ष आपस मे चिपके और लिपटे हुए छोटे-छोटे मालूम होते हैं।

घाटी से ऊपर की ओर पहाडी का मुख वादलो से ढका हुआ था। इसके फलस्वरूप अन्धकार हो रहा था और हमको बडी सावधानी के साथ रास्ते को टटोलते हुये नगाडे की आवाज के सहारे चलना पडता था। इस अन्धकार मे वडी सतर्कता वरतनी पडी। धोखे से अगर एक कदम भी गलत पड़ जाता तो आदमी का कही पता न लगता। उस दशा में सारी अभिलाषा और योजना बेकार हो जाती। हम लोगो के चलने मे और आपस मे वाते करने से जो आवाज हो रही थी, उसे लोगो ने सुन लिया। उसके बाद अन्धकार मे चिराग दिखायी पडने लगे और उसके प्रकाश मे मन्दिर का भी आभास होने लगा। यात्रियो को वहाँ पर उतरने मे सहायता देने के लिये कुछ साधु और उनके शिष्य आते हुये दिखायी देने लगे। इससे हम लोगो को वड़ी शान्ति मिली।

गोमुख के पास पहुँच कर विश्राम करने के अभिप्राय से हम लोग ठहर गये और उसके बाद चलकर केलो के एक वाग मे पहुँच गये। वही पर मेरे स्वागत के लिये शामियाना लगा हुआ था। इस समय मैं बुरी तरह से थका हुआ था। लेकिन अपने उद्देश्य के प्रति जो उत्सुकता थी, उसके कारण मुझमे साहस पैदा हो रहा था और उसी के बल पर मैं बराबर चलता रहा। धीरे-धीरे वसिष्ठ के मन्दिर के पास पहुँच गया।

इस मन्दिर की इमारत छोटी है और बनावट साधारण है। इस मन्दिर की इमारत वहुत पुरानी है और उसका जीर्णोद्धार इतनी बार हुआ है कि उस मन्दिर के मूल-निर्माण का कोई अंश देखने को नहीं मिल रहा। मन्दिर के आखिरी भाग मे अँगरखा पहने हुये मुनि के मुख-मण्डल के दर्शन हुए। मूर्ति का रङ्ग काला है, इसलिये कि उसका निर्माण काले पाषाण के द्वारा किया गया है। वह मूर्ति एक नीची वेदी के ऊपर स्थापित है।

कुछ समय मे देखा, सारा मन्दिर जगमगा उठा और देवता की प्रसन्नता के लिये आश्रम के लोग स्तोत्र पढ़ने लगे। अपने पेरों में मैं बूट पहने था। इसलिये मैं मन्दिर के द्वार के बाहर ही खड़ा रहा और जो स्तोत्र पढ़े जा रहे थे, मैं उनको ध्यान-

पूर्वक सुनता रहा। वहाँ का महन्त वृद्धावस्था में था। उसका कद लम्बा था। लेकिन शरीर दुर्बल था। वह एक बरामदे में मृग चर्म पर बैठा हुआ था। उसको देखकर ऐसा मालूम होता था, मानो तप करते हुए उसने अपने रक्त और मांस को सुखा दिया है।

उस महन्त के शिष्य मोटे-ताजे और तगडे हैं। उनके शरीर और स्वास्थ्य को देखकर उनके तप का कोई आभास नही होता। उनमें और महन्त में बहुत बडा अन्तर था और यह अन्तर कितनी ही बातो की तरफ संकेत कर रहा था। महन्त की जटायें बहुत सी एक दूसरे के साथ चिपकी हुई और उलझी हुई थी। उसके सारे शरीर मे राख पोती हुई थी। वह अपने ध्यान मे इतना मग्न था कि उसको बाहरी वस्तुओ का कुछ भी ज्ञान न था।

उसी समय आरती की गयी। उसका दृश्य अत्यन्त प्रभावशाली था। जब आरती समाप्त हो गयी तो सभी शिष्यो ने बारी-बारी से गुरु के चरणों को दण्डवत किया। इसके पश्चात् वे दो-दो और चार-चार की सख्या मे आग की जलती हुई धूनी के चारो तरफ एकत्रित हो गये। यह धूनी हवा की ठण्डक मे बड़ी अच्छी लग रही थी। उसके सहारे पर लोग समय काटने लगे। मैंने अपने साथ की भेट अपने गुरु के द्वारा वृद्ध महन्त के सामने उपस्थित कराई और कितने ही साधुओ-सन्यासियो को उस हर्ष पर आनन्द करते हुये छोड़कर मैं बाहर आ गया।

महन्त और उसके शिष्यो की शारीरिक परिस्थितियो पर मैं मन ही मन कुछ बाते सोचता रहा। महन्त जितना ही दुबला-पतला था। उसके शिष्य उतने ही ताजे और तन्दुरुस्त थे। इस स्वास्थ्य और तपस्या का कोई सम्बन्ध नही है। मनुष्य का अच्छा स्वास्थ्य उसके तपस्वी जीवन का परिचय नही देता। इस प्रकार की बाते मेरे मन मे वडो देर तक घूमती रही।

नीचे के मैदान में, जहाँ पर थर्मामीटर १३५° पर था, वे लोग यदि आग जलाकर और उसको घेर कर बैठते तो वह आवश्यक भी मालूम होता। परन्तु जहाँ पर घूनी लगी हुई थी, वहाँ का तापक्रम तो अपने आप ७०° पर ही था और आकाश को बादल चारो तरफ से घेरे थे। ऐसे स्थान पर आग जलाकर वैठना एक विलासता के अतिरिक्त और कोई चीज नही है। (१)

मन्दिर के प्रवेश-द्वार के दाहिने और बाये—दोनो तरफ सगमरमर पत्थर के दो शिला लेख थे। उनकी नकल करने का कार्य मैंने गुरु को लगाकर इधर-उधर देखा और अपने टार्च की तेज रोशनी चारो तरफ फेकी। टार्च के उस प्रकाश मे सबसे पहले

---

(१) मूल लेखक को यहाँ की धूनी पर विस्मय मालूम हुआ है। लेकिन सत्य यह है कि योगी लोग गर्मी के दिनों में भी आग जलाकर बैठते हैं और इसको वे अपनी तपस्या का एक आवश्यक अङ्ग मानते हैं। —अनु०

अन्तिम परमार की छतरी मुझे दिखायी पडी। वह मन्दिर से अलग बनी हुई थी। इस पर एक अराडा कार गुम्बद खम्भो पर रखा हुआ है। नीचे की तरफ एक वेदी पर परमार की मूर्ति खडी हुई है वह मुनि के प्रति अपनी विनम्रता प्रकट कर रहा है। यह मूर्ति शुद्ध पीतल की बनी हुई है और साढ़े तीन हाथ ऊँची है। किसी आक्रमणकारी मुसलमान की दृष्टि इस पर गयी और उसने इस मूर्ति की जाँघ पर कुल्हाडी चलवायी।

शिलालेखो से जाहिर होता है कि मुनि ने आबू के प्रति किये हुये प्रथम वर्णित अपराध के कारण धारावर्ष की प्रार्थना पर ध्यान नही दिया। इस पर्वत पर राज्य करने वाला अपने वश का वह अन्तिम राजा था। इतिहास मे धार परमार के नाम का आज भी गौरव है। जो लोग पहाडो पर रहते हैं, वे इसी नाम से उसको पुकारते हैं। शत्रुओ के इतिहास मे भी बादशाह कुतुबुद्दीन के विजेता के रूप में उसका उल्लेख किया गया है इससे उसके गौरव का पता चलता है।

वह परमार राजा अल्तमश के समय उसकी अधीनता मे उस समय तक नहीं आया, जब तक कि नाडोल के चौहान राजपूत शत्रु के साथ मिल नही गये। उन्ही की एक शाखा देवडा कुछ दिनो के बाद परमारो के वश मे मान ली गयी। इन शिलालेखो मे देवड़ा के नाम जो पट्टे लिखे गये थे, उनका उल्लेख किया गया है।

चौक के दाहिने किनारे पर पातालेश्वर का एक छोटा-सा मन्दिर है। वह धरातल से कुछ सीढियाँ नीचे है। इस देवता के सम्बन्ध में कोई भी आकर्षण की चीज मन्दिर मे नही मिलती। यहाँ पर केवल कुछ छोटे देवताओ की छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं और उन सबके साथ पातालेश्वर की मूर्ति दीपक के साधारण प्रकाश मे दिखायी पडती है।

एक वेदी पर—जिस पर कोई छत नही है अनेक देवमूर्तियाँ मौजूद हैं। उनके कितने ही भाग नष्ट हो गये हैं। इन मूर्तियो मे जमना के नाथ श्याम की मूर्ति देखने मे अधिक आकर्षक है। यहाँ पर इसी प्रकार के दो स्तम्भ भी है। उनकी ऊँचाई दो-दो फीट की है। और उनका विभाजन कई भागो में किया गया है। उनमे देवताओ की मूर्तियाँ भी बनी हुई हैं। अगर ये मूर्तियाँ (सिलेनी) की तरह की होती तो इनको अधिक गौरव दिया जा सकता था।

चौक के बीच मे दो पौराणिक मूर्तियाँ और भी हैं। जिनको हिमाचल के बेटे नन्दिवर्द्धन और उसके मित्र सर्प की बतायी जाती हैं। यह सर्प वही है, जिसने इन्द्र के ब्रज की चोट से बनने वाले गड्ढे को भरने के लिए हिमालय के बेटे को भेजा था। इसके करीब कुछ सती स्त्रियो के स्मारक भी बने हैं। उन पर अच्छी कारीगरी की गयी है।"

मुनि वसिष्ठ के आश्रम मे जो कुछ भी देखने के योग्य था, मैंने सब कुछ देखा और उसके बाद मैं अपने डेरे मे लौटकर आया। अपनी यात्रा के सम्बन्ध मे जो मुझमे

उत्साह और अभिरुचि थी, उसके फलस्वरूप घूमते हुए मैंने पूरे सोलह घण्टे व्यतीत किये थे। जब मैं अपने मुकाम पर लौटकर आया तो मेरी थकावट की कोई सीमा न थी। मेरे शरीर मे जोर का बुखार था, सर्दी भी लग रही थी और मेरा सम्पूर्ण साहस पस्त हो चुका था।

इस थकान और परेशानी के समय हरी चाय का एक प्याला मुझे अमृत के समान मालूम हुआ। मुझे बहुत आराम मिला। आबू के विभिन्न स्थानो मे घूमते हुए जो दृश्य देखे थे, वे सभी मेरे यत्रो के सामने घूम रहे थे। वायु तेज़ थी, वह घाटी के हरे और ऊँचे वृक्षो से होती हुई चारों तरफ लहरे ले रही थी। हरे पेड़ो की पत्तियो से अलिगन करती हुई जो वायु आ रही थी, वह अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद थी और हम लोगों के थके हुए शरीरो मे भी प्राणो का सचार कर रही थी।

अपने मुकाम पर पहुँचने के बाद मुझको आबू के एक-एक दृश्य का स्मरण होने लगा। मुझे उसके झरने बडे प्रिय मालूम हो रहे थे। जब मैं अपने खेमे मे लेटे हुए विश्राम कर रहा था, उस समय मुझको साधुओ और सतो के मिले हुए स्वर सुनायी दे रहे थे और उनके स्मरण से मुझको बडा सुख मिल रहा था। अनेक लोगो के स्वर एक साथ मिलकर एक सुन्दर स्वर मे बदल गये थे और वे कही पर भी बेसुरे नही होते थे। पर्वत की एकान्त साधना मे सभी का एक स्वर, एक ही भाव और आराधना एक अनोखे सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा था।

मैं इस सौन्दर्य ही तक नही रहा। मैं कुछ और भी सोच गया। उस समय एकाएक मुझको मेवाड के राणा राजसिंह के कुछ शब्दो का स्मरण हो आया—

"मस्जिद मे मुल्ला की बाँगसुनो और मन्दिर मे घण्टो की आवाज"

मस्जिद और मन्दिर का उद्देश्य एक ही है, जिनकी हम आराधना करते हैं, दोनो ही, दो नही है एक ही है, फिर उसके प्रति हमारे अलग-अलग विश्वास क्यो है? किसी एक की आराधना विरोधी विश्वासो के साथ करके हम दूसरो को नही, अपने-आपको धोखा देते हैं। हम इस आराध्यदेव—परमात्मा को अपनी आराधना से प्रसन्न करना चाहते हैं, लेकिन हम उन लोगो के साथ शत्रुता रखना चाहते है, जो खुद भी उसी के पुजारी हैं, जिसकी हम पूजा करते हैं। अपने इन झूठे विश्वासो से क्या हम परमात्मा को प्रसन्न कर सकेंगे?

ऐसे ही समय पर मुझको हिन्दुओ के एक धार्मिक ग्रन्थ रामायण की याद आयी। हिन्दुओ का वह एक प्राचीन ग्रन्थ है। उसकी रचना वाल्मीकि ने की है। प्राचीन काल मे यह प्रथा थी कि राजा और सामन्त लोग ऋषियो के पास जाकर नैतिक शिक्षा प्राप्त करते थे। रामायण मे राम और सीता के जीवन का वर्णन काव्य मे किया गया है।

रामायण का सम्मान हिन्दूओ मे घर-घर मे है। सभी लोग उसको श्रद्धा के साथ पढते हैं। बाल्मीकि की इस रामायण मे भक्ति सम्बन्धी बहुत अच्छी बाते लिखी गयी हैं। उसके वर्णन मे राम के जीवन की घटनाओ के अतिरिक्त नैतिक ज्ञान की शिक्षा भी दी गयी है।

इस प्रकार सोच-विचार में कुछ देर तक पडे रहने के बाद मैं सो गया और जब मैं जगा तो आबू के वही दृश्य मुझे दिखायी देने लगे। मन्दिर के साधु-सन्तो के द्वारा स्तोत्रो का पाठ सुनायी पडने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो अब भी मेरे सामने मुनि की स्तुति हो रही है। पातालेश्वर-देवता की मूर्ति मुझे दिखायी पड रही थी।

रात मे कई बार सोया और कई बार जागा। सोने पर मुझे मालूम होता कि मैं अपने साथियो मे पर्वत की यात्रा कर रहा हूँ और प्रकृति के दृश्य देख-देखकर प्रसन्न हो रहा हूँ। प्रातः काल सात बजे चारो तरफ धुन्ध छायी हुई थी, उसके कारण वहाँ की हरियाली भी साफ दिखायी नही पडती थी। मठ धूलिमय हो रहा था। मैं पहाड़ के किनारे किनारे चलकर बाग में टहलने लगा। उस बाग में कुछ पौधों को छोडकर और कुछ नही था। मेरा ख्याल था कि सूर्य के निकलने पर यह धुन्ध समाप्त हो जायगी, उस समय मैं कुछ दूसरे दृश्य देख सकूंगा। लेकिन मेरा यह ख्याल सही नही निकला।

यहाँ का यह मन्दिर बहुत सम्पन्न माना जाता है। मन्दिर की आमदनी यात्रियो से होती है। राजा, रईस और सम्पत्तिशाली अपना धन इस प्रकार के मन्दिरो के बनवाने और मरम्मत कराने मे शौक से खर्च करते हैं। किसी भी हालत मे इस मन्दिर के पास धन का अभाव नही है, वल्कि इफरात है। अभी कुछ दिनो पहले की बात है, सिरोही के राव श्योसिंह ने इस मन्दिर की इमारत को नया जीवन देने मे दस हजार रुपये खर्च किये थे और आबू की संरक्षिका दुर्गादेवी पर सोने का छत्र चढाया था। लेकिन बेरूर के राजा ने देवी के चढावे मे आये हुए धन को पिछले दिनो बचाने के लिए सफल प्रयत्न किया और बँटवारे के नाम पर देवडा के राजा की भेंट को मन्दिर से हटवा दिया। इसलिये कि मन्दिर की इस सम्पत्ति का प्रायः अपहरण होता था।

१५ जून—जिस बैरोमीटर का मैं विश्वास करता था, वह अचलेश्वर से रवाना होने के समय टूट गया। इस टूटे हुए और बचे हुए बैरोमीटर मे लगभग १४०° का अन्तर था। इसलिए कि टूटने वाले मे २६°९५ और दूसरे मे २५°५५ थे। बसिष्ठ के मन्दिर पर इसमें २६°२० और थर्मामीटर मे ७२° थे। इसलिए आबू की ऊँचाई का ठीक-ठीक पता लगाना अभी तक बाकी था। इस कार्य की पूर्ति समुद्र तट पर पहुँचने के बाद हो सकती थी अथवा किसी अन्य प्रकार का प्रयोग करने पर।

अतएव इसके द्वारा जो ऊँचाई जाहिर हो रही थी, उसका मेरे अनुमान के साथ बहुत कुछ मेल खाता था। वहाँ पर चढ़ाई चढते हुए मैंने बड़ी सावधानी के साथ अनुमान से काम लिया था।

सबेरे के समय आठ बजे कुछ बदली की हालत में हमारा उतरना आरम्भ हुआ। रास्ता क्रमशः ढालू था। कई सौ गज तक ऐसा रास्ता मिला, जहाँ पर पेड़ काट-काटकर गिराये गये थे और खेती के लिए जमीन निकाली गयी थी। इस-लिए चलने में बडी रुकावट हो रही थी। लोहे के खुरपे यहाँ पर हल का काम करते हैं। उनसे गढ्ढे करके मक्का आदि के बीच बो दिये जाते हैं।

उतराई में करीब-करीब एक तिहाई रास्ते में विभिन्न प्रकार के फलों की अधि-कता रही। उन फलो मे फालसे और करौंदे के फल अधिक थे। उसके आगे चलने पर इस प्रकार के फल कम होने लगे और धीरे-धीरे वे सब गायब हो गये। यह स्थान उसी प्रकार के धरातल के समान था, जिस प्रकार मैंने पहले चढाई की तरफ जाते हुए देखा था और जहाँ पर हमारे बिगड़े हुए बैरोमीटर ने २७°३५ अंश बताये थे। बहुत सी जडे, बाहर निकली हुई थी। बातचीत मे लोगो ने मुझे बताया कि बारिश हो जाने पर यहाँ के बहुत-से पेडो मे फूल आ जाते हैं।

ग्यारह बजे दिन में हम लोग पहाड़ की तलहटी मे तालाब के पास पहुँच गये। वही पर मिलने के लिये मैंने अपने आदमियो को आदेश किया था। लेकिन वहाँ पर न तो कोई आदमी दिखायी पड़ा और न कोई घोडा। इसका नतीजा यह हुआ कि मुझको गिरवर के सरदार का अहसान लेना पडा और उसने अपनी सहज उदारता के साथ मुझे दो घोड़े दिये। एक घोडे पर मैने अपने बूढ़े गुरू को बिठाया और दूसरे पर एक लंगडे नौकर को बैठा दिया। मैं गिरबर के जङ्गल से चार मील आगे जाकर अपनी गाड़ी पर बैठा हुआ अपने मुकाम की खोज करता रहा।

यह पहले लिखा जा चुका है कि यहाँ का घना जङ्गल आबू की तलहटी के किनारे-किनारे दूर तक चला गया है। इसको पार करने मे मेरे साथ के लोगो को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। इस मुसीबत को किसी समय गुजरात का सुलतान (१) उठा चुका था। वहाँ पर एक ऊँचा पेड़ था। वह कोढ़ी पेड़ कहलाता है, इसलिए कि उसकी छाल कोढ़िया कही जाती है। उस ऊँचे पेड़ से बर्रों का एक बहुत बड़ा दल निकल पडा और वह हमारे साथ के आदमियों पर टूट पड़ा।

यात्रा करते हुए इन बर्रों के सम्बन्ध में किसी को कुछ अनुमान न था। बर्रों की सख्या बहुत अधिक थी। उनका आक्रमण भयानक रूप से हुआ और साथ का प्रत्येक

(१) महमूद बेगड़ा।

आदमी बड़े संकट मे पड गया। उस समय वृद्ध गुरू ने (जॉन गिल्पिन) (१) की तरह साहस से काम लिया और ऐड लगाकर अपने घोडे को बडी तेजी के साथ आगे की तरफ दौडाया। उनके कपडो में चिपकी हुई वर्रें अगणित संख्या मे दिखायी पडी। हमारे एक सिपाही ने वर्रों के आक्रमण से घबराकर अपनी बदूक फेंक दी। उसको इस बात का ध्यान नही रहा कि मुझको बन्दूक नही फेंकना चाहिए। मैं अपनी गाडी पर बैठा हुआ था। मुझे छोडकर सब लोग चले गये। उस समय मेरे ऊपर एक नौकर ने आ कर चद्दर न डाल दी होती तो पता नही मेरा क्या हाल होता। मैं स्वयं एक तो बीमार था और वर्रों का एक साथ भीषण आक्रमण हुआ था। अपनी बीमारी मे मैं भागने के योग्य नही था। इसलिए मेरे बचने की कोई सूरत न थी और मैं वर्रों का शिकार हुआ होता। लेकिन कुछ तो चद्दर से ढक जाने के कारण मेरी किसी क़दर रक्षा हो सकी और दूसरे रक्षा का एक कारण और भी मुझे अन्य यात्रियों ने बताया कि अचलेश्वर मे भेट बढाने के कारण इस सकट से प्राणों की रक्षा हो सकी है।

कुछ भी हो, मुझे किसी वर्रे का एक डक नहीं लगा। जिस तरफ से वर्रों का आक्रमण हुआ था, उस तरफ हमारा लगडा नौकर ठाकुर की घोडी पर बैठा हुआ 'या अली, या अली' चिल्लाता हुआ भागता रहा। उसके सिर पर पगडी अथवा साफा नही था और इस हालत मे वह लगातार भागता रहा। कुछ समय के बाद वर्रों का आक्रमण कम हुआ। उस समय मैंने अपने एक सिपाही को भेजकर डोली मँगायी। इसलिए कि उस भागने वाले आदमी को वर्रों ने इतनी बुरी तरह से काटा था कि उसकी हालत बडी खराब हो गयी थी।

दोपहर के समय हम लोग गिरवर पहुँचे। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि मेरे साथ के लोग पालडी से चलकर अभी-अभी यहाँ आये हैं। यहाँ बैरोमीटर २८°६० पर था और पालडी मे, जहाँ पर चढाई शुरू हुई थी, २८°४० जाहिर कर रहा था।

---

(१) विलियम कूपर की प्रसिद्धि व्यगहास्य प्रधान कविता मे थी। गिल्पिन लन्दन का निवासी था और ओलनी के करीब उसकी रियासत थी। वहाँ पर विलियम कूपर १७८५ ई० मे रहा करता था। कवि ने लिखा है कि अपने विवाह की बीसवी वर्ष गाँठ का उत्सव मनाने के लिए जॉन गिल्पिन और उसकी पत्नी ने एडमन्टन नामक स्थान पर जाने का इरादा किया। रास्ते मे गिल्पिन का घोडा नियत्रण से बाहर हो गया और वह दस मील तक दौडता हुआ चला गया। इसलिए उसको वापस लौटना पडा। रास्ते मे गिल्पिन की हालत बडी अजीब हो गयी, जिसका वर्णन हास्यप्रद है। कूपर को गिल्पिन की यह कहानी लेडी ऑस्टिन ने बतायी थी। उस समय वह बहुत उदास था। उसने जब इस कहानी को सुना तो वह कुतूहल होकर रात भर हँसता रहा और सवेरे उठने पर उसने उसको कविता मे लिखा।

मैं कही पर लिख चुका हूँ कि यहाँ के लोग आबू की बाहरी परिधि का अनुमान ४० से ५० मील तक का लगाते हैं। यह अनुमान कहाँ तक सही है, इसके लिए मैंने एक छोटा-सा नक़शा तैयार किया है। वह गुरु शिखर से वसिष्ठ के मंदिर अथवा उतार की तलहटी मे तालाब तक पहुँचने के मार्ग के आधार पर तैयार किया गया है। जो मैंने नकशा तैयार किया है, वह बिल्कुल सही है, यह नही कहा जा सकता। परन्तु उससे एक सही आधार लिया जा सकता है। उसकी सामान्य दिशा दक्षिण-पश्चिम है और उसके सभी मोड, उतार-चढाव एवम ऊँचाई को सामने रखकर जो अनुमान बैठता है, वह बाईस मील का है। परन्तु गुरु शिखर से मैदान तक के सीधे ढाल के लिए हम चार मील अधिक शामिल कर देते हैं। अतएव इस पहाड का विस्तार छब्बीस मील आता है। अगर इसमें से एक तिहाई भाग कम कर दिया जाय तो तलहटी का विस्तार मालूम हो जायगा और वही इसकी अनुमान पर आधारित सबसे बड़ी परिधि हो सकती है।

लेकिन मेरी समझ से यह बहुत अधिक मालूम पडता है। यदि हम उत्तर मे गुरु शिखर से दक्षिण मे बसिष्ठ के मंदिर तक की सीधी रेखा को आबू का सीधा समतल हिस्सा मानकर अनुमान लगावे तो जो अनुमान निकलेगा, वह अधिक सही होगा। यह रेखा सोलह मील की है। उतार-चढाव नीची-ऊँची और टूटी-फूटी जमीन का सीधा फासिला बारह मील से अधिक नही हो सकता। इन चौतीस और चौबीस मील के अधिक-से-अधिक व्यासो का मध्य परिणाम लगभग तीस मील अथवा पैंतीस मील की परिधि का आता है और वह अनुमान के अनुकूल ही है।

हिन्दुओ के इस पर्वत और ईसाई धर्म से सम्बन्धित माउन्ट सिनाइ के प्राकृतिक दृश्यो मे बहुत बडी समानता है, वह यद्यपि यहाँ से चार अंश अधिक उत्तर मे होते हुए भी तापक्रम मे परिवर्तनो के साथ वनस्पति मे एक-सा है। आजकल के यात्रियो मे से सबसे पहले निर्भीक यात्री बर्कहार्ड भी माउन्ट सिनाई के शिखर पर उन्ही दिनो में पहुँचा था, जब मैं आबू पर था। वे दिन जून महीने के थे। उसने लिखा है कि तलहटी मे थर्मामीटर १००° से ११०° तक पहुँचा था और उसने शिखर पर इङ्गलैण्ड की गर्मियो का सुख ७६° पर उठाया था।

मेरे पास थर्मामीटर तलहटी मे ६५° से १०८° तक था और शिखर पर ६४° से ७६° तक था। उसने लिखा है कि खूबानी, जो काहिरा मे अप्रैल के आखीर तक पूरी तौर पक जाती है, वह सिनाइ पर्वत पर जून के मध्य कालीन दिनों तक खाने के योग्य नही होती। आबू के उस देशीय फल की भी यही हालत थी, जो मूसा के पहाड़ पर पैदा होने वाले फल से कही अच्छा था। बर्कहार्ड ने सिनाइ (१) की ऊँचाई

(१) माउन्ट सिनाई की ऊँचाई ७,६५२ फीट है।

का कोई उल्लेख नही किया है। लेकिन गर्मी और जाडे के दिनो मे उसको ढकने वाली बर्फ के आधार पर उसका हिसाब लगाया जा सकता है। उस प्रकार का दृश्य हिन्दुस्तान के दक्षिण मे कभी देखने मे नही आता।

अब आबू (१) की यात्रा समाप्त हो गयी, इसलिए मुझको संतोष मिला। लेकिन अभी तक चन्द्रावती की यात्रा बाकी थी। लेकिन उसको पूरा करने के लिये अब साहस काम नही करता। इसलिये ऐसा जान पडता है कि जितनी भी यात्रा मैंने कर ली है, उसी पर सतोष कर लेना पडेगा।

आबू की यात्रा मे मेरी सारी सामर्थ्य समाप्त हो गयी। लगातार स्वास्थ्य गिरता जाता है, आज भी बुखार बढ रहा है। चेहरे और हाथो मे सूजन पैदा हो गयी है। सूर्य की धूप पडने के कारण इस सूजन मे कष्ट भी होता है। वैसे तो इन पर्वतों की यात्रा करने और प्राकृतिक जीवन मे विचरण करने मे सुख ही मिलता है। यहाँ की ठण्डी वायु मे उत्साह बढाने की अपूर्व शक्ति है। लेकिन अगर स्वास्थ्य अच्छा न हो तो वही ठन्डी वायु नुकसान भी पहुँचाती है।

मेरा एक नया अनुभव है कि इस प्रकार की यात्राये करने मे बहुत समय की आवश्कता होती है। इसलिये मैंने यह भी स्वीकार किया है कि जिसके पास इस प्रकार अधिक समय न हो, उसको इन यात्राओ मे नही आना चाहिए। इसलिये कि यहाँ पर छिपे हुये ऐतिहासिक कीमती भण्डारो को देखने के लिये बहुत समय चाहिये। समय के अभाव में कोई भी अन्वेषक कुछ नही कर सकता और न लाभ उठा सकता है।

मेरे समान यात्री को बहुत काम करना पड़ता है। विवरण के साथ मानचित्र, विभिन्न दृश्यो की चित्रावली, रेखाचित्र, पहाडियो और मदिरो के चित्र, शासको के परिचय, शासन सम्बन्धी वर्णन, पुराणों की कथाये, परम्पराये और प्रथाये, विभिन्न प्रकार के जीवन, पशु-पक्षियो, खनिज-पदार्थों एवम् वनस्पति विज्ञान की सामग्री आदि सभी का यात्राओ मे सकलन करना पडता है। ऐसा करने के बाद ही कोई भी इस प्रकार की यात्रा के अध्ययन और मनोरजन की सामग्री दे सकता है।

इस योजना को लेकर यात्रा का कार्य, इतना बडा हो गया है, जिसको मैं अच्छे अन्वेषक यात्रियो के लिये छोडता हूँ।

———

(१) आबू माहात्म्य नामक पुस्तक मैंने खरीद ली, उसमे आबू की धार्मिक बातो के विवरण हैं, राजाओ की धर्मनिष्ठा, मदिरो का निर्माण, यहाँ के पेड-पौधे आदि सभी चीजो के विवरण इसमे दिये गये हैं। मुझे अपने गुरु यती के द्वारा इसको पढ़ने का मौका नही मिला। रायल एशियाटिक सोसाइटी के सग्राहालय में उस पुस्तक को सुरक्षित रूप मे रखा दिया है।

सातवाँ प्रकरण

स्मारक और घूमनेवाली जातियाँ

गिरवर और चन्द्रावती के दृश्य—स्मारको की दशा—चन्द्रावती का विध्वंस—विदेशी यात्रियो के समय घूमनेवाली जातियों की अवस्था—मैदानो मे प्रवेश—पाल्हनपुर जिले का दीवान—सिद्धपुर का शिव-मंदिर—रुद्र-माला के टूटे-फूटे हिस्से—साठ हजार वर्ष तक नरक में रहने का भय—भारत की मूर्ति-निर्माण कला—मन्दिरो में अप्सराओं की नाचती हुई सुन्दर मूर्तियाँ।

१६ जून—गिरवर : आकाश में बादल उमड़ रहे हैं। उनको देखकर मालूम होता है कि मानसून आ गया है और किसी भी समय जोर का पानी बरस सकता है। ऐसी दशा में मुझे आगे तेजी के साथ बढ़ना चाहिये, अन्यथा झरनों में पानी बढ़ जायगा और बड़ौदा जाने का मेरा रास्ता रुक जायगा। चन्द्रावती की यात्रा छूट रही है, इसका मुझे दुख है। उसकी यात्रा करने मे जो मुझे प्रलोभन रहे हैं और आज भी हैं, उनको मैं भुला नही पाता। लेकिन यहाँ पर उसके सम्बन्ध में कुछ विवरण देना चाहता हूँ। कदाचित् अपने पाठकों को उनसे कुछ संतोष मिलेगा।

चन्द्रावती को लोग चन्द्रौती भी कहते हैं। यह एक ऊँची और मजबूत दीवार से घिरी हुई है, इसीलिये चन्द्रावती नगरी अथवा चन्द्रौती नगरी कहलाती है। यह नगरी दक्षिण-पूर्व मे गिरवर से दस मील के फासिले पर सिरोही राज्य के अन्तर्गत एक जागीर है। मैं गिरवर के सरदार की सज्जनता और उदारता का आभार मानता हूँ। लेकिन एक अन्वेषक की हैसियत से मैं उनको कभी क्षमा करने के लिये तैयार नही हूँ जिन्होंने यहाँ के स्मारको के सम्मान को नष्ट किया है। इनको विध्वंस किया गया हैं और इन्हें बेचा भी गया है।

इन स्मारको के साथ मेरा घनिष्ट सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध और सम्पर्क एक अन्वेषक और यात्री के लिये अत्यन्त स्वाभाविक है। तुर्कों के आक्रमण में यहाँ के स्मारको का विनाश हुआ है और इनके पतन के अपराधी वे भी हैं, जिन्होंने स्वामी की हैसियत से अपने लोभ के कारण इनको बेचने का कार्य किया है।

इस प्रकार के स्मारक ऐतिहासिक सम्पत्ति में गिने जाते हैं और सैकड़ों तथा सहस्रो वर्षों के बाद भी उनके सम्मान और महत्व में कोई कमी नही आती। बल्कि सत्य यह है कि ये स्मारक जितने ही पुराने होते जाते हैं, उतना ही उनका सम्मान

बढता जाता है। यदि इनके अस्तित्व किसी प्रकार मिटते हैं अथवा मिटाये जाते हैं तो वर्तमान और भविष्य को अतीत के साथ जोडने के लिये जो कडियाँ होती हैं, वे नष्ट हो जाती हैं और उस दशा मे भविष्य अपने अतीत को खो देता है।

परमार राजपूतो के गौरव को सुरक्षित रखने के लिये यहाँ की प्रकृति ने बडी उदारता से काम लिया है। साथ ही यहाँ जो विशाल मदिर बनाये गये हैं, उनके द्वारा यहाँ का गौरव बहुत-कुछ बढ गया है। लेकिन पिछले बहुत दिनो से यहाँ पर जो परिवर्तन हुये हैं, उनको सुनकर और जानकर मेरे जैसे किसी भी अन्वेषक के हृदय मे पीडा का होना स्वाभाविक है। मैं जानता हूँ कि यहाँ के जिन मार्गों मे अच्छे पथिको, व्यापारियो और धनवानो की भीड दिखाई देती थी, वहाँ आज भालुओ, रीछो और जगली जानवरो ने अधिकार कर लिया है। अनेक स्थानो पर भीलो के आतक बढ गये हैं, चन्द्रावती के विध्वस के साथ-साथ उसका व्यापार विध्वस की अवस्था को प्राप्त हुआ है और आज की अवस्था इतनी बदली हुई है कि यदि यहाँ के रास्तो, प्राचीन स्मारको और मदिरो के विवरण पुराने ग्रथो और शिला लेखो मे न मिलते तो उनकी सही बातो का कुछ भी पता नही चलता।

मुझे सबसे पहले चन्द्रावती के सम्बन्ध मे विवरण 'भोज चरित्र' नामक पुस्तक से मिले। उसमे लिखा है कि जब किसी आक्रमणकारी ने राजा भोज को धार के सिहासन से उतार दिया तो वह भागकर चन्द्रावती आया। इस विवरण से पता चलता है कि यह नगरी उन दिनो मे धार के राज्य मे थी। लेकिन उसकी स्थिति क्या थी, इसके अच्छे विवरण मुझे किसी सूरत मे बहुत दिनो तक प्राप्त नही हुए। लेकिन जब मुझे मालूम हुआ कि इस चन्द्रावती का नाम कुछ बिगडकर अथवा बदलकर चन्द्रौती या चन्दौती हो गया है तो उसके सम्बन्ध मे सही स्थिति को समझने के लिए मुझे रास्ते दिखायी देने लगे।

मेरे दल का एक सदस्य शिला लेखो का पता लगाने के लिए गया था। इस नगरी का पता चाँपी नामक ग्राम के एक तालाब मे लगे हुए शिला-लेख से चला। वह तालाब अरावली के दक्षिण की तरफ कोराट की एक जागीर मे है। इस शिला लेख में चित्तौड के गहलोत राजाओ के और अनहिलवाडा के सोलकियो, चन्द्रावली के परमारो और नादोल के चौहानो के युद्धो का बयान है। उसमे लिखा हुआ है—

अरिसिंह के दो लडके कन्हैया और बीथुक बडे बहादुर थे। वे दोनो ही चन्दावती के युद्ध मे भगवान गुप्त के साथ युद्ध करते हुए मारे गये। भगवान गुप्त के दो लडके थे, भीमसिंह और लोकसिंह। भीमसिंह की वही हालत हुई और वह भी युद्ध करते हुए मारा गया। उसका भाई लोकसिंह नर्वदा नदी के पास चूलि महेश्वर के नगर को विजय करने की अभिलाषा में मालवराज सोमवर्मा के द्वारा युद्ध मे मारा गया।

उस शिलालेख मे और भी अनेक बातो के उल्लेख हैं। उसके आखीर में तिथि के स्थान पर १३२ लिखा हुआ हैं, उसकी अन्तिम सख्या मिट गयी है। इसको सवत् १३२५ विक्रमी अथवा १२६९ ईसवी समझना चाहिए। चन्द्रावती के युद्ध का समय इससे लगभग एक शताब्दी पहले का है। ऐसा शिलालेखो से मालूम होता है। अरिसिंह चौहान और सोमेश्वर परमार के लेखो मे इसके विवरण दिये गये है। इनमे से पहला मुझे नादोल मे और दूसरा हारावली मे मिला था।

इस तरीके मे राजा भोज के इतिहास से हमको चन्द्रावती के दो समयो का पता चलता है, पहला सातवी शताब्दी मे और दूसरा १२ वी शताब्दी मे। पहले समय से भी बहुत दिन पूर्व इसके अस्तित्व का पता चलता है। लेकिन इसका आधार जनश्रुतियो और लोक कथाओ के सिवा दूसरा कुछ नही है। इन दोनो के अतिरिक्त एक तीसरा समय भी उसका हमारे सामने आता है, वह समय है १५ वी शताब्दी का; जब पश्चिमी भारत की नयी राजधानी अहमदनगर को तरक्की देने के लिए इस नगरी का सर्वनाश हो चुका था।

मैंने राजस्थान के इतिहास मे उस वंश का भली प्रकार वर्णन किया है, जिसने चन्द्रावती को मिटाकर इस नगरी को ही नही, बल्कि गुजरात की प्राचीन राजधानी अनहिलवाडा को विध्वस करके अहमदाबाद को बसाया था। अहमद नगर, जिसकी स्थापना और सुन्दरता हिन्दुस्तान की प्रसिद्ध कारीगरी का प्रमाण दे रही है, आज बडी तेजी के साथ अपने विनाश की ओर जा रहा है। अपना धर्म छोड़ने वाले जफ (१) जो इतिहास मे अपने मुस्लिम नाम वजीर-इलामुल्क के नाम से मशहूर है—के अहमद ने नयी राजधानी कायम करके अपनी ख्याति बढाने की कोशिश की और इसके लिए उसने वह स्थान चुना, जहाँ पर भीलो की एक कौम रहा करती थी और जिनकी लूटमार और आक्रमण से वहाँ पर आतंक छाया हुआ था।

उसने उन लोगो को वहाँ से भगा दिया और उसको एक नगर के रूप में बसाया। वह स्थान अच्छा नही था, स्वास्थ्य के लिए भी अनुकूल नही था। इसके लिए उसने चन्द्रावती की सामग्री को ही अहमदाबाद नही पहुँचाया, बल्कि उसने वहाँ की सम्पूर्ण श्री को अहमदाबाद पहुँचाने का प्रयत्न किया। उसने कोशिश की कि यहाँ के रहने वाले निवासी भी इस स्थान को छोड़कर वहाँ जाकर रहें। इस इरादे से उसने चन्द्रावती के मकानो और मन्दिरो के मिटाने का कार्य किया। (२)

---

(१) ज़फर, वह बाद में मुज़फ्फ़र खान के नाम से मशहूर हुआ। राजविनोद महाकाव्य में इस प्रकार का उल्लेख पाया जाता है।

(२) इसी प्रकार का सत्यानाशी कार्य किसी समय अहमद से बडे सनकी बादशाह महमूद खिज़ली ने किया था। वह दिल्ली को मिटाकर विन्ध्याचल को बसाना

यह अधोगति वहाँ के सभी लोगों के लिए दुख पूर्ण थी। लेकिन जैन उपासको के अश्रुपात करने का साधन बन गयी। एक जैन तपस्वी जब चन्द्रावती के इस विध्वंस और विनाश को देखता और देखता कि उसके प्राचीन तीर्थ स्थानो के मन्दिरों के स्थानो पर मस्जिदो के निर्माण हो रहे हैं तो वह प्राचीन काल के उन यहूदियो की तरह फूट-फूटकर रोता, जैसे वे यहूदी अपने स्थानो से निकाले जाने पर रोये थे।

अब चन्द्रावती के सम्बन्ध मे समझने के लिए कुछ समय के लिए फिर आ जाइये। गिरवर और चन्द्रावती के आधे मार्ग पर माहोल अथवा मावल नामक एक ग्राम है। वह इस नगर का एक प्रसिद्ध स्थान माना जाता है। इस ग्राम में उसका एक दरवाजा है। बनास नदी माहोल और नष्टप्राय नगर के पास होकर प्रवाहित होती है। वह नगर इस नदी के करीब बसा हुआ है। उस गाँव के पहिले एक पर्वत-श्रेणी पड़ती है, वह अधिक ऊँची नही है। पर्वतो की वह श्रेणी आबू की तलहटी से दक्षिण की तरफ जाती है। उसका रास्ता एक घने जङ्गल की तरफ से है। उस जङ्गल से मेरा सामान निकल नही सका। वहाँ का प्रमुख नगर अब जङ्गली पेडो से भर गया है।

उस रास्ते में जो कुए पडते थे, वे सब मिट्टी और कूडे से भर गये हैं, मन्दिर टूट-फूट गये हैं, उस विध्वस और विनाश मे जो सामग्री बाकी रह गयी है, उसको गिरवर का सरदार खत्म किये देता है। जिस किसी को आवश्यकता है, वह गिरवर के सरदार से खरीद लेता है।

एक तरफ वहाँ पर अम्बादेवी और तारिंगा के मन्दिर हैं और उसकी दूसरी तरफ आबू है। इन दोनो के बीच में चन्द्रावती है। अम्बादेवो और तारिंगा के मन्दिर यहाँ से पूर्व की तरफ पन्द्रह मील के फासिले पर हैं और लगभग इतनी ही दूरी पर पश्चिम की तरफ आबू है। ये मन्दिर अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर हैं। उनमे जैनी तथा शैव महन्त पूजा करते हैं। जनश्रुति के आधार पर यह नगरी धार से भी पुरानी मानी जाती है और यह नगरी उन दिनो मे पश्चिमी भारत की राजधानी थी और परमार यहां के शासक थे। उनके अधिकार मे मारवाड के सभी किले थे। उन किलो और परमारो के राज्यो के विवरण वहाँ के प्राचीन काव्यो में पाया जाता है। उस विवरण मे बताया गया है कि परमार जाति का अधिकार सतलज से नर्वदा नदी तक फैला हुआ था और धार राज्य पर भी उसी का शासन था। यूँ तो यह नगरी अपनी सुरक्षा के लिए सभी प्रकार से काफी पायी जाती है। लेकिन किसी आपत्ति काल मे आबू का किला इसके निवासियो को आश्रय देता रहा होगा ऐसा अनुमान लगाना अस्वाभाविक न होगा।

चाहता था। लेकिन उसकी यह सनक कामयाब नही हो सकी और उसकी योजना बेकार हो गयी।

व्यापारिक दृष्टिकोण से आज चन्द्रावती का कोई बड़ा महत्व न हो, यह सम्भव है। लेकिन पूर्व के देशों में सदा से धार्मिक यात्रियों को महत्व मिला है और इस प्रकार की यात्राओ के जो प्रमुख स्थान थे, वही व्यापारिक केन्द्र भी रहे है। इस अर्थ मे चन्द्रावती का ऊँचा स्थान था और इसी आश्रय के आधार पर उसने भौतिक उन्नति भी की थी। इसके प्रमाण मे अनेक बाते कही और लिखी जा सकती हैं। सबसे बडा प्रमाण इसके सम्बन्ध में आबू पर बना हुआ वैश्यों का मन्दिर है। अपने वैभव के लिए वह प्रसिद्ध है।

वैश्यों के इस मन्दिर का निर्माण विक्रम सम्वत् १२८७ और सन् १२३१ है। यह मन्दिर इस्लामी आक्रमणो के चालीस वर्ष बाद बनाया गया था। इस मन्दिर की विशालता, उसके निर्माण की कुशलता और विविध कलाओ की व्यञ्जना पर अधिक प्रकाश नही डाला जा सकता। उसके गौरव से अपने आप उसका स्पष्टीकरण होता है। बहुत दिनों तक उसकी यह ख्याति सुरक्षित बनी रही।

शिलालेख के पढ़ने से पता चलता है कि चन्द्रावती पर धारावर्ष का एक मात्र शासन था। शिला-लेख मे इसके लिखे होने के बावजूद यह सत्य है कि उसने अनहिल-वाड़ा की सत्ता को स्वीकार कर लिया था।और उस अधीनता से छुटकारा पाकर धारावर्ष के पूर्वज जैत ने अपनी लडकी ऐच्छिनी दिल्ली के अन्तिम सम्राट पृथ्वीराज को समर्पित कर दी थी। (१)

धारावर्ष के बाद परमार राजपूत अधिक दिनो तक अपनी स्वाधीनता की रक्षा न कर सके इसका प्रमाण बसिष्ठ मन्दिर के एक शिलालेख मे मिलता है। उसमें आबू पर जालोर के राजा कान्हड़ देव चोहान की विजय का उल्लेख है। उसी लेख मे यह भी लिखा है कि अगर परमार राजा अपने अधिकार को फिर से प्राप्त कर ले तो वह इस मन्दिर की जागीर को बराबर जारी रखे। यदि वह ऐसा न करे तो उसको साठ हजार वर्षों तक नरक मे बास करना होगा।

इस लेख में कोई तिथि नही लिखी हुई है। लेकिन उसके लड़के बीरमदेव को अलाउद्दीन ने सम्वत् १३४७, सन् १२९१ ईसवी में जालोर से निकाला था। इसलिए मालूम होता है कि धारावर्ष के लडके प्रेलदम अथवा प्रह्लादन से कान्हड़ देव ने आबू का राज्य छीना था। किसी भी अवस्था मे यह विजय स्थायी नही थी, इसलिए कि देवड़ो

---

(१) कविचन्द उन्तालीस पुस्तक मे उस युद्ध का बयान किया गया है, जिसमे अनहिलपुर के राजा भीमदेव ने आबू की स्वतंत्रता के लिए कोशिश की थी। उस संघर्ष में भीमदेव की पराजय हुई थी और वह मारा गया था। उसके एक सौ आठ सामन्तों मे जैत्र नामक एक सामन्त था। उसने अपनी जागीर फिर से प्राप्त कर ली थी और उसका बेटा लक्ष्मण चौहान का गौरव बढ़ा।

के इतिहास मे लिखा है कि राव लुम्बा ने आबू पर सम्वत् १३५२ अथवा १२९६ ईसवी मे और चन्द्रावती पर सम्वत् १३५६ सन् १३०० ईसवी मे स्थायी रूप से विजय पायी थी। (१)

जिस युद्ध मे देवडा लोगों ने परमारो से अधिकार प्राप्त किया था, वह युद्ध बाडेली नामक स्थान मे हुआ था। उसी युद्ध में अगनसेन का लडका मेरुतुंग अपने सात सौ आदमियो और सम्बन्धियो के साथ मारा गया था। इन दिनो मे चौहान लोग परमारो के मातहत सामन्तो की सख्या को लगातार कम करते रहे, जितनी लडाइयां हुई, प्रत्येक के मौके पर एक नयी कौमी शाखा पैदा होती रही। इस तरीके से उनकी अनेक शाखाये पैदा हो गयी और उस दशा मे उनके प्रमुख का महत्व ही नष्ट हो गया। रहा यह कि उस दशा में उनके वशजो को प्रमुख की मामूली आज्ञाओ का ही पालन करना पडता था। मदार और गिरवर आदि के सरदार इसी श्रेणी के हैं।

इस प्रकार के विवरण एक अन्वेषक के लिये चाहे जितना महत्व रखते हो, लेकिन साधारण पाठको को इनके पढने मे आकर्षण न मिलेगा। इसलिये मैं अब चन्द्रावती को यही से छोडता हूँ। सम्वत् १४६१ सन् १४०५ ईसवी में राव सुब्बू (२) के द्वारा सिरोही बसाये जाने पर और अहमदाबाद के आबाद होने पर चन्द्रावती पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी थी।

सिरोही के खंडहरो को देखने के लिए मैंने अपने साथ के कुछ लोगो को भेज दिया था। इसलिये कि वहाँ के अवशेषो को ठीक-ठीक समझने और उनकी जानकारी प्राप्त करने की मुझको आवश्यकता थी और इस जानकारी का ज्ञान देवडा लोगो की बातो के द्वारा नही लगता था। यद्यपि मैंने उन लोगो से एक-एक बात को समझने की चेष्टा की और जो कुछ वे कहते थे, उसको मैं बडी सावधानी के साथ सुनता था। परन्तु मुझको मालूम होता था कि इनकी बातो से मैं सही विवरण प्राप्त कर सकने में समर्थ न हो सकूंगा।

---

(१) गौ० ही० ओझा ने इस घटना का होना सम्वत् १३६८, सन् १३११ मे लिखा है, उसका विवरण सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ १८७ मे पाया जाता है।

(२) राव शिवभाण अथवा शोभा ने वि० स० १४६२, सन् १४०५ ईसवी मे सिरणवा नामक एक पहाडी के नीचे शहर बसाया था और उस पहाडी के ऊपर किले का निर्माण कराया था। वह किला आज की सिरोही से लगभग दो मील की दूरी पर टूटी-फूटी हालत मे मौजूद है। वह नगर अपने स्वामी के नाम पर शिवपुरी अथवा पुरानी सिरोही के नाम से प्रसिद्ध है। वर्तमान सिरोही को राव शोभा के लडके सहस्त्रमल्ल ने वैशाख सुदी २ स० १४८२ सन् १४२५ मे बसाया था—सिरोही राज्य का इतिहास।

इसलिये मैंने अपने साथ के विश्वासी लोगों को उसके सही विवरण प्राप्त करने के लिये भेज दिया था। जिस खोज को मैं सिन्धु के किनारे आरोर, जमना के किनारे सूरपुर चम्बल के निकट बरौली, हड़ौती मे चन्द्र भागा और इस प्रकार के दूसरे स्थानो से कम महत्वपूर्ण नही समझता था। मुझे अपने आदमियो के द्वारा चन्द्रावती के टूटे मंदिरो, तालाबो, कुओ और अन्य स्थानों के जो विवरण प्राप्त हुये, वे मेरे बडे महत्व के साबित हुये। खम्भे टूटकर और गिरकर मिट्टी मे मिल गये थे, मूर्तियो के टुकडे-टुकडे हो गये थे। उनको देखकर मालूम होता था कि युद्ध में उनके टुकडे किये गये है।

मैं जानता हूँ कि मेरी इस यात्रा में अन्वेषण के बहुत से कार्य छूटे जा रहे हैं, कितने ही अधूरे हैं। परन्तु उनके सम्बन्ध मे मैं जितना चाहता था, नही कर पा रहा। इस दशा मे मैं यह सोचकर संतोष करता हूँ कि शेष कार्यों की पूर्ति भविष्य मे किसी यात्री के द्वारा होगी। एक आश्चर्य की बात यह है कि भारत मे इस कला का परिचय उसके धार्मिक स्थानो पर ही मिलता है। एक चित्तौर ऐसा जरूर है कि जहाँ पर इस कला का प्रदर्शन धार्मिक स्थानो के अतिरिक्त भी किया गया है। कुछ इसी प्रकार के दृश्य मिश्र में भी देखे जाते है। भारत में पारिवारिक स्थानों के निर्माण के साथ-साथ कुओ, और जलासयो एवम् बावडी आदि के निर्माण मे भी इस प्रकार की कला देखी जाती है। इनके निर्माण सार्वजनिक हित से किये जाते है। और इनकी इमारतें अनेक स्थानो पर बडी विशाल देखने को मिलती है। बावडी के व्यास प्राय; मैने बोस और पच्चीस फीट के देखे हैं। उनकी गहराई अलग अलग मिलती है। कही-कही पर वे बहुत नीचे तक चले गये है और इस प्रकार की बावड़ी के निर्माण मे इमारतो के से चमत्कार देखने को मिलते हैं। उनको कई-कई खडो मे विभाजित किया गया है और प्रत्येक खड मे छोटे और बडे कमरो का निर्माण किया गया है।

इस प्रकार की बावडी का निर्माण ऐसे ढग से किया जाता है कि, जिससे गरमी के दिनो मे सरदारो के परिवार आराम के साथ वहाँ रह सके। पूरी वावड़ी मे ऊपर से नीचे तक जाने के लिये और पानी की सतह के नोचे तक मजबूत सीढियाँ तो बनी ही होती हैं, लेकिन उसके प्रत्येक कमरे मे चढने और उतरने के लिये बड़ी खूबसूरत सीढियाँ बनी हुई देखने को मिलती है। इन सीढियो के द्वारा एक खड से दूसरे खड मे आसानी के साथ कोई भी जा सकता है। इन खडो और उनके कमरो तथा सीढियो का निर्माण ऐसे ढग से किया जाता है कि उनमे आने-जाने मे किसी प्रकार की कोई असुविधा नही होती।

इनकी इमारतो के निर्माण मे बहुत सावधानी वरती जाती है, जिससे कि वे सैकडों और सहस्रो वर्ष तक उसी मजबूती मे बनी रहे, जिनमें उनका निर्माण हुआ

है। अगर उनको भीतर की तरफ काफी ढाल न रखा जाय और उनकी दीवारें बहुत मोटी न हों तो बाहरी दबाव और उगने वाली वनस्पतियो के कारण इस प्रकार की बावडी कुछ ही शताब्दियो मे नष्ट हो जाय।

इस प्रकार की इमारतो के बनवाने और उनमे खर्च करने के लिये यहाँ के राजाओ मे कदाचित् ही कोई समर्थ हो। मेरा अनुमान है कि दतिया का राजा ही इसके लिए अपवाद हो सकता है। क्योकि उसने एक विशाल और सुदृढ जलाशय की इमारत बनवायी थी और उसके निर्माण में बहुत धन व्यय किया था। अपने अन्वेषण मे मैं जिस नतीजे पर पहुँचा हूँ, उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि प्राचीन काल में हिन्दुस्तान की अपरिमित सम्पत्ति व्यापारियों, सम्पत्ति शालियो और शासको के द्वारा मदिरो शिवालयो, तालाबो, कुओ और बावड़ियो के बनवाने मे खर्च होती थी।

मेरे अन्वेषक दल के आदमियो ने चन्द्रावती के खंडहरो मे परमारो के समय के तीन सिक्के भी प्राप्त किये। उनमे एक सिक्के पर जो छाप है, वह स्पष्ट है। यहाँ पर मैं अब अपना इतिहास सम्बन्धी शुष्क वर्णन रोक कर अपने एक मित्र के सजीव और प्रिय वर्णन को लिखता हूँ। मेरा अनुमान है कि उसके पढ़ने में पाठको को मनोरजन मिलेगा। मैं अपने इस मित्र का बहुत आभारी हूँ, इसलिये कि मेरी खोज में आकर्षण पैदा करने का कार्य किया। (१)

विनाशकारी गिरवर के सरदार ने—जिसकी निन्दा मैंने इन पृष्ठो में पहले की है—और भी बुरा काम किया। उसने अब शिव का शिखर बध देवालय और अद्वैतवाद के उपासक जैनियो के कीमती तोरण तथा कलापूर्ण मेहराबे नष्ट कर दी हैं। उसने उनको निकलवा कर बेच दिया है और जिन्होंने उनको खरीदा है, वे उनको तोडकर अपने यहाँ निर्माण के काम मे लाये हैं।

परमार राजाओं की पुरानी राजधानी चन्द्रावती के खंडहर आज भी आबू पहाड की तलहटी से बारह मील दूर बनास नदी के किनारे उस क्षेत्र में मौजूद हैं, जहाँ पर घने जगल हैं। इस प्रसिद्ध राजधानी के विवरण कहानियो और कथाओ के सिवा अन्यत्र कही नही मिलते। सन् १८२४ ईसवी के आरम्भ तक योरप के लोगो को इसके सम्बन्ध मे कुछ भी जानकारी नही थी। उसका अपना कोई इतिहास नही था और जन-श्रुतियाँ भी उसके सम्बन्ध मे उस समय तक कुछ नही कहती थी। हिन्दुस्तान मे आकर और राजपूताना मे पहुँचकर मैंने दूसरी रियासतो के साथ इसके सम्बन्ध मे भी जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की। उस दशा मे उसके खडहरो मे जो कुछ देखने और जानने को मिला, उसमें केवल सगमरमर और पत्थरो के टुकडे देखने में

(१) यहाँ पर लेखक का अभिप्राय श्रीमती हन्टर ब्लेयर से है, जिसने आबू को रेखा चित्रो में तैयार किया था और उसे इङ्गलैण्ड ले गयी थी।

आये। उन भग्नावेशो को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह राजधानी किसी समय निश्चय ही विशाल और वैभवपूर्ण रही होगी। इसकी इमारतें कितनी सुन्दर आकर्षक और देखने के योग्य उन दिनो मे थी, इसका अनुमान आज भी उसके खंडहरों से लगता है।

चन्द्रावती की प्राचीन बीस इमारतो का ज्ञान उस समय लोगों को हुआ, जब सन् १८२४ ईसवी मे हिज एक्सलेन्सी सर चार्ल्स काल्विन ने अपने आदमियों के साथ वहाँ का निरीक्षण किया, उन प्रसिद्ध बीस इमारतो मे एक का वर्णन नीचे की पक्तियो में किया जाता है :

यह कोई मंदिर है और वह ब्राह्मणो के द्वारा बनवाया गया था। उसके निर्माण मे जिस कला-कौशल का काम किया गया है, वह अनुपमेय और अद्वितीय है। उसकी मूर्तियो का निर्माण मनुष्यो की आकृति में किया गया है, वे बड़ी खूबसूरती के साथ इमारत मे लगायी गयी हैं, भारत की मूर्ति निर्माण कला में उसका श्रेष्ठ स्थान है, उस मदिर की अनेक मूर्तियाँ तो ऐसी हैं, जिनको देखकर निर्माण-कला के प्रसिद्ध लोग आश्चर्य करते हैं। मदिर मे सब मिलाकर एक सौ अडतालीस मूर्तियाँ हैं। दो फीट से नीची कोई भी मूर्ति नही है। वे सभी मुवाल कारीगरो के द्वारा बनायी गयी है और वे मंदिर के ढालो मे स्थापित हैं।

मदिर की प्रधान मूर्तियाँ इस प्रकार हैं : त्र्यम्बक अर्थात् तीन मुँह वाली आकृति, उसकी रान पर स्त्री बैठी हुई है, दोनो एक गाड़ी पर सवार हैं, बीस भुजाओ के शिव, वही शिव जिनके बाईं ओर एक भैसा है और शिव का दाहिना पैर गरुड़ पर रखा हुआ है, महाकाल की एक मूर्ति, उसके भी बीस भुजाये हैं, एक हाथ में वह नर-मुन्ड पकडे हैं, उसका शेष शरीर नीचे पडा हुआ है।

उस मूर्ति को इतना भयानक क्यो बनाया गया है, यह समझ में नही आया, कटा हुआ सिर उसके हाथ मे है और उससे ताजा खून नीचे गिर रहा है। मूर्ति के दोनो तरफ कुबेर की पत्नियाँ खडी हैं। उनमे से एक कटे हुये सिर से गिरते हुये खून का पान कर रही है और दूसरी पत्नी किसी के कटे हुये हाथ को निगल रही है। वहाँ पर इस प्रकार की और भी मूर्तियाँ हैं, उनकी आकृतियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं।

यहाँ पर भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियो के चमत्कार मुझे देखने को मिले, वहाँ पर अप्सराओ की मूर्तियाँ भी है, जो नृत्य कर रही हैं। उन अप्सराओ के हाथों में फूलो की मालाये हैं और वे विभिन्न प्रकार के बाजे अपने हाथो मे लिये हैं। इन अप्सराओ की मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक बनायी गयी है। यहाँ की समस्त इमारत श्वेत संगमरमर पत्थर की बनी हुई है। इस इमारत के अनेक भाग ऐसे हैं, जिनकी आभा-प्रभा में आज तक कोई अन्तर नही आया। इमारत के कितने ही भाग गन्दे और काले हो गये है, ऐसा मालूम होता है कि खुले हुये होने के कारण कुछ मौसिम

की खराबियो से उनका रङ्ग बदरङ्ग हो गगा है। लेकिन इस खरावी के आ जाने पर भी उनमे जो कारीगरी की गयी है उसमे कोई फर्क नही आया। वल्कि वह कही-कही पर और भी स्पष्ट हो गयी है।

मदिर के भोतरी भाग मे उच्चकोटि की निर्माण-कला देखने मे आती है। बीच मे गुम्बद वना हुआ है, उसका निर्माण भी असाधारण रूप मे किया गया है। मदिर का वाहरी भाग उतना आकर्षक नही है, जितना भीतरी भाग। छत की दशा अधिक विगड गयी है। आगे की जमीन मे जो खम्भे वने हैं, वे देखने मे रविश के मालूम होते हैं, ये खम्भे भी सगमरमर के ही वने हैं। इसी सगमरमर को बनी हुई बहुत-सी टूटी हुई मूर्तियां, कोरनिस, खम्भे और शिलाये पास के चौक मे पड़ी हैं, जो एकत्रित करके ढेर कर दी गयी हैं। उनका एक दिन निर्माण हुआ था और आज वे सभी मूर्तियाँ—जो एक दिन पूजी जाती थी—टूट-फूट जाने के कारण इस पतन को प्राप्त हुई हैं।

१६ जून—सरोतरा : अपनी थकान को बहुत कुछ दूर कर चुका था, सिरोही के इतिहास से जो कुछ मिला, उसे लेकर मैंने उस मुकाम को छोड दिया।

सबेरे १० बजे थर्मामीटर ८६° पर था और वैरोमीटर २८° ९० पर था, फासिला द-द० प० मे १० मील। रास्ता एक घने जङ्गल मे होकर गया था। उस जङ्गल मे धोक के पेड अधिक थे। उस रास्ते मे पैदल लोग और पशु आसानी के साथ निकल जाते थे। लेकिन बडे पशु उसमे से होकर नही निकल सकते थे। इसलिये मैंने अपने आदमियो को कुलहाडियो के साथ आगे भेज दिया था कि वे जहाँ आवश्यक समझे, जङ्गल को काटकर रास्ता साफ करे।

उत्तरी भारत और बन्दरगाहो के बीच मे यह प्रदेश किसी समय व्यापारियो के लिये प्रसिद्ध मार्ग था। लेकिन वह अब बीरान हो चुका है, यहाँ को सभ्यता और सुविधायें मिट गयी हैं और यह उन्नत प्रदेश प्राचीन काल के जङ्गली जीवन में पहुँच गया है। किसी समग यहाँ पर आवू, तारगी और चन्द्रावती आदि के चमकते हुए दृश्य थे। उनमे कुछ तो नष्ट हो चुके हैं और कुछ नष्ट-प्राय हैं। इस प्रदेश के इस विध्वस और विनाश को देखकर और यहाँ के राजाओ, नरेशो तथा सम्राटो के वैभवो का अनुमान लगाकर हिन्दुओ के "ससार नाशमान है।" के सिद्धान्त की ओर कुछ समय के लिए देखना पडता है।

इस क्षेत्र की जो सडके किसी समय प्रसिद्ध व्यापारियो और यात्रियों से भरी रहती थी और फौजी घोडो के टापो से गूंजा करती थी, आज सूनी पडी हुई हैं। ऐसा मालूम होता है कि अब इन रास्तो मे जङ्गल के निवासियों के सिवा और कोई चलने वाला नही रह गया। जङ्गलो और पहाडो पर रहने वाले लोग कभी-कभी इन रास्तो

से निकल पड़ते हैं और जो लोग उनको इन रास्तों में मिल जाते हैं, उनको लूट-मारकर फिर जङ्गलों में चले जाते हैं।

प्राचीन काल में योरोपीय यात्रियो के आने के दिनो में ये रास्ते सुरक्षित नही थे। और इनमें राजपूतो तथा भीलो की घुमक्कड़ जातियो के लोग घूमा करते थे। उन आवारा जातियों की हरकतो के विवरण, रहन-सहन और कारनामों के विवरण थीवनांट और ओलीरिअस ने खूब दिये हैं। उनको पढ़कर मालूम होता है कि देवडा-निवासी मेरे मित्रों के नैतिक जीवन में बादशाह शाहजहाँ के समय से लेकर अब तक कोई अन्तर नही आया। (१)

गिरवर से चार मील की दूरी पार हमने एक झरना पर किया। वह झरना कालेड़ी के नाम से प्रसिद्ध है और गिरवर से चार मील पश्चिम की तरफ गूंगथाल अथवा मूंगथल नामक एक छोटी-सी झील से निकलकर प्रवाहित होता है। हमारे दाहिने तरफ पश्चिम की ओर चार मील पर तीन शिखरो का एक ऊँचा डूंगर है। उसके ऊपर कोली लोगो की देवी आया-माता का मन्दिर है। बहुत-से लोग उसको ईशानी देवी भी कहते हैं। इस देवी और घोडे की प्रतिभा को ही वे लोग प्राचीन काल मे पूजा करते थे। (२)

इस त्रिकूट से पहाडो की एक श्रेणी पश्चिम मे डीसा और दांतीवाड़ा की तरफ जाती है। इस श्रेणी की पहाडियाँ ऊपर से देखने मे एक दूसरे से पृथक दिखायी

---

(१) यहाँ की यात्रा में हमको बनजारे व्यापारियो का एक काफिला अर्थात् कारवाँ मिला। उसके आदमियो ने कहा कि दो सौ राजपूतो ने उन पर आक्रमण किया था और उन्होने एक सौ रुपये माँगे। उन्होने यह रकम माँगते हुए कहा कि सौ रुपये देने पर हम लोग तुमको कोई नुकसान नही पहुँचवेगे। यह सुनकर हमको अपनी हिफाजत के लिए सावधान हो जाना पड़ा। इसलिए कि उन लोगो ने इसके पहले एक दिन सौ आदमियो को देखा था। इनमे पहले के कुछ आदमी भी थे। वे लोग एक बैल लेकर सन्तुष्ट हो गये और कुछ नही कहा। लेकिन पहले जो लोग मिले थे, उनसे जाकर मिल गये और उसके बाद इन लोगो ने हम पर आक्रमण किया।

—ओलीरियस भाग १

(२) यहाँ पर सबसे पहले मैंने पृथ्वी माता की मूर्ति देखी है। ईशानी, ईशा-देवी, अवनी-पृथ्वी, सर्वधानी आया माता आदि की मूर्तियाँ यहाँ पर थी। इनकी पूजा होती थी। लेकिन घोडे की पूजा का क्या अभिप्राय है, यह मेरी समझ मे नही आया। कदाचित इसलिए कि वह सबसे अधिक तेज चलता और दौडता है। यहाँ पर मुझे इस बात का भी पता चला कि इसके सम्बन्ध मे कोलियो, भीलो और (सेरिया) जातियों के लोगो मे कोई भिन्नता नही है।

देती हैं। लेकिन जमीन मे वे एक दूसरे से मिली हुई हैं और उन पहाडियो से भी उनका सम्पर्क है, जिन्हे हमने गिरवर और चन्द्रावती के बीच मे पार किया था। इन पहाडियो का क्रम कुछ फासिले के बाद टूट जाता है। इनकी चोटियाँ ऊपर से एक दूसरे से पृथक नही मालूम होती और ऐसा जान पडता है कि आस-पास के फैले हुए जङ्गल मे से ये चोटियाँ निकली हैं।

दूसरी तरफ अरावली पहाडियो का क्रम है। वही पर पन्द्रह मील के फासिले पर एक सुन्दर घाटी है। उसमें बनास का जल प्रवाहित होता रहता है। वहीं से आरासण और तारिंगी के मन्दिरो का मुकुट होकर अरावली दक्षिण की तरफ चलता है और कुछ दूरी तक उसके क्रम को कायम रखता हुआ नर्वदा की तरफ चला गया है। इस श्रेणी का कोई एक क्रम नही है, वह श्रेणी बायी तरफ बीस मील के फासले पर दांतल में जाकर समाप्त हो जाती है। वहाँ पर राणा का पद धारण करने वाले बरड नामक राजपूत जाति के सरदार का निवास-स्थान है। कहा जाता है यह जाति किसी समय सिंघ की घाटी की तरफ से आयी थी। पौराणिक कथाओ मे बताया गया है कि देवी स्वयं लोगो को उस घाटी से यहाँ पर लायी है कि माता के मन्दिरो मे जो सोना-चाँदी चढता है, उसका आधा भाग बाँट लेने के लिए ये अधिकारी माने जाते है।

इसी सरदार ने अर्बुदा देवी के मन्दिर से सोने का कीमती प्याला लेकर अपने अधिकार मे कर लिया था। उस पर एक दोषारोपण और किया जाता है। कहा जाता है कि उसने दारू सरदार के चढाये हुये आरासण की देवी के ऊपर अपना पापी हाथ डाला था।

यदि इस सरदार का आना सिन्धु से ही हुआ है तो निश्चित है कि इसके पूर्वज कई शताब्दी पहले यहाँ पर आये होंगे। इस देवी का एक मन्दिर सिन्धु के पश्चिम मे मकरान के तट पर अब भी मौजूद है।

गिरवर और सरोत्रा (१) के मध्य कुरैतर नामक ग्राम मे हमने बनास नदी को पार किया। वहाँ पर वह नदी जङ्गली भागो से होकर सरोत्रा की तरफ चली जाती है। उसी के तट पर हमने मुकाम किया। वहाँ पर चारो तरफ जङ्गल थे और जङ्गली मुर्गों की आवाजे सुनायी दे रही थी। कोयलों की आवाजे तो दक्षिण की तरफ चित्रा-सणी तक हमको सुनायी पडती रही।

कोली लोग कोयल को सुक्खी कहा करते हैं अर्थात् सुख देने वाला पक्षी। इसका अर्थ कुछ उसी प्रकार है। जैसे कमेडी का अर्थ 'कामदेव का पक्षी' होता है।

---

(१) सरोत्रा पालनपुर राज्य की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर बनास नदी के किनारे भीलो का एक छोटा-सा ग्राम है।

उदयपुर की घाटी और कोटा के कठार के निवासी भी इस पक्षी को कुछ इसी प्रकार के नामो से पुकारते हैं। उसका अर्थ यह होता है कि यह कामदेव का प्यारा पक्षी है। जो लोग जङ्गलों और पहाड़ी गुफाओ में रहते हैं और अपने मामूली कारबार करते हैं उनकी इस प्रकार की भाषा और उनके शब्दो को सुनकर एक समझदार और सभ्य आदमी आश्चर्य-चकित हो सकता है।

सरोत्रा कोलीपाडा का एक अङ्ग है और यहाँ की अनेक बातों के साथ-साथ बोलने की भाषा बिल्कुल बदली हुई है। सिरोही के लोगो की बातें मैं थोड़ी-बहुत समझ लेता था और मेरी बाते वे लोग समझ लेते थे। परन्तु यहाँ के लोगो की बातो को समझने मे मुझे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यहाँ के लोग एक साधारण सी बात जो मुझसे करते हैं उसको मैं समझ नही पाता और यही हालत यहाँ के लोगो की उस समय हो जाती है, जब मैं कोई बात उनसे कहता हूँ।

यहाँ के लोग कोलियो के वंशज हैं। ये लोग उस समय तक अपने इसी प्रकार की जिन्दगी व्यतीत करेंगे, जब तक यहाँ का जङ्गली जीवन समाप्त न हो जायगा। यहाँ का जङ्गल उतना ही पुराना है, जितनी की ईसानी देवी पुरानी है। यहाँ से चन्द्रावती सोलह मील और दाँता छब्बीस मील कहा जाता है। वसिष्ठ का मन्दिर उ० २५° पू० तथा त्रिकूट वाली पहाड़ी उ० २५° से ३५° पू० पर है।

१७ जून—चित्रासणी : दिशा द० द० प०, फासला साढे ग्यारह मील का। यहाँ पर हमको फिर से मैदान दिखायी पडे। आरम्भ के सात मील तक रास्ता उसी घने जङ्गल मे से है, जहाँ पर वह रास्ता समाप्त होता है। वहाँ अभी कुछ दिन पहले पालनपुर के राजा ने एक ग्राम बसाया है। इसके आगे दो मील चलने पर हमको एक दूसरा झरना पार करना पड़ा। वह झरना बलराम नाला के नाम से मशहूर है। यह झरना अरावली पर्वत से निकलता है और चार मील नीचे की तरफ बने हुये बलराम के छोटे-से मन्दिर के पास बनास नदी में जाकर मिल जाता है।

यहाँ पर वह जङ्गल समाप्त हो जाता है, जिसमे होकर हमको आबू से पच्चीस मील चलना पड़ा था। पहाड़ियो की वह श्रेणी—जिसका बयान मैं आगे कर चुका हूँ—कहीं-कहीं ऊँची चोटी की शकल में अपने प्रारम्भिक क्रम का परिचय देती थी। वह हमारे रास्ते से चार मील के फासिले पर बराबर चली आ रही थी। इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम मे ईशानी श्रेणी भी दाँतीवाडा की तरफ मुड़ गयी थी।

आज की यात्रा समाप्त होने के साथ-साथ मिट्टी मे बालू बढ़ने लगी थी और उसका प्रभाव पेडो तथा वनस्पति मे भी स्पष्ट दिखायी देने लगा था। धो और पलास—जिसके पत्तो से लोग प्याले और तश्तरी का काम लेते हैं—अब यहाँ दिखायी नहीं पड़ते थे। उनके स्थान पर बबूल, हमेशा ही रहने वाले पीलू और करील के पेड़

दिखायी देते थे। लगातार बालू बढ़ती जा रही थी। वहाँ की यात्रा में जमीन का ढाल बढता जाता था और वैरोमीटर में उसी को साबित कर रहा था, जो दोपहर के समय २८° ८० पर था वैरोमीटर ६६° बता रहा था। चीरासणी के करीब से मैंने आबू की तरफ उ० उ० पू० आखिरी बार देखा।

१८ जून—पालनपुर : दिशा द० प० फासिला नौ मील। यह कस्बा एक छोटे से जिले का थाना है। वह आजकल बम्बई प्रान्त में अङ्ग्रेज-सरकार के अधिकार में है। वहाँ का प्रधान आधे रास्ते पर मेरे स्वागत करने के लिए आया। वह प्रधान वहाँ का दीवान कहलाता है। मुझसे मिलकर उसने बहुत अधिक सम्मान प्रकट किया और फिर अपने साथ अपने नगर ले गया।

दीवान ने मुझे लेजाकर अपने नगर मे मेजर माइल्स के निवास-स्थान पर ठहराया। माइल्स उन दिनों वहाँ का रेजीडेण्ट एजेन्ट अर्थात् स्थानीय प्रतिनिधि था। उसके संरक्षण मे इस नगर ने बड़ी उन्नति की थी। दीवान मुसलमान है। उसको जालोर तथा गुजरात के राजाओ ने जागीर के रूप में वह इलाका दे रखा था। कदाचित वह जागीर दीवान के पूर्वजो को दी गयी; परन्तु आखीर में राठौर सरदार ने उनको वहाँ से निकाल दिया था।

वह दीवान एक होनहार युवक है। उसका व्यवहार सज्जनता से भरा हुआ अत्यन्त संतोषजनक और सम्मानपूर्ण था। उसके वहाँ जो नौकर हैं, वे अधिकाश सिन्धी हैं। उनकी सेवाओ के लिए जमीनें मिली हुई हैं। पालनपुर के आस-पास एक परकोटा बना हुआ है। यहाँ पर घरो की संख्या छै हजार बतायी जाती है। प्राचीन काल मे पालनपुर चन्द्रावती राज्य मे एक प्रमुख जागीर के रूप मे था। इस पालनपुर को पाल नामक परमार राजपूत ने बसाया था। इसीलिये इसका नाम पालनपुर (१) पडा।

---

(१) प्राचीन काल मे पालनपुर का नाम प्रह्लादनपत्तन था, उसके इस नाम का कारण यह था कि चन्द्रावती के धारावर्ष परमार राजपूत के छोटे भाई प्रह्लादन देव ने इसको बसाया था। लोगो का कहना है कि विक्रम सम्वत् से दो शताब्दी पहले यह कस्बा उजड गया था। उसके बाद पालन सी चौहान ने इसको फिर से आबाद कराया, इसलिए इसका नाम पालनपुर पडा। बहुत से लोग यह भी कहते हैं कि जगना के जगदेव परमार के भाई पाल परमार ने इसको बसाया था। इन दोनो जन-श्रुतियो मे सही क्या है, यह नही कहा जा सकता। दोनो प्रकार की बातो को सुनने के बाद और उन पर विचार करने से मालूम होता है कि देवडा के चौहानो के द्वारा सन् १३०३ ई० मे आबू और चन्द्रावती की विजय के बाद पालनसी ने इसको उजडी हुई हालत को सम्हाला और उसे फिर से आबाद कराने के लिए जो भी उपाय आवश्यक

पाल परमार की मूर्ति को मैंने देखा, उसके प्रति आज भी यहाँ के लोगो में सम्मान है। ध्यानपूर्वक देखने के बाद भी उसका आकार-प्रकार मेरी समझ में नही आया। इसलिए कि यह मूर्ति चूने के उस ढेर मे गडी हुई है, जो इस मन्दिर की मरम्मत के लिए मँगाकर यहाँ पर एकत्रित किया गया है। मैं यह नही कह सकता कि यह मूर्ति पालनपुर में ही थी अथवा चन्द्रावती से लायी गयी है। लेकिन यह तो साफ जाहिर है कि आबू पर्वत पर राक्षस को मारने वाले की जो मूर्ति है, उसके मुकाबिले में यह मूर्ति साधारण है। यद्यपि दोनो मूर्तियो की बहुत-सी बाते बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। इसके पुरानी अथवा नवीन होने का अनुमान उसको देखकर आसानी के साथ किया जा सकता है। उसकी बनावट उसके प्राचीन होने का मजबूत प्रमाण देती है। इसमें सन्देह नही किया जा सकता।

बल्हरा के राजाओ मे प्रसिद्ध सिद्धराय की जन्म भूमि यही पालनपुर है। यदि यह बात सच है—जैसा कि कुमारपाल के इतिहास मे लिखा है तो उसकी माँ निश्चय ही राजाकर्ण की स्त्री, हिन्दू कुल देवी के मन्दिर की यात्रा न करके अपनी गर्भावस्था मे अपने निश्चय को पूरा करने के लिए सिन्धु के पश्चिम मे किसी स्थान की यात्रा करने के लिए गयी होगी। इसके सम्बन्ध मे विस्तार मे फिर कभी लिखूंगा।

मैं आज और कल—दो दिन मेजर माइल्स के साथ रहा। उसके सम्पर्क मे मेरे अड़तालीस घटे जिस प्रकार सुख-सतोष मे कटे, वैसे बहुत कम अवसर प्राप्त होते हैं। मेजर माइल्स सहृदय मित्र और सह-अधिकारी ही नही था, बल्कि उसके मनोभावो में भी उन्ही विचारो ने घर बना रखा था, जो मेरे मन मे प्रवेश पा चुके थे। इस अर्थ मे हम दोनो की अभिलाषाये एक थी। इसलिए हम दोनो में बाते करने के लिए बहुत बड़ी सामग्री थी। प्राचीनकाल की जातियो के चरित्र और रहन-सहन के सम्बन्ध मे हम दोनो की जानकारी एक सी थी। यहाँ के जङ्गली क्षेत्रो मे अपनी तरह का धुन वाला सहृदय मित्र पाकर मुझे कितनी बडी प्रसन्नता हुई, यह बता सकना सम्भव नही है। मुझे इस समय अपार सतोष और सुख मिला, ऐसा मालूम हुआ, मानो मेरा मानसिक बोझ कुछ हलका हो गया।

मालूम हुए, वे सभी किये, इस प्रकार उसकी हालत बदली। चौदहवी शताब्दी के मध्य-कालीन दिनों मे चौहानो को मुसलमानों ने पराजित किया था, उन मुसलमानों का नेतृत्व मलिक यूसुफ कर रहा था, उसके कुछ आदमियो ने औरङ्गजेब के अन्तिम दिनों में—शासन के कमजोर पड़ने पर अपने-आपको दीवान घोषित कर दिया था। उनको दीवान की पदवी दी नहीं गयी थी और न किसी इतिहास से यह साबित होता है।

गजेटियर आफ बाम्बे प्रेसीडेन्सी भाग ५
जेम्स एम० कैम्पबेल १८८० पृ० ३०८

मैंने मेजर के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए उसको अपोलोडोटस (१) के बैक्टीरियन तगमे की एक प्रति भेंट की जो मुझको अवन्ती के खण्डहरों में अथवा अजमेर की झील पर मिला था।

२० जून—सिद्धपुर : इस नगर के सम्बन्ध में (डी अनाविले) ने लिखा है—इसका नाम बहुत कुछ इसके गुणो के आधार पर रखा गया है, इस प्रकार की धारणा तो उसके नाम पर की जाती है। लेकिन सही बात यह है कि बल्हरा के राजा सिद्धराय के नाम से इसका यह नाम रखा है। इसके सही होने का प्रमाण यह है कि यहाँ के अधिकाश लोग विश्वास पूर्वक कहते हैं कि इस नगर को राजा सिद्धराय ने बसाया था। बहुत लोगो का यह कहना भी है कि राजा सिद्धराय अथवा सिद्धराज ने इसको बसाया नही था, बल्कि जब इसकी दशा बहुत जीर्ण-शीर्ण हो गयी थी तो उसने इसको नया जीवन दिया था। इसके सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ अनेक प्रकार की हैं। उसमें सही क्या है और गलत क्या है, इसका निर्णय बिना किसी आधार में नही किया जा सकता। (२)

---

(१) सिकन्दर महान के बाद उसके राज्य का सीरिया नामक प्रदेश सिल्यूकस के हिस्से मे आया था और सिल्यूकस के वंशज (यूक्रेटाइडेस) के अधिकार में बैक्ट्रिया, काबुल की घाटी, गान्धार और पश्चिमी पजाब था। उसके वंशज ईसा से लगभग अडतालीस वर्ष पूर्व तक उनमे शासन करते रहे। इनके सिवा, ग्रीक वंश के कुछ अन्य लोगो ने भारत के कुछ स्थानो पर अधिकार कर लिया था उसकी जानकारी अब खोदाई मे मिलने वाले सिक्को के द्वारा हो रही है। इन्ही सिक्को मे अपोलोडोटस प्रथम और द्वितीय के सिक्के भी मिले हैं। उनकी लिपि खरोष्ठी, उनमें अपोलोडोटस को महारजस अपलदत्तस लिखा गया है। पेरीप्लस के विद्वान लेखक ने भी अपोलोडोटस और मिनाण्डर के सिक्को का भडोंच मे मिलना स्वीकार किया है।

अरली हिस्ट्री आफ इण्डिया—वी० स्मिथ

(२) सिद्धपुर सरस्वती के उत्तरी ढाले किनारे पर बसा हुआ है। कहा जाता है कि मूलराज ने उत्तरी भारत से ब्राह्मणो को लाकर यहाँ पर बसाया था। उन ब्रह्मणो के आने से यह स्थान सिद्ध पुरुषो का निवास-स्थान हो गया और उसी के आधार पर इसका नाम सिद्धपुर पड़ा। इसका प्राचीन नाम श्रीस्थल अथवा श्रीस्थलक था और यह स्थान अत्यन्त पवित्र माना जाता था, जिस तरीके से पितरो का श्राद्ध और तर्पण प्रयाग और गया मे किया जाता है, उसी तरह मातृ पक्ष के पूर्वजो का श्राद्ध और तर्पण सिद्धपुर मे होता है। उस स्थान के सम्बन्ध में हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थो मे लिखा है—गया से स्वर्ग आठ मील पर है, प्रयाग से चार मील पर और श्रीस्थल से-जहाँ पूर्व की तरफ सरस्वती बहती है—स्वर्ग केवल एक हाथ की दूरी पर

जो लोग मूलराज को इसका निर्माता मानते हैं, उनका कहना है कि उसने इसके जीर्णोद्धार का कार्य अम्बादेवी के मन्दिर से प्रवाहित होने वाली सरस्वती नदी के तट से आरम्भ किया था। प्राचीनकाल में गृह निर्माण कला कितनी उन्नति पर थी, इसके अत्यधिक प्रमाण यहाँ पर देखने को मिलते हैं। यहाँ पर बनी हुई इमारतें जो टूट चुकी हैं, उनसे भी उस कला की विशेषता का पता चलता है। यह मन्दिर रुद्रमाला अर्थात् युद्ध के देवता का मन्दिर कहलाता है। परन्तु यह मन्दिर बुरी तरह से टूट गया है और उसके टूटे हुए भाग इस प्रकार अस्त व्यस्त हो गये हैं कि मन्दिर के आकार-प्रकार की कल्पना कर सकना असम्भव हो गया है। टूटे हुए भाग बरामदों अथवा कुछ इसी प्रकार के हिस्सों के हैं। लोगों का कहना है कि मण्डप के आगे बने हुए नन्दी गृह और छतरी के ये टुकड़े हैं। उसमें रुद्र का बाहन नन्दी बैठा हुआ था। निज-मन्दिर तो अब मस्जिद में बदल चुका है। लोगो के कथनानुसार यह इमारत आयताकार थी और पूरी इमारत पाँच खण्डो में बनी हुई थी। अभी तक उसका एक खण्ड बना हुआ है, यदि उससे अनुमान लगाया जाय तो इमारत एक सौ फीट से कम ऊँची न रही होगी।

इमारत का जो हिस्सा बचा हुआ है, वह पूरी इमारत के दो खण्डो का खण्डहर ही है। वह चार-चार खम्भो पर ठहरा हुआ है और तीसरे खण्ड के स्तम्भ बिना छत के हो गये हैं। उनको देखकर हम जिस अदृश्यज्ञान को अनुभव करते हैं, उसके महत्व और वैभव का कहीं पर अन्त नही है ?

बिना किसी आधार और छत के लटके हुए स्तम्भ जाहिर करते हैं,
कि दूसरे का आधार कोई आधार नही हैं, आकार अपना होता है।
छतों की टूटी हुई पट्टियाँ जाहिर करती हैं कि जो सबसे ऊंचे,
होता है, सबसे पहले पतन और विनाश उसी का होता है।
खण्डहरों के रूप मे दिखायी देने वाली इमारत,
एक दिन अपने यौवनावस्था में थी और उन दिनो मे।
वह दीन-दुर्बल इमारतो से घृणा करती थी। इस,
इमारत का अब वह समय नही रहा, जब उसकी शक्ति और।
सौन्दर्य का विकास-काल था और वह भीषण तूफानो, भूकम्पो,
तथा मिटाने वाले कठोर आघातो को देखकर मजाक उड़ाती थी।

समय के प्रकोपो ने इसी को नही, इसके पड़ोसी अहमद के नगर अहमदाबाद

है। कुछ जन श्रुतियों के आधार पर लोगो का विश्वास है कि बारहवी शताब्दी में सिद्धराज जयसिंह रुद्रमाल का निर्माण कराया था। उसके बाद इस स्थान का नाम सिद्धपुर पड़ा। (दी आरकेलोजिकल एन्टीक्यूटीज आफ नार्दर्न गुजरात)।

की अद्वितीय मर्यादा को धराशायी कर दिया है। (१) मेरे मित्र और सहयोगी माननीय (लिंकन स्टैनहोप) ने अगर इस रुद्रमाला के भग्नावशेषो का वर्णन न किया होता तो मुझे उसके सम्बन्ध की जानकारी न होती, उस वर्णन से मुझे जो कुछ मिला है, उसे मैंने सम्मान पूर्वक अपने पाठको की जानकारी के लिए यहाँ पर लिखा है :

यह मस्जिद खुरदरे और बालूदार पत्थर से बनी हुई है और उसके अनेक स्थानो मे दानेदार बिल्लौरी पत्थर भी लगे हुये हैं। इमारत के अनुसार उसकी निर्माण-कला भी प्रशंसनीय है। मुझे वहाँ पर दो शिला-लेख मिले। उनमे एक जाहिर करता है कि राजा मूलराज ने इसको सम्वत् ९९८ सन् ९४२ ईसवी मे बनवाना शुरू किया था। दूसरे शिला-लेख से पता चलता है कि सिद्धराज ने इसको पूरा करवाया। उसमे लिखा हुआ है—सम्वत् १२०२ सन् ११४६ ईसवी मे मार्च महीने की चौथ कृष्ण पक्ष को सोलकी सिद्ध ने इस रुद्रमाला को बनवाकर पूरा किया और शुद्ध मन से शिव का पूजन कराया, इससे ससार में उसकी कीर्ति बढ़ी।

राजा मूलराज अनहिलवाड़ा के सोलंकी वंश का था और उसने इस इमारत के बनवाने का निर्माण-कार्य आरम्भ किया था।

इस मन्दिर के सम्बन्ध मे एक पद्य मिला। उसमे अलाउद्दीन के द्वारा इसके विध्वस का विवरण मिलता है—'सम्वत् १३५३ सन् १२९७ ईसवी में म्लेच्छ अलाउद्दीन आया। नरेशो का सर्वनाश करते हुए उसने रुद्रमाला का विध्वंस और विनाश किया।'

फरिश्ता के अनुसार, इसी वर्ष में गुजरात विजय किया गया और यहाँ के राजा कर्ण को मारा गया। उसको कुछ इतिहासकारो ने भूल से गोहिल लिखा है। लेकिन उस निर्दय अत्याचारी अलाउद्दीन के मन मे—जो खूनी और कातिल नाम से प्रसिद्ध हुआ—मालूम पडता है एक दहशत पैदा हुई और उसने मूर्ति पूजको के इस विशाल मन्दिर का शेष भाग ज्यो-का-त्यो छोड दिया।

मेरे मित्रो ने सांखला भाट के साथ मेरा परिचय कराया। उसको बहुत-सी पुरानी बातो का स्मरण था। उन स्मरणो के सम्बन्ध मे उसने बड़ी देर तक न जाने कितने पद्य सुनाये। उसने अपने पद्यो के द्वारा बताया :

---

(१) यहाँ पर अहमदाबाद की प्रसिद्ध मस्जिद—जिसमे ऐसी मीनारे थी, जिन पर चढकर कोई भी आदमी झूल सकता था और इसीलिए वे मीनारे झूलती हुई मीनारो के नाम से मशहूर थी, उस मस्जिद की सम्पूर्ण इमारत बडी खूबसूरत और मजबूत थी। भूकम्पो ने बडी निष्ठुरता के साथ उसको नष्ट कर दिया। यदि कैप्टेन ब्राइएड ले ने अपनी पुस्तक मे उसका वर्णन न किया होता तो आज उसका पता भी न होता।

रुद्र के मन्दिर में १६०० स्तम्भ थे, १२१ रुद्र की मूर्तियाँ थी। वे मन्दिर के विभिन्न स्थानो पर रखी हुई थी। १२१ सोने के कलश थे, १८०० अन्य देवी-देवताओ की मूर्तियाँ थी ७२१३ विश्राम करने के लिए कमरे अथवा कोठे थे। वे मन्दिर में भीतर से लेकर बाहर तक बने हुए थे। १,२५००० उनकी संख्या थी, जिनमे जालियां पर्दे, निशान और पताका लिए हुये चोबदार, शूर-वीर, यक्ष, मनुष्य, पशु-पक्षी और पुतलियाँ आ जाती हैं।

मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध मे लिखा हुआ मिलता है कि इसके निर्माण में सिद्ध राज ने एक करोड़ चालीस लाख सोने के मुद्रा खर्च किये। यहाँ पर मुद्रा का अभिप्राय क्या है और उसका मूल्य क्या होता है, यह स्पष्ट नही किया गया।

इस प्रसिद्ध मन्दिर के अनेक अवशेष और भग्न भाग अब कोली लोगों के घरों से घिरे हुए हैं। इसलिए यह चिन्ता करना स्वाभाविक हो गया है कि रुद्र के मुण्डों (१) के टूट कर गिरने से कही उनके घर और मस्तक चूर-चूर न हो जांय। यद्यपि उनकी नींव मजबूत चट्टानों पर है, फिर भी लोगों का कहना है कि सन् १८१६ ईसवी के भूकम्प में, जिससे सम्पूर्ण पश्चिमी भारत प्रभावित हुआ था, दो विशाल स्तम्भ टूटकर गिरे थे।

मन्दिर के टूटे हुए भागो का दृश्य उन झोपड़ियो से भली प्रकार देखा जा सकता है, जो वहाँ पर—मन्दिर के सामने की जमीन पर बनी हुई हैं।

---

(१) रुद्र युद्ध का देवता माना जाता है और उसकी माला मनुष्य के कटे हुए सिरो से बनी होती है।

आठवाँ प्रकरण

राज्यों के विध्वंस और विकास

पश्चिमी भारत की प्राचीन राजधानी नहरवाला और उसकी खोज—ग्रीस के भूगोल शास्त्री और अरब के भूगोल वेत्ता—भूगोल शास्त्रियो की भूलें—इतिहासकार हेरोडोटस—अनहिलवाडा का प्राचीन इतिहास—वल्हरा के पद का रहस्य—सूर्य की आराधना—वलभी नगर के अवशेष भाग और उसकी राजधानी का परिवर्तन—उन दिनों की घटनायें—भारत मे ऐतिहासिक सामग्री—अनहिलपुर की स्थापना और जनश्रुति—भारत मे उन दिनो की क्रान्ति—वल्हरा के सिक्के—नवी शताब्दी मे यह थी।

द आँनविले और रेवेल (१) के समय से अब इस देश मे भूगोल के सम्बन्ध में बहुत-कुछ प्रगति हो चुकी है लेकिन पश्चिमी भारत की राजधानी नहरवाला की परिस्थिति उस समय तक वैसी ही बनी रही, जब तक सन् १८२२ ईसवी में मैंने वर्तमान पट्टण के वल्हरा राजाओ के सम्बन्ध में खोज का कार्य आरम्भ किया था। उसका नाम और कार्य भूगोल शास्त्रियो के लिये एक भीषण पहेली बनी हुई थी।

पट्टण के इस छोटे नगर का नाम अनुरवाडा अथवा अनहलवाडा है, उसका यही नाम यहाँ के राजवंशी इतिहास के अनुसार सही माना जाता है। इसका बिगडा हुआ रूप नेहलवडे अथवा नेहरवले है। लेकिन असली नाम वही है।

पुराना समय अब समाप्त हो चुका है और वह समय नही रहा जब किसी के लेख और अनुरोध न आसानी के साथ मान लिये जांय। प्राचीन काल मे किसी के लिखे हुए को अधिक महत्व दिया जाता था, लेकिन आज का समय कुछ और है। आज बडे-से-बडे विद्वान की लिखी हुई चीजो मे सत्य और असत्य की खोज की जाती

---

(१) रेनेल भूगोल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान था। सन् १७५६ ईसवी में अपनी चौदह वर्ष की अवस्था में वह नाविक सेवा के कार्य में भरती हुआ। सन् १७६० ईसवी मे वह भारत आया। १७६७ ईसवी में उसको सर्वेयर-जनरल का पद दिया गया। ग्यारह वर्ष के बाद १७७८ ई० में वह रायल एशियाटिक सोसायटी का सदस्य चुना गया। भूगोल के सम्बन्ध में वह एक अधिकारी माना जाने लगा। भूगोल के सम्बन्ध में उसने अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

है। हैरोडोटस (१) प्राचीन इतिहास लेखक माना जाता है। परन्तु उसके लिखे हुए न जाने कितने ऐतिहासिक तथ्य सही नही माने जाते। उसके लिखे हुए ग्रन्थ में बहुत से स्थल निराधार हैं। बिना किसी आधार के उसने जो कुछ सुना, उसी को सत्य मानकर लिख दिया। यह कर्त्तव्य उस इतिहासकार का न होना चाहिए, जिसने इतिहास की प्राचीन बातों में अनुसंधान का कार्य किया है।

कितनी ही बाते हैरोडोटस ने भारतवर्ष की प्राचीन जातियों के संबंध मे लिखा है। उनका भी कोई आधार नही है। एक स्थान पर उसने लिखा है कि पद्दर नाम की एक नदी अजमेर की पहाड़ियों से निकलकर कच्छ की खाड़ी मे गिरती है। सही बात यह है कि पद्दर नाम की कोई नदी न तो अजमेर की तरफ से निकलती है और न कच्छ की खाड़ी मे गिरती है।

कुछ इसी प्रकार की और भी बहुत-सी बाते हैं। उसने सिन्धु नदी के किनारे रहने वाले पदीन लोगों का उल्लेख किया है। यह भी गलत है। हैरोडोटस ने पदीनो को शिकारी और कच्चा मांस खाने वाला लिखा है। ऐसा मालूम होता है कि उसने भारत मे पारधी कहलाने वाली शिकारी अथवा बहेलिया जाति के सम्बन्ध मे जो कुछ सुना था, उसी को उसने पदीनो के सबध में मान लिया था।

अब हम अनहिलवाड़ा राज्य के संबंध में ऐतिहासिक प्रकाश डालना चाहते हैं। अनहिलवाड़ा बन्दरगाह न होते हुए भी हिन्दुस्तान का वह टायर (नगर) था। क्योकि भारतीय बन्दरगाह तो खम्भात मे था। परन्तु यह असम्भव नही मालूम होता कि प्राचीन टायर नगर ने यहां के व्यापार में सहायता की हो। उसी के कारण अफ्रीका और अरब का काल अत्यन्त प्राचीन काल से कई शाखाओ मे विभाजित हो गया था और यह भी नही माना जा सकता कि सालोगन के साथी और हिरम के नाविकों ने भारत के सीरिया और सौर भूमि का रास्ता उस समय तक खोज नही लिया था।

---

(१) हैरोडोटस का जन्म ४८४ वर्ष ईसा से पूर्व माना जाता है। वह एक ऐतिहासिक विद्वान था और उसने विश्व के इतिहास पर विशाल ग्रन्थ लिखा था। उस इतिहास मे तत्कालीन सभी ग्रीक ग्रन्थों का वर्णन मिलता है। हैरोडोटस ने अपनी बीस से सैंतीस वर्ष की अवस्था तक ससार के कितने ही देशो का भ्रमण किया था। एशिया माइनर और ग्रीस के साथ साथ अनेक देशो की उसने यात्रा की थी। पहले वह एथेन्स में रहा करता था। उसके बाद वह इटली मे जाकर रहने लगा था। उसने अपनी पुस्तक की भूमिका बहुत विस्तृत लिखी है। लेकिन उसके बाद के इतिहासकार उसके लेखों को बहुत प्रामाणिक नहीं मानते। भारत के संबंध में उसकी जानकारी बहुत कम थी।

कुमारपाल चरित्र एक ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ है। उसमे अनहिलवाडा के राजवशो का चरित्र काव्य में लिखा गया है। इस ग्रन्थ से कुछ वर्णन लेने के पहले कुछ और ऐसी बाते हैं जिन पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

सौराष्ट्र भारतवर्ष का एक प्रमुख प्रदेश है। वहाँ पर जो जातियाँ आकर बसी थीं, उनमें वल्ल नाम की भी एक जाति थी। उसको कुछ लेखको ने इन्दु वश की शाखा माना है। इसी आधार पर इसका नाम 'बलि का पुत्र' पडा है। उसका मूल रूप बाली का देश, वल्क अथवा ग्रीक लोगो का बेक्ट्रिया है। इस जनश्रुति के भीतर कुछ भी सच्चाई हो, परन्तु इस जाति के राजाओ को भाटो के द्वारा जो सुनने को मिलता है, उससे इसका निश्चित रूप से समर्थन होता है। एक दूसरे विद्वान का कहना है कि राम के बडे लडके लव के पुत्र का नाम वल्ल था। उसने धकक नामक एक प्राचीन नगर को विजय किया था। वह नगर मूंगीपट्टन कहलाता है और वला-खेत्र वहाँ की राजधानी है।

कुछ समय के बाद इस वश के लोगो ने वलभी की स्थापना की और बाल-राय (१) का पद ग्रहण किया। इस प्रकार ये लोग सूर्यवशी राजपूत थे, इन्दुवशी न थे। मेवाड के राणा भी सूर्यवन्शी ही हैं। ढांक का वर्तमान शासक भी—जो मेरे उस तरफ जाने के समय कैदी था—बल्ल-वश का है। इस वश के लोग केवल सूर्य की उपासना करते हैं और सौराष्ट्र मे सूर्य देवता के मन्दिर अधिक सख्या में पाये जाते हैं।

आचार-विचार, रहन-सहन, आकृति-प्रकृति और जनश्रुति के आधार पर यह मान लेना असगत नही है कि यह व श इण्डोसीथिक जाति की शाखा है और कदाचित म्लेच्छवशीय होने की बात छिपाने के लिये राम के व शज होने की कहानी गढ़ी गयी है। वलभी की परिधि-जिसको मानचित्र में वलेह (२) लिखा गया है और जिसके सम्बन्ध में ग्राम सम्बन्धी बातो का अब कोई पता नही चलता—बारह अथवा पन्द्रह कोस कही जाती है। यहाँ की इमारतो के खोदने से बडी-बडी ईंटे निकलती हैं, वे डेढ से दो फीट तक लम्बी हैं। इसके विषय मे अन्यत्र लिखने की हम चेष्टा करेगे।

---

(१) बालराय अथवा बल्हरा शब्द का सम्बन्ध वल्लप्रदेश के राय अथवा राजा से है। उसका सबन्ध केवल सोलङ्की वश के राजाओ से ही नही है। वलभी का राज्य सन ७६६ ईसवी के करीब नष्ट हो चुका था और चौलुक्य राजा मङ्गलीश के मर जाने के बाद उसका राज्य दो भागो मे विभाजित हो चुका था। उनमें से पुलकेशिन के वशज वल्लभ कीर्ति वर्मा को पराजित करके मान्यखेट के राष्ट्रकूट वंशी दति दुर्ग ने ७५३ ई० के करीब उसका राज्य प्राप्त कर लिया था और वल्लभराज अथवा बालराय की उपाधि धारण की थी।

(२) वल्लभ-मण्डल।

ऊपर कुमारपाल चरित्र का उल्लेख आ चुका है। उसमें वंश और राजधानी के परिवर्तन का वर्णन उस समय से शुरू होता है, जब चावडों और सौरो ने बल्लों से राज्य का अधिकार छीन लिया था और उसकी राजधानी का बलभी से अनहिलवाड़ा ले आये थे। यह काव्य ग्रन्थ (१) अड़तीस हजार श्लोको में है और संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। जैनियो के प्रसिद्ध गुरू सैलग सूर आचार्य (२) ने उस ग्रन्थ की रचना की है।

यहाँ पर मैं उस काव्य ग्रन्थ की सामग्री को न तो क्रमशः लेना चाहता हूँ और न उसका शाब्दिक अनुवाद करना चाहता हूँ; बल्कि उसके उन्ही अशो को लेना चाहता हूँ, जो इस राज्य के प्राचीन गोरव के संबध में प्रकाश डालते है। उन अंशो से यहाँ के राजवश और राजाओ की तालिका देने मे सहायता मिलेगी, प्रसिद्ध राजाओ के संबंध मे अनेक आवश्यक बातो के उल्लेख किये गये है। यह बात सही है कि इस प्रकार के विवरण और वर्णन के प्रति साधारण पाठको की रुचि नही होती। फिर भी इस प्रकार के विवरण मैंने यहां पर देने की चेष्टा की है। इसका कारण यह है कि किताबों के बहुत-से पाठको और विशेष कर न जाने कितने लोगो ने मान लिया है कि हिन्दुओं के ग्रन्थों में ऐतिहासिक सामग्री नही है। यह जरूर है कि वह सामग्री जिस रूप मे पाई जाती है, वह सब इतिहास मान मिला जाता है तो जिस सामग्री में इतिहास सना हुआ पड़ा है, वह नष्ट हो जाता है। इसलिए इतिहास की उस शुद्ध

(१) यह काव्य-ग्रन्थ गुजराती भाषा में भी प्रकाशित हो चुका है। सवत् १४९२ सन् १४३६ ई० में इसकी एक हस्तलिखित प्रतिलिपि उदयपुर मे महाराणा से मैंने प्राप्त की थी और उसका अनुवाद किया था। यह निश्चय है कि इसी ग्रन्थ के आधार पर अबुल फजल ने अपने गुजरात के प्रथम इतिहास का ढाँचा तैयार किया था और उसमें राज-वंशों की सूची दी थी। इसके बाद अनहिलवाड़ा के पुस्तकालय से संस्कृत में लिखी गयी पुस्तक की एक प्रतिलिपि मुझे मिल गयी, उसका भी मैंने जैन यति की सहायता से अनुवाद कर लिया। मेरे इन दोनों अनुवादों में मुझको कोई अन्तर नही मिला। दोनों भली प्रकार मिलान करने के पश्चात् मैंने रायल एशियाटिक सोसाइटी को भेट कर दिया।

(२) शीलगुण सूरि को मूल लेखक ने सैलग सूरि लिखा है, वह कुमारपाल चरित का रचयिता नही था। वह जैन आचार्य था। उसने बनराज को अपने संरक्षण मे रखा था। कर्नल टॉड को कुमारपाल चरित्र की जो प्रति मिली थी, वह सैलग सूरि की लिखी हुई नही थी। जिन-मण्डल गणि की लिखी हुई कुमारपाल प्रवन्धक नामक पुस्तक की रचना सवत् १४९२ है। उसी के आधार पर ऋषभदास कवि ने संवत् १६७० में गुजराती भाषा में कुमारपाल रास की रचना की थी। —अनुवादक

सामग्री को बड़ी सावधानी के साथ अलग करने की आवश्यकता होती है। यह कार्य आसान नहीं है। कल्पित कहानियो, आख्याधिकाओ और घटनाओं तथा अतिशयोक्तियों में छिपा हुआ इतिहास महत्व रखता है, लेकिन उसी दशा में जब उसको परिष्कृत आकार-प्रकार में निकालने और छटनी करने का कार्य निष्पक्ष भाव से किया जाय।

अनहिलवाड़ा का राजवंश

प्रथम—चाउड़ा, चावड़ा अथवा सौरवंश

राजा का नाम	राज्याधिकार प्राप्त करने का समय		शासन काल	विशेष विवरण
	सम्वत्	सन्		
बसराज	८०२	७४६	५०	इतिहास के अनुसार उसने ५० वर्ष राज्य किया और साठ वर्ष की आयु तक जीवित रहा।
जूगराज (जोगराज)	८५२	७९६	३५	×××
खीमराज	८८७	८३१	२५	प्रथम अरब यात्री २३७ अल-हिजरी, ८५१ ईसवी,
ब्योरजी (बीरजी)	९१२	८५६	२९	दूसरा अलहिजरी २५४ सन् ८६८ ईसवी,
बीरसिंह (वैरिसिंह)	९४१	८८५	२५	
रत्नादित्य	९६६	९१९	१५	
सामन्त	९८१	९२५	७	सम्वत् ९८८ सन् ९३२ ई० तक राज्य किया।
			१८६	

दूसरा—सोलङ्की वंश

राजा का नाम	सम्वत्	सन्	शासन काल	विशेष विवरण
मूलराज	(१) ९८८	९३२	५६	सिद्धपुर के स्मारक का निर्माण आरम्भ किया।
चाउण्ड (चामुण्ड)	१०४४	९८८	१३	अबुल फजल के अनुसार, हिजरी ४१६ सं० १०६४ में महमूद से पराजित हुआ।

(१) इन राजवंशो की तालिका के साथ जो सन् और सम्वत दिये गये हैं, वे सही नहीं हैं, सभी मे गलतियाँ हैं, जैसा कि अन्य इतिहासो से पता चलता है। इसके लिए रासमाला रालिसन भाग १, अध्याय ४ देखना चाहिए।

बल्लिराव (बलभीसेन)	१०५७	१००१	११	महमूद ने एक पुराने राजा को गद्दी पर बिठाया था, कदाचित वह यही वल्लभी था।
दुर्लभ (नाहरराव)	१०५७	१००१	११	धार के राजा भोज के पिता मुञ्ज का समकालीन जिससे वह भीमदेव को राज्य सौंपने के पश्चात् मिला था।
भीमदेव	१०६६	१०१३	४२	मुसलमान शक्तियो का सामना करने के लिए १०४४ ईसवी मे हिन्दू राजाओ का संगठन किया।
कर्ण	११११	१०५५	२६	पहाडी जातियो मे कोलियो और भीलो को बस मे किया।
सिद्धराज जयसिंह	१०४०	१०८४	४६	
कुमारपाल	११८६	११३३	३३	
छोनीपाल, अजय पाल अथवा जयपाल	१२२२	११६६	३	कन्नौज के जयसिंह का समकालीन था।
भोला भीमदेव	१२२५	११६९	३	दिल्ली के पृथ्वीराज का विरोधी।
वाल्लो मूलदेव अथवा बाल मूलदेव	१२२८	११७२	२१	सं० १२६३ ईसवी तक उसने शासन किया।
			२६२	

तीसरा—बाघेलवंश, जिसको शिला-लेखों में चालुक्य लिखा गया है

बीसलदेव	१२४९	११९३	१५	
भीमदेव	१२६४	१२०८	४२	आबू के शिलालेख
अर्जुनदेव	१३०६	१२५०	२३	सोमनाथ के लेख
सारङ्गदेव	१३२९	१२७३	२१	
गेहला कर्णदेव	१३५०	१२९४	३	सं० १३५४ सन् १२९८ ई० में आखीर, फरिश्ता के अनुसार एक वर्ष पहले समाप्त हो गया था।
			१०४	

आरम्भ के दोनों वंशो की तालिकायें कुमारपाल चरित्र के आधार पर दी गयी हैं। उसमे कुमारपाल तक ही विवरण मिलते हैं। इस वंश के बाकी नाम और तीसरी तालिका दूसरे आधारो से प्राप्त की गयी है। पहली उसी शाखा के इन दिनों मेवाड़ मे बसे हुए, सोलंकी सरदारो के भाट से प्राप्त होने वाली वंशावली है और

दूसरी भूगोल तथा इतिहास के सग्रहीत ग्रन्थो में दी गयी वंशावली है। वह पश्चिमी लोगों की बोली में है और एक जैन सत से प्राप्त हुई है। (१)

इन राजवशो के समय की जांच मैंने उन अपने शिला लेखों में कर ली है, जिनको बीस वर्षों के अनुसधान काल मे एकत्रित किया था। पूरी जानकारी प्राप्त होने पर इन राजवशो का समय निर्धारित किया गया है। यों तो अनेक ग्रन्थो में एक दूसरे के प्रतिकूल समय के आँकडे मिलते हैं। परन्तु उनमे सही क्या हैं, इसको भली प्रकार समझने में मैंने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया है। इस पर भी इन तिथियो और तारीखो मे भ्रम और मतभेद हो सकता है। उस अवस्था मे उनका सशोधन भविष्य मे बराबर होता रहेगा।

इस विषय मे हम यह कहना अनुचित नही समझते कि अबुलफजल ने हमारे देशवासी आलोचना करने वालो की तरह बिना समझे-बूझे यह नहीं लिख दिया कि हिन्दुओ के पास इतिहास नाम की कोई सामग्री नही है। अबुल फजल ने गुजरात के राजाओं का सक्षिप्त इतिहास आरम्भ करते हुए लिखा है—

'हिन्दुओ की पुस्तको मे लिखा है कि विक्रमाजीत के सम्वत् ८०२ अल हिजरी सन् १५४ (२) मे वंसराज प्रथम राजा हुआ और उसने गुजरात के राज्य की स्थापना की।'

अबुल फजल ने कुछ ऐसे विवरण भी दिये हैं, जो कुछ अशो मे 'चरित्र' से प्रतिकूल जाते हैं। लेकिन यह सही है कि उसकी पुस्तक का आधार भी वही है।

यदि सम्वत् ८०२ सन् ७४६ ईसवी मे अनहिलवाडा की स्थापना से आरम्भ करके सम्वत् १३५४ सन् १२९८ ईसवी मे अलाउद्दीन के द्वारा होने वाले विध्वस काल तक राजाओ की एक तालिका प्राप्त हो जाती है, जो शार्लमन, खलीफा हारूँ (३) और

---

(१) इस सग्रह मे अनहिलवाडा के समस्त राजवशो की तालिका उनके समय के क्रम के अनुसार, पश्चिमी बनास के निकास और मार्ग एवम् अनेक दूसरी बातो के साथ-साथ मनोरजन की सामग्री का अच्छा विवरण दिया गया है।

इन तालिकाओ मे जो समय लिखा गया है, वह 'रासमाला' से प्रतिकूल है।

(२) यहाँ पर अबुल फजल ने जो राजवशो के सबन्ध में समय लिखा है, वह सही नही है। कही-कही पर हिजरी सम्वत् और सन् मे भी बड़ा अन्तर हो गया है यह अन्तर थोडा-बहुत तो कही-कही खप जाता है, लेकिन पच्चीस-पच्चीस वर्ष का अन्तर समझ मे नही आता। इसलिये हम अनहिलवाडा की स्थापना और राजवशो के विवरण देने मे हिन्दुओ की तिथियो का ही अनुसरण करेगे।

(३) बगदाद का खलीफा, ८८६—८०६ ईसवी।

सैक्सन हैप्ट्राक्‌स्‌ (१) से लेकर प्लाएटाजेनेट जान (२) तक पूर्व देशीय राजाओ के समकालीन हुए हैं तो क्या ऐसी दशा में भी यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान मे हिन्दुओ के पास इतिहास नाम की कोई चीज नही है।

इसके सम्बन्ध में यदि यह कहा जाय कि इतिहास घटनाओं के क्रम के वर्णन को ही नही कहते तो क्या सम्वत्‌ १२२० मे एक जैन सत ने कुमारपाल द्वारा बल्हरों का राज्य प्राप्त करने के कारणो को खोज के साथ लिखना मुनासिब नही समझा। केवल इसीलिए कोई यह कहने का अधिकारी है कि उसके द्वारा जिन घटनाओ का वर्णन किया गया है, उनका सम्बन्ध इतिहास के साथ नही है? सैक्सन, (३) अलुस्टर (४) और फ्रांस के उस समय के इतिहासो को देखने से इस तरह के सदेहों का अपने आप निराकरण हो जाता है। इसलिये इस प्रकार की निराधार बातो को हम यही पर छोड़ देते हैं।

मैं यह मुनासिब समझता हूँ कि मुझे इस प्रकार की व्यर्थ की बातो मे न पड़कर जैसलमेर और अनहिलवाड़ा के जैन ग्रन्थ-भण्डारों और राजस्थान के राजाओ तथा नरेशों के उनके संग्रहालयों का अध्ययन कर लेना चाहिये। उन्ही का आधार लेकर अनहिलवाड़ा का इतिहास नीचे लिखा गया है।

गुजरात में बडियार नाम का एक स्थान है, उसकी राजधानी पञ्चासर है। वहाँ पर एक दिन जंगल मे घूमते हुए सालिग सूरि (शील गुण) आचार्य ने कपडे मे लपेटे हुये एक शिशु को पाया, वह एक पेड मे लटका हुआ था उसके पास ही एक स्त्री बैठी थी, वह उसकी माता थी। प्रश्न करने के बाद उस स्त्री ने उत्तर देते हुए कहा कि

---

(१) सात एंगलो-सैक्सन राजा, जिनके अधिकार के समय इगलैण्ड सात भागो मे विभाजित था।

(२) जैसा कि इतिहासो से प्रकट है।

(३) सैक्सन प्राचीन ट्यूटानिक जाति का नाम है। टालमी ने सबसे पहले इस जाति के लोगो का वर्णन किया है और उसने जर्मनी के उत्तरी भाग मे इनका निवास-स्थान लिखा है। ये लोग बडे शूरवीर माने जाते है। सास का अर्थ एक छोटा चाकू होता हैं। इस प्रकार के अस्त्र रखने के कारण इन लोगो का नाम सैक्सन पडा कुछ लोगो का यह भी कहना है कि सैक्सन उन लोगो को कहते हैं, जो किसी एक स्थान पर रहा करते हैं, ये लोग मूर्त्तिपूजक होते हैं और धर्म की उन बातो पर विश्वास करते हैं, जिसमे मूर्त्तिपूजा होती है। शार्लमैन से पराजित होने पर इन लोगो ने ईसाई-धर्म ग्रहण किया था। इनके द्वारा इगलैण्ड का बहुत विकास हुआ।

(४) अल्सटर आयरलैण्ड के एक परगने का नाम है।

मैं गुजरात के राजा की विधवा हूँ किसी आक्रमणकारी ने उसके स्वामी को मार कर राजधानी का विध्वंस कर दिया था।

उस स्त्री ने यह भी बताया कि जब उसकी राजधानी मे नर-संहार हो रहा था तो वह किसी तरह निकल आयी। वह गर्भवती थी। जंगल में उसके बालक उत्पन्न हुआ। अपनी यह कहानी कह कर वह स्त्री चुप हो गयी।

आचार्य ने उस शिशु को वनराज का नाम दिया। उसका अर्थ बनराज होता है, अर्थात् वन का राजा (१) जब वह शिशु बडा हुआ तो उसने मावला के प्रसिद्ध डाकू सूरपाल (२) के साथ जाकर राज्य के कर का खजाना लूट लिया। वह खजाना कल्याण जा रहा था।

उस खजाने को अपने अधिकार मे करके वसराज ने एक सेना का सगठन किया और अपने राज्य की स्थापना की। उसने एक नगर वसाया। उस नगर का स्थान उसने एक अहीर की सहायता से निश्चय किया था, उसका नाम अनहिल था। इस प्रकार उसी के नाम पर इस नगर का नाम अनहिलपुर अथवा अनहिल नगर (३) पडा। इसका समर्थन कई तरीको से होता है।

यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक मालूम होता है कि राजवशो के समय और तारीखो के सम्बन्ध मे प्रकीर्ण-सग्रह और भाट लोगो मे किसी प्रकार का अन्तर नही है। प्रकीर्ण-सग्रह मे लिखा है कि बसराज सौराष्ट्र के राजा जसराज चावडा का बेटा था और वह उसके मरने के बाद पैदा हुआ था। प्रायद्वीप के पश्चिमी भाग मे देव-बन्दर, पहाड और सोममाथ जसराज के प्रधान नगर थे। समुद्री हमलो और विशेषकर बगाल के जहाजो की लूट के सबब समुद्र मे ज्वार आया और देव बन्दर उसमे डूब गया।

इस दुर्घटना मे बसराज की माता सुन्दरूपा के सिवा और कोई नही बचा, सभी का अत हो गया। सुन्दरूपा (४)को जल देवता वरुण ने इस आने वाली विपद के

---

(१) कुमार पाल प्रबन्ध नामक पुस्तक में लिखा है कि कपडे की झोली मे जिस वृक्ष की शाखा पर अपने शिशु को उस स्त्री ने लटका रखा था, वह वण का पेड था। इसीलिए आचार्य ने उसका नाम वण राज अथवा बनराज रखा था।

(२) सूरपाल वसराज अथवा बनराज का मामा था। इस प्रकार का उल्लेख कई पुस्तको मे पाया जाता है।

(३) नअर शब्द नगर का ही अर्थ रखता है। उसका मतलब होता है, वह शहर अथवा नगर, जो परकोटे वाला होता है।

(४) कुछ इतिहास-अन्वेषको का कहना है कि वसराज अथवा वनराज की माता का नाम अक्षता अथवा छतादेवी था और मोडेरा के ब्राह्मणो ने उसकी रक्षा की थी।

सम्बन्ध में पहले से ही सावधान कर दिया था। वंसराज के जन्म और वंश के सम्बन्ध में भाटों के द्वारा पता चलता है कि उसके पिता जसराज और उसकी जाति का सर्वनाश किसी विदेशी के आक्रमण से हुआ। उस बालक ने जीवन-रक्षा करने वाले जैन सन्त के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और जैन सम्प्रदाय को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ उसे स्वीकार भी कर लिया।

देवबन्दर में और भी कोई दुर्घटना हो सकती है। लेकिन यहाँ पर मैं भाटो के द्वारा उत्पन्न होने वाली जन-क्षति को अधिक मानता हूँ कि इस अनहिलवाडा (१) का विध्वंस और विनाश किसी विदेशी आक्रमणकारी के द्वारा हुआ।

मैं किसी दूसरे स्थान पर लिख चुका हूँ कि भारत मे वह एक ऐसा समय था जब समस्त हिन्दू-राज्यो के विरुद्ध एक तूफान आया था, उसमें उनके विरोध में क्रान्तियाँ हुई थी, उनके राज्य छीने गये थे और नये-नये वंशो तथा जातियो के जन्म हुए थे। चौहानो के इतिहास मे हमे पढने को मिलता है कि सिन्ध की तरफ से किसी शत्रु ने आकर अजमेर पर आक्रमण किया था और वहाँ के राजा माणिकपाल अथवा माणिकराय को मार डाला था। यही समय था, जब बप्पा रावल ने—जिसको बल्ला भी कहा जाता है और जिसके पूर्वज बल्लभी से भागे थे—चित्तौर पर आक्रमण करके अधिकार मे किया और काकामोरी की रक्षा के लिए किसी विदेशी शत्रु के साथ युद्ध किया। इन्ही दिनो मे तोमर वशी राजाओ ने इन्द्रप्रस्थ अथवा दिल्ली की फिर से स्थापना की थी। भोज चरित्र मे लिखा है कि परमार राजा भोज को किसी उत्तर देशीय शत्रु ने धार से निकाल दिया था और वह भागकर चन्द्रावती पहुँचा था, वहाँ उसको शरण मिली थी।

इसी प्रकार उन दिनो मे चालुक्य अथवा सोलङ्की राजाओ को भी गगा के किनारे सोरो भद्र से निकाल दिया गया था, अतएव वे वहाँ से जाकर कल्याण मे बसे थे। यदु भाटियो को पाञ्चालिका मे सतलज के किनारे सुल्तानपुर से निकाला गया था और उनको भारत के रेगिस्तानी भूमि मे जाकर बसना पडा था। वह आतक यहाँ तक बढ़ा कि गोलकुण्डा तक उसका विध्वस और सर्वनाश काम करता रहा। उस आतक को कई पुस्तको मे उत्तर जादूगर गजली बध (२) का राक्षस कह कर उसका वर्णन किया गया है।

---

(१) यह हो सकता है कि अनहिलवाडा के प्रथम राजवश का परिचायक चावड़ा शब्द और शब्द से बिगडकर बना हो। इसलिए कि च और श—दोनो ही एक-दूसरे के स्थान पर काम करते है। मराठा लोग च को स बोलते है। सम्भव है देव और सोमनाथ के सौर राजाओ ने अपने राष्ट्र को सौराष्ट्र कहा हो।

(२) कजली बन।

ये सब घटनायें उस समय की हैं, जब इस्लामी सेना ने पहले-पहल हिन्दुस्तान मे प्रवेश किया था और उसके साथ बहुत बडी सख्या मे इण्डोसीथिक लोग इस देश में आये थे। वे सभी सूर्य, अश्व और तलवार की पूजा करते थे और किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय को स्वीकार करने मे परहेज नही करते थे। इसका अर्थ यह होता है कि मुल्तान से आते हुए काठी लोगो ने इसी मौके पर कच्छ के मैदान को पार किया था और वे सोरो के देश मे जाकर बसे थे। वहाँ पर उन लोगो का प्रभाव यहाँ तक फैल गया कि उस प्रदेश का नाम काठियावाड प्रचलित होकर सौराष्ट्र पड़ गया।

हिन्दुस्तान की इन परिस्थितियो के सम्बन्ध मे किसी का कोई विरोध क्यो न हो, लेकिन सिकन्दर के अक्रमण से पहले और पश्चात् जो दुर्घटनायें घटी और उनके जो दुष्परिणाम निकले, उनसे इन्कार नही किया जा सकता।

इस प्रदेश के रहने वालों के लिए सिन्धु नदी भले ही अटक (१) साबित हुई हो, लेकिन उसके बाहर से जो लुटेरे और आक्रमणकारी इस देश मे आये, उनके लिए वह नदी अटक अर्थात् बाधक नही बनी। यही कारण है कि इस छोटे-से प्रायद्वीप मे आज उत्तर की अनेक जातियाँ पायी जाती है।

यह लिखा जा चुका है कि बंसराज ने अनहिलवाडा राज्य की स्थापना की थी। इसकी प्रतिष्ठा अत्यन्त वैभव के साथ आरम्भ हुई। इसके एक लेखक ने इस नगर को अपने नेत्रो से देखकर उसकी अच्छाइयो का वर्णन किया है। अथवा उसके वर्णन का और कोई आधार है, इसके विषय मे हम अधिक नही लिख सकते। यह जरूर है कि इस प्रकार के किसी भी प्रदेश मे नया नगर बसाना साधारण कार्य नही है, फिर भी उसके लेखक ने इस नगर की जिस शोभा और सम्पन्न अवस्था का बयान किया है, वह किसी एक ही राजा के राज्य काल मे सम्पन्न हो सकी हो, यह सम्भव नही मालूम होता।

किसी भी अवस्था मे यदि आचार्य का कहना सही मान लिया जावे तो हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि पराजित चावडा राजा ने केवल अपनी राजधानी देव-पट्टण से लाकर अनहिलपुर में कायम की थी और "उस अवस्था मे यह लिखना अनुचित नही होगा कि जो वलभी मिट चुकी थी, उसके समर्थ निवासी बडी-से-बडी सख्या मे इस नयी राजधानी मे आकर बस गये थे। इसके साथ-साथ यह भी सम्भव हो सकता है कि बसराज ने जिस नगर की उन्नति की, वह पहले से मौजूद रहा हो

---

(१) अटक का मतलब है, अडचन, रुकावट अथवा बाधा। सिन्धु नदी को यह नाम उस समय दिया गया, जब हिन्दू-जाति से लोग अपने ही परहेज और विचार के कारण बाकी ससार से अलग हो गये। परन्तु मनु ने लिखा है कि मध्य एशिया मे हिन्दू धर्म की स्थापना हुई थी।

और उसने उसको विकसित किया हो ।

इस प्रकार अनहिलवाड़ा के सम्बन्ध में अनुमान लगाना कदाचित निराधार नही हो सकता क्योकि इसका समर्थन अनेक अंशो मे मेवाड़ के इतिहास से होता है । उसमे यह बयान किया गया है कि गहलोत वश का संस्थापक बप्पा—जिसके पूर्वज बहुत पहले वलभी के राजा रह चुके थे—चित्तौड मे भली प्रकार अपनी आबादी कर लेने के पश्चात् एक सेना लेकर अपने भतीजे चावड़ा राजा को अपने पूर्वजो के राज्य मे फिर से शासक बनाने के लिए गया था । इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि देवपट्टण के चावड़ा वलभी राज्य की अधीनता मे थे । मेवाड़ के इतिहास में इस घटना का समय सम्वत् ७६६ सन् ७४० ईसवी लिखा गया है ।

प्रकीर्ण सग्रह मे कुछ आगे लिखा हुआ है—अनहिलपुर बारह कोस (१) और पन्द्रह मील के घेरे में बसा हुआ है । उसमें बहुत-से मन्दिर और पाठशालायें हैं । उस नगर में चौरासी चौक और चौरासी बाजार हैं । इस नगर में सोने और चाँदी के सिक्कों की टकसालें हैं । यहाँ पर विभिन्न जाति के लोग रहते हैं और उसके अलग-अलग मुहल्ले हैं । यहाँ पर अनेक प्रकार के व्यवसायी रहते हैं । हाथी दाँत, रेशम, लाल, हीरे, मोती आदि के यहाँ पर अलग-अलग चौक है । यहाँ पर सर्राफो और दूसरे व्यवसायियो का एक बडा बाजार है । सुगन्धित चीजो, अगरागो, अत्तारो, दस्त-कारो, सुनारो और दूसरे व्यापारियो की यहाँ पर दूकाने हैं । इस नगर मे मल्लाहो, चारनो और भाटो के भी निवास-स्थान हैं । इस नगर मे अठारह जातियों के लोग रहते हैं । वे सभी प्रकार सम्पन्न हैं । यहाँ के सभी लोग सुखी हैं । नगर में राजमहल है, राजा का शस्त्रागार है । विशाल हाथी शाला है, घुडसाल और रथागार आदि के लिए बड़ी-बड़ी यहाँ पर इमारते बनी हुई हैं । विभिन्न प्रकार के व्यापारो के लिए अलग-अलग मण्डियाँ है । आयात-निर्यात की व्यवस्था है और बिक्री की चीजों पर चुंगी ली जाती है । मसालो फलों, औषधियो, कपूर, धातु और देशी तथा विदेशी प्रत्येक कीमती चीज पर कर लिया जाता है । यहाँ पर संसार की सभी चीजो का व्यापार होता है । चुंगी की एक दिन की आमदनी एक लाख टंक (२) होती है । इस नगर की

---

(१) एक कोस की दूरी का अनुमान गाय के रंभाने से लगाते हैं । अर्थात् उसकी आवाज शान्त वातावरण मे सवा मील तक सुनी जा सकती है ।

(२) यहाँ पर तांबे का सिक्का लेन-देन के समय काम आता है । उसकी कीमत आमतौर पर एक रुपया अथवा वीस टक मानी जाती है । इस तरह से अनहिलवाडा की चुंगी में रोजाना की आमदनी पाँच हजार रुपये थी । अर्थात् अठारह लाख रुपये वार्षिक, जो दो लाख पच्चीस हजार पौण्ड के वरावर होती है । इसका मूल्य यदि आज के हिसाव से समझा जाय तो दस लाख पौण्ड होता है । यदि इस आमदनी

तारीफ यह है कि पीने के लिए पानी माँगने पर दूध मिलता है। यहाँ पर बहुत-से जैनियो के मन्दिर है और एक झील के किनारे सहस्त्रलिंग महादेव का विशाल मन्दिर बना हुआ है। इस नगर की आवादी चम्पा, पुन्नाग, खजूर, जम्बूचन्दन और आम के बहुत से पेडो के बीच मे पायी जाती है। यहाँ पर विभिन्न प्रकार की वेलें हैं और झरनो के अमृत के समान स्वच्छ पानी निकलता है। यहाँ पर वेदो की शिक्षाओ पर व्याख्यान होते हैं। इस नगर मे वोहरे (१) लोग बहुत हैं। वे बीरगाँव मे भी अधिक पाये जाते हैं। यहाँ पर जैन साधुओ, कुशल व्यापारियो और सस्कृत की पाठशालाओ की अच्छी सख्या है। अनहिलवाडा मे रहने वालो की उसी प्रकार सख्या है, जिस प्रकार समुद्र मे जल की बूदे। जिस प्रकार समुद्र के पानी की नाप तोल नही हो सकती, उसी प्रकार यहाँ के आदमियो की गिनती नही की जा सकती। (२) सेना अगणित है और घण्टा धारण करने वाले हाथियो की बहुत बडी सख्या है। सालिग सूरि ने वसराज के मस्तक पर राजतिलक किया। बसराज ने पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया, वह उसी धर्म का मानने वाला है। यह सब कार्य सवत् ८०२ मे|हुआ। वसराज ने पचास वर्ष तक राज्य किया और वह साठ वर्ष की अवस्था तक जिन्दा रहा। (३)

मे राज्य के चौरासी बन्दरगाहो पर वसूल होने वाले कर को जोड दिया जाय तो यहाँ की आमदनी के सम्बन्ध मे अरब के यात्रियो ने जो लिखा है, वह सही मालूम होता है।

(१) कारीगरो और किसानो को कर्ज देने वाले वोहरे कहलाते हैं। वे भारत मे सर्वत्र पाये जाते हैं। इसके लिए वे लिखित प्रमाण ले लेते हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था प्राचीन फ्रास मे भी थी।

(२) अनहिलवाडा की घनी आबादी के कारण इतिहासकार ने उसकी उपमा समुद्र के साथ दी है। वहाँ की घनी आवादी का यह हाल था कि एक दिन एक स्त्री का पति किसी प्रकार खो गया। उस स्त्री ने राजा के पास जाकर अपने दुख के लिए प्रार्थना की। राजा की तरफ से नगर मे ढिंढोरा पिटवाया गया कि जो आदमी राणो नाम का काना हो, वह बडे चबूतरे अर्थात् न्यायपीठ पर आ जावे। इस पर नौ सौ निन्यानवे राणो नाम के काने पुरुष वहाँ पर आकर एकत्रित हुए। वह दुखी स्त्री उस कतार के चारो ओर घूम कर लौट आयी और उसका अपना पति नही मिला। उसके बाद दूसरी बार फिर ढिंढोरा पीटा गया, तब उसका पति उसे मिला।

(३) रत्नमाला ग्रन्थ के अनुसार वनराज पच्चास वर्ष को अवस्था मे सिंहासन पर बैठा था और साठ वर्ष की आयु तक जीवित रहा था। उसकी पूरी आयु एक सौ नौ वर्ष, दो माह इक्कीस दिन की थी, जब उसकी मृत्यु हुई। आईन ए अकबरी मे भी बनराज का ७४६ ई० मे गद्दी पर बैठना और ८०६ ई० तक राज्य करना

इस विवरण के बाद उसके लेखक ने चावड़ा राजाओ की वशावली दी है और आरम्भ से लेकर अन्त तक उस वंशावली के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की आलोचना नही की गयी। उसका वर्णन कुमारपाल तक किया गया है और उसी के लिए इस काव्य ग्रन्थ की रचना की गयी है। यहाँ पर दूसरे समकालीन लेखको के आधार पर उनका उल्लेख करना आवश्यक हो गया है, जो इस प्रकार है—

अनहिलवाला के सस्थापक के बाद योगराज सवत् ८५२ सन् ७९६ ईसवी में सिंहासन पर बैठा और उसने पैंतीस वर्ष राज्य किया।

खीमराज अथवा क्षेमराज सवत् ८८७ सन् ८३१ ईसवी मे सिंहासन पर बैठा और पच्चीस वर्ष तक राज्य करने के बाद सम्वत् ९१२ सन् ८५६ ईसवी मे उसकी मृत्यु हो गयी। इसी के शासन काल मे सबसे पहला अरब-यात्री अनहिलवाड़ा राज्य मे हिजरी सन् २३७ और उसके अनुसार ८५१ ईसवी मे आया था और दूसरा सत्रह वर्ष के बाद हिजरी सन् २५४ और उसके अनुसार ८६८ ईसवी मे उसके उत्तराधिकारी के समय मे आया था।

बीरजी अथवा बीरसिंह सम्वत् ९१२ सन् ८५६ ईसवी मे सिंहासन पर बैठा और २९ वर्ष राज्य करके सम्बत् ९४१ सन् ८८५ ईसवी मे मर गया।

अरब से आने वाले यात्रियो ने उन राजाओ के भी नाम नही दिये, जो उन दिनों शासन करते थे। ऐसी दशा मे उन यात्रियो के बयानो से हमको यहाँ पर किसी प्रकार की सहायता नही मिलती। अतएव अनहिलवाड़ा के शासको के इतिहास में जो वर्णन किया गया है, हमें उसी का आधार लेना पड रहा है।

हिन्दुस्तान मे सबसे अधिक प्रसिद्ध बल्हरा राजा हुआ है। दूसरे राजा यद्यपि अपने-अपने राज्यों के स्वतन्त्र स्वामी हैं। लेकिन वे सभी बल्हरा राजा के विशेषाधिकार करते हैं। जब कभी उसकी तरफ से राजदूत इन लोगो के यहाँ आता है तो उसके सम्मान के लिए इन लोगो को सभी प्रकार की व्यवस्था करनी पडती है। अरब वालो की परम्परा के अनुसार ये राजा भी मूल्यवान भेटें प्रदान करते हैं। उसके यहाँ बहुत बडी सख्या मे घोडे, और हाथी रहते है और उसके अधिकार मे एक विशाल खजाना है। इसके यहाँ पर तातारी चाँदी के वे सिक्के भी मौजूद हैं, जो तातारी द्रम्म के नाम से मशहूर हैं और वे तौल मे अरब द्रम्म से आधा द्रम्म अधिक होते हैं। इन सिक्कों पर राजा की मूर्ति का ठप्पा लगा होता है और उसके पहले के राजा की मृत्यु के पश्चात् वर्तमान शासक के राज्यकाल का सम्वत् लिखा रहता है।

लिखा है। लेकिन डाक्टर भगवान लाल इन्द्र जी ने बनराज का शासनकाल ७६५ ई० से ७८० ई० तक माना है।

अरब लोगो की तरह ये लोग मोहम्मद के सन् से वर्षों का हिसाब नही जोडते, बल्कि अपने राजाओ के शासन-काल के वर्षों की गणना करते हैं। इनमें से कितने ही राजा अधिक समय तक जीवित रहे हैं और उन लोगों ने पचास वर्षों से अधिक समय तक शासन किया है। यहाँ के लोगो का कहना है कि इनके दीर्घ जीवन और राज्य काल का सबब अरब लोगो के प्रति इनकी सहानुभूति है। सचमुच, अरब लोगो के प्रति इस प्रकार सहृदयता का भाव रखने वाले दूसरे कोई राजा नही हुए। इनकी प्रजा की मित्रता भी हमारे प्रति उसी प्रकार की है।

बल्हरा का प्रयोग किसी एक व्यक्ति के लिये नही है। बल्कि खुसरो तथा अवटको की तरह, जो प्रत्येक राजा के नाम के साथ प्रयोग किया जाता है। जो क्षेत्र इस राजा के अधिकार मे हैं, वह कम-कम अर्थात् कोकण नामक प्रान्त के पास से आरम्भ होकर थल-मार्ग से चीन तक जा पहुँचा है। इसका राज्य अनेक ऐसे राज्यो से घिरा हुआ है, जो इसके साथ शत्रुता रखते हैं। लेकिन इस राजा ने कभी उनके विरुद्ध कोई बात नही सोची और न उन पर कभी आक्रमण किया।

उन राजाओ मे एक हरज अर्थात् हर्ष का राजा है। उसके अधिकार मे बहुत बडी सेना है। और भारत के सभी राजाओ से अधिक वह अश्वारोही सेना भी रखता है। इस राजा को मोहम्मद के मजहब से बहुत घृणा है। उसका राज्य एक अन्तरीप पर है, वहाँ पर ऊटो और अन्य पशुओ की अधिकता है। वहाँ के रहने वाले खानो से चाँदी निकालते है और उसी को लेकर यात्रा करते हैं। उनका कहना है कि उनके प्राय-द्वीप में चाँदी की बहुत सी खाने हैं। इस राज्य की सीमा राहमी नामक राजा के राज्य से मिली हुई है, जो हरज के राजा और बल्हरो से शत्रुता रखता है।

वंश और राज्य की प्राचीनता के कारण इस राजा का कोई अधिक महत्व नही है। लेकिन उसकी सेना बल्हरा राजा से भी अधिक है। इस प्रदेश मे लोग ऐसे सूती कपडे तैयार करते हैं कि जो अन्यत्र किसी देश मे देखने को नही मिलते।

इस प्रदेश मे कौडियाँ चलती हैं, वे छोटे सिक्को के स्थान पर काम आती हैं। इसके साथ-साथ, यहाँ पर सोना, चाँदी, लकडी, आबनूस और काला चमडा बहुत अधिक पाया जाता है। इस चमडे से घोडो की काठियाँ बनती हैं और वहाँ की लकडी मकान बनाने के काम मे आती हैं।

यहाँ पर कुछ विवेचना करने की आवश्यकता है। हमारे सामने बल्हरा एक शब्द है। इसका अर्थ है बल्ला का राय। उसकी प्राचीन राजधानी बलभीपुर थी। दूसरा शब्द है चाँदी के तातारी सिक्के जो द्रम्म कहलाते हैं। इसका एक सिक्का मेरे पास भी है। उसमे एक तरफ राजा की मूर्ति है और उसकी पीठ पर कुछ जैनी अक्षर हैं, वे साफ नही हैं। तीसरी विवेचना इन राजाओ के दीर्घ शासन-काल की है।

जिन यात्रियों ने इन राजाओं के शासन-काल का उल्लेख किया है, वे तीसरे और चौथे राजा के समय मे पट्टण आये थे और उन लोगो ने इन राजाओं के राज्य-काल के लिए दीर्घ शब्द का प्रयोग किया है जो हमको भ्रम में डाल देता है। लेकिन उन यात्रियो की दूसरी बाते भी सही नही हैं, इसलिए उनके उल्लेखो का कोई प्रभाव नही पड़ता।

यह तो साफ जाहिर है कि वे यात्री गुजरात की भाषा नही जानते थे, ऐसी हालत मे बंसराज के पचास वर्षों और उसके बाद शासन करने वालो के तीस वर्षों की गणना उन लोगो ने लम्बे शासन काल मे की, ऐसा मालूम होता है। यह भी हो सकता है कि उन दिनो मे देवपट्टण से राजधानी का परिवर्तन हुआ था, इसलिये उसके पहले के राजाओ के शासन काल पर ऐसा कहा गया हो। इतिहासकार सन्त सालिग नहरवाला मे बसराज के राज्य भिषेक के पश्चात् कभी भी गया नही था।

चौथी विवेचना इन यात्रियो के भूगोल-सम्बन्धी ज्ञान की है। उन लोगों ने बिना कुछ सोचे-समझे और बिना किसी प्रयास के आसानी के साथ लिख दिया कि इन स्थानो की दशा इतनी भ्रामक है, जिससे उनके सम्बन्ध मे सही रूप मे कुछ लिखा नही जा सकता और न उसका सही अनुमान ही हो सकता है।' इसको ज्ञान का अभाव भी कहा जा सकता है और खोज न करने के सम्बन्ध मे यह एक अकर्मण्यता भी है। यदि सभी अन्वेषक यही कहकर और लिखकर टाल दे तो उसका क्या परिणाम होगा? प्रश्न यह है कि जो कुछ उन यात्रियो ने लिखकर छोड़ दिया है, क्या वह बाद मे आने वाले यात्रियो के लिए गलत नही है? उन यात्रियो के सामने जो मुश्किल थी, वह ऐसी नही थी कि उसके सम्बन्ध मे ऐसा लिखकर उससे छुटकारा प्राप्त किया जाय। यह सभी जानते हैं कि अरबी और फारसी भाषा मे साधारण विन्दुओं और नुक्तो के इधर-उधर (१) हो जाने से भयानक अन्तर हो जाता है। उन स्थानों का भौगोलिक चित्रण कष्ट पूर्ण है, लेकिन परिश्रम और प्रयास से वह हल भी किया जा सकता है।

वल्हर-राज्य की सीमा कोकण से चीन के किनारे तक जो लिखी गयी है, वह पूरे तौरपर सही होती, यदि 'रिलेशन्स' नामक पुस्तक आगामी राजवंशी राजाओ के समय मे लिखी जाती। उसके लिए उपयुक्त समय वह था, जब कि सिद्धराज के अठारहो राज्यों के उत्तराधिकारी कुमारपाल ने हिमालय पहाड़ को जीतकर पाञ्चनिका की पुरानी राजधानी सालपुरा मे विजय का झण्डा फहराया था।

---

(१) हिन्दुस्तान में ऐसे लोग भी रहते हैं, जो हमेशा नग्न रहा करते हैं। उनके नाम में जो विन्दु का प्रयोग होता, है उसको रखने और हटा देने से मतलब कुछ का का कुछ हो जाता है।

उस समय राज्य की जो सीमा बतायी गयी है, उसके सम्बन्ध में हमको पूरा असन्तोष है। इसलिए कि उन दिनो मे कोकरण में सोलकी लोगो का शासन न था, उसके समकालीन लोगो के इतिहास से उनके स्वतन्त्र पडोसी राज्यो का पता चलता है। (१)

वल्हर के राजा का सवसे बडा शत्रु हरज का राजा और राहमी का राजा था। उन दोनो के वश ऊंचे नही थे और उसको उन दोनों के साथ लडना पडा था। उन दोनो राजाओं के सम्बन्ध में समझा जा सकता है कि वे मौन थे। वल्कि उसके अनुवादक ने यह लिखकर हमारे लिये और अधिक गुजाइश पैदा कर दी है कि "गोरज अथवा हरज इस प्रायद्वीप मे कुमारो अतरीय और चोन के बीच मे कही पर होना चाहिये।"

गुजरात शब्द का मूल गूजर है और गूजर इस देश की एक शूद्रों की जाति मानी जाती है, गूजर लोग भारत के आदिवासी लोगो मे से हैं। हमे यह कही पर मालूम नही हुआ कि प्राचीनकाल में कभी गूजर जाति ने किसी राज्य की स्थापना की थी, यह तो साफ जाहिर है कि उन यात्रियो को इस बात की जानकारी नही हो सकी कि गुजरात उन दिनो मे वल्हर-राज्य का एक प्रमुख भाग माना जाता था। मेरा विश्वास है कि हरज का राजा गोलकुण्डा का राजा हर है, जो अजमेर के चौहानो की बडी शाखाओ मे किसी का वंशज था। उसके लगातार युद्ध वल्हर लोगो के साथ हुए थे। इन युद्धो का कारण यह था कि उसकी घनिष्ठता निम्नवशी राहमी लोगो के साथ थी, ऐसा मालूम पडता है।

तेलिंगाना का राय परमार था, उसने एक बार चक्रवर्ती राजा की उपाधि धारण की थी। उसके राज्य मे बढिया और कीमती सूती कपडे बुने जाते थे, उससे इस अनुमान का स्पष्टीकरण होता है। उस राज्य के कपडे, मलमल और बुरहानपुर का लाल कपडा रोम तक बिकने के लिये जाता था। उन दिनो मे कपडे का व्यवसाय माना जाता था। यात्रियो के वर्णन के अनुसार शङ्खो और कौडियो का प्रचलन उस समय भी था और आजकल भी है। इस प्रदेश मे समुद्री तट पर खजूर की गुठलियो का प्रयोग काफी मात्रा मे आज तक होता है।

काशबिन-राज्य—जिसके भीतर से लेकर बाहर तक जंगल और पहाड हैं—कच्छभुज होना चाहिये। हमे इस बात की कल्पना करने का काफी आधार मिलता है कि छोटी और साधारण राजधानी हिन्नुंज शत्रिंश (२) अथवा शत्रुञ्जय पालीताना का

---

(१) हिन्दुस्तान के राजनीतिक भूगोल के सम्बन्ध मे हमको यात्रियो का अज्ञान बहुत खल रहा है। उनकी भूलें तो इस प्रकार की भी हैं, जैसे उन्होंने कन्नौज को गोजर (गुजरात) के राज्य में एक प्रसिद्ध नगर दिखाया है।

(२) जैसा कि पहले भी लिखा गया है, स अक्षर का उच्चारण इस प्रान्त में

छोटा-सा राज्य था और वह आज तक मशहूर है। नेहल बरेह नामक नगर की भौगोलिक परिस्थिति का बयान करने के बाद—जो नासिरुद्दीन और उलूगबेग की सूची के अनुसार, १०२° ३० देशान्तर और २२° उत्तर अक्षांश पर है। इसलिये कालीकट कोचीन अथवा बीजापुर मे से कोई नही हो सकता। व्याख्या करने वाले ने उसके बाद लिखा है कि काली मिर्च के व्यापार भी सुविधा के लिए उसने बल्हरा का अनुवाद कालीकट किया है। ऐसी हालत मे यह की सम्भव है कि कालीकट जाने के पहले वह गुजरात के किसी स्थान पर कुछ समय रहा हो।

उस यात्री ने पुर्तगाल के लेखक जान डी बरास का उल्लेख किया है, उसने इस देश के ग्रन्थो को देखकर लिखा है कि 'भारत के सभी राजाओ को सम्राट अर्थात् महाराजाधिकार के अधिकार हासिल थे।' और आगे के विवरण पढने के बाद यह मालूम हो सकेगा कि अनहिलवाडा के बल्हरो और कोकण के राजाओ के—जिनकी राजधानी कल्याण मे थी—आपसी घनिष्ठ सम्बन्ध थे और आखिर के उनके राज्य एक ही शक्तिशाली साम्राज्य की अधीनता मे हो गये थे।

इस प्रकार की घटनाये इन यात्रियो के समय की नही है, यहाँ पर एक बात बडे आश्चर्य की है और कदाचित् वह कालीकट के नाम की रचना का वास्तविक कारण है। मजबूत ऊँची दीवारो से घिरा हुआ अनहिलवाडा का नगर कालीकोट अथवा काली का दुर्ग कहलाता था और आज तक वह अपने इसी नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा मालूम होता है कि इसी सत्य के आधार पर यात्रियो ने बल्हरा-राजाओ का काली मिर्च की व्यवस्था करने के लिए भारतीय प्रायद्वीप मे जाना विश्वसनीय मान लिया था, ऐसा अनुमान होता है।

अरब वालो के साथ इन लेखको की सहानुभूति और सहृदयता थी, इसलिये उन लोगों ने बल्हरो की जो प्रशसा की है, वह राजाओ से साथ सम्पर्क स्थापित करती है। इसलिये कि इनमे का आखीरी राजा चेरामन पेरूमल मुसलमान हो गया था और उसकी जिन्दगी के अन्तिम दिन मक्का में बीते थे।

———

अधिक तरह होता है, सालिमसिह को हालिम हिंग बोला जाता है, उसी के अनुसार सालिम मिश्री हीग बन जाती है। स को ह बोलने की यहाँ पर एक पुरानी प्रथा है।

नवाँ प्रकरण

राज्य, राजा और उनके कार्य

अनहिलवाडा का इतिहास-कल्याण के सोलंकी नरेश—उन दिनों की घटनायें—मुस्लिम लेखको भी भूलें—चालुक्यो के राज्य पर चौहानों का उत्तराधिकार—वल्हरों का राज्य—राजा कुमारपाल के कार्य—अनहिलवाडा का विस्तार और वैभव—बौद्ध धर्म और कुमारपाल—कुमारपाल और इस्लाम धर्म।

अब हम मध्यकालीन राजाओ के सम्बन्ध मे कुछ नही लिखेगे और अरब के यात्रियो के अनहिलवाडा मे आने के दिनो मे जो राजा राज्य करते थे और वंसराज के समय से लेकर उसके अन्तिम वशज सामतराज तक जो राजा हुये, उन सबके सम्बन्ध में मिली हुई सामग्री देने की चेष्टा करूंगा, जिन्होने अनहिलवाडा मे एक सौ छब्बीस वर्षों तक राज्य किया और चावडो को पदच्युत कर दिया था। वे सभी राजा कोकण की राजधानी कल्याण के समकालीन शासको मे आते हैं, उन सबके सम्बन्ध मे जो भी विवरण, सही तरीको से मुझे प्राप्त हो सका हैं, उनको मैंने यहाँ पर देने को कोशिश की है।

इस प्रकार के विवरण देने के लिए मुझे सोलंकियो की वशावली के पन्ने उलटने पडेगे। उसकी प्राप्ति मुझको इस वश के जुम्मेदार प्रतिनिधि रूप नगर के शासक से जो अब के मेवाड़ मे जागीरदार है—हुई थी। घरू नामक भाट उसका अपना भाट था और उसके पास अनहिलवाडा की किताब अब भी मौजूद है, उस पुस्तक मे उन सभो राजाओ के पूर्वजो के वर्णन विस्तार मे लिखे हुए हैं। (१) यहाँ पर हमने जो कुछ इन वशो और राजाओ के सम्बन्ध मे लिखा है, उसका आधार केवल भाट है और कोई दूसरा आधार न मिलने पर हमने उसी का सहारा लिया है। उस भाट ने अपने वर्णन में राजाओ का जन्म आबू के अग्निकुण्ड से स्वीकार नही है। उसका कहना है—

---

(१) उन राजाओ के गोत्रो को हमने उन्ही की बोली मे यहाँ पर लिखा है, उनको बदलना अथवा सही उच्चारण करके लिखना आवश्यक नही मालूम होता। सम्भव है, जो लोग उस बोली से परिचित हो, उनको वे गोत्र प्रिय न मालूम हो।

मदवाणी साखा अथवा माघ्यनिन्दनी शाखा, भारद्वाज गोत्र, गढलोकोत्र खार निकास, सरस्वती नदी, साम्वेद, कपिल मानदेव, मर्दिमान ऋषेश्वर तीन प्रवर जनेऊ, सूरीपान का छत्ते, गऊपालूपास, गया निकस, केवज्ञ देवी, मैपालपुत्र, यह महीपाल—जिसको यहाँ पर मैपालपुत्र लिखा गया है—नारायण के युद्ध मे अपनी अद्भुत वीरता दिखाने के कारण सोलंकियो के पनेतो मे गोद लिया था। वह राजा बीरदेव

"जब ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का कार्य खतम कर लिया तो वह पवित्र गङ्गा नदी के सोरों घाट पर आया और पवित्र दूध को अपनी अञ्जलि में लेकर उसने चुलुक बनाकर संजीवन मन्त्र का पाठ किया। उसी समय मनुष्य उत्पन्न हुआ, वह ब्रह्म चौलुक (१) के नाम से मशहूर हुआ। स्थान के कारण वही सोलंकी कहा गया। वही पर उसने अपनी राजधानी कायम की, उसको सोरो कहा जाता है। इस नाम के कारण ही यहाँ पर गङ्गा का नाम सोरो भद्र हुआ। त्रेता और द्वापर—स्वर्ण और रजत युगों में उन लोगो ने यहाँ पर शासन किया।"

अब इस पर हमें स्वय विचार कर लेना चाहिये। भूगोल के विद्यार्थियो को इसके पढने से एक प्राचीन राजधानी के प्रारम्भिक जीवन का पता तो चल ही जाता है। वह दिल्ली के अन्तिम चौहान सम्राट के समय तक बनी रही और आज भी एक धार्मिक तीर्थ स्थान के नाम से प्रसिद्ध है।

इस शाखा के गोत्र से हमें इस बात का भी पता चलता है कि उसका आरम्भ उत्तरी भारत अर्थात् लोकोट से है और जो पाञ्चोलिका अर्थात् पंजाब का एक पुराना नगर था। उसको छोडने पर इन लोगो ने गङ्गा के किनारे पर सोरो को आबाद किया।

का तीसरा लड़का था। उसको साम्भर के चौहान राजा की लड़की व्याही थी और वह अपनी ननसाल के विरुद्ध इस्लामी युद्ध मे मारा गया था। यहाँ के प्रत्येक वंश का इतिहास इसी प्रकार की घटनाओ से भरा हुआ है। अजमेर के माणिकराय का पुत्र भी मुसलमानो के पहले आक्रमण मे मारा गया था, वह चौहानो का मान्य होता था। यहाँ पर पुत्र का मतलब किशोर अवस्था से है।

(१) महाभारत के अनुसार द्रुपद राज पर नाराज होकर अपने अपमान का बदला लेने के लिए द्रोणाचार्य ने चुल्लू में जल भरकर संकल्प किया और चौलुक्य नामक एक शूर-बीर उत्पन्न किया। उस चौलुक्य की भविष्य मे प्रसिद्धि हुई।

चौलुक्य वंश के लिए लेखो और दान-पत्रों मे चौलुकिक, चौलिक, चालुकिक, चुलुक्य और चौलुक्य आदि नामो के प्रयोग किये गये हैं।

यह जाहिर है कि च का उच्चारण स होने से सोलकी शब्द का प्रचार हुआ। यहाँ पर स्थान के कारण सोलकी नाम पडने का कोई कारण समझ मे नही आता।

अनेक स्थानो के वाक्यो को पढ़ने से पता चलता है कि उन दिनो मे शालिक्य शब्द भी प्रचलित था। वह सोलंकी से अधिक मिलता-जुलता है।

......हिस्ट्री आफ मीडीवेल हिन्दू इण्डिया, पृ० ८२

दक्षिण के चालुक्य राजा विमला दित्य के दान पत्र के अनुसार, इस वंश के क्रम में ब्रह्मा, चन्द्र और अयोध्या के ५९ राजाओं का बयान है। उनमें उदयन भी शामिल है। इसी वश का विजयादित्य राजा त्रिलोचन से युद्ध करता हुआ मारा गया।

हिन्दू ग्रन्थो मे लिखे हुए इस काल्पनिक युग के सम्बन्ध मे अधिक ध्यान न देकर भाट के द्वारा मिले हुए विवरण पर हम अधिक विश्वास करते हैं। विक्रम की सातवी शताब्दी मे दो भाई राज और बीज गङ्गा को त्याग कर गुजरात में आ गये। उनमे राज ने पाटन के चावड़ा राजा की लडकी से विवाह कर लिया। उसकी सतान भविष्य मे सिंहासन पर बैठी और वसराज से कर्ण तक सिकन्दर खूनी के समय निकाले जाने के समय पांच सौ बावन वर्ष तक राज्य करती रही। टोडा और सोलङ्कियो के भाट से हमको इतनी ही सामग्री मिल सकी है। इसके आगे हमको 'चरित्र' का आश्रय लेना पडता है।

राजा वीरदेव चावडा वशी था और वह कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज का राजा था। वह अपनी राजधानी कल्याण कटक से गुजरात मे चला आया। उसने यहाँ पर आक्रमण किया और विजय करने के बाद उसने यहाँ के राजा को मार डाला। इसके पश्चात् उससे अपनी सेना का एक बडा भाग यहाँ पर छोड दिया और वह कल्याण लौट गया। (१)

वीरराय के एक लडकी थी। उसका नाम था मिलन देवी। वह अजमेर के चौहान वशीय राजा को ब्याही गयी थी। उसकी पन्द्रहवी पीढी मे कुमारपाल हुआ। उसके नाम पर यह ग्रन्थ लिखा गया, जो कुमारपाल चरित्र के नाम से मशहूर हुआ।

वीरराय के एक लडका पैदा हुआ, उसका नाम चन्द्रादित्य था। उसका लडका सोमादित्य और उसका छोटा भाई भोमादित्य हुआ। उसके तीन लडके थे, उर अथवा अर, धीतक और अभिराम। उर सोमेश्वर (सोमनाथ) की यात्रा करने के लिए पाटन गया और वहाँ पर उसने राजा सामन्त की लडकी लीलादेवी के साथ अपना विवाह कर लिया।

वह राजकुमारी गर्भवती हुई। लेकिन प्रसव काल मे उसकी मृत्यु हो गयी। लेकिन उसके पेट को काटकर बच्चा निकाल लिया गया। उससे जो बालक पैदा हुआ, ज्योतिषियो के अनुसार उसका जन्म मूल नक्षत्र मे होने के कारण मूलराज रखा गया।

राजा सामन्त चावडा ने पुत्रहीन होने के कारण अपने जीवन काल मे ही मूलराज को राज्य का अधिकारी बना दिया। लेकिन बाद में उसको अपनी भूल मालूम

---

(१) सोलङ्की भाट के वर्णन मे कल्याण के राजाओ मे इन्द्र दमन नामक राजा का नाम आता है। भाट का कहना है कि इसी राजा ने जगन्नाथ के मन्दिर का निर्माण कराया था और परो नामक नगर बसाया था। यह नगर उसी के नाम पर इन्द्रपुरी कहलाता है। उसकी पहली बात तो सही हो सकती है। उसने मन्दिर की मरम्मत तो करायी होगी, लेकिन उसने जगन्नाथ का मन्दिर नहीं बनवाया होगा।

हुई और उसने मूलराज को दिये हुए राज्यधिकार को वापस लेने का निर्णय किया। लेकिन इसके बाद ही उसके भांजे ने उसे मार डाला। इस स्थल पर भाट वर्णन करता है—जामाता, साँप, सिंह, शराब, मूर्ख, भाञ्जा और राजा इन सातों का कभी विश्वास नही करना चाहिये।

बल्हरो के इतिहास के सम्बन्ध मे आगे लिखने के पहले चूँकि चावड़ों का राज्य चालुक्यों अथवा सोलकियो के अधिकार मे आ गया था। इसलिये इन दोनो वशो के समयकालीन राजाओ की तालिका यहाँ पर दे देना आवश्यक हो गया है।

कल्याण के चालुक्य राजा	अनहिलबाड़ा के चावडा राजा
१ बीर जी	१ वंशराज (७४६ ई० से ७६६ ई० तक)
२ कर्ण	२ योगराज
३ चन्द्रादित्य	३ क्षेमराज
४ सोमादित्य	४ बीर जी
५ भोमदित्य	५ बीर सिंह
	६ रत्नादित्य
६३२ घीतक अभिराम	७ सामन्त

उर ने सामन्त की लड़की लीलादेवी के साथ व्याह किया था। उसके मूलराज उत्पन्न हुआ। उससे अनहिलवाड़ा के दूसरे राजवंश का आरम्भ हुआ।

इन दोनो के आरम्भ मे समानता हैं, लेकिन कुछ अन्तर भी जाहिर होता है। भाटो के इतिहास के अनुसार राज और बीज नामक दो चालुक्य भाई सातवी शताब्दी में सोरो को छोड़कर चले आये। चरित्र नामक ग्रन्थ का आरम्भ कन्नौज के राजा वीरराय से होता है, उसने गुजरात पर आक्रमण करके वहाँ के राजा को मार डाला और लौटकर कन्नौज न जाकर वह मलावार के समीप कल्याण चला गया।

यहाँ पर यह प्रश्न पैदा होता है कि यह विजेता वही है, जिसने पहले समुद्री लूट के अपराध के कारण चावड़ो को उनकी पुरानी राजधानी देवपट्टण और सोमनाथ से निकाल दिया था? इसका समय और भाटो के द्वारा बताया गया सातवी शताब्दी का समय एक दूसरे से मेल रखता है। दोनो घटनाओ का समय साफ तौर पर एक ही मालूम होता है। इस अनुमान का समर्थन पट्टण के सस्थापक वंसराज के उस विवरण से भी होता है, जिसमे उसके विषय मे लुटेरो के साथ मिलकर कल्याण को जानेवाली मालगुजारी के खजाने के लूट जाने की वात कही गयी है। मैकेञ्जी सग्रह का एक शिला लेख, जिसका अनुवाद कोलब्रुक ने किया है और जिसका अभी तक कोई उपयोग नही किया गया है, मेरे अनुमानो को समर्थन करने और हाथ के लिखे हुए वर्णन की सच्चाई को सही मानने मे सहायता करता है।

इस शिलालेख के अनुसार इस राजवश की स्थापना एक हजार वर्षों से भी पहले हो चुकी थी। क्योकि यह शिलालेख चौथे राजा सोमादित्य के समय का है। उसमें उसका वश चालुक्य और राजधानी कल्याण लिखी गयी है। वह लेख इस प्रकार है—

"सोमेश्वर...........पर सदा अनुग्रह करे.........इत्यादि-इत्यादि राज-कुल मे विशिष्ट, चालुक्यवश भूपण.........इत्यादि, जो कल्याण नगर मे राज्य करता है, इत्यादि.... ... ।"

यदि और कोई दूसरा प्रमाण न भी मिला होता और यही एक शिलालेख होता तो भी सभी लेखो का समर्थन हो जाता। इसलिए कि उन सव मे यही एक शिला लेख ऐसा है। जो मेरे अनुसधान में पूरे तौर पर सहायक हो रहा है।

प्राचीन काल मे कल्याण एक व्यापारिक और राजनीतिक नगर था। एरि-अन ने पेरीप्लस मे कई वार इसका उल्लेख किया है। उसके द्वारा हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि दूसरी शताब्दी मे यह बल्हरो की अधीनता में रहा था और इसके विस्तार का वर्णन दूसरी पुस्तको मे पढने को मिलता है।

इन घटनाओ की तरफ कुछ मुसलमान लेखको का ध्यान गया था। लेकिन किन्ही भी कारणो से उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह स्पष्ट नही हो सका। कुछ उलझने पैदा हुई और उनके फलस्वरूप सही आँकडे सामने नही आ सके। स्वय अबुल-फजल अन्धकार में बना रहा और उसने कन्नौज के राज्य का विस्तार समुद्र के किनारे तक किया। मसूदी (१) ने इन प्रदेशो का विवरण दसवी शताब्दी मे लिखा है। वह बोरोह नामक राज्य की बात करते हुये उसका उल्लेख कन्नौज के राज्य के नाम से करता है। उसकी इस गलती के कारण यह मालूम होता है कि वह कल्याण के राजा बीर राय के नाम को नही जान सका, क्योकि वह सोरो से कन्नौज के राज्य मे चला गया था। ऐसा जाहिर होता है कि पहला राज्य, दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करता था और वह कदाचित बाद मे राजधानी बन गया था।

यहाँ पर एक बात और मालूम होती है। वह यह कि फारसी अथवा अरबी लिपि मे सोरो के 'शीन के नीचे एक नुकता लगाने से वह 'बोरो' हो जाता है। अरब यात्रियो का कहना है कि जब वे हिन्दुस्तान मे आये थे, उस समय यहाँ पर चार बडे साम्राज्य थे। वे यात्री बल्हरो को चौथी श्रेणी का सम्राट होना स्वीकार करते हैं और उनकी शक्तियो का वर्णन करते हुए उनकी सेना को सख्या पाँच लाख की मानी है।

---

(१) इसका नाम अबुलहमन अली, मसऊदी थी, वह समय ३०३ हिजरी का था और वह प्रसिद्ध इतिहास लेखक, भूगोल-लेखक और एक अच्छे यात्री के रूप मे मशहूर है। वह बगदाद मे पैदा हुआ था। उसकी दो पुस्तके बहुत प्रसिद्ध हैं।

अबुल फजल ने उस समय के कन्नौज की शक्तियो का जो वर्णन किया है, वह भी सच्चाई से बहुत दूर है। इसलिये कि गगा से समुद्र के किनारे तक के वर्णन में अजमेर चित्तौर और धार जैसे शक्तिशाली राज कन्नौज तथा अनहिलवाडा के मध्य में आ जाते हैं। उनके युद्धो और विवाहो के उल्लेख भी दिये गये हैं।

अब हम यहाँ चालुक्यो के नवीन राजवंश का विवरण देते हैं।

मूलराज अनहिलवाडा के सिंहासन पर सम्वत् ९८८, सन् ९३२ ई० में बैठा। (१) चावडा वंश के संस्थापक की तरह उसका शासनकाल भी बहुत लम्बा था। अर्थात् छप्पन वर्ष का था। यदि हम प्रथम वर्णित 'प्रकीर्ण सग्रह' को सही माने तो इसमे दो वर्ष और भी बढ़ जाते हैं। उसने अपनी सेना को तैयार किया और फिर वह पश्चिम की तरफ रवाना हुआ। सिंधु की घाटी मे जाकर वहाँ के एक राजपूत राजा से उसने युद्ध किया। उसने रुद्रमाला नामक मन्दिर के बनवाने का कार्य आरम्भ किया। उसका वर्णन पहले हम कर चुके है।

चाउण्ड अथवा चामुण्ड राय को अबुल फजल ने भूल से जामुन्ड लिखा है। वह सम्वत् १०४४ सन् ९८८ ईसवी के सिंहासन पर बैठा। उसने सिर्फ तेरह वर्ष राज्य किया। उसके शासन का अन्त न केवल उसके लिए बल्कि समूचे हिन्दुस्तान के लिये एक दुखद घटना का कारण बन गया। सम्वत् १०६४ सन् १००८ ईसवी मुसलिम इतिहासकारो के अनुसार ४१६ हिजरी सन् १०२५ ईसवी मे गजनी के बादशाह महमूद ने अनहिलवाड़ा पर आक्रमण किया था। उसने यहाँ की चार दीवारी को विध्वस करके मन्दिरो के पत्थरो से नगर के चारो ओर की खाई को पाट दिया था। छे महीने तक लगातार पाटण मे विश्राम करने के पश्चात् विजेता ने पुराने शासको के एक व शज को सिंहासन पर बिठाया। उसका जङ्गली सा नाम दाबिशलीम था, वह देव और सोमनाथ के राजा का लड़का कहा जाता है। वह असल मे चावड़ा व शी था।

शिलालेखो के अनुसार, जो मुझको मिले हैं, इन लोगो की वशगत सम्पत्ति अनहिलवाडा मे बारहवी और चौदहवी शताब्दी तक मौजूद थी। फरिश्ता के अनुसार इस राजा को मोरताज, मोरधज अथवा मोरध्वज के नाम से पुकारा जाता था। इसका सही नाम, जो इतिहास मे लिख गया है, वल्लिराय अथवा वल्लभसेन हो सकता है, वह चामुन्ड के बाद गद्दी पर बैठा था। इसके आधार पर उसका शासनकाल केवल छे मास का ही बताया गया है। यह अनधिकारी दाबिशलीम के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता।

---

(१) मूलराज सम्वत् ९८८ मे नहीं, बल्कि ९९८ में सिंहासन पर बैठा था। यहाँ पर मूल लेखक ने दस वर्ष की भूल की है। लेखक ने 'कुमारपाल रास' के आधार पर यह समय लिखा है। उसमें भी सम्वत् लिखा हुआ है।

मोरताज की पदवी का अर्थ दोनो भाषाओ मे एक सा है। हिन्दू और फारसी की भाषा मे उसका मतलव प्रधान, मुख्य ताज अथवा मुकुट है। मुझे मालूम होता है कि यह चौरताज का रूपान्तर है। उसका अर्थ होता है, चावडो में प्रमुख फारसी के सम्बन्ध मे पहले ही वताया गया कि सिर्फ एक नुकते के हेर-फेर से शब्द का मतलब कुछ का कुछ हो जाता है।

महमूद के द्वारा अनहिलवाडा पर जो विपदाये आयी, सोमनाथ और दूसरे मन्दिरो पर जो अमानुषिक अत्याचार किये गये, उनके फलस्वरूप, गजनी लौटकर जाते समय महमूद की सेनाओ पर जङ्गल मे किस प्रकार की मुसीवते आयी, उनके सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने के लिये फरिश्ता और अवुल फजल के लेखो को पढना चाहिये।

दुर्लभ अथवा नाहर राव—सम्वत् १०५७ सन् १००१ ईसवी में वह सिंहासन पर वैठा और उसने साढे ग्यारह वर्ष शासन किया। इसके पश्चात् उसका मन शासन की तरफ से हट गया और वह आत्मा के उद्धार के सम्वन्ध मे सोचने लगा। सांसारिक जीवन के प्रति वह लगातार उदासीन होता गया और अन्त मे अपने वेटे को राज्याधिकार देकर वह गया चला गया। राजपूतो मे इस प्रकार की प्रथा पुरानी रही है और आज भी उसका अस्तित्व कायम है।

राजा दुर्लभ, धार के प्रसिद्ध राजा भोज के पिता मुञ्जराज का समकालीन था और भोज चरित्र से भी पता चलता है कि गया जाते हुये राजा दुर्लभ ने मुञ्जर से भेंट की थी और उसने उसको फिर से राज्य का अधिकार अपने हाथ मे लेने का परामर्श दिया, लेकिन उसके वेटे ने इसका विरोध किया।

भीमदेव—जिसका नाम उसके समकालीन राजाओ मे मशहूर है—सम्वत् १०६९ सन् १०१३ ईसवी मे गद्दी पर आसीन हुआ। (१) उसने बयालीस वर्ष शासन किया और गौरव प्राप्त किया। उन दिनो मे मुसलमानो ने कई बार उत्तरी भारत पर आक्रमण किये थे। महमूद की चौथी पीढ़ी मे मौदूद इसी के समय मे हुआ था और उन्ही दिनो मे हिन्दुओ ने उसके विरुद्ध बगावत की थी। इसलिये कि वह हिन्दुओ पर अत्याचार कर रहा था।

अजमेर के मशहूर चौहान राजा बीसलदेव ने हिन्दुओ के इस सङ्गठन का नेतृत्व किया था, यह वात सम्वत् ११०० सन् १०४४ ईसवी की है। धर्म और स्वाधीनता की रक्षा के लिये हिन्दुओ ने सगठित होकर और अपने साथ अन्य राजाओ को लेकर बीसलदेव को अपना नेता चुना था, उसके लिये अनहिलवाडा के राजा को भी आमन्त्रित

(१) रासमाला के अनुसार, भीमदेव सम्वत् १०७९ सन् १०२० ईसवी मे सिंहासन पर बैठा था।

किया गया था। लेकिन अजमेर और अनहिलवाड़ा के राज परिवारो में बहुत दिनो से शत्रुता चली आ रही थी, इसलिये भीमदेव ने इस निमन्त्रण को स्वीकार नही किया था और अस्वीकृति के कारण ही इन राज्यों में युद्ध का श्रीगणेश हुआ था। उसका वर्णन चन्द कवि ने अपनी पुस्तक के पृष्ठों मे किया है और विष भरी उन घटनाओं पर उसने अच्छे विवरण दिये हैं।

वीसलदेव ने अपनी शक्तिशाली सेना के द्वारा लगातार विजय प्राप्त की और सारा पजाब उसने शत्रुओं से खाली करा लिया। इस विजय का ही यह नतीजा था, जो दिल्ली के प्रसिद्ध स्तम्भ पर लिखा गया कि विन्ध्य से हिमाचल तक सम्पूर्ण स्थान म्लेच्छों से खाली करा लिये गये और उनमे अब एक भी मुसलमान नही हैं। ऐसी हालत में यह देश फिर एक वार इन म्लेच्छों से स्वतन्त्र हो गया।

चन्द कवि ने लिखा है—जब गजनी से आने वालो ने कर अदा करने का ही आदेश नही दिया, बल्कि उसके साथ-साथ वफादारी की शपथ लेने का भी आदेश दिया गया तो शाकम्भरी के राजा ने अपने सामन्तो के नाम फरमान जारी किये। ठट्ठ और मुल्तान के सरदारो के साथ मन्डोर और भटनेर की सेनाये भी आयी। अन्तर्वेद की (गगा और जमुना के बीच के प्रदेश) की राजपूत जातियो के सरदार और सामन्त आकर उसके झण्डे के नीचे एकत्रित हुये इस प्रकार सभी राजपूत आये। लेकिन चालुक्य नही आया। उसको अपनी तलवार का गर्व था। किसी के सहयोग की उसको जरूरत नही थी।

मारवाड मे सोजत नामक स्थान पर दोनो ओर की सेनाओ का मुकाविला हुआ। उस युद्ध मे सोलकी की पराजय हुई। वह जालौर चला गया। यह स्थान दोनो तरफ के राज्यो के बीच का सीमा स्थल था। उसको इस स्थान से भी भागना पडा और विजेता ने प्रायद्वीप के मध्यभाग गिरनार तक उसका पीछा किया।

चालुक्य मे फिर से उत्साह पैदा हुआ। उसने अपना राजदूत चौहान के पास भेजा और पूछा कि इस प्रकार आक्रमण का कारण क्या है। उसने अपने राजदूत के द्वारा यह भी कहला भेजा—मैं तुमसे किसी वात मे कम नही हूँ। तुमको कर मे देने के लिये मेरे पास तलवार है। यदि तुम युद्ध में विजयी होना तो कर के स्थान पर हमारी तलवार के टुकडे एकत्रित करके ले जाना।

चौहान वीसलदेव उस समय अपने राज्य में लौट जाने की तैयारी कर रहा था। उसने चालुक्य के सदेश पर उसके सभी कैदियो को छोड दिया और लूट का माल को वापस कर दिया। इसके बाद चौहान ने युद्ध करने के लिये अपनी सेना को चक्रव्यूह में सजाया और आक्रमण करके दो हजार सोलकियो का संहार किया। चालुक्

राय ने स्वयं सेना का नेतृत्व करके उसके व्यूह को तोड़ दिया। दोनो तरफ से काफी रक्तपात हुआ, रात हो जाने पर युद्ध बन्द हो गया। दूसरे दिन सन्धि हो गयी। चालुक्य ने वीसलदेव के साथ अपनी लड़की का व्याह कर दिया और यह निश्चय हो गया कि युद्ध के स्थल पर चौहान के नाम का एक नगर बसाया जाय। यही हुआ और जो नगर बसाया गया, उसका नाम वीपुलपुर रखा गया, जो इतिहास की घटना का प्रमाण देता है।

इस अवसर के वर्णन में भाट ने अनहिलवाड़ा के राजा को बालुक राय के नाम से सम्बोधन किया है, लेकिन हमीर रासो में—जिसमें रणथम्भोर के इसी चौहान वश के राव हमीर के पराक्रम का वर्णन है—भाट ने लिखा है कि बीसलदेव राजा भीम के लडके कर्ण को कैद करके ले गया था। राजा भीम के दो रानियाँ थी, बीकल देवी और उदयामती। पहली रानी के लड़के का नाम क्षेमराज था और दूसरी रानी के लडके का नाम कर्ण था। अपने बड़े भाई के होते हुए भी वह सम्वत् ११११ सन् १०५५ ईसवी मे। पिता के सिंहासन पर बैठा। और अन्य राजपूत राजाओ के मुकाबिले मे अच्छी ख्याति प्राप्त की।

कर्ण ने अनेक कार्य करके अपनी बहादुरी का परिचय दिया। लेकिन कोलो और भीलो का दमन करके उसने अधिक गौरव प्राप्त किया। वहाँ पर आसा भील एक प्रसिद्ध धनुर्धारी था और उसके साथ एक लाख सैनिक बाण चलाने वाले थे। कर्ण ने उसके साथ युद्ध किया और उसको जान से मार डाला।

कर्ण ने पुराने नगर के स्थान पर नया नगर बसाया और अपने नाम पर कर्णवती नगरी उसका नाम रखा। यह सब कहाँ तक सही है, उसके लिये हम कुछ नही कह सकते। 'चरित्र' मे लिखा हूआ है, उसने सात डड्डो (डकारो) को अर्थात् जिनके नाम का पहला अक्षर ड होता है, उनको निकालकर बाहर किया था। वे इस प्रकार हैं—डन्ड, डांड, डोम, (डूम-गाने-वजाने वाले) डाकण, डर, डम्म (ठग) और डूम (निराशा), इन सातो को उसने निकाल दिया था।

रेवताचल पर बावन विहारो का एक मन्दिर था, उसने उसके करीब नेमिनाथ का एक मन्दिर बनवाया। उसकी बडी ख्याति हुई। वह मन्दिर उसी के नाम पर कर्ण विहार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कर्नाटक के राजा अरिकेसर की लड़की मीनल देवी के साथ उसने विवाह किया। उसके सिद्धराज नामक लडका पैदा हुआ। कहा जाता है कि कर्नाटक की राजकुमारी मीनल देवी जब अनहिलवाडा पहुँची तो कर्ण किसी कारण उससे बहुत अप्रसन्न हो गया (१) और उसने उसके साथ विवाह करने से ही इन्कार कर दिया। लेकिन कर्ण की माता ने उसके विरोध को अच्छा नही समझा

(१) कहा जाता है कि कर्नाटक के राजा की पुत्री मीनलदेवी बहुत कुरूप थी, इसलिये कर्ण ने उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया था।

और अपने बेटे को उसने बहुत समझाया तो माता का आग्रह मानने और बधू को आत्महत्या से बचाने के लिये अन्त में उसने विवाह कर लिया। लेकिन अनेक वर्षों तक उसके दाम्पत्य जीवन का व्यवहार नही किया। लेकिन अन्त में नवविवाहिता पत्नी की विजय हुई और उसने अपने पति को प्रेम के बन्धन में बांध लिया।

कर्ण ने उन्तीस वर्ष तक राज्य किया। उसके पश्चात् उसका लड़का—सिद्धराज जयसिंह—सम्वत् ११४० सन् १०८४ ईसवी (१) में सिंहासन पर बैठा। अठारह राज्यो पर उसका शासन था। इनके अधिकार उत्तराधिकार में और कुछ विजय के द्वारा मिले थे। 'चरित्र' में उसके बल-पौरुष की प्रशंसा की गयी है, वह सही है। इन सभी राज्यो और समकालीन राजाओ का वर्णन अन्यत्र किया गया है। यहाँ पर हम जो सामग्री पा रहे हैं, उसी को लेकर आगे चलते हैं।

अब हमको कुमारपाल के राज्य का वर्णन करना है। उसके सम्बन्ध में कुछ विवरण ऊपर लिखे गये हैं। उसके आगे का वर्णन नीचे की पंक्तियो में किया जाता है।

अठारह राज्यों के स्वामी सिद्धराज के कोई संतान नही थी। इस दशा में उसके राज्यो का सारा वैभव उसके लिये बेकार हो गया था। अपनी इस परिस्थिति के कारण वह बहुत चिन्तित रहा करता था। बहुत सोच-विचार कर उसने प्रसिद्ध ब्राह्मणो, ज्योषियों और भविष्य वक्ताओ को बुलाकर एकत्रित किया। उन लोगो के आने पर उसने बड़ी नम्रता के साथ कहा कि अगर मुझे संतान की प्राप्ति हो सके तो मैं उसके बदले मे बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति देने के लिये तैयार हूँ।

उसकी इस बात को सुनकर एक साधु ने कहा—देवस्थली (२) के सरदार का लडका तुम्हारा उत्तराधिकारी होगा, यही ईश्वर का विधान है। इसके विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता।

उसकी बात को सुनकर राजा को बहुत क्रोध आया और उसने अपनी एक सेना भेजकर दैथली अथवा देवस्थली पर आक्रमण कर दिया। वहाँ का चौहान सरकार मारा गया और उसका बेटा कुमारपाल किसी प्रकार उस नर संहार से बच कर निकल गया।

---

(१) सिद्धराज का शासनकाल १०९४ ई० से ११४३ ई० तक रहा।...... रासमल।

(२) राजा कर्ण के सौतेले भाई क्षेमराज के पौत्र और देव प्रसाद के लड़के त्रिभुवनपाल के तीन लड़के और दो लड़कियाँ थी। पौत्रो के नाम महीपाल, कीर्तिपाल और कुमारपाल थे। प्रेमलदेवी और देवलदेवी लडकियो के नाम थे। प्रेमलदेवी का विवाह सिद्धराज के प्रधान सेनापति कानदेव के साथ हुआ था।

कुमारपाल अपने बहनोई (१) कृष्णदेव के यहाँ चला गया और वहाँ छिपकर उसने अपने प्राणो की रक्षा की। कृष्णदेव पाटण का निवासी था। वह जयसिंह का मंत्री था। इसलिये अधिक समय तक वहाँ पर छिपकर रहने की आशा न थी। अतएव वह एक कुम्हार के यहाँ चला गया। और कुछ समय के पश्चात् वह उस स्थान से भी निकलकर पाटण के साधुओ और भिखारियो के साथ घूमता रहा और अन्त मे वह अपने जन्म स्थान देथली में पहुँच गया। वही पर वह रहने लगा।

कहा जाता है कि कुमारपाल एक बार पकडे जाने से बाल-बाल बच गया। इसलिये कि उसको एक कुम्हार ने अपनी ईटों में छिपा लिया था। अब उसने उज्जैन मे जाकर अपने भाग्य की परीक्षा लेने का विचार किया और रवाना होकर वह खम्भात बन्दर पर पहुँच गया। वह बहुत थका था और भूख के कारण व्याकुल हो रहा था। थकान के कारण वह एक पेड़ के नीचे सो गया। उसी मौके पर प्रसिद्ध हेमाचार्य अपने शिष्यो के साथ जङ्गल को पार करते हुये वहाँ से निकले। उन्होंने कुमारपाल को सोता देखकर जगाया और यह देखकर कि वह कोई साधारण पुरुष नही है, उसको अपनी जैनियो की शिष्य-मण्डली मे शामिल कर लिया। इसके बाद आचार्य ने उसकी जन्म कुन्डली तैयार की। उससे उसके भविष्य के गौरव का पता चला।

सिद्धराज के गुप्तचर अभी तक उसका पता लगा रहे थे। उन गुप्तचरो को कुमारपाल का पता मिल गया। उस दशा मे कुमारपाल एक योगी के वेश मे भडोच चला गया। खम्भात के एक व्यापारी ने—जो पक्षियो की बोली जानता था—इस समय उसका साथ दिया।

कुमारपाल उस व्यापारी के साथ नगर मे पहुँचा। वहाँ पर एक मन्दिर था। उसके एक कलश पर बैठे हुए शकुन पक्षी ने अपनी वाणी मे दो बाते कही। व्यापारी ने उन दोनो बातो को सुना। उसने उन दोनो का अर्थ समझा कि हिन्दू और तुर्क—दोनो के राज्यो पर कुमारपाल का अधिकार होगा।

एक बार फिर कुमारपाल का पता लोगो को मिल गया इसलिए वह छिपकर कुलू नगर चला गया। वहाँ पर एक योगी से उसकी मुलाकात हुई। उस योगी ने उसको दीक्षा दी, जिससे उसके भाग्य का उदय हो। लेकिन उस योगी के दीक्षा-मन्त्र की सिद्धि उसी दशा मे हो सकती थी, जब किसी शव पर बैठकर उस मन्त्र का जाप किया जाय।

कुमारपाल ने योगी के आदेश का पालन किया और जप करने के बाद उस

---

(१) यह स्थान कर्ण ने अपने काका के लडके देवप्रसाद को जागीर में दिया था।

मंत्र का ऐसा प्रभाव हुआ कि मृतक जीवित होकर बोल उठा और उसने यह भविष्य-वाणी की कि पाँच वर्षों में कुमारपाल गुजरात का राजा हो जायगा।

यहाँ से फिर वह योगी के वेश में ही कान्तिपुर गया और वहाँ से उज्जैन जाकर कालिका देवी के मंदिर में उसने शरण ली। वहाँ पर एक साँप ने उसको गुजरात का राजा कहकर सम्बोधन किया। इसके बाद कुमारपाल ने चित्तौर की यात्रा की और वहाँ से वह कन्नौज, बनारस अथवा काशी, राजगढ़ और सम्पू इत्यादि स्थानो मे घूमता-फिरता रहा। ये सभी स्थान बोद्ध-धर्म मे प्रसिद्ध माने जाते हैं। इनमें अन्तिम नगर चीन के राज्य मे है। उसने जगड नाम के एक सम्पत्तिशाली सेठ का वर्णन किया है। उसने सम्वत् ११७२ के अकाल मे उस देश के राजा की सहायता कई करोड़ रुपये देकर की थी। जिन लोगो ने इस सेठ का फायदा उठाया, उनमे सिन्ध का हमीर भी था।

कुमारपाल इस प्रकार घूमता-फिरता रहा। लेकिन सम्वत् ११८९ सन् ११३३ ईसवी (१) में सिद्धराज के अन्तिम समय तक किसी बड़ी घटना का वर्णन नही मिलता। कहा जाता है कि सिद्धराज ने कृष्णदेव और कामदेव (२) नामक मंत्रियो को बुलाकर और अपनी गर्दन में हाथ लगाकर यह शपथ दिलाने की कोशिश की कि वे कुमारपाल को इस राज्य का कभी राजा न होने देंगे।

इसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। स्वर्गीय राजा का एक सम्बन्धी—जो कि सोलंकी राजपूत था—सिंहासन पर बिठाया गया। परन्तु बहुत थोडे समय मे वह अत्यन्त मूर्ख साबित हुआ। इसलिए उसको सिंहासन के उतार दिया गया।

कुमारपाल उन दिनो में तिब्बत के पहाड़ो पर था। समाचार पाकर वह पाटण चला आया। वहाँ पर उसने सभी वर्ग के लोगों को स्वर्गीय राजा की खडाऊँओं को पूजते देखा। उसके प्रति लोगों के सम्मान को भी उसने समझा। बडे दरबार के मंत्री जब राज्य के उत्तराधिकारी का निर्णय करने में सफलता प्राप्त न कर सके तो उन लोगो ने वही उपाय किये जिनके द्वारा डेरियस को फारस का राज्य प्राप्त हुआ था। लेकिन राजपूत सरदारो ने उत्तराधिकारी को खोजने में एक हाथी (३) का

(१) यहाँ पर सम्वत ११९९ सन् ११४३ ईसवी होना चाहिए।

(२) इसका शुद्ध नाम कन्हड़देव है।

(३) हाथी द्वारा इस प्रकार के निर्णय का आधार क्या था, इस पर कुछ नही कहा जा सकता। सम्भव है, इस योजना में कुमारपाल के बहनोई का हाथ रहा हो। हाथी बुद्धिमान तो होता ही है, उसको गन्नो के लोभ से गलियो मे घुमाकर उसके द्वारा इस प्रकार का कोई निर्णय करा लेना उस युग के वातावरण की देन हो सकती है। कुमारपाल रास में हथिनी के द्वारा अभिषेक कराने की बात लिखी है। डेरियस को

प्रयोग किया। उसकी सूंड मे एक पानी का घड़ा पकड़ा दिया गया और यह स्वीकार कर लिया गया कि हाथी गणेश का प्रतीक है। इसलिये वह उस पानी को जिस पर उँडेल देगा, उसी को उत्तराधिकारी मान लिया जायगा।

जब उस हाथी ने घूमते हुए उस घडे को एक योगी पर उँडेल दिया तो सभी लोगो को बडा विस्मय हुआ। लेकिन वही योगी उसके बाद मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष ४ सम्वत् ११८६ को सिंहासन पर बिठाया गया। (१)

यह योगी कोई दूसरा नहीं, बल्कि कुमारपाल था। जब सिद्धराज का सम्बन्धी सिंहासन पर बिठाया गया था, उस समय एकत्रित सरदारो ने प्रश्न करके उससे पूछा था—जयसिंह के अठारह राज्यो पर किस प्रकार आप शासन करेंगे ?

इसका उत्तर देते हुए उसने कहा था—आप लोगो के परामर्श और सहयोग के अनुसार।

जब कुमारपाल सिंहासन पर बैठा तो उससे भी प्रश्न करके पूछा गया—आप इन अठारह राज्यो पर कैसे शासन करेंगे ? और किस प्रकार उनकी स्वाधीनता की रक्षा करेंगे ?

इस प्रश्न को सुनते ही कुमारपाल सिंहासन पर उठकर खड़ा हो गया और उसने म्यान से तलवार निकालकर अपने दाहिने हाथ में ले ली। सरदारो के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने अपने दाहिने हाथ को ऊँचा करके कहा—स्वाधीनता की रक्षा और राज्य की हिफाजत तलवार के बल पर की जाती है। जिसको तलवार का बल नही होता, वह न तो स्वाधीनता की रक्षा कर सकता है और न राज्य की हिफाजत कर सकता है।

कुमारपाल के इन जोरदार शब्दो को सुनते ही सभा-भवन जय-जयकार से गूंज उठा और सैकड़ो-सहस्रो मुखो से निकल पड़ा यही हमारा सच्चा राजा है।

राज्य के मन्त्रियो और सरदारो ने सिंहासन पर कुमारपाल को बिठाकर अत्यन्त सतोष प्राप्त किया और सभी लोगो ने हृदय से खुशियां मनायी।

इसके बाद राज्याभिषेक का वर्णन किया गया है। उसको यहाँ पर लिखने की आवश्यकता नही है। चरित्र मे सारे श्लोक कुमारपाल के भ्रमण और राज्याभिषेक का वर्णन करते हैं।

फारस का राजा बनाने मे भी इसी प्रकार की योजना का प्रयोग किया गया था। कहा जाता है कि घोडी उसके डेरे के पास बांध दी गयी थी और वह घोडी उसके पास तक गयी थी।

(१) राज्य वशावली में लिखा है कि कुमारपाल मार्ग शीर्ष शुक्लपक्ष ११ सम्वत् ११९९ विक्रमी को सिंहासन पर बैठा।..........................रासमाला

इस राजा के सम्बन्ध मे अधिक विवरण लिखने के पहले उसके पूर्ववर्ती राजा सिद्धराज जयसिंह के सम्बन्ध मे कुछ आवश्यक प्रकाश डालना है, उसके द्वारा यह जाहिर हो सकेगा कि उसको इतना अधिक गौरव मिलने का कारण क्या था और कवियों के द्वारा उसके यश का गान क्यो गाया गया।

चन्दबरदाई ने कन्नौज के राजा के खिलाफ उसकी उन लड़ाइयो का वर्णन किया है, जब उसने अपनी तलवार को गङ्गा मे फेंक दिया था। उसने उसकी विश्व-विजय को रोकने के लिए मेवाड़ और अजमेर के राजाओं में होने वाली सन्धि का भी उल्लेख किया है। इन घटनाओं के सम्बन्ध में शिला लेखो के द्वारा सच्ची और सही बाते मालूम होती हैं, जो अब उन नगरों के खण्डहरो मे पाये जाते हैं, जिनके नाम भी अब गायब हो चुके हैं। उसने अर्णोराज की लड़की से विवाह किया। वह चित्तौर के राजा के अधीन सात सौ ग्रामों का शासक था। यह सामन्त मेवाड़ की पूर्वी सीमा के पठार पर था और उसकी राजधानी मीनल अथवा मेनाल थी। उसके खण्डहरो में मुझे महत्वपूर्ण शिला लेख मिला है।

चन्द्रावती के परमारो से सम्बन्ध रखने वाला एक दूसरा शिलालेख भी प्राप्त हुआ है, उससे प्रकट होता है कि अर्णोराज कुमारपाल का समकालीन था। उसमें यह भी लिखा है कि कि कुमारपाल और अर्णोदेव में युद्ध हुआ। उसमें लक्षणपाल ने युद्धक्षेत्र मे अमर पद प्राप्त किया।

'चरित्र' के संस्कृत-सस्करण में लिखा है कि सिद्धराज और धार के परमार राजाओं में युद्ध हुआ। यह युद्ध कई वर्ष तक चलता रहा। लेकिन अन्त में उसने धार पर अधिकार कर लिया और वहाँ के राजा नीरवर्मा अथवा नरवर्मा को कैद कर लिया। उदयदित्य के लड़के के समय का निर्णय मैं उस समय के शिला लेखों और हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर कर चुका हूँ। फिर भी उन पाठकों के लिए, जो कुछ और जानना चाहते हैं, मैं इतना ही कहूँगा कि 'चरित्र' के इस उल्लेख से हमारी लिखी हुई कई बातो के प्रमाण मिलते हैं।

प्रसिद्ध जगदेव परमार—जिसका जीवन चरित्र एक छोटी-सी पुस्तक में वर्णन किया गया है—बारह वर्ष तक सिद्धराज की नौकरी मे पाटण मे रहा था। उदयदित्य के लड़के यशोवर्मा के दो बेटे थे, बाघेलीरानी से रणधवल और पाटण की सोलंकी से जगदेव था। बडा लड़का धार का राजा हुआ और उसकी मृत्यु के पश्चात् सिद्धराज की सहायता से जगदेव उसका उत्तराधिकारी बनाया गया।

जगदेव के निर्णय के साथ-साथ यह भी लिखा है कि सिद्धराज ने कच्छ के

फूलजी जाडेचा की लडकी से विवाह किया था। वह लाखा फूलाणी के नाम से प्रसिद्ध है। (१)

विक्रम की बारवी शताब्दी के आखीर मे वह जङ्गल का राजा बना हुआ था और उसके बहादुर घाडो के कारण उसका नाम राज्यो के इतिहासो में भी प्रसिद्ध हुआ है।

जैसलमेर के इतिहास में लिखा हुआ है कि वहाँ के राजा लांजा विजयराय के साथ सिद्धराज की लडकी का ब्याह हुआ था। लेकिन इस विवाह के सम्बन्ध में कही पर सन् और सम्वत् का उल्लेख नही है। फिर भी उसका अनुमान लगाया जा सकता है। राजा लांजा का पितामह दुसाज अथवा दूसाजी सम्वत् ११०० मे लोद्रवा (२) के सिहासन पर बैठा था और विजयराय के पौत्र जेसल ने सम्वत् १२१२ में जैसलमेर बसाया था। इस प्रकार विजयराय के शासन काल का अनुमान होता है। साथ ही इसके द्वारा उस समय को निर्धारित करने के लिए एक ठोस आधार हमको मिल जाता है।

भाटी राजपूतो के इतिहास में लिखा गया है कि इस राजकुमार की माँ ने सिद्धराज की पुत्री से उसका विवाह होने के सबब से उत्तर के मुसलमानो के विरुद्ध पाटण की रक्षा करने के लिए अपने बेटे को आदेश दिया था। (३) इस प्रकार उस समय की और भी कितनी ही घटनाओं की खोज की जा सकती है। लेकिन 'चरित्र' के आधार पर ऊपर जो वर्णन किया है, वह इन वशावलियो को प्रमाणित करने के लिए काफी है।

कुमारपाल ने जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सम्वत् ११८६ सन् ११३३ ईसवी मे शासन का कार्य आरम्भ किया। उसका सबसे पहला कार्य यह हुआ कि जिन्होने विपत्ति के दिनों मे उसकी सहायता की थी, उन सबको उसने एकत्रित किया। हेमाचार्य भडौच मे एकान्तवास करता था, उसको वहाँ से बुलाया गया और उसको गुरू का पद देकर सम्मानित किया गया। जैन युवक को जो बौद्धदर्शन और उसकी भाषा का अध्ययन कर रहा था—प्रमुख मन्त्री का पद दिया गया कृष्णदेव को—जिसने

---

(१) लाखा फूलाणी मूलराज का समकालीन था। उसका समय ८८० ईसवी से ९७९ ईसवी तक माना गया है।

(२) यह नगर अब बिल्कुल उजड गया है। पहले यह जैसलमेर के आरण्य राजाओ की राजधानी था। इसके सम्बन्ध मे अनुसन्धान करना मेरे लिये आवश्यक है।

(३) सही बात यह हैं कि सिद्धराज की स्त्री ने अपने जामाता को यह आदेश दिया था। इसीलिए विवाह में आये हुए राजाओ ने विजयराय को 'उत्तर भड किवाड़ भाटी' का पद दिया गया था।..... जैसलमेर का इतिहास पृ० ४०।

उसके इधर-उधर भागने के दिनों मे, उसको सबसे पहले शरण दी थी—मन्त्री बनाया । और सैनिक विभाग के बहत्तर सामन्तो का अधिकारी भी उसको बना दिया । उनके अतिरिक्त शेष सामन्त भी उसके नियन्त्रण मे दे दिये गये ।

इसके बाद 'चरित्र' मे अन्य राजाओ के साथ, कुमारपाल की वशावली और अनहिलवाडा के अधीन अठारह राज्यो का वर्णन भी भली प्रकार किया गया है । कुमारपाल सिद्धराज के वश का नही था । बल्कि अजमेर के चौहान राजाओ से उसकी उत्पत्ति थी ।

गुजरात मे देथली नामक ग्राम मे त्रिभुवनपाल रहता था । वह बारह ग्रामो का मालिक था । उसका विवाह काश्मीर की एक लड़की के साथ हुआ था । उससे तीन लड़के और दो लड़कियाँ हुईं । लडको के नाम कुमारपाल, महीपाल और कीर्तिपाल तथा लड़कियो के नाम पेमलदेवी और देवलदेवी थे । उसका वंश छत्तीस राजपूत वंशो में सबसे श्रेष्ठ माना जाता था । उन सभी जातियो की एक तालिका भी दी हुई है ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि चालुक्य वंशी राजा के सिहासन पर चौहान वंशी राजपूत सिहासन पर बैठा । हम यहाँ पर उसके सम्बन्ध मे कुछ विचार करना चाहते हैं । राजपूत राजाओं के सम्बन्ध में छानबीन करने के बाद दो बातों का पता चलता है—एक चुनाव के संबन्ध में और दूसरा दत्तक प्रथा के सम्बन्ध मे । चुनाव की प्रथा का प्रयोग हमेशा नही होता । हमेशा उसकी जरूरत भी नही पड़ती । इन राज्यो के प्रमुख आधार उनके सामत होते हैं । हमें न जाने कितने उदाहरण ऐसे मिले हैं कि राज्य के उत्तराधिकारी में व्यक्तिगत दोष होने के कारण उस वंश की अन्य शाखाओं मे से किसी का चुनाव कर लिया जाता है और सामंतो की इच्छानुसार, राजा उसी को गोद मे लेकर उत्तराधिकारी बना लेता है ।

इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर मुझे कोई ऐसा उदाहरण याद नही आता, जिसमें किसी अन्य वंश का राजा सिंहासन पर बिठाया गया हो और उसके वंशगत गौरव को किसी प्रकार का आघात न पहुँचा हो । यद्यपि कुमारपाल ने सिद्ध-राज्य की पगडी नही बाँधी थी, जो कि गोद लिये जाने का प्रमाण है, फिर भी चालुक्य हो जाने के कारण उसका यह कर्त्तव्य हो गया था कि वह इसे बिल्कुल भूल जावे कि राजा सिद्धराज के सिवा उसका पिता और कोई था । यही कारण है कि सोलकियों के भाट ने वंशावली में चालुक्य के सिवा उसको और कुछ नही बताया ।

इन सभी वंशो मे चालुक्य वंश प्रधान माना गया है । कुमारपाल, जिसके गुरु हेमाचार्य हैं, इस वंश के गौरव कहे गये हैं । यह भी लिखा गया है कि ये दोनों मानव जाति के सूर्य और चन्द्रमा हैं ।

यहाँ पर नीचे उन अठारह प्रदेशो के राज्यो के नामों का उल्लेख किया गया है, जो उस समय बल्हरा साम्राज्य की अधीनता मे थे। इन सब राज्यों के मिल जाने से इतना विस्तृत क्षेत्र हो जाता है कि यदि उनके सम्बन्ध मे शिलालेखो के द्वारा पुष्टि न होती तो हम 'चरित्र' के लेखक पर विश्वास न करते और उसके उल्लेखो को अतिशयोक्ति में समझकर टाल देते। एक बडे विस्मय की बात तो यह है कि बारहवी शताब्दी मे लिखे गये इस प्रकार के बयानो का, आठवीं शताब्दी के अरब-यात्रियों के द्वारा किये गये उस वर्णन के साथ पूर्ण सामञ्जस्य है जिसमे लिखा है कि यह साम्राज्य भारत के प्रायद्वीप से लेकर हिमालय पहाड़ के नीचे तक फैला हुआ था। उसके राज्यो के नाम इस प्रकार थे—

१—गुजरात २—कर्नाटक ३—मालवा ४—मरुदेश ५—सूरत अथवा सौराष्ट्र ६—सिन्धु ७—कोकण ८—सेवलक अथवा शैवलक ९—राष्ट्र देश १०—मसबर ११—लारदेश १२—सकुलदेश १३—कच्छ देश १४—जालधर १५—मेवाड़ १६—दीपक देश १७—ऊँच १८—बम्बेर १९—कैर देश २०—भीराक।

इनके सिवा चौदह और राज्य थे, जिनकी सीमा मे कभी कोई जीव मारा नही जाता था।

इसके बाद उसकी राज्य-व्यवस्था का वर्णन किया गया है। ऊपर जितने सबो के नाम लिखे गये हैं, यदि उनको सही मान लिया जाय कि उन सभी राज्यों में उसकी सत्ता थी तो भी उसकी जो सेना लिखी गयी है, उस पर विश्वास नही होता। उसकी सैनिक शक्ति का वर्णन करते हुये लिखा गया है कि ग्यारह सौ हाथी, पचास हजार युद्ध-सम्बन्धी रथ, आठ लाख पैदल सैनिक और ग्यारह लाख घोडे थे। यह सख्या क्षरक्षेस (१) की उस सेना से भी अधिक हो जाती है, जिसको उसने ग्रीस पर आक्रमण किया था।

कुमारपाल के सोलह रानियाँ, बहत्तर सामन्त और अन्य सेनाधिकारी थे। उसने अनहिलवाडा को बारह विभागो में बाँट दिया था, प्रत्येक विभाग का एक न्यायाधीश था। लार जाति के लोगो को उसने अपने राज्य से निकाल दिया था। उसने अपने बहनोई शाकम्भरी के राजा पूर्णपाल के साथ युद्ध किया था और उसको कैद करवा लिया था। इसके साथ-साथ उसने उसके राज्य को बहुत बड़ी क्षति पहुँचायी थी।

सूरत के राजा समरेश के विरुद्ध भी उसने आक्रमण किया था, उसके फल-

(१) क्षरक्षेस फारस के बादशाह डेरियस प्रथम का लड़का था। उसे एक सेना लेकर ४८० वर्ष ईसा से पूर्व ग्रीस पर आक्रमण किया था।

स्वरूप समरेश ने कुमारपाल की अधीनता स्वीकार कर ली थी। (१) सम्वत् १२११ सन् ११५५ ईसवी में कुमारपाल ने मन्दिर पर (२) सोने का कलश चढ़ाया और विदेशी लोगों से कर वसूल करके पवित्र पर्वत गिरनार के ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनवाने का खर्च पूरा किया।

कहा जाता है कि सिन्ध के रास्ते से होने वाले मुसलमानो के हमलों का मुकाबिला किया। 'चरित्र' में कुमारपाल को जैनधर्म का स्तम्भ लिखा गया है। इस धर्म में जीव की हिंसा का कठोरता के साथ विरोध किया गया है और अहिंसा को प्रधानता दी गयी है। इसलिए वह धर्म नही माना गया। ऐसी अवस्था में जैन-धर्म के अनुयायी और समर्थन को राज्य का प्रधान अधिकारी बनाना तो और भी अनुचित तथा असगत है।

बरसात के दिनो मे जब कुमारपाल शाकम्भरी के युद्ध से लौटा तो उसके दिल मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस युद्ध मे अगणित लोगों का (३) बध किया गया है। इसलिए उसने इसको अपना एक अपराध समझा और उसके सम्बन्ध में उसने हेमाचार्य के साथ परामर्श किया उनके निर्णय के अनुसार कुमारपाल ने युद्ध के लिए स्वयं आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा की। लोगो की धारणा है कि इस सिद्धान्त अर्थात् अहिंसा धर्म की रक्षा के लिए उसने कन्नौज के राजा जयसिंह के पास एक पत्र भेजा था, उसमे अनुरोध करते हुए कुमारपाल का चित्र भी अङ्कित किया गया था। उस पत्र के द्वारा कन्नौज के राज्य में पशु-बध बन्द करने के लिए माँग की गयी थी, इस पत्र के साथ दग लाख सोने के सिक्के और दो हजार अच्छे घोड़ भेजे गये थे। इसलिए वहाँ के राठौर राजा ने कुमारपाल की प्रार्थना को स्वीकार कर

---

(१) यह कदाचित सरम था, उसका उपनाम पेरूमल था और वह प्रमार वंशी था। रेनाडाट के अनुसार वह मुसलमान होकर अन्तिम दिनों में मक्का में रहा था।

(२) इसको केवल मन्दिर लिखा गया है, कौन-सा मन्दिर, इसका विवेचन उसमें कुछ भी नही है। हमारे अनुमान से यह मन्दिर सोमनाथ पत्तन का अथवा सूर्य नारायण का मन्दिर होगा। सम्वत् १२११ मे कुमारपाल ने वाहडपुर में त्रिभुवन टाल-बिहार पर कुमारपाल प्रबन्ध के अनुसार सोने का कलश चढाया था।

(३) सन् १८२० ईसवी मे जब मैं मारवाड़ मे था तो वहाँ के विपद् गुप्त और असतुष्ट सैनिको ने शिकायत की कि हम लोग भूखों मर रहे हैं और वहाँ के जैन-मन्त्री अपने कुत्तो को कीमती खाना खिलाते हैं। यह दुरवस्था सेना की ही नहीं थी, बल्कि साधारण जनता और भी अधिक कष्टो का सामना कर रही थी। इसी प्रकार की अवस्था के कारण इन राज्यो का पतन हुआ था। आश्चर्य की बात तो यह है कि राज्यों के ऊंचे पदाधिकारी लगभग सर्वत्र जैन-धर्म के लोग थे।

लिया। यद्यपि उसका पालन करना एक राजा के लिए अधिक समय तक सम्भव नही था।

जीवो का वध रोकने और अहिंसा धर्म का पालन करने के सम्बन्ध में जैन धर्म का पूरा प्रभाव न केवल राजा कुमारपाल पर पडा, बल्कि उनके अधीनस्थ सभी राजा इस सिद्धान्त को मानने के लिए विवश किये गये। इसका परिणाम अच्छा नही निकला। कुमारपाल की बढ़ती हुई शक्तियाँ निर्बल पड़ने लगी और उसके शत्रुओं ने उसकी इस सनक का लाभ उठाया।

सोलंकियो की वंशावली में साफ-साफ लिखा है कि रक्तपात को रोकने और जैन मत के अहिंसा धर्म का पालन करने के कारण ही पाटण राज्य का गौरवशाली सिंहासन उलट गया। 'चरित्र' में लिखा है कि गजनी के खान ने कुमारपाल पर आक्रमण किया। उस समय कुमारपाल के गुरू हेमाचार्य ने उसको युद्ध करने से रोक दिया। उस हेमाचार्य ने कुमारपाल को विश्वास दिलाया कि मैं अपने मन्त्र के बल से सोते हुए आक्रमणकारी खान को जहाँ चाहूँ, वहाँ बुलवा सकता हूँ।

हेमाचार्य की इन बातो का कुमारपाल पर बहुत प्रभाव पड़ा। जैन गुरू हेमाचार्य ने अपने मन्त्रो का प्रयोग किया। यह तो नही कहा जा सकता कि उसके मन्त्रों के बल से आक्रमणकारी खान खिचता हुआ चला आया, लेकिन 'चरित्र' के लेखो के अनुसार हमे यह मान लेना पडता है कि वह आक्रमणकारी खान चालुक्य राजा कुमारपाल के महल में आया, वह जैसे भी आया हो, वह आया और उसका परिणाम यह हुआ कि खान के साथ कुमारपाल की गाढ़ी मैत्री हो गयी। (१)

---

(१) कुमारपाल रास में इस आक्रमण का वर्णन भारत की पुरानी कविताओ मे किया गया है। उसका साराश इस प्रकार है। गजनी के मुगल बादशाह ने अपनी विशाल और शक्तिशाली सेना लेकर आक्रमण किया। उससे इस राज्य के समस्त स्त्री और पुरष चिन्ताकुल हो उठे। बहुत-से लोग वहाँ से भाग जाने की बात सोचने लगे और बहुतेरे घबराहट में कोई निर्णय न कर सके। राज्य के लोग मुस्लिम सेना से डरकर उदयन मन्त्री के पास गये। उसने सबको धीरज दिया और वह स्वयं हेमाचार्य के पास पहुँचा। तब आचार्य ने चक्रेश्वरी देवी का आह्वान किया। तब गुरू के वचन के अनुसार देवी तैयार होकर मुगल के दल मे गयी। वह सो रहा था। देवी उसको पकड़कर कुमारपाल के महल में ले आयी। आक्रमणकारी खान उस समय बडी घबराहट में था। उसको देखकर कुमारपाल ने कहा—मैं कुमार वंशी राजा हूँ। शरण में आये हुए पर मैं हमला नही करता। यह कहकर राजा ने उसका आदर किया। दोनों में मित्रता हो गयी। खान फौज के साथ वापस चला गया।

यहाँ पर हम 'चरित्र' के उल्लेखों के विरुद्ध कोई भी आलोचना नही करना चाहते। लेकिन प्रश्न यह है कि जो अत्याचारी हमारे राज्य को विध्वंस करने के लिए अपनी सेना के साथ आया, उसके साथ हमारी मित्रता का क्या मूल्य है। कुमारपाल ने इस मौके पर खान के साथ जो व्यवहार किया और उससे मित्रता जोड़ी, इसके द्वारा कुमारपाल और उसके राज्य का गौरव कितना बढा अथवा घटा, इसका निर्णय पाठक स्वयं करेगे। हिन्दुओ के इतिहासो मे प्रायः हमको एक बड़ा दोष यह मिलता है कि उनके लिखनेवाले, व्यक्तियों के नामो का उल्लेख न करके केवल उनके पदो और उपनामों का प्रयोग करते है। हिन्दुओ के पुराने इतिहासो मे हमे लगातार यह त्रुटि मिलती है। मुसलमानों के इतिहासो में कुमारपाल के शासन काल में गजनी से आये हुए लोगो के किसी आक्रमण का कोई विवरण नही मिलता। ऐसी दशा में इस आक्रमणकारी के सम्बन्ध मे इतना ही कहा जा सकता है कि वह निर्वासित शाहजादा जलालुद्दीन के सिवा और कोई नही था। उसके सिन्ध पर और उमर कोट के राजा पर होने वाले हमलों के उल्लेख हिन्दू और मुसलमान—दोनों इतिहासकारों ने किये हैं।

इस स्थल के उल्लेख भिन्न-भिन्न रूप मे मिलते हैं। किसी भी लेख को सही और गलत कह देना आसान नही होता। ऐसी परिस्थिति मे अनुमान और समझ से ही काम लेना पडता है और जो समझ मे आता है, उसी को सही मान लेना पडता है।

जो भी हो, आक्रमणकारी खान को मन्त्र के बल से पकड़वा कर बुला लेने वाली बात समझ मे नही आती। इस प्रकार की लिखी हुई बाते कुछ कल्पनाओ के रूप मे हैं। मालूम यह होता है कि गजनी से आये हुए खान ने पट्टण राज्य पर अधिकार कर लिया था। लेकिन यदि हमारा यह अनुमान भी सही न हो और हम हिन्दू इतिहास को ही सही मान ले तो भी हम यह कहने के अधिकारी हैं कि उस आक्रमणकारी खान के साथ मित्रता करने का परिणाम अधिक दूषित साबित हुआ।

हिन्दू इतिहास के अनुसार ही क्या यह बात साबित नही होती कि उस मित्रता के पश्चात् कुमारपाल इस्लाम धर्म के सिद्धन्तो पर विश्वास करने लगा और उसका गुरू हेमाचार्य भी इस्लाम से प्रभावित हुआ। कहा जाता है कि वह आचार्य भी इस्लाम की दीक्षा लेकर और मुसलमान होकर ही मरता, यदि उसके शासन काल के तैंतीसवें वर्ष मे विष दिये जाने के कारण उसकी मृत्यु न हो गयी होती।

आचार्य की इस मृत्यु के सम्बन्ध मे जो उल्लेख मिलता है, वह स्वयं आश्चर्यजनक है। इसका अपराध राज्य के उत्तराधिकारी अजयपाल को लगाया जाता है। इसके समर्थको का कहना है कि जब राजा को मालूम हो गया कि आचार्य का विष

दिया गया है तो उसने विष को उतारने के लिए अपने भण्डार से एक दवा मँगायी। लेकिन अजयपाल ने उस औषधि को गायब कर दिया।

वास्तव में हेमाचार्य की मृत्यु एक वर्ष पहले हो चुकी थी और विष देने की घटना इसलिए गढ़ी गयी कि जिससे जैन मत के इस आचार्य के अपना धर्म त्यागने और मुस्लिम धर्म के प्रति आकर्षित होने की बात लोगों में प्रकट न हो।

इस घटना के गढ़े जाने के कई आधार और प्रमाण मिलते हैं। यदि उनको छोड़ दिया जाय और उनके सम्बन्ध मे कोई प्रकाश न डाला जाय तो भी इस बात को कैसे छिपाया जाय, जो जनश्रुति के द्वारा सबको प्रकट है कि मरने के समय हेमाचार्य के मुख से अल्लाह-अल्लाह के सिवा और कोई शब्द नहीं निकला।

जैन मतावलम्वी हेमाचार्य के धर्म परिवर्तन का एक सबसे बड़ा और प्रधान प्रमाण यह है कि मरने के बाद उसके शव को मुस्लिम प्रथा के अनुसार दफनाया गया था। (१)

इस प्रसिद्ध व्यक्ति हेमाचार्य के जीवन का अन्त सम्वत् १२२१ में हुआ। उसका जन्म सम्वत् ११४५ में हुआ था। उसके जीवन के सम्बन्ध में और कोई विशेष घटना न तो पढने को मिलती है और न जनश्रुति के आधार पर जानने को मिलती है।

'चरित्र' के आधार पर हम इस राजा का चरित्र यही पर समाप्त करते हैं। सम्वत् १२२२ सन् ११६६ ईसवी (२) में कुमारपाल प्रेत हो गया। उसके उत्तराधिकारी अजयपाल ने उसको विष दिया था, उससे उसकी मृत्यु हो गयी।

इस राजा के शासन काल के सम्बन्ध में जो विवरण हमको प्राप्त हो सके हैं, उनका उल्लेख नीचे किया गया है। जो सामग्री इस प्रकार मिल सकी है, उसको 'चरित्र' मे वर्णित तथ्यो के साथ मिलान भी कर लिया गया है।

---

(१) जयसिंह सूरि द्वारा लिखित कुमारपाल चरित मे लिखा गया है कि हेमाचार्य का अग्निदाह सस्कार किया गया था और उस अग्निदाह में चन्दन, और कपूर आदि अच्छे पदार्थों का प्रयोग किया गया था उसकी भस्म पवित्र मानी गयी और इसलिए राजा ने स्वय अपने माथे पर उस भस्म का तिलक लगाया। उसके बाद हेमाचार्य को नमस्कार किया। राजा के ऐसा करने पर सामन्तो और दूसरे लोगो ने भी ऐसा ही किया। भस्म खत्म हो जाने पर लोग वहाँ की मिट्टी खोद ले गये जिससे उस स्थान की जमीन घुटने तक गहरी हो गयी। यह गढ्डा पाटण मे हेमरवाड़ा के नाम से मशहूर है।

(२) मूल लेखक ने सम्वत् और समय लिखने मे अधिकांश स्थानो पर भूल की है। यहाँ पर भी कुमारपाल चरित्र में कुमारपाल की मृत्यु का समय सम्वत् १२३० लिखा है।

इसी राजा के शासनकाल में मशहूर अरब-निवासी भूगोल का विद्वान अल-इदरिसी बल्हरा-राज्य मे आया था, उसने कितनी ही बातो का वर्णन किया है और उसके उल्लेखों का जिक्र बेयर साहब तथा द आॅनविले ने अपने ग्रन्थो मे किया है। द आॅनविले लिखता है—

"नहरूरा का जिक्र इदरिसो मे आया है। यह स्थान हिन्दुस्तान में है, जिसको हम लोग गुजरात के नाम से जानते हैं। इस भूगोल वेत्ता के अनुसार हिन्दुस्तान के समस्त दूसरे राज्यो मे इस नगर का गौरव रहा है। यहाँ के राजा का भारत के दूसरे राजाओं में बहुत अधिक सम्मान होता था। उसको बल्हरा की पदवी प्राप्त थी, उसका अर्थ सर्वश्रेष्ठ राजा होता है। इस प्रसिद्ध राजा का निवास-स्थान इसी नगर में था। टॉलिमी ने बालेकूरो के बादशाही नगर के रूप 'हिप्पोकूरा' नाम लिखा है और वह इसकी परिस्थिति 'लारिस' के करीब एक हिन्दुस्तानी प्रान्त मे मानता है। उसको वह अफीका का नाम देता है। मैं पहले ही इसको गुजरात कह चुका हूँ। बालेकूर और बल्हरा पदवी की बराबरी एवम् प्रदेश की एकता को देखते हुए मुझे विश्वास है कि इसका सम्बन्ध इसी राजा के साथ हैं।"

इस विद्वान ने उपरोक्त वर्णन करके जो परिणाम निकाला है, वह इस प्रकार है—हिन्दुस्तान में एक प्रसिद्ध राज्य है, उसकी जानकारी हमको दूसरी शताब्दी के आरम्भ से ही हो जाती है और उसका विवरण बारहवी शताब्दी मे आने वाले अरब यात्री के द्वारा लिखी गयी पुस्तक से मिलता है। यहाँ पर वह १५ वी शताब्दी भी लिख सकता था। वह अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए लिखता है—"इदरिसी से हमको मालूम हुआ है कि बल्हरा बुद्ध का भक्त था।"

उपरोक्त वर्णन के आधार पर ही द' आनविले ने इस मशहूर नगर की परि-स्थितियो का पता लगाने की कोशिश की है। पूर्वीय भूगोल वेत्ताओ के स्वयं विवरण ऐसे हैं कि जिनसे बल्हरा की परिस्थितियो का सही पता लगाना बहुत कठिन है। इब्न सईद ने तीन बार समुद्र के रास्ते से खम्भात बन्दर की यात्रा की थी। उसका कहना है कि इसका अस्तित्व मैदानो मे है।

न्यूबिअन भूगोग-वेत्ता के उल्लेखो से 'चरित्र' मे वर्णित अनहिलवाड़ा के वैभव, वहाँ के शासको की शक्ति और अन्याय विवरणो की पूर्णरूप से पुष्टि हो जाती है और जब इदरिसी कहता है कि यह प्रदेश हिन्दुस्तान के राज्यो मे सबसे बड़ी इसी की राज-धानी थी तो हमको इस उल्लेख पर बिल्कुल सन्देह नही होता कि इस नगर का विस्तार पन्द्रह मील की परिधि मे था और कुमारपाल ने इस राज्य को बारह भागो में विभाजित करने की आवश्यकता को अनुभव किया।

इदरिसी ने इस राज्य के वैभव के सम्बन्ध मे अपना अनुमान लिखकर समर्थन

किया है। उसने लिखा है—"हिन्दुस्तान के अन्य सभी राजा उसके गौरव को मानते हैं।"

इसके सम्बन्ध मे हमारे पास और भी अच्छे उदाहरण हैं, जिनसे इसके गौरव की पुष्टि होती है। उसकी सैनिक शक्ति की तरह उसके अधिकृत राज्यो के विस्तार पर भी हम सन्देह करते हैं और सत्य को जानने की चेष्टा करते, परन्तु इसके सम्बन्ध मे ऐसे प्रमाण मिल रहे हैं, जो प्रबल और निर्विवाद हैं, जिनके कारण संदेह नही पैदा होता। इन प्रमाणो में सबसे अधिक विश्वासनीय दो शिला लेख हैं। उनमें एक चित्तौर के मन्दिर मे सुरक्षित है और दूसरा पाटण में है। उसकी मेवाड़ की विजय, पंजाब मे सालपुर नगर और हिमालय की बाहरी श्रेणी शोवलक पहाड़ तक उसके वैभव के ऐसे प्रमाण शिला लेखो से प्राप्त हैं, जो किसी प्रकार काटे नही जा सकते और न उन पर सन्देह होने का कोई कारण पैदा होता है।

जालधर, ऊँछ और सिन्धु को जीत लेना तो और भी सरल था। इस तरीके से अरब के भूगोल शास्त्री अबुल फिदा के उल्लेखो का समर्थन होता है। और उसको सही मानकर वेयर साहब ने अपने वर्णन मे सम्मिलित किया है।

'चरित्र' के इन अशो के साथ लारिस और ऐरिआक देशो की अनेक बातो के विवाद जो बहुत दिनो से चले आ रहे थे, वे भी शान्त हो जाते हैं। टोलेमी ने इनको पड़ोसी देश लिखा है। उसके अनुसार, यह देश सायराष्ट्रीन अथवा सोरो के प्रायद्वीप का एक प्रधान भाग था। चरित्र मे अनहिलवाडा के अधीन अठारह राज्यो मे लार प्रदेश का भी वर्णन मिलता है और उसमे यह भी लिखा गया है कि लार जाति के लोगो को किसी अपराध के कारण कुमारपाल ने अपने राज्य से बाहर कर दिया था।

इब्न सईद ने उसके राज्य की समस्या को हल करते हुए लिखा है कि "मैंने उन अधिकारियो से मुलाकात की है, जो सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर का अस्तित्व लार प्रदेश मे मानते हैं।"

किसी भी सूरत मे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि यह जाति टोलेमी के समय मे इतनी शक्तिशाली और गौरवपूर्ण थी कि उसके नाम से एक देश का नाम मशहूर हो गया था और बारहवी शताब्दी तक उस जाति में इतनी शक्ति मौजूद थी कि अनहिलवाडा को अपना बदला लेने के लिये शक्तियो का सगठन करना पडा था।

उस जाति के कुछ लोग अब भी इस देश के वैश्यो मे पाये जाते हैं, मरुभूमि मे जो जातियाँ बसती हैं, उनकी चौरासी जातियो में से यह भी एक है और जो जैन मतावलम्बी है। मिश्र देश के प्रसिद्ध भूगोल शास्त्री के लारिस और हमारे लार प्रदेश के निवासियो के सम्बन्ध मे इतना विवरण मिलता है।

लारिस के पडोसी प्रदेश के सम्बन्ध में जिसका नाम उसने एरिआक लिखा है—हम पहले ही लिख चुके हैं और अगर विल्फार्ड ने नगर के स्थान पर एरिया की

राजधानी की इस विवेचना को पूरे तौर पर मान लिया होता तो वह पुरातत्व के प्रसिद्ध अन्वेषकों में गिना जाता। नगर और एरिआक के विवरण एक शिला लेख के कारण सामने आये, जो बम्बई के करीब थाना अथवा ठाणा के खण्डहरों की खोदाई मे प्राप्त हुआ था और वह संयोग से जनरल करनाक को मिल गया था।

इन लेखो से जो ऐतिहासिक सामग्री मिलती है, उससे एक नवीन तथ्य की यह जानकारी होती है कि इनके अनुसन्धान में जो सफलता, विलफोर्ड को प्राप्त हुई है, वह किसी दूसरे को नही। इस प्रकार जो सामग्री प्राप्त हुई है, उस पर प्रकाश डालने के लिये मुझे जो अवसर मिला है, उसके लिये मैं अपने-आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ। इसलिये कि इनकी सहायता से जो विषय मेरे सामने था, वह स्पष्ट हो जाता है।

इन ताम्रपत्रों में भूमिदान के विवरण मिलते हैं, जो शक सम्वत् ६३६ और १०७४ विक्रमीय सन् १०१८ ईसवी में किये गये थे। इन ताम्रपत्रों में भी भूमिदान करने वाले की वंश परम्परा के उल्लेख मिलते हैं। पांचवे पद्य में लिखा है कि कर्पर्दिन् सिलार वंश का प्रधान था। उसका उल्लेख अनहिलवाड़ा के राजाओ के अधीनस्थ छत्तीस जातियों में राजतिलक विशेषण के साथ हुआ है। कदाचित् यह सिलार लार ही है, जिसके साथ सि और सु उपसर्ग श्रेष्ठता के लिये लगाये गये हैं। इसलिये कि टालेमी है और एरिअन के समय भी लारिसे और एरिआक के पड़ोसी प्रदेश उसी राजा की अधीनता में थे। इसलिये इसको स्वीकार करने मे हमको कोई आपत्ति नही है।

ऊपर वैश्यो की जो चौरासी जातियाँ लिखी गयी हैं, वे इस प्रकार है—

श्री श्रीमाल, श्रीमाल, ओसवाल, बघेरवाल, डिण्डू, पुष्करवाल, मेड़तवाल, हरसोरा, सूरवाल, पल्लीवाल, भम्बू, खण्डेलवाल, दोहलवाल, केडरवाल, देसवाल, गूजरवाल, सोहडवाल, अग्रवाल, जायसवाल, मानतवाल, कजोटीवाल, कोरतवाल, छेहत्रवाल, सोनी, सोजतवाल, नागर, माद, जल्हेरा, लार, कपोल, खेड़ता, बरारी, दशोरा, भाभरवाल, नागद्रा, करबरा, बटेवडा, मेवाडा, नरसिंहपुरा, खेतरवाल, पञ्चमवाल, हनेरवाल, सरखेड़ा, बैस, स्तुखी, कम्बोवाल, जोरणवाल, बघेलवाल, ओरछितवाल, चामनवाल, श्रीगुरू, ठाकरवाल, वलमीपाल, तिवोरा, तिलोता, अतवर्गी, लाड़ीसाख, बदनोरा, खीचा, गसोरा; बहाबहर, जेमो, पदमोरा, महरिया, धाकड़वाल, मनगोरा, गोलवाल, मोहोरवाल, चीतोड़ा, काकलिया, भाडेजा, अन्दोरा, साचोरा, भंगरवाल, मदनहला, ब्रामीणया, बगड़िया, डिण्डोरिया, बोरवाल, सोरविया, ओरवाल, नफाग और नागोरा।

इन चौरासी नामो मे एक नाम कम है।

आठवें पद्य में लिखा है कि बाद मे उसका पौत्र गोगनी का अधिकारी हुआ। कदाचित् उसने खम्भात के मशहूर नगर और बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया था, उसका प्राचीन नाम गर्जनी अथवा गजनी था और जो लारिस एवं एरिआक के बीच में मौजूद था और उन दोनो के सम्बन्धों को जोड़ने का काम करता था।

सोलहवे पद्य में उपभोक्ता का नाम अरिकेसर पढ़ने को मिलता है। उसका अर्थ शत्रुओ के लिए केशरी अर्थात् शेर के समान होता है। यदि इसको अपने देश अरिया का सिंह कहा जाय तो अधिक उपयोगी होगा।

उसका मौलिक नाम देवराजा आगे के वाक्य में आया है। उसका अर्थ यह है कि, 'अरिकेसर; देवराज सिलार वंश का राजा तगर पूरे कोकण प्रदेश पर शासन करता है। उसमें नगर और ग्राम मिलाकर सब चौदह सौ हैं।'

इनमें से बम्बई से मिला हुआ तन्न अथवा थाणा भी था। एरिअन के परिप्लस नामक पुस्तक मे से विल्फ़ोर्ड ने लिखा है—

'तगर मे एक विस्तृत प्रान्त की राजधानी थी, जो एरिआक कहलाता था। इस प्रदेश मे औरंगाबाद और कोंकण इत्यादि भी शामिल थे।'

यहाँ पर शिला-लेख के शब्दो को ज्यो-का त्यों लिखा गया है। दमाऊँ (दम्मन) कल्याण; सालसिट जिसमें तन्न अथवा थाणा था और बम्बई आदि एरिअन तथा इब्न सईद के अनुसार, लारिकेह अथवा लार के राजा के अधिकार में था।

इसी निष्कर्ष पर मैं चरित्र और दूसरे प्रमाणो के आधार पर पहुँचा था। विल्फोर्ड ने एरिअन के और भी उदाहरण दिये हैं। उसका कहना है—'ग्रीक लोगों को कल्याण और दूसरे बन्दरगाहो पर उतरने के लिये इजाजत नही दी जाती थी।' लेकिन पहले ऐसा नही था। वे लोग स्वतन्त्रतापूर्वक दक्षिण मे आते-जाते थे और कल्याण तथा बम्बई में अपना माल जहाजो पर लाद सकते थे। आगे चलकर उसने फिर लिखा है कि बरुगाजा अर्थात भड़ौंच ही एक ऐसा बन्दरगाह था, जहाँ पर वे लारकेह अथवा लार के राजा सन्दनेश अथवा सेन्देनेश के आदेश से व्यापार करने के लिये आ जा सकते थे। जो कोई उसके आदेश को भंग करता था, उसको पकड़कर और कैद करके भड़ौंच भेज दिया जाता था।

ऐसा मालूम होता है कि यह हालत रोमन दूतो के प्रभाव से पैदा हुई थी, जैसा कि विल्फोर्ड ने लिखा है कि मिश्र-विजय करने के बाद उन लोगो ने हिन्दुस्तान के व्यापारिक क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया था और दूसरे देश के व्यापारियो के लिये लाल सागर का रास्ता बन्द कर दिया था।

विल्फोर्ड का कहना है कि ग्रीक लोगो ने दक्षिण मे आसानी के साथ सफलता प्राप्त करने के लिए सालसिठ मे बलपूर्वक एक बस्ती को आबाद कराने का प्रयास

किया था। जिसमें उनके बैक्ट्रिया के भाइयो का असर भी काम कर रहा था। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि कि मेनान्डर और ओपोलोडोटस सोरों के राज्य मे जबरदस्ती प्रवेश कर रहे थे तो हमको विल्फोर्ड का अनुमान असत्य नही मालूम होता। उसने कल्याण के दक्षिण में बन्दरगाहो पर जहाजो की रोक के लिए प्लिनी, एरिअन और टालेमी के प्रमाण दिये हैं और यह स्वीकार किया है कि ग्रीक लोगों के लिए वहाँ पर उतरने की इजाजत नही थी।

इन विभिन्न प्रकार के प्रमाणों को देखने के बाद जो चीजे हमारे सामने आती हैं, उनसे और स्थानीय जन श्रुतियो से यही साबित होता है कि जहाजी विद्रोहों के कारण ही देव बन्दर के सौर एवम् चावड़ा राजा को 'लारिक देश' से निकाला गया था। अब प्रश्न यह होता है कि निकाला किसने था ?

मिश्री-ग्रीक और रोमन लोगों ने भारतीय व्यापार पर अधिकार कायम किया था। लेकिन इन सभी को नील नदी और लाल सागर से—जहाँ पर इस्लामी झण्डा फहरा रहा था—सन् ७४६ ईसवी मे वंशराज के द्वारा अनहिलवाड़ा की फिर से स्थापना होने के बाद बाहर निकाल दिया गया था। इसलिये यह दुर्घटना जल के अधिकारी वरुण देवता के द्वारा न होकर हारूँ के जहाजी बेड़े के द्वारा हुई थी, ऐसा मालूम होता है। यह कहने की आवश्यकता नही है कि कुमारपाल बौद्ध-धर्म का सरक्षक था। इसका समर्थन चरित्र के वर्णन से भी होता है और अल-इदरिसी में भी लिखा है कि जैन और बौद्ध मत लगभग एक ही हैं।

इन दोनों मतों में कोई अन्तर नहीं मालूम होता। सिवा इसके कि एक मत ने जिन वातो को मान्यता दी है, दूसरे ने उन्ही को लेकर उनका परिष्कार किया है। इस विवेचना पर किसी प्रकार का सदेह करने की आवश्यकता नही है।

मैं अनहिलवाड़ा के वर्णन का अन्त वहाँ के धर्म, व्यापार और जहाजी सम्बन्धों के साथ करना चाहता हूँ। इसलिए कुमारपाल के सम्बन्ध के सभी विवरण यह कहकर खतम कर रहा हूँ कि मुस्लिम इतिहासकारो ने शहाबुद्दीन के सिवा और किसी के आक्रमण का वर्णन नही किया। शहाबुद्दीन की घटना कुमारपाल तथा उसके गुरू हेमाचार्य के धर्म त्याग की घटना के बीस वर्ष पश्चात घटी थी।

मेरे गुरु भी उन्ही प्रसिद्ध जैन आचार्य के आध्यात्मिक शिष्य हैं और मेरे अनहिलवाड़ा के अनुसंधानो में मेरी सहायता कर रहे हैं। इन्होने भी जनश्रुति के सत्य को मजूर किया है। परन्तु धर्म परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट वात नही कही। ऐसी दशा मे हम इस परिणाम को निकालने के लिए विवश होते हैं कि इन दोनो ने अपना धर्म-परिवर्तन इच्छा पूर्वक नही किया था। वल्कि वलपूर्वक उनसे करवा गया था। इसलिए हम कुमारपाल के वर्णन को यह समझकर समाप्त करते हैं कि वह अपने समय का सबसे बड़ा राजा था और उस धर्म का, जिसको छोड़कर उसने इस्लाम-

धर्म स्वीकार किया था, पहले प्रबल पोषक था और बाद मे भयानक रूप से उसका विरोधी हो गया था।

अजयपाल, सम्वत् १२२२ सन् ११६६ ईसवी मे सिंहासन पर बैठा। (१) जैसलमेर के इतिहास में उसका वर्णन करते हुए लिखा गया है कि सम्वत् १२१५ में धार के राजा यशोवर्धन के बेटे रणधवल (२) की बहन से वैवाहिक सम्बन्ध में वह जैसलमेर के राजकुमार का विरोधी था।

राजा भोज के महत्वपूर्ण समय का निश्चय करने वाले शिला-लेख से सोलंकी और भाटी वंशो के इतिहास की समकालीनता जाहिर होती है। किसी भी तरीके से यह साबित नही होता कि अजयपाल, कुमारपाल का उत्तराधिकारी होने के साथ-साथ बेटा भी था। (३) सोलंकियो की वंशावली मे उसका नाम छोनीपाल लिखा है और उसके समकालीन शिला लेखो मे भी यही नाम पढने को मिलता है। जैसलमेर के इतिहास मे यह भी लिखा है कि वह तीसरे राजवंश अर्थात् बघेला वंश का संस्थापक था। उसमे यह भी लिखा है कि ज्योतिषियो ने पहले से ही कुमारपाल से कह दिया था कि उसके मूल नक्षत्र मे लडका पैदा होगा और वही लडका अपने पिता की हत्या करेगा।

ज्योतिषयो की इस बात से भयभीत होकर उस बालक के पैदा होने पर बघेश्वरी माता के सामने उसका बलिदान कर दिया गया। लेकिन बाघेश्वरी माता ने उसकी रक्षा की और अपना दूध पिलाकर उसका पालन किया। इसीलिये उस बालक का वंश बाघेला (४) के नाम के प्रसिद्ध हुआ। अपने पिता की तरह वह बालक भी इस्लाल -धर्म में आ गया था। यही कारण था कि उसके शासन काल मे सबसे

---

(१) प्रबन्ध चन्तामणि में लिखा है कि अजयपाल सम्वत् १२३० विक्रमी सन् ११७४ ईसवी मे सिंहासन पर बैठा।

(२) उसी ग्रन्थ मे लिखा है कि परमार के तीन लडकियाँ थी और पाटण के अजयपाल के सिवा चित्तौर का युवराज भी वहाँ पर प्रतिद्वन्दी के रूप मे मौजूद था। भाटी के प्रति पक्षपात करते हुए भी एक कथानक मे युवराज की श्रेष्ठता स्वीकार की गयी है। उपाख्यान मे दोनो के झगडे का वर्णम किया गया है जो इस प्रकार हुआ था कि भाटी ने राजकुमार के प्याले मे पानी पी लिया था। इस इतिहास मे चार समकालीन राजवंशो का वर्णन किया गया है।

(३) हिन्दुओ के एक ग्रन्थ मे लिखा गया है कि अजयपाल स्वर्गीय राजा कुमारपाल के भाई महीपाल का बेटा था।

(४) बाघेल खण्ड का राजा इसी वंश का है। गुजरात में इस जाति के अनेक छोटे-छोटे राज्य हैं जैसे लूणावाडा, माण्डवी, माहीडा, गोध्रा, डभोई इत्यादि।

पहला कार्य यह हुआ कि राज्य के समस्त मन्दिरो को —चाहे वे आस्तिको के हो अथवा नास्तिको के, जैनियों के हों अथवा ब्राह्मणो के—विध्वंस कर दिया गया।

कहा जाता है कि उस विध्वस और विनाश में किसी प्रकार तारीगी की पहाडी पर एक मन्दिर बच गया। वह कूगर की लकड़ी का बना हुआ था। (१) यह भी कहा जाता है कि इस लकड़ी में आग नही लगती।

अजयपाल अपने शासन काल मे पिता के बध, धर्म के त्याग और मन्दिर के विध्वंस के बाद अधिक दिनों तक जीवित नही रहा। अत्यन्त क्रोध में आ जाने के कारण उसने हेमाचार्य के उत्तराधिकारी के नेत्र निकलवा लिए। (२) इसके बाद की घटना है कि वह कही जा रहा था, रास्ते में घोड़े पर से गिर गया और वह घोड़ा उसको रास्ते में बहुत दूर तक घसीटता हुआ ले गया। इस दशा में उसकी मृत्यु हो गयी।

अबुलफजल ने लिखा है कि कुमारपाल ने तेंतीस वर्ष राज्य किया और अजयपाल ने आठ वर्ष। लेकिन चरित्र में इन दोनो का शासन काल मिलाकर तीस वर्ष लिखा है। उसमें अजयपाल को दो वर्ष से भी कम बताया जाता है। (३)

अतीतकाल के इतिहास का यहाँ पर जो वर्णन किया जा रहा था और लिखा जा रहा था 'चरित्र' मे वरिंगत घटनाओ के आधार के साथ-साथ अन्य प्रकार की एतिहासिक प्राप्त सामग्री, जनश्रुतियो, लोकोक्तियो, शिला लेखों, ताम्रपत्रो, दानपत्रो और दूसरे ग्रन्थो के उल्लेखो की सहायता पर। जिसका अब अन्त हो रहा है। इसके सम्बन्ध में मूल इतिहास सालिग सूरि आचार्य का लिखा हुआ है और उसने उसको अड़तालीस हजार श्लोकों में लिखा है। उसी का गुजराती अनुवाद तेरह हजार श्लोको मे किया गया है।

---

(१) कहा जाता है कि यह मन्दिर नौ मंजिल का है और अब तक मौजूद है।

(२) प्रबन्ध चिन्तामणि मे लिखा है कि उसने एक सौ निबन्धो के रचयिता रामचन्द्र नामक जैन विद्वान को जलते हुए तांबे पर बिठाकर मरवा डाला था।

(३) कुमारपाल के शासन के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के लेख पाये जाते हैं। लेकिन 'चरित्र' में लिखा है कि कुमारपाल ने तीस वर्ष तक शासन किया। इन तीस वर्षों में कोई दूसरा शामिल नहीं है।

दसवाँ प्रकरण

शासन, वैभव, युद्ध और विजय

'अनहिलवाडा के कुछ ऐतिहासिक दृश्य—भीमदेव और उसका चरित्र—अनहिलवाडा और अजमेर का युद्ध—भीमदेव और पृथ्वीराज का युद्ध—पृथ्वीराज के द्वारा गुजरात की विजय—अनहिलवाडा का गौरव—मुसलमानो का आक्रमण—बल्हरा की सत्ता का खातमा—गुजरात पर टाक जाति का अधिकार—ऐतिहासिक लेख और उनके परिणाम।

भीमदेव सम्वत् ११६६ में सिंहासन पर बैठा। (१) उस समय के इतिहासो में उसके नाम के पहले भोला शब्द का प्रयोग किया गया है। उसका अर्थ होता है सीधा, बुद्धू और अयोग्य। एक ही नाम के जब कई राजा होते हैं तो उनके नाम के साथ दूसरा, तीसरा, चौथा आदि कुछ लिखा जाता है और ऐसा करना किसी भी इतिहासकार के लिये आवश्यक हो जाता है। ऐसा सभी देशों के इतिहासो में देखा जाता है।

भीमदेव के सम्बन्ध मे जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है, वह हमको चौहानों के इतिहासो से ही मिली है। हमारी धारणा कुछ और है। यदि वह भोला था तो बल्हरा के राज्ज-सिंहासन पर बैठने वाले राजाओं में क्रमशः वह तीसरा राजा था, जो भोला अथवा अयोग्य था। लेकिन यह बात समझ मे नही आती। क्योंकि अगर यह बात सही होती तो इस शक्तिशाली राज्य को खोखला बना देने के लिए उसकी आयोग्यता काफी थी। उसके पूर्वज सुलेमान की तरह समर्थ तथा योग्य ही क्यो न हुए हो। लेकिन उस राज्यो मे उनके समय कोई कमजोरी नही आयी।

इस हालत में मालूम यह होता है कि लेखक ने किसी दूसरे शब्द को भूल से भोला शब्द लिख दिया है, चन्दबरदाई ने उसको बाल का राय और चालुक्य वीर लिखा है। यह नही कहा जा सकता कि चन्द कवि ने किसी भोले और आयोग्य राजा को झूठे विशेषण देकर एक असगत चित्रण किया है। मैं तो समझता हूँ कि कवि ने उसके लिए जिस प्रकार के शब्द का प्रयोग किया है, वह एक स्वाभिमानी राजपूत राजा के लिए उपयुक्त ही हैं।

ऐसा मालूम होता है कि भीम ने अपने पूर्ववर्ती राजाओ की कमजोरियो को भुला दिया और एक बहादुर योद्धा के रूप में सिद्धराज के अपराधो का दण्ड स्वीकार

(१) रास माला भाग १ मे ११६६ के स्थान पर ११७६ सम्वत् लिखा है।

करने के लिए अपने-आपको तैयार कर लिया। शाकम्भरी के चौहान राजा सोमेश्वर के साथ युद्ध करके उसको मार डालने और अन्त में उसके बेटे राजपूत होलेण्डो (१) पृथ्वीराज से संग्राम करने की घटनाओ का चन्द कवि ने अपने काव्य में अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। अगर यही पागलपन, भोलापन अथवा मूर्खता का लक्षण कहलाता है तब तो कहना पड़ेगा कि यह पागलपन तो बहुत ऊँचे दर्जे का था। इसके सम्बन्ध में चन्द कवि ने अपने ग्रंथों में जो कुछ लिखा है, उसको उधृत करना यहाँ पर आवश्यक नही मालूम होता, मैं इसे और भी आवश्यक इसलिये नही समझता कि मैं चन्द कवि के इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक सामग्री को लेकर एक अच्छी पुस्तक अपने पाठकों को देना चाहता हूँ। फिर भी कवि की दी हुई सामग्री में से इतना यहाँ पर लिखना मैं जरूरी समझता हूँ कि मेरा अभिप्राय प्राचीन राजपूतो के रहन-सहन और रीति-रिवाजों पर प्रकाश डालना ही नही है। बल्कि मैं उस समय के इतिहास और उसकी उन घटनाओं को खोजकर सब के सामने लाना चाहता हूँ कि जिससे राजपूतो के प्राचीनकाल का इतिहास सही रूप मे सब के सामने आ सके। उस समय के इतिहास की सामग्री जहाँ पर दी गयी है, वहाँ पर वह परिष्कृत रूप में नही है। उस सामग्री के साथ अतिशयोक्ति और कल्पनाओं की अवाञ्छनीय चीजे भी आ गयी हैं, उनका परिष्कार करना मैं अपना कार्य समझता हूँ।

इस युद्ध के वर्णन से चौहान के शत्रु के गुणो का वर्णन करने का ही अवसर नहीं मिलता, बल्कि उसके राज्य के विभिन्न अंगो, अभावो, साधनो एवम् बल्हरा के झण्डे के नीचे एकत्रित होने वाली विभिन्न प्रकार की टोलियो पर प्रकाश डालने का अवसर भी प्राप्त होता है।

गुर्जर धरा में भोला भीम भुअंग (२) शासन करता था। उसके पास घोड़ों, हाथियों और रथो की बहुत बड़ी सेना थी, उसकी तलवार का पानी समुद्र के जल (३) की तरह चमकदार और गम्भीर था। उसके काका सारंग देव की बराबरी करने वाला कोई नही था। वह देखने मे देवता के समान था। उसके लड़के प्रताप आदि सातो

---

(१) रोलेण्डो आठवी शताब्दी में फ्रांस में प्रसिद्ध राजा शार्लमैन का सामंत और भतीजा था, वह अत्यन्त उदार, शूरवीर और स्वामिभक्त था। उसके यशस्वीकार्यों का वर्णन योरप की प्रसिद्ध पुस्तक 'सॉंग आफ रोनाल्डो' मे किया गया है। स्पेन विजय के लिये जब शार्लमैन ने आक्रमण किया था, उस समय रोलैण्डो उसके साथ था। वापस लौटने के समय सौरेसनो के आक्रमण करने पर वह मारा गया।

(२) भुअंग, भुजग, सा के पर्यायवाची नाम है।

(३) तलवार का पानी ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार हीरे का पानी, लोहे का पानी आदि।

भाई सिंह के समान थे। उनके मुखमण्डल पर राजपूतो का तेज था। वे शक्तिशाली होने के साथ-साथ बुद्धिमान भी थे। अपनी शक्तियो पर वे गर्व करते थे और निर्भीकतापूर्वक वे तूफानों के साथ भी टकराने के लिये प्रत्येक समय तैयार रहते थे।

उन लड़को का स्वामी जब शत्रु से लड़ने का आदेश देता था तो वे युद्ध-स्थल पर जाकर इस प्रकार शत्रु पर आक्रमण करते थे, जिस प्रकार पृथ्वी पर बिजली गिरती है। आग के समान प्रचण्ड, राणाओ के स्वामी शक्तिशाली झाला राणा को मारने वाले वही थे। सारङ्गदेव स्वर्गलोक चला गया और प्रताप उसका उत्तराधिकारी बना। उसके अधिकार मे पाँच सौ शूरवीर थे। उनमे से प्रत्येक अपने आपको युद्ध का नेता समझता था। उन वीरो के साथ वे सब भाई अपने राजा की प्रत्येक सेवा के लिये वे कल्पवृक्ष के समान थे। वे अपने राजा के परम भक्त थे और उसके सम्मान के लिये प्रत्येक त्याग और बलिदान के लिये हमेशा तैयार रहते थे।

इस कथा मे आगे चलकर पहाड़ी और जंगली जातियो के द्वारा गुजरात के युद्ध क्षेत्र में हुए एक भीषण युद्ध का वर्णन किया गया है। उसमे लिखा गया है कि उन जातियो के साथ युद्ध करने के लिए स्वयं बल्हरा को आगे आना पड़ा।

युद्ध आरम्भ होने के बाद थोड़े ही समय मे आक्रमणकारी पहाड़ी और जंगली जातियो के लोगो को मारकर भगा दिया गया और वे लोग वहाँ से भागकर अपने पहाड़ी और जंगली घरो मे चले गये।

राजा और सामन्त लोग जंगल में शिकार खेलते हुए अपना मन बहलाव करने लगे। उसी मौके पर एक बड़ी दुर्घटना हो गयी, जिसका वर्णन करना यहाँ पर हमारे लिए बहुत आवश्यक हो गया है। यह घटना अपनी रक्षा के लिए राजा के अत्यन्त प्रिय हाथी को मार देने के सबब से हुई। उससे अप्रसन्न होकर राजा ने प्रताप आदि भाइयो को देश छोड़कर बाहर चले जाने का आदेश दे दिया। वे लोग वहाँ से अजमेर चले गये और वहाँ के चौहान राजा ने उनके पहुँचने पर उनका हार्दिक स्वागत किया।

चौहान राजा ने उनको एक जागीर का पट्टा लिख दिया और प्रत्येक भाई को एक-एक राजसी पोषाक देकर एक-एक सौ अश्वारोही सैनिक उनके अधिकार मे दे दिये। चौहान राजा के यहाँ उनका सम्मान बढ़ा और वे वहाँ के बड़े सामन्तो मे माने जाने लगे। इससे उनके सम्मान में और भी वृद्धि हुई।

इन्ही दिनो की बात है। सुमेरु पर्वत के समान विशाल सोमेश का बेटा सामन्तों के बीच में बैठा हुआ प्राचीन काल का इतिहास सुन रहा था। प्रताप का आत्मा जागरति हो उठा। उस ऐतिहासिक कथा को सुनते-सुनते उसकी भुजायें फड़फड़ाने लगी और उसका दाहिना हाथ मूछो पर पहुँच गया।

अपने से बड़ो के सामने मूछों को उमेठना और उन पर हाथ रखना राजपूतो में एक अक्षम्य अपराध माना जाता है। चौहान राजा के भाई और पृथ्वीराज के काका

कन्हराय ने प्रताप के इस दृश्य को देख लिया । पृथ्वीराज की छोटी अवस्था के कारण कन्हराय उसके राज्य की सेनाओं का संचालन करता था । फरिश्ता (१) ने भी खाण्डेराय के नाम से गजनी के सुल्तान के साथ उसके भीषण युद्ध और विजय का वर्णन करके उसको गौरव प्रदान किया है ।

कन्ह काका ने प्रताप की इस हरकत को देखा । वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और तुरन्त झपट कर उसने प्रताप को जमीन पर गिरा दिया । इस दृश्य को देखते ही प्रताप के भाई उसकी रक्षा करने के लिये क्षण-भर में तैयार हो गये और उन्होंने अपनी तलवारें निकाल लीं । दरबार में गड़बड़ी मच गयी । नवयुवक राजा तो किसी प्रकार बच गया । परन्तु उस सभा में रक्तपात के कारण सम्पूर्ण स्थल रक्तमय हो उठा । वे सब भाई वहां पर मारे गये और अपनी बहादुरी के कारण वे भाट की प्रशंसा के पात्र हो गये ।

भाट ने इस घटना का वर्णन बड़ी जोशीली कविताओ में किया है । इसके सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट तो नही कहा जा सकता, लेकिन कुछ परिस्थितियो के आधार पर यह सदेह होता है कि भाट ने इन भाइयो को कदाचित् किसी अवसर पर उकसाने का काम किया था । लेकिन इसके सम्बन्ध मे स्पष्ट प्रमाण नही मिलते ।

चालुक्य वंश ! तू धन्य है और तेरे ये वंशज धन्य हैं, जिन्होंने दूसरे के राज्य में भी स्वाभिमान की रक्षा की । संध्या के समय महादेव ने अपनी मुण्ड माला को धारण किया । (२) योगिनियो (३) ने अपने खप्पर भली प्रकार भर लिये । चौहान शूरवीर खून में डूबे हुये पडे थे; यमराज की तरह कन्ह उनके पास खड़ा था और इस परिणाम को वह देख रहा था ।

प्राचीन काल में राजपूत इस प्रकार के थे और वे आज भी ऐसे ही हैं, जो एक तिनके के लिये भी वे लडकर अपने प्राण दे देते हैं । इस अवस्था मे उनको भोला कहना कदाचित् उपयुक्त हो सकता है । लेकिन उनके इस भोलेपन के चन्द कवि ने राजपूतों का स्वाभिमान माना है और अपने सम्मान के नाम पर मरने वाले राजपूतो को उसने शक्ति-भर प्रशंसा की है । उसका ग्रन्थ इसी प्रकार की प्रशंसाओं से भरा हुआ है । कन्ह भीम के समान है । वह रावण के समान भी है । कन्ह ने बडे-से-बडे शक्तिशालियो के नथनो में नाथ पहनायी थी । (४)

---

(१) प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार ।

(२) युद्ध के देवता की माला नरमुण्डो की अर्थात् आदमियों के सिरों की होती हैं ।

(३) वह राक्षसी जो युद्ध के क्षेत्र में चक्कर लगाया करती है ।

(४) रासों में लिखा है कि झगड़ा समाप्त होने पर सामन्त लोग कन्ह क

इस घटना के फलस्वरूप, अनहिलवाड़ा और अजमेर के बीच युद्ध आरम्भ हुआ। दोनो तरफ के लोग मारे गये और मुसलमानों को आक्रमण करने का रास्ता खुल गया। देश-निकाले का दण्ड भुला दिया गया और जिसके कारण वह दण्ड दिया गया था, उस अपराध को भी क्षमा कर दिया गया। चालुक्य वंश के सम्मान पर सकट आ गया था। प्रताप और उसके भाइयों की मृत्यु का कथानक सुनने के बाद अनहिलवाडा के रक्त मे प्रतिहिंसा का भाव जागरित हो उठा था। जब चालुक्य भीम और उसके शूरवीरो ने सारङ्गदेव के बेटो का हाल मालूम किया तो उनके क्रोध की आग भडक उठी।

चालुक्य वशीय लोगो की हत्या को अपराध मानकर चौहानो के पास युद्ध करने के लिए पत्र भेजा गया, उसके उत्तर मे लिखा हुआ मिला—सोमेश तुमसे युद्ध क्षेत्र मे भेट करेगा।

युद्ध का कारण क्या था, इस पर ऊपर लिखा जा चुका है। उसके बाद उन पुस्तकों में दोनो ओर के युद्ध की तैयारियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। उस वर्णन से हमको उन वशो और जातियो के नाम एवम् उनके प्रमुख लोगो के परिचय मिलते हैं, जो दोनो तरफ के झण्डो के नीचे युद्ध करने के लिए एकत्रित हुए थे।

गुर्जर प्रदेश मे चालुक्य भीम राज्य करता है। वह पाण्डव भीम के समान है। उसकी कीर्ति और राजनीति का वर्णन नही किया जा सकता। लेकिन साँभर का सोमेश उसके दिल में काँटे की तरह चुभ रहा था और इसे वह रात-दिन सोचा करता था।

इसके बाद उसके सामन्तो के नाम एकत्रित होने के लिये सूचना निकाली गयी। सभी आकर दरबार मे एकत्रित हुए और अपने-अपने विचारो का प्रदर्शन किया।

झालापति राणिङ्गदेव ने चालुक्यो के राजा से कहा—यदि आप इस दुर्घटना से बहुत क्रोधित हैं तो राज्य की सम्पूर्ण सेना एकत्रित करिये, जिससे हम लोग तेज आँधी के समान शत्रु पर टूट पडे, जिस प्रकार भील शहद के छत्ते को तोड़ लेते हैं, उसी प्रकार हम लोग सभरी को (१) लूट लेगे।

इसके बाद कन्ह, काठी, नीरन्द, महाबली रानिग राजभान, देवपति (२)

समझा बुझाकर घर ले गये। पृथ्वीराज को इस दुर्घटना से असीम दुख हुआ। कन्ह को जब मालूम हुआ कि पृथ्वीराज बहुत नाराज हो गया है तो वह दरबार में नहीं गया।

(१) यहाँ पर साभर को सम्भारी लिखा गया है, कदाचित उसका अपमान करने के लिये।

(२) इस उपाधि से प्राचीन देव कन्नोज सोमनाथ के राजाओ की पहचान होती है।

योद्धा धवलाङ्ग, धवलरा, सुरतान और जिसके शरीर पर अगणित जखम थे, उस जूनागढ तातार (१) के साथ मकवाणा सरदार सारङ्ग भी दरबार में बोले और अपने विचारों को प्रकट किया।

इसके पश्चात् सामन्तों के बीच में चालुक्य राजा ने भाषण देते हुए कहा— पुरानी शत्रुता मेरे दिल मे सुई की तरह चुभ रही है। साँभर मेरे सामने क्या हस्ती रखता है! लेकिन जब तक मैं उसके राजा का सिर कटवा न लूंगा, उस समय तक मुझको शान्ति नही मिलेगी। क्या सोजत का युद्ध जीतने से ही उसको युद्ध का बहादुर मान लिया गया है? जब तक मैं उसके साथ युद्ध न कर लूंगा, मुझको चैन नही मिल सकती।

इसके बाद राणिङ्गराव, चूड़ा समाभान, श्याम, नरेश (२) शम्भु और काठी के योद्धा थानुंग ने - जो गम्भीर स्वभाव का था, शरीर से सुन्दर (३) था और जो युद्ध मे खुलकर अपने राजा की सहायता करता था—उस घटना के सम्बन्ध मे वक्तव्य दिये। क्रोध के कारण आग के समान जलता हुआ वीरसिंह चौहान भी वहाँ पर मौजूद था। उस समय उसके क्रोध का ठिकाना न था। सभी लोगो ने अंत में शपथ ली और प्रतिज्ञा की कि हम लोग ऐसा युद्ध करेंगे, जैसा संसार में कभी न हुआ होगा।

इस युद्ध के सम्बन्ध में जो विवरण ऊपर लिखे गये हैं, वे उनहत्तर पोथियो के दूसरे भाग के आधार पर हैं। उस भाग में इस वर्णन के बाद सेना के प्रस्थान करने का वर्णन किया गया है—"सेना जितनी ही आगे बढती जाती है, उतनी ही वह उमडते हुए सावन के बादलों की भाँति पर्वताकार होती जाती है।"

सेना के शूरवीर योद्धा आगे की तरफ बढ़ते हुए कहते हैं—"हमारे साथ युद्ध करने वाले है कहाँ?"

जिस प्रकार रामचन्द्र की सेना ने लङ्का पर आक्रमण किया था, उसी प्रकार चालुक्य की सेना चौहान पर आक्रमण करने के लिए लगातार आगे बढ रही थी।

---

(१) इससे इस राज्य मे मुसलमानो के प्रभाव का आभास होता है कि प्रायद्वीप के मध्य भाग मे जो महत्वपूर्ण गढ था, वह उनके हाथ मे था। लेकिन अन्यत्र कही से इसका प्रमाण नही मिलता।

(२) इस वर्णन को पढ़कर क्या हम इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि उसकी सेना मे सीरिया के सैनिक थे? इसलिये कि श्याम सीरिया के अतिरिक्त और कुछ नही है। यह समय क्रूसेड्स का समय था और शहाबुद्दीन ने फ्रेंको (फिरङ्गियों) को अपनी सेना मे भरती किया था।

(३) वह काठी लोगो की सुन्दरता का एक अच्छा नमूना है। ये लोग सिकन्दर के पुराने शत्रु थे और अपनी पड़ोसी जातियो की अपेक्षा अधिक गोरे ही नही थे, बल्कि नीली आँखों के कारण वे उत्तर देशीय पूर्णरूप से मालूम होते थे।

उनकी गणना करना एक असाधारण कार्य था, अमरसिंह (१) सेवड़ा के लिये क्या कहना था! उसके मुखमण्डल पर राजभक्ति और युद्ध-शक्ति चमक रही थी।

उत्साह बढाने वाले छन्दो, गानो और भैरूं बारेठ के सम्बन्ध में क्या कहा जाय! वेदो के सम्बन्ध में विद्वान और पारंगत लीलाधर (२) ब्राह्मण की कोई समता करने वाला नही था और चारण भी सुन्दरता में प्रसिद्ध और बेजोड़ था। ये चारों मंत्री भीम के साथ थे।

चौहान राजा के सम्बन्ध मे अधिक कुछ न कहकर हम युद्ध के विषय मे प्रकाश डालना चाहते हैं। वह युद्ध सोमेश्वर के लिए खतरनाक सिद्ध हुआ। इस दुष्परिणाम के उत्तरदायित्व से बचाने के लिए चन्द कवि ने पक्षपात करते हुए लिखा है – पृथ्वीराज उस समय उत्तर में नही था और उसकी अनुपस्थिति के कारण इस प्रकार की घटना हुई।

"जयसिंह का लड़का (३) उत्तरी नक्षत्र के समान है, फिर भी यदि पृथ्वीराज वहाँ पर होता तो वह हमारी जमीन पर कदम नही रखता।" एक सच्चे राजपूत की भाँति उसने शत्रु की प्रशंसा की है।

"जब चालुक्य ने प्रस्थान किया तो दिल्ली के निवासी अपने घरो में घबराये। बसंत ऋतु के बहुरंगीन फूलों के समान साम्भर का झण्डा आगे की तरफ बढ़ा।

रणक्षेत्र मे युद्ध करने वाले शूरवीरो मे सोमेश सबसे श्रेष्ठ था। युद्ध छै घड़ी तक चलता रहा। उसके पश्चात् पचास बहादुर सामन्तो के साथ सोमेश मारा गया। उस पोथी के अनुसार, उसने अमरत्व प्राप्त किया। सोमेश ने सोमेश को उठा लिया। (४) साम्भर का राजा युद्ध में मारा गया और चालुक्य को उसके आदमी पालकी में उठाकर ले गये।

---

(१) सेवड़ा लोग जैन-पुरोहित होते हैं, यहाँ पर अमरसिंह का नाम पढ़कर प्रसिद्ध कोषकार का भ्रम नही करना चाहिये। यद्यपि वह भी बल्हरा राजाओं के दरबार में रहा था। ये लोग तांत्रिक और ऐन्द्रजलिक हुआ करते थे। जहाँगीर बादशाह ने अप्रसन्न होकर उनको एक बार निकाल दिया था।

—तुजके जहाँगीरी के अँगरेजी अनुवाद के अनुसार।

(२) अनहिलवाडा के राजा के यहाँ एक ब्राह्मण मंत्री था। इसलिए यह जानकर और पढकर किसी भी अवस्था मे यह अनुमान नही करना चाहिये कि वह ब्राह्मण शैव था।

(३) अर्थात् अंतिम राजा अजयसिंह का पुत्र, उसका अर्थ होता है, जिसको जीता न जा सके।

(४) यहाँ पर एक सोमेश का अर्थ है शिव। वह सोम यानी चन्द्रमा को धारण करता है।

यह युद्ध बड़ा भयानक हुआ। युद्ध के लिए जितने शूरमा आये थे, वे सभी मारे गये और उनमें से कोई भी नहीं बचा। योगी लोग जीवन भर तप करने के बाद जिस अमर पद को प्राप्त होते हैं, वह मरने के बाद सोमेश्वर को कुछ क्षणों में ही प्राप्त हुआ। संसार ने धन्य-धन्य कहकर प्रशंसा की और देवताओं ने शोक प्रकट किया। (१)

इस युद्ध के कारण अनहिलवाड़ा के गौरव में कोई कमजोरी नहीं आयी। वह गुजरात के सत्रह हजार ग्रामो और प्रायद्वीप का स्वामी था, उसके राज्य की सीमा पर झालावाड़, काठियावाड़, देव और अन्य प्रदेशो का उल्लेख किया गया है। चालुक्य की यह विजय अन्त में सर्वनाश का कारण हो गयी। पृथ्वीराज ने—जो दिल्ली का प्रथम और अन्तिम सम्राट हुआ—अपने पिता की शत्रुता का बदला लेने के लिए प्रतिज्ञा की।

रासो का इकतालीसवाँ वर्णन इस प्रकार आरम्भ होता है—"नरेश के दिल में भीम ताजे जख्म के समान दर्द पैदा करता रहता है। उसको वह आग जला रही है, जिसे शत्रु के रक्त से ही बुझाया जा सकता है।"

अपने दुख को प्रकट करते हुए वह कहता है—"मेरे पिता की शत्रुता मेरे सिर पर है। जब मैं पानी पीता हूँ तो मुझे उस पानी में अपने ही रक्त का जायका आता है। मेरा शत्रु शक्तिशाली है।"

वह फिर कहता है—"फिर भी, एक दिन वह आने वाला है, जब मैं अपने पिता को इस भीम के पेट से निकाल लूंगा।"

इसके बाद उस विशाल पोथी में चौहान की चौसठ हजार सेना और उसके सरदारो का वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढङ्ग से किया गया है। यह समाचार चालुक्य के पास भी पहुँचा। उसमें हतोत्साह का भाव नहीं पैदा हुआ। उसने युद्ध करने का निश्चय किया। सेना में एकत्रित होने वाले समान्तो की नामावली का प्रसंग हम यहाँ पर संक्षेप में लिखने का प्रयास करेंगे और चन्दबरदाई की अपने शत्रु के सम्बन्ध मे इस प्रकार वर्णन करने के सम्बन्ध मे फिर एक प्रशंसा करेंगे।

"जयसिंह का बेटा क्रोधित हुआ। आवेश में आने के कारण उसके शारीरिक अंग फड़कने लगे। उसके नेत्रो में आग की ज्वाला का अनुभव होने लगा युद्ध के लिये तैयार होने को उसने अपनी सेना को आदेश दिया। उसने अपने सम्पूर्ण राज्य में युद्ध मे शामिल होने के लिये निमन्त्रण भेजा।

उसके अधीनस्थ राजाओ ने आज्ञा का पालन किया। धनुषबाणो से तैयार होकर दो हजार खान आ गये। तीन हजार अश्वारोही सैनिको के साथ तोयकदार कवच धारण किये हुए कच्छ का वल्ल आया। एक हजार योद्धाओ को लेकर सोरठ

(१) उनको भय हुआ कि वैकुण्ठ में जाकर उनकी आजादी छीन लेगा।

(१) का अधिकारी और डरावनी मुखाकृति का प्रसिद्ध धनुर्धारी ककराहुब आले भी आया, उसको अपने तरकश से एक लाख के लिये दूसरा बाण नही निकालना पड़ता था।

इसी समय झालावाड़ का झाला नरेन्द्र आया, जिसके प्रस्थान करने पर सूर्य का प्रकाश धुंधला पड़ जाया करता था। काबा सरदार (२) मकरावन उपस्थित हुआ, जिसके नाम पर देश के देश खाली हो जाते थे। तदुपरान्त काठी का काठी नरेन्द्र आया, जिसके शत्रुओ को कही पर शरण नही मिलती थी। इन सबके अतिरिक्त और भी बहुत-से सामन्त आकर एकत्रित हुए, जिनकी गणना करने मे पुस्तक के लेखक चन्द कवि ने अपने आपको असमर्थ स्वीकार किया है।

इस प्रकार चालुक्य की सेना थी, जो उसके राज्य के प्रत्येक भाग से आकर वहाँ पर एकत्रित हुई थी। इस विशाल सेना को एकत्रित देखकर देहली के गुप्तचरों ने अपने स्वामी को खबर दी थी और विवरण सुनाते हुए उन लोगों ने दिल्ली में कहा—लहराते हुए समुद्र की भाँति चालुक्य की सेना चली आ रही है। उसकी सेना मे लाखों पैदल और हजारो हाथियो के चलने से समुद्र की मर्यादा नष्ट हो गयी है।"

यहाँ पर चौहान की सेना का मैं विवरण नही देना चाहता। कन्हराय उसका प्रधान सेनापति था और वह अपनी पराजय का बदला लेना चाहता था। पिछले दिनों में उसने शहाबुद्दीन को परास्त किया था। उसी प्रकार अब भी उसको अपनी विजय का विश्वास था। उसके सिर पर राजचिह्न, चँवर (३) और छत्र मौजूद था।

हरौल का नेतृत्व पृथ्वीराज स्वयं कर रहा था। निडरराय बीच में था। और पीछे की तरफ की बागडोर परमार के हाथ में थी। इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार किया था।

राजपूतों के युद्ध के समय की एक परिपाटी का यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है। जब दोनो ओर की सेनायें आमने-सामने हुई तो दोनों ओर से दूत, प्राचीन परिपाटी के अनुसार विरोध प्रदर्शन करने के लिए उनके राजाओं के पास

---

(१) वर्तमान सूरत अथवा सौराष्ट्र का एक छोटा प्रान्त।

(२) गुजरात में रहने वाली एक जाति, जिसका व्यवसाय चोरी करना है, वे लोग अब भी वहाँ पर पाये जाते हैं। श्रीकृष्ण के स्वर्ग चले जाने के बाद जब अर्जुन यादव-स्त्रियो के साथ द्वारका से लौट रहा था, तब इन्ही काबा लोगो ने उसको लूट लिया था।

(३) गाय की पूंछ के बालो का बना हुआ चंवर और छत्र; ये राजचिह्न युद्ध मे प्रायः राजा और प्रमुख सेनापति पर नही लगाये जाते कि जिससे शत्रु उन पर आक्रमण न कर सके और वे सुरक्षित रहे।

भेजे गये। युद्ध की तरह के महत्वपूर्ण अवसरों पर यह कार्य भाटों के द्वारा पूरा कराया जाता था। इसलिए युवक सम्राट ने चन्द कवि को ही वल्हरा के पास भेजा। और उससे कहा—"हे चन्द्र तुम चालुक्य के पास जाकर कहो कि मैं शत्रुता का बदला लेने आया हूँ। मुझसे दो भेंटें स्वीकार करो, एक लाल पगड़ी और दूसरी कांचली अर्थात् अंगिया। इन दोनो में से उसे जो अच्छी लगे, वह उसको स्वीकार कर लें। उससे यह भी कह दो कि यह संसार सपने के समान है। हम दोनो में से एक को निश्चित रूप से मरना है।

चन्द ने शत्रु सेना में जाकर दूत के पवित्र कार्य को भली प्रकार पालन करते हुए अपनी ओर से भी अनेक जोशीली बाते कही। चालुक्य ने अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार उनका उत्तर देते हुए कहा— "मैं भीम हूँ और भीम के समान मैं युद्ध करूंगा। जो पिता की गति हुई है। वही बेटे की भी होगी।"

इसके पश्चात् चालुक्य ने भी जगदेव नामक भाट को पृथ्वीराज के पास भेजा। उसने वहाँ पर जाकर क्या कहा, इसका उल्लेख कवि ने नही किया है। उसने उस पर प्रकाश डालते हुए उसे विष भरा हुआ बताया है। चन्द कवि ने अपने राजा की तरफ से बोलते हुए चायुक्य दूत की असम्य भाषा पर कटाक्ष किया और अधिक न कहकर उसको वहीं पर समाप्त कर दिया। चन्दने इतना ही कहा—"गलबल-गलबल गुजराती बोलकर तुम क्या बेकार की वात कर रहें हो।"

उसकी इस बात का यह मतलब निकलता है कि दोनो तरफ की बोली और भाषा में उन दिनों में भी उतना ही अन्तर था, जितना अन्तर आजकल है।

दोनों ओर की सेनाओ के आमने-सामने होते ही कवि का जोश उमड़ पड़ा। वह कहता है—"चन्द के लिए धर्म-क्षेत्र सामने था, सुरलोक का रास्ता यात्रियो से भर गया था और अमर पद प्राप्त कर लिया गया था।"

दोनों तरफ से वहुत समय तक घमासान युद्ध होता रहा। युवक चौहान के आक्रमण करने से शत्रु के बहुत-से लोग मारे गये। उनके नाम और पराक्रम का उल्लेख किया गया है।

"एक पहर (१) तक दोनो तरफ के वीरो की तलवारें जोर के साथ चलती रही। कवचो के टुकड़े-टुकड़े हो गये। लोगों के मारे जाने से इतना अधिक रक्त प्रवाहित होकर सरस्वती (२) नदी मे पहुँचा कि उसमें बाढ आ गयी। योगिनियों ने युद्ध क्षेत्र में अपने खप्पर भर लिये। और पलचरो (३) की अभिलाषा पूरी हुई।

(१) दिन का चौथाई भाग।
(२) अनहिलवाड़ा में बहने वाली नदी।
(३) इस शब्द का अर्थ कुछ स्पष्ट नही है।

"पृथ्वीराज ने शत्रु को देखा और उसने घोड़े की बागडोर को खींच कर उसे आगे बढ़ाया। पृथ्वी भय के मारे काँप उठी। संसार की संरक्षिकायें चारों दिशाये अपने-अपने स्थानों से भाग गयी। देवताओं को कंपकंपी आ गयी। पृथ्वीराज का हाथ स्वर्ग तक ऊँचा उठा हुआ था और जब उसका धनुष खिचकर गोलाकार हो जाता था तो फिर उससे शत्रु को बचाने वाला कोई न था? शिव की समाधि टूट गयी और जब चौहान और चालुक्य में युद्ध आरम्भ हुआ तो शिव के हाथ से माला गिर पडी। प्रत्येक योद्धा की तलवार बिजली के समान चमक रही थी। दोनो तरफ से तलवारो की मार हो रही थी। चालुक्य के सामने पहुँचकर पृथ्वीराज ने कहा—'भीम' तेरा अन्तिम समय आ गयी है, सम्भल जा। भीम ने कहा—'मैं तुझे सोमेश्वर के पास भेजता हूँ।' पृथा ने झपटकर आक्रमण किया और उसकी तलवार भीम के गले पर उसके जनेऊ के पास पडी। गिरते समय चालुक्य ने भी पृथ्वीराज के मस्तक पर तलवार का वार किया। देवताओ ने जयघोष की आवाज निकाली और अफसराओ के विमान युद्ध क्षेत्र के ऊपर मंडराने लगे। चालुक्य के गिरते ही उसकी सेना के पैर उखड़ गये।"

भाट ने भीम के गुणो का वर्णन करते हुए लिखा है—वह देवताओ के विमान पर बैठकर शिवपुर को चला गया। यह विजय पृथ्वीराज को बहुत मँहगी पडी। पन्द्रह सौ घोडे और पन्द्रह सौ प्रसिद्ध शूरमा युद्ध मे मारे गये। इसके सिवा जो लोग जख्मी होकर युद्ध की भूमि मे कराह रहे थे, उनकी सख्या भी पाँच सौ से कम नही थी।

इस युद्ध का वर्णन करते हुए कवि की लेखनी ने जो चमत्कार दिखाया है, उसको यहाँ पर देना आवश्यक तो नही मालूम होता, लेकिन कवि ने उपमाओ की जिस छटा का रगीन चित्र खीचा है, उसको यहाँ पर उपस्थित करना अनुचित भी न होगा।

"पृथ्वीराज ने युद्ध मे विजय पायी। यद्यपि शूर-वीरो के शरीर खून से डूबे हुए थे, फिर भी उसने विजय का शख बजाया। पिता की शत्रुता का बदला ले चुकने के पश्चात् उसका क्रोध शान्त हो गया था। उसके सभी योद्धा आपस मे युद्ध की बाते कर रहे थे। योद्धाओ का यश ही पृथ्वीराज का धन है। वे उस रात को युद्ध क्षेत्र में ही घायलो की देख-रेख करते रहे। उनकी वह रात बहुत लम्बी हो गयी। वे प्रातः-काल की प्रतीक्षा कर रहे थे। रात समाप्त हुई। कमल प्रातः होते ही खिल उठा। रात को जो भौरा उसमे आसक्त रहा था, वह प्रतः होते ही उड़ गया। आकाश के तारे फीके पड गये और रात की कालिमा समाप्त हो गयी। चन्द्रमा अपने-आप विलीन हो गया। स्तुति करने के लिए देवताओ के द्वार खुल गये थे। रात के पक्षी अर्थात् राजा की आँखे फिर बन्द होने लगी थी। देवालयो मे शख बज रहे थे और सूर्य-देवता की यात्रा आरम्भ हो गयी थी।"

इस चमत्कारपूर्ण वर्णन के पश्चात् कवि का ध्यान उन लोगो की तरफ जाता है जो चारो ओर मरे हुए पडे थे और जो अब संसार की गति-विधि से अपना सम्वन्ध तोड चुके थे। उनके सम्बन्ध में वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

"इस पृथ्वी पर न जाने कितने योद्धा उत्पन्न होते हैं और हुए हैं, जो तलवारों के घावों का स्वागत करते हैं। चन्द ने स्वयं अनेक बार उन जख्मो का स्वागत किया है। यह संसार एक स्वप्न की तरह है। इसमे जो कुछ है वह एक दिन नष्ट हो जाता है। सांसारिक सुखो के भोग की अभिलाषा करना मूर्खता है। मृत्यु एक वधिक के समान है। लेकिन युद्ध के द्वारा जीवन का अमरत्व प्राप्त करना ही वीरो का सवसे वड़ा धन है। तलवार की धार से ही अमरत्व प्राप्त होता है।"

"सुरलोक वीरो का स्वर्ग है, वह सुखो से भरा हुआ है। मुसलमानों की जन्नत है और ससार के सभी शूरमा इस स्वर्गलोक का जीवन प्राप्त करने के लिए युद्ध करना अपना कर्तव्य और धर्म समझते है।"

"दिल्ली और अजमेर के चोहान राजा ने अपनी विजय की कामना पूरी की। उसने पिता का वदला लिया और चालुक्य के चौरासी वन्दरगाहो पर अधिकार कर लिया। उसने कच्छरा नामक राजकुमार को सिंहासन पर विठाया और उसको इनमे से दस वन्दरगाह दे दिये। उसको वह उसे दिल्ली ले गया।"

यह कच्छरा कौन था, इसका मैं पता नही लगा सका। उसके लिये मैंने कोशिश की, लेकिन उनमे मुझको सफलता नही मिली। इस नाम से उसकी एक शाखा का अनुमान लगाया जा सकता है, जिसके अधिकार में कच्छ का करद राज्य था।

चौहानो के इतिहास मे गुजरात पर होने वाले इस आक्रमण का सम्वत् १२२४ लिखा हुआ है। लेकिन सोलकियो के भाटो ने भोला भीम के मरने का सम्वत् १२२८ लिखा है। यह अन्तर कोई वडा महत्व नही रखता। इस प्रकार उस समय का सम्वत् निर्धारित करने के लिए जो आधार मिल जाता है, उसका समर्थन हांसी के शिला लेख से भी होता है।

यह एक ऐसा समय था, जव इस देश मे प्राय. सभी हिन्दू-राज्य नष्ट हो रहे थे। यहाँ पर मैंने जिस शिला-लेख का उल्लेख किया है। उसको मैं हांसी राज्य में स्थित पृथ्वीराज के टूटे-फूटे महल से लाया था। उसके वाद तुरन्त उसको मैंने मार्क्विस हेस्टिंग्स के द्वारा कलकत्ता की एसियाटिक सोसाइटी मे पहुँचाने के लिए भेज दिया था। उसके सम्बन्ध मे फिर आज तक हमें कोई समाचार नही मिला।

यह शिला-लेख केवल इसीलिए विशेषता नहीं रखता कि इसके द्वारा अन्तिम हिन्दू सम्राट के समय का पता मालूम होता है, वल्कि इसके द्वारा उसके दूसरे सम-

कालीन राजवशों के समय का निर्णय करने मे भी सहायता मिलती है। उन राज्यो मे अनहिलवाडा के साथ हुए युद्ध का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। एक और बात है, वह भी कम महत्वपूर्ण नही है। वह है आम्बेर के राजाओ का समय निर्धारित करना।

राव पिटजूण (प्रद्युम्न) उन दिनो मे अम्बेर का अथवा आमेर का राजा था और वह चौहान के सामन्तो में प्रधान माना जाता था। उसका नाम हाँसी के शिलालेख में भी हम्मीर के साथ आया है। जिस युद्ध मे पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया था, उस वर्णन मे भी राव पज्जूण का नाम आया है और उसके समय का सक्षेप मे कुछ वर्णन भी किया गया है।

उस वर्णन मे आया है कि उसने किस वहादुरी और बुद्धिमानी के साथ युद्ध के मृत्यु-स्थल पर खोई हुई सम्राट की कँलगी को खोजकर प्राप्त कर लिया था। भाट ने उसकी इस सफलता के लिए और कँलगी को फिर से प्राप्त करने का वडा अच्छा वर्णन किया है। (१) हम इसको मारकेश्वर अथवा मारक के स्वामी के द्वारा सफल आक्रमण मान लेते हैं।

बालमूलदेव सम्वत् १२२८ सन् ११७३ ईसवी (२) में सिहासन पर बैठा। इस वश के सम्बन्ध मे एक आश्चर्य की बात यह है कि आरम्भ से अन्त तक उसके सभी राजा एक ही नाम के हुये। इस वश ने अनहिलवाडा पर इक्कीस वर्ष अर्थात् सम्वत् १२४६, सन् ११६३ ईसवी तक राज्य किया। राजपूतो के इतिहास मे इस समय का विशेष महत्व है। इसी वर्ष दिल्ली और कन्नौज के राज प्रासादो पर इस्लाम का झण्डा लगा था इसी वर्ष पराक्रमी योद्धा पृथ्वीराज कग्गर (३) के समीप युद्ध करते हुए मारा गया और कन्नौज का सम्राट युद्ध से भागकर तथा गगा मे जाकर डूब गया था।

---

(१) रासो मे यह वर्णन पज्जूण छोगा के नाम से किया गया है। लेकिन कथा वस्तु मे कुछ और है। चालुक्य राज भोला भीम ने राणिङ्ग के बेटा महामली मकवाणा के सिर पर छोगा अर्थात् तुर्रा बंधवाकर सेनापति बनाया और सोनिगरो की राजाधानी, कदाचित जालौर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। उस समय पृथ्वीराज ने कुशवाहा (कछवाहा) सामन्त पज्जूण को सेनापति नियुक्त किया और मकवाणा के साथ युद्ध करने के लिये भेजा। उस युद्ध में पज्जूण के बेटे मलयसी ने मकवाणा के सिर का छोगा अपने कब्जे मे करके पिता को लाकर भेट किया।

(२) मूलराज दूसरा अथवा बालमूलराज १२३४ विक्रमी, सन् ११७७ ईसवी मे गद्दी पर बैठा। उसने केवल दो वर्ष राज्य किया।

(३) घग्घर।

इस प्रकार यद्यपि अनहिलवाडा के सभी प्रमुख राजाओं का अंत हो गया था। लेकिन वालमूल देव तक यह दुरवस्था नही आई थी। और उसको उत्तराधिकारी बीसल देव वाघेला (१) हुआ। उसका शासनकाल सम्वत् १२४६ सन् ११६३ ईसवी से आरम्भ हुआ था। उसको वाघेला वश का पहला राजा क्यो कहा जाता है, इसका कारण मैं मालूम नही कर सका। इसलिये कि नाम बदलने के सम्बन्ध में जो कथानक मिलता है, वह कुमारपाल के बेटे के साथ सम्बन्ध रखता है, उससे यह जाहिर होता है कि सबसे पहले मूलदेव ही इस नाम से हुआ था।

यह परिस्थिति कोई अधिक महत्वपूर्ण नही है। इसलिये कि बीसलदेव के बाद के शिला लेखो में भी इस वंश का पुराना नाम चालुक्य अथवा सोलकी आया है। इस राजा ने पन्द्रह वर्षों तक शासन किया। परन्तु हमको इसके सम्बन्ध मे एक भी उल्लेख योग्य घटना नही मिलती।

भीमदेव सम्वत् १२६४, सन् १२०८ ईसवी (२) मे सिंहासन पर बैठा। उसने बयालीस वर्ष शासन किया। राज्यारोहण के बीस वर्ष पश्चात् उसके मंत्रियो ने चित्तौर के मंदिरों का निर्माण कराया, इससे यह प्रमाणित होता है कि जिन इस्लामी सेनाओं ने दिल्ली, कन्नौज और चित्तौर के राज्यो को मिटाया था वे अनहिलवाड़ा को किसी प्रकार की क्षति नही पहुँचा सकी। जो शिला-लेख आबू मे प्राप्त हुए, उन सबमे लिखा है कि वह सार्वभौम शासक था। पृथ्वीराज ने जिनको कुछ समय के लिये स्वतन्त्र करा दिया था। आबू और चन्द्रावली के परमार राजा भी फिर उसकी अधीनता मे आ गये थे। इससे अनुमान किया जा सकता है कि बल्हरो की ताकत न तो दक्षिण मे कम हुई थी और न पश्चिम मे।

बलभी के शिला-लेख से—जिसमे अर्जुनदेव के गुणो का उल्लेख किया है—यह बात साफ-साफ जाहिर हो जाती है कि लार प्रदेश ही नही, बल्कि सम्पूर्ण सौराष्ट्र पर

---

(१) बाल मूलराज के पश्चात् बीसलदेव का गद्दी पर बैठना गुजरात के इतिहास से साबित नही होता। पता नही टाड साहब ने कैसे इसको लिखा है। एक पट्टे मे लिखा है कि बाल मूलराज ने सम्वत् १२३२ वि० की फागुन कृ० १२ से १२३४ वि० की चैत्र सु० १४ तक दो वर्ष एक मास राज्य किया। उसके बाद उसके भाई भीम देव रमोला भीम ने राज्य किया।

(२) बाड़मेर के करीब किराड़ू के वि० सं० ११३५ सन् ११७९ ईसवी के लेख से जाहिर है कि वह भीमदेव के राज्यकाल मे लिखा गया था। इसी तरह डा० बुहलर द्वारा प्रकाशित ग्यारह लेखों में से नवां ताम्र लेख सम्वत् १२९५ का है। इसके बाद १२९८ सम्वत् का लेख त्रिभुवनपाल के समय का है। इससे साबित है कि भीमदेव ने सम्वत् १२३५ सन् ११७९ ईसवी से स० १२९८ सन् १२४१-४२ तक राज्य किया।

उसका शासन था। यह बात जरूर है कि अरब के मल्लाहो को समुद्र के किनारे आबाद हो जाने के आदेश प्राप्त हो चुके थे। अनहिलवाडा के गौरव का यह एक बड़ा प्रमाण है। यदि आबू और तरगी के पहाडो पर चन्द्रावती नगरी मे एवम् समुद्र के किनारे एक साथ निर्मित मन्दिरो की उन्नति का प्रमाण न भी माना जाय तो भी यह कहा जा सकता है कि यह राज्य उन दिनो मे श्रेष्ठता की पराकाष्ठा पर यद्यपि नही था, परन्तु वह कही किसी प्रकार निर्वल भी नही हुआ था।

इसको दूसरी तरह यो कहा जा सकता है कि यह इतिहास और लोक कथाओं मे प्रसिद्ध महान राजा कर्ण और सिद्धराज के पश्चात् तीनो वालो (१) के शासनकाल मे कुछ कमजोरी भी आयी थी तो भी क्या इस देश का आर्थिक वैभव अपनी पूरी उन्नति पर नही था? एक शताब्दी के बाद विदेशी हमलो में बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर भी वह इतना सम्पन्न बना रहा था कि इन मन्दिरो में से प्रत्येक की श्रेष्ठता के लिये करोडो की सम्पत्ति श्रेष्ठियो के कोष मे से दी गयी थी। तब क्या यह नही कहा जा सकता कि यहाँ के श्रेष्ठी लक्ष्मी के वैभव मे राजाओ से आगे थे।

भीमदेव और उसके सामन्त धारा वर्ष ने मिलकर मुसलमानो के हमलो का मुकाबिला किया था और बादशाह कुतुबुद्दीन को युद्ध मे परास्त किया था। (२)

इस युद्ध मे कुतुबुद्दीन घायल हुआ था। यही नही, बल्कि उसके बाद आने वाले आक्रमणकारी भी अनहिलवाडा पर उस समय तक विजयी नही हो सके जब तक आधी शताब्दी के पश्चात् क्रूर अल्लाह (३) का शासन चारो तरफ कायम नही हो गया। इन समस्त बातो की प्रामणिकता अनेक प्राचीन ग्रन्थो से प्रमाणित है।

अर्जुन देव (४) सम्वत् १०३६ सन् १२५० ईसवी मे सिंहासन पर बैठा। उसने तेईस वर्ष तक शासन किया। वह अपने पिता की नीति का अनुयायी था। उसने बाहरी हमलो से अपने राज्य की रक्षा तो की लेकिन उसके साथ-साथ वह उन मुसलमानो के साथ मित्रता भी कायम करता रहा, जो तेजी के साथ उसके राज्य की तरफ चारो ओर से बढते आ रहे थे। फिर भी चालुक्य चक्रवर्ती, चालुक्य सार्वभौम और

---

(१) बाल मूलराज, भोला भीम और कर्ण गैला।

(२) यह युद्ध ई० सन् ११९७ मे हुआ था।

(३) अलाउद्दीन खिलजी।

(४) टाड साहब की तिथियो और तारीखो के साथ-साथ राजाओ के क्रम मे भी भूले हैं। बीसलदेव बाघेला वि० स० १३०२ मे त्रिभुवनपाल के बाद गद्दी पर बैठा था। उसको बाल मूलराज का उत्तराधिकारी बना दिया और बीसलदेव के उत्तराधिकारी अर्जुनदेव को भीमदेव के बाद गद्दी पर बिठा दिया। इस प्रकार की अनेक भूले हैं। [अनुवादक]

सदा विजयी आदि उसकी पदवियो से जाहिर होता है कि उसकी शक्ति में कोई कमजोरी नही आयी थी।

यह शिला-लेख एक आज्ञा पत्र है, जो उसके जल-सेनापति हुरमज निवासी नूरुद्दीन फीरोज के नाम—जो सोमनाथ के निकटवर्ती विलाकुल बन्दर का मालिक था और उसके अधिकार मे देवबन्दर एवं द्वीप के स्वामी दूसरे चावडा सरदारों के नाम लिखा गया था। उसमें उनको व्यापारी सामान के कर की देखभाल करते रहने के लिए आदेश दिये गये थे।

यह कर सोमनाथ मे स्थापित सूर्य मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये दे दिया गया था चावडा लोग अब तक सूर्य के भक्त थे। इस उल्लेख से चार प्रमुख बाते जाहिर होती हैं। पहली यह कि सोमनाथ अथवा चन्द्रमा के स्वामी का मन्दिर सोरो द्वारा बनवाया हुआ विशाल सूर्य-मन्दिर है। उसी के कारण इस प्राय:द्वीप का नाम सौराष्ट्र पड़ा है। उसको वैक्ट्रिया के ग्रीक राजा सायराष्ट्रीन कहा जाता था।

दूसरी बात यह है कि देवद्वीप और पवित्र नगर सोमनाथ के चावड़ा राजा अधीन होते हुए भी दीर्घकाल तक अपनी इस प्राचीन राजधानी पर अधिकार किये थे और वहाँ से निकलने के बाद उन्होने ७४६ ईसवी मे अनहिलवाडा बसाया था।

तीसरी बात यह है कि वलभी के अधिकारी बालरायो का अपना सम्वत चलता था जो विक्रम सम्वत ३७५ अथवा ३१९ ईसवी से आरम्भ हुआ था।

चौथी बात यह थी कि हुरमज बन्दर का स्थान अरबी अमीर १२५० ईसवी में अनहिलवाडा के एक जहाजी बेडे का नायक था।

सरङ्गदेव सम्वत् १३२९ सन् १२७३ ईसवी मे गद्दी पर बैठा। उसके शासन के दिन कठिनाइयो से भरे रहे और उसका इक्कीस वर्ष का शासन बहुत लम्बा हो गया था। लेकिन अब वह समय तेजी के साथ समीप आ रहा था, जब कि अनहिलवाडा की अहङ्कार से भरी हुई गर्दन झुकने को थी।

गैला कर्णदेव सम्वत् १३५० सन् १२९४ ईसवी मे शासक हुआ। उन दिनो में हिन्दू राज्यो मे और विशेषकर राजपूत राजाओ के यहाँ कुछ ऐसे परिवर्तन हो रहे थे कि उनमे अपनी रक्षा के लिए उनको सुलेमान की तरह बुद्धिमानी से, काम लेने की आवश्यकता थी। इसी प्रकार के दिनों मे अनहिलवाडा के सिंहासन पर एक अयोग्य राजपूत बैठा।

गैला का यही अर्थ होता है। गोहिल नही; जैसा कि अबुलफजल ने उसका अर्थ लगाया है। वंशराज की गद्दी पर इस वंश का कोई भी राजा नही बैठा। निर्दय अलाउद्दीन—जिसको सम्बोधन करने के लिये हिन्दुओं के पास 'खूनी' अथवा 'रक्त का प्यासा' के सिवा और कोई शब्द नही था और जो हिन्दुस्तान के प्रत्येक राजपूत वंश मे अनहिलवाड़ा आया था और अन्य राज्यो की तरह उसने इसको भी पराजित किया था।

अनहिलवाडा की स्थापना के बाद पाँच सौ बावन वर्षों की बल्हरों की अटूट सत्ता गैलाकर्ण के साथ-साथ समाप्त हो गयी। राजधानी मे और उसके आस-पास बाघेलावंश के छोटे-छोटे सरदार अपनी जागीरो पर कायम रहे। परन्तु उनको आक्रमणकारी मुस्लिम की अधीनता मजूर करनी पडी थी। कालीकट की स्वाभिमानी दीवारें गिराकर मिट्टी मे मिला दी गयी।

इस घटना के कितने ही वर्षों के बाद अनहिलवाडा के बचे हुए राज्य पर सहारन के रूप मे एक नये वश का अधिकार हुआ, जो प्राचीन किन्तु अब टाक जाति का था। लेकिन इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेने के कारण सहारन ने मुजफ्फर नाम प्रसिद्ध करके अपने नाम और जाति को छिपा लिया था। उसका लड़का (१) मशहूर अहमदशाह था, जो राजाओ की परम्परा कायम करना चाहता था। इसलिए उसने गुजरात की राजधानी सरस्वती के तट से हटा कर साबरमती के तट पर स्थापित की।

प्राचीन राजधानी चन्द्रावती के लाये हुए कीमती सामानो से जब अहमदाबाद का निर्माण हो गया तो लोग अनहिलवाडा को भूल गये। और जब अहमदशाही एवम् उनके बाद वाले अधिक गौरवशाली तैमूर वंश के सुल्तान भी भुला दिये गये और उनका अधिकार गायकवाड राजाओ के हाथो मे चला गया तो उसके बाद अहमदाबाद की बारी आयी और उस नगर की भी उपेक्षा की गयी।

दामा जी ने अपनी विजय की आकाक्षा से एक नया नगर बसाया अथवा यों कहा जाय कि बसराज के नगर के चारो ओर एक परकोटा तैयार कराया, जो अब अनहिलवाडा पट्टण के नाम से नही, बल्कि वह पट्टण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यहाँ पर जो वर्णन किया जा रहा है, कुछ लोगों के लिये एक साधारण इतिहास और राजाओ के शासन तथा उनकी मृत्यु की घटनाओ के सिवा और कुछ नही है। परन्तु जो लोग इतिहास की इन भीतरी और गम्भीर परिस्थितियो पर दूर तक विचार करेगे, उनको मनुष्य-जाति के बहुत छिपे हुए पहलू इस प्रकार के पन्नो मे देखने को मिलेगे। उनके भीतर सभी कुछ देखने को मिलेगा। उनमे जीवन का उत्थान और पतन होगा, निर्माण और विनाश होगा एवं जीवन और मरण भी होगा। उनमे सब-कुछ होगा। उनमे वह सभी देखने को मिलेगा, जो साधारण नेत्रो से कभी देखने को नही मिलता और न यह समझने को मिलता है कि बडी-से बडी शक्तियो का निर्माण और विनाश कैसे हुआ करता है। लेकिन यह सब उसी दशा मे इन पृष्ठों, उनकी पक्तियो और उनके विवरण से भरे हुए उल्लेखों को समझने को मिलेगा, जब बडी गम्भीरता के साथ तन्मय होकर उन पर विचार किया जायगा। वास्तव मे इसी का नाम इतिहास है और इसी को इतिहास दर्शन कहा जाता है।

---

(१) असल मे अहमदशाह मुजफ्फर का पौत्र था।

इतिहास मे क्या नही मिलता। मनुष्य जाति का सामाजिक और धार्मिक जीवन, पुरानी रीतियाँ, प्राचीन परम्पराये और उनके अच्छे-बुरे परिणाम, राजनीति की चाले, शासन के दृश्य, व्यापार के विकास, पुरानी जातियों के विस्तार, उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, शिक्षा और सभ्यता के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की कलाये और जीवन के भिन्न-भिन्न मार्गों पर मनुष्य जीवन के अद्भुत एवम् अनोखे चमत्कार ?

इस प्रकार का सजीव चित्रण और वर्णन इतिहास ही मे मिलता है। किसी दूसरे के साथ उसकी उपमा नही दी जा सकती। यह सब सही है। लेकिन इसके साथ-साथ यह भी सही है कि जीवन के इन सजीव दृश्यों को देखने और समझने के लिए अन्तरता की अभिलाषा होनी चाहिए। उसके अभाव में इतिहास-दर्शन का कोई महत्व काम नही करता।

एक बात है। इन प्रदेशों मे उस प्रकार की सामग्री का जरा भी अभाव नही है, जो एक ऐतिहासिक शोधक एवम् अन्वेषक के लिए आकर्षण का नाम करती है। चाहे उसके मौलिक आधार प्रभावशाली हों अथवा न हो। उस देश की सामग्री के मुकाबिले में—जहाँ पर हमने जन्म लिया है अथवा इस देश के अन्य प्रदेशों की समता में—कुछ अन्तर हो सकता है, विशेषता अपनी-अपनी होती है और परिस्थितियाँ भी अपनी-अपनी होती हैं। किसी भी अवस्था मे यहाँ के अनुसंधान मे जो दिलचस्पी पैदा होती है, वह साधारण नही है।

शिला लेखो के आधार पर चरित्रों और इतिहास की तारीखो का निश्चित करना, भाटो की कविताओ से जीत, तुरुष्क अथवा तक्षक, वल्ल, अर्यस्प, हूण काठी तथा अन्य विदेशी जातियो के उत्तरी एशिया से चलकर इन प्रदेशो में बसने के क्रम और सिलसिले का खोजना, विभन्न प्रकार के जीवन की परम्पराओ पर विचार करना, जिनको वे लोग अपने पूर्वजो से लेकर यहाँ पर आये और यहाँ के लोगों को हटाकर आबाद हो गये, उनके रहन-सहन और यहाँ के लोगो के साथ उनके घुल-मिल जाने से जो परिवर्तन दोनो तरफ के लोगो मे हुए, उनके सम्बन्ध मे अनुमान लगाना एवम् इस प्रकार का भी शोध-कार्य उसके साथ-साथ करना कि उनकी प्राचीन आदते, रूढ़ियाँ और परिस्थितियाँ अब कितनी बाकी रह गयी हैं और उनको खोकर उन्होने वदले में क्या प्राप्त किया है, ये सभी ऐसे विषय हैं, जो किसी भी विचार शील व्यक्ति के लिए कम महत्व के नही हैं।

मैं तो सभी प्रकार की बातो को सोच-समझकर यह कहने के लिए तैयार हूँ कि इस सौर प्रायद्वीप मे ऐतिहासिक शोध के कार्य के लिए जो सुविधाये प्राप्त हैं, वे सम्पूर्ण भारत के किसी भी अन्य भाग में प्राप्त सुविधाओ से बढकर और उपयोगी हैं।

यही वह भूमि है, जहाँ पर बौद्ध मत का श्रीगणेश हुआ था, यही वह भूमि है, जहाँ पर विभिन्न प्रकार के मतो और सम्प्रदायो ने जन्म लिया था, यही वह भूमि है, जहाँ पर किसी एक विचारधारा को मजबूती के साथ पनपने और स्वस्थ होने के अवसर नही प्राप्त हुये, कच्छ की खाडी से सिन्ध के डेल्टा तक फैला हुआ सूर्य-पूजक सोरो का प्रान्त एरिया और वैक्ट्रीयाना के अग्नि-पूजको के लिये सिन्ध नदी के द्वारा यद्यपि विभाजित था, लेकिन बौद्ध लोगो के लिये उसमे कोई रुकावट नही पडी। उनकी अनुश्रुतियो से प्रमाणित होता है कि इस्लाम के आने के बहुत पहले ही उनके महा-भिक्षु पश्चिम की यात्रा करने के लिये इस नदी को पार किया करते थे।

जरदुश्त और सामानियो की भूमि एरिया मे बौद्ध मत के लिये आर्य और आर्यपथ शब्दों के अर्थ का अनुमान हम उसी प्रकार लगा सकते हैं, जिस प्रकार इस मत के अर्थ और अभिप्राय का। उनके ईश्वरत्व प्राप्त धार्मिक आचार्यों मे से इस तेईसवे आचार्य का समय ६५० वर्ष ईसा से पहले का था, उन दिनो मे पश्चिमी एशिया से आने वालो के बडे गिरोह हिन्दुस्तान मे चले आ रहे थे।

जैनियो के पहाडो पर मिलने वाले शिला-लेखो और सिक्को के अक्षरो एवम् चिह्नो मे हिन्दू अक्षरो तथा चिह्नो की समता नही है। वे कदाचित् चाल्डियन (१) अक्षरो और चिह्नो का साफ-सुथरा रूप है। वे या तो सीधे यूफ्राटीस से लिये गये होंगे अथवा एरिया होकर आये होगे। हमारे इस अनुमान का कुछ लोग विरोध कर सकते है। लेकिन मैंने कुछ आधारो पर ही इस प्रकार की कल्पना की है, मैं आशा करता हूँ कि इन पहाडो के प्राचीन खण्डहरो और शिला-लेखो के आधार पर अन्वेषण करने से कुछ और भी जानकारी प्राप्त हो सके।

गृह-निर्माण कला के सम्बन्ध मे बौद्ध और जैन-मन्दिरो से अब तक जो सामग्री प्राप्त हो सकी है, उसके आधार पर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इसके मौलिक सिद्धान्तो को यदि वे लोग अपने धर्म के साथ पश्चिमी एशिया से नही लाये थे तो भी उन्होंने यहाँ आकर जो ग्रहण किया है, उसका निर्माण एक ऐसे रूप में हो गया है कि उसकी अपनी एक स्वतन्त्र शैली बन गयी है। ऐसा होना अत्यन्त स्वाभाविक है और वे ससार के अन्य स्मारको में भी कुछ इसी रूप-रेखा में मिले हैं।

आठवी शताब्दी मे हिन्दुस्तान के 'टायर' के द्वारा बाहर से मँगाये हुये सामान के विवरण को देखकर यही कहा जा सकता है कि पुराने समय से चालू व्यापार के कारण इस प्रकार की परिस्थितियाँ स्वाभाविक और सम्भव होती हैं।

मेरे यह कहने पर कि चरित्रो, ऐतिहासिक घटनाओ, सिक्कों और शिला लेखों से इतनी अधिक सामग्री प्राप्त हो जाती है कि उसके द्वारा अनहिलवाडा और उसके

---

(१) अत्यन्त प्राचीनलिपि, जिसमें लैटिन अक्षरों का प्रादुर्भाव बनाया जाता है।

अधीन राज्यों का क्रमबद्ध इतिहास लिखा जा सकता है तो उस दशा मे प्रश्न पैदा होता है कि मैंने स्वय उसके लिए प्रयास क्यो नही किया ?

इसका उत्तर सीधा और सक्षेप मे यही हो सकता है कि मुझे इन दिनो में अपने स्वास्थ्य पर बल और भरोसा नही रहा। उस दशा मे मेरे लिए जो सम्भव था, उसी को मैंने पूरा करने का प्रयत्न किया है, अपनी खोजो के आधार पर मैंने जो सामग्री एकत्रित की है, उससे इतिहास-लेखको को सहायता मिल सकेगी, यही समझ-सोच कर मैंने सतोष अनुभव किया है। इसके साथ-साथ हमने यहाँ पर टूटी हुई कड़ियो को जोड़ने की चेष्टा की है, जो पश्चिमी भारत के बल्हरा-राजाओ के इतिहास को ईसवी सन् के साथ जोडने का काम करते हैं।

गुर्जर राष्ट्र (भाषा गुजरात और सौराष्ट्र) (गूजरो और सोरो का प्रदेश) के संयुक्त क्षेत्रो मे ही बल्हरो का राज्य है। आवश्यताओ के अनुसार, इसी क्षेत्र मे विभिन्न स्थानो पर उसकी राजधानियो की स्थापना होती रही है। हम अपनी खोजो मे तीन बार राजधानी के स्थान परिवर्तन की सामग्री प्राप्त कर सके है। मेवाड़ के इतिहास के अनुसार—राजवशो के परिवर्तन मे—प्रथम राजवश का सस्थापक उनका पूर्वज सूर्यवशी चावडा कनकसेन (१) था। उसकी राजधानी उत्तर-प्रदेश में लोकोट थी। ढाक अथवा मूणीपट्टन में वे रहा करते थे। वहाँ से उन्होने बलभी की स्थापना की, जिसके सम्बन्ध मे शिला लेख मिल जाने से यह प्रमाणित हो चुका है कि इस नगर की स्थापना के बाद उसका अपना सम्वत् जारी हुआ। वह ३१६ ईसवी से आरम्भ हुआ था।

पाँचवी शताब्दी में पार्थियनों, जेट, हूणों और काठियो अथवा इन समस्त जातियो के मिले हुए समूह के आक्रमण से जब यह नगर—जहाँ पर जैनियों के चौरासी मन्दिरो के घन्टे बजा करते थे—नष्ट हो गया था, तब इस शाखा के लोग पूर्व की तरफ चले गये और अन्त मे चित्तौर मे जाकर उस पर अधिकार कर लिया। उन दिनो में इस प्रदेश की राजधानी सोमनाथ पट्टण मे—जिसको लारिक भी कहा जाता था—थी। आठवी शताब्दी के मध्यकालीन दिनो मे इसके नष्ट होने पर अनहिलवाड़ा मे राजधानी स्थापित की गयी और वहाँ के उल्लेखो के अनुसार, यह नगर चौदहवी शताब्दी अर्थात् बाल-का-राय की पदवी के अन्त होने के समय तक राजधानी बना रहा।

अन्यान्य लेखको के मतो के अनुसार, इन राजाओ की योग्यता और महानता प्रमाणित होती है, जो शिला लेख और सिक्के प्राप्त हुए हैं, वे भी इसका समर्थन करते

(१) इस राजा का आक्रमण दूसरी शताब्दी मे हुआ था, अगर इससे पहले होता तो इसको विल्सन के इतिहास राजतरंगिणी का कनक्ष माना जा सकता था।

हैं। इन सिक्को पर बौद्ध अक्षर पाये जाते हैं। इसलिये कि बौद्ध-धर्म के साथ बल्हरों का घनिष्ट और अटूट सम्बन्ध था।

इन राजाओ की व्यावसायिक योग्यता के सम्बन्ध में हम सबसे पहले 'पैरिपलुस' के आभारी हैं, जिसका कर्त्ता इन्ही के राज्य में बरोच में रहता था। यह नगर तब भी चौरासी बन्दरगाहो में से एक था, जबकि अनहिलवाडा मे राजधानी कायम हो चुकी थी। टालमी ने भी बालेकूरो के राज्य का वर्णन किया है। यद्यपि हिप्पोकुरा (१) को हम समझ नही पाये उसे वह राजधानी का नाम बताता है। यह एक ऐसा नाम है, जिस पर हमको वाइजारिटऊम से भी अधिक विस्मय मालूम होता है। उसको उसने वलभी के स्थान पर रखा है। एरिअन से हमको लारिक निवासियो के समुद्री डाके डालने की आदतो का ज्ञान होता है। सचमुच वे इसी कारण सिद्धराज के समय मे राज्य से बाहर निकाले गये थे।

एरियन के समय दूसरी शताब्दी से आठवी शताब्दी में अनहिलवाडा से संस्थापक के समय तक और दसवी शताब्दी मे दूसरे राजवश के अन्तिम राजा के शासनकाल तक राज्य की भी भीतरी हालत कुछ भी रही हो, परन्तु उसके द्वारा बयान की गयी व्यापारिक दशा मे किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया था। इसमें कोई सदेह नहीं।

ग्रीस के प्रतिनिधि द्वारा दूसरी शताब्दी में वर्णित सामग्री आठवीं और बारहवी शताब्दी मे भी यहाँ की प्रसिद्ध मण्डी के चौरासी बाजारो में भरी रहती थी।

कच्छ और खम्भात की खाड़ियों के बन्दरगाहो से बराबर की दूरी पर सरस्वती के किनारे उसकी राजधानी होने के कारण अफ्रीका, मिश्र और अरब के सभी सामान और व्यापारिक माल उसके किनारे पर आकर ठहरते थे। उसका प्रधान बन्दरगाह गजना अथवा खम्भात सौ मील से अधिक दूरी पर नही था और माँडवी भी इससे कुछ ही अधिक फासिले पर था। यदि एण्टवर्प (२) में आसपास के सभी देशो से जहाजो के द्वारा आने-जाने वाले व्यापारिक माल को ढोने के लिये दस हजार गाडियाँ चलती थीं। ऐसी दशा में अठारह राज्यो की राजधानी बने हुए भारत के टायर को सभी प्रकार का सम्मान प्राप्त था। वहाँ पर एशिया के प्रत्येक बन्दरगाह से जहाजो के द्वारा धन आया करता था। उसका सूखे मार्ग से होने वाला व्यापार तारतारी पहाडो तक फैला हुआ था।

---

(१) कोल्हापुर और नासिक, यही दो ऐसे स्थान हैं, जिनमे से किसी एक का इसके साथ सम्पर्क हो सकता है।

(२) बेल्जियम का बन्दरगाह।

इस प्रकार के सभी तथ्य आठवी, दसवी और बारहवीं शताब्दी में अरब के यात्रियो को आश्चर्य चकित कर देते थे। अब हम नीचे की पक्तियों में वरिगाजा और लाल सागर के बीच में होने वाले व्यापारिक पदार्थों और 'चरित्र' में वर्णित पदार्थ की तुलना करेगे। हीरे और मोतियो के बाद उसने ओजिनी कदाचित् (उज्जयिनी) से भेजी जाने वाली मैलो घास के रंग की मलमलो का अधिक वर्णन किया है।

यह अनहिलवाडा के सालू (१) हैं। जो लाल कपडे और रेशम पर तैयार होते हैं। इनका बाजार ही अलग था। अफ्रीका से आने वाला हाथी दाँत पट्टण में आयात का एक प्रमुख माल था। इसमे मालूम होता है कि स्त्रियो मे हाँथी दाँत की चूड़ियो (२) के पहनने का शौक उस समय भी उतना ही व्यापक रूप मे फैला हुआ था, जितना कि आजकल है।

शराब भी बाहर से आने वाली चीजों मे से थी। इस सभी बातों से जाहिर होता है कि उन दिनो का राजपूत भी शराब के प्याले का उतना ही शोकीन था जितना कि वह आज है। एरिअन के विद्वान अनुवादक ने प्रश्न किया है कि यह ताड़ की शराब अथवा ताडी होती थी ?

हमारा कहना है—दोनो नही। इसलिये कि जाल का सुगन्धित रस तो उनके घरो मे ही बहुत था। वे लोग शुद्ध अंगूर की शराब मँगवाते थे। उस शराब के गीत सुलेमान और हाफिज ने बडे शौक के साथ गाये हैं।

सप्त-धातु उन दिनो अनहिलवाडा में पाया जाता था लेकिन विदेशी भूरे रंग के टीन की अपेक्षा देशी टीन तो उसके पास ही प्राप्त किया जा सकता था। क्योंकि मेवाड़ मे जवन की खानो से पता चलता है कि उनमे खुदाई का काम बहुत पहले से होता आ रहा था और वहाँ की पहाडियो मे शीशा, तांबा, टीन और सुरमे बहुतायत से मिलते थे।

एरिअन ने कीमती सुगन्धित अनेक चीजो और अगरागो का वर्णन किया है 'चरित्र' मे लिखा है कि अनहिलवाड़ा मे ऐसे पदार्थों के बिकने का एक अलग बाजार लगता था। जटामासी अथवा बालछल, पीपल, लोबान और गोमेदक (३) के विषय

(१) एक प्रकार की ओढनी।

(२) इन चूड़ियो से प्रायः स्त्रियाँ हाथ के गट्टे से कोहनी तक का हिस्सा भर लेती है। मैंने किसी दूसरे स्थान पर पत्थर की दो मूर्तियो का उल्लेख किया है, जो सिनाई पर्वत के प्राचीन गिरजाघर के द्वार पर बनी हुई हैं। यह स्थान टैर्न और गैरोनी के जकशन के पास हैं। वे मूर्तियाँ पूरे तौर पर एशियाई पहनावे की मालूम होती हैं और वे कदाचित् पश्चिमी गाँथ लोगो के समय की हैं।

(३) गोमेदक पत्थर का प्रचलन पूर्वी देशो मे अधिक है और इसका प्रयोग अधिकतर तावीजो मे किया जाता है।

मे भी एरियन ने लिखा है कि ये चीजे मीनागढ से दूसरे स्थानो को भेजी जाती थी। उसका कहना है कि वहाँ पर एक पार्थिअन अधिकारी रहता था, जो गुजरात से कर वसूल किया करता था।

गोमेदक के अतिरिक्त ये सब चीजे तिब्बत में पैदा होती हैं और इस चक्करदार मार्ग से बचने के लिये सिंधु नदी का रास्ता ही एक सीधा रास्ता था। डी गुइग्नीस् (१) ने दूसरी शताब्दी मे इराडोसीथिक विस्फोट के सम्बन्ध मे और कासमस (२) ने छठी शताब्दी मे हूणो के आक्रमण के सम्बन्ध मे लिखा है।

विस्फोट का समय यूति अथवा जेट लोगो का समय था। उसका वर्णन मैंने यादवो के इतिहास मे किया है। इन प्रदेशो में अब तक बहुत बडी संख्या मे प्राचीन पदक और चट्टानों पर लिखे हुए लेखो को इन्ही इराडोपार्थिक अथवा इराडोगेटिक हमलावरो से सम्बन्धित मानना चाहिए। दूसरे कीमती पत्थरो की तरह गोमेदक और सुलेमानी पत्थर गुजरात मे राजपीपली नामक स्थान पर पाया जाता है।

मेरे पास एक फूलदान है, जिसे मैंने सिन्धिया के डेरे पर खरीदा था। वह यूनानी कारीगर का है। पजाब मे एकत्रित किये हुए बहुत से गोमेदक पत्थर, जिन पर नक्काशी का काम होता है और सिकन्दर की जीत के बहुत से दूसरे पदार्थ भी हैं, उनसे पता चलता है कि उन दिनो में ये चीजे बडी तादाद मे यहाँ पर मौजूद थी।

एरियन के द्वारा विभिन्न प्रकार के रेशमी कपडे भी बाहर जाने वाले पदार्थों में लिखे गये हैं और 'चरित्र' में लिखा है कि पट्टण के चौरासी बाजारो मे से एक बाजार इनके लिए था। यह सच है कि पश्चिमी भारत के इस व्यावसायिक केन्द्र में रेशमी कपडे का व्यापार निकटवर्ती नगर के बाजार तक ही सीमित नहीं था। बल्कि यह भी अनुमान किया जा सकता है कि मुल्तान, सरहिन्द और दूसरे उत्तरी प्रदेशो से भी बल्हरो की राजधानी मे रेशम आया करता था।

प्राचीन पश्चिमी लेखको ने एक स्वर में सैरिका को चीन देश के दक्षिण-पूर्व मे माना है। परन्तु हमको मालूम होता है कि रेशम के बाजार के लिए काकेशस पहाड़ को पार करने का कोई कारण नही था। सरहिन्द अर्थात् हिन्द (भारत) के सीमा-प्रान्त के सिरसे ही रेशम की प्राप्ति होती थी। (३)

---

(१) एक फ्रांसीसी प्राच्यविद्याओ का जानने वाला था और वह एक प्रसिद्ध लेखक भी था।

(२) छठी शताब्दी का वह एक अच्छा लेखक था। वह पहले व्यापारी था और बाद मे पादरी हो गया।

(३) जिस प्रकार लारिस 'लार का देश' का सक्षिप्त रूप है, उसी, तरह 'सिर'

यह कोई असम्भव बात नहीं है कि एरिअन के समय मे पंजाब किसी इण्डोग्रीशिअन अथवा इण्डो-गेटिक राजा के अधिकार मे रहा हो। क्योकि (डेरिअस) के समय से ही, जो इसको पारसी साम्राज्य का सबसे अधिक धनी प्रान्त मानता था, पंजाब हमेशा से झगडे की जड़ रहा है। रेशम के व्यापार के लिये ही उज्जैन के पोरस नामक राजा ने (आगस्टस) के पास राजदूत और यूनानी भाषा में लिखा हुआ एक पत्र भेजा था। इससे जाहिर होता होता है कि उन दिनो मे इन लोगो का मध्य भारत में आगमन हो चुका था।

इस राजा को (राना) लिखा होने के कारण डाक्टर विन्सटे ने उसको मेवाड़ के राणाओ का पूर्वज मान लिया है। यह एक विचित्र बात है। यदि राजपूत राजाओं मे सबसे अधिक शक्तिशाली राणा लोगो और गुजरात के हितो के सम्बन्धो की जानकारी होना सम्भव हो तो हम यह प्रमाणित कर सकते हैं कि वैरिगाजा और नलकुण्डा का व्यवसाय इतना प्रसिद्ध था कि इन राजपूत राजाओ और रोम के बादशाहो मे सम्बन्ध कायम होना अत्यन्त जरूरी हो गया था। यदि प्रारम्भिक काल का कोई ऐसा इतिहास मिल सके, जिसमे मिली हुई सामग्री सत्य और तथ्य पर अधारित हो तो इस पर प्रकाश डाला जा सकता है, जो इस समय अनुमान और कल्पनाओ पर चल रहा है।

पूरी जुम्मेदारी के साथ हम यह प्रमाणित करने के लिये तैयार हैं कि उस समय राजपूत राजाओ मे सबसे अधिक शक्तिशाली राणा लोगो का कल्याण गुजरात पर निर्भर ही था, बल्कि उन्होने वास्तव मे प्रथम बल्हरा राजाओ के रूप मे दूसरी शताब्दी मे कनकसेन से लेकर पाँचवी शताब्दी मे शीलादित्य के समय तक, जबकि इण्डो-सीथिक आक्रमणकारियों के द्वारा बलभी का नाश हुआ, गुजरात मे राज्य किया था।

मैंने किसी दूसरे स्थान पर लिखा है कि भारत की एक अति प्राचीन और शक्तिशाली जाति परमार है। उसको आमतौर पर पंवार कहा जाता है। इस जाति के नाम के कारण उसका बिगड़ा हुआ रूप एक व्यक्ति का नाम बन गया, जिससे (आगस्टस) से पत्र-व्यवहार करने वाले इस वंश के राजा, और सिकन्दर के विरोधी राजा—दोनो के नामो मे एक बड़ा भ्रम पैदा हो गया है।

मैं यह भी सिद्ध करने के लिये तैयार हूँ कि राणा का सबसे ऊँचा पद उज्जैन के इसी वंश मे सम्बन्ध रखता था और धार के उमरकोट का पदच्युत सोढ़ा जातीय राजा अब भी उसको धारण किये हुए है। यह परमारो का एक छोटा-सा जिला था, जो किसी समय सतलज से समुद्र तक पश्चिमी भारत के एक मात्र शासक

भी राजनीतिक अथवा भौगोलिक दृष्टिकोण से प्रयोग किया हुआ एक साधारण शब्द है। 'सिर का हिन्द' अर्थात् हिन्द का सिर का छोटा रूप है।

थे। मेवाड के पुराने राजाओ का पद 'रावल' था। उसके बाद जब तेरहवीं शताब्दी मे मरुदेश की राजधानी मण्डोर पर विजय प्राप्त की तो उसके बाद उन्होंने राणा का पद धारण किया।

दूसरी शताब्दी मे एरियन के वर्णन को लेकर, लालसागर के बन्दरगाहों और बल्हरो की राजधानी की व्यापारिक तुलना करना यहाँ पर आवश्यक नही है। और इससे हमारा कोई सम्पर्क नही है कि राजधानी अनहिलवाडा मे थी अथवा सूरोई प्राय-द्वीप के समुद्री किनारे पर लार प्रदेश के देवपट्टन मे थी। इसलिये कि राजवंश एक ही था। गुजरात मे वल्हरा नामक नहरवाला राजधानी मे राज्य करने वाले शासक के विभिन्न वैभवो का विस्तार मे अरब यात्रियो ने वर्णन किया है। उसके ठीक होने में कोई सन्देह नही है। लेकिन हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इस व्यवसाय के केन्द्र की स्थापना, इस राज्य के संस्थापक ने नही की थी। बल्कि उसकी परिस्थितियाँ इस बात का प्रमाण देती हैं कि यह व्यापार बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा था और जब उसके प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, उस समय भी उसमे किसी प्रकार का अन्तर नही आया था। उसके आस-पास के बाजार तरक्की पर पहुँच गये थे, लेकिन उनसे उसको कोई खतरा नही पहुँचा था।

इसके सम्बन्ध मे मसूदी का एक प्रसिद्ध लेख यहाँ पर मैं देना चाहता हूँ। वह ईसवी शताब्दी मे अनहिलवाडा आया था। यह उस समय की बात है, जब यह राज्य चावडा लोगों से चालुक्यो के अधिकार में आ गया था। मसूदी ने भी अपने पूर्ववर्ती लेखको के द्वारा वर्णित बालक-रायो के गौरव और अनहिलवाडा की तरक्की का समर्थन किया है। उसने इस उत्थान का कारण बताया है हिन्दुओ का सद्भाव और मुसलमानो का मेल मिलाप। उसने वहाँ का वर्णन करते हुये लिखा है :

"मुसलमानो को सम्मान की दृष्टि से लोग देखते थे। उनकी मसजिदे शहर मे बनी हुई थी, जिनमे दिन मे पाँच बार नमाज पढी जाती थी और वे लोग अपनी प्रार्थनाओ में बल्हरो की खुशहाली के लिये ईश्वर की दुआ माँगते थे।"

इस उल्लेख मे मूलराज के अन्तिम दिनों के शासन के प्रति इशारा किया गया है, जो दसवी शताब्दी के मध्य से अन्त के छत्तीस वर्षों का समय था। इसके कुछ ही वर्षों के बाद महमूद ने अपनी शक्तिशाली सेना के साथ आकर इस प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। उसके आक्रमण से वहाँ का भयानक रूप से विनाश हुआ था, वर्णन करना और समझा सकना कठिन है। वहाँ के नगरो को लूटकर और उजाड कर वहाँ का सम्पूर्ण धन और वैभव महमूद अपने साथ गजनी ले गया था। (१) उससे गजनी

---

(१) यदु अथवा यादव राजपूतो का कहना है कि इस नगर को उनके पूर्वज राजा गज ने बसाया था।

का गौरव बढ़ गया था। लेकिन इसके बाद फिर अनहिलवाड़ा फोनिक्स (पौराणिक) पक्षी की (१) तरह अपने बचे हुये अवशेषो से फिर वह एक अच्छे गौरव को प्राप्त हुआ।

बारहवी शताब्दी मे जब सिद्धराज के शासन काल के अन्त और उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के राज्यकाल के आरम्भ में अलइदरिसी यहाँ पर आया तो उसको वैभव और अपरिमित सम्पत्ति का भली प्रकार अनुभव हुआ। इसके सम्बन्ध मे उसके पूर्ववर्ती लोगों ने आठवी, नवी और दसवी शताब्दी मे इसका अनुभव किया था। यह कहने की आवश्यकता नही है कि वहाँ की इस समृद्धि का मूल साधन केवल व्यापार और व्यवसाय था, उसके आधार पर विभिन्न प्रकार के थे और वे इतने मजबूत थे कि महमूद जैसे आक्रमणकारी लोगो के द्वारा होने वाला विध्वस और विनाश मे भी वह इस योग्य बाको रहा कि वह फिर से समुन्नत हो सका। इसके सम्बन्ध मे अलइदरिसी की कुछ महत्वपूर्ण पक्तियाँ आवश्यक समझकर नीचे दी जाती हैं :

"राज्य का अधिकार प्राप्त करने की प्रथा परम्परागत नियमो के अनुसार प्रचलित है। उस राजा के वैभव को देखकर सभी लोग उसको बल्हरा (वलभी का राजा) कहने लगे हैं। उसका यह नाम उसके राज्य-वैभव के अर्थ का समर्थन है। वह अनेक राजाओं का राजा है। नहरौरा नगर मे व्यापार करने के लिये अधिक सख्या मे मुसलमान आते हैं।"

उसके बाद उसने लिखा है कि पूर्वकालीन लेखो के अनुसार बुद्ध की ही पूजा उस समय की प्रधान पूजा थी। जनसाधारण पर बौद्ध धर्म का प्रभाव था और उस धर्म ने अहिंसा को प्रधानता दी थी। इस धर्म के अनुयायी और समर्थक होने के बाद सभी लोग अत्यन्त सहनशील हो गये थे।

इस सहनशीलता का इतना ही प्रभाव नही पड़ा था कि व्यापारी मुसलमानो ने वहाँ की राजधानी से प्रवेश किया था। बल्कि उसके परिमाण स्वरूप, प्रायद्वीप के मध्य मे जूनागढ का किला एक मुसलमान जागीरधर के अधिकार मे चला गया था और जहाजी बेडे की कमान एक हरमज निवासी के अधिकार मे थी। इसके बाद उस सहनशीलता के और भी दुष्परिणाम सामने आये, जो भविष्य के लिये अत्यन्त खतरनाक साबित हुए, उनके वर्णन किये जा चुके हैं।

---

(१) लोगो का कहना है कि यह पक्षी लगभग तेरह हजार वर्ष तक जीवित रहता है और फिर अपने घोसले मे ही अपने आप मर जाता है। इसके बाद उसी घोसले मे एक नया उसी जाति का पक्षी पैदा हो जाता है।

ऊपर जो विवरण दिया गया है, उसका एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष हम यहां पर निकालने के लिये विवश हो गये हैं। वह निष्कर्ष यह है कि पश्चिमी भारत के राजपूत राजाओं और अरब, मिश्र एवम् लाल सागर के किनारे के बीच ईसा से बहुत पहले विस्तृत रूप मे व्यापार के सम्बन्ध कायम हो चुके थे और ईसा की दूसरी शताब्दी में बल्हरो के चौरासी बन्दरगाहो मे बसने वाले ग्रीक और रोमन आढ़तियों की धारणाओं के अनुसार हम बिना किसी सकोच के इस पर विश्वास कर सकते हैं कि रोमन लोग जितना धन प्रतिवर्ष अपनी पूंजी के रूप मे भारत को देते थे और टॉलमियो (१) के राज्य काल में एक सौ पच्चीस भारतीय जहाजो के बेडे एक बार मे (म्यूस), (हरमज) और (बेरीनीस) के बन्दरगाहो पर पडे रहते थे। ये वही बन्दरगाह थे, जहां से मिश्र, सीरिया और रोम के प्रधान नगरो मे भी भारत की व्यापरिक चीजें पहुँचती थी।

———

ग्यारहवाँ प्रकरण

अनहिलवाड़ा के अन्तिम दिन

अनहिलवाड़ा की इमारतें और उनके टूटे हुए भाग—गृह-निर्माण के नमूने—अच्छे मेहराब—अनहिलवाड़ा की श्री और सम्पति का पलायन—अहमदावाद और पाटन का निर्माण—नवीन नगर के निर्माण मे प्राचीन कारीगरी के दृश्य—शिला लेखों और हिन्दू ग्रन्थो की मुसलमानो से रक्षा—जैनियो की सम्पत्ति और उनके ग्रन्थ।

धार्मिक ग्रन्थों के विवरण पर विश्वास न करने वाले मनुष्य जब बल्हरो की राजधानी मे पहुँचेगे तो उनको अतीत के इस विशाल नगर मे, जहाँ पर प्रसिद्ध चौरासी बाजार थे, यह देखने को मिलेगा कि वहाँ पर कितनी आसानी के साथ इतनी बड़ी राजधानियाँ कायम की गयी थी और फिर उनको नष्ट करके छोड़ दिया गया था।

वे दर्शक इस राजधानी मे पहुँचकर वहाँ के राजाओ के विशाल प्रासादो और उनकी रक्षा के लिए घेरने वाले परकोटे की ऊँची-ऊँचो दोवारो के गिरे हुए भागो को देखेगे। दूसरी इमारतो की दीवारो की बेविलोनिया (१) की दीवारो की तरह यह हालत है कि एक पत्थर पर दूसरा पत्थर भी नही रह गया।

पूर्व के देशो मे जब विध्वंस और विनाश आरम्भ होता है तो वहाँ पर धार्मिक स्थानों, मन्दिरों, शिवालयो और जल के स्थानो को छोड़कर कुछ नही रह जाता।

वहाँ पहुँचने पर नगर के प्रधान द्वार के करीब नीचे बने हुए काली के मन्दिर से देखने पर जो चीज सबसे पहले दिखायी देती है, वह कालीकोट अथवा अन्तरंग नगर का टूटा हुआ खण्डहर है। उसमें दो मजबूत बुर्जे अभी तक बनी हुई हैं। वे काली की छतरियाँ कही जाती है। इन छतरियो पर से उस परकोटे पर नजर डाली जा सकती है जो एक चतुर्भुज के रूप मे लगभग पांच मील की जमीन मे फैला हुआ है। उसके बाहर चारो तरफ और विशेषकर पूर्व तथा दक्षिण में छोटे-छोटे नगर बसे हुए थे। उनकी रक्षा के लिये बाहरी परकोटा बना हुआ था।

अनहिलवाडा पर राज्य करने वाले तीनो राजवंशो के अब केवल तीन स्मारक ही बाकी रह गये हैं। लेकिन 'चरित्र' और अनुश्रुतियो के आधार पर इस राज्य के

---

(१) एशिया के प्रसिद्ध बेविलोनिया साम्राज्य का युफ्रेटीस नदी पर बसा हुआ नगर। सिकन्दर की मृत्यु इसी नगर में हुई थी। उसके बाद यह नगर नष्ट हो गया। इसके खण्डहरो की खुदाई बहुत दिनों तक चलती रही।

अतीत कालीन गौरव के काफी प्रमाण मिलते हैं। उनमे एक तो काली की छतरियाँ हैं, दूसरे सिद्धराज के प्राचीन प्रासादो के अवशेष भाग हैं; तीसरे चौरासी बाजारों मे से एक घी की प्रसिद्ध मण्डी के खण्डहर हैं, जो छतरियो के लगभग चार मील के फासिले पर हैं। वे अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण, अनहिलवाड़ा के खण्डहर हैं। जो कालीकोट द्वार से चार मील अथवा तीन मील के फासिले पर हैं।

इस खोज का कार्य समाप्त कर लेने के बाद उस चिन्ता का अन्त हो जाता है, जो कई वर्षों से बनी हुई थी। यहाँ पर वंसराज के पहले नगर की घनी आबादी थी, जैसा कि यहाँ के लोग अब भी मानते हैं और उस पर विश्वास करते हैं। लेकिन वह नगर आगे चलकर अतीत काल की अन्य चीजो के साथ माना जायगा।

कालीकोट को विध्वंस करने में तुर्कों ने जो कुछ भी किया, उससे भी अधिक उसके विनाश का उत्तरदायित्व दामाजी गायकवाड पर है। लेकिन इसमें सन्देह भी हो सकता है। क्योकि यह सभी जानते हैं कि खून के प्यासे अलाउद्दीन ने दीवारों को तोड़कर ही संतोष नही किया था। बल्कि मन्दिरो का अधिकांश कीमती भाग प्रयोग में लाकर महल खड़े किये गये और अपनी जीत के स्मारक के रूप में उन स्थानो पर हल चलवाये गये, जहाँ पर कीमती मन्दिर खड़े थे।

अब वहाँ पर सब वीरान हो चुका है और रेत मे दिखायी पड़ने वाला पीलू ही बल्हरो की स्मृतियो के रूप में रह गया है। कालीकोट आस-पास के स्थानो से बहुत ऊँचा बनाया गया था। आजकल जिसे सिद्धराज के महल का खण्डहर कहा जाता है, वह एक तालाब के बीच मे खडा हुआ है और उस तालाब की गहराई अब बहुत मामूली रह गयी है। यहाँ पर एक विस्तृत जलाशय का टूटा-फूटा भाग भी देखने को मिलता है। जिसकी सामग्री से नवीन पट्टण मे एक नयी बावड़ी बनवायी गयी है। उसके एक साथ दूसरी छोटी बावड़ी भी है, वह स्याही का कुण्ड कहलाती है। लोगो का कहना है कि हेमाचार्य के शिष्य अपने लेखो को लिखते समय इसमे कमल को डुबोया करते थे।

काली की छतरियो से लगभग ढेढ सौ गज के फासिले पर एक विशाल दरवाजे की मेहराब का ढाँचा मौजूद है। उसको देख कर इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि अनहिलवाड़ा का नगर कैसा रहा होगा-और उस समय की गृह-निर्माण कला कितनी तरक्की पर पहुँच चुकी थी। मैंने सारसेनिक कही जाने वाली मेहराबों के जितने नमूने देखे हैं, उनमे इनको मैं सबसे अच्छा समझता हूँ। ऐसी दशा में हम अगर यह प्रमाणित कर सके कि इनको बनाने वाले हिन्दू थे तो हमको अलहम्ब्रा की मेहराबो का पता चल जायगा, जिनकी योरप मे अधिकता है।

वास्तव में यह दरवाजा यदि वसराज के द्वारा ७४६ ईसवी मे बनवाये गये परकोटे का ही एक हिस्सा है तो यह ग्रेनाड़ा राज्य मे हारूँ के द्वारा बनवाये हुए प्रसिद्ध

अलहम्ब्रा प्रासाद के निर्माण-काल के समीप का बना हुआ होना चाहिए। मैं पहले ही इस बात को स्वीकार कर चुका हूँ कि यद्यपि चावडा राजा ने इन्ही दिनों में अपने वंश के राज्य की स्थापना की थी, लेकिन यह बिल्कुल असम्भव है कि इस नगर का विस्तार और गौरव उसी के समय में हो गया था।

हम इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि जब वंसराज को उसके कुटुम्ब वालो के लूट की आदतो के कारण देवबन्दर से निकाल दिया गया था तो वह वहाँ से चलकर किसी दूसरी राजधानी में जाकर बसा अथवा किसी पुराने राजवश का वह उत्तराधिकारी हो गया।

हम यह मानते हैं कि बगदाद के खलीफो को—जिन्होने स्थल की एक लम्बी विजय प्राप्त करने के साथ-साथ समुद्री साम्राज्य काफी दूर तक अपने अधिकार में कर लिया था—भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्धों के कारण बहुत बडी समृद्धि प्राप्त हुई थी और वे जिस प्रदेश को जीतकर अधिकार में कर लेते थे, वहाँ की कला, कारीगरी और उसके विज्ञान पर भी हावी हो जाते थे।

मैंने किसी दूसरे स्थान पर यह लिखा है कि आठवी शताब्दी मे ही इस्लाम का विस्तार सिन्ध और एब्रो (१) तक हो चुका था। लेकिन अरब के लोगो ने इस प्रकार का मेहराब काटना और बनाना सीखा कहाँ से, यह एक प्रश्न पैदा होता है। स्पेन में विसिगाँथ (२) से नही और न प्राचीन ग्रीक और पारसी इमारतों से, न रेगिस्तान में टेडमोर (३) से, न पर्सीपोलिस (४) से, न हरुँ से, न हालिब से। तो क्या उन्होंने स्वयं इसका अविष्कार किया था और समस्त योरप में उसका प्रचार कर दिया अथवा उन्होंने हिन्द शिल्पियो से इसका ज्ञान प्राप्त किया ?

एक बात निश्चित है, जिसका मुझे पूरा विश्वास है और वह यह है कि इस मेहराब को बनाने वाला कारीगर हिन्दू था और उसकी कला मे हिन्दुओं की बहुत-सी बातो का प्रदर्शन है। यदि अरब के लोगो का इनके साथ कोई सम्बन्ध है भी तो वह नगण्य है लेकिन एक सम्भावना पर इस तरह का विश्वास कर लेना उचित होगा ? हम जानते हैं कि मुसलमानो ने पाटण पर कभी राज्य नही किया। जब टाँक जाति

---

(१) स्पेन की ३४० मील लम्बी नदी।

(२) जर्मनटयू टॉनिक जाति जो अब नही पायी जाती।

(३) इसका ग्रीक नाम पामीरा है। यह नगर सीरिया के रेगिस्तान के बीच में बना हुआ है। वहाँ पर एक सूर्य-मन्दिर भी है।

(४) पारसी साम्राज्य की पुरानी राजधानी, जो आधुनिक सीराज के करीब थी। इस नगर को थाया नाम की वेश्या के कहने से सिकन्दर ने नष्ट करवा दिया था।

ने गुजरात पर अधिकार किया था तो उसने वहाँ की राजधानी को तुरन्त ही वहाँ से हटा दिया था।

इसके सिवा, यह भी सम्भव नही हो सकता कि जब अलाउद्दीन ने एक बार इसके मन्दिरो और उनकी इमारतो को गिरवा दिया था तो फिर किसी दूसरे बादशाह ने हिन्दुओ के रहने के लिये इसका निर्माण फिर से कराया हो। यहाँ का जो निर्माण मौजूद है, वह अलाउद्दीन से पहले गोरी वश के समय का है और इस प्रकार वह बहुत पुराना है। उसके बाद उसमे कुछ नये निर्माण कराये गये और धीरे-धीरे बेल-बूटे और फूल-पत्तियों की सजावट की गयी। इस तरह मुसलमानो के समय तक वहाँ के निर्माण मे बहुत-सी नयी-नयी चीजे आ गयी हो, यह असम्भव नही है। लेकिन इसमे कितना सही है, यह नही कहा जा सकता।

अरब वालो ने अथवा उनके अनुगामियो ने सभी धार्मिक इमारतो को गिरवाकर नष्ट कर दिया अथवा इसलाम के इबादतखाने के रूप में बदल दिया। ऐसी सूरत में यह समझने का मौका ही नही रह गया कि इन वर्तमान इमारतो में कितना कार्य हिन्दुओं का है। मेरा तो ख्याल है कि यदि कोई अन्वेषक पुरानी दिल्ली जावे और कुछ महीने वहाँ पर रहकर वह विभिन्न राजवंशो के समय में बनी हुई टूटी-फूटी इमारतो के खण्डहरो को समझने की कोशिश करे तो उन इमारतो के गुम्बदों को देखकर वह इनकी कला को इतिहास के पन्नों की अपेक्षा अधिक समझ सकेगा। पुस्तको के पृष्ठो मे ऐसे स्थानो के जो विवरण दिये जाते हैं, वे पाठको के मनोभावो पर उतना प्रभाव नही डाल सकते, जितना कि उन स्थानो के प्रत्यक्ष दृश्य।

मेरा ख्याल है कि इनके मेहराब अथवा तोरण आज भी जिस आकार-प्रकार मे मिलते हैं, वे हिन्दुओ के द्वारा बनाये गये हैं। उनकी बनावट हिन्दुओ की मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। इस प्रकार के जितने भी स्थान और उनके निर्माण देखे हैं, उनके आधार पर मैं इसी नतीजे पर पहुँचता हूँ। उनके सभी मेहराबो और तोरणों का निर्माण मैंने कुछ इसी प्रकार का पाया है। उनकी बनावट सारसेनिक-निर्माण-कला के साथ बहुत कुछ मिलती-जुलती है। ज्योतिष के सम्बन्ध मे उनकी ऊँची उडान, बीज-गणित और गम्भीर आध्यात्मिक उलझनो को सुलझाने मे हिन्दुओ के अनुसन्धान एक से पाये जाते हैं, उनमे परस्पर किसी प्रकार का विवाद नही रहता।

अनहिलवाड़ा के तोरण की निर्माण-कला को काल और गायकवाड़ के साथ मिलान करने के पहले हमारे सामने यह प्रश्न पैदा होता है कि जिस प्रकार संहार और विनाश किया गया था, उसमे यह बच कैसे गया। हिन्दुओ के कगूर और व्यूह-रचना के समान परकोटेदार उसकी छतरियाँ, उस समय के विनाश और विध्वस मे सुरक्षित बच गयी, इसका कोई दूसरा कारण समझ में नही आता। सिवा इसके कि इनके सौन्दर्य और आकर्षण के कारण विध्वंस करने वालों के हाथ नही उठ सके।

मैंने पहले ही लिखा है कि इनमें से आज जो कुछ देखने को मिलता है, उसमें ईंटों के सिवा और कुछ नहीं है। इन ईंटों के साथ जिस चूने का प्रयोग किया गया था, वह भी गायब हो गया है। इन ईटो को उनके भी स्थानों पर कायम रहने में उनके निकटवर्ती चौकोर खम्भो से बडी सहायता मिली है। ऐसा मालूम होता है कि इन ईंटों को इस रूप मे बनाये रखने की एक बड़ी जुम्मेदारी इन स्तम्भो को सौंपी गयी है और ये ईमानदार स्तम्भ उसको निभा रहे हैं।

इन स्तम्भो की बनावट मे सादगी और उनकी निर्माण-कला बहुत कुछ तोरण की-सी है। उनका ऊपरी भाग हिन्दुओ की निर्माण-कला का स्पष्ट परिचय देता है। उनके शिरोभाग जंजीरो के गजरो द्वारा सुन्दर मालूम होते हैं। उनके बीच के भागों में वजनी घण्टे मोटी जंजीर में लटके हुये हैं। कुछ उसी प्रकार जैसे बाड़ौली के स्तम्भों में हैं। ये घंटे जैनियो के स्तम्भों के तरीको को याद दिलाते हैं। तोरण के पास दोनों ओर कमल हैं।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक मालूम होता है कि अहमदाबाद की बहुत-सी मसजिदो मे भी इसी प्रकार की बनावट है। इससे साफ जाहिर होता है कि चन्द्रावली और अनहिलवाड़ा की इमारतो के कीमती और कलापूर्ण भाग अहमदाबाद पहुँचे थे और उनके द्वारा वहाँ की मसजिदो को सजाया गया।

कोशिश करने पर भी मैं इस बात को नही जान सका कि यहाँ के लोग तोरण से दक्षिण की तरफ तीन मील के खण्डहरो को ही नाम अन्हरवारा क्यों मानते हैं। यह जरूर है कि अरब के जहाजों के नाम पर बने हुये अथवा नगर की सामग्री के चौक की खोज अधिक उपयोगी होती। लेकिन घी की मण्डी को देखकर मुझे इस बात का सतोष हो गया और चरित्र के इस उल्लेख का समर्थन हो गया कि यहाँ पर हर चीज के व्यापार के लिए मण्डियाँ अलग-अलग हैं।

मेरी समझ मे एक बात और नही आयी। यह नगर जब बसाया गया था, उस समय सरस्वती नदी के किनारे नही था। लेकिन अब वह कुछ ही फासिले पर है। लेकिन मैं इतना जरूर कहूँगा कि उत्तर-पूर्व की तरफ इस नगर का विस्तार सरस्वती नदी तक था ही और वर्तमान पाटण का उससे भी अधिक भाग इसके अन्तर्गत था, जितना कि गायकवाड़ के लोग आज मन्जूर करते हैं।

इस धारणा के प्रति मेरा झुकाव कुछ तो नवीन नगर के परकोटे के भीतर के मन्दिरों को देखकर होता है और कुछ वहाँ के एक सरोवर के कारण; जो आज की अच्छी दशा में है और जिसकी खोदाई का काम नगर के तीन मील के बाद असम्भव हो जाता है।

यहाँ पर अहमदावाद की तरफ एक तालाब और है, वह इस तालाब से भी अच्छा है और अपनी विशालता तथा सुन्दरता के कारण मानसरोवर कहलाता है।

यह मानसरोवर अब सूखा पडा रहता है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इसको एक ईंट बनाने वाले ने बनवाया था, इसके बनकर तैयार हो जाने पर उस ईंट बनाने वाले मे और उसकी स्त्री मे झगडा हो गया। उसकी स्त्री ने शाप दे दिया, नतीजा यह हुआ कि इस तालाब में जितना पानी आया था, वह धीरे-धीरे निकल गया, जिन पाठको ने मेरे लिखे हुए राजस्थान के इतिहास को पढा है, उनको झालरापट्टन के एक इसी तरह के तालाब का स्मरण आवेगा, उसका निर्माण भी कुछ इसी प्रकार हुआ था। उसे भी किसी ओड ने ही बनवाया था।

ओड अथवा ओड ईंट बनाने वालो की जाति होती है, ठीक उसी प्रकार, जैसे कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाने वाले को कहते हैं। लेकिन प्राचीन काल मे इस नाम की एक शक्तिशाली जाति थी। उड़ीसा का राजा इसी जाति का था। वहाँ के शिला-लेख भी कुछ उसी तरह के पाये जाये हैं, जैसे स्पष्ट अक्षरो में यहाँ थे।

कालिका अथवा काली की छतरी के चबूतरे से ये स्थान बहुत साफ-साफ दिखायी देते हैं। वहाँ पर एक विस्तृत मैदान है, जिसमे वृक्ष हैं लेकिन घने नही हैं। उस चबूतरे से मैदान की तरफ देखने पर उसके लहराते हुयें वृक्ष दिखायी देते हैं। उसके दक्षिण की तरफ जो जङ्गल है, वह घना है। उसका दृश्य कुछ अपने ढंग का अनोखा है। उसके आगे आबू की छोटी-छोटी श्रेणियाँ हैं। उनकी काली चोटियाँ दूर से देखने मे बड़ी भली मालूम होती हैं। कदाचित् अनहिलवाडा के निर्माण मे इन्ही पहाड़ियो की चीजे ली गयी थी।

वर्तमान पट्टण का आधा परकोटा प्राचीन नगर से मिले हुए पदार्थों के द्वारा बनाया गया है और शेष आधा भाग, बल्हरो के महलो, उनकी विभिन्न प्रकार की इमारतो, मन्दिरों और जलाशयों से मिली हुई सामग्री के द्वारा बनाया गया है। यहाँ की इन समस्त चीजो का निरीक्षण करने के बाद मेरी धारणा बन गयी है कि यदि यहाँ के रहन-सहन का अध्ययन करने के लिए मिलने वाले चित्रित और अंकित पत्थरों की खोज की जाय तो समय और परिश्रम बेकार नही जायगा। (१)

पत्थर के इन टुकडो से बनी हुई नीव पर खड़ी की गयी ईंटो की दीवार अदरख को टोटी के समान अलग दिखाई देती है और वह इस बात का प्रमाण भी देती है कि गायकवाड मे देव-पर्वत पर अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने वाली जातियो मे पवित्र

(१) मध्य भारत में एक हूण राजा के राज चिह्नो को खोजने के सम्बन्ध मे मैं लिख चुका हूँ, यह अनुसन्धान, भेंसरोड की दीवारो के परिश्रमपूर्ण अध्ययन के अनुसार किया गया है, जो हिन्दुओ की दूसरी इमारतो और नगरों की तरह मिटाये जाने के पश्चात् फिर से उनका निर्माण किया गया है और अधिक व्यय करके जीर्णोद्धार किया गया है।

देवरक्त का कोई अंश नहीं था। मैं यह लिखना भूल गया था कि कालिका छतरियाँ ईंटों की बनी हुई हैं, लेकिन मैंने यह नही देखा कि उनकी नीव पत्थर के टुकड़ों से तैयार की गयी है। लेकिन सम्भव यही मालूम होता है कि उनकी नीवो में पत्थर के टुकडे भरे गये हैं। इसका कारण यह है कि यह सम्पूर्ण क्षेत्र बालुकामय है और बालू का अंश अधिक होने के कारण नीव और दीवार—दोनो ही आसानी से कमजोर पड़ जाती हैं। ऐसी दशा मे यह आवश्यक हो गया है कि नीवे पत्थरो से ही भरकर मजबूत की जावे। अतएव यह निश्चित है कि उनकी नीवे पत्थरो से भरी गयी होंगी।

जिन नगरो की इमारतें ईंटो से बनी होती हैं, उनको देख-सुनकर उनके निर्माण का समय मालूम किया जा सकता है। इसके प्रमाण मे आगरा शहर की इमारतो का उदाहरण दिया जा सकता है। ईंटो की बनी हुई दीवार दो सौ वर्ष के भीतर ही खुल जाती है और उसके बाद उसका बुढापा आरम्भ हो जाता है। होता यह है कि ऐसी इमारतो की दीवारे टूटने लगती हैं और कुछ दिनो तक जर्जरित अवस्था में रहकर गिर जाती हैं। इसी तरह का आधार लेकर हिन्दू लोग कहा करते हैं कि प्रकृति और कला—दोनो एक दूसरे की विरोधिनी है।

काली देव अथवा नाश करने वाली देवी के मन्दिर मे उल्लेखनीय कोई बात नही है। उसकी शक्ति का परिचय देने के लिए कितनी ही प्राचीन प्रस्तर मूर्तियो के टुकड़े काली देवी के मन्दिर के आस-पास पडे हुए देखने को मिलते हैं। इसके पास ही वह तालाब है, जो हेमाचार्य और उसके शिष्यो के कलम डुबोने के लिये ऊपर लिखा गया है।

यह बात नही है कि नवीन नगर में आकर्षण की कोई चीज नही है। यहाँ पर दो चीजे ऐसी हैं, जिनका विशेष रूप से सम्मान है। एक है, अनहिलवाड़ा के संस्थापक वसराज की मूर्ति और दूसरी है जैनियो का पोथी भण्डार। सफेद पत्थर से बनी हुई वह मूर्ति पार्श्वनाथ के मन्दिर में रखी हुई है और लगभग साढ़े तीन फीट ऊँची है। एक दूसरी छोटी मूर्ति इसके दाहिने हाथ की तरफ रखी हुई है और वह वसराज के प्रधान मन्त्री की कही जाती है। लेकिन यह अधिक सम्भव है कि वह उसके संरक्षक आचार्य की मूर्ति हो।

इन दोनो मूर्तियो के साथ एक-एक शिला लेख लगा हुआ है, उनके उन दूसरी मूर्तियो के स्थान का पता चलता है, जिनको मूर्तियों के तोडने वाले अलाउद्दीन ने नष्ट कर दिया था। उसका नाम भी इन पत्थरो पर खोदा हुआ है। 'महाराज श्री खूनी आलम मोहम्मद बादशाह—उसका पुत्र (अथवा उत्तराधिकारी) श्री आलम फीरोज जिनकी कृपा से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, बृहस्पतिवार' इत्यादि।

'सान्देरा गच्छ के शील गुणसूरि पचासर के वन में मुहूर्त देखने गये। एक महुआ वृक्ष के नीचे लटकते हुए झूले मे उन्होने पेड़ की छाया मे एक नवजात शिशु को

देखा; वह छाया स्थिर थी, इससे शील गुण सूरि को उस शिशु के महान भविष्य का ज्ञान हुआ। उसकी माता-सहित वे उसको अपने साथ ले गये और अपने सेवकों से उसका पालन-पोषण करने की अभिलाषा प्रकट की; उन्होंने ऐसा ही किया भी। वन मे जन्म होने के कारण उस बालक का नाम वसराज रखा गया और सम्वत् ८०२ में उसी ने अनहिलवाड़ा के परकोटे की दीवार खिचवायी तथा देवीचन्द्र सूरि आचार्य ने अल्लेश्वर (१) महादेव की प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी।'

दूसरा लेख इस प्रकार है—'सम्वत् १३५२ (सन् १२९६ ईसवी) शुक्रवार, ९ वैशाख मास। वह, जिसका निवास पूर्व में है, जिसकी जाति मोर है, केलण का पुत्र नागेन्द्र जिससे पुत्र असोरा ने ससार में से धन का सार प्राप्त किया। जिससे श्रीमान महाराज वसराज के मन्दिर मे कीर्तिलता को विकसित करने के निमित्त उसके पुत्र अरिसिंह ने आशा देवी की मूर्ति प्रतिष्ठित की; प्रतिष्ठा की विधि शीलगुल सूरि आचार्य के पुत्र देवी चन्द्र सूरि ने सम्पन्न करायी।'

ये दोनो शिला लेख हो सकता है कि अनहिलवाडा के कायम होने के समय के हो अथवा उसके बाद लिखे गये हों। इनमे से एक पर अलाउद्दीन की मूर्ति और दूसरे में सम्वत् १३५२ सन् १२९६ का उल्लेख मिलता है, जब उसने इस नगर का विध्वस किया था, इस बात की सूचना देते हैं कि वे उसकी प्रशसा में अथवा विध्वसकारी के रूप में लिखे गये हैं।

पहले शिला लेख में नगर के सस्थापक के जन्म की कथा का लेख है, उसका समर्थन 'चरित्र' के उल्लेख से होता है। दूसरे से एक महत्वपूर्ण तथ्य की जानकारी होती है, वह यह कि उसमे दैवत्व के गुण विद्यमान थे। ऐसी दशा मे यही सम्भव मालूम होता है कि यह मूर्ति उसके पूर्वजो के नाम पर बने हुए मन्दिर से प्राप्त की गयी होगी, जो उस भीषण सहार के समय नष्ट कर दिया गया था; अथवा यह भी सम्भव है कि उन्होंने उसके मन्दिर को ही पार्श्वनाथ का मन्दिर बना दिया हो और इसी में इस पूर्व देशवासी भक्त ने अपनी संरक्षिका आशादेवी को एक आले मे स्थापित कर दिया हो।

आसानी के साथ इस बात का निर्णय नही किया जा सकता कि मोर जाति का यह वश किस वर्ण मे था—दूसरे में अथवा तीसरे मे, और न यही कहा जा सकता

(१) एक नया नाम, सम्भवतः 'आलय' अर्थात् निवास स्थान।

यह भी सम्भव है कि अलाउद्दीन को खुश करने के लिये उसकी याददाश्त स्थायी बनाये रखने के लिए अल्लेश्वर नाम रख दिया हो। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि मन्दिर का निर्माता अपना अथवा जिसके लिये मन्दिर बनाया जाता है, उसके नाम के साथ ईश्वर शब्द जोडकर उस मूर्ति को प्रसिद्ध किया जाता है।

है कि ये लोग राजपूत थे अथवा वैश्य थे। लेकिन आमतौर पर राजपूतो से तलवार के द्वारा प्राप्त की हुई सम्पत्ति के सिवा ये लोग राजपूतो की उस शाखा के हो, जिन्होने जैन धर्म में आकर अहिंसा धर्म को स्वीकार कर लिया हो और युद्ध करने के स्थान पर व्यापारिक जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया हो।

परमारो और चौहानो—दोनो ही वशो मे मोर अथवा मोरी नाम के उपवश का होना पाया जाता है। यह भी सही है कि आशा देवी चौहानो की आराध्य देवी रही है। अतएव यह हो सकता है कि यह धनी व्यक्ति इसी वश का एक व्यापारी हो और जो अपने व्यापार के सम्बन्ध मे पश्चिमी भारत की इस बड़ी मण्डी के साथ सम्बन्ध कायम करने आया हो।

पूर्व शब्द का अर्थ बहुत व्यापक होता है। परन्तु साधारण तौर पर यह शब्द उस प्रान्त के लिये प्रयोग किया जाता है, जिसको हम प्रमुख बंगाल कहते हैं और जिसका विस्तार बनारस तक है। कदाचित् यह व्यापारी उसी कालीकोट का निवासी है, जिसे अब कलकत्ता कहा जाता है।

महान आचार्य के इस राज-शिष्य के सम्मान और सत्कार मे आज तक वर्तमान पट्टण के निवासी जैनियो की ओर से किसी प्रकार की कमी नही आयी। यद्यपि इस वश के आदि और अन्तिम राजा पाट-परमार और धारावर्ष के समय को भी इतना काल बीत चुका है कि इस सत्कार को अत्यन्त प्राचीन मानकर स्वीकार किया जाता; लेकिन फिर भी पार्श्वनाथ पर चढी हुई केसर चावडा राजा को अब भी प्राप्त होती है। ग्यारह सौ वर्ष बीत जाने के बाद भी इस मामूली सी बात मे हमे सौर वंशराज के जीवन की एक ऐसी व्याख्या मिलती है, जिसमे किसी प्रकार का विवाद नही है। इससे यह साबित होता है कि उसके पूर्वज किसी भी धर्म के मानने वाले रहे हो—चाहे वे बाल शिव के उपासक रहे हो अथवा सूर्य के पूजक रहे हो। परन्तु यह सही है कि वह बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था।

एक दूसरी बात यह भी है कि एक सार्वजनिक प्रथा के अनुसार नया नगर अपने नाम से न बसाने के कारण यह भी नतीजा निकाला जा सकता है कि इसका संस्थापक आदि काल मे वह नही था।

यहाँ पर मैं यह लिख देना भी आवश्यक समझता हूँ कि नवपुर अथवा नवीन नगर मे और भी बहुत से मन्दिर हैं। यह बात सही है कि उनमे उल्लेखनीय कोई विशेष बात नही है! दो मन्दिर रघुनाथ जी के नाम पर हैं और वे कुम्हारो तथा सुनारो के बनवाये हुए हैं। तीसरा मन्दिर महालक्ष्मी का है, जिसको बर जाति के वैश्यो ने त्रिपोलिया नामक दरवाजे के करीब बनवाया था। इसी जाति के आदमियो ने एक और भी मन्दिर बनवाया है, जो गोवर्धननाथ का मन्दिर कहलाता है और वह काफी प्रसिद्ध है।

गूजरी दरवाजे पर द्वार-रक्षक हनुमान की मूर्ति है और एक दूसरे दरवाजे पर सिद्ध भिक्षुओं के आराध्य सिद्धनाथ महादेव की मूर्ति मौजूद है।

अब हम यहाँ पर दूसरी बातो का उल्लेख करना चाहते हैं। और वह उल्लेख है, पोथी-भण्डार एवम् पुस्तकालय के सम्बन्ध में। उसकी स्थिति का उस समय तक कोई पता नही था, जब तक मैंने उसका निरीक्षण नही किया। उसके पश्चात् उसकी स्थिति का ज्ञान हुआ यह पोथी-भण्डार नये नगर के उस भाग के तैखानों मे है, जिसको वास्तव में अनहिलवाडा का नाम प्राप्त हुआ है। इसके कारण ही यह अलाउद्दीन की नजर से बचकर कायम रहा, अन्यथा उसने इसको भी नष्ट कर डाला होता।

यह भण्डार कट्टर पथी लोगो की सम्पत्ति है। इस खरतर अथवा कट्टर का अर्थ है पुरानी विचार-धारा के अनुयायी लोग। इन लोगों को यह नाम सिद्धराज के द्वारा प्रदान किया गया था। इन लोगो की सख्या विरोधियो की अपेक्षा अधिक है और वे सिन्धु से लेकर कन्याकुमारी तक ग्यारह सौ से अधिक पाये जाते हैं।

यह नगर सेठ और सरपच एवम् मुख्य न्यायाधीश तथा नगर पचायत के नियंत्रण मे है। इसकी देखभाल कुछ यती लोग करते हैं और वे यती हेमाचार्य के आध्यात्मिक शिष्य हैं।

इस तरफ की यात्रा करने के कुछ वर्ष पहले ही मुझको इस भण्डार की थोड़ी-बहुत जानकारी मेरे गुरु जी से हो चुकी थी। उसी समय मेरे मन में इसके सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने के लिए एक उत्सुकता पैदा हुई थी और मेरी ही तरह मेरे यती गुरु भी इसके प्रति उत्सुक थे। इसलिए वहाँ पर पहुँचते ही सबसे पहले मेरे गुरु भण्डार की पूजा करने के लिये गये। यद्यपि वे पूजा करने के अधिकारी थे लेकिन नगर-सेठ के आज्ञा पत्र को बिना दिखाये हुये कुछ नही हो सकता था।

इसके लिये पचायत बुलायी गयी, और उसके सामने मेरे यति ने अपने पत्र तथा हेमाचार्य के शिष्य होने का प्रमाण उपस्थित किया, उसको देखकर और सुनकर पंचायत के अधिकारियो पर तुरन्त असर पडा और उन्होंने यति गुरु को तहखाने में जाकर अत्यन्त पुराने भण्डार की पूजा करने का आदेश दे दिया।

वहाँ पर जो पुस्तके हैं, उनकी एक तालिका है, उसको देखकर कमरो मे भरी हुई पुस्तको का जो अनुमान मुझे बताया गया, उसको प्रकट करने में मुझको अपने गुरु की ईमानदारी पर सन्देह पैदा होता है। वे ग्रन्थ सावधानी के साथ सन्दूको मे रखे हुए हैं, जो कगर की लकडी के बुरादे से भरे हुए हैं। यह बुरादा विभिन्न प्रकार के कीड़ो से ग्रन्थो की रक्षा करता है। पूजा करके और भण्डार को देखकर जब गुरु जी मेरे पास लौटकर आये तो उनकी प्रसन्नता पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी। लेकिन ग्रन्थो की संख्या मे और उनकी तालिका मे बहुत अन्तर था। दो ग्रन्थो की खोज में उनको चालीस सन्दूको की तलाशी लेनी पडी। जिन ग्रन्थो की खोज की गयी, उनके

नाम थे—'वंशराज चरित्र' और 'शालिवाहन चरित्र' शालिवाहन ताक अथवा तक्षक सम्प्रदाय का नेता था। उसने उत्तर की तरफ से आकर भारत पर आक्रमण किया था और शक्तिशाली सम्राट विक्रम की गद्दी को पलटकर दक्षिण भारत में पहले से प्रचलित सम्वत् के स्थान पर शक सम्वत् चालू किया था।

तहखाने का स्थान तंग था और अधिक समय तक रहने पर दम घुटने लगता था। इसलिए यति को उन ग्रन्थो के खोजने का कार्य रोक देना पड़ा और वे तुरन्त वहाँ से लौटकर चले आये। अभी उनको बारह मील की यात्रा मेरे साथ और करनी थी। बरसात आरम्भ हो चुकी थी, मेरा स्वास्थ्य लगातार गिर रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी यात्रा लम्बी मालूम होने लगी। यदि मेरे पास रुकने का समय भी होता तो शोध के इस नवीन क्षेत्र मे रुककर नियोजित करने के वास्ते लिखने वाले नही थे। इसलिये मैं यही आशा करता हूँ कि मेरी इस खोज से दूसरे लोगो के लिये केवल मार्ग तैयार हो सकेगा।

इसके सम्बन्ध मे पूरी सावधानी और शिष्टाचार से काम लेने की आवश्यकता मैं अनुभव कर रहा था। शोध और अन्वेषण का कार्य बडी जुम्मेदारी का होता है। जिन्होने इसको किया है, वही इसके उत्तरदायित्व को समझ सकते हैं।

जब अलाउद्दीन ने पट्टण पर आक्रमण किया, उस समय यह सम्भव नही था कि पुराने परकोटे के बाहर इन लोगों ने अपनी रक्षा के लिये किसी स्थान का निर्माण किया हो। इस बात को समझते हुये कि नगर के इस भाग का नाम आज भी अनहिलवाड़ा ही है, हमको यह विश्वास करने के लिये पर्याप्त आधार मिल जाता है कि वर्तमान नगर का यह हिस्सा पुरानी सीमाओ के भीतर था। कुछ थोड़ी-सी दूरी पर रहने वाले कट्टर पथी सदस्यों को उस भण्डार से ग्रन्थ दिये जा सकते हैं, लेकिन नियम के अनुसार वे ग्रन्थ को दस दिन से अधिक अपने पास नही रख सकते।

जब तक अनहिलवाड़ा के भण्डार मे हमारी पहुँच न हो जावे, जहाँ पर ग्रन्थों का भण्डार है और वे महत्वपूर्ण ग्रन्थ मौजूद हैं, जिनकी आवश्यकता हमको अपने शोध के लिये है और इसके साथ-साथ उन ग्रन्थो और ग्रन्थो के संरक्षको के साथ हमारा सम्पर्क न हो जाय, तब तक हम उस परिस्थति मे नही हैं कि जैनियो के सम्बन्ध मे हम अधिकारी के रूप मे कुछ कह सके। हमे तो उन लोगो पर आश्चर्य के साथ दया आती है, जिनका कहना है कि हिन्दुओ के पास कोई ऐतिहासिक सामग्री नही है और इस प्रकार के विश्वास के कारण अन्वेषको के मनोबल को निर्बल तथा नष्ट प्राय कर देने की चेष्टा की जाती है। मैं विश्वास पूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दुओ के इस प्रकार के गुप्त पोथी-भण्डार एक नही, अनेक हैं और उनसे इस देश की प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री निकालने और एकत्रित करने का कार्य साधारण नही है।

बरसात और बिगड़ते हुये स्वास्थ्य के कारण मुझको बड़ौदा में ठहराना पड़ा। वहाँ के रेजीडेण्ट की दया और प्रभाव से प्रेरित होकर गायकवाड के एक मन्त्री ने—जो स्वय जैन थे—'वसराज चरित्र' की एक प्रतिलिपि के लिये पत्र लिख दिया था। उसके लिये स्वीकृति मिल गयी और मैं इस राजवंश के इतिहास का उद्धार करने के लिये—जिससे हमको विक्रम तथा वलभी के राजाओ तक का पुराना विवरण प्राप्त हो सकता था—अधीरता के साथ मैं प्रतीक्षा करने लगा।

उस मन्त्री के पत्र के अनुसार, 'वशराज चरित्र' की मुझको नकल मिल जानी चाहिए थी। लेकिन प्रतिलिप कर्ताओ ने भूल से अथवा प्रार्थना-पत्र की किसी असावधानी से 'वशराज चरित्र' के स्थान पर 'कुमारपाल चरित्र' की नकल कर दी। उसकी दो प्रतियाँ पहले से ही मेरे पास मोजूद थी।

इस भूल का उस समय सुधार हो सकना सम्भव नही था। अन्वेषण के लिये भविष्य मे ग्रन्थो की तालिका ही महत्वपूर्ण हो सकती है। लेकिन ऐतिहासिक रचनाओं, रासो, चरित्रो और माहात्म्य आदि के विषय में ऐसा नही है।

इस कार्य में लोगों को प्रोत्साहित करने के लिये मैं एक बात फिर कहना चाहता हूँ, जो बार-बार नही कही जा सकती; वह यह कि मैं जैसलमेर से कागज और ताड़पत्र की जितनी भी प्रतियाँ प्राप्त कर ली थी, ताडपत्र की प्रतियाँ तो तीन, पाँच और आठ शताब्दी तक की पुरानी हैं, जो रायल एसियाटिक सोसाएटी (१) पुस्तकालय की अलमारियो में अब तक अछूती पड़ी हुई हैं और उनका कोई भी उपयोग नही हो सका। इनमे सबसे पुरानी प्रतियाँ व्याकरण के विषय की हैं। हमारे बुद्धिमान मित्र समझते हैं कि वे इस विषय मे अधिक जानते हैं।

लेकिन मेरे सामने बडी उलझन है। मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाता। क्या इतनी पुरानी रचनाओं का परीक्षण करना इसलिये आवश्यक नही है कि उस परीक्षण के जिज्ञासुओं को यह मालूम होगा कि इन प्राचीन पुस्तकों में कोई नयी बात नही है?

इस विषय मे पर्याप्त लिखा जा चुका है, इसलिये मैं अब इसे समाप्त करता हूँ।

---

(१) इनमे से हरिवंश की एक प्रति का अनुवाद पेरिस के एक पुरातत्वविद कर रहे हैं। यदि वही विद्वान आबू महात्म्य को भी अपने हाथ मे ले लें तो धार्मिक क्रिया-कर्म-पद्धति के वर्णन से अपने पर मन बहलाने के लिये प्रकृति और मानव का मिला-जुला इतिहास भी काफी मात्रा में उनको मिल जायगा।

बारहवाँ प्रकरण

अन्वेषण के कार्य की कठिनाइयाँ

अहमदाबाद का निर्माण—गृह-निर्माण-कला—हिन्दू-मुस्लिम शैलियाँ—बरसात की भीषण यात्रा—बड़ौदा का इतिहास—यात्रा की थकान और स्वास्थ्य की गिरावट—खोज के कार्य मे मिलने वाली मुसीबते—आदिवासी जातियाँ और उनके प्राचीन रहन-सहन ।

जून का महीना था, बरसात जमकर चल रही थी और चारो तरफ ऐसे स्थान हो गये थे, जिनमें कच्ची मिट्टी के कारण कीचड़ हो गया था, घोड़ों की टापें उस कीचड़ मे पूरी डूब जाती थी और उसी कीचड़ मे सबके साथ मुझे भी चलना पड रहा था। किसी अच्छे स्थान तक पहुँचने के लिये—जहाँ आराम मिल सकता था—डेढ सौ मील का रास्ता पार करना था।

यहाँ के रेतीले मैदान मे उल्लेखनीय कोई बात नही है। सिर्फ यही कहा जा सकता है कि यहाँ का विस्तृत मैदान सदा हरे खोयेनी के वृक्षों, एक तरह का जङ्गली पेड़ों से भरा हुआ था। यहाँ की बनस्पति के पेडो में यही वृक्ष विशेषता रखते हैं।

बाल-का-देश गुजरात के उस हिस्से का नाम है, जो बनास नदी और सौराष्ट्र के बीच मे कायम है। वास्तव में यह मरुभूमि की दक्षिणी सीमा है। लेकिन यहाँ की रेतीली सतह के नीचे इतनी अच्छी मिट्टी है जो मक्का की फसल और घास के लिए बहुत उपयोगी मानी जाती है। इस मिट्टी में आलू की पैदावार अच्छी होती है।

तीन लम्बी यात्राओ के बाद मैं अहमदाबाद पहुँचा। यह शहर अनहिलवाड़ा का प्रतिस्पर्द्धा नगर है। यहाँ आकर मैंने मुजफ्फर वंशी बादशाह के यहाँ पर मुकाम किया। अपने उस मुकाम से मैं बादशाह के वैभव का अनुमान वहाँ की मसजिदो और मदरसो (१) की इमारतो को देखकर कर सकता था। इन सभी इमारतों की गुम्बदें और मीनारे उन रास्तो पर बहुत ऊँची-ऊँची थी, जिनमे कभी-कभी बड़ी भीड हो जाती होगी। लेकिन वे रास्ते आज सुनसान मालूम पड़ते हैं।

---

(१) फरिश्ता में लिखा हुआ है कि गुजरात का बादशाह मुजफ्फरशाह द्वितीय विद्या के प्रचार का शौकीन था। उसने फारस, अरब और तुर्की के विद्वानो को बुलाकार गुजरात में बसाया था और मदरसे कायम किये थे। उनके जरिए से लड़कों को तालीम दी जाती थी।

हुआ भोजन करने की आज्ञा नहीं दी गयी है। इसलिये हिन्दुओं को भुने हुये चने चबा-कर और पानी पीकर रह जाना पड़ता है। ये लोग ऐसे मौकों पर भुने हुये चने अपने साथ रखते हैं और पानी सब जगह मिल ही जाता है।

लेकिन रात में जब मौसिम बदला हुआ दिखायी देता है, उस समय वे लोग—जिन्होंने चने चबाकर दिन काटा था—प्रातः होते ही दो गुना भोजन बनाने की बात सोचते हैं। वे प्रतीक्षा करते हैं कि सवेरा हो जाय और हम भोजन बनाकर पेट-भर खा लें।

इसी समय एकाएक आवाज आती है—आँधी आ गयी, आँधी आ गयी! एक साथ सभी लोग चिल्ला उठते हैं और बिना बिगुल बजाये हुये साथ के सभी लोग गिरते हुये पाल को रोकने के लिये दौड़ पड़ते हैं। उस समय सोते हुये जग पड़ने पर एक अजीब तरह का आनन्द आता है। उस आँधी में खेमे की भीगी हुई कनात आकर टकराती है और खलासी लोग जोर के साथ चिल्ला उठते हैं—उठो साहब, उठो साहब, डेरा गिरा जाता है।

इस प्रकार का चीत्कार सुनकर हम तेजी के साथ उठकर खड़े हो जाते हैं, नींद इस प्रकार भाग जाती है, जैसे किसी शत्रु ने तेजी के साथ आक्रमण किया हो। उठकर हम अपने जूते ढूंढते हैं। उसी समय मालूम होता है कि पानी को रोकने के लिये शाम को जो डौर खड़ी की गयी थी, वह वर्षा और आँधी के जोर से टूट गयी है और पानी के छोटे-छोटे झरने बिस्तर के नीचे चारो तरफ से बहते हुये मालूम होते हैं। ऐसे मौको का दृश्य कुछ अजीब-सा हो जाता है।

ऐसे समय की एक बड़ी विशेषता यह होती है कि आंधी और पानी से जब खेमा गिरने लगता है तो अपने नौकर और सिपाही बड़ी तत्परता के साथ खेमा को रोकने और गिरने से बचाने की कोशिश करते हैं। वह खेमा जमीन पर गिरने नहीं पाता और टूटे हुए बाँसो के स्थान पर नये बाँसों को गाड़ कर उनमें खेमें को रस्सियाँ बाँध दी जाती हैं।

आँधी और पानी के इस दृश्य को देखकर साथ के लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। उनके बिस्तर और कपड़े पानी से तर हो जाते हैं। कोई कपड़ा सूखा हुआ पास नही रह जाता। जिसको गीले कपड़े के स्थान पर पहनकर और टेबुल पर पैर फैलाकर रात काटी जाय।

अगर बिछौना घोड़े के बालो का बना हुआ है और बहुत भारी नही है तो उसमें कुछ आराम मिल जाता है। लेकिन दिन और रात में लगातार भीगने के कारण और कई-कई दिनों तक धूप न मिलने की दशा में रोजाना प्रातःकाल शरीर के जोड़ों में गठिया का मीठा-मीठा दर्द अनुभव होने लगता है।

इस प्रकार की थकान से भरी हुई रात और पीड़ा से भरे हुए दिन के बाद भी प्रेमी यात्री को बहुत सजग और सावधानी से काम लेना पडता है। यदि उसको कोई शिला लेख मिल जाता है अथवा प्राचीन मन्दिर का पता चल जाता है तो समय का अभाव और बरसात के पानी की मुसीवत उसके अनुसन्धान के मार्ग में बाधा उत्पन्न नही कर सकती।

बरसात के दिनो में यात्रा करते हुए इस प्रकार की जो घटनायें आती हैं, उनमे मन को तोड़ने और उल्लास देने की शक्तियाँ भी होती हैं। उनमें यदि परेशानी होती है तो अनेक मौको पर विनोद की छाया सी रहती है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी रात में खेमें के बाहर खड़ा हुआ घोडा मालूम होता है, उस समय कपड़े गीले होते हैं, खेमें के बाहर चारो तरफ कीचड ही कीचड़ भरा होता है। रात का मचा हुआ शोर व गुल कानों में भरा होता है। डब्बे मे मुर्गियाँ भीगी हुई होती है। खेमें के बाहर घोडा पानी मे भीगा हुआ खड़ा रहता है, इस प्रकार बरसात के दिनो मे यात्रा के जो कष्ट होते हैं, वे कभी कभी बहुत भयानक मालूम पड़ते हैं।

इन सब कठिनाइयो का एक ही इलाज होता है—कूच करना, आगे के लिये प्रस्थान करना और नयी-नयी घटनाओ तथा दृश्यों को देखकर मन को बदलना और पिछली घटनाओ को भुला देना। कुछ लोगो का कहना है—'सभी दुखों का अन्त मृत्यु है।' इस विश्वास का दूसरा पहलू भी है, जिसमे कहा जाता है—'भयानक से भयानक रात के बाद प्रातःकाल होता है और अन्धकार का विनाश करने वाले सूर्य के प्रकाश के दर्शन होते हैं।'

हमारी जिन्दगी इन दोनो विश्वासो के बल पर चलती है। इसका एक पहलू अकेला कभी नही रहता। कठिनाइयाँ जिन्दगी के साथ होती हैं, उनके दृश्य बदलते रहते हैं और पुराने दृश्य के स्थान पर जब नयी घटनाये सामने आती हैं तो उनमे एक नये प्रकार का उल्लास मिलता है। जीवन के इन्ही अङ्गो को लेकर ससार के दार्शनिको ने बड़ी-बड़ी खोजे की हैं। लेकिन हमारा जीवन अपने ही हिसाब से चलता रहा है।

खेडा में मुझको अपने पुराने मित्र और सहयोगी कर्नल लिंकन स्टेनहोप मिले। वे उस समय सम्राट की सत्रहवी घुड़सवार सेना के नायक थे। जब वे भारत में पहले-पहल आये तो उसी समय से उनके साथ हमारा पत्र-व्यवहार चल रहा था। पिण्डारी युद्ध मे मेरे अधीनस्थ एक अधिकारी एजेण्ट से सूचना पाने पर वे उज्जैन से अपने रिसाले को लेकर आगे की तरफ बढ़ गये और उन्होंने बड़ी वीरता के साथ ऐसा आक्रमण किया कि जिसकी याद इन लुटेरों को सदा आती रहेगी।

हम दोनों ही एक ही समय पर योरप जाने वाले थे। इसलिये निश्चय कर लिया था कि हम दोनो साथ-साथ अपने देश को वापस जायँगे और लिवानस-निवासिनी प्रसिद्ध महिला से मिलकर उसको नमस्कार करेंगे। लेकिन पिछले छै महीनों के कठिन परिश्रम ने मेरे शरीर और मस्तिष्क को इतना थका दिया था कि मैं अपने सहयोगी के लिए भार स्वरूप ही साबित होता।

इस दशा मे मैंने अपने उस विचार को समाप्त कर दिया। यद्यपि मुझको अपने उस मित्र के साथ स्थानीय खोज के पश्चात् हिन्दू, मिश्री और सीरियन धर्मों एवम् गृह-निर्माण-कला सम्बन्धी बातो के विषय मे असाधारण जानकारी प्राप्त होने की आशा थी। मैं अपने मित्र के यहाँ एक सप्ताह तक खेडे मे ठहरा और उसके आतिथ्य से बहुत कुछ विश्राम प्राप्त कर सका। अब मैं इस काबिल हो सका कि मैं आगे की यात्रा कर सकूँ।

खेडा मे भी अनुसधान के लिये बहुत-कुछ कार्य था। वहाँ की दीवारो के गिरे हुये आकार-प्रकार इस बात का प्रमाण दे रहे थे कि यहाँ पर किसी समय कोई बड़ा नगर था। वहाँ पर कुछ ही दिन रहकर मैंने चाँदी के कुछ सिक्के प्राप्त किये। वे सिक्के मुझे वहाँ खण्डहरो मे ही प्राप्त हुये। इन सिक्को में किसी प्रकार का कोई लेख नहीं था। परन्तु अक्षरो के स्थान पर कुछ विचित्र निशान बने हुए थे।

मेरे मित्र कर्नल स्टेनहोप ने भी इसके सम्बन्ध मे मेरी सहायता की और उसने दो अथवा तीन सिक्के अपनी तरफ से देकर मेरे पुराने सिक्को की सख्या वढायी।

इस तरह यदि शोध और अनुसधान को प्रोत्साहन दिया जाय तो हिन्दुस्तान के सभी भागो मे बहुत-कुछ काम किया जा सकता है। लेकिन यहाँ पर एक वात मैं फिर लिख देना चाहता हूँ, उसका उल्लेख पहले भी मैं कर चुका हूँ वह यह है कि सिक्कों, प्रत्येक तरह की प्राचीन सामग्री, प्राचीन शिला लेखो और हस्तलिखित ग्रन्थो के विषय मे प्राचीन भारत की परिस्थितियो की छानवीन करने मे अगरेज किसी से पीछे नही रहे। इसके समर्थन मे मैं कहना चाहता हूँ कि यदि स्वास्थ्य और काफी अवकाश मुझे मिलता तो जो कुछ मैंने अब तक किया है, उससे दस गुना काम मैंने कर डाला होता और यदि आवश्यक सुविधायें मिली होती तो उस दस गुने का भी दस गुना करके मैं दिखा देता।

मही नदी को पार करने में वहुत परिश्रम करना पडा। जितना ही रोजाना आगे की तरफ बढते जाते थे, वह नदी उतनी ही दूर होती जाती थी। मेरे साथ जितने भी आदमी थे, उनको और साथ के सामान को पार ले जाने के लिए एक नाव मिली थी, वह वहुत छोटी थी। और जो चढाव पार करना था, वह साधारण नहीं था। नदी समुद्र की तरफ वहुत तेजी के साथ प्रवाहित हो रही थी। घोडो को नाव पर चढाना असम्भव हो रहा था, इसलिये उनको दूसरी तरफ ले जाने का एक ही तरीका

समझ में आया कि घोड़ों को ऊँचे घाट पर ले जाया जाय और उनको पानी में उतारने के समय जोर के साथ चाबुक मार दिये जाँय। ऐसा करना यद्यपि साधारण था। लेकिन एक बडी जुम्मेदारी से भरा हुआ था। परन्तु, इसके सिवा और कोई साधन समझ मे नही आया। कठिनाइयां और भी सामने थीं। मेरे साथ तीस घोड़ों को नदी के पार ले जाने के लिये तीस ही आदमियो की जरूरत थी। नदी को पार किये बिना रसद मिलने की सम्भावना नही थी और दिन समाप्त होने जा रहा था।

मैं कुछ समय तक इसी उधेडबुन मे पड़ा रहा और आखीर में अपने लवाज़मे के अधिकारी बूढे रिसालदार के पास जाकर मैंने पूछा—"यदि इस प्रकार की नदी को पार करने में अपनी सेना को रुका हुआ सिकन्दर देखता तो वह क्या करता ?"

मेरे प्रश्न को सुनते ही रिसालदार ने मेरी तरफ देखा और तीव्र स्वर में वह बोल उठा—"कपड़े उतारकर तैयार हो जाओ।"

पाँच मिनट भी पूरे बीतने नही पाये थे, बूढे रिसालदार ने अपने सभी कपड़ों की एक गठरी तैयार कर ली और उसे ले जाकर नाव पर रखा। इसके बाद उस बूढ़े ने अपनी घोड़ी नदी मे उतार दी और उसको तैराता हुआ वह नदी के पार निकल गया।

उसके पीछे दूसरे सवार अपने घोडो पर रवाना हुये। उसमे कुछ सवार तो अपने घोड़ो की पूंछ के सहारे थे और कुछ घोड़ो की गरदन के बालो को पकड़े थे। लेकिन किसी प्रकार वे सभी नदी के पार पहुँच गये। लेकिन इसके लिये हमारे बूढ़े रिसालदार ने प्रेरणा दी और उसका परिणाम यह हुआ कि मेरे साथ का सिपाही इसलिये नही रुक सका कि बूढ़े रिसालदार के ललकारने पर अगर मैं नदी मे नही कूदता तो साथ के सभी लोग मुझे क्या कहेगे ! इसलिये किसी सिपाही के सामने द्विविधा मे पडने का कोई मौका ही नही था। क्योंकि कूच करने के समय किसी सिपाही का रुकना अपराध माना जाता है। स्किनर (१) के सिपाहियो के लिये तो दोहरा अपराध होता, इसलिये कि वे जानते थे कि उनसे क्या आशा की जाती है।

नदी की चौड़ाई दो सौ गज से कम न थी, गहराई बहुत अधिक थी, उस नदी का जल प्रति घंटा कम-से-कम पाँच मील की गति से प्रवाहित हो रहा था। सकट साधारण नही था और साथ के सभी आदमियो तथा सिपाहियो का साहस टूट रहा

---

(१) कर्नल जेम्स (स्किनर) के नाम पर बनी हुई सेना। जेम्स का पिता स्काटिश और माता मिर्जापुर जिले की एक राजपूत महिला थी। निजाम की सेना के कर्नल पिरान की १८०५ ईसवी मे मृत्यु हो जाने पर उसके दो हजार घुड़सवारो का रिसाला अंग्रेजी सेना मे मिल गया, उसका नेतृत्व जेम्स स्किनर को दे दिया गया। वह स्किनर्सहोर्स के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्किनर को देशी सिपाही सिकन्दर साहब कहा

था ऐसी दशा मे बूढ़े रिसालदार ने अपने जिस साहस और पराक्रम का परिचय दिया, वह सर्वथा प्रशंसा के योग्य था। यदि हमारा वह रिसालदार अपने इस साहस से काम न लेता तो हम लोग किस परिणाम पर पहुँचते, इसके सम्बन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता। मैं तो इसके लिए उसी की तारीफ करता हूँ, जिसके नदी मे कूदते ही साथ के सभी सिपाहियो के शरीर मे मानो बिजली दौड गयी और वे भी अपने-अपने घोडे लेकर नदी मे कूद पड़े।

खेमे तक पहुँचते ही मुझसे कहा गया कि एक सईस नही है, तैरना न जानने के कारण उसने मेरे घोडे को अपने सहायक को सौंप दिया था। शाम तक उसका पता न चलने पर उसकी नदी मे खोज की गयी। लेकिन कोई परिणाम न निकला। नदी का जल बडी तेजी के साथ प्रवाहित हो रहा था। उसका पता न चलने पर साथ के लोगो ने बताया कि हम सब लोग जब नदी के पार आ गये थे, उस समय वह अकेला जल मे उतरा था। लेकिन यह उसकी भूल थी।

मैं उस सईस के डूब जाने की घटना अर्से तक भूल नहीं सका। जब वह तैरना नही जानता था तो उसको नदी मे नही उतरना था और जब हम लोग दूसरी तरफ पहुँच जाते तो नाव को भेजकर उसे भी पार करा लेते। लेकिन वृद्ध रिसालदार के उत्साह को देखकर वह भूल गया कि मैं तैरना नही जानता और वह नदी मे कूद पड़ा। उसने नदी मे उतर कर मर जाना उत्तम समझा, बजाय इसके कि वह नदी के उसी किनारे पर खडा रहता और सभी के उतर जाने पर वह कायरों में गिना जाता।

इस क्षेत्र मे मही नदी बडी भयानक मानी जाती है और इसीलिए उसके सम्बन्ध मे यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी है—"उतरा यही हुआ सही।" लोगो का कहना है कि यह कहावत उन लुटेरी जातियो के सम्बन्ध मे कही जाती है, जो इस नदी के किनारे-किनारे उसके निकास से लेकर विन्ध्य की पहाडियों को पार करती हुई कच्छ की खाडी तक दस मील की दूरी मे बसी हुई हैं।

इस नदी के किनारे अथवा करीब बसी हुई एक जाति का नाम माहीर है, वह आदिवासी गौड जाति की शाखा है। एक दूसरी जाति मांकड के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु इन सभी जातियो के तर्ज और तरीके सभी कुछ एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। उनमे आपसी वे सभी भेद-भाव पाये जाते हैं, जो ऊँचे कहलाने वाले ब्राह्मणो मे होते हैं और जिन गलत तथा गन्दी आदतो के कारण वे अपने आपको ऊंचा मानते हैं। जिस प्रकार हिन्दुओ मे ब्राह्मण अन्य जातियो को अपवित्र मानते हैं और स्पर्श हो जाने पर उनको प्रायश्चित्त करना पड़ता है। उसी प्रकार के विश्वास उन जातियो में भी पाये जाते हैं। वे सस्कृत पढने तथा बोलने वाले ब्राह्मणो और तुर्कों दोनो को एक-सा अपने से भिन्न मानते हैं। इस प्रकार के विश्वास उनके पुराने हैं।

मिही अथवा मही नदी के बहुत-से नामों में से एक नाम पापासिनी अथवा पाप की नदी भी है, दूसरा नाम कृष्ण भद्रा अथवा काली नदी है। इस अन्तिम नाम से ही वे सब नाम निकले हुए मालूम होते है।

उस गरीब सईस के डूब जाने की याद मुझे बार-बार आती रही। पहली रात मेरे लिए बड़ी भयानक हो गयी। मुझे सारी रात नीद नहीं आयी। वह बहुत अच्छा नौकर था और कितने ही वर्षों से वह मेरे साथ था।

बड़ौदा—जून...यहाँ पहुँचने पर मुझे बहुत शान्ति और सुख मिला। यहाँ के रेजीडेण्ट मिस्टर विलियम्स की बन्धुत्व से भरी हुई उदारता ने इसको मेरे लिए अत्यन्त सुखमय स्थान बना दिया था। बरसात के कारण बम्बई जाने वाली सड़कें बन्द थी। मेरे निर्बल स्वास्थ्य को देखकर मेरे रेजीडेण्ट मित्र ने जो कुछ कहा, वह मेरे लिए अत्यन्त हितकर था। उन्होंने मुझे समझाया कि बरसात के इन दिनों में मुझे उन्ही के यहाँ विश्राम करना चाहिए।

बरसात के इन दिनों में मुझको जहाज पर जगह मिलने की आशा नही थी। इसलिए मैंने निश्चय किया कि इन दिनो का उपयोग सौराष्ट्र की तरफ जाने में किया जाय। मिस्टर विलियम्स ने भी मेरी इस योजना को स्वीकार कर लिया। मुझे बड़ी प्रसन्नता उस समय हुई, जब उन्होंने सौराष्ट्र की यात्रा में मेरे साथ चलने का इरादा प्रकट किया।

इस समय जो कार्य मेरे हाथ में था, उसको पूरा कर डालना मैंने मुनासिब समझा। कितने ही ग्रन्थो और शिलालेखो की प्रतिलिपियाँ करनी थी। और उनको लेकर राजपूत जाति के इतिहास में आवश्यकतानुसार सम्मिलित करना था। इस प्रकार जो कार्य इस समय आवश्यक था, उसको पूरा करने मे मैं लग गया।

बड़ौदा यद्यपि बहुत पुराना नगर है। परन्तु अनुसधान के लिए वहाँ पर कोई काम नही है। यहाँ के तालाब मे मुझको एक शिलालेख मिला, जो प्राचीन जैनलिपि में लिखा हुआ था। लेकिन वहाँ के किसी स्वामी जी ने उसके अक्षरों को मिटा दिया था।

बड़ौदा का प्राचीन नाम चन्दनावती है। उसको दोर जाति के राजपूत राजा चन्दन ने बसाया था। उपाख्यानों में इसका बहुत वर्णन किया गया है। उसकी रानी

मुलीग्री से दो लड़कियाँ पैदा हुई, उनके नाम सोफ्री और नीला थे। (१) इनकी कथाओं को लिखकर मैं अपने पाठको का समय नष्ट नही करना चाहता।

दूसरे प्राचीन नगरो की तरह इसका चन्दनावती नाम चन्दन की नगरी बदलकर वीरावती (वीरों की नगरी) हो गया। उसके बाद वटपद्र हो गया। इस परिवर्तन का कारण क्या था, उसको खोजने के लिये मैं व्यर्थ ही कवियो की कविताओं में अपना समय खराब नही करना चाहता। ऐसा मालूम होता है कि यह नगर बदलते-बदलते अन्त में बडौदा हो गया है और कदाचित् यहाँ के स्वामी गायकवाड के राजा ने भी इसी नाम को मन्जूर कर लिया था।

---

(१) मूलकथा मे राजा चन्दन और उसकी रानी मलयागिरि के राजकुमारों के नाम लिखे गये हैं और वे नाम हैं, सायर तथा नीर।

बडौदा का पुराना नाम चन्दनावती और वीरावती नगरी से बदलकर कब 'वटपद्र' होकर फिर कब बडोदरा अथवा बडौदा हो गया, इसके सही उल्लेख नही मिलते।

आजकल प्रायः गुजरात के लोग इस नगर को बडोदरा कहते हैं। यह नाम संस्कृत के वटोदर शब्द से मिलता है। मालूम होता है कि इसका यह नाम उस समय पड़ा था, जब पहले यह एक छोटे-से गाँव के रूप था और उसके चारो तरफ विभिन्न प्रकार के पेडो के साथ-साथ वट-वृक्ष बहुत से थे। इसलिये वटो के बीच में बसा हुआ ग्राम वटोदर हुआ। इस नगर के आस-पास अब भी वट के पेड बहुत-से मौजूद हैं। बडोदरा के साथ-साथ इस नगर को वीरावती नगरी भी कहते हैं। पुस्तको में वीर क्षेत्र इसका नाम आया है। इसके नामों से जाहिर है कि पहले यह एक छोटा सा ग्राम था। इसके नाम का उल्लेख प्रायः आठवी शताब्दी से पाया जाता है। इसने धीरे-धीरे उन्नति की और फिर एक दिन विशाल नगर बन गया।

तेरहवाँ प्रकरण

सौराष्ट्र : प्राचीन और नवीन

बड़ौदा की परिस्थिति—हूण जाति के लोग—खम्भात और उसकी प्राचीनता—जैनियों का पुस्तकालय—सौराष्ट्र का इतिहास—सौर जाति का प्रारम्भ—सीरियन और सौर लोग—सीथिक और सौराष्ट्र की अन्य जातियाँ—बौद्धमत का केन्द्र—पुर्तगाली लोगों के व्यवहार—गोतिलों की राजधानी भावनगर—राजा का बहुरंगी दरबार—लूटमार का व्यवसाय—ब्राह्मणो की बस्ती सीहोर—मेवाड़ की पुरानी राजधानी वलभी ।

खम्भात—नवम्बर की ४ थी तारीख : बरसात के दिन समाप्त हो गये थे और सड़कों पर चलाने वालों की सख्या बढ गयी थी । इसलिये हमने २६ अक्टूबर को अपने स्थान से प्रस्थान करके ओमेटा नामक ग्राम के पास पहुँच कर मही नदी को पार किया । मेरा इरादा नदी के मुहाने के पास गजना नामक ग्राम तक जाने का था । उस ग्राम का नाम अब वहाँ के लोग स्वयं नही जानते ।

इस स्थान का वर्णन गहलोत राजाओ के इतिहास में आता है । जब वे सौर प्रायद्वीप मे राज्य करते थे तो उन दिनों में इसकी बहुत प्रसिद्धि थी । परन्तु अब यहाँ पर उसके सम्बन्ध मे कुछ सुनने को नही मिलता । मुझे यह भी बताया गया कि इसके अतीत कालीन गौरव का अब कोई अंश किसी रूप में नही रह गया ।

फिर भी मैं कुछ जानने की चेष्टा करता रहा । बडी मुश्किल में मुझे इतना ही जानने को मिला कि गजना ग्राम में पहले किसी समय कोली वंश की एक शक्तिशाली जाति रहती थी । उनसे बाघेला राजपूतो की मीरेन शाखा के लोगों ने इस स्थान को छीन लिया था । यहाँ की जमीन उपजाऊ थी और उस भूमि में पानी की आवश्यकता बहुत कम रहती थी । वर्तमान खम्भात की नदी के ऊपर की तरफ कुछ मीलों की दूरी पर बसे हुए प्राचीन ग्राम का नाम गजना (१) था ।

कहा जाता है कि यह नगर खम्भात के साथ आने के पहले एक बन्दरगाह था । यह विवरण मेवाड़ के इतिहास से पूरी तौर पर मिलता-जुलता है । उसमे गजना को बालरायो की राजधानी वलभी से दूसरी श्रेणी का नगर माना गया है । ओमेटा के

---

(१) गजना नामक ग्राम खम्भात से बीस मील दूर दहेवाण के करीब माना गया है ।

सामने एक छोटे-से ग्राम में मुझे हूणों की कुछ झोपड़ियाँ मिली। ये झोपड़ियाँ प्राचीन हूणो के नाम को अब तक कायम किये हुये हैं। इन हूणो की जानकारी हिन्दुओ के इतिहास से भली प्रकार होती है। बड़ौदा से छै मील पर त्रिसावी नामक ग्राम मे भी उन हूणो के दूसरे वंश वालो का निवास स्थान बताया जाता है।

इन हूणो के शरीर-गठन और उनके रंग के द्वारा तातार कहे जाने वाले हूणो का कोई परिचय नही मिलता और न इनको देखकर उनके व्यक्तित्व का कुछ स्मरण होता है। इनमे और उन हूणो में बहुत अधिक परिवर्तन मालूम होता है। इस परिवर्तन का कारण कदाचित् जलवायु का प्रभाव है। फिर भी इसमे संदेह नही कि ये हूण उन्ही आक्रमणकारियो की सन्ताने हैं, जिन्होंने दूसरी और छठी शताब्दी मे सिन्ध नदी के किनारे अपना साम्राज्य स्थापित किया था और जो राजपूतो के साथ इस प्रकार मिश्रित हो गये थे कि जेट, काठी और मध्य एशिया से आने वाली दूसरी जातियो के साथ-साथ उन्हे भी भारत के छत्तीस राज-वंशों में स्थान प्राप्त हो गया था उनके वंशज अब तक सूर्य के उपासक सौरों अथवा चावड़ो की जमीन पर बसे हुए हैं।

सचमुच ये लोग उन्हीं जातियो में से एक जाति के लोग हैं। इन विदेशी जातियो के लिए अगर हम जेट-भारतीय अथवा सासी-भारतीय शब्दो का प्रयोग करें तो वे लोग भूल से कहे जाने वाले इण्डो-सीथिक नाम की अपेक्षा अधिक मौजूं होंगे।

प्राचीन काम्बे—जिसको आज की देशी भाषा मे खम्भायत कहा जाता है और जो अब उजड गया है—वर्तमान नगर से तीन मील के फासिले पर है। इसका नाम प्राचीनकाल मे पापावती अथवा पाप की नगरी था। (१) इसका यह नाम उस स्थान के समीप होने के कारण रखा गया है, जहाँ पर मही नदी पापासिनी खाड़ी में जाकर गिरती है। यह खाडी भी अपनी भीषणता के कारण पापासिनी कहलाती है। कुछ दिनो के बाद इसका नाम बदल कर अमरावती अथवा अमर नगरी हो गया। यह नाम पहले की अपेक्षा अच्छा अवश्य था परन्तु अधिक दिनों तक वह नाम चल न सका। इसलिए यह नाम फिर बदला और बाघवती अथवा बाघो का निवास कहा जाने लगा। इसके बाद यह नाम बदलकर त्रिम्बावती अथवा ताम्र-नगरी हो गया। यह नाम इस प्रकार पडा कि इसका परकोटा तावें धातु से बनाया गया था। अन्तिम परिवर्तन इसके नाम का होकर उसको खम्भायत अथवा खम्भावती कहा गया। उसके सम्बन्ध में

---

(१) यहाँ के व्यापारी लोग अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में बुरी तरह से झूठ बोलकर पापाचरण करते थे। इसलिए लोगों ने इसको पापावती अथवा पाप नगरी कहना आरम्भ कर दिया। कुछ लोगो का विश्वास है कि खम्भात मे एक स्थान गोप नाथ कहलाता था। उसकी दूसरी शताब्दी के ग्रीक लेखको ने पापिके लिखा है।

कहा जाता है कि एक राजा ने खाड़ी का पानी आ जाने अथवा मही की उपजाऊ मिट्टी बडी मात्रा में एकत्रित हो जाने के कारण उस प्राचीन नगर को रहने के योग्य नहीं समझा और वर्तमान नगर की स्थापना की।

उन्ही दिनों मे राजा ने देवो को प्रसन्न करने के लिए समुद्र के किनारे पर एक स्तम्भ कायम किया और उसमे लिखा दिया कि प्राचीन नगर एवम् चौरासी ग्रामो की होने वाली आमदनी इस देवी के मन्दिर मे खर्च की जायगी। उस स्तम्भ का आज कोई अंश बाकी नही है लेकिन उस समय जिस प्रकार उसकी स्थापना की गयी थी और निर्णय करके जो कुछ उस स्तम्भ मे लिखा गया था, उसका समर्थन ११ वी शताब्दी मे सिद्धराज के द्वारा स्थापित स्तम्भ और पार्श्वनाथ के जैन मन्दिर के अस्तित्व से होता है। ये सभी इमारतें अब मसजिद के रूप मे दिखायी देती हैं। फिर भी उनके द्वारा इस नगर की शोभा है और उनके देखने से हिन्दू मुस्लिम गृह-निर्माण-कला के मिश्रण का सहज ही अनुमान होता है।

जहाँ पहले प्राचीन नगर था, वहाँ पर अब घना जंगल दिखायी देता है और प्राचीन इमारतो में अब केवल वहाँ पर दो मन्दिर बताये जाते हैं एक है, पार्श्वनाथ का और दूसरा है, महादेव का।

आज के काम्बे नगर मे कुछ भी देखने योग्य नही है। अहमदाबाद के किसी प्रसिद्ध पुरुष का यह वंशज है (१) जो अपने निवास-स्थान को बडे अभिमान के साथ महल कहता है और वह स्थान दिल्ली के सफदरजग के नमूने पर बना हुआ कहा जाता है।

उसका यह कहना सही नही है। क्योकि जिसके साथ उसकी समता की जाती है, उससे यह बहुत भिन्न है। फिर भी मैं उसके लिये कुछ कहना नहीं चाहता। क्योकि उसके विरुद्ध मेरे कुछ लिखने से उसके विश्वास को आघात पहुँचेगा और मेरा ऐसा लिखना अच्छा न मालूम होगा।

हेमाचार्य के समय से बहुत पहले ही और अब तक खम्भायत जैन ग्रन्थो के अध्ययन का एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा है और यहाँ पर नगर के भीतर जैन-मन्दिरो की संख्या पचास और साठ से कम नही हैं, बल्कि कुछ अधिक है। जिस प्रकार दूसरे स्थानो में जैनियो की संख्या अधिक होने पर उनके ग्रन्थो के भण्डार होते है, उसी प्रकार यहाँ

---

(१) निजाम राज्य के सस्थापक का दादा अब्दुल्ला खान फीरोज जंग बहादुर गुजरात का सूबेदार था। उसकी कब्र आज तक अहमदाबाद मे मौजूद है। स्वय निजाम भी थोड़े दिनो तक अहमदाबाद का सूबेदार रहा था। खम्भात की गद्दी का संस्थापक मोमिन खान बहादुर और उसका बेटा मोमिन खान दूसरा भी गुजरात का सूबेदार था।

भर भी जैनियो का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ भण्डार है। (१)

यदि बिना किसी गड़बड़ी के शान्ति और सावधानी के साथ इस भण्डार के ग्रन्थों के अध्ययन की चेष्टा की जाय तो इस धर्म के सिद्धान्तो और उनके संस्थापको के विषय में बहुत अच्छी जानकारी हो सकती है। इसलिए कि व्यक्तियो के चरित्रो से जो सामग्री प्राप्त होती है, वही इतिहास की सामग्री होती है।

किसी भी अवस्था मे इन ग्रन्थो के अध्ययन और अवलोकन का कार्य बहुत बडी सावधानी का कार्य है। थोडी-सी जल्दबाजी करने से अथवा किसी भी घटना को समझने मे भूल करने से एक अन्वेषक के उद्देश्य की पूर्ति नही होती। इसलिये अपने मन के भावो को नियन्त्रण में रखकर इस कार्य को करने की आवश्यकता होती है।

अनुसंधान का सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि किसी जैन साधु को अपना मुंशी बना लिया जाय, जो इस प्रकार के कार्य में जानकारी और अपनी अभिरुचि रखता हो। उसकी सहायता से उन ग्रन्थों के अध्ययन करने और समझने में बड़ी सहायता मिलेगी। किसी भी कार्य मे भूलकर भी किसी ब्राह्मण को साथ नही लेना चाहिये। उसकी अपेक्षा एक मुसलमान काम का आदमी साबित हो सकता है।

सुलेमानी पत्थर, मोचा पत्थर, इन्द्रगोप और दूसरे प्रकार के सभी लाल और गोमेदक पत्थरो को लोग राजपीपला के खण्डहरो से लाते हैं और उनसे अनेक प्रकार के आभूषण, प्याले, पेटियाँ, कटारें, चाकू, काँटों की मुठियाँ तथा अन्य चीजें तैयार करते हैं। उनकी बिक्री योरोप की जनता मे अधिक होती है। इसलिए कि वहाँ के लोग इस प्रकार की चीजें इगलैंड मे एक-दूसरे को भेट मे देते हैं।

यह एक विस्मय की बात है कि नगीने के कच्चे पत्थरो का रंग आग का ताव देकर निखारा जाता है। गर्मी पहुँचाने से दूधिया रङ्ग पीला हो जाता है। पीले से नारंगी रङ्ग का, उसके बाद भूरा एवम् दूसरे रङ्गो में बदल दिया जाता है। मैंने स्वयं अपने मित्रो के लिये इस प्रकार भी कितनी ही चीजे खरीदी और अगर मेरे सामने आवश्यक तथा महत्वपूर्ण कार्य न होते तो अच्छी चीजो का चुनाव करने के लिये कुछ और भी समय मैं खराब करता। लेकिन अपने साथ के घोड़ो, खेमों, सामानो और सभी साथियो को खाड़ी की दूसरी तरफ सौराष्ट्र के पास तक पहुँचाने के लिये नावों का प्रबन्ध करने में बहुत-सा समय लग गया।

खम्भात के विस्तृत दलदली किनारे पर ज्वार-भाटे के समय जहाँ तक नजर

---

(१) इसका तात्पर्य खम्भात के शान्तिनाथ ग्रन्थ भण्डार से है। राजशेखर सूरि ने अपने एक निबन्ध में लिखा है कि वस्तुपाल तेजपाल ने खम्भात के ज्ञान भण्डार की स्थापना करने मे तीन लाख खर्च किये थे। इस भण्डार में धर्माभ्युदय-काव्य की एक ताडपत्रीय प्रति है, जिस पर वस्तुपाल के हस्ताक्षर हैं।

जाती है, खारी पानी ही दिखायी देता है। हमारे साथ के लोग इस नमकीन पानी को लूणा पानी अथवा खारी पानी कहते हैं। मेरे तरह के व्यक्ति को—जो सदा और निरन्तर चिन्ताकुल रहता हो—बीस वर्ष की गैरहाजिरी के बाद भी समुद्र का यह वातावरण प्रसन्न न कर सका। बड़ी देर के बाद ज्वार की दशा बदलने पर पानी अपनी साधारण अवस्था में आ गया। लेकिन सन्ध्या काल का समय अत्यन्त सुन्दर और मनोहर हो गया था और हमारा बाजरा आधी रात तक धीरे-धीरे पानी में झूलता रहा। इसके बाद फिर ज्वार आ गया। उसी समय लंगर डालने का आदेश सुनायी पड़ा।

इस नये दृश्य को देखकर मैं अवाक्-सा हो गया। मैं टकटकी लगाकर उस दृश्य को देखता रहा और विभिन्न प्रकार की बाते सोचता रहा। मेरे अन्तरतर में एक नवीन स्फूर्ति जागृत हुई। मेरी यात्रा के साथी कैप्टेन शोर अपना वायलिन ले आये और मैंने भी अपनी बाँसुरी उठा ली। तारों के प्रकाश का सहारा लेकर हम दोनो नाव पर चढ़ गये और खाड़ी के जल मे लहरे लेने वाली तरंगो के साथ हम लोग अपने बाजो को बजाते हुये आनन्द लेते रहे। इस मधुर अवसर पर हम दोनों एक दूसरे की प्रशंसा भी करते थे।

प्रातःकाल की ठढी हवा चलने लगी। अठारह घण्टे के बाद पीरम द्वीप और बारह मील की दुरी पर फैली हुई पहाडियाँ हमें दिखायी देने लगी। हम गोगो पर उतरे और खाडी के किनारे-किनारे यात्रा करते रहे। इस मौके पर हम अपने उस समान की प्रतीक्षा करते रहे, जो भारी होने के कारण पीछे रह गया था।

गोगो बन्दरगाह की हालत अब बहुत खराब हो गयी है। वह अब बन्दरगाह के स्थान पर मल्लाह के रहने का एक स्थान बन गया है। वे मल्लाह देखने-सुनने और शारीरिक गठन मे बहुत-कुछ अरब वालो की तरह लेकिन अनेक बातो मे प्रतिकूल भी मालूम होते हैं। लेकिन वे हिन्दू हैं और नहरवाला के राजवश के द्वारा वे सदा सुरक्षित रहे हैं।

नहरवाला नगर में उन मल्लाहो के नाम पर टोला बसा हुआ है। उनके द्वारा विदेशो की सम्पत्ति हमेशा आती है। फिर भी गोगो की अवस्था कुछ सतोषजनक नही मालूम होतो। यहाँ की पुरानी दीवारे अपनी पहली शक्ति को खो चुकी हैं। एक दिन था, जब इन दीवारो ने समुद्र के भयानक जन्तुओं से यहाँ के लोगो की रक्षा की थी। इसका दक्षिणी भाग—जिधर बहुत-सी विभिन्न ऊँचाई की छतरियाँ बनी हुई दिखायी देती हैं—लम्बाई में बारह सौ गज से किसी हालत मे कम नही हैं। लेकिन वह पश्चिमी दीवार के बराबर नही है। इधर का यह भाग समुद्र की लहरों के कारण निर्बल पड़ गया है और उसके नीचे का भाग बहुत-कुछ टूट गया है।

किसी समय गोगो उन राजपूतो का निवास-स्थान था, जोगोहिल राजपूत कहलाते थे। नगर के दक्षिण-पश्चिमी कोने की तरफ एक छोटा-सा किला है। उसी मे वे लोग रहा करते थे। यहाँ पर ऐसे स्थान बहुत थोडे हैं, जो देखने के योग्य हैं और उनमें एक बावड़ी भी है। उसके सामने का हिस्सा पत्थर का बना हुआ है। इन पत्थरों के बडे-बडे टुकडो में लगातार पानी की लहरों की टक्करें लगने से गड्ढे बन गये हैं। उनको देखकर इस बावड़ी की प्राचीनता का अनुमान किया जा सकता है।

उन पत्थरो में एक शिला-लेख भी मालूम होता है। उनमे जो लिखा था, वह बहुत-कुछ मिट गया है। उस शिला-लेख के स्थान पर गुजरती मे लिखा हुआ एक दूसरा शिला-लेख लगा दिया गया है। यह शिला-लेख ढाई सौ वर्ष से पुराना नही मालूम होता।

इन नये शिलालेखो मे राजवाडा-के शाप का उल्लेख है। उसमे लिखा हुआ है—जो कोई इस जलाशय को अपवित्र करेगा, उसके माता-पिता गधा और गधी के रूप में जन्म लेगे। इसके साथ-साथ हमको अरबी और फारसी के लेख भी दिखायी पडे, उनमें से एक पत्थर पर जफर-खाँ बिन वजीर उल् मुल्क (के राज्य में) शाह उल् आजम शम्स उद्दू रिकउद्दीन, सुल्तान मुजफ्फर का नाम भी खुदा हुआ है। इस लेख की तारीख १० रजब ७७७ सन् १३७५ ईसवी उसमें लिखी हुई है।

अहमदाबाद के इतिहास की रूप रेखा तैयार करने वाले विद्वान के लिए यह स्मारक अत्यन्त उपयोगी और काम का साबित होगा। इससे पता चलेगा कि गोगो मे उस वंश ने अपने रहने का निवास स्थान बनाया, जिसने भविष्य में बहुत बड़ी उन्नति की।

वजीर-उल् मुल्क टॉक अथवा गेटिक भारतीय जाति का एक राजा था, उसने अपना धर्म छोड दिया था। उसके इतिहास का वर्णन मैंने दूसरे स्थान पर किया है। उसके बेटे जफर खाँ को मन्डोर के राजपूत सरदार चूँडा ने चौदहवी शताब्दी के अंत मे नागौर से निकाल दिया था। मारवाड की वर्तमान राजधानी जोधपुर को बसाने वाले जोधा का चूँडा पितामह था। जफर खाँ राजपूतों के बीच में अपना राज्य कायम करना चाहता था। लेकिन उसको सफलता नही मिली। जफर खाँ की यह असफलता चूंडा के लिए वरदान साबित हुई। इसलिए कि उसको अगर वहाँ पर सफलता मिल भी जाती तो भी वह अधिक दिनों तक ठहर नही सकता था। इसके साथ-साथ, नहर वाला की राजधानी में विरोध का कोई मौका नही पैदा हुआ। इस दशा मे उसकी अभिलाषा की पूर्ति के लिए आसानी के साथ उसको एक अच्छा क्षेत्र मिल गया।

पत्थर के इस लेख के चौंसठ वर्षों के बाद वजीर उल्-मुल्क के पौत्र और जफर के बेटे अहमद ने साबरमती के किनारे अपने नाम पर नवीन राजधानी बसायी। हमको इसके सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है कि अहमद के पूर्वजों ने इस व्यावसायिक

बन्दरगाह गोगा को गोहिलो से किस प्रकार प्राप्त किया था, जिसको वे सम्वत् १२०० से अपने अधिकार में किये थे और कन्नौज के राठौर-राजपूतों के आक्रमण के कारण उनको मरुभूमि में खेर घर छोड़ना पड़ा था। लेकिन इस विषय को हम गोहिल वंश के साथ लिखने के लिए यहाँ पर छोड़े देते है। इसका कारण यह है कि इस वंश का इस प्रदेश मे अब भी राज्य मौजूद है और सौरा-प्रायद्वीप का एक भाग गोहिल बाड़ा के नाम से आज भी प्रसिद्ध है।

अब हम उस प्रदेश मे प्रवेश कर चुके हैं, जहाँ पर विभिन्नता और अनेक प्रकार की प्रतिकूलता है। मुझे अपना अगला कार्यक्रम इसी मार्ग मे होकर पूरा करना है। ऐसी दशा मे यह अत्यन्त आवश्यक है कि यहाँ के प्राचीन और वर्तमान इतिहास की खोज का कार्य आरम्भ किया जाय और यहाँ पर राज्य करने वाली जातियो का पता लगाया जाय।

सौराष्ट्र का अर्थ होता है सौरों का देश। सौर जाति प्राचीनकाल से सूर्य की पूजक रही है। उसके विकास का इतिहास अतीतकाल के अन्धकार मे विलीन हो गया है। यह जाति एशिया की उन गेटिक भारतोय जातियो मे से एक है, ऐसा कहना और होना असंगत और असम्भव नही होगा, जिनकी सख्या चारो तरफ बहुत पहले से पायी जाती है। इसके प्रमाण इतिहासो में बहुत काफी पाये जाते हैं, क्योकि अब तक उस जाति के जो लोग बचे-बचाये मिलते हैं, उनके रहन-सहन और रीति-रिवाजों से पूरे तौर पर इसका समर्थन होता है।

सूर्य के उपासको मे जो लोग आज तक पाये जाते हैं, वे काठी, कोमानी, और बालो के साथ बसे हुए देखे जाते हैं। उनका शारीरिक गठन, आकार-प्रकार, सूरत-शकल उन जातियो से बहुत-कुछ मिल-जुल गयी है, जिनके बीच मे उनको शताब्दियो से रहने का मौका मिला है; लेकिन फिर भी यह साफ-साफ जाहिर होता है कि वे मौलिकरूप से किस जाति की सताने हैं।

सौर जाति के लोगो ने इस प्रायद्वोप मे कब अधिकार किया, इसकी हमें कोई जानकारी नही है। लेकिन जस्टिन, स्ट्राबो, टालमी और दोनो एरियनो के आधार पर हम इस बात की खोज कर सकते हैं कि सौर जाति के आक्रमण का समय सिकन्दर महान का समकालीन था। सौरो के देश पर मीनान्डर और अपोलोडोटस् की विजय के सम्बन्ध मे विद्वान वेयर और स्ट्राबो के फ्रेन्च अनुवादको ने एक बडे विवाद को उत्पन्न कर दिया है। वे सौर को फोनिक्स के साथ मिला हुआ देखकर हिन्द महासागर के सीरिया को मध्यसागर के सीरिया और फोनीशिया मे बदल रहे हैं।

अपनी छिन्न-भिन्न और बची-बचाई सेना को कर, जिसमे उन्होने अपनी गेटिक भारतीय प्रजा को भी सम्मिलित कर लिया था, बैक्ट्रिना के राजाओ के वास्ते

एरिया और अराकोशिया में होकर सिन्धु घाटी के रास्ते से सौराष्ट्र में अन्य रेतीले मैदानों के जगलों और शत्रुओं के द्वारा अवरुद्ध सीरिया के लम्बे मार्ग का अवलम्बन लेने की बनिस्वत अधिक आसान था। भारतीय सीरिया के लिये प्राचीन अधिकारी विद्वानो के द्वारा प्रयुक्त सौराष्ट्रिनी और सायराष्ट्रीनी शब्दो की अधिक छानबीन किये बिना ही सुगमता के साथ हमको सौराष्ट्र शब्द मिल जाता है और अगर हमको यहाँ के प्राचीन चाँदी के सिक्को और चट्टानो पर खुदे हुए लेखो मे प्रयोग किये गये विचित्र लेकिन पूर्ण, लिपि के अक्षरों की पूरी जानकारी हो जाय, तो ऐसी दशा में हम कम से कम मुकुट धारण करने वाले राजाओ के नाम तो मालूम कर ही सकते हैं, जिनकी मूर्तियाँ सिक्को में अग्निवेदियो के दूसरी तरफ छपी हुई हैं और जिनके पास लगे हुए चित्र, एरिया के प्राचीन सूर्य और अग्निपूजक सासियो के साथ एकता और समता की घोषणा स्पष्ट रूप मे कर रहे हैं। (१)

इस विषय मे शङ्का करने की आवश्यकता नही है कि सौर जाति के लोग—जिनके वैभवशाली होने का प्रमाण प्राचीन लेखको के द्वारा मिलता है—उसी वंश के हो सकते हैं, जिसको हेरोडोटस ने सौरामेटी लिखा है। यह जरूर है कि वही सस्कार उन्ही नामो से, बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के उन्ही त्योहारो के दिनों मे, उन्ही देवताओ के लिए भारत के प्रायद्वीप सीरिया में भी सम्पन्न होते हैं, जो मध्य सागर के निकटवर्ती सीरिया मे माने जाते हैं।

इस विषय पर मैंने दूसरे स्थान पर विस्तार के साथ लिखा है, इसलिये यहाँ पर इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि सीरिया में—जिसको बाल अथवा बेलसून कहा जाता है—वही सौरो के बालनाथ हैं और सोमनाथ का विशाल मन्दिर सीरिया देशीय 'बालबेक' का ही दूसरा रूप है।

निम्न लोक अथवा चन्द्रमा के मण्डल का अधिष्ठाता होने के कारण सोमनाथ बाल का ही पर्यायवाची है। पूजा की सामग्री के साथ सूर्य इसरायलियो के प्रत्येक पहाड़ी पर खडे स्तम्भो और प्रत्येक पेड के नीचे स्थापित पीतल के बैल को शामिल कर लीजिये तो वे हमारे लिङ्गम् अथवा नन्दिकेश्वर हो जाते हैं, जिनकी विशेष रूप से महानता और पवित्रता मानी जानी है।

इसमें कोई दूसरी कमी नही रह जाती। केवल इतना ही अन्तर पडता है कि सीरियन लोगो ने पूजा के लिये दिन निश्चित कर रखा है और उस दिन वे लोग निश्चित रूप से पूजा करते हैं। यह दिन प्रत्येक महीने का पन्द्रहवां दिन माना जाता

(१) इस पुस्तक के लिखे जाने और लेखक की मृत्यु के बाद इस तरफ बहुत कुछ कार्य हो चुका है। उसके परिणाम लेखक की खोजो और अनुमान का समर्थन करते हैं।

है। यहाँ पर हमको सौरों और भारतीय दूसरी जातियों में एक और समानता मिलती है। अमावस का दिन चन्द्रमास के कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों को एक, दूसरे से विभाजित करता है। जब सूर्य और उसका उपग्रह अतरिक्ष में आमने-सामने होते हैं। एक अस्त होता है और दूसरे का उदय होता है तो साबीनो की तरह हिन्दू भी अपनी टोपियाँ नवीन चाँद की तरफ फेकते हैं और लोगों को दावते देते हैं।

समानता की ये सभी बाते आयी कहाँ से ? यह एक प्रश्न पैदा होता है। हम भली प्रकार जानते हैं कि आकाश के ग्रह-मण्डल की पूजा प्राकृत धर्म का आधार है। लेकिन यहाँ पर कुछ ऐसी विशेष बाते है; जो सम्पर्क के बिना एक, दूसरे मे नही आ सकती। इन विषयो पर हम आगे के पृष्ठो मे समय और सामग्री से अनुसार विचार करेंगे।

प्राचीन हिन्दू ग्रन्थो मे सौराष्ट्र को भारत का एक अंग माना गया है। मनु ने इसका उल्लेख किया है। पुराणो मे और दूसरे ग्रन्थो मे भी इसके सम्बन्ध मे विवरण पाये जाते हैं। लेकिन महाभारत मे इसके वर्णन को विशेषता दी गयी है, इसलिये कि कृष्ण और दूसरे नेताओ के केवल पौरुष एवम् मृत्यु के दृश्य यहाँ पर सामने आये थे। इसलिये यद्यपि इन प्रमाणों के आधार पर हम इस प्रायः द्वीप मे सौर जाति के बसने का ठीक निर्णय नही कर सकते; परन्तु यह अनुमान लगाना असगत नही हो सकता कि इसका समय सिकन्दर महान से कई शताब्दी पहले का था और जाहिर तो यह होता है कि यह समय (साॅल) (१) का समकालीन अथवा उससे एक शताब्दी पहले का हो सकता है। जब कि सायरो-फोनिशियन उपनिवेश सभी क्षेत्रो में फैलते जा रहे थे।

अनहिलवाडा की स्थापना करने वाला वश उस सौर जाति का था, जो समुद्र के किनारे पर बसी हुई थी और उन लोगो के कार्य समुद्र के किनारे जहाजो से सम्बन्ध रखते थे। इनमे से कुछ जातियो मे अनेक प्रकार की विचित्र परम्पराये पायी जाती हैं। जो उनके धर्म से तो सम्बन्ध नही रखती लेकिन उनसे जाहिर होता है कि वे अरब और लाल सागर से सम्बन्ध रखते हैं। इनका वर्णन आवश्यकतानुसार आगे किया गया है। और इन शिला-लेखो के उल्लेखो से इस सत्य का समर्थन है।

इन क्षेत्रो में जितने भी राजवंशो के नाम आये हैं, उनमे किसी दूसरे सौराष्ट्र का उल्लेख नही है। यह जरूर है कि अकबर के समय तक इस प्रायद्वीप का एक हिस्सा सोरठ कहलाता था। उसकी राजधानी जूनागढ थी और वह गहलोत (मेवाड के राणा लोगो की जाति के) राजाओ के अधिकार मे थी। बादशाह के यहाँ उस जाति के लोग सेना में काम करते थे, इसका वर्णन अबुलफजल ने किया है, यद्यपि उस समय को

(१) (किश) का लड़का (साॅल) इजरायल के यहूदियो का पहला बादशाह था।

बीते हुये तीन ही शताब्दियाँ गुजरी हैं, लेकिन अब इस क्षेत्र में एक भी गहलोत नहीं रह गया।

यह प्रायद्वीप इन दिनो मे बहुत-सी छोटी-छोटी रियासतो में बंटा हुआ है। यद्यपि काठी लोगो के अधिकार में इसका बहुत-थोडा-सा हिस्सा है, परन्तु किसी परम्परा के अनुसार इस गेटिक भारतीय जाति के नाम पर इस पूरे प्रायद्वीप का नाम रखा गया है और इस प्रकार काठियावाड से सौराष्ट्र पराजित हो गया है। बीच के दिनो मे काठी लोगों के उत्थान के पहले इस प्रदेश का एक ऐसा नाम था, जिससे हिन्दू भूगोल के विद्वान भली प्रकार परिचित थे। उसका नाम था, लार देश यह नाम लार जाति के नाम पर रखा गया था।

सौराष्ट्र अनहिलवाड़ा राज्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण हिस्सा है। हिन्दुस्तान में इस प्रकार का कोई दूसरा प्रदेश नहीं है, जिसकी समता सौराष्ट्र के साथ की जा सके। जगत अन्तरीप से खम्भात की खाड़ी तक इसकी चौडाई लगभग एक सौ पचास मील है और बनास तथा सरस्वती नदियाँ उसमे गिरती हैं। उस छोटे उत्तरी रण से चावड़ो की पुरानी राजधानी देवबन्दर तक का विस्तार भी करीब-करीब इतना ही हैं। इसके चारो तरफ समुद्र है। उत्तर में दोनों खाडियो के सिरे एक-दूसरे से मिल गये हैं और सिर्फ साठ अथवा सत्तर मील की पर्वत श्रेणी से—जिसको हिन्दू भूगोल के विद्वान पार्वती कहते हैं बहुत से झरने निकलकर इस क्षेत्र में आते हैं और दोनों समुद्र की तरफ प्रवाहित होते हैं। यही कारण है कि यहाँ की जमीन में कई तरह की मिट्टी पायी जाती है।

इन पहाड़ियों में सभी प्रकार का इमारती समान पाया जाता है। यहाँ की नदियो मे मछलियो की सख्या बहुत अधिक है और उन नदियो के किनारे घने जङ्गल हैं। ऐसा मालूम होता है कि अनहिलवाड़ा के राजवश के समाप्त होने के बाद वहाँ के लोग स्वतन्त्र हो गये और लूटमार का काम करने लगे। उन लोगो का यह क्रम उस समय तक चलता रहा, जब तक कि गायकवाड राजाओ ने इस प्रदेश के भागो पर अपना और अपने सामन्तो का अधिकार न कर लिया था।

यहाँ के मुख्य विभाग इस प्रकार हैं—खम्भात की खाडी पर गोहिलवाडा अथवा गोहिलो का क्षेत्र, उत्तर में झालावाड जहाँ पर झाला राजपूत बसते हैं, पश्चिमी मे नवा नगर, जहाँ जाडचो की एक शाखा के जैन रहते हैं। पोरबन्दर मे बालो का अधिकार है, जूनागढ में एक मुसलमान सरदार है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी छोटे-छोटे जिले हैं।

केन्द्र मे काठी लोग रहते हैं और चावडो की प्राचीन राजधानी देवबन्दर पर तीन शतब्दियो से पुर्तगालियों का अधिकार है। उसका नाम उन लोगो ने बदलकर

(ड्यू) कर दिया है। प्रायद्वीप के इन भागों में उपरोक्त मूल जातियों के सिवा बहुत-सी सीथिक जातियाँ भी पायी जाती हैं। जैसे, कामरी, जो अब जेठवा कहलाते हैं, कोमानी; मकवाणा, जो अपने आपको झाला राजपूतों में मानते हैं; जीतवार के जीत और दूसरी भी बहुत-सी मिश्रित जातियाँ हैं। जैसे मीरिया, काबा इत्यादि। इन सबके सम्बन्ध में आवश्यकतानुसार आगे वर्णन किया गया है।

सही बात है कि जातियो की विभिन्नता के सम्बन्ध मे चाहे वे देशी हो अथवा विदेशी—सौराष्ट्र के साथ हिन्दुस्तान के दूसरे किसी भी प्रदेश की तुलना नही की जा सकती। यहाँ पर नीली आँखो वाले और गोरे काठियो से लेकर—अब भी उतने ही आजाद हैं; जितने कि उनके पूर्वज मुलतान में मैसीडोनिया वालो से लडने के समय आजाद थे—काले और तेज आँख वाले जगली भीलों तक सभी जातियो के लोग मिलते हैं। ऐतिहासिक शोधकर्ता के लिये उपयुक्त स्थान होने के साथ-साथ यह प्रदेश एशिया के इस समुद्री कोने की तरफ मनुष्य को आकर्षित करने वाले सभी धर्मों के इतिहासो का केन्द्रीय स्थान है।

बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध मे दो बातो मे एक निश्चित रूप से मजूर करनी पड़ती है। इसका या तो जन्म ही यहाँ पर हुआ था अथवा एशिया तक पहुँचने के लिये इस धर्म की जड आरम्भ मे यही पर कायम की गयी थी।

इस प्रश्न पर एक यह विवाद पैदा होता है कि यहाँ पर कृष्ण की उपासना प्राय: उतने ही उत्साह और भक्ति के साथ की जाती है। लेकिन अगर हम परम्पराओं पर विचार करे तो यह मानना पडेगा कि यह उपासना बुद्ध की पूजा का एक अग है। पुरातत्व के अन्वेषको और शिल्प शास्त्रियो को अपने अनुसंधानो के लिये यहाँ पर बहुत अच्छा अवसर है। इसलिये कि उन्हें यहाँ के लेखो की लिपियों को खोलकर पढना और मन्दिरो की रचना करने वाले मस्तिष्को के आधार पर अनुमान करना होगा, जिनके द्वारा उनके सस्थापको का धर्म स्थायी हो गया है।

किसी पहाड़ी की चोटी अथवा समुद्र के किनारे पर दिन के प्रकाश में अथवा बरसात के बादलो के अन्धकार में एक शिल्पी यहाँ के दृश्यो को देखकर प्रसन्न हो उठेगा। वह सोमनाथ के मन्दिर और शिव के आचारो के साथ सयोजन कर सकता है अथवा राधा के प्रेमी के मन्दिर पर सौन्दर्य का चित्रण कर सकता है। वह पहाड़ पर शक्ति के उपासक के मन्दिर की तरफ जितना ही चढ़ता जायगा, उतना ही गम्भीर से गम्भीर एवम् सूक्ष्म-से सूक्ष्म वर्णन करने के भाव उसके सामने अपने-आप आते जायँगे।

यह दशा उस प्रदेश की है, जिसमे होकर मुझे जाना है और जहाँ की परिस्थितियो पर प्रकाश डालकर अपने पाठको के सामने उनको प्रस्तुत करना है। इस क्षेत्र में अध्ययन की इतनी अधिक सामग्री है कि उनको लेकर कितने ही ग्रन्थ तैयार

किये जा सकते हैं। लेकिन मेरे लिये यह सम्भव नही है। इसका कारण यह है कि मेरे पास इतना समय नही है कि मैं उस सामग्री का पूरा उपयोग कर सकूं। सीमित समय के कारण और विशेषकर उसके अभाव के कारण मुझे जो काम करना चाहिये था, उसे कर नही पाऊँगा। ऐसी दशा मे अपनी पूर्व जानकारी के आधार पर सौर प्रायद्वीप के बहुत-से महत्वपूर्ण विषयों में से कुछ पर प्रकाश डालने की चेष्टा करता हूँ।

अब हम गोगो वापस आ रहे हैं, जहाँ बारहवी शताब्दी के अन्त मे खरेघर से निकलकर जिस जाति लोगों ने शरण ली थी। उसका नाम इसी स्थान के नाम से एवम् प्राचीन नाम से कुछ आत्मीयता तथा भिन्नता प्रकट करते गोगरा गोरेहिल पड़ गया था। आजकल जहाँ पीरक टीपू बना हुआ है। वही पर गोगो से भी पहले गोहिल लोग आकर बसे थे। उस समय इस स्थान की परिस्थिति कुछ और थी। इसकी सीमा अधिक नही थी और अपने प्रदेश के साथ यह छोटा-सा क्षेत्र जुड़ा हुआ था। गोगो बन्दर का यह एक मजबूत किला बना हुआ था। उसके इतिहास की कुछ ऐसी सामग्री हमको मिलती है, जो घनिष्ट और मनोरजक होने के साथ-साथ, समकालीन है, उससे पीरम की प्रधानता का मजबूत प्रमाण मिलता है।

मेवाड के इतिहास मे सन् १३०३ ईसवी मे झल्ला के द्वारा उस देश पर जोरदार आक्रमण हुआ था, उस अवसर पर आक्रमणकारी के विरुद्ध युद्ध करने के लिये जो लोग एकत्रित हुए थे, उनमें पीरम के गोहिलो का भी नाम आया है। उए ग्रन्थ का अनुवाद करने के समय तक मुझको गोहिलो के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही थी और न अब तक कुछ है।

गोहिलो के इतिहास और उसके वर्णन मे इन घटनाओ का बराबर उल्लेख किया गया है। उनकी बहादुरी ने उस जाति के गौरव को बढाया है। जिस सरदार के शौर्य के कारण इस देश के इतिहास मे गोहिलो का मस्तक ऊँचा हुआ है, उसका नाम अखेराज था। जब वह किसी यात्रा से लौट रहा था, उस समय चित्तौर के सम्मान के लिये उसने युद्ध किया था। उस युद्ध मे वह अपने सैनिको के साथ मारा गया था। वह अपनी वीरता के लिये पहले से ही रावल की पदवी प्राप्त कर चुका था। उसके उत्तराधिकारी आज तक इस पदवी के अधिकारी हैं और सभी रावल कहलाते हैं।

उस सरदार के वशज ने, जो आज भी वर्तमान हैं, मुझे बताया कि उसके किसी पूर्वज को चित्तौर के राणा की लडकी सूजन कुमारी के साथ विवाहित होने का गौरव प्राप्त हुआ था। लेकिन झल्ला के आक्रमण के अवसर पर उस नवविवाहिता पत्नी को सती होना पडा था। इस कथानक का सम्बन्ध एक दूसरे उपाख्यान के साथ आया है। यद्यपि यह विषय पीरम की प्राचीन नगरी के साथ सम्बन्ध रखता है, जो गोगो से आने वाली जाति का नाम है। इस जाति के अधः पतन का वर्णन वास्को-डे-गामा ने अपने अनुसधानो मे किया है।

सन् १५३२ ईसवी में जब हिन्दुस्तान मे पुर्तगाल का गवर्नर नन्हा-दे-कान्ह ड्यू पर अधिकार करने की कोशिश में सफल नही हुआ तो उसने अपने एक कप्तान एन्टो-निओ-दे-सालदन्हा को लूटमार के लिये यहाँ पर अधिकार दे दिया था। उस कप्तान ने ड्यू से कुछ मीलों की दूरी पर सौराष्ट्र के दोनो किनारो पर बेरहमी के साथ लूटमार आरम्भ कर दी। गोगो और पट्टन (पाटण सोमनाथ) को जला दिया गया और वहाँ की सारी सम्पत्ति लूटी गयी।

इसके पाँच वर्षों के बाद उन पुर्तगालियों ने गुजरात के बादशाह को धोखा देकर मार डाला। सन् १५४० ईसवी में गोगो पर फिर से उन लोगों ने आक्रमण किया, आग लगाकर विध्वंस और विनाश किया। वहाँ के रहने वाले, स्त्री पुरुषो और बच्चो को काटमार कर फेंक दिया गया, पालतू पशुओं की बुरी तरह हत्या की गयी। आसपास के नगरों और गांवो के जो लोग मिले, उनको मार डाला गया। चारों तरफ लूटमार और आग लगाने के भीषण अत्याचार चलते रहे। दूसरे धर्म-वालों के साथ ईसाइयो के जो युद्ध हुए थे, उनसे पहले की ये घटनायें हैं। इस प्रकार के अमानुषिक व्यवहार उन लोगो के थे, जो अपने-आपको उस महान धर्म का अनु-यायी होना घोषित करते हैं, जिस धर्म का सबसे पहला उपदेश यह था कि 'अपने पड़ोसी से प्रेम करो।'

'ला इल्लाह मोहम्मद रसूल ए अल्लाह' कहकर जिन लोगों ने कलमा पढ़ लिया अथवा अपनी जान बचाने के लिए जिसने मुँह माँगी रकम दे दी तो ऐसे काफिरो की जान बख्शी गयी। आश्चर्य तो यह है कि इस प्रकार के अमानुषिक जुल्म धर्म के नाम पर किये गये और ऐसा करके ईश्वर को प्रसन्न करने पर विश्वास किया गया। इन अत्याचारों को रोकने और उनका बदला देने की शक्ति भारत में न रह गयी थी, जिन लोगो ने दूसरे धर्मों को स्वीकार नही किया था वे कीड़ों-पतिंगो की तरह मारे गये थे।

इन अत्याचारो के साथ-साथ कुछ मनुष्यो के अच्छे कायो की झलक भी मिलती है और उनकी उदारता ने मनुष्य-जीवन के सम्मान की रक्षा की है। इस प्रकार के कठिन अवसर पर अलबुकर्क ने अपने एक वर्णन मे लिखा है कि उस लूट मार और आगजनी के फलस्वरूप वहाँ के लोग भयानक मुसीबतो मे आ गये थे और लोगो के जीवित रहने के लिए, जो बाकी रह गये थे, धन की जरूरत थी। उसकी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उसने वहाँ के लोगो के नाम एक घोषणा प्रकाशित की। उसमें बताया गया कि मूँछ के एक बाल गिरवी करके धन दिया जाता है। जिसने यह घोषणा की, उस पुर्तगाली को इस देश और प्रदेश के लोगो के विश्वास का पता था। वह जानता था कि ये लोग अपने मूँछ के बाल का बड़ा सम्मानते कर हैं और सबसे

बडो वे उसकी प्रतिष्ठा मानते हैं। उसने अपनी उस घोषणा के द्वारा एक बहुत बड़ी उदारता का परिचय दिया था।

भावनगर—नवम्बर : यहाँ पर गोहिलो की राजधानी थी। यह नगर गोगो से उत्तर-पश्चिम में आठ मील के फासिले पर एक छोटी-सी नदी पर बसा हुआ है। वह नदी कुछ मील आगे जाकर खाडी मे मिल जाती है। गोगो से लेकर यहाँ तक की जमीन साफ और बराबर है। नगर के करीब जो जमीन है, वह कुछ ऊँची-नीची है। उसके समीप पहुँचने पर आमो के बाग और ऊँची गुम्बददार छतरियाँ दिखायी देने लगती है।

जब हमने नगर मे प्रवेश किया तो हमको कोई आकर्षक दृश्य दिखायी नही पडा। बाजारो मे धनी व्यक्ति घूमते हुए जरूर नजर आये। चन्द कवि के अनुसार ऐसे लोगो से किसी भी नगर की शोभा बढ़ती है। अगर मैं उस कवि की भावुक पक्तियो का समर्थन करूँ, तब तो मुझे कहना पडेगा कि भावनगर एक सुन्दर नगर था।

भावनगर की स्थापना चार पीढी पहले गोगा के सरदार भावसिंह ने की थी और उसी के नाम पर इस नगर का नाम रखा गया था। वर्तमान ठाकुर का नाम विजयसिंह है। वह स्नेह और श्रद्धा के साथ मेरे स्वागत के लिए बहुत चलकर आया और अपनी राजधानी मे लिवा जाने के लिए उसने अनुरोध किया।

किसी भी राजपूत मे मैं मैत्री के भावो को अनुभव करता हूँ। हिन्दूपति के दरबार से, जिसने इस ठाकुर के पूर्वजो का गौरव बढाया था, आने के कारण यहाँ पर सौहार्द और मैत्री पूर्ण व्यवहार प्राप्त करना स्वाभाविक था। इसके साथ-साथ एक बात और थी, मेरे मित्र मिस्टर विलियम्स से मिलने का भी आनन्द मुझे प्राप्त हुआ।

घोडो पर बैठकर हम लोग कई मील साथ-साथ आये। इस छोटी-सी यात्रा में हम लोगो की आपस मे जो बाते होती रही, वे बहुत सुखकर और स्नेहवर्द्धक थी। आगे जाने पर जहाजो और सेनाओ के द्वारा मेरा अभिवादन हुआ। राजधानी मे प्रवेश करने के पहले ही हम लोगो में बहुत सी बातें हुई। खेरथल से उनके निकालने के सम्बन्ध मे, उनके वंश और इतिहास के सम्बन्ध में, उनकी नीति और आमदनी के विषय मे, शत्रुता और मित्रता के प्रश्नो पर हमने विस्तार मे किन्तु स्पष्ट जानकारी प्राप्त की। इसके लिए मुझे अच्छा मौका भी मिला।

राजपूतो के साथ प्रारम्भ से ही मेरी घनिष्टता और सहानुभूति रही है। इसलिए उनके पूर्वजो के प्राचीन इतिहास को जानने की मेरी स्वाभाविक इच्छा थी। इसलिए दूसरी महत्वपूर्ण बातो की तरह मैंने इस विषय में भी निष्कर्ष निकाला कि

मीडीज (१) लोगो को तरह राजपूतों के नियम अटूट थे। ठाकुर की सवारी के आगे-आगे उसके पूर्वजो की परम्परा के स्थान पर अरवी बाजे वालो की एक टुकड़ी, उसके यश का गाना गाती हुई चल रही थी। उस टुकड़ी की सजावट एक विचित्र ढंग से की गयी थी। लेकिन देखने में अच्छी लगती थी।

उसके दरबार में भी इसी प्रकार के मनोरञ्जक दृश्य थे। दिन के तीसरे पहर जब हम लोग महल में पहुँचे तो वहाँ पर एक अजीब तरह का समाज देखा जैसा पहले कभी नही देखा था। यहाँ पर अरबी और राजपूतों का सम्मेलन था और वहाँ की प्रत्येक बात में दोनो प्रकार की छाया देखने को मिलती थी। दीवान खाना सुन्दर-सुन्दर झाड-फानूसो से सजा हुआ था, परन्तु उनके दुसखे लकडी के लट्ठो पर खडे किये गये थे। उनको देखकर मालूम होता था कि वे किसी डॉक-यार्ड से लाये गये हैं। वहाँ पर बड़ी से बडी नावें रस्सो से इनमे बाँधी जाती होगी।

उनकी छत में बहुत पास-पास काँच के टुकडे जडे हुए थे और उनमे दीवारो पर बने हुए राजाओं के चित्र दिखाई दे रहे थे। उनकी स्मृति के साथ अङ्गरेजो के अटूट सम्पर्क थे। उनमें प्रमुख रूप से तीसरे जार्ज (२) और उनकी रानी थी। सम्राट के

---

(१) जब आर्य लोगो का एक बड़ा गिरोह तुर्किस्तान और ईरान की तरफ आया तो अधिकाँश लोग हिमालय की तरफ चले गये और कुछ लोग छोटी-छोटी टुकडियाँ बनाकर पठार के पश्चिमी भागों में आबाद हो गये। घटना ईसा से दो हजार वर्ष पहले की है। कई शताब्दी तक ये लोग छोटे-छोटे राज्य बनाकर रहते रहे। अन्त में उनके दो समूहो ने छोटे-छोटे गिरोहों का नेतृत्व आरम्भ किया। वे दोनों गिरोह मीडीज और पर्सियस के नाम से प्रसिद्ध हुई। मीडीज लोगो का अधिकार पश्चिमी ईरान के उत्तरी और मध्य भाग पर था। ईसा से नौ शताब्दी पहले इन लोगो का असीरिया के साथ सघर्ष हुआ। लेकिन छिन्न-भिन्न टुकडो में बटे होने के कारण इन लोगो मे अनुशासन और सङ्गठन की कमी थी। इसलिये इनको अधिक सफलता नहीं मिली। इसके बाद इन लोगो ने वर्तमान 'हमदान' के स्थान पर अपनी राजधानी कायम की। यह स्थान घोडो की उत्तम नस्ल के लिये बहुत उपयोगी है। कुछ समय के बाद इनके पास घोडो, ऊँटो और खच्चरो के रूप मे एक बड़ी सम्पत्ति हो गयी। इन लोगों ने असीरिआई साम्राज्य को आघात पहुँचाने मे समर्थ हुए, युद्ध करते-करते ये लोग बहुत मजबूत और लडाकू हो गये थे।........हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड।

(२) जार्ज तीसरे का पूरा नाम जार्ज विलियम फ्रेडरिक था। इसका शासन काल १७६० ईसवी से १८२० ईसवी तक था। अङ्गरेज जाति मे इसको अधिक सम्मान मिलने का कारण यह था कि वह शुद्ध अङ्गरेज था और अपने पूर्ववर्ती राजाओ की रह वजर्मन कुल में उत्पन्न नही हुआ था। जिनको इङ्गलैण्ड के लोग विदेशी समझते

प्रतीक के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये जब मैंने अपना टोप उतारा तो इस तरफ गोहिल सरदार का ध्यान आकर्षित हुआ। जार्ज तीसरे और उसके पिता फ्रेडरिक, प्रिन्स आफ वेल्स के चित्रों से राजपूताना मे कोई अपरिचित नही है। उदयपुर के राणा के यहाँ भी दोनो का एक-एक चित्र लगा हुआ था और जब उनके सामने एकाएक आकर मैं नगे सिर नमस्कार करता, जिसका इस देश मे प्रचलन नही है तो वे बहुत प्रसन्न होते, बल्कि मुझे भली प्रकार याद है कि जब मैंने अपने सिर को नङ्गा करने का अभिप्राय बताया तो उन्होंने अपने पास वालो को यह समझाने का मौका नही दिया कि देश और काल का प्रभाव अच्छे लोगो पर असर नही डालता।

उस समय यदि मुझको स्मरण आता तो मैं उनसे कह देता कि अपने प्राचीन अच्छे राजा के प्रति—देश में अथवा विदेश मे—सम्मान प्रकट करना हमारा एक मुख्य कर्त्तव्य बन गया है और मेरी तरह प्रत्येक अङ्गरेज, विशेषकर युवक अङ्गरेज ऐसा करना अपने लिये अत्यन्त आवश्यक मानता है।

विविध वस्तुओ के सग्राहालय मे एक अच्छा सा आरगन बाजा था, जिसके एक तरफ कामदार स्वर नलिकाये थी और दूसरी तरफ खूबसूरत कारीगरी का काम था। उसमे एक अच्छे स्वर की घडी लगी हुई थी और उसमें झरने की तरह के चित्र बनाये गये थे। उसके हाशिये पर पर्सियस और एण्ड्रोमीडा की कथा (१) अङ्कित थी। उसमें अश्वारोही पर्सियस ने एक समुद्री राक्षस से किसी कुमारी को बचाया था। यह बाजा भूतपूर्व मराठा सरदार के पास था और उसने इसके लिये चार हजार पौण्ड खर्च किये थे। लेकिन यह ठाकुर बडे गर्व के साथ कहता था, 'जब पेशवा का बचा हुआ सामान बिकने लगा तो मैंने इसको सही कीमत का दसवाँ हिस्सा देकर खरीदा था।'

इसी प्रकार की कारीगरी की चीजो को देखकर यहाँ के लोग हमारी योग्यता और ज्ञान के सम्बन्ध मे अपनी धारणा पैदा करते हैं। पूर्व के देशो मे यात्रा करने वाले के पास अपने देश के यन्त्रो के जखीरे से अधिक और कुछ नही होता। मेरे पास भी एक जादू की लालटेन थी। उसके साथ आकाश के दृश्य दिखाने के लिये अथवा कुछ दूसरे चमत्कार पेश करने के लिये कुछ स्लाइडे भी थी एवम् उन स्लाइडो का एक दूसरा सेट हिन्दू पौराणिक दृश्यो का था, जो जोन्स को आदेश देकर बनवाया गया था। कुछ और भी स्लाइडें थी। इनके सिवा विभिन्न प्रकार के शीशे थे, जिनमे चीजो के विकृत रूप लम्बे तथा छोटे चेहरे दिखायी देते थे।

थे। जार्ज तीसरे जन्म से ही अङ्गरेजी भाषा बोलने का अभ्यासी था। वही भाषा उसकी प्रजा की भाषा थी।

(१) पर्सियस ग्रीक पौराणिक कथा का वीर था, जिसने ईथोपिया के राजा सीफियस की लडकी एण्ड्रोमीडा को एक समुद्री दैत्य से बचाया था। घटना यह थी कि

इन शीशो की सहायता से सिन्धिया ने एक बार अपने एक सरदार को डरा दिया था। वह सरदार कुछ ऐसा भयभीत हो गया कि उसको बीमारी का एक दौरा आरम्भ हो गया।

रासायनिक प्रयोगों से लोगो को तो विशेष विस्मय होता ही था। लेकिन चीजों और रङ्गो के परिवर्तन को देखकर यह कहना पड़ता था कि यह कौन-सा रहस्य है ? इन सभी चीजो मे सबसे अधिक आश्चर्य पैदा करने वाला कैमरा-आब्स्क्यूरा (१) था, उससे बडे-से-बड़े आदमियो को भी मनोरञ्जन होता था और उससे उदयपुर के महाराणा को अन्तिम घड़ियों मे भी कुछ आराम मिला था। वे मुझसे कहा करते थे—'आप मेरे मन की औषधि ले आये हैं।'

मैं इन सब चीजो को दिखाने के लिये रोजाना कई घण्टे उनके पलङ्ग के पास बैठा करता था। ऐसे अवसरो पर उनके पलङ्ग के आस-पास चारो तरफ घेरकर जनाने लोगों की स्त्रियाँ बैठा करती थी। वे परदा नही करती थी। मैं उन स्त्रियों के नाम और काम—दोनो से परिचित नही था। कुछ इतना ही समझता था कि वे राजा लोगो की चुनी हुई कुछ दासियाँ हैं।

इसके बाद ठाकुर के सबसे छोटे लडके ने हमको अपने चीनी के खिलौने दिखाये। मैंने उनमे से एक-एक खिलौने को देखा और प्रत्येक खिलौने की मैंने प्रशंसा की। इस मौके पर मैंने अपने मेजमान को बहुत खुश पाया, उसके इस प्रकार के व्यवहार से मुझे कोई बाधा नही पहुँची।

विजयसिह के दरबार से चलकर मैं उसके बन्दरगाह पर गया, उसकी उसने बड़ी प्रशंसा की थी। हिन्दुस्तान की मरुभूमि से भागकर आये हुये एक राजपूत सरदार का व्यापारी के रूप में जहाज का व्यवसायी बन जाना एक बहुत अनोखी बात है। वहाँ पर मैंने दो जहाज देखे। एक तो बर्फ की तरह सफेद रङ्ग का था, उसमें अठारह बन्दूको के सूराख थे। दूसरा दो मस्तूलवाला जहाज था। छोटी-छोटी नावो, डोंगियों, दो मस्तूले, जल-वाहनो के सिवा सभी जहाज गोहिल सरदार के थे। उसने अपने सबसे

सीफियस की पत्नी ने यह घोषणा की थी कि वह जल की परियो से भी अधिक सुन्दर है। इस घोषणा से परियाँ नाराज हो गयी। और उस झगड़े से समुद्र के देवता पोसीडोन ने जल की परियो का पक्ष लेकर एक जल के राक्षस को सीफियस के राज्य में मनुष्यो का आहार करने के लिये भेज दिया। जब पर्सियस अपने आदमियों के साथ वहाँ पहुँचा तो कुमारी को बंधा हुआ देखा। दोनो मे प्रेम उत्पन्न हुआ और उनका विवाह हो गया।

(१) अंधेरे कमरे में सफेद दीवाल के ऊपर पदार्थों का छाया चित्र फेंकने वाला एक यन्त्र।

बड़े जहाज का इतिहास बड़े अच्छे ढङ्ग के साथ बताना आरम्भ किया। जो मोजाम्बिक (१) से गुलामो का एक गिरोह ले जाते हुए पकड़े जाने के कारण बम्बई की जहाजी अदालत के द्वारा खारिज कर दिया गया था। उसने बताया कि उसका उस व्यापार के साथ कोई सम्बन्ध नही था। उसने एक व्यापारी को किराये पर दिया था और वह उस व्यापारी से केवल उसका किराया चाहता था। जहाजो के व्यापार के नियमो को न जानने के कारण वह कुछ भी कह सकता था और कर सकता था। उसकी अधिकांश आमदनी बन्दरगाह के कर से थी। यह आमदनी पहले सात लाख तक हो जाती थी, लेकिन जब से हमने पड़ोसी बन्दरगाहो और व्यापारिक मण्डियो, जैसे घोलारा आदि पर अधिकार कर लिया है, उसकी यह आमदनी आधी से भी कम रह गयी है।

जमीन के लगान से भी उसको लगभग इतनी आमदनी होती है और सब मिला कर सात लाख के करीब आमदनी हो जाती है। उसने मुझे बताया कि गोहिलवाड प्रदेश में भीतर और बाहर कुल आठ सौ ग्राम उसके अधिकार मे थे और वास्तव में वे प्रायद्वीप के चौथाई भाग के मालिक थे। इसके सिवा कठियावाड, झालावाड़ और बाबरियावाड में जीतकर बहुत-सी भूमि पर उसने अधिकार कर लिया था। लेकिन विजय का वह हौसला नही रह गया, इस व्यापक शान्ति के समय जो अधिकारी होता है, वह स्वामी माना जाता है।

अब यहाँ पर गोहिलवश के सम्बन्ध मे कुछ लिखने की आवश्यकता है। यहाँ पर यह बताना बहुत आवश्वक हो गया है कि परिस्थितियो के बदलने पर दशा खराब आने पर और आर्थिक शक्तियाँ क्षीण हो जाने पर कोई राजपूत सरदार अपने वश और उसकी परम्पराओ को कभी भूल नही सकता। होता यह है कि भाट लोग इन सरदारो के यहाँ आकर उनके वशों के वैभव का स्मरण दिलाया करता है।

सत्य यह है कि कविता और व्यवसाय एक नही है। वे दो चीजे हैं और दोनों के मार्ग विरोधी दिशाओ की तरफ जाते हैं। सरस्वती देवी की पूजा करने वाला समुद्र के बन्दरगाहो मे रुई की गांठो की अराधना नही कर सकता। मैं यहां पर यह स्पष्ट बताना चाहता हूँ, कि भावनगर के इतिहास लेखक, मुझको मिले हुए सभी लेखको में सबसे अधिक अशिक्षित मालूम हुए हैं।

गोहिल लोगो की पुरानी राजधानी खेरथल, बालोत्रा से दस मील की दूरी पर। है। वहाँ से राठौरो ने जिस सरदार को निकाला था। उसका नाम सेजक था। वही सबसे पहले भागकर सौरदेश मे आया था। यहाँ पर उसने विजय करके सेजकपुर नामक एक नगर बसाया। उसके लडके का नाम रण जी था, उसने एक नगर पर अधिकार कर लिया और उसका नाम उसने रणपुर रखा। उसके बेटे मोरवडा ने

(१) पूर्वीय अफ्रीका का एक पुर्तगाली बन्दरगाह।

भीमाज, चमारनी, उमराला, खोखरा और पुरानी बाली अथवा वलेह मे लेकर अपने अधिकार मे कर लिये। वे सभी आजकल गोहिलवाड़ मे शामिल हैं।

उसने गोगो और पीरम को कोलियो से छीन लिये और पीरम मे उसने अपना निवास स्थान बनाया। वह एक मशहूर समुद्री डाकू हो गया था और अपनी व्यवसायिक आमदनी की शक्ति पर उसने पीरम को प्राप्त किया था। उसने सम्पत्ति से लदे हुए छै जहाजों को लूट लेने के बाद अपनी शक्तियाँ इतनी विशाल बना ली थी कि बादशाह (१) को उसके विरुद्ध सेना रवाना करनी पडी। मोरवडा ने, जो ऊँचाई मे पूरे छै फीट का था, बहादुरी के साथ उस सेना का सामना किया और तेजी के साथ उसने आक्रमण करके बादशाह के भतीजे को मार डाला।

उस युद्ध मे पच्चीस हजार आदमी मारे गये। लेकिन उसने आत्म-समर्पण नही किया। इस घटना के बाद उसके वंश के लोगो को एक बार फिर अपने स्थानो से भागना पडा। मोरवडा का बडा बेटा डूंगा किसी प्रकार गोगो मे बना रहा। लेकिन उसका भाई सोमसी-जी नांदोद चला गया। उसके वंशज आज तक राजपीपला में शासन करते हैं।

डूंगा के बीजलीजी और उसके कानजी तथा रामजी पैदा हुए। कानजी बादशाह की सेना के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया और उसका बेटा सारङ्ग कैद कर लिया गया। उसी मौके पर उसका एक स्वामिभक्त नौकर भी कैद हुआ और कैदखाने में वह भी पहुँच गया। उसने किसी प्रकार अपने स्वामी की जंजीरें तोड डाली और उसको वहाँ से निकालकर चित्तौर पहुँच गया। वहाँ के राजा ने एक सेना देकर गोगो पर अधिकार करने के लिये भेजा, जहाँ पर पहले उसके काका कान जी का अधिकार था। लेकिन उसके अत्याचारो के कारण प्रजा उससे घृणा करती थी।

उसने उसको गद्दी से उतार दिया और पालीताना तथा लाटी के चवालीस गाँवों का जिला उसकी जागीर मे शामिल कर दिया गया। सारङ्ग के लड़के का नाम स्योदास था। एक बार फिर शाही सेना ने गोगो से गोहिलो का आधिपत्य खत्म कर दिया और वे लोग वहाँ से भागकर खोखरा और उमराला चले गये। कदाचित् उनका शत्रु वजीरुल्लमुल्क ही था, जिसके शिला लेख के सम्बन्ध में पहले लिख चुके हैं।

जैत नामक स्योदास का लड़का था। उसके बेटे का नाम रामसिंह था। वह चित्तौर की लड़ाई मे मारा गया था। उसकी पत्नी सूजन कुमारी सती हुई थी। उसके तीन लड़के थे, सन्त, देव और बीर। देव के नाम से देवाना और बीर के नाम मे बीराना नाम की गोहिलो की दो नयी शाखाये आरम्भ हुई। सन्त के तीन लड़के

(१) उस बादशाह का नाम हिस्ट्री आफ गुजरात के अनुसार मोहम्मद तुगलक था।

हुए। बडे लडके का नाम बीसल था, उसको सीहोर की जागीर मिली। वह रियासत पहले अनहिलवाडा के मूलराज ने ब्राह्मणो को दान मे दे दी थी। लेकिन वे आपस में लडने लगे और ब्राह्मणो पर शासन करने के लिए उन्होंने एक नये राजा का चुनाव किया था।

बीसल के धूनी नामक लडका हुआ, उसके बेटे अखैराज ने संतान हीन होने के कारण अपने भाई के पोते हरब्रह्म को गोद लिया। उसके एक लड़का उत्पन्न हुआ; जिसका नाम था भावसिंह। उसने जूना अथवा प्राचीन बडवार के उजडे हुए स्थान पर सम्वत् १७२३ ईसवी मे अपने नाम पर भावनगर बसाया।

भावसिंह के दो लडके पैदा हुए— अखैराज और बीसा अधिक समय तक बाहर बाढ मे बना रहा। और आखीर मे उसने वला एवम् चमारनी को जागीर में मिला लिया।

अखैराज के वख्तसिंह नामक लडका हुआ। वह अट्टाभाई के नाम से मशहूर हुआ। अट्टाभाई का लडका विजयसिंह आजकल ठाकुर है। उसका लडका और उत्तराधिकारी भावसिंह है, वह चौथी पीढी मे नगर के सस्थापक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। और आजकल वाली अर्थात् पुरानी बलभी में रहकर वहाँ का शासक बना हुआ है।

इस तरह खेरथेल से आये हुए सरदार से लेकर अब तक छै सौ उन्नतीस वर्षों में इक्कीस पीढ़ियाँ हो चुकी हैं। इन पीढ़ियो मे प्रत्येक का समय लगभग उन्नतीस वर्ष का आता है। उनके वर्षों की यह संख्या उनके दीर्घ जीवन का कुछ प्रमाण देती है। और इस दीर्घ जीवन का कारण शुद्ध जलवायु और शान्तिपूर्ण जीवन हो सकता है। इसलिए कि अपनी जन्म भूमि से निकलने के बाद गोहिलो ने समुद्री लूटमार के सिवा और कोई कार्य नही किया। उसी को उन लोगो ने अपना कार्य और व्यवसाय मान लिया था।

गोहिलो के सरदार को यहाँ के लोग 'पूर्व का बादशाह कहते हैं' इस पूर्व अथवा पूरब के अर्थ में प्रायद्वीप के पूर्वीय भाग ही हैं। वे सैक्सन सात राज्यों (१) में किसी-किसी के बराबर हैं और फीक के साम्राज्य (२) के साथ भी उसकी समता की जा सकती है। इस पूर्व के बादशाह के स्वभाव में उदारता है, वह सहृदय भी है और अच्छे वश में उसने जन्म लिया है। अपनी चवालीस वर्ष की अवस्था में उसको

(१) ईसा से लगभग ३०० वर्ष पहले सैक्सन जाति के लोग योरोप में फैल गये थे। उन्ही दिनो मे इंगलैण्ड पर भी उनका अधिकार हो गया था, उस समय यह देश सात छोटे-छोटे राज्यो मे विभाजित था।

(२) स्काटलैण्ड का एक भाग उसका विस्तार सिर्फ ५०४ वर्ग मील माना जाता है और यह फोर्थ और टे नदियों के बीच का प्रायद्वीप है।

छे वर्ष के बालक का पितामह होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब मैं उससे मिला तो उसको बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं स्वयं उसके कार्य और उसकी व्यवस्था को देखकर बहुत प्रभावित हुआ। इस प्रदेश के प्राचीन रस्मोरिवाज से मैं परिचित था। इसलिए मुझे प्रसन्नता हुई कि उसके व्यवहारों में मनुष्य के सभी आवश्यक गुण मौजूद हैं।

सीहोर—नवम्बर : यह नगर नौ कोस के फासिले पर था। नहरवाला के शक्तिशाली राजा मूलराज ने दसवी शताब्दी में इसको बसाया था। यह स्थान ब्राह्मणों का एक उपनिवेश है। उसकी कई एक बाते अधिक प्रभावशाली हैं।

इस स्थान में परकोटा है, लेकिन उसमें क़िलेबन्दी की आवश्यकता को जरूरी नही माना गया। इसलिए इसकी अच्छाई और भी अधिक हो गयी है। यहाँ की गोल आकार मे बनी हुई बुर्जे, जो पहाडी की चोटियो पर हैं, नीची दिवारो के साथ जोड दी गयी हैं। उनके पीछे ऊंची पहाड़ियाँ हैं, जिनसे यहाँ का सौन्दर्य स्वाभाविक रूप से अधिक हो जाता है, नगर के परकोटे के चारो ओर एक खूबसूरत झरना है, उसके क़रीब बहुत से वृक्ष हैं।

सीहोर एक प्राचीन स्थान है। उसके साथ अतीतकाल की न जाने कितनी कथायें जुडी हुई हैं। इसके सिवा, गोगो के निकल जाने के बाद से लेकर भावनगर बसाये जाने के समय तक यह नगर गोहिल लोगो के रहने का प्रमुख स्थान था। यहाँ की जनश्रुतियों में इसकी पवित्रता की बहुत सी कथाये कही जाती हैं। उसकी महानता का श्रीगणेश उस समय हुआ था, जब गौतम मुनि के तप के बल से यहाँ पर एक झरना प्रवाहित हुआ था और उसके जल मे किसी भी रोग को नाश करने की शक्ति मानी जाती थी। कहा जाता है कि उस झरने में स्नान करने से राजा मूलराज का पुराना कुष्ठ रोग अच्छा हो गया था। इसके बदले मे उसने सीहोर तथा उसके आस-पास की समस्त भूमि ब्राह्मणों को दान कर दी थी।

दान मे मिली हुई यह जागीर उन ब्राह्मणो के अधिकार मे उस समय तक रही जब तक उनमे आपसी झगडे नही पैदा हुए। बहुत समय के बाद उन ब्राह्मणो में आपसी झगड़े पैदा हुए और उन लोगो ने किसी के शासन मे रहना स्वीकार नही किया। उन सब ब्राह्मणो ने अपना शासक नया बनाने का निश्चय किया और गोगो के गोहिल को उन लोगों ने अपना राजा बनाया। उस चुने हुए राजा को वे सभी अधिकार दिये गये, जो एक शासक के होते हैं। लेकिन उन अधिकारो में ब्राह्मणो ने सत्ता अपनी ही रखी। उन ब्राह्मणो ने राजा का चुनाव कर दिया, राजा चुन भी लिया गया और राजा के सभी अधिकार भी उसको दे दिये गये। लेकिन वह ब्राह्मणो के विरुद्ध और उनको अप्रसन्न करके कुछ कर नही सकता था। उन ब्राह्मणों ने अपने चुने हुए राजा को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर रखने की योजना बनायी थी। दूसरे तरफ की अवस्था इससे भी गिरी हुई थी। उस जागीर को दान में देने के बाद

आठ शताब्दियाँ बीत चुकी थी। ब्राह्मणों के किसी भी प्रकार नैतिक अथवा अनैतिक व्यवहार करने पर गोहिलों पर पुराने संस्कारो का ऐसा प्रभाव था कि वे प्रदत्त जागीर पर अपना अधिकार करने का साहस नही करते थे। उन गोहिलो को विश्वास था कि दान मे दी हुई जागीर को वापस लेने और ब्राह्मणो को अप्रसन्न करने से जो पाप होता है, उसके वदले मे साठ हजार वर्ष तक नरक मे रहकर वहाँ का दण्ड सहना पड़ेगा।

यहाँ पर आजकल गोहिल के युवराज भावसिंह का अधिकार है। उसकी अपने पिता से नही बनती। एशिया के राज्यो मे प्राय. इस प्रकार की घटनाये सुनने, पढ़ने और देखने मे आती हैं जिनमे पिता के साथ उनके लडको का विरोध रहता है। इसके रहस्य क्या हैं, इस पर यहाँ प्रकाश डालना हमारा उद्देश्य नही है। लेकिन एशिया के राजाओ में यह कोई नयी बात नही है।

वलभी—सौरो की भूमि की यात्रा करने में मेरे सामने एक प्रमुख आकर्षण यह भी था कि मुझे मेवाड के राणा लोगो की प्राचीन राजधानी का अनुसंधान करना था। वहाँ से इण्डोगेटिक आक्रमणकारियो ने उनको विक्रम की पहली शताब्दो में निकाल दिया था।

आजकल इसका नाम वाली अथवा वलेह है। परन्तु जब मैंने गोहिल राजा से इसके विषय में प्रश्न किया और उस राजा ने इसका प्राचीन नाम बलभीपुर बताया तो मुझको बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। लेकिन इसके साथ-साथ मुझे इस बात का दुख भी हुआ कि अतीत काल मे जिस नगर का घेरा अठारह कोस में था और जहाँ तीन सौ साठ जैन मन्दिरों के घन्टे बजा करते थे, वहाँ उसके गौरव का अब कोई निशान बाकी नहीं रह गया। वहाँ की नीव खोदने पर जो ईंटे निकलती हैं, उनमें प्रत्येक ईंट की लम्बाई दो फीट और तौल में आधा मन अथवा पैंतीस पौण्ड की होती है।

यहाँ पर गडरियो के कुछ सिक्के भी पाये जाते हैं, वे विचित्र तरह के हैं। ये खण्डहर पालीताना के मेरे मार्ग से उत्तर की तरफ पूरे दस मील के फासिले पर हैं और गोहिल राजा ने जिसके राज्य मे ये खण्डहर हैं, मुझे भली प्रकार विश्वास दिलाया कि वहाँ पर देखने के योग्य कोई स्थान नही है। ऐसी दशा मे मैंने वहाँ जाने का विचार त्याग दिया।

बलभी सिद्धराज के समय तक प्राचीन सूर्यवंशी राजाओ के एक वंशज के अधिकार में रहा। उसके बाद ब्राह्मण जाति पर अत्याचार करने के कारण उसको निकाल दिया गया। इन ब्राह्मणो को सिद्धपुर मे विशाल रुद्रमाला मन्दिर के निर्माण के बाद यह नगर उसने एक हजार ग्रामों के साथ धर्मार्थ दे दिया था।

यह जागीर इन ब्राह्मणों के अधिकार मे उस समय तक रही जब तक कि उसमें आपसी झगड़े पैदा नही हुये। बाद में वे लोग आपस मे लडने झगडने लगे और उस आपसी सघर्ष के कारण उनकी सख्या आधी से भी कम हो गयी। उन लड़ने वाले ब्राह्मणो मे से एक ने गोहिल राजा को यह प्रलोभन दिया कि अगर राज्य की तरफ से उसकी सहायता की जायगी तो वह विरोधी ब्राह्मणो की भूमि राजा को दिला देगा। उस समय से तीन शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, वह जागीर गोहिलो के ही अधिकार में आज तक है।

पालीताना पहुँचने के समय तक एक और भी मौका मुझे ऐसा मिला, जब मैं बलभी के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी की बाते प्राप्त कर सका। इस अवसर मे जो कुछ मुझे मिला, उससे मेरी उन सभी खोजो का समर्थन हो गया, जो मैंने बाली और मारवाड़ मे साँडेरा के सन्यासियो से मालूम करके अपने पास एकत्रित किया था।

ये सभी उन लोगों के वंशज हैं, जिनको सम्वत् ३०० सन् २४४ ईसवी में इसके विध्वंस के समय यहाँ से निकाल दिया गया। मुझे इन बातो की जानकारी जिन लोगो से हुई, वे सभी विद्वान जैन साधु थे और उन लोगो ने इस प्रकार के तथ्य और प्रमाण अपने ग्रन्थो एवम् परम्परागत जनश्रुतियो के आधार पर अपने पास एकत्रित किये थे।

उपरोक्त दोनो ही सूचना के आधारो पर उन विद्वान साधुओ ने उदारता के साथ मुझसे बाते की और उन लोगो ने इसकी प्राचीनता, इसके विस्तार, इसकी विशालता और उसके पुराने इतिहास पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला और उनकी बात-चीत से मैं एक अच्छी सामग्री का सकलन कर सका। उन लोगो ने उस समय की बहुत सी खोजपूर्ण बाते बतायी; जब यहाँ पर सूर्य वशी राजा राज्य करते थे।

मेरी और उन साधुओ की बहुत-सी बाते मिलती-जुलती थी। मेरी तरह वे लोग भी यही अनुमान करते थे कि सूर्य और सौर वंशो मे समानता थी और उसी सौराष्ट्र के नाम पर सौराष्ट्र अथवा सौरद्वीप नाम पड़ा था। इन दोनो नामो के उत्पत्ति का आधार सूर्य की उपासना ही थी। मुझे यहाँ पर अनुसन्धान के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण बातो की जानकारी हुई। मुझे यहाँ पर इस बात के अच्छे प्रमाण मिले कि बलभी का एक अपना सम्वत् प्रचलित हुआ था, जैसे मेवाड़ मे मेनाल का शिला-लेख जो बलभी के सुन्दर दरवाजों की तरफ लोगो के मन को आकर्षित करता है और वहाँ के राजाओ के गौरव का प्रमाण देता है! वह यह भी सिद्ध करता है कि वे बलभी से निकलकर उस तरफ गये थे, इसलिये कि जो आक्रमणकारी उत्तर की तरफ से आये थे, वे यहाँ के गौरव को नष्ट करके सूर्यकुण्ड की पवित्रता और महानता को भ्रष्ट किया था।

अब तक जो प्राचीन पुस्तके मिलती हैं और जनश्रुतियो के द्वारा जो जानकारी प्राप्त होती है, उन सबसे बल्ल जाति के साथ बलभी के राजाओ के सम्बन्ध और

सम्पर्क स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। जानकारी के इन मार्गों से पता चलता है कि कनकसेन—जो लव अथवा लोह का (अयोध्या के सूर्यवंशी राजा का बड़ा लड़का, जो पञ्चालिका अथवा वर्तमान पजाब के लोह कोट मे जाकर बसा था) वंशज था। वहाँ से वह इस प्रायद्वीप मे आ गया था और उसने घेनुका को अपना निवास स्थान निश्चित् किया था। यह धेनुका प्राचीनकाल में मूङ्ग्री-पट्टण कहलाता था।

इसके बाद बाल क्षेत्र को विजय करके उसने बाल राजपूत की पदवी स्वीकार की थी। बाल क्षेत्र स्वामी बालका राय के नाम से प्रसिद्ध हुये। इसलिये कि बल्हरा राजाओ के लिये प्रायः इस पद का प्रयोग किया गया है।

धानुक नामक स्थान अब भी एक बल्ल जातीय राजा के अधिकार में है और इस प्रायद्वीप में वह बहुत मशहूर है। ये लोग अपने को राजपूत कहते हैं। लेकिन लोगो का कहना है कि इन लोगो का रक्त काठी जाति के लोगों से मिश्रित हो चुका है। काठी लोगो का कहना है कि उनका वंश भी बल्लो की ही एक शाखा है। जनश्रुतियाँ और भाट लोगो के विवरण भी इसी का समर्थन करते हैं। सभी प्रकार की खोजों से हम एक ही स्थान पर पहुँचते हैं और एक ही निर्णय हमारे सामने आता है, जिसको ऊपर लिखा जा चुका है।

बलभी से कुछ ही फासिलें पर यात्रियो के लिये एक तीर्थस्थान है, वह स्थान भीमनाथ के नाम से प्रसिद्ध है और महाभारत काव्य ग्रन्थ के साथ उसका सम्बन्ध है।

यहाँ पर एक पानी का झरना है। उसके जल की प्रशसा प्राचीन काल से चली आ रही है। उस झरने के समीप एक शिव मन्दिर है। उस मन्दिर के दर्शनो के लिये भारत के प्रत्येक कोने से यात्री आया करते हैं। इस स्थान का सम्बन्ध पाडवो के बनवास से बताया जाता है। जनश्रुतियो का कहना है कि उस समय का विराट क्षेत्र यही प्रदेश है और इसकी राजधानी विराटगढ़ आधुनिक लेकिन प्रसिद्ध धोलका है। यह स्थान अब बालक्षेत्र में शामिल है जिसका वर्णन मेवाड के प्राचीन इतिहास में किया गया है। उस वर्णन मे बताया गया है कि बलभी विराटगढ़ और गढ-गजनी—ये तीन प्रधान नगर थे। जब वे लोग सौर देश से निकाले गये; तो वे यहाँ पर आये और उन्होंने इन पर अधिकार कर लिया।

महाभारत मे पाँच पाण्डवो के नाम आते हैं। उनमे एक का नाम भीम था और उसी भीम के नाम पर इस स्थान का नाम भीमनाथ पडा है और इस शिव मन्दिर की स्थापना में उसका विशेष हाथ था और उसने इसकी स्थापना अपने छोटे भाई अर्जुन के स्नेह के कारण की थी। कहा जाता है कि वह अपने धनुष के द्वारा शिवार्चन करने के बाद ही भोजन करता था।

एक बार की घटना है, जब विराट के जङ्गलों में कई दिन घूमने के बाद भी कोई शिव का मन्दिर न मिला और शिव की मूर्ति के दर्शन नहो हुये, उस समय थका हुआ अर्जुन मूर्छित होकर आगे चलने मे असमर्थ हो गया तो उस समय भीम को वहीं पर कही पानी भरने का एक घड़ा दिखायी पड़ा। भीम ने उस घडे को ले जाकर झरने का पानी भरा और उस घडे को उसने आधा जमीन में गाड़ दिया और उस घड़े के चारो तरफ उसके ऊपर से ले कर नीचे तक उन चीजो को एकत्रित कर दिया, जो अराधना के समय पत्र, पुष्प, बेल, आक और धतूरा आदि शिव पर चढ़ाये जाते हैं। उसके बाद वह अपने भाई अर्जुन के पास दौडकर गया और प्रसन्न होकर उससे पूजा करने के लिये कहा। अर्जुन ने वहाँ पहुँचकर शिव की अर्चना की। इसके बाद उसके शरीर मे शक्ति का सञ्चार हुआ। यह देखकर भीम अपनी सफलता पर खुश हुआ और उसने हँसकर अर्जुन से कहा—'तुमने तो एक घड़े को शिव की मूर्ति मानकर पूजा की है।'

भीम की इस हँसी से अर्जुन को बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और दोनो भाइयो में संघर्ष पैदा हो गया। उस झगड़े में भीम ने अर्जुन को विश्वास दिलाने के लिये उस घड़े पर अपनी गदा मारी। उस गदा से घडे के टुकड़े-टुकड़े हो गये और घडे के टूटते ही उससे फव्वारे की भाँति रक्त ऊपर की तरफ जाने लगा। इस दृश्य को देखते ही अर्जुन को बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ। उस घड़े को तोड़कर, जिसमे अर्जुन ने शिव की मूर्ति का आभास किया था, भीम को बड़ी आत्मग्लानि उत्पन्न हुई। वह अपने आपको बलिदान करने के लिये तैयार हो गया।

इस छोटी-सी घटना का यह दृश्य देखकर बड़े भाई के प्रति अर्जुन के हृदय में ममता जाग्रत हुई। उसने भीम को रोका और उसको समझाने की चेष्टा की। लेकिन अपने अपराध के कारण भीम ने अपनी बलि देने की जो प्रतिज्ञा की थी, उसको छोड़ने के लिये वह तैयार न हुआ।

इस समय शिवजी स्वयं एक ब्राह्मण के रूप मे प्रकट हुये और उससे वरदान माँगने के लिये कहा। भीम ने प्रार्थना की कि मैंने यह पाप किया है, इसलिये अपने इस अपराध की स्मृति सदा बनाये रखने के लिये मैं कुछ स्थायी काम करना चाहता हूँ। मैंने अपने जिस देवता का अपमान किया है, उसके नाम के आधार पर एक स्मारक का निर्माण करना चाहता हूँ और उस स्थान के नाम के साथ अपना नाम जोड़ना चाहता हूँ जिससे वह स्थान सदा के लिये एक तीर्थ बन जावे। इस प्रकार इस स्थान का नाम भीमनाथ पड़ा।

झरने के किनारे पर शिवलिंग का पूजन होता है। कहा जाता है कि कुछ समय के बाद यहाँ के प्रधान पुजारी ने शिवलिंग के स्थान पर मन्दिर बनवाने का निश्चय किया और इसके लिये जमीन में गड़े हुये शिव के लिंग की गहराई जानने के लिये जमीन को

खोदा गया। तीस फीट जमीन खोदने के बाद भी शिव के लिंग की गहराई का कुछ पता न चला। इसलिये खोदने का काम जारी रखा गया। तब शिव जी स्वय प्रकट हुये तो उन्होंने कहा—"विशाल बट के पेड के सिवा हमको कोई मन्दिर नही चाहिए। उस पेड की लम्बी शाखाये स्तम्भो के समान है, इसकी पत्तियो की छाया सबसे अच्छी छत है, वह हमारे और हमारे भक्तो के लिये बहुत काफी है।"

शिवजी ने अपनी बात कह दी और उनके भक्त ने श्रद्धा के साथ सुन ली। उनके वट के वृक्ष के स्थान पर विशाल मन्दिर ही बनना था। शिवजी के भक्तो की सख्या अपार है। उनकी श्रद्धा की सीमा नही है। शिवजी को अपनी प्रतिमा की रक्षा के लिये न तो किसी मन्दिर की आवश्यकता है और न किसी रक्षक की सहायता की। प्रतिमा की रक्षा के लिये उनमे स्वय अपरिमित शक्ति है। शिवजी ने अपनी आवश्यकता स्पष्ट कर दी। लेकिन भक्तो को तो इसमें सतोष नही हो सकता कि जिसकी पूजा करने वाले के अगणित श्रद्धालु भक्त हो, उसका कोई मन्दिर न हो।

शिवजी ने वट-वृक्ष को महत्व दिया, लेकिन उनके भक्तो ने अपने देवता की कीर्ति के अनुसार प्रसिद्ध मन्दिर बनवाने का ही निश्चय किया और उस निश्चय के अनुसार, चारो तरफ से यहाँ पर आने वाले शिव के भक्त यत्रियो के लिये विशाल मन्दिर बन गया, जिसमे बहुत अधिक भवन बने हुये हैं। महन्त के अधिकार मे अभी कुछ दिनो के पहले तक कच्छ और काठियावाड के एक सौ अच्छे घोड़ो के लिये अस्तबल था। लेकिन महन्त ने उन घोडो की सख्या घटा दी है और अधिकांश अपने घोड़ो को उसने भाटो और चारणो को दान मे दे दिया।

कहा जाता है कि महन्त के घोडो को दान में दे देने का उद्देश्य यह था कि वह अपने खर्च को कम करना चाहता था। दूसरे तीर्थों की तरह यहाँ पर भी महन्त की तरफ से सदावर्त चला करता है और प्रत्येक आने वाले यात्रियो को बिना किसी प्रकार के जातीय भेद-भाव के भली प्रकार भोजन दिया जाता है।

घूमने वाले काठी जाति के लोग इस मन्दिर के प्रति बहुत अधिक श्रद्धा रखते हैं। एक समय था, जब इस देश मे अशान्ति थी, एक न एक आक्रमणकारी यहाँ पर आकर लूटमार किया करता था, ऐसे लोगो का सामना करने के लिये यहाँ के लोग भी खेती के औजार बनाने के स्थान पर अपने अस्त्र शस्त्र तैयार किया करते थे और उन दिनो मे यहाँ के लोग इस स्थान पर आकर अपने हथियारो को पत्थरो पर घिसकर तेज किया करते थे। यह वही स्थान है, जहाँ पर आजकल शिवजी का विशाल मन्दिर बना हुआ है और भक्तो की एक बडी भीड यहाँ पर अपने देवता के दर्शन किया करती है। अब वे दिन नही रहे, जब यहाँ के लोगो ने लूटमार को अपना व्यवसाय बना लिया था। उन दिनो में भी, शिवजी का मन्दिर होने पर शिवजी का महात्म्य था

और अपनी मुसीबतों तथा सफलताओं के लिये शिवजी की मनौती मानते थे। लूटमार करने वाले और डाका डालने वाले भी शिवजी के भक्त थे। वे भी, अपनी सफलता के लिए—इसलिए कि लूटमार में अधिक सम्पत्ति उनको मिले, शिवजी की मिन्नत मानते थे और डाका अथवा लूट के माल में दसवाँ भाग शिवजी को प्रसन्न करने के लिए रिश्वत देते थे, अथवा यों कहा जाय कि वे अपने इष्ट देवता की चढ़ौनी चढ़ाते थे।

शिवजी पर लोगों की अगाध श्रद्धा थी। अगर किसी की घोड़ी गर्भवती न होने के कारण बच्चा नहीं देती थी तो उस घोड़ी का स्वामी शिवजी की मिन्नता मानता था और श्रद्धा के साथ कहता था—अगर मेरी घोडी गर्भवती होकर बच्चा देगी तो उसका पहला बच्चा—बछेड़ा अथवा बछेड़ी भगवान के नाम पर महन्त को अर्पण करूंगा।

अपनी किसी भी मुसीबत के समय इस प्रकार लोग मिन्नत मानते चले आ रहे हैं। लेकिन ये मिन्नते कहाँ तक पूरी होती हैं, इस पर कुछ लिखना यहाँ पर हमारा उद्देश्य नही हैं, लोगो के श्रद्धा और विश्वास पर कुछ कहानियाँ प्रचलित हैं। कोई तरकारी बेचने वाली औरत थी। वह अपना सामान बैल पर लादकर इधर-उधर घूमती और अपनी तरकारी बेचती थी। एक दिन उसका बैल खो गया, उस समय बहुत परेशान हुई, उसने मिन्नत मानी कि अगर मेरा खोया हुआ बैल मिल जायगा तो उस बैल की आधी कीमत अपने करीब की मसजिद में चढा दूँगी। उसका बैल मिल गया। लेकिन उसने अपनी बात पूरी नही की। कदाचित उसको यह भूल गयी कि मैंने ऐसी मिन्नत मानी थी।

कुछ दिनों के बाद उस औरत ने रोना शुरू कर दिया। उससे उसके पड़ोसी बहुत परेशान हुए। इस मौके पर उसी की तरह दूसरी तरकारी बेचने वाली औरत ने आकर उसके रोने का कारण पूछा तो उसने जवाब दिया—खो जाने के बाद मेरा बैल तो मिल गया, लेकिन उसके बिकने की नौबत आ गयी है।

उसकी इस बात को सुनकर दूसरी औरत ने कहा। बैल के बिकने की नौबत क्यो न आ जायगी। खुदा को धोखा देना अच्छा नही होता, मैं तो ऐसे कितने ही लोगो को जानती हूँ, जिन्होंने अपनी मुसीबत मे इस तरह की मिन्नत मानी और जब उनकी मुसीबत कट गयी तो वे अपनी बातो को भूल गये और उसका नतीजा यह हुआ कि वे तबाही मे आ गये। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि धोखा देना खुदा को क्या, किसी को भी धोखा देना बुरा होता है। अगर तूने अपनी बात पूरी नही की तो बैल क्या तेरा सभी कुछ बिक जायगा।

भीमनाथ की यात्रा बडी सुखकर होती है। कहा जाता है कि यहाँ का नाम लेना बहुत काफी होता है। मनुष्य की श्रद्धा जो भीमनाथ पर होती है उसके लिये

एक सिद्ध मन्त्र के समान हो जाती है। उसकी सभी कामनायें पूरी होती हैं। यहाँ तक कि जब कोई आदमी शत्रु के द्वारा घेरे में आ जाता है तो उस समय वह अपनी इस श्रद्धा के कारण सकुशल लौटकर और बचकर अपने घर पर पहुँच जाता है। इसके प्रति श्रद्धा होने के कारण कोई भी आदमी बड़े से बड़े सकटों का सामना करता है। भीमनाथ के प्रति लोगों का ऐसा विश्वास है और इस प्रकार की एक जन-श्रुति है।

भीमनाथ के कथानक का अन्त करते हुए हम इतना ही लिखना चाहते हैं कि यही पर वलभी का वह प्रसिद्ध सूर्य कुण्ड है, जिसको आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया था।

इस क्षेत्र के प्रत्येक स्थान पर ऐसे दृश्य मिलते हैं, जो विभिन्न प्रकार के चमत्कारों से भरे हुए हैं, उनमें आकर्षण है और उनका सम्पर्क तथा सम्बन्ध उन पौराणिक कथाओ के साथ है, जिनकी सामग्री से यहाँ का प्राचीन कालीन इतिहास लिखा जा सकता है।

चौदहवाँ प्रकरण

जैनियों का सम्प्रदाय

जैनियो के तीर्थ स्थान—जैन मत की उदारता और महानता—पहाड़ो पर जैनियो के मन्दिर—जैन मन्दिरो के निर्माता—उपासना के स्थान—अन्यान्य मन्दिर—आपसी मतभेदो के दुष्परिणाम—आदिनाथ का मन्दिर—आभूषणो की प्रथा—पर्वतों पर मन्दिरो की भरमार—हेगा पीर की मजार—मन्दिरो और पर्वतों की सम्पत्ति—पालीताना: प्राचीन और नवीन।

पालीताना—१७ नवम्बर : मेरा स्वास्थ्य इतना खराब था कि सोहोर और जैनियों के इस प्रसिद्ध तीर्थ स्थान को भली प्रकार मैं देख न सका। यह बात दूसरी है कि यहाँ पर देखने के योग्य कोई स्थान मुझे नही बताया गया था, फिर भी जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह सम्भव नहीं है कि इस क्षेत्र की पन्द्रह-बीस मील भूमि में मेरे जैसे अन्वेषक के लिए कोई सामग्री न मिल सके।

मुझमें और यहाँ के लोगो मे अन्तर है। जो लोग हमेशा यहाँ रहते हैं, उनकी नजरो में यहाँ की आकर्षक चीज भी साधारण हो गयी है और जिसने पहली बार उसको देखा है, उसकी नजरो मे उसका महत्व बहुत कुछ होना स्वाभाविक है। एक और बात है, मैं पुरातत्व सम्बन्धी अन्वेषण के लिए इन सुदूरवर्ती अपरिचित प्रदेशों और भू-भागो की यात्रा कर रहा हूँ। यहाँ पर अनुसन्धान के दृष्टिकोण से जो सामग्री मेरे लिए आकर्षक और काम की हो सकती है, वह यहाँ के लोगो के लिए साधारण हो सकती है। इसलिए मैं बहुत आसानी से इस बात पर विश्वास नही करता कि एक ऐतिहासिक अन्वेषक के लिए यहाँ पर कोई सामग्री काम की नही मिल सकती।

मैं तो अपनी यात्रा में प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण करना चाहता हूँ। यह तो मेरे समझने की चीज है कि वह काम की है अथवा नही। काम की न होने पर भी मैं उससे क्या लाभ उठा सकता हूँ, यह तो समझना मेरा काम है।

यहाँ पहुँचने के साथ-साथ मुझे लोगो ने बताया था कि इस क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण स्थान नही है। लेकिन जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, मैंने लोगो के बताने पर अधिक विश्वास नही किया। ऐसा करके मैंने अपने हक मे अच्छा ही किया। यहाँ पर मेरे लिए सामग्री कम नही है। इस्लाम के मानने वाले यहाँ पर आये थे और उन लोगो ने यहाँ की मूर्तियो को तोड़ना अपना कर्तव्य समझा था। इस्लाम के अनुयायी

इसके लिए अकेले नही आये थे। उनके साथ विशाल सेनायें भी आयी थी। इस्लाम के पक्षपातियो ने यहाँ पर जो कुछ कार्य किया, उसमे वे दस आज्ञाये विशेष महत्व रखती हैं, जिनके आदेश उनके धर्म मे प्रत्येक इस्लामी को दिये जाते हैं। उन आज्ञाओ (१) के पालन मे उन्होंने देर-अबेर नही की और मन्दिर तथा उसकी मूर्तियों को तोड़ने में जो कोई बाधक के रूप मे सामने आया। उसको तलवार से काटकर टुकडे-टुकडे कर डाला गया।

उन आक्रमणकारियो ने इतना ही नही किया, उन्होंने मूर्तियों के साथ-साथ मन्दिरो को भी तोड़ा और जिन मन्दिरो से उन्होंने घृणा की थी, उसकी कीमती चीजे उठाकर ले गये। इसके दो अर्थ होते हैं, वे मन्दिरो की मूर्तियो को तोडना भी चाहते थे और वहाँ की बहुमूल्य चीजें वे अपने यहाँ ले जाना भी चाहते थे।

पालीताना पल्ली का निवास-स्थान शत्रुञ्जय की पूर्व के तरफ की तलहटी मे है। यह पर्वत आदिनाथ (जैनियो के चौबीस तीर्थङ्करों में से पहला) के नाम से प्रसिद्ध है और लगभग दो हजार फीट ऊँचा कहा जाता है। इसमे रास्ते के मोड़ बहुत हैं, यदि उनके अनुसार देखा जाय तो इसकी चढाई दो और तीन मील के बीच में आती है। यह स्थान सचमुच बडा अच्छा है। यहाँ पर जो मैं अपने अनुसन्धान का कार्य करना चाहता था, उसमे यहाँ के साधुओ और सन्तों से मुझे सहायता मिली।

इन साधु-सन्तो से मेरा परिचय मेरे यती के द्वारा हुआ। ये लोग भी इस मौके पर यहाँ की यात्रा करने के लिए आये थे और उन लोगो ने अपने धर्म तथा तीर्थ के विषय में बहुत-सी बातें बतायीं। उन्होंने यह भी बताया कि इस पर्वत के माहात्म्य का आधार क्या है और उसको इतना अधिक महत्व क्यो मिला है। अपनी इन बातो को बताने के लिए उनके पास कुछ लिखी हुई सामग्री भी थी और कुछ उन्होंने पुरानी पोथियो को देखकर मुझे बताया।

यहाँ पर मैं यह भी प्रकट करना चाहता हूँ कि इन प्रदेशो की यात्रा पर आने के पहले मैंने अपने देश वालो से जो कुछ सुन रखा था, उसका मेरे ऊपर कोई प्रभाव नही था। मैंने जो कुछ सुना था अथवा जानकारी प्राप्त की थी, उस पर यकीन न करने का कारण यह था कि मैं एक पक्षीय बात पर विश्वास नही करता। मैं समझता था कि जो कुछ मुझे बताया गया है, इसमे संकुचित विचार धारा है, कुछ ईर्षा की भावना भी है और अपने पराये का भेद-भाव भी है।

जिन लोगों ने मुझे अपनी तरफ से कुछ सही और कुछ गलत बता रखा था, मैं उसके लिए उनको अपराधी नही ठहराता। बहुत सम्भव यह है कि इस सत्य के

(१) मुस्लिम धर्म के अनुसार, परमात्मा की ये आज्ञायें जो उसने पैगम्बर मूसा को सिनाइ पर्वत पर दी थी, दो पत्थर के टुकडों पर लिखी हुई थी।

सम्बन्ध में उनकी अपनी जानकारी न हो और उन्होंने सुनी-सुनायी बातों पर विश्वास करके मुझको बताने की कोशिश की हो। इसलिए मैं यह उचित नही समझता कि उनको मैं अपराधी मान लूँ। मैं तो यहाँ पर इतना ही कहना चाहता हूँ कि अपने देश में वहाँ के लोगो के द्वारा बहुत-सी बातो के सुनने और जानने के बाद भी मैं इन क्षेत्रों का अवलोकन करना चाहता था और जो भी सामग्री मुझे मिल सके, मैं उसके द्वारा अपने अनुसंधान का कार्य पूरा करना चाहता था।

मैंने यहाँ के सभी प्रकार के लोगों से बातें की और विभिन्न प्रकार के मतो के अनुयायिओं से बातचीत की, चाहे वे साधारण दर्जे के मनुष्य हों, अथवा अच्छे पढ़े-लिखे हों, मुझे खुशी है कि लोगों ने बड़ी उदारता के साथ मुझसे बातें की, बड़ी गम्भीरता के साथ मेरे प्रश्नों के उत्तरों को समझाने की कोशिश की और इस बात की भी चेष्टा की कि मेरे मन में कही पर भ्रम न उत्पन्न होने पावे।

मैंने यहाँ पर देखा कि प्रत्येक तीर्थ-स्थान के माहात्म्य का अपना एक ग्रन्थ है। ऐसे ग्रन्थों को पढवा कर सुनने का मुझे अवसर मिला और मैं बिना किसी विरोधी भावना के इस बात को समझ सका कि इन माहात्म्य सम्बन्धी ग्रन्थो में सत्य और तथ्य की अपेक्षा उनके भक्तों के द्वारा जोड़े गये और शामिल किये गये कथानक अधिक हैं। मन्दिर के लिए भेंट, दक्षिणा, जीर्णोद्धार के लिए सहायता और भूमि के दान सम्बन्धी उल्लेख प्रायः शिलालेखों में पाये जाते हैं। लेकिन इन ग्रन्थो में बड़े विस्तार के साथ जो कथानक पाये जाते हैं, वे सब भक्तो की श्रद्धा के अनुसार कथायें मात्र हैं।

माहात्म्य सम्बन्धी इन ग्रन्थो में जिस प्रकार की कथाये हैं, उनके उदाहरण में यहाँ पर कुछ लिखना आवश्यक न होगा। आबू माहात्म्य में एक कथा है—शत्रुञ्जय माहात्म्य की रचना वलभी नगर के निवासी धनेश्वर सूरि आचार्य ने सम्वत् ४७७ सन् ४२१ ईसवी मे की थी। उस समय जब सूर्यवंशी राजा शिलादित्य ने आदिनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था।

धनेश्वर सूरि आचार्य के ग्रन्थ से हमको इतिहास सम्बन्धी तीन बातों का पता चलता है। पहली बात यह है कि यह पर्वत आदिनाथ को अर्पित है, जिसके मन्दिर का जीर्णोद्धार ४२१ ईसवी मे हुआ था। इससे मन्दिर के निर्माण का समय कई शताब्दी पहले का मालूम होता है। दूसरी बात यह है कि इस ग्रन्थ के लेखक के निवास-स्थान का पता चलता है कि वह वलभी का आचार्य था और तीसरी बात जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, वह यह है कि यह राजा शिलादित्य सूर्य वंशी था।

इन सभी बातो से मेवाड के इतिहास की घटनाओं का समर्थन होता है। यह वही राजा था, जिसका वर्णन करते हुये उस इतिहास में लिखा गया है कि वह पश्चिमी एशिया के आक्रमणकारियों से वलभी की रक्षा करते हुये मारा गया था। मोहम्मद से

पहले जो आक्रमण हुए थे, उनमें यह दूसरा आक्रमण था। पेरिप्लस के अनुसार पहला आक्रमण दूसरी शताब्दी में हुआ था और कॉसमस (१) के अनुसार, तीसरा आक्रमण छठी शताब्दी में हुआ था, जब हूण लोग सिन्ध की घाटी में आकर आबाद हो गये थे। यही कारण है कि जेट, हूणो और काठी लोगों के अस्तित्व अब तक सौराष्ट्र में पाये जाते हैं।

मुझे एक प्रस्तर-लेख मिला, उस से मुझे बड़ी सहायता मिली, मेरी खोज की जो चीजें स्पष्ट नही हो रही थी और इतिहास सम्बन्धी जो विवरण फीके मालूम हो रहे थे, उनको समर्थन प्राप्त हुआ। उस पाषाण मे लिखा था कि वलभी का स्वतन्त्र सम्वत् भी प्रचलित था, वह इस माहात्म्य के लिखे जाने के समय से एक शताब्दी पहले जारी हुआ था।

शत्रुञ्जय जैनियो के पांच तीर्थों मे से एक है। इनमे तीन अर्थात् अर्बुद, शत्रुञ्जय और गिरनार एक दूसरे के करीब हैं। चौथा समेल अथवा सम्मेत, शिखर मगध अथवा वर्तमान विहार की प्राचीन राजधानी में है। पाँचवाँ चन्द्रागिरि, जो शेषकूट अथवा सहस्र शिखर भी कहलाता है, हिन्दूकोट अथवा पर्वत् पति पामीर के बर्फीले स्थानो में है, जिसको ग्रीस के लोग (काकेशस) और (पैरोपैमीसस) कहते हैं।

पहले बौद्ध लोगो के लिये सिन्ध मे किसी प्रकार की सजावट नही थी। उन्होंने लिखा है कि "जब आचार्य जैनादित्य सूरि (२) अपने दल के लोगों से मिलने के लिये सिन्ध के पश्चिम में जाया करते थे, उस समय वे अपनी चद्दर के सहारे नदी को पार कर लेते थे। एक दिन जल-देवता वरुण ने जल से निकलने का वर माँगा तो आचार्य ने अपना अंगूठा काटकर भेंट मे दे दिया। कहा जाता है कि वह चमत्कार पूर्ण चद्दर, विस्मय जनक लिपि मे लिखी हुई पुस्तक (३) के साथ अब तक जैसलमेर मे

---

(१) (कॉसमस) का समय १०४५-११२६ ईसवी है। उसने बोहमोनियाँ नामक बोहेमियाँ का इतिहास लिखा था।

(२) प्रसिद्ध श्री जन दत्त सूरि का जन्म गुजरात के प्रान्त में धोलका मे श्रेष्ठी वाछिग के यहाँ वि० स० ११३२ सन् १०७६ में हुआ था। उसकी माता का नाम बाहडदेवी था। इस विषय मे यह दोहा प्रसिद्ध है!

सिन्ध देश में पञ्चनदी पर साधे पाँचों पीर ;
लोई ऊपर पुरुष तिराये, ऐसे गुरु सधीर।

जिस लोई अथवा चद्दर का यहाँ पर वर्णन किया गया है, पहले महोपाध्याय बुद्धिचन्द्र के उपासना-घट में रखी हुई थी। लेकिन अब वह जैसलमेर के ज्ञान भण्डार में रख दी गयी है।

(३) यह अनोखी पुस्तक, जो अब मुद्राङ्कित बतायी जाती है, एक जंजीर में

चिन्तामणि के मंदिर में रखी हुई है और यही चद्दर जैनादित्य की गद्दी पर बैठने वाले प्रत्येक आचार्य के कंधों पर डाली जाती है।

इस पर्वत के अनेक नाम हैं और वे चौबीस से कम नही बताये जाते। कहा जाता है कि इसके एक सौ आठ शिखर है इसको गिरनार पर्वत के साथ मिलाते हैं। जैनियों में इस विषय के विद्वान इस क्रम को आबू और तरिंगी अथवा तारिंगा तक गया हुआ बतलाते हैं और सीहोर, बल्ल तथा दूसरी पर्वत शृङ्खलाओ से, जिनमें कुछ बहुत ही नीची हैं, सम्बन्धित मानते हैं। नाम माला में एक अंश इस प्रकार का है :

प्राचीन काल में सुखराज पालीताना में राज्य करता था। उसके छोटे भाई ने जादू के बल से अपनी सूरत को उसकी सूरत मे बदल दिया और उसके सिंहासन पर बैठकर राज्य करने लगा। उसका भाई सुखराज राज्य से च्युत होकर बारह वर्ष तक जङ्गलों मे मारा-मारा फिरता रहा। इन दिनों में वह नदी का जल रोजाना श्री सिद्ध-नाथ जी की प्रतिमा पर चढाता रहा। उसकी इस भक्ति से प्रसन्न होकर देवता ने उसको अनधिकारी भाई पर विजयी कराया। वह फिर अपनी गद्दी पर बैठा और देवता पर प्रसन्न होकर उसकी मूर्ति को पर्वत पर स्थापित किया। उसके बाद से उसका नाम शत्रुञ्जय पडा। आरम्भ मे यह पर्वत शिवजी के अधिकार मे रहा होगा। जिसका प्रमुख नाम सिद्धनाथ अथवा सिद्धो का स्वामी है। कदाचित् यह गौरव जैनियो के प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ को प्राप्त नही हुआ था।

पण्ढरी पर्वत—आदिनाथ के शिष्य पण्ढरी अथवा पुण्डरीक का पहाड़।
श्री सिद्ध क्षेत्र पर्वत—पवित्र अथवा सिद्ध क्षेत्र का पर्वत।
श्री विमलाचल तीर्थ—शुद्धि यात्रा तीर्थ (विमल शुद्ध, पवित्र)।
सुरगिरि—देवताओं का पर्वत।
महागिरि—बड़ा पर्वत।
पुण्यरस तीर्थानिकम्—पुण्य देने वाले तीर्थ स्थान।
श्री पति पर्वत—धन देने वाला पर्वत (श्री लक्ष्मी)।
श्री मुक्त शील अथवा शैल—मुक्ति देने वाला पर्वत।
श्री पृथ्वीपीठ—पृथ्वी का मुकुट।
श्री पाताल मूल—जिसकी जड़ पाताल में है।
श्री कामदा पर्वत—सर्व कामना पूरी करने वाला पर्वत।

बंधी हुई लटकी रहती है। वह पुस्तक पूजन के निमित्त वर्ष में केवल एक बार निकाली जाती है। उसके बाद पूजन करके फिर लपेट कर रख दी जाती है। इसके पश्चात् फिर वह दूसरे ही वर्ष निकाली जाती हैं। उसके अक्षर विचित्र रूप के हैं। कहते हैं कि एक स्त्री ने उसको पढने की कोशिश की तो वह अंधी हो गयी।

शत्रुञ्जय के सम्बन्ध मे पाठकों को जानकारी कराने के लिये माहात्म्य के निम्न-लिखित अश का यहाँ पर देना अनिवार्य हो गया है।

आदिनाथ के दो लड़के थे, एक का नाम था भरत और दूसरे का नाम था बाहुबलि। बाहुबलि का राज्य मक्का देश में था, जो वलि देश (१) के नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ से जावडशाह ने विक्रमादित्य से सौ वर्षों के पश्चात् बाहुबलि की मूर्ति लाकर शत्रुञ्जय पर स्थापित की थी और उस स्थान से वह मूर्ति गोगो में पहुँचायी गयी। वहाँ पर गोहिलो की अपनी राजधानी भावनगर मे स्थापित करने के समय तक रही। वहाँ पर यह मूर्ति अब तक मौजूद है।

बाहुबलि से चन्द्रवश की उत्पति हुई और उसके बडे भाई भरत से सूर्यवंश चला। इसके साथ ही इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि भरत उन सभी वंशो का आदि पुरुष था, जो भारतवर्ष अथवा भारतखण्ड में फैले हुये हैं। उसमें एशिया का वह भाग भी शामिल है, जो कास्पियन और गगा के बीच में है।

आदिनाथ एक ऐसा शब्द है, जिसके कई अर्थ हो सकते हैं, उसका अर्थ प्रथम, पहला और मूल में भी आता है। लेकिन इस प्रकार के किसी भी अर्थ से कोई अभिप्राय सिद्ध नही होता हैं। बडे विवेचन के बाद आदिनाथ दो बडी शाखाओ में विभाजित मालूम होते हैं। एक शाखा के लोगों का अरब के समुद्री किनारे से होकर भारत में आना और दूसरे का उत्तर की ओर से आगमन समझ में आता है। इसी के आधार पर इस प्रायद्वीप के सौर अथवा सौरियो होने का एक ठोस आभास मिलता है।

कुछ इसी प्रकार की अवस्था हिन्दुस्तान में शको और जेट लोगो की मानी जाती है। उनके सम्बन्ध में मनु ने यवन अथवा जवन नामो का उल्लेख किया है। हमें इस बात को इस प्रकार की आलोचना के समय याद रखने की जरूरत है और विशेष रूप से कालनेमि का ईथोपीय मुखमण्डल, घुँघराले बाल और चौडे होठो को देखने के समय एवम् हिन्दुओ के भू छोर, जगत कूंट पर कृष्ण के मन्दिर को देखने के समय, जहाँ पर उससे भी प्राचीन बुद्ध त्रिविक्रम का मन्दिर आज तक मौजूद है। मैं इस बात पर फिर जोर देना चाहता हूँ कि गिरनार के पाषाण-लेख का अध्ययन करने के साथ-साथ कुछ अनुसधान का कार्य होने की आवश्यकता है।

यह तो निश्चित रूप से सही मालूम होता है कि मक्का मे एक हिन्दू-मन्दिर था और उसमें हिन्दुओ की परम्परा के अनुसार पूजा-आराधना होती थी। जो लोग उस मन्दिर में गये थे, उनमें एक बर्कहार्ड भी भी था उसका कहना है कि जिस काले

---

(१) बालू रेत को कहते हैं। बालू देश को फारसी में रेगिस्तान कहा जाता है। उसका सम्बन्ध अरब के रेगिस्तान से है। हिन्दुओ के भूगोल मे बल्ख अथवा बालुका देश का भी यही मतलब होता है।

पत्थर की इस्लाम के मानने वाले पूजा करते है, वह हिन्दुओ का शालिग्राम है और कृष्ण वर्ण देवता कृष्ण का रूप होने के कारण पूजनीय है। हमको इस बात के विरोध करने के लिए कोई आधार नही मिलता कि प्राचीनकाल मे हिन्दू लोग मक्का जाया करते थे और अब तक अष्ट्रखान (१) की आबादी में रहने वाले लोग वोलगा के किनारे पर ठीक उसी प्रकार विष्णु की पूजा करते हैं, जिस प्रकार वे अपनी मातृभूमि मुल्तान में किया करते थे। ये लोग उसी वंश के हैं, जिस वंश का जावडशाह काश्मीरी वैश्य था और जो बाहुबलि की मूर्ति शत्रुञ्जय पर विक्रम से एक सौ वर्ष बाद लाया था। इसका समय ४६ ईसवी माना गया है।

अब हम फिर मूल विषय पर आते हैं। यह पहाड़ तीन भागो में विभाजित है, वे टूक कहे जाते हैं। एक भाग का नाम मूलराज है, दूसरे का सिविर सोमजी अथवा शिवा सोमजी का चौक कहा जाता है, वह अहमदाबाद का धनिक मूल निवासी था। उसने संम्वत् १६७४ सन् १६१८ ईसवी में मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया और चारो तरफ पक्की दीवार खड़ी कराई। उसके निर्माण में उसका बहुत धन खर्च हुआ। कहा जाता है कि चौरासी हजार रुपये अर्थात् लगभग दस हजार पौण्ड तो ऊपरी सामग्री मंगाने में खर्च हुए थे। तीसरी भाग बड़ौदा के एक सम्पत्ति काली के नाम पर मोदी का टूक कहलाता है। उसने भी इसी तरह करीब पचास वर्ष पहले बहुत अधिक धन खर्च किया था।

इन मन्दिरों में बने हुए भवन अपनी सुन्दरता और पवित्रता के साथ-साथ प्राचीनता का जो प्रमाण देते हैं, वे इस प्रकार हैं :

पहली इमारत भरत ने बनवाई थी, दूसरी उसकी आठवी पीढ़ी मे धुन्वंवीर्य अथवा दण्डवीर्य ने, तीसरी ईशानेन्द्र ने, चौथी महेन्द्र ने, पाँचवी ब्रह्मेन्द्र ने, छठी धनपति (२) ने, सातवी सगर चक्रवर्ती ने, आठवी विहन्द्र ने, नवी चन्द्रयशा ने, दसवी चक्रायुध ने, ग्यारहवी राजाराम चन्द्र ने, बारहवी पाण्डव भाइयो ने, तेरहवी काश्मीर के व्यापारी जावड़शाह ने विक्रमादित्य से एक सौ (३) वर्ष बाद बनवायी थी।

---

(१) वोलगा नदी के पास तातार जाति के लोगो की बस्ती है। ये लोग तुर्को की उस शाखा में हैं जो हूणो के आक्रमण के पश्चात् वोलगा नदी के नीचे के भागो मे आबाद हो गये थे। उसके बाद सन् १५५७ ईसवी में रूस ने इन को पराजित किया था।

(२) जिन हर्षगणि और समय सुन्दर उपाध्याय ने षष्ठ के उद्धार का श्रेय चमरेन्द्र को दिया है। वह भुवनपति के नाम से भी प्रसिद्ध था।

(३) शत्रुञ्जयरास और महात्म्य मे इस उद्धार का समय विक्रम से एक सौ आठ वर्ष बाद माना है।

चौदहवी अनहिलवाडा के राजा सिद्धराज के मंत्री बहिदेव (बाहड) मेहता (१) ने, पन्द्रहवी दिल्लीपति के काका सुमरा सारङ्ग (समराशाह) ने सम्वत् १३७१ सन् १३१५ ईसवी मे और सोलहवी का निर्माण चित्तौर के मत्री कर्मशाह दोसी (देवताओ के दास) ने सम्वत् १५७८ सन् १५२२ ईसवी मे कराया था। (२)

इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि जावडशाह, जो मूर्ति को यहाँ पर लाया था, आखीर में प्राचीन नगरी मधुमावती (वर्तमान महुवा) मे सौराष्ट्र के समीप आबाद हो गया था।

पालीताना से इस पर्वत के नीचे तक के पूरे रास्ते मे विशाल वट के वृक्षो की छाया है। उस छाया से आने वाले यात्रियो को बहुत आराम मिलता है। यह रास्ता काफी चौडा है और थोडी-थोडी दूर पर जलाशय, बावडियाँ और अनेक प्रकार के दूसरे जल मे स्थान बने हुये हैं। इनका निर्माण धार्मिक आदमियो के द्वारा हुआ था। खूबसूरत चट्टानो के ऊपर काटकर ऊपर जाने के लिए सीढियाँ बनायी गयी हैं, जो नीचे से चोटी तक चली गयी हैं, उनके दोनों तरफ वेदियो पर किसी न किसी तीर्थङ्कर के चरणो के चिन्ह बने हुए हैं, जैके आदिनाथ, अजितनाथ, जिनको तरंगी पर्वत अर्पण किया गया है। सन्तनाथ और गौतम अथवा गौतमार्य, जैसा कि उनको सर्वसाधारण मे कहा जाता है, जो चौवीसवे तीर्थङ्कर महाबीर के अनुयायी थे। यद्यपि उनका गौतम नाम हिन्दुस्तान से बाहर भी बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है, फिर भी उनको वह सम्मान प्राप्त न हो सका, जिसका उपयोग उनके पहले के तीर्थङ्कर ने किया था।

कुछ आगे जाने पर पहाड़ो के ऊपर विश्राम करने के लिये एक स्थान है। उसके लिये कहा जाता है कि वह स्थान इण्डो-सीथिया के राजा आदिनाथ के बडे बेटे भरत की चरण-पादुकाओं से भी अधिक पाक और पवित्र है। कुछ और आगे जाने पर स्वच्छ जल का एक स्थान है, वह अच्छा के नाम से प्रसिद्ध है और नेमिनाथ की चरण पादुकाओ से भी पवित्र माना जाता है।

यहाँ से करीब चार सौ गज के फासिले पर विश्राम करने के लिये एक दूसरा विश्राम स्थान हैं। वहाँ पर एक तालाब है, जिसको अनहिलवाडा के राजा कुमारपाल ने बनवाया था। उसके पास हिन्दुओ की शक्ति देवी हिङ्गलाज माता का मन्दिर है।

वहाँ से चलने पर पहाडी की चढाई के करीब आधे रास्ते पर एक तीसरा विश्राम-घर है। यह स्थान सभी विश्रामालयो से विशाल है और यहाँ का सरोवर शील कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक छोटा-सा बाग है और वहाँ पर सीढियाँ

---

(१) बाहड (बाग्भट्ट) मेहता ने इसका उद्धार सम्वत् १२१३ मे कराया था। वह कुमार का मत्री था।

(२) इसका समय सम्वत् १५८७ होना चाहिए।

बनी हुई हैं। उस बाग के समीप एक सुन्दर झरना है। यह स्थान अपनी पवित्रता के लिये अधिक प्रसिद्ध है। क्योंकि यहाँ पर भगवान की खडाऊ हैं।

वहाँ पर और भी विश्राम के स्थान हैं, जिनके साथ सरोवर बने हुए हैं। इस प्रकार के सभी स्थानों पर प्राचीन ऋषियों के चरणो के चिह्न पाये जाते हैं। जितने भी तालाब हैं, पानी सभी का स्वच्छ और साफ है। साधारण तौर पर जल का प्रवाह न होने के कारण तालाबो का पानी शुद्ध और निर्मल नही होता, लेकिन यहाँ के इन तालाबों की अवस्था बिल्कुल भिन्न है और इन सबका जल बहुत निर्मल है।

बहुत ऊँची चढाई के बाद हम इस पर्वत को सबसे ऊँची चोटी पर पहुँचे। वह चारों तरफ से एक सुरक्षित परकोटे से घिरी हुई है और उस चोटी की पूर्वी मीनार पर हज्जा पीर नामक एक मुसलमान फकीर की श्वेत ध्वजा फहराती रहती है। जैन तीर्थ-ङ्करों के पास इस मुस्लिम फकीर के प्रवेश के विषय में आगे प्रकाश डाला गया है।

इस स्थान को अपनी दाहिनी ओर छोडकर हम पर्वत के दक्षिण की तरफ आदीश्वर की टूक की ओर मुडे। कुछ देर तक इस सडक मे चलने पर हम किले के पहले दरवाजे पर पहुँच गये, वह रामगोपाल के नाम से मशहूर है। वहाँ से उस सडक पर होते हुए जो पत्थरो से बनी है और जिसके दोनो तरफ नीम के पेड़ लगे हुए थे, चार दूसरे दरवाजो को पार करके हम एक मन्दिर के बगीचे में जा पहुँचे, जो पर्वत के दक्षिण-पूर्व कोने पर बना हुआ था।

रामगोपाल के कुछ ही आगे एक तालाब है, वह पाण्डवो की माता कुन्ती के नाम से मशहूर है। जनश्रुति यह है कि जब उसके लडके बिराट में बनवास के दिन काट रहे थे, उन दिनों में उसी के कहने से इस तालाब का निर्माण हुआ था। लेकिन भूकम्पों के कारण इसकी चट्टानें टूट गयी हैं और वसुदेव की लडकी (बहन ?) का यह पवित्र स्मारक पानी से खाली हो गया है। अब उसमें जल बिल्कुल नही है।

दूसरे दरवाजे का नाम सूगर पोल है, जो बङ्गाल के एक व्यापारी की दान-शीलता का परिणाम है। इसके पास ही पालीताना के प्रथम गोहिल नवघन के द्वारा बनवाया हुआ तालाब है। यहाँ पर आने वाले लोग ठहर कर विश्राम किया करते हैं और यात्री लोग अपने-अपने विश्वास के अनुसार यहाँ पर पूजा किया करते हैं।

तीसरा द्वार बाघन पोल कहलाता है। यहाँ पर हिन्दुओ की सिविली (१) सिंह केसरी (२) माता की एक छोटी मूर्ति है। यही पर गिरनार के नेमिनाथ की चौरी भी है। इसकी इमारत से मिला हुआ एक पत्थर है, जिसमे जमीन से तीन फीट ऊँचा पन्द्रह इन्च व्यास का एक चौकोर सूराख है, वह मुक्ति द्वार कहलाता है। जो व्यक्ति

---

(१) ग्रीक की प्रकृति देवी।
(२) शिव वाहिनी माता।

अपने शरीर को सम्हाल कर उसको पार करके निकल जाता है उसको निश्चित रूप से मुक्ति मिलती है। लेकिन धनी सुखी और सम्पन्न पुरुष अपने शरीर के मास को बिना सुखाये हुए उसको पार नही कर सकते।

मुक्ति पाल के सामने एक ऊँट की पाषाण मूर्ति है। वह विचित्र रूप से बनी हुई है। उसका आकार-प्रकार एक जिन्दा ऊँट के बराबर है। ये सभी खडे पत्थर शूल अथवा सुई कहे जाते हैं। उनकी कल्पना हमारे इन लेखो को पढकर नही की जा सकती।

चौथा द्वार हाथी पोल पर जिनेश्वर पार्श्व का मन्दिर है। जो शेषनाग (सहस्त्र फणि) के नाम से मशहूर है। इसका अर्थ है, वह देवता, जिस पर एक हजार फण वाले सर्प की छाया रहती है। यहाँ पर मिस्र के हरमीज (१) के साथ विचित्र समता का आभास होता है। इसका चिह्न भी साँप है और उसका दूसरा नाम फनेटीज है।

इसके बाद हम उस मन्दिर पर पहुँचते हैं। जो बङ्गाल के प्रसिद्ध सेठ का बनवाया हुआ है और वह सेठ जगत सेठ के नाम से प्रसिद्ध है। मराठो के आक्रमण के समय धन उसके नाम का पर्यायवाची माना जाता था और दो करोड रुपयो का नुकसान उसके ऊपर कुछ भी प्रभाव नही डाल सका था। यह विवरण इतना आधुनिक है कि इस पर जरा भी अविश्वास नही किया जा सकता।

इससे मिला हुआ एक दूसरा मन्दिर है, जो हजार खम्भो का मन्दिर कहलाता है। यद्यपि इस मन्दिर मे सब मिलाकर चौसठ खम्भे हैं। इसके पास कुमारपाल का मन्दिर है, उसमे बावन मूर्तियाँ हैं। इसके और पाँचवी पोल के बीच मे दो कुण्ड हैं, वे सूर्य कुण्ड और ईश्वर कुण्ड के नाम से मशहूर हैं। पहले कुण्ड पर एक शिवालय बना हुआ है और उसके पास अन्नपूर्णा देवी का मन्दिर है।

इसके बाद बहुत-सी सीढियो को पार करके पण्ढरी पोल नामक द्वार से हम श्री आदिनाथ मन्दिर के सामने पहुँचे। चौक में जाने के लिये जिस पण्ढरी के नाम पर बने हुए द्वार से जाने का रास्ता है, वह तीर्थङ्कर का शिष्य था और उस द्वार के ऊपर कोठे में वह रहा करता था। प्राचीन काल की बहुत-सी चीजें इस चौक मे मौजूद हैं। लेकिन अनेक कारणों से वे सब चीजे नष्ट-भ्रष्ट हो गयी हैं। इनके नष्ट होने के अनेक कारण हैं। जैसे, साम्प्रदायिकता के विरोध, निर्माता कहलाने की आकांक्षा और दूसरे धर्म वालो के अत्याचार। इस प्रकार के बहुत-से कारणो के फलस्वरूप वहाँ की प्राचीन चीजें नष्ट-भ्रष्ट हो गयी हैं।

लोगो का कहना है कि दूसरे धर्म वालों की घृणा की अपेक्षा इन चीजो के नष्ट

(१) ग्रीक माइथोलाजी के अनुसार एक देवता जो ज्यूस का लड़का था और वह मृतको के आत्मा को मृत्यु के बाद ले जाया करता था। वह वाणी और भाग्य का स्वामी और व्यापारियो का रक्षक माना जाता था।

होने का कारण हमारे धर्म के अनुयायिओं का आपसी मतभेद अधिक है। यदि इस धर्म के लोगों में आपसी भेद-भाव न होते और एक दूसरे के साथ वे ईर्षा-भाव न रखते होते तो कदाचित विनाश की यह नौबत न आती। अहिंसा परमोधर्मः के सिद्धान्त पर विश्वास करने वाले विद्वान जैनी लोग भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके तपागच्छ और खरतर गच्छ नामक प्रमुख भेदो के आपसी वैमनस्य के कारण हमारा अधिक नाश हुआ है। उनका स्पष्ट कहना है कि इतनी बड़ी क्षति हमको मुसलमानो के द्वारा नही पहुँची।

असलियत यह है कि आपसी मतभेदो मे जब जो शक्तिशाली हुआ उस समय उसने निर्बलो का विनाश किया। जैनियो के द्वारा इस सत्य को छिपाया नही जा सकता कि जब तपागच्छ वाले अपनी शक्तियो का संचय कर सके तो उन्होंने खरतर वालो के लेखो को तोड-फोड़ कर नष्ट कर डाला और उनके स्थान पर अपने लेख लिखवा दिये। इसके बाद जब सिद्धराज सोलङ्की के समय में खरतर-गच्छ को शक्तिशाली बनाने का मौका मिला तो उन लोगों ने तपागच्छ वालो के लेखो के टुकड़े टुकडे करवा दिये।

इन दोनो मतो में अलगाव की भावना चतुर्थ सोलङ्की राजा दुर्लभसेन' के समय मे उत्पन्न हुई थी, जो ११०१ ईसवी में गद्दी पर वैठा था। विरोधी भावना के फलस्वरूप दोनों मतों के लोगो में ऐसी कटुता पैदा हो गयी थी कि आपस मे दोनो मतो के लोगों में अनेक बार गहरी लडाइयाँ हुई और अहिंसा के सिद्धान्तो को भुलाकर एवम् पर्वत की पवित्रता को ठुकरा कर वे एक दूसरे के साथ लडे और खून के नाले बहाये। उन दिनों में उनको एक बार भी इस बात का स्मरण नही आया कि हम लोग उस धर्म के अनुयायी हैं, जिसकी नीव अहिंसा के सिद्धान्तो पर रखी गयी है।

अनहिलवाडा के अजयपाल ने अपने पूर्ववर्ती राजा कुमारपाल के बनाये हुए सभी मन्दिरो को तुड़वा दिया था। कुछ लोगो का कहना है कि इस अधार्मिक कार्य मे उसकी अपेक्षा उसका प्रधान मन्त्री अधिक अपराधी था। कुछ लोगो का यह भी कहना है कि उस प्रधान मन्त्री ने उस समय यह किया, जब उसने हिन्दू-धर्म और जैन-धर्म को छोड़कर इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया था।

हमको इस बात के प्रमाण नही मिले कि महमूद गजनवी जैनियों के इस पवित्र पर्वतो को भी देखने के लिये आया था। लेकिन यह सत्य है कि 'खूनी अल्ला' के क्रोध के सबब यहाँ के सभी धर्म वालो ने अपने-अपने देवताओ को घरो के भीतर छिपा लिया और जिन देवताओ की मूर्तियो को नही छिपाया गया था, उनको मुसलमानो ने तोड़ कर टुकड़े-टुकडे कर डाले थे। उस समय बहुत अधिक देवताओ की मूर्तियाँ तोड़ी गयी थी और वही बच सकी थी, जो मुसलमानो की नजरों में नही पड़ी।

यही हालत मन्दिरो की भी हुई थी। बुरी तरह से ये मन्दिर तोड़े गये थे और

जो बच गये थे, उन मन्दिरों को मस्जिदो के रूप में बदल दिया गया था। इस प्रकार के विनाश का यह परिणाम हुआ है आदिनाथ के चौक में नजर डालने पर यह तो नही कहा जा सकता कि वहाँ पर कोई भी प्राचीन चीज रह नही गयी है, लेकिन यह सही है कि पूरी इमारत आज बदली हुई है। उसके बहुत से भाग नष्ट कर दिये गये हैं और टूटे-फूटे जो हिस्से दिखायी देते हैं, उनका बहुत बुरा हाल है।

यही अवस्था कुमारपाल के मन्दिर की भी है। समूचा मन्दिर बुरी तरह टूट-फूटकर बरबाद हो गया था और मरम्मत के द्वारा उसके निर्माण का बहुत कुछ कार्य किया गया है। लेकिन उस मन्दिर की प्राचीनता के अब दर्शन नही होते।

यहाँ की इमारतो में आदिनाथ का मन्दिर अधिक प्रसिद्ध है। लेकिन आबू के मन्दिरो की तरह निर्माण की कला इसमे नहीं पायी जाती। न इसमें वह बनावट है और न इसमें उतनी अच्छी सामग्री है। निज-मन्दिर एक चौकोर रूप-रेखा मे बना हुआ है, उसके ऊपर गोलाकार छत है। उसका सभा-मण्डप और बाहरी बरामदा भी इसी प्रकार की छत से बना हुआ है।

देवता की मूर्ति बहुत बडी और श्वेत संगमरमर की बनी हुई है। ऋषभदेव पद्मासन लगाये बैठे हैं, उनकी मुख-मुद्रा बहुत गम्भीर है। उनका चिह्न वृषभ, जिसके द्वारा उनका नाम वृषभदेव है। यह उनके पीठ की तरफ लिखा हुआ है। मुख-मण्डल पर उसी प्रकार की गम्भीरता है, जो आमतौर पर जैन-तीर्थङ्करों की मूर्तियो में देखी जाती है। उनके दोनों नेत्र तराशे हुए हीरे के हैं, उनसे उस गम्भीरता का अनुभव और अनुमान नही होता, जिस प्रकार आज के किसी भक्त के द्वारा देव प्रतिमा की सजावट और बनावट से होता है।

इस प्रतिमा को देखने से जिस गम्भीरत और महानता का आभास होता है, उसमे देवपट्टण के पुर्तगाली गिर्जाघर आधार पहुँचाते हैं। आदिनाथ के मन्दिर को सजाने और निर्माण करने मे उसकी कला से प्रेरणा ली गयी है। उसी के आधार पर मोटी आकृति और सुनहले पखो के देवदूतों के चित्र अकित किये गये हैं, जिस प्रकार इगलैण्ड के किसी ग्रामीण गिर्जाघर मे इस प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं। एक बात और भी है, यहाँ पर अगरेजी दीपकवेदी को प्रकाशवान करते हैं और पुजारियों को प्रातःकाल जगाने के लिए जिस लोहे के डडे से घन्टा बजाया जाता है, वह किसी पुर्तगाली समुद्री जहाज का कोई टुकडा अथवा अग है, उस पर बनाने वाले डी कास्टा का नाम है। इन विदेशी चीजो और अनुकरणो से यहाँ की शोभा कुछ फीकी पड़ जाती है। अच्छा होता कि इन पवित्र स्थानो मे ऐसा न किया जाता।

वहाँ पर सगमरमर की बनी हुई बैल की एक मूर्ति के साथ-साथ हाथी की मूर्ति भी है, हाथी की यह मूर्ति माप मे छोटी है और उस पर आदिनाथ की माता

मरुदेवी अपने पौत्र भरत और बाहुबलि को गोद में लिए हुए बैठी है।

द्वार पर दो शिला लेख हैं। वे देखने में बहुत साधारण हैं। उनमें से एक में लिखा है, 'चित्रकूट (चित्तौर), मेवाड के महाजन जोशी ओसवाल बीसाकुमार शाह ने बहादुरशाश गुजरात के बादशाह के समय मे इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया, शनिवार सम्वत् १५७८' और दूसरे में लिखा है आदिनाथ, उसके मन्दिर की कीर्ति और जीर्णोद्धार कराने वालो के यश का वर्णन है।

चौक मे बाये हाथ की तरफ भीतर जाने पर इस धर्म के अनुयायियो के लिये एक सुन्दर स्थान बना हुआ है, वहाँ पर आदिनाथ 'एक ईश्वर' की उपासना के लिये बैठते थे। उन दिनो में इस पर्वत के ऊपर आकाश के सिवा और कुछ नही था। आदिनाथ की आराधना विशेष रूप से रोती थी, उनका यह प्रमुख स्थान था।

यहाँ पर एक राया का पेड़ है। धार्मिक लोगो का विश्वास है कि यह पेड़ उस अमर वृक्ष की संतान है, जिसकी छाया मे आदि जिनेश्वर बैठा करते थे। उस वृक्ष की छाया आज भी उनको पवित्र पादुका पर है। अपने अभीष्ट ईश्वर तक पहुँचने के के लिए चित्र को एकाग्र करने वाला उन्होने इस स्थान को माना था और अपनी उपासना के लिये उन्होंने इसी स्थान को महत्व दिया था।

वहाँ का दृश्य रमणीक था। घिरे हुए बादलो के कारण दृष्टि अधिक दूर तक नही जाती थी। लेकिन सूर्य की किरण कभी-कभी प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग मे प्राचीन गोपनाथ और मधुमावती (आधुनिक महुवा) को प्रकाश देती हुई समुद्र की तरफ जाती थी। पश्चिम में हमको नेमिनाथ के पर्वत और प्रसिद्ध गिरनार के दृश्य देखने को मिल गये। लेकिन उत्तर और पूर्व में कुछ साधारण अन्धकार था, जो समुद्र के तट की ओर बीस मील से आगे देखने से बाधा उत्पन्न करता था।

हमने वहाँ पर पर्वत के नीचे के भाग मे नागवती नदी के जल को सूर्य की किरणो से चमकते हुए और उसकी छोटी-छोटी लहरो को समुद्र की तरफ अग्रसर होते हुए देखा। हमने वहाँ पर और भी कुछ देखा, हमने देखा वहाँ की घनी वृक्षावली को, उनकी पत्तियो से बनने वाली रमणीक छत को और पूर्व की तरफ फैली हुई झील को। ये सभी चीजे वहाँ के दृश्य को रमणीक बना रहे थे।

इसके पास ही आदिनाथ के दूसरे बेटे बाहुबलि का एक छोटा-सा मन्दिर बना हुआ है। उसके बनवाने के लिये उन लोगो को श्रेय मिला है जो बाहुबलि के पिता के भक्त थे। मक्का के इस अधिपति की पूजा भारत मे और कही पर होती है, ऐसा मैंने नही सुना और न कही पर देखने मे आया।

इसके साथ सम्बन्ध रखने वाले दो और भी पर्वत हैं—सौर भूमि से बाहर सिन्धु के पार सहसकूट और मगध की राजधानी में समेत शिखर जो अब बङ्गाल मे

है। बाहुबलि के मन्दिर के करीब सासन नामक जैनदेवी की एक छोटी-सी मूर्ति है और ढाल पर जैनियो की दूसरी प्रतिमा वेहोती माता की है, जिसका यह मन्दिर अनहिलवाड़ा मे एक वैश्य ने बनवाया था। लेकिन इसकी तुलना उसके द्वारा आबू पर बनवाये हुए देव भवन के साथ नही की जा सकती।

चौक मे दीवार के किनारे-किनारे बहुत अधिक कोठरियाँ बनी हुई हैं। उन कोठरियो मे प्रत्येक में किसी न किसी देवी अथवा देवता की प्रतिमा स्थापित है। इन अत्यधिक कोठरियो मे अगणित देवताओ की मूर्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि इस देश के लोगो का देवता—आराध्य भगवान भी कोई एक नही है। उनकी जाति एक है, उनका देश एक है, उनका नगर एक हैं, उनका वश एक है, लेकिन उनका देवता एक नही है।

इन सभी कोठरियो में विभिन्न प्रकार के देवताओ की मूर्तियाँ हैं और चारो तरफ से आये हुए यात्री अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार देवता की कोठरी में जाकर उसकी पूजा-आराधना करते है।

मैंने अपनी तिपाई राया पेड के नीचे लगायी और देखा कि पारा २८°४ पर है और थर्मामीटर दोपहर को भी ७२० बता रहा था। पहला यंत्र पर्वत की उसी ऊँचाई का परिचय दे रहा था, जो आबू के गणेश मन्दिर की थी। उदयपुर की घाटी की ऊँचाई भी वही थी।

मन्दिर मे कुछ ऐसी वाते भी थी जो न होनी चाहिये थी, जैसे जहाजी घटे और उनको बजाने वाले लोहे के डडे, अंगरेजी दीपक, देवदूतो और न्यायाधीशो के बेमेल चित्र, फिर भी यदि कोई दर्शक अथवा यात्री वहाँ के शिखर पर से लौटते हुए सतोष अनुभव नही करता तो उसके स्वभाव की यह एक विचित्रता होगी। यह बात जरूर है कि एक इतिहासकार और अन्वेषक के लिए यहाँ पर मिलने वाली सामग्री नही के बराबर है।

मैंने यहाँ पर प्राचीन पाली और दूसरे लेखो को पाने का प्रयत्न किया लेकिन उसमे मुझको सफलता नही मिली। बडी कोशिश के बाद मुझे जो पुराना लेख मिला, वह सम्वत् १३७३ सन् १३१७ ईसवी का था। उसको झल्ला के मरने के बीस वर्ष के बाद का भी कहा जा सकता है। यहाँ के सभी स्थानो पर इमारतो के टूटे-फूटे हिस्सो के ढेर लगे हुये हैं और उन्ही के बीच मे टूटे हुये मन्दिर अतीत काल की स्मृतियाँ दर्शको और यात्रियो के मनोभावो मे जाग्रत करते हैं।

अब इस मन्दिर को छोडकर हम पर्वत के उस भाग में आते हैं, जो बड़ौदा के प्रसिद्ध अनाज के व्यापारी के नाम पर 'प्रेम मोदी' का टूट कहा जाता है। सम्पत्ति की शक्ति का इससे और बडा प्रमाण क्या हो सकता है कि जिसने पचास वर्ष पहले के एक महान प्रतापी सम्प्रतिराज के नाम को फीका कर दिया, जो विक्रम की दूसरी शताब्दी

में हुआ था और जिसकी पवित्रता तथा महानता के स्मारक अजमेर और कुम्भलमेर के मन्दिरों के रूप में आज भी मौजूद हैं और जिसको समस्त जैनी लोग राजग्रह में राजा श्रेणिक के समय से अब तक अनहिलवाड़ा के स्वामियो अर्थात् अधिकारियों को मिलाकर अपना सबसे बड़े बड़ा राजा मानते रहे हैं।

इस प्रकार के तथ्य जिनके द्वारा मुझे प्राप्त हुए हैं, उन आचार्यों और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में मैं पहले लिख चुका हूँ, इसके साथ-साथ यहाँ की परम्पराओ के लिए मैं प्रशसा करूंगा, जो मोदी के नाम के साथ सम्प्रति के नाम को जोडने का काम करती हैं। किसी भी अवस्था मे वह मोदी भी प्रशंसा पाने का अधिकारी है, जिसने टूटे हुए पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया और उनको नयी जिन्दगी देकर उनके पुजारियों के गुज़र-बसर के लिए न केवल अपनी कमाई का धन प्रदान किया; बल्कि उन मन्दिरो की रक्षा के लिए मजबूत परकोटे भी बनवा दिये।

मन्दिर बहुत स्थानो पर बनवाये गये हैं। लेकिन उनकी रक्षा के लिये इस प्रकार के सुरक्षित परकोटे सर्वत्र देखने को नही मिलते। यहाँ पर आदिनाथ और उनके अनुयायी यदि अपने आदमियो की शक्ति पर विश्वास रखते हो तो वे निर्भय होकर रह सकते हैं।

इन शिखरो का विभाजन एक घाटी के द्वारा होता है, जिसमें चट्टान को काट-काटकर विशाल सीढ़ियाँ ऐसे ढंग से बनायी गयी हैं कि जिनके द्वारा सम्पत्तिवान भी यहाँ की चढ़ाई को बिना किसी कठिनाई के पार कर सके। आधे मार्ग पर आदि बुद्ध-नाथ की ऐसी मूर्ति खड़ी है, जिसका कोई स्पष्ट रूप नहीं है। इसके बिल्कुल निकट खोरियामाता का तालाब है, जिसके जल में सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने की शक्ति मानी जाती है। कहा जाता है कि इस महामाया ने तपस्या के इस पवित्र स्थान को भ्रष्ट करने वाले दानवों और राक्षसो तथा सौरो की खोर अथवा हड्डियों को भी निकाल लिया था।

उपरोक्त नाम बुद्ध और जिनेश्वर के अवतारो की एकता का एक अच्छा प्रमाण देता है और मेरे पास जो प्रमाण हैं अर-बुद्ध और आदिनाथ अथवा आदि-देव में कोई अन्तर नही है। मैं जानता हूँ कि अनेक योरप के लोगो ने इस विषय पर कितनी ही उलझने पैदा कर ली हैं। वे दूर हो सकती हैं, यदि वे इन पर्वतो की यात्रा करें और इस प्रकार के किसी जलाशय के तट पर बैठकर यहाँ के आचार्यों को समझने की चेष्टा करे।

इसके बाद ही हम मोदी के द्वारा सफेद सगमरमर के बने हुए उस मन्दिर में पहुँचे, जो यहाँ पर आमतौर से रत्नघोर कहा जाता है। इसमे आदिनाथ की पाँच मूर्तियाँ हैं, वे सगमरमर की बनी हुई हैं। कहा जाता है कि ये पाँचो मूर्तियाँ पाँच

पाण्डवो भाइयो की बनवाई हुई हैं। प्रत्येक भाई ने अपनी एक मूर्ति बनवाकर आदि जिनेश्वर को अर्पित की थी। एक छठी मूर्ति भी है जो नीचे है। कहा जाता है कि माता कुंती ने उसको बनवाया था, उस समय जब वे उनके साथ बनवास मे आयीं थी। द्वार के पास ही पञ्चपाण्डव-निवास बना हुआ है। सभी यात्री वहाँ पहुँचकर उसको प्रणाम करते हैं और अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। इसके कुछ आगे एक जलाशय है, जो जिञ्जू कुण्ड कहलाता है।

परकोटे मे बने हुए एक दरवाजे से होकर हम मोटी टूक से शिवा सोमजी के टूक पर गये। वह अहमदाबाद का एक सम्पत्तिशाली नागरिक था। वह दानशील था, इसलिये उसका नाम उस प्रतिमा के नाम के साथ जोड़ दिया गया; जिसमे मन्दिर का जीर्णोद्धार उसने करवाया था।

यह मन्दिर बहुत पुराना था। मूर्ति का नाम चोमुखी आदिनाथ है। वह मुख्य मन्दिर की ग्यारह फीट ऊँची मूर्ति से छोटी नही है। कहा जाता है कि इसके एक-एक पत्थर को मारवाड की पूर्वी सीमा के मकराणा की खान से यहाँ तक लाने मे आठ हजार पौण्ड खर्च किये गये थे। लेकिन उन पत्थरो को लाने के लिये इतनी दूर जाने की जरूरत नही थी, इसलिये कि इससे भी अच्छा सगमरमर आबू और अरावली पहाड मे काफी पाया जाता है।

शत्रुञ्जय माहात्म्य मे एक स्थान पर लिखा हुआ है—'सवत् १६७५ सन् १६-१९ सुल्तान नसरुद्दीन जहाँगीर सवाई विजय राज्ये और शाहज़ादा सुल्तान खुसरु व खुर्रम के समय मे शनिवार बैसाख सुदी १३ (२८ वैसाख) देवराज और उनके परिवार ने (जिसके सोमजी और उसकी पत्नी राजुलदेवी थी), चतुर्मुख आदिनाथ का मन्दिर बनवाया।'

इसके अतिरिक्त आचार्यों की एक विस्तृत सूची है, मैंने उसको छोड़ दिया है। उसी सूची मे जिनमाणिक्य सूरि का नाम आता है। जिसके लिये कहा जाता है कि उसने अपने धर्म के लिए मिले प्रथम बरदान के रूप मे बादशाह अकबर से यह फरमान पाया था कि जहाँ कही जैन धर्म का प्रचार है, वहाँ पर पशु-बध नही किया जायगा। अकबर बादशाह का साम्राज्य उसकी इसी उदारता के कारण विशाल हो गया था। उसके साम्राज्य मे विभिन्न धर्मों के मानने वाले रहते थे, अकबर बादशाह सभी का आदर करता था। इसका नतीजा यह हुआ था कि उस बादशाह को जगद्गुरु की पदवी दी गयी थी। बैष्णव लोग तो उसको कन्हैया का अवतार मानते थे। उसके बेटे जहाँगीर ने भी अपने पिता के आदर्शों का अनुकरण किया था। लोगो का कहना है कि वह एक बार इस्लाम के सिद्धान्तो से बहक कर हिन्दुओ के मन्दिरो मे पहुँचा था। उसने किसी समय ओसवाल साधुओ के सम्बन्ध मे एक बे-सिर-पैर का आदेश जारी

किया था। उस समय आचार्य जिनचन्द्र सूरि ने बुद्धिमानी से काम लेकर उसको टाला था।

शिवा सोमजी की टूट से चलकर मैं आदिनाथ की माता मरुदेवी के मन्दिर में पहुँचा। वह मन्दिर छोटा था, मैंने देवी की मूर्ति के दर्शन किये। उस माता के दर्शनों के लिए सभी यात्री उसके मन्दिर में जाते हैं और मस्तक झुकाकर उसके प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं। इसी प्रकार वहाँ पर एक दूसरा छोटा-सा मन्दिर सन्तनाथ का है। चौबीस जैन तीर्थङ्करों में से यही एक ऐसा है, जिसकी मूर्ति सिद्धाचल पर भी है और जो प्रथम तीर्थङ्कर के नाम से प्रसिद्ध है।

इस नाम में पर्वत के कितने ही पर्यायवाची नामो मे से इसके प्रयोग और प्रथम जैन तीर्थङ्कर के दूसरे नामों में से इस नाम सिद्ध के जोड़ में हमें शैवो के शाश्वत प्रयोग की एक समता दिखायी देती है। शिव का दूसरा नाम सिद्धनाथ है, उसका अर्थ होता है, सब सिद्धो के स्वामी। आदिनाथ और आदीश्वर एक ही हैं और आदिनाथ का प्रसिद्ध नाम वृषभदेव नन्दिकेश्वर का पर्यायवाची है। उसका अर्थ होता है, वृषभ का स्वामी।

इसके अनुसार आदिनाथ अथवा वृषभदेव की मूर्ति उसके नीचे अंकित वृषभ अथवा बैल से जानी जाती है। ईश्वर अथवा शिव को नन्दिक से उसी प्रकार पृथक नही किया जा सकता जैसे मूविस से ओसिरिस को। कदाचित् इनका माहात्म्य एक-सा है और एक बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि ये भारतीय सीरिया पालीताना में और मध्य सागर के सीरिया पैलेस्टाइन (फिलिस्तीन) में, सिन्धु और गंगा के किनारे पर अथवा उसी प्रकार नील नदी के तट पर पाये जाते हैं। बाल अथवा सौरों या सूर्य देवता (जिसके नाम और आराधना के कारण दोनो देशों का नाम सीरिया पड़ा) के उपासकों के द्वारा सच्ची भक्ति के साथ वृषभ अथवा लिंग के रूप में पूजे जाते हैं। और उनके सम्बन्ध में किसी समय बौद्धो और जैनियों का मत एक था।

इस पर्वत की तीनों टूको का वर्णन करने के पश्चात् हमको आदिनाथ के मन्दिर से नीचे आना चाहिये। प्रत्येक मन्दिर के अलग-अलग वर्णन के लिये और उसकी ऐतिहासिक गाथा को सामने लाने के लिये अधिक अवकाश की आवश्यकता है। उसको पूरा करने के लिए मैं अपने आपको इस थोडे दिनो की यात्रा में काफी नही समझता। इसलिये इस आवश्यकता को पूरा न कर सकने की दशा मे मैं दूसरे अन्वेषको से आशा करता हूँ कि वे अपने शोध के द्वारा इसे पूरा करेगे।

मैं यहाँ पर अपनी असमर्थता को स्वीकार करते हुये इतना ही कहना चाहता हूँ कि मैंने जो कुछ किया है, उस पर वे लोग जो यहाँ का ऐतिहासिक अन्वेषण करेंगे— विचार करे और देखे कि यहाँ के धर्मावलम्बियो के सम्बन्ध मे अधिक खोज करने पर किस प्रकार की जानकारी प्राप्त हो सकती है।

यहाँ के ठीक उत्तर मे बनी हुई एक खिड़की होकर हम उतरकर बाहर आये और मुसलमानों के हैंगा पीर की दरगाह पर पहुँच गये। मैंने यह जानने की कोशिश की कि यह पीर कौन था और वह किस समय हुआ था, इन बातो की खोज के लिये मैंने जितनी भी कोशिश की, वह सब बेकार गयी और मुझे सफलता नही मिली। जो कुछ मालूम हुआ, उसमे धार्मिक अंधविश्वास के सिवा और कुछ नही है।

मुझे बताया गया कि दिल्ली के बादशाह का भतीजा गोरों बेलम पालीताना में रहता था और उसने अपने जीवनकाल में भीतर और बाहर दोनो मसजिदे और ईद-गाहे बनवायी थी। इस जनश्रुति के आधार पर हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि पीर किसी दीन के दीवाने अर्थात् धर्म के अधे विजयी के वंश का था। लोगो का कहना है कि उस हेंगा ने अपनी तलवार आदिनाथ को मूर्ति पर चलाई, उसके परिणाम स्वरूप आक्रमणकारी को इतनी गहरी चोट आयी कि उसकी स्वयं मृत्यु हो गयी। कहा जाता है कि मरने के बाद वह भूत हो गया और पुजारियो के पूजा-कार्य मे वह विघ्न पैदा करने लगा। उस दशा मे एक बड़ी सभा की गयी और हेंगा के प्रेत को बुलाकर पूछा गया कि इस भूत के आत्मा को किस प्रकार शान्ति मिल सकती है? उस प्रेत ने इस प्रश्न का जवाब देते हुए कहा कि मेरी हड्डियाँ इस पर्वत की चोटी पर रखी जावें। कहा जाता है कि भूतो को बस मे करने वाला हेगा पीर अब भी जीवित है और वह वहाँ पर लेटा हुआ है।

हिन्दुओ को इस प्रकार की उड़ती हुई बातों पर बहुत आनन्द मालूम होता है। ऐसा मालूम होता है कि उनके धर्म को आघात पहुँचाने वाले का जब वे प्रतिरोध नहीं कर सकते तो इस प्रकार की कथाओं की रचना करके वे शान्ति अनुभव करते हैं। किसी भी अवस्था में हालत यह है कि इस समय जो दरवेश अपने पीरगाह की निग-रानी करता है, उसने यहाँ के नियमों को पूरे तौर पालन करने का निश्चय कर लिया है और भली प्रकार वह उस स्थान के नियमों का पालन करता है। उसने अनेक दूसरे नियंत्रणो के साथ मासाहार त्याग दिया है।

हमारे नीचे उतरने के साथ ही बादलों ने हलकी बूंदे गिराना आरम्भ कर दिया और कुछ देर के पश्चात् वे बादल तितर-बितर हो गये। कुछ देर तक पानी की बूंदे गिरने के कारण हवा ठंढी चलने लगी। पहाड पर बैरोमीटर २८° पर था और थर्मामीटर पहाड़ से नीचे उतरने पर भी ७२° पर बना रहा था।

पश्चिमी ढाल से होकर नीचे उतरने पर थोड़ी दूर पर हमको एक हलवाई का चबूतरा मिला। कहा जाता है कि जब काठी लोगो ने आदिनाथ के पुजारियों को लूटा था तो उस हलवाई ने पवित्र पर्वत की रक्षा के लिये अपना जीवन दे दिया था।

कुछ और आगे चलने पर कृष्ण की माँ देवकी के छै बेटो के स्थान पर आ

गये, जिनको हिन्दुस्तान हेरोड (१) कंस ने मार डाला था और कृष्ण द्वारका (२) भाग गये थे, जिससे उनकी जान बच गयी थी। यह मन्दिर छै कोनो का बना हुआ है। उसमें चबूतरा और स्तम्भ हैं। मारे गये बच्चो की मूर्तियाँ काले पत्थरो की हैं।

यहाँ पर हमको एक वृद्ध गाने वाला विदूषक मिला। वह लाल कपडे की टोपी पहने था। उसमे नकली मोती लगे हुए थे उसके कपड़े रेशमी थे। उसके पास इकतारा और मजीरे थे और उसके पैरों मे घुँघरू बँधे थे। मंजीरो की ताल पर वह अपने पैरो के घुँघरू बजाता और भाटो के रचे हुए अपने प्रदेश के गाने गाता था। अपने इन गानो के साथ, बीच-बीच में आदिनाथ की प्रशसा करता जाता था। वह देखने में बहुत प्रसन्न मालूम होता था। अपनी इच्छानुसार वह घाटी की तलहटी तक मेरे साथ-साथ गया। आगे चलकर हम लोग अलग-अलग हो गये।

अपने खेमें पहुँचने के पहले और पालीताना देखने के पूर्व हम इस पर्वत के सम्बन्ध मे आवश्यक विवरण अपने पाठको को देना चाहते हैं।

आदिनाथ के नाम पर जो सम्पत्ति है, उसका प्रबन्ध अहमदाबाद, बड़ौदा, पट्टण और सूरत आदि प्रसिद्ध नगरों के अधिक भक्त लोगो की समिति करती है। वह समिति सभी प्रकार से उस रियासत की देख भाल करती है और जिन आदमियो की नियुक्ति की जाती है, वे सब समिति के अधिकारियो के द्वारा रखे जाते हैं। वहाँ के गुमाश्ते भक्तो के द्वारा आयी हुई भेंटो को स्वीकार करते हैं और उस समिति के सामने ले जाते हैं। उनको और भी बहुत से काम करने पडते हैं, जैसे मरम्मत का कार्य, धूप; केसर आदि पूजा की सामग्री, कबूतरों और पशुओ की निगरानी, गायो की सेवा और उनके खाने-पीने का प्रबन्ध और आमदनी तथा खर्च का हिसाब। इस प्रकार सभी कार्य उनको देखने और करने पड़ते हैं।

समिति का वर्तमान प्रबन्धक एक मेवाड़ का निवासी है, कहा जाता है कि वहाँ का खजाना सोने और जवाहिरात से भरा हुआ है। खर्च की अपेक्षा वहाँ की आमदनी अधिक है। यदि विदेशियो के द्वारा उस खजाने की लूट का भय न हो अथवा

---

(१) हेरोड, गोलिली का बादशाह था। उसका समय ईसा से ४० वर्ष पहले से ४ ईसवी तक माना जाता है। वह निरपराधियो की हत्या कराने के लिए बदनाम था।

(२) इस घटना को लिखने के समय मूल ग्रन्थकार टॉड साहब ने भूल की है, जिन पुस्तको के आधार पर उन्होंने यह विवरण दिया है, उसका यह तो अनुवाद करने में अथवा इस विवरण को लिखते समय भूल कर गये हैं। जन्म के समय कृष्ण को गोकुल पहुँचाया गया था और द्वारका वे उस समय गये थे, जब कंस की मृत्यु हो गयी थी और जरासंध का आक्रमण हुआ था। [अनुवादक]

लूट न की जाय तो उसकी सम्पत्ति के कम होने का और कोई कारण नही है। इस-लिए कि यात्रियो और भक्तो की सख्या बहुत अधिक है और उनकी चढौनी तथा भेंटों से अपरिमित सम्पत्ति आती है। कितना भी खर्च करने पर उसके कम होने का कोई कारण नही है, यदि ऊपर लिखा हुआ कारण न पैदा हो।

एक समय था, जब काठी जाति के लुटेरे और आक्रमणकारी लोग बौद्ध और जैन लोगो को पैलेस्टाइन की यात्रा पर जाने वालों को रोका करते थे। लेकिन इधर लगभग पचास वर्षों से वह सब खत्म हो गया है। लेकिन पहले की हालत खराब थी। जो लोग वहाँ की यात्रा पर जाते थे, उनको कैद कर लिया जाता था और माँगी हुई रकम अदा करने पर उनको छोडा जाता था। लेकिन वह समय अब बिल्कुल बदल गया है। आशा यह की जाती है कि भविष्य मे प्राचीन सौरो का छोटा-सा राज्य कायदे से शासन मे रखा गया तो निश्चय ही इसके उपजाऊ मैदान सीरीस (१) के आशीर्वाद से फिर सम्पन्न दिखायी देंगे और जो लोग आदिनाथ की यात्रा करने के लिए आते हैं, ऐसे भक्तों को कष्ट देने वाले लुटेरे कभी दिखायी न देंगे।

मेलो के दिनो मे भारत के प्रत्येक स्थान से अगणित लोग इस प्रायद्वीप की यात्रा पर आते हैं। इन यात्रियो के झुण्ड अथवा गिरोह को संघ कहा जाता है। एक-एक सघ में बीस-बीस हजार और कभी-कभी इससे भी अधिक यात्री आते हैं। प्रायः धनिक व्यापारी अपने क्षेत्र के यात्रियो का सघ पति होता हैं और गरीब भक्त यात्रियो के खर्चों की भी व्यवस्था करता है।

इन मेलो के दिनो मे आदिनाथ के दर्शनो के लिए बेसुमार यात्री आते हैं और सभी अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुसार आदिनाथ पर भेट चढ़ाते हैं। यात्रियो का विश्वास होता है अथवा विश्वास कराया जाता है कि इस भेट के बदले उन यात्रियो को आशीर्वाद और वरदान मिलता है, जिसकी जैसी भेट होती है, उसको वैसा बरदान मिलता है। इसे सभी समझते हैं और जो नही समझते, उनको समझाया जाता है। ऐसा कोई भी यात्री नहीं होता, जो भेंट नहीं देता। अपनी सामर्थ्य के अनुसार, सभी को चढौनी अथवा भेंट देनी पड़ती है और वहाँ के पण्डित, पुजारी तथा साधु, महन्त माँगकर नही, लडकर भेंटें ले लेते हैं।

इस चढौनी और भेट का विवरण बहुत महत्वपूर्ण है उस मन्दिर की प्रतिमा पर चाँदी और सोने के वजनी आभूषण चढाये जाते हैं और इस प्रकार अपनी भेंट में कीमती आभूषण देने अथवा चढाने वाले अपना गौरव अनुभव करते हैं। इन भेटो मे सोने के कीमती हार, कंठे, पाँच-पाँच और सात-सात लरो की जंजीरे साधारण बात

---

(१) ग्रीक धार्मिक ग्रन्थो के अनुसार, बनस्पति और अनाज का देवता। ऑलि-म्पस पहाड पर उसका निवास-स्थान माना गया है।

है। बहुमूल्य हीरे-जवाहिरात और पन्नो (नीलम) से जटित सोने के मुकुट प्रतिमा पर चढ़ाये जाते हैं, जिनकी कीमतें प्रायः ३५०० पाउन्ड से भी बढ़ जाती हैं। इस प्रकार कीमतें भेटे देने वाले धनिक भक्त अधिक संख्या में आते है। यदि यह कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी कि भक्त यात्रियो मे धनिकों की संख्या अधिक होती है।

आदिनाथ के मस्तक पर हमेशा एक मुकुट रहा करता है, जिसकी कीमत का अनुमान नही किया जा सकता है। जिस समय मैंने आदिनाथ के दर्शन किये थे, उस समय उनके मस्तक पर गंगा-जमुनी सोने-चाँदी का गोल मुकुट था।

पाश्चात्य देशो के यात्री जब कभी इन स्थानों पर आते हैं तो यहाँ के आचार्य और जैन मत के विद्वान उनके सामने अपने धर्म और सम्प्रदाय की मोटी-मोटी पुस्तके रखकर अपने सिद्धान्तो की प्रशंसा करते हैं। यहाँ पर जो उत्सव होते हैं, उनमें कातिक की पचमी का उत्सव सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। उस उत्सव का नाम है, ज्ञान पंचमी अर्थात् ज्ञान का देने वाला उत्सव। उस दिन सम्पूर्ण हिन्दुस्तान मे जैनियों के पुस्तक भण्डारो से पुस्तके निकाल कर धूप में रखी जाती हैं, उनको हवा दी जाती है और उनकी सफाई की जाती है। इसके बाद उन पुस्तको की पूजा की जाती है।

इससे होता यह है कि पुस्तके खराब होने से बहुत-कुछ बच जाती हैं। सीड़ न लगने और कीड़ो के खा जाने से पुस्तको के पन्नों की बहुत-कुछ रक्षा होती है। पूजा के बाद वे सभी पुस्तके ग्रन्थ-भन्डार मे रख दी जाती हैं। इन ग्रन्थो के सम्मान का एक बड़ा प्रमाण यह है कि उनका भन्डार आदिनाथ की मूर्ति के पास ही रखा गया है।

पालीताना—शत्रुञ्जय के नीचे कुछ मीलो के घेरे की भूमि में जो लोग रहते हैं, वे सम्पूर्ण पृथ्वी को पवित्र मानते हैं। उनके अनुसार, पल्लि का निवास इस पर्वत से बिल्कुल मिला हुआ है। मैंने इसके जानने की बहुत कोशिश की कि इस नाम का रहस्य क्या है? मेरी यह पुरानी आशा थी कि जिस भूमि पर पल्लि ने अपने धर्म का प्रचार और प्रसार किया था, वहाँ पर मुझको इन्डोसीथियिया की गलाती अथवा केट्टी नामक सदा भ्रमण करने वाली जाति के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्राप्त होगी, लेकिन पुरातत्व के पाठक यहाँ की परिस्थितियों का अनुमान लगावें, जब कि मुझे कुछ प्राप्त होने की अपेक्षा जो मेरी कल्पनायें थी, वे भी नष्ट हो गयी। मैंने पालीताना, शत्रुञ्जय, आदिनाथ और उनके अनुयायी शिष्यो के सम्बन्ध में जानने के लिए मेरे अन्तरतर में जो उत्साह था, वह व्यर्थ हो गया। इससे मुझे बड़ी निराशा हुई।

मिस्र के फिलातीनो अथवा प्राचीन इटली (१) निवासी पेलों के साथ किसी प्रकार की समता करने के बजाय अथवा कुछ जानकारी कराने के स्थान पर मुझको

(१) एट्रूरिया इटली का एक जिला है, जो आजकल टसकनी के नाम से प्रसिद्ध है। रोम के उत्थान के दिनो से पहले यहाँ पर ऐसी सभ्य जातियाँ रहा करती थीं,

पादलिप्त नाम के एक महातान्त्रिक का कुछ परिचय दिया गया। मुझे बताया गया कि वह अपने निवास-स्थान भृगुकच्छ (जिसको ग्रीक लोग बैरीगाजा कहते थे और जो आजकल भड़ौच कहलाता है) से आदिनाथ पर्वत तक आकाश के रास्ते से यात्रा किया करता था।

इसके सम्बन्ध में लोगो का यह भी कहना है कि वह उड़ने के समय अपने पैरों के तलुओ मे किसी खास चीज का लेप किया करता था, इसीलिए उसका नाम पदलिप्त पडा था। इस प्रकार के कथानक कहाँ तक सही हैं और उन पर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है, इस पर मैं कुछ अधिक लिखना नहीं चाहता। अपने सम्बन्ध में मैं स्पष्ट बताना चाहता हूँ कि मैं स्वयं विश्वास नही करता।

यहाँ पर सक्षेप में मैं इसके नाम के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक समझता हूँ। यहाँ के विद्वान आचार्यों ने इसके नाम की जो व्याख्या की है, वह व्याख्या मुझको छोटे बच्चों को बातों की तरह भोली-भाली मालूम पड़ती है। ससार की बातो से अनभिज्ञ लोग उनको सुनकर विश्वास कर सकते हैं, लेकिन सभी लोग विश्वास न करेंगे।

उसके नाम के सम्बन्ध में जो मुझे बताया गया और उसकी आकाशी यात्रा का वर्णन किया गया, उसको सुनकर मेरे ऊपर कुछ अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। मैं तो साफ कहना चाहता हूँ कि बूढा पादलिप्त उसके पादलेप भले ही चमत्कार पूर्ण रहे हो, लेकिन उनका कोई सम्बन्ध पल्ली लोगो के साथ उस तरह का समझ मे नहीं आता। पल्लियो ने समस्त पश्चिमी भारत मे अपनी कला के निशान छोडे हैं।

मेरा तो कुछ यह भी विश्वास है कि मध्य एशिया से एक प्रसिद्ध जाति के आने का यह परिणाम सामने आया है। वह कौम अपने साथ धर्म के कुछ विशेष सिद्धान्तो को लेकर यहाँ आयी थी और उन्हीं का यहाँ पर बौद्ध तथा जैन धर्मों के रूप में विकास और उत्थान हुआ। मेरे ऐसा सोचने का एक मजबूत कारण और आधार है।

पालीताना मे प्राचीन काल के खण्डहरो को छोडकर और कुछ नही मिलता। वहाँ पर जो मन्दिर और देवस्थान देखने को मिलते हैं, वे सभी मुसलमानो के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं। इन इमारतों को देखने से पता चलता है कि वे कच्चे पत्थर की

जिनकी सभ्यता के प्रमाण आज भी पाये जाते हैं। उनकी सभ्यता का प्रभाव निश्चित रूप से रोम की सभ्यता पर पड़ा था। सभ्यता का प्रकाश संसार के सभी देशो मे एक के बाद दूसरे मे फैला है। रोम के लोगो में जो वहाँ की सभ्यता का असर हुआ, उसके प्रमाण में अनेक प्रकार की कला और सगतराशी के द्वारा गुम्बदें और फूलदानों पर चित्रकारी आज भी देखने को मिलती है।

बनी हुई हैं। उनके ऊपर की पपड़ी अपने आप उखड़ जाती है। इसके फलस्वरूप यहाँ के शिलालेख नष्ट हो गये हैं। ये शिलालेख भूरे रंग के पाये जाते हैं।

इस नगर का विस्तार पहले बहुत अधिक था। गोरी वेलम की बनवायी हुई मस्जिद पहले नगर के भीतर थी। लेकिन अब नगर के बाहर है मैंने शिला-लेखो के सम्बन्ध में यहाँ पर जो खोज की, वह सब बेकार गयी। इतिहास मे हमें कही पर भी गोरी वश के सम्बन्ध में पढने को नही मिलता। जिससे मालूम हो सके कि यहाँ पर कभी उस वंश का राज्य था अथवा उस वश के लोग दिल्ली राज्य के मातहत बनकर कभी यहाँ रहे हो।

इस मस्जिद और पालीताना में बनी हुई हिन्दू इमारतो के खण्डरो से दोनो जातियो की कलाओ का अनुमान होता है। यहाँ पर मम्बार अथवा मुल्लाँ के चबूतरे के दोनो तरफ जो तोरण बने हुए हैं, उनमे शैव लोगो की कुछ बातो के आसार पाये जाते हैं। शहर के भीतर एक प्राचीन स्मारक पाया जाता है, वह एक बावड़ी अथवा जलाशय है, जो प्राचीन जनश्रुतियो के अनुसार प्रसिद्ध सदयवत्स और सावलिगा के नाम से मशहूर है। उन दोनों में प्रेम था और उनकी प्रणय कथा हिन्दुओ के द्वारा आज भी सुनने को मिलती है। इस प्रकार की कथाओं के सम्बन्ध में अगर हमको कोई शिला-लेख मिल जाता तो उसके आधार पर हम इस बात को मान लेते कि इस बावड़ी के निर्माण का समय निश्चित् रूप से आठारह सौ वर्ष पहले का कोई है।

सदयवत्स तक्षक शलिवाहन का लडका था। उसने हिन्दुस्तान के सबसे बड़े सम्राट विक्रम को पराजित किया था, जिसका सम्वत् आज भी उत्तरी भारत में चलता है। एक दिन था, जब यह सम्वत् सम्पूर्ण हिन्दुतान में प्रचलित था। उसके बाद टाक अथवा तक्षक राजा ने विक्रम पर आक्रमण किया और नर्मदा के दक्षिणी भाग में से उसके शासन का अन्त कर दिया। इसी समय उसने अपना शक सम्वत् प्रचलित किया। उसके आधार पर सीथिक अथवा गेटिक जाति की कुछ बातो का पता चलता है।

यदि हम पुराने कथानक पर विश्वास करें तो हम इसके मानने के लिये मजबूर हो जाते हैं कि इन दोनो राजाओं के युद्ध में आपसी समझौता हुआ था और उस समझौते के अनुसार शालिवाहन भारत के प्रायद्वीप के हिस्से का अधिकारी हो गया। और नर्मदा का समस्त उत्तरी भाग विक्रम के अधिकार में आ गया। अब तक पूर्वी भाग अर्थात् दक्षिणी भारत मे शक सम्वत् का प्रयोग होता है और उत्तरी भारत में विक्रम सम्वत् चलता है। इसके आगे हम बावड़ी के सम्बन्ध में लिखना चाहते हैं।

सावलिगा उन दिनो में अपने रूप और गुणो के कारण चारो तरफ प्रसिद्ध हो रही थी। वह जैन धर्म का पालन करती थी। उसके पिता पद्म को उसके ऊपर गरूर

था। पद्म अपने समय का एक सम्पत्तिशाली व्यापारी था। वह गोदावरी के किनारे शालिवाहन की राजधानी पैठान (१) नामक नगर में रहता था। वहाँ के रेगिस्तानी दक्षिणी भाग में पारकर (२) नामक नगर के निवासी के सम्पत्तिशाली महाजन ने सार्वलिगा के माता-पिता से उसके साथ विवाह की बातचीत की थी और उसके साथ सार्वलिगा की सगाई हुई थी। उसका भावी पति सार्वलिगा को लेने के लिये पैठान में आया था। लेकिन सार्वलिगा उसके साथ जाने के लिये तैयार नहीं थी। उसने शालिवाहन के लडके से अपना प्रेम सम्बन्ध जोडा था। यह सम्बन्ध भीतर-ही-भीतर मजबूत हो चुका था। सार्वलिगा शालिवाहन के लडके को छोडकर वहाँ जाने के लिये तैयार नही थी। वह आत्म-हत्या करके मर जाना अपने लिये अच्छा समझती थी, लेकिन ारकर जाना नही चाहती थी।

शालिवाहन के लड़के के साथ सार्वलिगा का प्रेम अभी तक अछूता और पवित्र था। कालिकादेवी के मन्दिर में एक ही आचार्य के पास दोनो ने शिक्षा पायी थी और दोनो की अनजान अवस्था मे प्रेम का अकुर उगा था, जो धीरे-धीरे अपने-आप पनप रहा था।

एक तरफ प्रेम का पौधा तेजी के साथ सजीव हो रहा था और दूसरी तरफ वियोग का समय समीप आता जाता था। सगाई तो हो ही चुकी थी। गुरु के यहाँ दोनों शिक्षा पा रहे थे और भीतर ही भीतर दोनो मे प्रेम की आग बढ़ती जाती थी। आचार्य की शिक्षा उन दोनो के स्नेह को रोक नही सकी। सार्वलिगा अपनी सगाई की बात जानती थी और उसके प्रेमी से भी यह बत छिपी न थी। सार्वलिगा में इतना साहस नही था कि वह पिता से अपने विवाह का विरोध कर सकें। लेकिन उसने हृदय से अपना पति शालिवाहन के बेटे को चुना था। विवाह के दिन निकट आते हुए जानकर दोनो ने कालिकादेवी के मन्दिर मे शपथ ग्रहण की हम दोनो एक दूसरे के लिये जीवित रहेंगे। दोनो ने अपनी इस प्रतिज्ञा में कालिकादेवी को साक्षी बनाया।

विवाह का समय आ गया। विवाह हो भी गया। यह निश्चय हुआ कि दूसरे दिन प्रातः काल पारकर महाजन अपनी नवविवाहिता पत्नी को लेकर विदा होगा और मरुभूमि के रास्ते मे पडने वाले सभी सौरदेशीय मन्दिरो में दर्शन करता हुआ अपने नगर को जायगा।

---

(१) यह पेरीपल्स का तागारा है। जहाँ से रोम के बाजारों में बिकने के लिये मलमल के कपडे जाया करते थे। मैं पूरे तौर पर इस बात पर विश्वास करता हूँ कि यह नाम टाक नगर अथवा तक्षक नगर का अपभ्रंश है।

(२) मूल कथानक मे परा नगर और रूपसी मेहता के नाम पढ़ने को मिलते हैं। उनके आगे का कोई भी विवरण नही पाया जाता।

सावलिंगा ने किसी प्रकार इस निश्चय का समाचार अपने प्रेमी के पास भेज दिया और अन्तिम मिलन के लिये देवी का मन्दिर निश्चित किया। जहाँ पर उन दोनो ने प्रेम की प्रतिज्ञाये की थी। सावलिंगा का प्रेमी और शालिवाहन का बेटा सदयवत्स उस समाचार को पाने के बाद कालिका देवी के मन्दिर में जाकर छिप गया। समय पर सावलिंगा भी वहाँ पहुँच गयी। लेकिन कालिका देवी को एक नारो का यह पतन सहन नही हुआ। इसलिये कि वह एक दूसरे पुरुष के साथ अपना विवाह कर चुकी थी। अतएव देवी ने राजकुमार सदयवत्स को गहरी नीद मे सुला दिया और समय रहते उसकी नीद न खुली। इसका नतीजा यह हुआ कि उन दोनो प्रेमी और प्रेमिका ने जो निश्चय किया था, वह असफल हो गया। सावलिंगा ने उसको जगाने की सभी चेष्टाये की। लेकिन उसकी नीद नही खुली और बिना आँखे खोले वह बेहोशी के साथ सोता ही रहा। सार्वलिगा के हृदय की निराशा ने उसके मन में घबराहट पैदा कर दी। जब उसका कोई उपाय नही चला तो उसने सोचना आरम्भ किया।

अपने मन मे जो आशा लेकर सार्वलिगा मन्दिर मे आयी थी, वह व्यर्थ हो गयी। दोनो ने मिलकर अपने भविष्य-जीवन के लिये एक योजना बनायी थी, लेकिन उसका रास्ता ही कटता हुआ उसको दिखायी पड़ा, उसे यह भी चिन्ता हुई कि, लोग उसको खोजने के लिये निकलेगे। उसका भय बढने लगा। सभी चेष्टायें उसकी बेकार हो गयी, राजकुमार की नीद नही टूटी। अन्त में घबराकर सार्वलिगा ने खाये हुए पान को अपनी पीक से प्रेमी के हाथ मे कुछ लिखा और निराश होकर वह मन्दिर से लौट पड़ी।

सार्वलिगा के चले जाने के बाद राजकुमार की नीद खुली। उसको होश आया, अपने आस-पास सार्वलिगा को न पाकर वह अत्यधिक चिन्ताकुल हुआ। उसने सार्वलिगा को खोजने और पाने के लिये निश्चय किया। उसने भिखारी का वेष धारण किया, हाथ मे एक कमण्डल लिया। बगल में मृगछाला दाबी और प्रेमिका की तलाश में उसने अपना राजमहल छोड़ दिया।

राजकुमार पालीताना पहुँचा वहाँ पर वह नगर की पुरानी बावड़ी मे हाथ-मुँह धोने के लिये गया। स्नान करने के समय उसने अपने हाथ में लिखा हुआ देखा ; मन्दिर की शपथ को भूलना नही।

इस बात को पढ़ते ही राजकुमार के सारे शरीर मे मानो बिजली दौड़ गयी। उसे स्मरण हुआ कि सार्वलिगा मन्दिर में आयी थी और मैं लेटकर सो गया था। मेरे न जागने पर वह मेरे हाथ में लिखकर चली गयी है। उसके हृदय मे सार्वलिगा के मिलने की आशा फिर से जागृत हो उठी। स्नान करके उसने सूखे कपड़े पहने और मरुभूमि की तरफ वह रवाना हुआ।

इस कथानक को अधूरी हालत मे मैं यही पर छोड़ता हूँ। कारण यह है कि

इसके आगे का भाग मुझसे खो गया है। मैं पूरी घटना अपने पाठकों को नहीं दे सका, इसके लिये मुझे अफसोस है। लेकिन जहाँ तक मैंने इसके सम्बन्ध मे लिखा है, उसके आगे का भाग बावडी के निर्माण और नाम से बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है। उसकी कल्पना की जा सकती है। कल्पनाये सभी सही नही होती अथवा उनके पूरे अंश सही नही हुआ करते, यह ठीक है। लेकिन ऐसे मौको पर यदि कोई घटना अधूरी छूटती है तो शेष भाग कल्पना पर अपने-आप आ जाता है। मैं तो इस बात पर विश्वास करता हूँ कि दो हृदयों के प्रेम की शपथो और प्रतिज्ञाओ के बाद यदि किसी स्मारक के नाम मे दोनो का नाम आता है तो घटना का शेष भाग अपने-आप स्पष्ट हो जाता है। सही बात तो यह है कि उस बावडी के निर्माण की जब तक एक-एक ईंट बाकी रहेगी, दोनो के प्रणय की कहानी कही जायगी। इस स्मारक ने प्रेम की इस घटना की महिमा अमर बना दी है।

यहाँ के किसी शिला लेख को पाने के लिये मैंने बहुत चेष्टा की, लेकिन मुझे सफलता नही मिली। यह बात नही है कि उन दिनो मे यहाँ पर शिला-लेख लिखे न गये हो। लेकिन हुआ यह है कि तुर्कों के आक्रमण के बाद यहाँ पर जो इमारतें—हिन्दुओ और मुसलमानो—दोनो की बनी, उनमे पुरानी इमारतों की अन्य सामग्री के साथ-साथ, शिला लेख के पत्थर भी काम में लाये गये। ऐसा करने वालों ने यह नही सोचा कि इन शिला-लेखों को भी अपने प्रयोग में लाकर अतीतकाल के ऐतिहासिक अन्वेषको के प्रति हम कितना अधिक अन्याय कर रहे हैं!

हिन्दुओ के पुराने ग्रन्थो में जो कथाये पढने को मिलती है, उनमे अधिकांश ऐसी हैं, जिनके साथ एक-न-एक ऐतिहासिक घटना का सम्पर्क पाया जाता है और उनके अभाव मे उन दिनो का इतिहास अधूरा रह जाता है।

वर्तमान पालीताना का इतिहास अधिक विस्तृत नही है। यहाँ का अधिकार गोहिलवंश की एक शाखा के हाथो मे उस समय से चला आ रहा है, जब से यह जाति सौराष्ट्र मे आकर बसी थी और अब तक वहाँ पर उसकी पच्चीस पीढ़ियाँ बीत चुकी हैं।

पिछले साठ-सत्तर वर्षों मे पालीताना का सम्मान बढा है। इसका कारण यह है कि गायकवाड के अधिकारियो के क्रूर अत्याचारों और काठी लोगो के हमलो से अपनी और अपने परिवार की जान बचाने के लिये गोडियाधार के रहने वाले उस प्रदेश को छोड़कर यहाँ चले आये थे।

यहाँ के वर्तमान शासक का नाम कारड भाई है। उनकी अवस्था बावन वर्ष की है और उसने अपने शासनकाल मे अच्छी ख्याति पायी है। उसके इस छोटे-से राज्य में गोडियाधार के लोगो को मिलाकर छोटे और बडे—सब मिलाकर पचत्तर हैं। लेकिन वे कुछ तो उनके वंश की बडी शाखा के प्रधान भावनगर के राव से बैर भाव

के कारण और बहुत कुछ काठी लोगों की लूटमार से भयभीत होकर इधर-उधर हो जाने के कारण प्रायः उजाड़ और निर्जीव हो गये हैं। कुछ लोगों को शर्तों के बन्धनों में आ जाने के कारण सुरक्षित बने रहने के लिये अरब वालों को खुश रखना पड़ता है। जब आक्रमण और लूटमार की आशङ्का कम हो गयी तो उनको अपने इन रक्षकों से ही अधिक भय उत्पन्न हो गया। इसलिये उनकी धमकियों से बचने के लिये अपनी सारी जायदाद उन लोगों ने एक वैश्य के यहाँ गिरवी कर दी और अपने निर्वाह के लिये जायदाद की आमदनी से वार्षिक चलीस हजार लेना मन्जूर कर लिया। उस बनिये ने जायदाद को अपने अधिकार में लेकर अरब वालो की माँग के अनुसार, एक निश्चित रकम देना आरम्भ कर दिया।

अरब वालो को यह रकम देने की प्रणाली कैसे कायम हुई, इसके तथ्य जानने के लिये आवश्यकतानुसार मेरे पास समय नही था। इसलिये यहाँ के एक दिन के मुकाम में मैं अधिक जानकारी प्राप्त नही कर सका। लेकिन जो कुछ मैं समझ सका, वह यह है कि ऋण देने वाला जब कुछ निश्चित वर्षों के लिये जायदाद का ठेका ले लेता है तो वह किसानो की दशा को अच्छा बनाने की चेष्टा करता है। लेकिन इस क्षेत्र की अवस्था कुछ और ही थी। भय और आतक का प्रभाव बहुत दिनो तक चला था और आज तक वहाँ की भीतरी अवस्था अधिक स्थिर नही है, इसलिये किसानो से लेकर अधिकारियो तक अपने भविष्य की सुरक्षा का कोई अधिक और स्थायी रूप से विश्वास नही है। इसलिये वे अपनी परिस्थियो को सुधारने में सफल नही हो पाते।

पहले गोहिल राजाओ की तरफ से यात्री-कर चलता था और उस समय यह कर यात्रा की दूरी के हिसाब से एक रुपये से पाँच रुपये तक प्रत्येक आदमी पर था। लेकिन अब उसमें अन्तर पड़ गया है। मुझे बताया गया है कि वह कर अब साधारण रूप से सब पर एक रुपया कर दिया गया है।

यहाँ पर अगर हम यह मान ले, जैसे कि पहले भी हमें जानने को मिला है कि संघो में धनिक और सम्पत्तिशाली हमेशा से गरीबो की सहायता नही करते थे, बल्कि वे उनका कर भी अदा करते थे। ऐसी दशा में भी इस नगर की आमदनी दस हजार से लेकर बीस हजार तक होना चाहिये और इस परिस्थिति में इस नगर की उन्नति होनी चाहिए।

इन दिनों में आस-पास के ग्रामो मे खेती का काम बहुत कम हो गया है और इसका प्रभाव यह पड़ा है कि पड़ोसी प्रदेशों में खेती लोग कम करने लगे हैं। यहाँ की मिट्टी में कोई खराबी नही है और पता लगाने पर मुझे बताया गया है कि मध्यभारत की तरह यहाँ की भूमि उपजाऊ है। यहाँ की मिट्टी मे चिकनी मिट्टी की अधिकता पायी जाती है और यह मिट्टी 'माल' के नाम से प्रसिद्ध है। इस मिट्टी के कारण ही उस प्रदेश का नाम मालवा पड़ा है।

मैं नही चाहता कि पालीताना से यहाँ के स्मारकों और शिलाओं तथा पालियो के विषय में बिना कुछ कहे विदा हो जाऊँ। इसलिए जो सामग्री मैं प्राप्त कर सकता हूँ, उसके आधार पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

नगर के पश्चिमी भाग मे और कुछ दूसरे स्थानो पर भी पहाड़ी की तलहटी तक उन पत्थरो के बहुत से ऊँचे ढेर मिलते हैं, जो सौराष्ट्र के सौर का परिचय देते हैं। उनको देखकर उत्तरी भारत के यात्री आश्चर्यचकित हो जाते हैं यद्यपि वे यात्री, कभी राजपूताना नही गये और वहाँ के दृश्य नही देखे, जहाँ पर इनको जुभार कहा जाता है। इस प्रकार के पत्थर राजपूताना के उन स्थानों मे अधिक पाये जाते हैं, जहाँ पर वहाँ के बहादुर राजपूतो ने अपने स्वत्व की रक्षा करने में प्राण दिये थे। लेकिन यहाँ पर जो पत्थर गाडे गये हैं, वे कब्रिस्तान के-से मोटे-मोटे हैं।

हिन्दुस्तान में पत्थरो पर ऐतिहासिक घटनाओं और उनके समय का लिखना एक प्राचीन प्रणाली है। उनके द्वारा इतिहास के छोटे-छोटे जो तथ्य पाये जाते हैं, वे बड़े काम के होते हैं। अन्वेषण के लिये जो यात्री भ्रमण करते हैं, उनके सही इतिहास की सामग्री इन पत्थरो से ही मिलती है और उनसे प्राचीन जातियो के रीति रिवाज, रहन-सहन से सम्बन्ध रखने वाली बहुत-सी बातें मिल जाती हैं।

इस प्रकार इन पत्थरो से जो प्राचीन सामग्री प्राप्त होती है, उसके सत्य होने में किसी प्रकार का सन्देह नही रह जाता। यह भी होता है कि लेख न होने पर भी केवल पत्थर अथवा उस प्रकार की कोई दूसरी चीज हो, उससे भी प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यो का आभास होता है। उदाहरण के तौर पर यहाँ से पास ही एक खेरवा ग्राम में मारे गये व्यक्ति की मूर्ति रथ मे बैठी हुई दिखायी गयी है। उससे प्राचीन काल का अनुमान आभास होता है। इसलिये कि रथो का प्रयोग युद्ध मे प्राचीन काल मे ही होता था। अब रथो का प्रयोग नही होता।

जैनियो, उनकी परम्पराओ और उनकी दूसरी बातो के सम्बन्ध में जो कुछ मुझे लिखना है, उसको मैंने गिरिनार के पर्वत की यात्रा के समय तक के लिये रोक लिया है। कुछ कारणो से उसके पहले कुछ लिखना मैंने अनावश्यक और असमय समझा है। मेरे मित्र मेजर माइल्स ने इसके सम्बन्ध मे बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। वे चहते हैं कि मैं उस पर कुछ अधिक लिखूँ, लेकिन मैंने अधिक लिखने की चेष्टा की तो बहुत कुछ उनकी समग्री की छाया आ जायगी। हम दोनो के अन्वेषण के स्रोत एक से हैं। परिणाम एक ही होना अस्वाभाविक नही होगा। इसलिये इन सब बातो को सामने रख कर ही मैं आगे लिखने की चेष्टा करूँगा।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

काठी जाति और पाण्डव बन्धु

गोड़ियाधार का क्षेत्र—दम्मनगर की विशेषता—गुजरात का प्रदेश—काठी राजपूत—उनकी आकृति, शूरता और वीरता—सौराष्ट्र प्रदेश का गौरव—ग्रामीण दृश्य—पूर्वी और पश्चिमी जातियों के रस्मोरिवाज—पाण्डवों का शरण-स्थान—मानचित्र और इस प्रदेश का भूगोल—सूर्य मन्दिर के विवरण।

गोडियाधार—नवम्बर : हमें इस स्थान तक पहुँचने में लगभग सत्रह मील उपजाऊ जमीन का रास्ता पार करना पडा। उपजाऊ हमने इस अर्थ में लिखा है कि यहाँ की मिट्टी खेती की उपज के लिए बहुत अच्छी है। लेकिन मिट्टी के अनुसार यहाँ पर खेती का कार्य अधिक नही होता और मुझे बताया गया है कि यहाँ पर ऐसे गाँवों की संख्या कम है, जहाँ पर लोग खेती का काम करते हैं।

यहाँ के मैदान समतल नही है, वे ऊँचे-नीचे हैं। कहीं-कही पर थोड़ी दूर के बाद ही आगे का रास्ता आँखों से ओझल हो जाता है और कहीं-कहीं पर आँखो का प्रकाश मीलों की दूरी तक काम करता है। ऐसे मैदानो मे शत्रुञ्जय पर्वत और दक्षिण की तरफ की लम्बी श्रेणियाँ भी दिखायी देती हैं।

इस क्षेत्र में वृक्षों की संख्या बहुत कम है। वे गाँवो के भीतर और बाहर दिखायी देते हैं और जो वृक्ष गाँवो के निकट हैं, उनमें नीमो और आमों के पेड़ अधिक हैं। आबादी से दूर जंगलों में बबूल के पेड़ों की संख्या अधिक मिलती है। उनके कारण मार्ग के दृश्य आँखो से ओझल हो जाते हैं।

पिछले पृष्ठों में लिखा गया है कि गोड़ियाधार मे देखने के योग्य कोई विशेष स्थान नहीं है। फिर भी, यह एक प्रमुख स्थान है, जहाँ पर पालीताना के ठाकुर के सम्बन्धी रहा करते हैं।

दम्मनगर, १६ नवम्बर—यह स्थान बारह मील के फासिले पर था। गायकवाड़ का विशेष क्षेत्र होने के कारण यहाँ के कृषकों को सरक्षण-प्राप्त था। यही कारण था कि यहाँ पर खेती का कार्य अच्छा होता था।

यह स्थान पहले गोहिलो के अधिकार में था। लेकिन बाद मे उनके अधिकार से चला गया और अब वह अमरेली का एक हिस्सा है। प्राचीन काल में इसका नाम हिन्दुओं से सम्बन्धित था। लेकिन दक्षिणी शासक दामोजी ने इसका नाम अपने नाम

है। उसकी पुरुषोचित आकृति, साफ-सुथरा चेहरा और आजादी से भरी हुई उसकी चाल-ढाल को देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। मैंने पिछले क्षेत्रो मे जितने किसानो को देखा था, वे सभी चिन्ताओ मे डूबे हुए थे। उनमे और इस किसान मे मैंने बडा अन्तर पाया।

इस सौभाग्यशाली किसान को देखकर मालूम होता था कि वह अपने खेतो का स्वयम् मालिक है और पैदावार का दसवाँ हिस्सा लगान अदा करने मे उसके साथ किसी प्रकार का दबाव नही डालना पडता। उसके जीवन की सभी बाते सही और कायदे की मालूम हो रही थी। यह किसान काठी जाति का था। उसके बैल स्वस्थ और विशाल थे। एक विशेष तरह के कपडे पहने हुए सभी काठी किसानो ने हँसते हुए हमारा अभिवादन किया। हमने जो कुछ पूछा, उसके स्पष्ट उत्तर दिये।

मैंने कुछ देर तक उन लोगों से बाते की। उनके मुख-मण्डल पर निर्भीकता थी। वे सीधे खडे हुए मुझसे बाते करते रहे। उनमे न तो डर था और न किसी प्रकार का अभिमान था। वे स्वाभिमान के साथ खडे हुये मुझसे बात करते रहे। उनके चेहरो पर गम्भीरता थी और प्रसन्नता के भी चिह्न दिखायी दे रहे थे।

काठी राजपूतो का एक वश है। इस वश के लोग शूरवीर होते हैं। वे निर्भीक होते हैं। लेकिन वे दूसरो का आदर करना जानते हैं। काठी लोग अपने हल की पूजा करते है। जब वह अपने हल को उठाता है तो बडी समझदारी के साथ उसका प्रयोग करता है। उसको देखकर मालूम होता है कि वह एक वीर सैनिक की भाँति तलवार लेकर युद्ध क्षेत्र मे जा रहा है। कभी आवश्यकता पडने पर वह अपनी तलवार को हल से बने हुए रास्ते मे कडाई के साथ गाड देता है। उसके ऐसा करने से मालूम होता है कि वह अपनी तलवार को या तो अपने पास रखना चाहता है अथवा अपने खेत मे रखना चाहता है।

सदा से सघर्ष मे रहने के कारण इन काठी राजपूतो की मनोवृत्तियाँ सघर्षमय हो गयी हैं और उनको शान्ति-अशान्ति में कोई अन्तर नही मालूम होता। लेकिन अन्तर है जरूर। उस अन्तर को मेटा नही जा सकता। जिसने दूसरो के लिये अशान्ति उत्पन्न की है, उसको भी अशान्ति ही मिलेगी, वह शान्ति का अधिकारी नही हो सकता।

मैं यह नही सोचता कि इन काठी लोगो की तरह कोई भी व्यक्ति अथवा कौम सघर्ष तथा अशान्ति से डरे, वह डरे बिल्कुल नही। अशान्ति और सघर्ष का डटकर मुकाबिला करे। लेकिन अत्याचार का मुकाबिला करते हुये भी शान्ति की महिमा और उसके वरदान को वह भूल न जाय। यद्यपि यह बात है कि शान्ति की महिमा, अशान्ति से ही बढती है। यदि अशान्ति न हो तो शान्ति का वरदान अभिशाप हो

जाय । यही कारण है कि शान्ति के पुजारी लोग और देश मुर्दा हो जाते हैं और वे सदा उसके अभिशाप का ही भोग करते है ।

मैं काठी राजपूतो के उत्साह, साहस और शौर्य की प्रशंसा करता हूँ । मै इसे आवश्यक समझता हूँ कि उनके इन गुणो को सुरक्षित रखते हुए उन पर नियन्त्रण रखा जाय, जिससे वे अपने इन गुणो का दुरुपयोग न कर सके । इनके इन गुणो का महत्व बहुत अधिक है । अपने इन गुणो के कारण ही ये लोग सिकन्दर के समय से लेकर अब तक अपनी मानसिक स्वतंत्रता की रक्षा करते चले आ रहे हैं ।

दिन के तीसरे पहर यहाँ का सूबेदार गोविन्दराव मुझसे मिलने आया । कुछ समय तक बाते करने के बाद हम नगर घूमने के लिये रवाना हुए और उसके बाद हम सूबेदार के मकान तक गये । अमरेली का प्रमुख बाजार काफी लम्बा-चौड़ा है और वहाँ पर मजदूर श्रेणी के लोग अधिक सख्या में रहते हैं । उस बाजार के बीच मे एक चौक है, उस स्थान से निकलकर कई एक गलियाँ जाती हैं । उससे भीतरी भाग के उत्तर-पश्चिम कोने पर एक शस्त्रागार है । वह अधिक बडा नही है, लेकिन मजबूत बहुत है । यह शास्त्रागार दामोजी के समय मे बनवाया गया था । उसके सामने एक चौक है और वह मजबूत परकोटे से घिरा हुआ है । उसमे खपरैल की छावनी के नीचे गायकवाडका तोपखाना रखा है । हम जैसे ही सूबेदार के निवास-स्थान मे पहुँचे, उसी समय पाँच तोपो की सलामी दी गयी । मै समझता हूँ कि यहाँ आकर जब कोई योरप का निवासी सौराष्ट्र के सूबेदार के निवास-स्थान मे प्रवेश करेगा तो निश्चित रूप में आश्चर्यन्वित होगा और विशेषकर उस अवस्था मे जब वह नया-नया अपने देश से यहाँ पर आया हो ।

हम लोग एक विशाल दीवानखाने मे गये । वह पचास फीट लम्बा बीस फीट चौडा और इससे कुछ अधिक ऊँचा था । उसके दोनो तरफ छै-छै खम्भे थे, वे मेहराबों के साथ जुडे हुए थे । छत पर आकर्षक कोटनिस का निर्माण हो रहा था । वहाँ पर चमकते हुए काँच के चार झाड़ लटक रहे थे । बीच-बीच मे गोल दीपको की हाडियाँ पक्तियो के रूप मे लगी थी ।

इस विस्तृत हाल के चारो तरफ बीस फीट चौडा एक बरामदा था, उसकी रङ्गीन लकडी की बनी हुई ढालू छत मे दीपकों की पंक्तियाँ थी । दीवानखाने के ऊपरी भाग मे हम लोगो के बैठने के लिये कुर्सियाँ लगी हुई थी । सामने की तरफ एक फव्वारा चल रहा था । वहाँ के एक विशाल आँगन मे आतिशवाजी जलायी जा रही थी, उसे भी मैंने देखा ।

यह एक जङ्गली क्षेत्र था । आश्चर्य मे डालने वाले उसके वैभव को देखकर किसे विस्मय न होगा । अभी कुछ वर्ष पहले की बात है, जब यहाँ पर लुटेरे और आक्रमणकारियो के घोडों की टापो के सिवा और कुछ सुनायी नही देता था । हम लोग स्वागत

के स्थान पर बैठ गये थे और मेजमान तथा उसके आदमियो के साथ कुछ समय तक सभी प्रकार की बाते करते रहे। मेजमान की सभ्यता और मिलनसरिता देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। इसी मौके पर इत्र लगाकर गुलाब-जल छिडका गया। उसके बाद ही खुशबूदार पान के बीडे सामने लाये गये। उनका खाना और न खाना हम लोगो पर निर्भर था।

देवला, २३ नवम्बर; इस स्थान का फासिला हमने बीस मील का समझा था। लेकिन वह पूरे सत्ताईस मील का निकला, जिससे हम लोगो मे सभी को काफी थकान आ गयी। अपने मुकाम पर पहुँचने के समय हमने देखा कि सूर्य आकाश के बीचो-बीच है। हमे उस समय और अधिक आश्चर्य मालूम हुआ जब हमे बताया गया कि तुलसीधाम—जिसके कारण गिरनार का सीधा रास्ता छोड़कर हम इस रास्ते से आये थे—यहाँ से अभी छै कोस अर्थात् बारह मील के बजाय बीस मील के फासिले पर है। यह रास्ता भी आसान नही था, वह ऊँचा नीचा, टेढा-मेढा और पहाडी था। इस लिये मैंने इस रास्ते की दो मजिले बनाने का निश्चय किया। ऐसा करने मे परेशानी यह थी कि समय बहुत कम था और जो शेष रह गया था, वह भी निकला जा रहा था। वे लोग मुझसे बहुत दूरी पर थे, जो मेरा रास्ता देख रहे थे और करीब आ जाने का अनुमान लगा रहे थे, जब कि हम लोग अभी तक काठियावाड के जङ्गलो का ही रास्ता पार करने मे लगे थे।

आज सबेरे दस बजे तक की हवा बडी अच्छी रही। वह खुश करने वाली और ताजगी पैदा करने वाली थी। लेकिन जब हम लोग अपने खेमे तक पहुँचे, उस समय थर्मामीटर ६०° तक पहुँच गया। इस क्षेत्र मे खेती का काम बहुत अच्छा होता है। यहाँ पर सिंचाई का काम चमडे के चड़स के द्वारा होता है, जिसको चलाने के लिये एक ही आदमी काफी समझा जाता है। इस सिंचाई के लिये जो चडस काम मे लाये जाते हैं, उनके तैयार करने का काम भी यहाँ अधिकता से और खूबसूरती के साथ होता है। यह जरूर है कि समस्त भारत मे सिंचाई का काम कुछ इसी प्रकार के चड़सो के द्वारा होता है। लेकिन दूसरे स्थानो पर जो चडसे मैंने देखी हैं, वे कुछ दूसरी तरह के बने होते हैं।

जहाँ पर पानी नजदीक होता है, वहाँ पर धानो और पेड-पौधो को सीचने के लिये भी इसी का प्रयोग किया जाता है। कोटा के प्रसिद्ध कृषक जालिमसिंह ने—जो ऐसे मौको पर लाभ उठाने मे कभी नही भूलता—इसकी नकल कर डाली है।

अमरेली से चलकर आठ मील दूर हमने शत्रुजय नदी की सबसे बडी शाखा को पार किया। उसका निकास गिरनार की दक्षिणी पहाडियो में है। वह नदी यहाँ की उन सभी नदियो से बडी है, जो इस प्रायद्वीप मे मेरी देखी हुई है। वहाँ पर गाँव तो बहुत थे, लेकिन उन सभी में आबादी कम थी। यहाँ के गाँवो में और गुजरात के

गाँवो में—जहाँ व्यापार और खेती का काम साथ-साथ चलता है—बहुत बडा अन्तर है। यहाँ पर अमरेली की तरह के वड़े ग्रामो को छोड़कर कही पर भी व्यापार का नाम नही है।

आज का रास्ता दक्षिण की तरफ था। गिरनार दाहिने और शत्रुञ्जय बाएँ ओर लगभग बरावर की दूरी पर थे उनकी नीची पहाडियाँ इधर-उधर फैली हुई थी। प्रातः काल के प्रकाश मे चमकती हुई ये पहाडियाँ वडी सुन्दर मालूम पडती हैं। उनके हरे-भरे दृश्य वडे सुहावने लगते थे और संसार की अपवित्रता से दूर पहाडी वातावरण एक नवीन जीवन की सृष्टि करता था।

सबसे पहले एक काला स्तम्भ गिरनार पर्वत के ऊपर दिखायी पड़ा। इसके वाद वह धीरे-धीरे आदिनाथ के निवास शत्रुञ्जय की तरफ चलता हुआ दिखायी पडा। उसके चलने से एक मोटी, साफ चलती हुई रेखा-सी वन जाती थी, जो नेत्रो की दृष्टि के साथ मिली-जुली चलती मालूम होती थी। इसके कुछ समय के वाद ही मैंने देखा कि दोनों पर्वतो के वीच का स्थान याष्प के अन्धकार से भर गया।

यह दृश्य उत्तर की तरफ के दृश्य से सर्वथा विपरीत था। क्योकि वहाँ से पारदर्श के द्वारा अमरौली की मीनारे साफ-साफ दिखायी दे रही थी। यद्यपि रास्ता समतल नही था और भूमि कही ऊँची और कही अधिक नीची थी, लेकिन मार्ग बडे आकार मे होकर स्पष्ट दिखायी दे रहा था।

शत्रुञ्जय के दृश्य वडी तेजी के साथ बदलते जा रहे थे। एक स्थान पर काली, भद्दी-सी विषम आकार-प्रकार वाली आकृति से एक स्तम्भ- सा वनता हुआ दिखायी पड़ा। कुछ ही दूर आगे चलने पर उसकी आकृति मे परिवर्तन हो गया और इसके तुरन्त वाद उसका दूसरा ही आकार दिखायी पड़ने लगा। एक विस्तृत और विशाल पर्वत का भाग, जिसकी वंगले टूटी-फूटी और गिरी हुई थी, ऊँचे उठता हुआ दिखायी पड़ा।

सवसे अधिक आकर्षक दृश्य उस समय दिखायी पडा, जव सूर्य की किरणें समुद्र के जल को छूती हुई ऊपर की तरफ चली और पर्वत के ऊपर फैल गयी। उन किरणों के द्वारा फैला हुआ प्रकाश देखने पर ऐसा मालूम हुआ, मानो अंतरिक्ष के अंधकार मे अग्नि का मिश्रण हो गया है। आकाश की तरफ फैले हुए धुंध पर सूर्य के प्रकाश ने विजय प्राप्त की और जहाँ सब कुछ धुंधला दिखायी दे रहा था, वहाँ पर नीचे से ऊपर तक पर्वत के ऊपर प्रकाश ही प्रकाश दिखायी पड़ने लगा। जो अंधकार-सा भरा हुआ था, वह तेजी के साथ मिट गया।

प्रकाश की गति जितनी बढ़ती गयी, धुंध का वातावरण उतना ही टूटता गया और आखोर में चारो तरफ फैले हुये प्रकाश के द्वारा पहाड़ के विभिन्न प्रकार के दृश्य दिखायी देने लगे।

मैंने इस प्रकार के और कुछ अर्थों में इनसे भी बढकर दो दृश्य देखे हैं—मरु-भूमि के उत्तर की तरफ हिसार नामक स्थान पर और दूसरा दृश्य कोटा मे देखा है। उनका वर्णन यहाँ पर इसलिए करने की आवश्यकता नही है कि उनको विस्तार के साथ राजस्थान के इतिहास मे लिखा गया है।

हमने जैर गाँव की पहाडो पर चढना आरम्भ किया। यहाँ से दोनो पर्वतो पर जाने के मार्ग है। घूरो और खजूरो के पेडो से ढके हुये पाँच मील का रास्ता पार करके हम अपने मुकाम देवला नामक ग्राम मे पहुँच गये। वहाँ के ठाकुर के अतिरिक्त इस स्थान का कोई महत्व अथवा गौरव नही था। देवला मे जो ठाकुर रहता है, उसके दुर्ग के चारो तरफ मिट्टी का एक छोटा-सा परकोटा है। उसमे बुर्जे भी हैं और इसके मालिक को इस दुर्ग पर उतना ही गर्व है, जितना कि लुई चौदहवे को अपने किले, लिले पर था। यद्यपि दोनो किलो मे बहुत बडा अन्तर है। जैर के ठाकुर का किला कच्ची मिट्टी का बना हुआ है और वह अधिक ऊँचा नही है। लेकिन लुई चौदहवे का लिले (१) दुर्ग बहुत ऊँचा और मजबूत था।

देवला की सीमा एक पहाडो नाले पर है। यहाँ के जो निवासी हैं, वे कुनबी और कोली जाति के हैं। उनका ठाकुर काठी जाति का है। यहाँ के ठाकुर के साथ हमने दिन के तीसरे पहर मुलाकात की।

जेमा अथवा जेसाजी ने अपनी जाति के लोगो में बहुत सम्मान प्राप्त किया था उसकी अवस्था पचास वर्ष से कम नही है। लेकिन स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण उसका सम्पूर्ण शरीर रक्त से भरा हुआ है। यदि वह अपनो दाढी के अधकटे बाल—जो लगभग एक सप्ताह से लगातार बढ रहे हैं और काली मूँछे—कटवाकर अपने चेहरे को साफ करा ले तो निश्चय ही उसकी इस अवस्था मे कुछ वर्षों की कमी मालूम होने लगेगी।

ठाकुर के यहाँ मैं कुछ समय तक आराम से बैठा। हम दोनो ही पूरी स्वतन्त्र का अनुभव करते थे और वह ठाकुर भी एक सच्चे काठी की हैसियत से बिना किस रुकावक और लिहाज के आजादी के साथ बात कर रहा था। उसी मौके पर उसकी बातो का सिलसिला उसके जीवन के सम्बन्ध मे मोडते हुए मैंने पूछा—क्या आपने इस एकान्त निवास-स्थान को छोडकर कभी अपने सम्मानित शस्त्रों के प्रयोग का प्रयत्न किया है ?

---

(१) यह किला फ्रांस की राजधानी पेरिस के उत्तर में १५५ मील की दूरी पर है। स्पेन के फिलिप चौथे की मृत्यु के बाद लुई चौदहवे ने लिले के किले पर १६६७ ईसवी मे अधिकार कर लिया था। इसका पेरिस-गेट नामक फाटक सन् १६८२ ईसवी मे उसी के सम्मान मे फ्लैण्डर्स-विजय के बाद बनवाया गया था।

मेरे इस प्रश्न को सुनकर उसने उत्तर दिया—बहुत कम, भावनगर, पाटण और झालावाड़ से आगे कभी नही।

अगर यहाँ का मानचित्र देखा जाय तो साफ जाहिर होगा कि जेसाजी के बताये हुये यह तीनो नगर एक ऐसा त्रिकोण बनाते हैं, जो प्रायद्वीप के पूर्वी दक्षिणी और पश्चिमी भागो तक फैला हुआ है और अगर किसी भी दिशा में वह कुछ भी आगे बढता है तो घोड़ा और घुडसवार, दोनो को समुद्र के पानी में जाना पड़ता है।

उसकी बातो को और साफ करने के लिए मैंने फिर प्रश्न किया—यह क्षेत्र तो बहुत सीमित मालूम होता है। क्या कभी उत्तरी भाग की तरफ भी चेष्टा की है।

मेरे इस प्रश्न को सुनकर उसने अपनी पूरी सादगी के साथ और कुछ गर्व भरे शब्दो मे उत्तर देते हुए कहा—मैंने अहमदाबाद की पोल तक अपने भाले का प्रभाव दिखाया है।

उसके इस उत्तर को सुनकर फिर मैंने कुछ नही पूछा। मुझे इसके आगे अधिक कुछ जानना नहीं था। देवला के ठाकुर जेसाजी और उसके एक दर्जन साथियो ने—जिनकी भूमि एक अच्छी जायदाद के अतिरिक्त और कुछ नही थी—गुजरात की राजधानी का मान-मर्दन किया था।

मुझे प्रत्येक स्थान का अध्ययन करता था और ईमानदारी के साथ ऐतिहासिक तत्वो की जानकारी प्राप्त करनी थी। इस दृष्टिकोण से मुझे इस मौके पर स्मरण आया कि आदिवासी जातियो के द्वारा उत्तरी इटली की लूट हुई थी। जैसा काठी की मूर्ति की समानता और तुलना लाङ्गोबार्ड अल्बोइन (१) से की जा सकती है और यह तुलना कदाचित् सही परिचय देने का काम करेगी।

अलबोइन जाति का एक दूसरा व्यक्ति भी है जो इसकी उपमा मे आता है और वह भी मेरे सामने है। जब जार-साम्राज्य के संस्थापक रूरिक का उत्तराधिकारी पहली बार अस्सी हजार सैनिको की सेना लेकर बोरिस्थिनीज को पार करके राजधानी पर हमला करने के बाद जब पहुँचा तो उस नगर की हार और अपनी विजय के प्रमाण मे उसने बाइजेण्टिअम के फाटक पर अपनी तलवार कीलो से जड़वा दी थी और वहाँ के बादशाह को उसने संधि करने के लिए विवश किया था। उसमे विजेता के वाराङ्गिअन रक्षा करने वालो ने अपने शस्त्रो की शपथ ली थी। इस कथानक से हमको इतना ही नहीं मालूम होता बल्कि शपथ लेने का एक विशेष तरीका भी हमारे सामने आता है, जो देखने मे पूर्ण रूप से राजपूती है और आमतौर पर जंगल के

(१) लाङ्गोबार्ड अथवा लम्बी दाढ़ो वालो की कौम्राएल्ब नदी के किनारे उपजाऊ मैदानों में रहती थी। इस शब्द का इटालियन रूप है। इसके बादशाह अल्बोइन ने सन् ५६८ ई० में इटली पर आक्रमण किया था।

निवासी काठी जाति के प्रत्येक व्यक्ति के मुँह से सुनने को मिलता है। लेकिन लाङ्गो-बार्ड अलबोइन और वारङ्गिअन जार दोनो ही नारमन जाति के थे, जिस जाति के लोगो ने वेजर (१) और एल्ब (२) के मुहानो को अपना निवास-स्थान बना रखा था। स्कैण्डिनेविया के प्रारम्भिक इतिहासकारो ने भी उनको एशी अथवा एशियाई कहकर उनकी प्रतिकूलता को माना है।

हमे लगातार ऐसे प्रमाण मिल रहे हैं कि कोई आदिकालीन भाषा ट्यूटानिक से जिसका अलगाव जाहिर करने के लिए इण्डो-जरमनिक नाम दिया गया है, उससे बहुत कुछ मिलता-जुलता है और उनके बहुत-से पुराने रीति-रिवाज भी मिलते-जुलते हैं। इससे मालूम होता है कि यद्यपि आज इन देशो के रहने वालो के देश, रंग, धर्म और रहन-सहन मे बहुत अन्तर आ गया है। फिर भी यह सम्भव है कि एल्ब के काठी और सिकन्दर का सामना करने वाले काठी के पूर्वज मध्य एशिया के किसी एक ही स्थान से चलकर विभिन्न स्थानो को गये थे।

अब हम अपने मार्ग पर आगे चलना चाहते हैं और अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हुए एक बार फिर जेसाजी से मुलाकात करना चाहते हैं। आजकल की शांति के दिन जेसाजी के लिए अच्छे साबित नही हुए। उसके मन मे अनेक प्रकार की आश-काओ ने जो निर्बलता पैदा कर दी है, उससे उसका मार्ग अवरुद्ध हो गया है। उसकी बातचीत से पहले भी कुछ इस प्रकार का आभास हो चुका है और उसने अपने स्वभाव के अनुसार इसको जाहिर भी किया है। ऐसा मालूम होता है कि उसकी दौड अब अपने क्षेत्र के खेतो मे काम करने वाले किसानो की देख भाल करने तक ही रह गयी है और इन किसानो से जो कुछ आमदनी होती है, उसी से उसका गुजारा होता है। उसके जीवन की कथा इस प्रकार है—अपने अनैतिक कामो के अलावा जेसाजी ने गोंडल के चार गाँवो पर ग्रास (३) कायम किया था।

जेसाजी के इस प्रकार के कार्यों का नतीजा भी मिला था। लगान अथवा लूट की रकम को लेकर वह चुपचाप अपने निवास-स्थान की तरफ जा रहा था। अचा-

(१) जर्मनी की एक नदी जो मिण्डेन नामक स्थान पर फुल्दा और वेरा नामक नदियो के मिलने से बनती है और ३०० मील उत्तर की तरफ बहकर उत्तरी समुद्र मे जाकर गिरती है।

(२) योरोप की प्रसिद्ध नदी जो बोहेमियाँ के पहाडो से निकलती है और ७२५ मील तक बहकर उत्तरी समुद्र में गिरती है।

(३) ग्रास या गिरास उस लगान अथवा कर वसूल करने के अधिकार को कहते हैं, जो किसी सरदार के द्वारा डर और भय पैदा करके किसी गाँव से अथवा व्यापारिक मार्ग से वसूल किया जाता था।

तक उसे घेर लिया गया। जीवन-भर की साथिन घोडी से उसको उतारा गया और बुरी तरह उसको बाँधकर गोडल के किले में कैदी बना दिया गया। जेसाजी मे साहस था और सूझ भी थी। मनुष्य के ये दोनों ऊँचे गुण हैं और सफलता के मूल आधार है। दोनों का जब सहयोग होता है तो मनुष्य की शक्ति अपार हो जाती है। एक के अभाव में दूसरा अपने-आपको निर्बल पाता है।

जेसाजी ने कैद से निकलने का प्रयत्न किया। जो खोजता है, वह पाता भी है। उसे एक लोहे की कील मिल गयी। कहा जाता है कि उसने उस कील के द्वारा अपनी बेड़ियाँ खोल डाली और भाग जाने का प्रयास करने लगा। उसे आधी रात को मौका मिला। उसने जोखिम की परवाह न की और वह जेल की ऊँची दीवार से कूद पड़ा। सयोग और सौभाग्य से उसे कोई बड़ी चोट नही आयो। वह भागकर वहाँ से निकल गया और फिर राहत के साथ चलकर कुछ घन्टो मे एक काठी ग्राम में पहुँच गया।

लोगों से मिलने पर उसने अपनी कहानी कही और बताया कि वह किस प्रकार बन्दी बनाया गया था। उसने अपनी घोड़ी की चर्चा भी की, उसे अपनी घोड़ी से बहुत स्नेह था। लूट के कार्य में घोड़ी उसकी सबसे अधिक सहायता करती थी। वह अपनी तलवार और घोडी की हमेशा प्रशसा कर रहा था। इन्ही दोनो के बल पर उसकी लूट सम्बन्धी योजनाये बनती थी। जब कोई उसके अत्याचारो की बात करता तो वह बिना किसी सकोच के कहा करता : मैंने लोगो को डराया जरूर है, लेकिन मैंने कभी किसी को मारा नही है।

अपने उद्देश्य की परिभाषा करना वही जानता था। वह एक कुशल लुटेरा था और मार्ग मे जब कोई मिल जाता था तो उसके पास और अधिकार की कोई भी चीज वह छोड़ता नही था, फिर चाहे वह साफा, पगड़ी अथवा कोई कपड़ा हो अथवा उसके अधिकार मे गाय, भैंस या घोड़ा-घोड़ो हो। वह मिले हुए यात्री की कोई चीज छोड़ता नही था। यही उसका व्यवसाय था और ऐसा करने में उसको किसी प्रकार का भय अथवा सकोच नही था।

इस अपराधी ने पाटण तक पहाडियो में हमारा मार्ग-दर्शन होना स्वीकार कर लिया। उसका कहना था कि इन पहाडियो का छोटा-बड़ा रास्ता ही नही—यहाँ के किसी भी पत्थर और उसके टुकडे से मैं अपरिचित नही हूँ। ऐसा कहने में वह अपनी बहादुरी अनुभव करता था। रास्ते मे उसने न जाने कितनी बाते सुनायी और उनके द्वारा उसने मुझे प्रसन्न करने की कोशिश की। मैं लगातार उसकी बातो को सुनता भी रहा।

इस प्रायद्वीप मे कुछ जातियाँ हैं, जो हमेशा घूमा-फिरा करती हैं। इसलिये उनको अगर घुमक्कड़ जातियाँ कहा जाय तो अनुचित नही होगा। इन जातियो के कुछ अपने

रस्मो-रिवाज हैं। उन पर सक्षेप मे प्रकाश डालने के लिए मैं यहाँ पर एक उदाहरण लिखना चाहता हूँ।

कल की यात्रा मे जब हम उधर से निकले तो एक ब्राह्मण ने हमको चरुरी के काठी-सरदार के यज्ञ में चलने के लिये कहा। चरुरी की आठ हजार रुपये वार्षिक आमदनी है। वहाँ के ठाकुर ने एक मन्दिर वनवाया था और उसी के उपलक्ष में यज्ञ की व्यवस्था की गयी थी। उसमे अधिक से अधिक ब्राह्मणो को भोजन कराना भी था। इन ब्राह्मणों के साथ साधु, सन्यासी और उस वेष मे जो कोई आ जाय, सभी का स्वागत-सत्कार था। भोजन के वाद ब्राह्मणो को एक एक रुपया और एक-एक ऊनी कम्वल दिया गया था।

हमारे पथ-प्रदर्शक ने मन्दिर वनवाने वाले ठाकुर का और उसकी इन वातो का वर्णन करते हुए उसकी साधुता के जीवन का चित्र खीचा। मैं जानता था कि यहाँ पर लुटेरो की सख्या अधिक है। यहाँ का तरीका यह था कि जो समर्थ था, वह लूट मार का काम करता था और जो असमर्थ तथा निर्बल था, वह लूटा जाता था। पथ-प्रदर्शक की वातो को सुनकर मैं सोचने लगा कि इन लुटेरो और वदमाशो के बीच मे एक धार्मिक पुरुष का इतिहास जानने के योग्य है, इसलिए मैंने प्रश्न करके अधिक जानने की कोशिश की।

मैंने इस धार्मिक ठाकुर की भीतरी और वाहरी—सभी वाते जानने की चेष्टा की और बताने वाले ने मेरी श्रद्धा का अनुमान लगाकर अधिक प्रेम से वताना आरम्भ किया। मैं तो सही वातो की खोज मे था। वहुत समय तक विभिन्न प्रकार की वातों और घटनाओ को सुनने के वाद मुझे मालूम हुआ कि वह ठाकुर पहले काठियावाड़ के लोगो मे लूटमार के लिये वहुत भयानक माना जाता था, उसकी लूटमार मे भले आदमी ही भिखारी नही हुए थे, वल्कि ग्राम, कस्वे और नगर वीरान हो गये थे। उसका यह जमाना बहुत दिनो तक चला।

अन्त मे उस ठाकुर का ऐसा समय भी आया, जव वह इस प्रकार के अत्याचार करने के योग्य नही रह गया। उसको शक्तियाँ अधिक निर्बलता में बदल गयी। इस-लिये उसने धार्मिक जीवन विताने का निश्चय किया। उसने मन्दिर बनवाये, यज्ञ कराये, चारों तरफ के ब्राह्मणो को बुलाकर उनको भोजन कराये, उन्हे दान-दक्षिणा से प्रसन्न किया, साधु-सन्तो का एक मेला हमेशा उसके यहाँ रहने लगा। अब उसने लूटमार का काम अपने लड़को पर छोड दिया था और जवानी मे लूटी हुई रकमों से दान-पुण्य के धार्मिक कार्य आरम्भ कर दिये। अपने इन नये कार्यों से वह धार्मिक और पुण्यात्मा कहा जाने लगा।

आत्मा को अशान्ति और ग्लानि को मिटाने के लिये इससे कोई दूसरा रास्ता अच्छा नही हो सकता। इतिहास अगर सही तरीके से लिखा गया है तो उसके पन्नो

में इस प्रकार की अगणित घटनाये पढ़ने को मिलती हैं। इन घटनाओं की तहो में छिपे हुए तथ्य चिल्लाकर कह रहे हैं कि जिन्होने बुढापे के पहले तक जवन्य पाप और अपराध किये हैं, वे बुढापे में धार्मिक और अध्यात्मिक बन गये है।

इस कथानक को अब हम सम्राट की (ग्यूल्फिक) (१) परम्परा मे वदल देना चाहते हैं, जिसके विषय में (काँनराड) (२) से भी पहले के युगो का वर्णन करते हुए प्रतिभाशाली (गिबन) (३) ने लिखा है : हमे उनके सम्बन्ध मे जो कुछ जानने को मिला है, उसके आधार पर हम यही कह सकते हैं कि जो जवानी मे हर तरीके से धन लूटते थे, वे बुढापे मे गिरजे बनवाते थे।'

काठी राजपूत की तरह के किसी भी मनुष्य के आचरणो को बदलने के लिये शक्ति के प्रयोग का कोई अचूक साधन नही है। इस देश में भूमि का एक प्रलोभन रहता है और उस प्रलोभन मे ऐसे कार्यों को बुरी नजर से नही देखा जाता। एक बात और है। अगर इस प्रकार के लोग अपने ढग और तरीके बदल देते हैं तो राजदरबार में उनका कम सम्मान नही होता और उनके पिछले कारनामो की कोई परवा नही करता। ऐसे लोग जब अपने राजा को कर देने लगते हैं और उसके सामने आत्म-समर्पण कर देते हैं तो वे राजा के निकट सम्मानित हो जाते हैं।

गढिया, २४ नवम्बर— यहाँ के जगल की ऊँची और मनोरम भूमि के सुन्दर दृश्यो को देखते हुए हमने सात मील का रास्ता पार किया। रास्ते के प्रत्येक मील पर जङ्गली पेडो से आच्छादित घाटियो के बीच में छोटे-छोटे झरने थे, वे सुनसान स्थानो मे बडे प्रिय मालूम होते थे। उनको मैंने भली-प्रकार देखा।

ये झरने पठार की भूमि पर बहते हुए शत्रुञ्जय नदी मे जाकर गिरते हैं। वहाँ के घने जगलो मे थोडी-थोडी दूरी पर झोपड़ियाँ भी दिखायी देती हैं। उनको देखकर जाहिर होता है कि मनुष्य इन स्थानो पर भी रहा करते है, जहाँ पर डाकुओ और लूटेरो को सभी प्रकार की सुविधाये प्राप्त होती हैं और किसी प्रकार का भय

---

(१) इगलैण्ड का राजवश। सन् १९१७ ईसवी मे सम्राट पचम जर्ज ने अपने वश की सभी पुरानी जर्मन उपधियाँ छोड दी और विण्डसर कुल कायम कर लिया। यह कुल पहले ग्यूल्फिक कहा जाता था। [अनुवादक]

(२) अग्रेजी उपन्यासकार जोजेफ काँनराड का जन्म सन् १८५७ ईसवी मे हुआ था। उसकी कथाओ मे समुद्री लोगो का वर्णन अधिक मिलता है। उसकी मृत्यु अगस्त १९२३ ईसवी मे हुई थी। [अनुवादक]

(३) प्रसिद्ध अंग्रेजी इतिहासकार। जन्म १७३७ ईसवी के २७ अप्रैल को और मृत्यु १६ जनवरी १७९७ ईसवी को हुई थी। उसकी लिखी हुई (डीलिनो एण्ड फाल आफ दी रोमन इम्पायर) नामक पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है।

नही रहता। ये लुटेरे ऐसे आदमियो पर भी रहम नहीं करते, जो उन्ही की जमीन पर खेती करके अपने बच्चो के खाने-पीने का प्रबन्ध करते हैं।

यहाँ की रेतीली जमीन भी मैदानों की तरह काम की है। पहाडो की चोटियाँ सुदूर नीले आकाश मे मिलती हुई दिखायी देती हैं। अमरोली मे गिरनार का एक ही शिखर दिखायी पडता था। लेकिन अब यहाँ से पाँच शिखर साफ-साफ दिखायी देते हैं।

गढिया पहुँचने पर काठी सरदार के निवास-स्थान की सुन्दरता देखने को मिलती है। पत्थरो से बनी हुई वर्गाकार खाली छतरी—जिसकी जोड़ की गाँठे नोकदार चट्टान पर रखी हुई, चारो तरफ नीचे की ओर बने हुए कच्चे घरो की पक्तियाँ और ये सब दृश्य बट के पेडो से घिरा हुआ बडा सुहावना लगता है। यहाँ पर पहुँचकर मैंने देखा कि एक छोटा-सा शामियाना लगा हुआ है और घर तथा बाहर के काम करने वाले लोग थकान के कारण विश्राम कर रहे हैं।

इसी अवसर पर जेसा एक घोडे पर सवार हाथ में भाला लिये हुए वहाँ पर आया। मेरे करीब से निकलते हुए उसने सम्मान पूर्वक नमस्ते किया। वहाँ पर एक घोडी की पीठ पर कोई मूर्ति बनी हुई थी। उसके सम्बन्ध मे जब जेसा से पूछा गया तो उसने बताया कि वह ढाणी का राजा बाल राजपूत था और अपनी खोयी हुई गाय की तलाश मे आया था।

यह दृश्य यद्यपि मेरे लिये कोई नया नही था। फिर भी मुझे अच्छा लगा। इसलिये कि यह सभी स्थानो के राजपूतो के अनुकूल था।

यह बाल राजपूत जिस ढाणी का राजा था, उसमे तीन ही घर थे—दो कोलियो के और एक कुणबी का। इसके बाद वह अपने जातीय फिरी के भूमिया के साथ मुझसे भेट करने आया। उनके मुख और शरीर को देखकर उनके यौवन काल का अनुमान होता था। एक के मुख पर लम्बी दाढी थी, जिसके सिरे अपनी-अपनी तरफ को मुडे थे और दूसरा अभी लगभग बाईस वर्ष का जवान था।

जेसाजी इन लोगो को भली प्रकार जानता था। प्रायद्वीप पर बसने वाली विभिन्न जातियो मे अन्तर जाहिर करने वाले गुणो का विश्लेषण करते हुए कप्तान मैकमुरडो ने राजपूत और काठी लोगो का फर्क बताया है, वह बहुत अशो मे सही है। परन्तु ऐसे मौको पर, जिसका ऊपर वर्णन किया गया है, जब वे हमको एक ही तौर-तरीके तथा उद्देश्य मे मिले हुये दिखायी देते हैं, तो इनमे किसी प्रकार के अन्तर का निकालना साधारण काम नही है। अर्थात् उनकी पोशाके एक हैं, ढग और तरीके एक हैं, खाने-पीने की चीजे एक हैं और उनके रहन-सहन भी एक हैं। बातचीत का तरीका एक है। ऐसी सूरत में उनमे अन्तर क्या हो सकता है, यह आसानी से नही बताया जा सकता।

तुलसीशाम, २५ नवम्बर—सौराष्ट्र के पहाड़ी स्थानो के मीलो और भारत के दूसरे स्थानो के मीलो में बड़ा अन्तर है। इन पहाड़ी भागों का फासिला जो मीलो और कोसो मे बताया जाता है, वह केवल अनुमान पर निर्भर है; उसकी कोई सही नाप नही है। इस प्रकार की कठिनाई हमको प्रत्येक पहाड़ी भाग में उठानी पड़ी है। क्योकि वहाँ के लोग दूरी के सम्बन्ध मे जो कुछ बता देते है, उससे फासिला वास्तव में अधिक होता है।

गढ़िया से तुलसीशाम का फासिला दस अथवा ग्यारह मील का बताया गया था, जो सात कोस के बराबर होता है। लेकिन हम पूरे सोलह मील तक चलने के बाद कुछ भी थकावट अनुभव नही करते। इसका और कोई कारण नही है, सिवा इसके कि मीलो का अनुमान लगाने मे यहाँ के लोग बड़ी असावधानी से काम लेते है।

आरम्भ के दो मील तक पठार पर हम लोगो को चलना पडा। उसमे बहुत थोड़ी चढ़ाई थी। लेकिन दोनो ओर खडे शिखरो के बीच से निकलने के पश्चात् जङ्गलो मे होकर उतरना आरम्भ हुआ। शेष यात्रा के सम्बन्ध मे मैं इतना हो लिखना चाहता हूँ कि जो थोड़ी-थोडी दूर तक एक नया रास्ता पैदा करती थी। कोई एक क्रम नही था। कदाचित् पहाडी रास्ते कुछ इसी प्रकार के होते ही हैं। कही पर कोई रास्ता जगली पेडो मे बहुत घिरा हुआ मिलता था। कही पर जमीन बहुत ऊँची थी और कही बहुत नीची थी।

अमरोली के मैदानो से पठार तक की चढाई क्रमशः मिलती गयी। परन्तु यात्रियो के लिये यह मार्ग बहुत कष्टपूर्ण था और बडे साहस के साथ उनमे चलने वाले लोग अपना समय काट रहे थे। गढिया छोड़ने के बाद झरनो का प्रवाह दक्षिण की तरफ देखकर ऊँचाई का मध्य बिन्दु साफ-साफ मालूम हो जाता था। इसलिये कि यहाँ तक वे शत्रुञ्जय की तरफ पश्चिम के ढाल पर प्रवाहित हो रहे थे। इनकी परिस्थिति असाधारण थी और इसलिये ये झरने सौराष्ट्र के भूगोल मे अधिक ध्यान देने के योग्य समझे जाते हैं।

हमारे बायी तरफ जगली पेड़ो से आच्छादित घाटी मे काली गढिया का रास्ता है। उसके आर-पार हमे कई बार आना-जाना पड़ा था, इसलिये उसका अन्तर स्पष्ट दिखाई देता था। यहाँ पर एक दूधिया नाला है। उसका अर्थ यह है कि इस झरने का जल दूध के समान श्वेत रंग का है। मालूम होता है कि इस झरने का पानी सफेद चट्टानो पर बहता हुआ आता है।

हमारे साथ के कुछ सिपाहियो ने—जो किसी समय काठी लोगो के विरुद्ध यहाँ पर आये थे—मुझे बताया कि यहाँ का जल स्वास्थ्य के लिये अच्छा नही है। यहाँ पर

झोव के पेड बहुत बडी सख्या मे हैं और वे इस झरने पर झुके हुये हैं। किनारे पर बहुत-से वृक्ष टेड्ड के हैं, उनको मैंने आसानी से पहचान लिया।

इस टेढे-मेढे रास्ते मे मेरा पथ-प्रदर्शक एक अच्छी घोडी पर बैठा हुआ चल रहा था। वह गढिया-सरदार सम्पूर्ण रास्ते में विभिन्न प्रकार की मुझे बाते सुनाता रहा। ऐसा मालूम होता था कि इन लोक-कथाओ के साथ उसकी बहुत अधिक रुचि है। उसके कहने का तरीका अच्छा था। मैं बडे ध्यान से उसके प्रत्येक कथानक को सुनता रहा। उनके द्वारा मेरा मनोरजन ही नही हुआ, बल्कि उनमे अतीतकाल की जो घटनायें भरी हुई थी, मैं उनको बडी सावधानी के साथ अनुभव कर रहा था।

जब हम लोग रास्ते के बाईं तरफ नदी के किनारे खुले पत्थरो के एक समाधि के स्थान से होकर गुजरे तो उस काठी सरदार ने एक ठडी साँस लेकर कहा—यहाँ पर जब बाबरिया लोग लडने के लिये आये थे तो उनके साथ युद्ध करता हुआ मेरा भाई मारा गया था और उसे मारकर उन लोगो ने पुरानी शत्रुता का बदला लिया था, मुझे अब तक वह स्मरण है।

कुछ आगे चलने पर एक लकडी का लट्ठा मिला। उसको देखकर ठाकुर की घोडी एकाएक भडक उठी। ठाकुर ने लगातार अपनी घोडी को निर्दयता के साथ चाबुक मारे। इसके बाद उसकी वह घोडी काबू मे आ गयी। यह देखकर मैंने कहा—मेरा ख्याल था कि तुम काठी लोग अपने घोडो को बच्चो की तरह समझते हो और उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते हो, जिस प्रकार बच्चो के साथ हमदर्दी से भरा हुआ व्यवहार किया जाता है।

मेरी इस बात को सुनकर उसने कहा—आपका कहना सही है। लेकिन हमारी और आप की तरह यह घोडी भी समझती है कि यह लकडी का लट्ठा है।

इस प्रकार कहकर वह फिर अपनी घोडी को झिडकी बताने लगा। ऐसा मालूम होता था कि उसकी इस नाराजगी को वह घोडी समझती है। इसके बाद मैंने इसके विषय मे कुछ नही कहा। मैं कभी उसकी घोडी की तरफ देखता था और कभी उसकी तरफ।

ठाकुर का गाँव गढिया जूनागढ़ मे है। परन्तु गायकवाड उससे कर वसूल करता है। यह कर अच्छा नही है और बल पूर्वक वह वसूल किया जाता है, इसको बन्द हो जाना चाहिए। इस बात को प्रत्येक काठी समझता है। जब तक यह कर बन्द नही होता और काठी लोगो को उसकी अदायगी करनी पडती है, उस समय तक काठी लोग शान्ति के साथ नही रह सकते, उनको उसका विरोध करना ही चाहिये।

हम जितना ही अपने अभीष्ट स्थान की तरफ बढते जाते थे, यहाँ की भूमि के सम्बन्ध मे नयी-नयी घटनाओ की जानकारी होती जाती थी। इसी जगली प्रदेश में,

जो हिडम्बा वन के नाम से मशहूर है, बनवासी पाण्डवो ने रमणीक भाग से निर्वासित होने पर शरण मे आये थे। इस प्राचीन घटना को बीते हुए तीन हजार वर्ष से कम का समय नही हुआ, फिर भी प्रत्येक हिन्दू इस स्थान के महत्व को अनुभव करता है और जब वह इस स्थल को देखता है, जहाँ पर पाण्डव ने आकर शरण ली थी तो उसका मन आज भी काँप उठता है।

इस स्थान को हिन्दू लोग पवित्र मानते हैं। यह उनका एक ऐतिहासिक स्थान है और यह स्थल उनको एक भयानक पीड़ा का स्मरण दिलाता है। तुनमोगाम से दो मील पहले ही हम वहाँ के उस पवित्र स्थान पर पहुँचे, जहाँ पर पाण्डवो की माता कुन्ती ने विश्राम लिया था और यहाँ पर रुककर उसने इसको पवित्र बना दिया था। विरोधियो के गुप्तचरो से छिपते हुए जब पाँचो भाई बन मे घूमते हुए इस स्थान पर आये थे तो उनकी माता थकावट और प्यास के मारे बेहोश हो गयी थी। उसको चेतना मे लाने के लिये यहाँ पर कही पानी नही मिला था। उस समय भीम ने अपनी गदा से एक चट्टान को तोड़ा और उसके टूटते ही जल का एक फव्वारा निकल पड़ा।

इस फव्वारे का परिणाम अच्छा नही निकला। लेकिन इसको कौन जानता था और इसमे फव्वारे के जल का क्या अपराध था। उसका जल लेकर जैसे ही कुती के मुख मे डाला गया, उसके साथ ही कुती की प्यास और उसके जीवन की साँस—दोनो का एक साथ अन्त हो गया। (१)

यही पर कुन्ती का अन्तिम सस्कार किया गया और उसकी स्मृति मे एक छोटा सा मन्दिर बनवाया गया, उस मन्दिर के प्रति सभी हिन्दू अपना सम्मान प्रकट करते रहे। उस मन्दिर का कई बार जीर्णोद्धार हो चुका है। इस रास्ते से बाई तरफ एक पगडण्डी उस स्थान की ओर जाती है, जहाँ पर कोई भी यात्री जाकर टूटी हुई चट्टान की दरार को देख सकता है, जिसमे से स्वच्छ पानी का झरना निकला था और जिससे इस जनश्रुति का समर्थन होता है। इस झरने का पानी सदा से स्वास्थ्य के लिये हानिकारक रहा है और आज भी वह लोगो के समझ मे अच्छा नही है।

इस स्थान के सम्बन्ध मे एक कथा और भी कही जाती है, वह कदाचित अधिक सही है। कहा जाता है कि तुलसी राक्षस के साथ कृष्ण का युद्ध यही पर हुआ था। उस राक्षस को मारकर कृष्ण ने आत्म शुद्ध करने का इरादा किया था, उस समय उनके भाई बलदेव ने अपने हलकी फाल से चट्टान तोड़ी थी और उसके दरार मे से झरना जारी हुआ था वह दरार अब तक बलदेव की फाड कही जाती है पुजारियो ने

(१) महाभारत के अनुसार यह कथानक सही है। पाण्डव की माता कुन्ती का अन्त तो महायुद्ध में उसके लडको की विजय के बाद हुआ था, जब वह धृतराष्ट्र और विदुर के साथ वनवास मे गयी थी।

उसको पाण्डवो की मूर्ति मान रखा है। मुझको तो वह भारतीय हरक्यूलीज की प्रतिमा मालूम होती है। उसको समझने मे कही भूल न की जाय, इसलिए उसकी पीठ पर वल्देव का नाम अंकित करा दिया गया है। वे सब समकालीन थे और साथ-साथ रहते थे। उनका वंश हरिकुल अथवा हरि का कुल कहलाता था। हरिकृष्ण का दूसरा नाम है।

तुलसीश्याम एक पवित्र स्थान हैं। वह श्याम (कृष्ण के सांवले रंग का परिचायक हैं) और सौराष्ट्र के तूल नामक राक्षस के युद्ध का अखाडा होने के कारण मशहूर है। उस राक्षस से सभी धार्मिक लोग भयभीत रहा करते थे। कहा जाता है कि उसको कोई ऐसा वरदान मिला था, जिससे उसको कोई मार नही सकता था। इसलिये निडर होकर वह देवताओ को पीडा पहुँचाने लगा था। उसको वरदान के समय बताया गया था कि उमको कृष्ण के अवसर लेने पर सावधान रहना चाहिये। क्योकि उसको मारने की क्षमता कृष्ण को होगी।

जव वह राक्षस मारा गया तो उपाख्यान में बताया गया है कि उसने अपने मारने वाले के चरणो को पकड़कर प्रार्थना की कि मेरा नाम मेरी मृत्यु के वाद मिटने न पावे। इसीलिये दोनो के नाम से यह स्थान प्रसिद्ध हुआ। यह राक्षस एक जङ्गली घाटी का निवासी था, जो घाटी चारो तरफ से पहाडियो के द्वारा घिरी हुई है। उमके स्थान के सम्बन्ध मे यह कहना और भी अधिक अच्छा होगा कि उसका स्थान एक बडे प्याले के समान था, जिसकी दीवारो को वनस्पति ने ढक रखा था। उस स्थान की जमीन मे सीता कुण्ड नाम का गरम पानी का एक कुआं था, वह कुआं लोगो को आश्चर्य में डालने वाला है। लोगो का कहना है कि इसके जल से विभिन्न प्रकार के रोग अच्छे हो जाते थे।

सीता कुण्ड के ऊपरी सिरे की लम्बाई अस्सी फीट और चौड़ाई पैंतालीस फीट है। उनमे नीचे तक जाने के लिये सीढियाँ भी हैं। नीचे के भाग मे इसको लम्बाई और चौड़ाई दोनो ही कम हो जाती है अर्थात् लम्बाई पचपन फीट और चौडाई वीस फीट रह जाती है।

मेरी तबीयत हुई कि मैं इस कुण्ड मे स्नान करूं। इसके पानी की गर्मी बाहरी हवा से २१° ऊपर थी। जल की गर्मी सहन नही हो सकती थी। इस समय खेमे में थर्मामीटर के द्वारा ८६° मालूम हो रहे थे और बाहर ८९° केवल। कुण्ड के जल मे कुछ देर डुबोये रखने पर यह ११०° पर पहुँच गया और जब बाहर निकाला तो ७६° पर आ गया। इसके वाद वह तेजी से ८९° पर पहुँच गया।

यहाँ पर श्याम देवता का एक छोटा-सा मन्दिर है। वह देखने मे भद्दा-सा मालूम होता है। उसके भीतरी हिस्से में जल के अधिष्ठाता देव की मूर्ति है। वहाँ के फाटक पर शिव और भैरव के मन्दिर बने हुये हैं। अगर हम यहाँ के लोगो के द्वारा

कही जाने वाली बातो पर विश्वास करें तो हमें लिखना पड़ेगा कि गरम पानी का झरना तूल राक्षस के जीवनकाल में नही था। युद्ध के बाद श्याम को थकान और भूख—दोनों का अनुभव हो रहा था और वे रुक्मिणि के द्वारा भोजन के पदार्थों की प्रतीक्षा कर रहे थे। रुक्मिणी चावल पका रही थी। श्याम ने भूख के मारे उत्तेजित होकर कुछ कठोर बाते कही। रुक्मिणी ने उनको सहन नही किया। उसने उबले हुये चावलो के बरतन को उलट दिया और वह पहाड़ी पर चली गयी।

लोगों के कहने के अनुसार, देवताओ का कोप कभी बेकार नहीं जाता। ग्रीस के देवताओ की भी यही दशा रही है और हिन्दुस्तान के देवता तो अपने इस चमत्कार के लिये प्रसिद्ध ही हैं। हुआ यह कि खौलते हुए चावलों के पानी से गरम झरने की सृष्टि हुई और वह आज तक गरम पानी देता है। यह सीताकुण्ड एक झरने के आकार-प्रकार में है। इस कुण्ड के पास रुक्मिणी की मूर्ति स्थापित की गयी है और लोग अब तक उस प्रतिमा की आराधना करते हैं।

यह एक जगली स्थान है जो आने वाले यात्रियों के लिये काफी नही है, इस छोटे-से स्थान मे घोडो, पैदल यात्रियो और अनेक प्रकार की गाडियो की बड़ी भीड़ हो गयी है, जो इस सीमित स्थान की कारण बन गयी है।

इस कुण्ड के बढे हुये जल को बाहर निकालने के लिए एक नाला है, यह नाला झरने के पास से निकला है। उस कुण्ड में जब पानी बढ जाता है तो बढा हुआ जल इसी नाले से निकल जाता है। इस नाले के किनारे-किनारे खजूर के पेड खड़े है। यह नाला ऊँची-नीची, टूटी-फूटी चट्टानो से होकर टेढे-मेढ़े रास्ते से चलता हुआ आगे जाता है। इस नाले के सभी दृश्य हमको अपने जीवन का तरीका बताते हैं।

दाहन, २६ नवम्बर—पन्द्रह मील तक हम जो रास्ता चलते रहे, वह अच्छा नही था। वास्तव में वह रास्ता नही था, बल्कि जो जमीन चलने के योग्य नही थी, उसको रास्ता बनाया गया था और जब लोग उधर से चलने लगे तो उसी को लोग रास्ता कहने लगे। पहाडी क्षेत्रो के जंगली और कँटीले स्थानो की तरह इस स्थान को देखकर कोई नवीनता का अनुभव करे, यह दूसरी बात हैं अन्यथा यहाँ पर आकर्षण की कोई भी चीज नही पायी जाती।

हमारे मानचित्रों में इस क्षेत्र को बहुत गलत तरीके से दिखाया गया है। उसमें यहाँ के न तो शासन-सम्बन्धी कुछ अच्छे स्थान हैं और न उनका स्पष्टीकरण है। इसके साथ-साथ नदी-नालो के स्थान तो बहुत बेहूदा तरीके से दिखाये गये हैं। किसी की भूलो का बताना मैं बुद्धिमान की बात नही समझता। इसलिये कि सही रूप देने और सुधार करने की अपेक्षा भूल बताने का कार्य अत्यन्त सरल है और उसे कोई भी

कर सकता है। लेकिन उसको सही रूप देना अथवा उसमे सुधार करना बहुत कठिन है।

मैं यहाँ पर जो काम कर रहा हूँ, मेरा आजकल का स्वास्थ्य उम्र के बिल्कुल अनुकूल नही है। मैंने पहले-पहल इस तरफ बहुत ध्यान दिया था और उन दिनो में मैंने बहुत कुछ काम भी किया था। आजकल अगर मेरा स्वास्थ्य ठीक होता तो मैं सब कुछ छोडकर यहाँ का मानचित्र ठीक करता और उसमे इस क्षेत्र के सभी प्राकृतिक तथा राजनीतिक स्थानो को सही रूप तथा स्थान देता। लेकिन मेरे लगातार गिरते हुये स्वास्थ्य ने मेरी इस अभिलाषा को पूरी होने से रोक रखा है। अपने स्वस्थ जीवन मे यदि मैं ऐसा कर सकता तो मुझे कितना आत्म-संतोष होता, इसे मैं ही जानता हूँ।

दोहन से दो मील पहले ही हमने पहाडियो को पार कर लिया। जहाँ पर हमने पार किया, उस स्थान को हेतिया गाँव कहा जाता है। दो खूबसूरत यहाँ पर झरने हैं, वहाँ का स्थान चौडा है और विभिन्न प्रकार के छोटे-बडे पेडो तथा पौधों से भरा हुआ है। इन दोनो झरनो के बीच में हेतिया गाँव बसा है। इनमें एक झरने का नाम मछन्दरी है। उसके ऊपर हलू के पेडो और घने सरपतो की छाया पड़ती है। इस घनी छाया मे भी झरने के जल के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं।

दोहन नदी का जल यहाँ पर विशेष रूप से खराब माना जाता है। लोगो का कहना है कि इसके जल से आमतौर पर जलोदर का रोग उत्पन्न हो जाता है। लोगो का यह भी कहना है कि इस नदी के पानी का प्रभाव कभी-कभी इतना अधिक हो जाता है कि उसके पास के गाँव तथा बस्तियो के लोग अपने स्थानो को छोडकर चले गये हैं और वे गाँव बरबाद हो गये हैं। इस समय हम जिस स्थान पर हैं। वह समुद्र के किनारे से छै मील के फासिले पर है।

कोरवार, २७ नवम्बर—इस स्थान की यात्रा के इक्कीस मील निकले। जिन स्थानो से हम लगातार गुजर रहे थे, वे एक दूसरे से भिन्न थे और उनके परिवर्तन देखकर हमें एक प्रकार का नया सुख मिलता था। इसलिये कि अच्छी से अच्छी एक ही चीज लगातार प्रसन्न करने वाली नही होती। नवीनता परिवर्तन मे आती है और उस परिवर्तन में ही प्रसन्नता का अनुभव होता है।

तुलसीश्याम से चलकर हमने बावरिचावाड के ऊसर और पहाडी क्षेत्रो को पार किया और वहाँ से आगे चलकर आज नोसगेर जिले मे पहुँच गये। उसके बाद हरी घास से भरे हुये रास्ते पर चलते रहे। आरम्भ के चार मीलो का ऐसा रास्ता मिला, जिसमे टेढे-मेढे ककड बिखरे हुए थे। उन ककडो मे चमकोले पत्थरो के दाने मिले हुये थे। हमे बहुत दूर तक जमीन कुछ इसी प्रकार की मिली। वहाँ की फैली हुई छोटी-छोटी घास में साँपो की चाल की तरह पक्तियाँ बनी हुई थी।

यहाँ के हरे-भरे मैदानो में प्रवेश करने के कुछ ही देर पश्चात् हमने उस नदी को पार किया, जिसका जल कांच के रंग का था। उसका जल बहुत साफ था और बहुत गहरा था किन्तु उसके फैलने के लिये स्थान नही मिला था, इसीलिये उसकी चौड़ाई बहुत कम थी। उस नदी के दोनो किनारो पर हरी घास के सिवा छोटे-छोटे पेड़ भी थे।

इसके बाद थोड़ी ही देर मे हमने संगवरी गोरीदार के करीब दूसरी मच्छन्दरी को पार किया। यहाँ पर पेन्सिल का कार्य बहुत अच्छा किया जा सकता है। गाँव के ऊपरी भाग मे किला और बुर्ज बने हुये हैं। उनका आधार एक मजबूत चट्टान है। वे अब बुर्ज काले रग के हो गये हैं। पहाड़ी के ऊपर निकले हुए मालूम होते हैं, मानो वे रखवाली कर रहे हैं।

यहाँ पर एक ओर गिरनार के शिखर है, दूसरी तरफ समुद्र के किनारे बसे हुए नगर हैं। उनकी ऊँची चट्टानो के कारण समुद्र के दृश्य आँखो से ओझल हो जाते हैं। हमने इस यात्रा मे जामुनवाड़ा और भील नामक गांवो के बीच विजयनाथ महादेव के मन्दिर के टूटे हुए भागो मे दोपहर के समय विश्राम किया। यह मन्दिर एक छोटे से झरने के करीब एकान्त स्थान मे बना हुआ है। उसमे प्रवेश करने का दरवाजा तो अभी तक बना हुआ है और निज-मन्दिर भी, जिसमें देवता की मूर्ति भी बनी हुई है, साधारण अवस्था मे सुरक्षित है। लेकिन मन्दिर का प्रमुख भाग टूटकर नष्ट हो गया है। मैं देर तक उस टूटे हुए भाग को देखता रहा।

मन्दिर के पुजारी को देखकर मुझे कम रहस्य नही मालूम हुआ। वह बिल्कुल मन्दिर के समान था। जिसने इस मन्दिर मे वर्तमान पुजारी की व्यवस्था की है, उसने बडी दूररदेशी से काम लिया है। पुजारी बिल्कुल मन्दिर के अनुकूल और अनुरूप है। मन्दिर अगर श्मशान की भूमि है तो पुजारी उस श्मशान भूमि का मुर्दा है। वह अपने-आपको जोगी कहता था। लेकिन वह एक रोगी था और जब मैंने उसको देखा, तब वह तमाखू के पत्तो की गड्डी को धूप में सूखा रहा था।

इसी समय मेरे मार्ग-दर्शक रैबारी ने शिव की मूर्ति के सामने जाकर सिर झुकाने के साथ ही प्रणाम किया और अराधना मे कुछ शब्दो का उच्चारण किया। मैं समझता हूँ कि इष्ट देव की मूर्ति के सामने जाकर अपने व्यक्तिगत सुख और साधनो के लिये उसने प्रार्थना की थी कि उसकी गायें झरने की भाँति दूध देने लगें। यह स्थान आदि पुष्कर के नाम से प्रसिद्ध है। मैंने आज पहले-पहल सुना कि इस नाम के बारह तीर्थ-स्थान हैं।

मैंने इस देश के बाईस वर्षों के जीवन काल मे कितने स्थानो को देखा है, उनमें हरियाणा के सिवा यही एक ऐसा स्थान है, जिसको मैं पशु-पालन के लिये

सबसे अच्छा समझता हूँ। यहाँ पर मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि यहाँ के लोगों में ठीक उसी प्रकार की सादगी है, जिस प्रकार की यहाँ के लोगो के कार्यों के अनुसार होनी चाहिये थी।

यहाँ सम्पन्न और विस्तृत मैदानो में रहने वाले लोग रैवरी कहलाते हैं। इस नाम से उत्तरी भारत में प्रायः ऊँट चराने वालो अथवा उनके पालने वालो का अनुमान होता है। लेकिन यहाँ पर इस नाम का अर्थ -चरवाहा अथवा गडरिया कहा जाता है। और उनकी बहुत-सी जातियाँ होती हैं। उनकी इन जातियो को वर्ग भी कहा जा सकता है। वास्तव मे उस जाति की शाखाओ को मूल जाति की उप जाति समझना चाहिए।

कुछ दूर तक खोज करने वालो ने इस जाति मे हूणो का भी सम्मिश्रण माना है। यहाँ के घास से भरे हुए चरागाहो मे झुन्ड के झुन्ड चरने वाले पशुओ को देखकर हमको बडा आनन्द मालूम हुआ। आकृति, सौन्दर्य और शक्ति मे यहाँ के पशु कदाचित् हिन्दुस्तान मे सबसे अच्छे साबित होगे। इसके पहले मैंने हरियाणा के पशुओ की प्रशसा की है। कर्नल स्किनर के खेतों में जिन चरने वाले पशुओ और विशेषकर गायो को देखा है, उनकी कोई भी प्रशसा करेगा। वहाँ पर मैंने अच्छे घोडे भी देखे है, जिनके मस्तक अरबी घोडो की तरह के थे और उनकी आँखे देखने मे बडी अच्छी मालूम होती थी। बेचे जाने पर इनकी अच्छी कीमत मिलती है। यहाँ की गाये बहुत स्वस्थ और देखने में अच्छी हैं। उनके बछडो से अच्छे बैल तैयार होते हैं। मैं इस बात को मानता हूँ कि रैवारी जाति के लोग ईमानदार और सीधे होते है। इसे मैंने भली प्रकार समझा है।

मेरे साथ जो मार्ग-दर्शक है, वह स्वय पशुओ का पालन करता है। उसके व्यवहार मे सभ्यता और नम्रता है। लगातार चौदह मील तक चलने के बाद उसका गाँव दिखायी पडा तो मैंने चाहा कि वह अपने गाँव चला जाय और इसीलिये मैं उसको कुछ चाँदी के रुपये देने लगा। परन्तु उसने लेने से इन्कार कर दिया और कहा—मैं तो बडी खुशी के साथ पूरी यात्रा मे आपके साथ रहता लेकिन मेरी एक भैंस दूध दुहने के वक्त किसी दूसरे को पास नही आने देती।

इतना कहकर वह कुछ रुका। जिस गाँव मे हम लोगो को पहुँचना था, उसकी तरफ इशारा करके एक झोपडी को देखते हुए उसने कहा—"लेकिन कोई ऐसी बात नही हैं। वहाँ पर मेरा भाञ्जा है। आप उसका नाम लेकर आवाज लगाइये, वह फौरन आ जायगा।"

यह कहकर वह जब अपने घर को तरफ चलने को हुआ तो उसने प्रसन्न होकर बिदाई की सलाम की और फिर अपने रास्ते पर चल पडा। मैं उसकी तरफ

देखता रहा। इसके बाद वह फिर लौटा और बडे विनम्र शब्दो मे कहते हुए उसने प्रार्थना की—आप मुझको कभी भूलियेगा नही।

मुझे उसकी यह बात बहुत अच्छी लगी। मैंने प्रसन्न होकर गम्भीरता के साथ उससे कहा—नही, मैं कभी नही भूलूंगा।

वह मुझसे विदा होकर चला गया। उसके बाद मुझे प्रायः उसका स्मरण आता रहा। वह एक किसान था, लेकिन ईमानदार था और दूसरो से प्रेम करना जानता था। उसने न भूलने के लिये जिस प्रकार मुझसे बात कही थी, उसको मैं प्रायः याद करता हूँ। उस समय उसकी और भी बहुत सी बाते याद आती है।

मैंने और भी एक ग्रामीण आदमी को देखा, जो अपनी रोटी को तोडकर दूसरे को देते हुए आग्रह कर रहा था। इस तरह के लोगो की बातो के आधार पर और उनके साधारण व्यवहार मे उनका सतोष देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि इन लोगों का रहन-सहन और स्वभाव इनके जीवन के बिल्कुल अनुकूल है।

मैने अपने मार्ग-दर्शक के भाञ्जे को आवाज दी, उसे सुनकर वह तुरन्त मीठिया की ढाणी मे से निकलकर आया। मुझे कोरवार तक पहुँचना था। इसलिये मैंने उसको वापस भेज दिया। कोरवार उस स्थान से सामने दिखायी पड रहा था। इसलिये मैं उसकी तरफ बढा।

ये बुर्जे, जो गाँव की रक्षा के लिये बनायी गयी मालूम पडती हैं, इस क्षेत्र के दृश्यों मे विशेष महत्व रखती है। ये बुर्जें प्रायः दो-दो मंजिल ऊँची हैं। बत्तीदार बन्दूके छोडने के लिये बने हुए सूराखो के दो-दो घेरे उन पर बने हुए हैं। कुछ बुर्जों पर साधारण मिट्टी की छते है और कुछ की छते फूस के छप्पर से बनी हुई हैं। उनमें सहज ही आग लग सकती है और फिर उनमे किसी प्रकार इनमे आश्रय पाने वालो को रक्षा नही मिल सकती।

कोरवार से एक मील आगे हमने उस झरने को पार किया, जो सौराष्ट्र के सभी झरनों से श्रेष्ठ था। वह सिगोरा के नाम से प्रसिद्ध है। बहुत-से लोग उसे निकुन्ती भी कहते हैं। इस झरने का साफ जल सुन्दर मैदानो से होता हुआ ककरीले स्थान पर जाकर गिरता है। उसके किनारे बट के ऊँचे-ऊँचे पेड़ हैं। यहाँ पर अपने घोड़े से उतरकर मैं खेमे तक पैदल गया। मेरे खेमे के पीछे कोरवार का किला है और झरने के पास ही रणछोड़ का मन्दिर है। यह झरना चिरचेए नामक पर्वत से निकलता है और उत्तर की तरफ छै मील दूर महादेव के मन्दिर के पास होकर मूल द्वारिका के पर्वत के करीब समुद्र में जाकर गिरता है। द्वारिका के पास इसका वेग इतना बढ़ जाता है कि वहाँ पर वह एक टापू के रूप मे दिखायी देता है।

हिन्दूओ और विशेषकर वैश्णवो के लिये यहाँ की भूमि का प्रत्येक टुकडा पवित्र है। इसलिये कि वे इस स्थान को कन्हैया के अवतार से भी बहुत पहले मूल-द्वार अथवा देव-भूमि का प्रवेश-पथ मानते आ रहे हैं।

मुख्य रूप से यह प्रतिमा कच्छ की खाडी के बिल्कुल सामने की भूमि पर वेट द्वीप के मन्दिर मे स्थापित थी। लेकिन इधर चौदह सौ वर्ष बीत गये, यह मूर्ति वहाँ से हटा ली गयी है और ब्राह्मणो ने मूल रणछोड नाम की ख्याति से बहुत अधिक लाभ उठाया है।

हिन्दू लोग गायकवाड के दीवान को धर्म प्रियता के लिये भी बहुत अनुगृहीत हैं, जिसने नये मन्दिर का निर्माण करवा के उसमें सोमनाथ के एक बहुत प्राचीन शिव की मूर्ति स्थापित की है। इन दोनो प्रतिमाओ का पूजन करने के लिये आखा तीज अथवा अक्षय तृतीया यानी वैसाख मास की तीज को बहुत बडी भीड लग जाती है। और दूर दूर से लोग आते हैं।

यहाँ से लगभग वारह कोस के फासिले पर एक दूसरा पवित्र स्थान है, जो गोपति प्रयाग के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर पानी के सोते से निकल कर एक छोटा-सा झरना वहता है, जो गगा के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर सन्यासियो का एक मन्दिर है, उसका खर्च इसके जल मे स्नान करने वाले यात्रियो की श्रद्धा पर निर्भर है। कोरवार का महत्व धार्मिक और राजनीतिक—दोनो तरह से है। इसलिये कि यह स्थान चौरासी गाँव मे प्रमुख माना जाता है।

शूद्रपाडा, २८ नवम्बर—यहाँ की यात्रा सोलह मील की थी। जो वडे अच्छे ढंग से पूरी हुई और हमने एक अच्छे प्रदेश मे प्रवेश किया। अभी तक हमने पहाडी भूमि के गरीब किसानो और दूसरे लोगो की बस्तियो मे यात्रा की थी। लेकिन अब हमने कोरवार के मैदानो मे सुखी किसानो की वस्तियो में प्रवेश किया।

सौराष्ट्र के पहाडी इलाको की हालत दूसरी थी। वहाँ पर मकानो के स्थान पर झोपडियाँ थी, स्थान पर ऊँची-नीची चट्टाने थी और न जाने कितने तरह के झरनो के हमने वहाँ पर दृश्य देखे थे। परन्तु यहाँ का दृश्य दूसरा है। यहाँ का रहन-सहन सभ्यता से भरा हुआ है। यहाँ के लोगों की बहुत-सी वाते आज के युग की तरह की हैं।

झगडालू, लुटेरू, शिकारी लोगो और आक्रमणकारियो के वीच मे घूमते-घूमते तबीयत कुछ ऊब गयी थी। अब इस नयी यात्रा मे परिस्थितियाँ वदली हुई दिखायी देती है। यहाँ पर तलवारो का स्थान वहुत-कुछ हल के फाल ने ले लिया है और खेती का काम करके यहाँ के लोगों ने अपने परिवारों को सम्पन्न बनाया है। इतना होने पर भी हमे यह तो मानना ही पडेगा कि यहाँ के लोगो की सैनिक आदतें अभी तक

बनी हुई हैं और अपनी उन्हीं आदतों के कारण ये लोग अपनी रक्षा के लिये किसी प्रकार कमजोर नही है।

प्रत्येक गाँव मे उसकी रक्षा के लिये चौकोर ऊँची बुर्जे दिखायी देती हैं और मुसलमानो की मस्जिदे तथा मजारें सुनसान मालूम होती है। हम सिंगुर, लोदवा, पछनौरा और मुख्य शूद्रपाड़ा जैसे ग्रामो से होकर गुजरे। प्रत्येक स्थान पर उसके दृश्य देखे, उनके रहने के स्थानों को देखा। यहाँ के रहने वाले अधिकांश अहीर, गोहिल और केरिया जाति के हैं। अहीर पूरे तौर पर चरवाहे हैं और केरिया जाति के लोग राजपूत हैं। लेकिन अब वे कृषक हो गये हैं, वे अपनी खेती में अच्छी फसले तैयार करते हैं।

शूद्रपाड़ा के पास एक सूर्य मन्दिर है। उसमें सूर्य देव की प्रतिमा स्थापित की गयी है। उस प्रतिमा में अब बहुत परिवर्तन हो गया है। ग्रीक देवताओं के समान हिन्दुओं के देवताओं में उनकी स्त्रियो को भी समान रूप से सम्मान मिलता है। कुछ इसी प्रथा के अनुसार जो पुरुषो की मुर्तियाँ हैं, उनके पास ही उनकी स्त्रियों की मूर्तियाँ भी स्थापित की गयी हैं। इस प्रकार की स्त्रियो की मूर्तियो में हमने रेणादेवी की प्रतिमा देखी।

जहां पर सूर्य का मन्दिर है, वहाँ पर पानी का एक कुण्ड भी पाया जाता है। यहां के कुण्ड पर एक शिलालेख है, उससे इतना ही मालूम होता है कि चार सौ वर्ष पहले इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ था।

इसके करीब एक दूसरा मन्दिर है, वह नौ दुर्गा का मन्दिर कहलाता है। उसमे छोटी-छोटी नौ मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर से पूर्व की तरफ कुछ फासिले पर एक कुण्ड है, जो प्राचीन ऋषि च्यवन के नाम से प्रसिद्ध है।

उत्तर की तरफ लगभग सात मील के फासिले पर प्राचीन नाम का एक स्थान है, वह सरस्वती नदी का निकास होने के कारण बहुत पवित्र माना जाता है और यहाँ पर यात्रियो की भीड भी बहुत होती है, जो दूर-दूर से आये हुए होते हैं।

इसके पास ही मधुराय का मन्दिर है। वह बहुत-कुछ भारतीय अपोलो की तरह का है। इसके विषय में कहा जाता है कि इसकी देवप्रतिमा पर आने वाले यात्रियो की श्रद्धा बहुत है और वे अपनी बडी-बड़ी आशायें लेकर यहाँ पर आते हैं।

इसी स्थान पर लूटेश्वरनाम का एक छोटा-सा मन्दिर है। यह मन्दिर लूट-मार के देवता का मन्दिर कहलाता है। इस क्षेत्र के लोगों में इसको बहुत मान्यता प्राप्त है। इस देवता को लोग शिव का स्वरूप मानते हैं। उनके इन विश्वासों के सम्बन्ध में हमें अधिक कुछ नही कहना चाहिये। फिर भी मेरी समझ में इसको मरकरी

अथवा बुध-ग्रह मानना अधिक सगत मालूम होता है। क्योकि आगे चलकर यह जाहिर होता है कि इस ग्रह मे समुद्री डाकुओ का—जो इस तट पर प्राचीनकाल से रहते आये हैं—संरक्षण का गुण है।

पूजा और इसके विभिन्न मेले—जो साधारण रूप मे इस क्षेत्र में हुआ करते हैं—प्राची मे वडे विस्तार मे पाये जाते हैं। वहाँ पर भीड बहुत होती है, इसलिये कि उनमे आस-पास के गावो के लोग तो आते ही हैं, शहरो से ब्राह्मण और बनिये भी बडी संख्या में आते हैं। यही नही, बल्कि पहाडी और जगली स्थानो के लोग भी यहाँ आते हैं और मेलो मे सम्मिलित होते हैं।

सोलहवाँ प्रकरण

मंदिरों का निर्माण और भारत की सम्पत्ति

'सोमनाथ और देवपट्टण—सूर्य-मन्दिर की कथा—कन्हैया का निर्माण स्थान—मन्दिरो का निर्माण और उनके जीर्णोद्धार—सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर—मूर्तिभञ्जक महमूद—सोमनाथ के मन्दिर का पतन—पातालेश्वर की प्रतिमाये—कृष्ण के विभिन्न रूप—मन्दिर में मस्जिद और पुजारी मे मुल्ला के दृश्य—हाजी की करामात ।

पट्टण सोमनाथ, २६ नवम्बर—देवपट्टण भारत मे एक प्रसिद्ध नगर है, उसे शुद्ध रूप में देवपत्तन कहा जाता है, अर्थात् देव का प्रमुख निवास । जो नगर इतना प्रसिद्ध था और जिसकी ख्याति पहले से हमने सुन रखी थी, यात्रा करते हुए हम उसके पास तक पहुँचे और उस प्रसिद्ध नगर के दर्शन किये ।

हमारे पिछले मुकाम से यहाँ तक सात मील का फासिला है, इस रास्ते की जमीन बराबर, उसकी मिट्टी अच्छी और यहाँ पर खेती की फसले उत्तम होती हैं । यहाँ पहुँचकर हमको त्रिवेणी पार करनी पड़ी । यहाँ पर व्रजिनी, सरस्वती और हिरण्या अर्थात् स्वर्णमयी का सगम है । पहली नदी दलदल मे होकर प्रवाहित होती है, इसलिये उसके जल की कोई प्रशंसा नही की जा सकती । लेकिन शेष दोनों नदियों का जल स्वच्छ और निर्मल है ।

तीसरी नदी को पार करने के बाद सूर्य का शिखरहीन मन्दिर और नगर के परकोटे की बुर्जे पेड़ो की पत्तियो के बीच के रास्तो से दिखायी पड़ने लगी । इसी समय आठ सौ वर्ष पहले के महमूद के आक्रमणो, अत्याचारों और भयानक दृश्यो की स्मृतियाँ जाग्रत हुईं । उस समय पीड़ित लोगो पर क्या गुजरी होगी और उस सहार मे स्त्री-पुरुषों ने क्या सोचा होगा ? इन प्रश्नो को लेकर विभिन्न प्रकार की बाते मन मे उठने लगी । यहाँ की यात्रा करने वालो और इस मन्दिर के दर्शन करने वालो को दिलो मे आने के पहले ही क्या कुछ भावनाये न उठती होगी ? महमूद नही रहा लेकिन अकारण जिसने इस प्रकार के अत्याचार यहाँ आकर किये थे, वे इतिहास के पन्नो से कभी मिटाये नही जा सकते ।

इस प्रकार की बातों को सोचता और उन पर विचार करता हुआ मैं अपने मार्ग पर बढ़ता रहा और चलते-चलते कुछ समय के बाद मैं मुसलिम सत अब्बीशाह की मजार के पास पहुँच गया । लेकिनमैं वहाँ पर एक क्षण के लिये भी ठहरा नही और

सूर्य-मन्दिर तेजी से पहुँचने की चेष्टा करता रहा। वह मन्दिर अब उजाड हो गया है और पालतू पशुओं के बाँधने का स्थान मात्र रह गया है। उसका शिखर टूट गया है। मन्दिर के दूसरे भाग भी गिर गये हैं और उनके ढेर वही मन्दिर मे दिखाई पडते हैं।

यह मन्दिर बहुत विस्तृत और विशाल नही है, लेकिन अपनी बनावट और मजबूती मे यह किसी समय सम्मानित रहा होगा, ऐसा अनुमान इसको देखकर होता है। दीवारें बडी कारीगरी के साथ बनाई गई हैं। भवन के नष्ट हो जाने पर भी उसके कुछ भाग आकर्षक मालूम होते हैं। लेकिन जो सामग्री इसके बनाने मे लगाई गई है, उसमे बजरी अथवा बजरी की तरह की मिट्टी अधिक मालूम होती है। मन्दिर के आसानी से टूटने का यह एक बडा कारण मालूम होता है। फिर भी, यह तो साफ जाहिर है कि मन्दिर जब-जब बना होगा, उस समय यह प्रभावोत्पादक और आकर्षक रहा होगा।

मन्दिर का प्रवेश द्वार अच्छा बना हुआ है। उसकी लकडी उत्तम और खूबसूरत होने का आज भी प्रमाण देती है। उस पर की गई पालिश-अब तक अपने अस्तित्व को कायम किये हुए है। ऐसा मालूम होता है कि जिस लकडी से यह फाटक बनाया गया था, वह लकडी कदाचित् सगमरमर के जात की रही होगी।

मन्दिर के मण्डप का व्यास सोलह फीट से अधिक नही है, जो मजबूत खम्भो पर रखा हुआ है। उसके चारो तरफ बरामदे हैं। उसके किनारे पर चौकोर खम्भे हैं, वे बाहर की दीवार की तरफ से आने पर मिलते हैं। मण्डप के आगे एक बारण्डा बना हुआ है। उसकी छतरियाँ चौकोर हैं और खम्भो पर रखी हुई हैं। यहाँ से होकर निज-मन्दिर मे जाने का रास्ता है। वहाँ पर सिन्दूर से रगा हुआ एक गोल निशान बना हुआ है। उसको सूर्य-देवता का चिन्ह माना जाता है।

महमूद ने यहाँ पर तोड फोड किया था, उसकी पूर्ति नहरवाला के राजा ने करवा दी थी। लेकिन धर्म के नाम पर राक्षस होकर जिस अल्ला ने इसके शिखेर को तोडा था, उसको आज बनवाया नहीं जा सका। मन्दिर के उत्तर मे चट्टान को खोदकर बनाया गया सूर्य-कुण्ड है। उसमे नीचे जाने के लिये छोटी-छोटी बहुत-सी सीढियाँ बनी हुई हैं।

कहा जाता है कि सूर्य-कुण्ड का जल शारीरिक और मानसिक रोगो को अच्छा करता है। लेकिन इसके लिये रोगी को स्नान करने के लिए बहुत समय की मियाद दी गयी है। इस स्नान के साथ रोगी की पूर्ण श्रद्धा होना चाहिये और सेहत-लाभ करने के लिये उत्तम कार्य करना चाहिये। तभी इस कुण्ड का स्नान रोगो को दूर करने मे सफल हो सकता है।

हमको बहुत अच्छे आदमियो के द्वारा मालूम हुआ कि जिन लोगों पर भगवान की कृपा नही होती, उनकी पहचान यह है कि उनके पास जितनी चाँदी होती है, अथवा जितनी चाँदी लेकर यात्री यहाँ पर आते हैं, भगवान की कृपा न होने के कारण वह सब चाँदी पीतल हो जाती है। लोगो की इन बातो को सुनकर मैंने यह नतीजा निकाला कि श्रद्धावान व्यक्ति को इस जल में स्नान करने के पहले ही अपनी समस्त चाँदी सूर्य मन्दिर के पुजारी को दे देना चाहिये। दूसरा नतीजा यह कि जो लोग अपने पास की चाँदी अथवा चाँदी के रुपये साथ रखते है, उनको यह समझाया जाता है कि उनके पापो के कारण उनकी वह चाँदी अथवा चाँदी के सिक्के पीतल में बदल जाते हैं।

लोगो के इस विश्वास में एक रहस्य छिपा हुआ है। उस कुण्ड के जल में कोई ऐसा रासायनिक तत्व पाया जाता है, जो चाँदी को पीतल कर देता है। ऐसा दशा में यात्री अपने साथ की चाँदी को बचाने के लिये उसे पुजारी के हवाले कर सकते हैं। किसी भी सूरत में रोगी अथवा यात्री की वह सम्पत्ति पुजारी की सम्पत्ति हो जाती है।

सूर्य के देवता के मन्दिर से निकल कर मैं सिद्धेश्वर के मन्दिर में आ गया। वह मन्दिर एक अँधेरी चट्टान को काटकर बनाया गया था। वहाँ पर अन्धकार था और नमी थी और उस मन्दिर की बहुत नीची छत टूटे-फूटे खम्भो पर किसी प्रकार रखी हुई थी। कोई भी उसको देखकर डल्फास (१) की गुफा का अनुमान लगा सकता है। यद्यपि हमारे इस अन्धे ओलिया की जो भविष्यवाणी होती थी, वह अप्रिय होने के साथ-साथ सत्य निकला करती थी। यह मन्दिर कैसा भी बना हुआ हो, वह अधकारपूर्ण नरक मालूम होता था। हिंगलाज माता (२) और पातालेश्वर की मूर्तियो के सिवा एक छोटे-से मण्डप की दोवार पर नौ छोटी-छोटी मूर्तियाँ खुरेद कर बनी हुई थी। उनको अन्धे महन्त ने नवग्रह बताया था, वे ग्रह जो मनुष्य के भविष्य पर शासन करते हैं।

---

(१) ग्रीस का डल्फी नगर जहाँ पर भविष्यवाणी होती थी।

(२) हिंगलाज माता को चारण लोग आदि शक्ति का अवतार मानते हैं। उपाख्यानो मे चारण लोगो को इसे पहली कुलदेवी कहा गया है। इसका प्रमुख स्थान बिलोचिस्तान बताया गया है। लोगो का यह भी कहना है कि आरम्भ में चारण लोग इसी देवी की छाया मे बिलोचिस्तान मे रहा करते थे। उसके बाद वे दक्षिण और पूर्व की तरफ चले आये। उनके कुछ वंश गुजरात और काठियावाड मे बस गये और कुछ राजस्थान की तरफ चले गये। जहाँ-जहाँ पर ये लोग गये, वहाँ हिङ्गलाज के मन्दिर बनाते गये।

गुफा के सामने एक छोटा-सा आँगन है। उसकी पुरानी दीवारो का जीर्णोद्धार हो चुका है। उसकी इस मरम्मत में दूसरे पुराने मन्दिरो को सामग्री काम मे लायी गयी हो, यह भी सम्भव हो सकता है। इसके प्रत्येक भाग मे मूर्तियो के टुकडे मौजूद हैं।

इसके आँगन मे बट के पेड खडे हुए हैं। कहा जाता है कि वे पेड शिवजी को बहुत पसन्द है। यहाँ पर अन्वेषको के लिये कोई आकर्षक स्थान नही है। फिर भी पुराणो के जानकार लोगों के लिये बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है। क्योकि जो सामग्री उनको मिलेगी, उसे वे विश्वास की दृष्टि से देखेगे।

इस गुफा से चलकर मैं उस स्थान पर गया, जिसको हिन्दू लोग अत्यन्त पवित्र मानते हैं, जहाँ पर गोपालदेव मोक्ष के धाम को गये थे। हम इसके पहले किसी दूसरे स्थान पर यादव लोगो के इतिहास का वर्णन कर चुके हैं, वे अपने जीवनकाल में पूरा सम्मान पा चुके थे और जो कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। भक्तों ने उनको श्याम कहकर भी सम्बोधन किया था। इसका कारण कदाचित् यह कि उनके शरीर का रङ्ग साँवला था। वे अपने अनेक नामो से विष्णु का अवतार माने जाते थे। बहुत से लोग उनको कन्हैया भी कहते थे।

कौरवो और पाण्डवो के आपसी युद्ध में कृष्ण ने पाण्डवो का पक्ष लिया था और बनवास के दिनो मे भी उनका साथ दिया था। उन दिनो मे कृष्ण ने मदन मोहन मुरलीधर का रूप छोड़ दिया था और अपने उस वेष को बदल दिया था, जिसमे वे बशी बजाते हुए सूरसेन देश के गोकुल मे गाये चराते थे और गोपियो को मोहित किया करते थे। लेकिन अब इण्डो-गेटिक जाति के प्राचीन शस्त्र चक्रसुदर्शन (१) को धारण करके चक्रधारी बन गये थे।

कृष्ण सौरो के क्षेत्र मे विजेता होकर आये थे, लेकिन वे विजेता रह नही सके। इसलिये कि उनको चेटि के राजा (२) से भयभीत होकर भागना पड़ा था और यहाँ आकर उन्होने शरण ली थी। यही कारण था कि उनका नाम रणछोड़ प्रसिद्ध हुआ था। इसके सम्बन्ध में पहले हम लिख चुके हैं।

यहाँ पर हमारा अभिप्राय और कुछ नही है। उनका कोई भी नाम पडा हो और किसी भी नाम से उन्हें पुकारा गया हो, उनको मानने वाले लगातार नये भक्त मिलते रहे। सबसे बडी बात तो यह रही कि रणछोड जैसे शब्दो और नामो का कुछ भी अर्थ हो, हिन्दुओ का विश्वास उनके प्रति सदा बढ़ता रहा और उनकी श्रद्धा में कभी

---

(१) भारत मे सिखो को छोडकर अब कोई इस शस्त्र का प्रयोग नही करता।

(२) कृष्ण चेटी के राजा से डर कर कभी नही भागे। जरासध के आक्रमण पर भागने से रणछोड नाम पडा।

किसी प्रकार की कमी नही आयी । यद्यपि रणछोड़ का अर्थ रण से भागने वाला होता है, लेकिन हिन्दुस्तान की सम्पूर्ण हिन्दू जाति उनके विवेक और शौर्य पर विश्वास करती रही । हिन्दुओं मे जो लोग इस प्रकार कृष्ण के भक्त थे, उनमें राजपूतो की सख्या बहुत अधिक है । इसका कारण है । राजपूतो का जीवन-भर युद्ध करना काम रहा है और कृष्ण ने युद्ध मे ही दिलचस्पी ली थी । महाभारत नामक युद्ध कृष्ण के कारण लड़ा गया था और उसमे इस देश का बहुत बड़ा विनाश हुआ था । इस विनाश को बचाने के लिये अर्जुन ने युद्ध न करने का विचार किया था, उस समय विभिन्न प्रकार के उपदेश देकर कृष्ण ने अर्जुन को उत्तेजित किया और युद्ध कराया ।

कृष्ण के उस समय के उपदेश पर गीता नामक हिन्दुओ का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है । वह राजनीतिक था, लेकिन धार्मिक बनाया गया और उसमे बताया गया कि युद्ध करना राजपूतो का धर्म है । उस उपदेश के अनुसार, युद्ध हुआ और देश का बहुत कुछ विध्वस और विनाश हुआ । एक हरा-भरा देश उजड़ गया । उसके बाद युद्ध मे बचे हुए कुछ सम्बन्धियो को लेकर रक्तपात के अपराध का प्रायश्चित करने के लिये हिन्दुओं के ग्रन्थो के अनुसार कृष्ण जगतकूट नामक स्थान पर गये और अर्जुन, युधिष्ठिर तथा बल्देव आदि को लिये हुए वे एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की यात्रा करते हुए सोमनाथ तक पहुँचे । पवित्र त्रिवेणी मे स्नान करने के बाद दोपहर की कडी धूप मे कृष्ण ने अपने साथियो के साथ पीपल के वृक्ष के नीचे विश्राम किया ।

इन समस्त घटनाओ का वर्णन करने वाले हिन्दुओ के ग्रन्थ हैं । उन्ही ग्रन्थो के अनुसार, और बहुत कुछ जनश्रुति के आधार पर, जब कृष्ण उस पेड़ के नीचे लेटे थे, एक भील ने उनके पैर के तलवे मे पद्म चिह्न देखकर हरिण की आँख समझी, उसने बाण मारा, उस समय उनके साथी वहाँ पर न थे । जब वे लौटे तो उन्होंने कृष्ण को मृत दशा मे लेटे हुए देखा । बल्देव कुछ देर तक कृष्ण के मृत शरीर से लिपट कर विलाप करते रहे । अन्त मे साथ के लोगो ने तीन नदियो के सङ्गम पर कृष्ण का अन्तिम संस्कार किया । वहाँ पर एक पीपल का पेड था ही, जिसके नीचे लेटकर हिन्दुओं के अपोलो अर्थात् विष्णु ने प्राण छोडे थे, उसके सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार की जनश्रुतियाँ हैं, जो आज तक कही जाती है ।

जहाँ पर कृष्ण ने प्राण विसर्जन किये थे, ठीक उसी स्थान से सीढ़ियाँ हिरण्य नदी के जल तक पहुँचती हैं । उन सीढियो से चलकर यात्री लोग उस नदी मे स्नान करके अपने मन और शरीर को पवित्र करते हैं । कृष्ण के प्राण विसर्जन के कारण वह भूमि पवित्र भूमि होकर स्वर्ग-द्वार के नाम से प्रसिद्ध हुई । जो लोग इस स्वर्ग-द्वार के दर्शन करते हैं, उनके सम्पूर्ण पापों का शमन हो जाता है ।

उस स्थान पर भलका और पद्म कुण्ड नामक दो तालाब हैं । भल्का कुण्ड का

निर्माण बारह कोण देकर किया गया है। यह बारह कोण उसकी बारह भुजाये कही जाती हैं। उसका व्यास तीन सौ फीट के लगभग है। पद्म कुण्ड कुछ छोटा है और उसके जल की सतह पर कमल के फूल फूले हुए दिखायी देते हैं। लोगो का कहना है कि फूलो की खूबसूरती के कारण उसका नाम कमल पडा है।

इस कुण्ड के पूर्वी तट पर महादेव का एक छोटा-सा मन्दिर है। भक्त लोगो के द्वारा इन दोनो कुण्डो की बडी प्रशसा हुई है और आज तक होती है। इन दोनो कुण्डो की महिमा अकबर के शासन काल मे भी ठीक इसी प्रकार थी, जैसी कि आजकल है। उसका प्रमाण यह है कि अबुल फजल ने अपनी रचनाओ मे पीपलेश्वर और भलका को तीर्थ मानकर उल्लेख किया है। जहाँ पर यह पीपल का वृक्ष है, वही पर उसको स्पर्श करती हुई मुसलमानो की एक मसजिद है। इस क्षेत्र मे बहुत समय से हिन्दू राजाओ का आधिपत्य चला आ रहा है। परन्तु इस मसजिद के सम्बन्ध में कभी किसी ने आपत्ति नही की और वह अपनी उसी शान के साथ अपने स्थान पर ज्यों की त्यो मौजूद है।

यहाँ से हम हिरण्य नदी से ऊपर की तरफ आगे बढे और भीमनाथ के मन्दिर में पहुँच गये। शिव का यह दूसरा नाम है। इसका शिखर एक खेमे के समान मालूम होता है। उसकी छत पिरामिण्ड की तरह बनी है कदाचित् महाकाल का मन्दिर इसी तरह का बना हुआ है। इसको देखकर मेरे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि मैं इसके अतीतकाल का वर्णन करूँ। इसलिये कि इसमे एक बट के वृक्ष ने अपनी जडे पृथ्वी मे दूर तक भीतर पहुँचा दी हैं। साथ ही उसकी शाखाये मन्दिर की छत मे चली गयी है।

इस बट-वृक्ष को देखकर ऐसा मालूम होता है कि यदि कोई विशेष प्रबन्ध न किया गया तो यह विशाल वृक्ष इस मन्दिर के विध्वस का कारण हो जायगा। इस-लिये यह आवश्यक हो गया है कि इस वृक्ष को कटवा दिया जाय। लेकिन मन्दिर के पूजारियो और भक्तो के बस का यह कार्य नही है। इसलिये कि यह मन्दिर महाकाल का है और महाकाल सर्व सहारकारी का प्रभाव इस वृक्ष मे भी है। इसलिये डर के मारे वे इस प्रकार की बात सोचने मे भी डरते हैं। ऐसी दशा मे यह वृक्ष मन्दिर के लिये भयानक हो गया है।

यहाँ का सारा प्रबन्ध और उसकी व्यवस्था मन्दिर के पुजारी के अधिकार मे है। मैंने आवश्यक समझकर उससे इसके सम्बन्ध मे बाते की और किसी प्रकार उसको समझाना चाहा कि अगर वह मन्दिर का और मन्दिर के देवता का शुभचिन्तक है तो वह इस वृक्ष को कटवा दे। मन्दिर के लिये यह बहुत आवश्यक है। अगर ऐसा नही किया गया तो मन्दिर को पूरा खतरा है और यह वृक्ष इस मन्दिर के विध्वस का कारण हो जायगा।

मैंने बहुत ढङ्ग से पुजारी को समझाया और उसने मेरी बातो को सुना भी। लेकिन मेरी बातो को सुनते हुए वह अपने प्राण बचाने के लिये बहाना सोचता रहा। जब मैं अपनी बात कर चुका तो मैं उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय उस पुजारी ने मेरी बात को महत्व देते हुए कहा—आप बिल्कुल ठीक कहते है। परन्तु मैं बड़ी परेशानी में हूँ। एक तरफ कुआँ है तो दूसरी तरफ खाई है। मेरे दोनो तरफ खतरा है। मैं बडे असमंजस में हूँ।

उसकी बात से साफ जाहिर होता था कि वह बट के वृक्ष को कटवाने ने बहुत डरता है। इसलिये जो कुछ मैंने उससे कहा, मन्दिर की सुरक्षा के लिये जो कुछ समझाया, वह सब बेकार हो गया। वह पुजारी किसी प्रकार उस पेड़ को कटवाने के लिये तैयार नहीं हुआ।

इस मन्दिर के करीब एक दूसरा मन्दिर महादेव का है, वह कोटेश्वर कहलाता है। वह लाल पत्थर का बना हुआ है, उसमे और भी छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। मैं पापेश्वर के एक ऐसे मन्दिर मे पहुँच गया, जिसकी इमारत का कोई भी भाग गिरने से बेचा नही था। मैंने अपनी जिन्दगी मे पहली बार इस नाम के देवता को विश्व के देवताओ में सुना। कहा जाता है कि कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी इस पापेश्वर मन्दिर की प्रमुख पुजारिन ही नही थी, बल्कि इस मन्दिर का निर्माण भी रुक्मिणी ने ही कराया था।

अब यहाँ पर प्रश्न यह पैदा होता है कि लोगो का यह कहना क्या सही है? और अगर सही है तो इससे यह भी साबित है कि प्राचीनकाल मे पाप और पुण्य की परिभाषा एक दूसरे से अधिक अलगाव नही रखती थी। लेकिन इस प्रकार की कल्पना करने के बाद भी उस नाम का कोई सार्थक अर्थ नही निकलता। ऐसी सूरत मे इस प्रकार की जनश्रुतियो पर अधिक विश्वास नही किया जा सकता।

इसमे किसी प्रकार का कोई रहस्य है, यह भी नही कहा जा सकता, और आसानी से उसके नाम पर विश्वास भी नही होता। मन्दिर का नाम पापेश्वर होना, उसकी पुजारिन कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का होना और रुक्मिणी के द्वारा ही उसका निर्माण किया जाना, यह सब रहस्यमय है। इससे भी अधिक रहस्य उस समय सामने आता है, जब उसका नाम पापेश्वर मन्दिर हमको बताया जाता है। क्या रहस्य है, यह समझ मे नही आता।

मैंने अपनी शकाये लोगो के सामने रखी, जनश्रुतियो की आलोचना की और शका समाधान करने के लिये बड़े सोच-विचार मे पडा। लेकिन किसी सतोषजनक निर्णय तक नही पहुँचा। मुसलमानो के आक्रमण के समय यह मन्दिर तोड़ा गया, उसका कोई पत्थर सही नही रखा गया। लेकिन मन्दिर की जो मुख्य प्रतिमा है,

उसको ज्यों का त्यो छोड दिया गया। यह सब क्या है ? इस मन्दिर की सारी बातें रहस्यपूर्ण मालूम होती हैं।

और भी ऐसे मन्दिर मुझे मिले हैं, जिनकी कुछ बातों पर विस्मय मालूम हुआ है। उनके सम्बन्ध मे कही जाने वाली बाते, भोले-भाले बच्चो की सी बातें मालूम हुई हैं। लेकिन इस मन्दिर की तरह का आश्चर्य नही मालूम हुआ।

रहस्यपूर्ण होने पर भी बिना समझे-बूझे उसे छोड देने का इरादा नही होता। जब इस मन्दिर का नाम पापेश्वर रखा गया था तो क्या उस समय लोग इसके नाम का अर्थ नही जानते थे ? फिर एक मन्दिर का इस प्रकार नाम रखना, रुक्मिणी का पुजारिन बनाना आदि कुछ समझ में नही आता। बहुत-कुछ कोशिश करने पर भी पापेश्वर (१) के नाम का रहस्य कुछ स्पष्ट नही हुआ।

वहाँ से चलकर मैंने सगम पार किया। दो छोटी नदियाँ आकर और हिरण्य मे मिलकर सगम के रूप मे समुद्र की तरफ प्रवाहित होती हैं। यहाँ पर भक्तो के ठहरने के लिये धर्मशालाये और उनकी पूजा के लिए मन्दिर बने हुये हैं। इसलिये दूरवर्ती स्थानो से जो यात्री और भक्त यहाँ पर आते हैं, उनको मन्दिर के दर्शन करने, पूजा और अध्ययन करने एवम् ठहरने मे बडी सुविधा मिलती है। यहाँ पर ठहरे हुए लोग प्रकृति के निराले दृश्यो के साथ-साथ समुद्र की लहरो के दृश्य भी देखते है।

मैंने स्वय यहाँ पहुँचकर छोटे-छोटे मन्दिरो को देखा। ठहरने के लिये बनी हुई धर्मशालाओ को देखा। और भी कुछ उन स्थानो को देखा, जो मेरे सामने आये। मुझे इन सबको देखना ही था। बहुत दिनो की पुरानी अभिलाषा इन सब स्थानो की यात्रा करने के सम्बन्ध मे थी। यहाँ पहुँचकर समुद्र की जिन लहरो को दूसरे लोग विस्मय के साथ देखते हैं, वे यद्यपि मेरे लिए कोई नया महत्व नही रखती, फिर भी मैंने उनको भली प्रकार देखा और इसके बाद मैं सोमनाथ के मन्दिर की तरफ रवाना हुआ।

मैं आगे चलकर सूर्य-मन्दिर और बाल नगर के प्रवेशद्वार मे पहुँचकर, दामोदर महादेव के निकट होकर गुजरा। उसको गायकवाड के दीवान विट्ठलराव ने—जिसके उदार एवम् धार्मिक कार्यों से उसके राजा की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हुई आमूल परिवर्तन करा दिया है। और इस परिवर्तन मे विशेषता यह आ गयी है कि मन्दिर की मूल आकृति मे किसी प्रकार का अन्तर नही आने पाया।

यह मन्दिर देखने मे बहुत अच्छा है, लेकिन इससे लिखने के लिये किसी प्रकार का कोई विवरण नही मिलता। मैं परिश्रम करके लिखने के लिये इतनी ही सामग्री

(१) वास्तव मे पापेश्वर का अर्थ है, पापो के नाश करने वाले ईश्वर अथवा शिव। इसका कोई दूसरा अर्थ सही नही है। नाम का कुछ भी अर्थ लगाया जा सकता है, लेकिन उसके साथ नाम की कोई सार्थकता नही होती।

पा सका कि मन्दिर के बाहरी एक बन्द आले में—जहाँ पहले सूखा माता अर्थात् अकाल देवी की मूर्ति थी—वहाँ अब एक विशाल पत्थर रखा हुआ है और उस पर सैण्ट एण्ड्र्यू (१) का क्रास बना हुआ है। स्कॉटलैण्ड के इस रईस की सुदूर पूर्व में इतने दूर की यात्रा के सम्बन्ध में मैंने कभी कुछ सुना नही था और यह भी ख्याल है कि इसमें पुर्तगाल वालो का हाथ है। क्योकि उनके अधिकार मे किसी समय समुद्र का यह पूरा किनारा था और जो सौराष्ट्र के प्राचीन गौरव के लिये महमूद से भी भयानक शत्रु साबित हुए थे।

यह बात दूसरी है कि हिन्दुओ में भी कई प्रकार के क्रॉस उन दिनो में प्रचलित थे। विशेषकर जैनियो के सिक्को और उनकी इमारतों में मैंने मिस्र देश के अनेक चिह्न देखे हैं।

मैंने देव पट्टण में सूर्यपोल से प्रवेश किया। नगर के परकोटे की दीवार, इसके प्रयोग में आयी हुई सामग्री और उसकी बनावट ठीक उसके अनुकूल है, जिसके लिये इसका निर्माण किया गया है। इन दीवारो मे लगाने के लिये पास की खानों से जो पत्थर लाये गये हैं, वे भली प्रकार बिना गढे हुए लगा दिये गये हैं, यहाँ के वायु-मण्डल में नमी खीचने का एक गुण है, इसीलिये इनके रंग-रूप मे फरक पड़ गया है। लेकिन चौकोर छतरियाँ जिनकी बनावट बाहर की तरफ ढालू है, सुन्दर और मजबूत बनी हुई हैं।

परकोटे का घेरा तीन चौथाई कोस का माना जाता है। लेकिन मेरी समझ में यह पौने दो मील से किसी प्रकार कम नही है। इसका पश्चिमी भाग, जो सबसे छोटा है और उत्तर से दक्षिण की तरफ गया है, लगभग पाँच सौ गज लम्बा है। दक्षिण अथवा समुद्र के तरफ की दीवार, जो सीधी नही है और अन्तिम दो सौ गज लम्बाई में उत्तर-पूर्व की तरफ मुड़ी हुई है, सब मिलाकर करीब-करीब सात सौ गज है। पूर्व की दीवार आठ सौ गज के करीब है। (२)

इन दीवारो की ऊँचाई बराबर नही है; कही पर वह पच्चीस फीट है और कहीं पर तीस फीट है। एक पच्चीस फीट चौड़ी और लगभग इतनी ही गहरी खाई—जिसकी दीवारें चुनी हुई और ढलाव लिये हैं, चारो ओर बनी हुई हैं। इसको एक हौज से आवश्यकतानुसार भरा जा सकता है और खाली भी किया जा सकता है। मैंने सभी मीनारों की गणना तो नही की, परन्तु इस बात को देखा कि दीवारों की

(१) स्कॉटलैण्ड का एक प्रोटेस्टेण्ट शहीद।

(२) चौथी और उत्तरी दीवार की माप मेरे लेखो में नही मिल रही है, फिर भी हम इसको पूरे छै सौ गज मान लेते हैं।

हिफाजत के लिये उनकी सख्या काफी है। किनारो पर विशेषकर दक्षिण-पूर्वी कोने पर इनकी बनावट पचकोनी है और उनका प्रमुख भाग नगर की तरफ निकला हुआ है।

यहाँ के इतिहास से हमे इस बात की जानकारी नही होती कि वावन (१) और नहरवाला के राजाओ का क्या सम्बन्ध था। इसकी दीवारे और मीनारें ही ऐसी हैं जिनका निर्माण इस्लामी सीढियो की तरह किया गया है, तो यह जरूर है कि इनको इन्ही के खण्डहरो पर बनाया गया है। क्योंकि इनकी बनावट एक-सी है जो सोमनाथ की रक्षा के लिये ही बनायी गयी थी न कि देव पट्टण के लिये मरने वालों की रक्षा के लिये। इसलिये यह घेरा वहाँ की आबादी और सम्पत्ति से—जो एक मील के फासिले पर बताया जाता है, बना हुआ है। इसका यह मतलब नही है कि शहर के भीतर के तरफ भी दीवार बनी हुई थी।

भद्रकाली के मन्दिर में मिले हुए एक शिला-लेख से यह प्रश्न हल हो जाता है और यह मालूम हो जाता है कि सोमनाथ का जो भाग महमूद से पहले आने वाले आक्रमणकारियो से बच गया था, उसको सौराष्ट्र के सम्राट और नहरवाला के राजा कुमारपाल ने दो शताब्दियो के पश्चात् बनवा दिया था।

नगर के पूर्वी द्वार पर बाहर दरवाजे के सिवा एक भीतरी अच्छा-सा प्राङ्गण है, जिसकी एक नुकीली मेहराबदार दूसरी पोल अथवा ड्योढी है। मेहराब के दोनो बाजू चार चपटे स्तम्भो पर टिके हुए हैं। उनके ऊपर समुद्री जल के भयानक जीवो के चित्र बने हुए हैं। उनके फैले हुए जबडो में से मेहरावें निकलती हुई दिखायी गयी हैं और उनके मुखो मे विभिन्न प्रकार के मनुष्य बने हुए हैं। किसी मे एक ऐसे मनुष्य का चित्र है कि जिसको वह समुद्री जानवर खा गया है तो दूसरा चित्र ऐसा बना हुआ है कि जिसमे उसके पेट से कटार के द्वारा फाड़ कर निकलते हुए आदमी का चित्र बनाया गया है।

इस प्रकार चित्रो का निर्माण विस्मयकर और आकर्षक मालूम होता है और उससे यह भी मालूम होता है कि निर्माण कला में यह तरीका हिन्दुओ की शैली का परिचय देता है, जो यहाँ के निर्माण में मन्दिर की शोभा बढ़ाता है। मैंने देखा है कि सभी प्राचीन मन्दिरो के तोरणो मे—चाहे वे जैन हो, अथवा शैव—मेहराबो को इसी

---

(१) वावन एक फ्रेञ्च सैनिक और इञ्जीनियर था। वह स्पेन की सेना मे नौकर था। उसने पैंतीस लडाइयो में नेतृत्व का काम किया था। तेंतीस नये किले बनवाये थे और तीन सौ पुराने किलो की मरम्मत कराई थी। डाइन रायल नामक उसकी पुस्तक सन् १७०७ में प्रकाशित हुई, जिसमे कर व्यवस्था का विवरण दिया हुआ है। उसी वर्ष चौदहवे लूई ने उसकी योजना को नामन्जूर कर दिया था।

प्रकार बनाया गया है और जल के जानवरो के पेट में जाते हुए अथवा उनसे निकलते हुए मनुष्यो के चित्रो को अङ्कित किया गया है।

मैंने चम्बल पर बाड़ौली के शिव मन्दिर और आबू पर जैन मन्दिरो मे इसी प्रकार की शैली देखी है। यह सम्भव है कि इनके नक्शे अगर इस्लामी लोगो के द्वारा बने हैं तो इनका निर्माण निश्चित रूप से राजा कुमारपाल और उसके कारीगरो ने किया है। खम्भे तो स्पष्ट रूप से हिन्दू शैली का परिचय देते हैं। निर्माण के अन्य तरीके भी उसके अनुकूल ही है। इसलिये हमें यह भी मालूम हो जाता है कि मेहराब की नुकीली शैली कहाँ से प्राप्त हुई है।

इस पोल की ऊँचाई तीस फीट और चौड़ाई उसी के अनुपात से है। इस प्रवेश के द्वार पर हमें एक शिला-लेख मिला है। उसमे एक यदुवशी राजा की लड़की भक्त यामुनी के कुछ कार्यों का उल्लेख है।

प्रवेश करने का जो प्रमुख द्वार है, वह उत्तर की दीवार के बीच में है। उसका निर्माण आधुनिक तरीको पर बड़ी मजबूती के साथ किया गया है। उसको देखने से मालूम होता है कि टूटे हुए प्राचीन मन्दिरो के सामान से इसका पुनर्निर्माण कराया गया है। इसका पहला दरवाजा उत्तर की तरफ है, दूसरा पूर्व की तरफ है और तीसरा, दूसरे से मिलकर समकोण बनाता है। उससे निकलने पर विशाल मन्दिर का सम्पूर्ण दृश्य दिखायी देता है।

इस दीवार से घिरे हुए पोल की ऊँचाई साठ फीट की है। शस्त्रो का प्रयोग करने के लिये यह एक उपयोगी स्थान है। शत्रु के आक्रमण को रोकने के लिये इसका निर्माण बड़ी बुद्धिमानी के साथ कराया गया है। यह स्थान इस बात का भी प्रमाण देता है कि मजहब के ईर्षालु लोगो का आक्रमण प्रमुख रूप से यही पर हुआ था।

दूसरे दरवाजे पर एक मजबूत छतरी बनी हुई है, जहाँ से आने वाली शत्रु की सेना को देखा जा सकता है। इस छतरी की समानता नारमन किलेबन्दी के साथ की जा सकती है। दोनो की शैली एक सी है और दोनो के प्रयोग एक ही आश्यकता के समय किये जा सकते हैं। कुराई का काम देखने के योग्य है और उसके दृश्य प्रथम द्वार से ही देखने को मिलते हैं। शिव मन्दिरों मे अत्यन्त आकर्षक दृश्य देखने को मिलते हैं, जैसे सिंह के साथ युद्ध करते हुए मनुष्य, कहीं पर एक मनुष्य शेर की पीठ पर सवार है और अपनी कटार वह शेर के गले में भोंक रहा है। कदाचित् इस प्रकार के चित्रों को अङ्कित करके पशु-बल पर साहस की विजय दिखाई गयी है।

अब मैं सोमनाथ की ड्योढ़ी पर पहुँच गया। मूर्ति पूजको का यही वह मन्दिर है, जिसका नाम बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है और जिसकी ख्याति को सुनकर सुदूर-वर्ती देशो की जातियाँ अपने देशो से चलकर यहाँ तक किसी समय आयी थी। वास्तव

में हिन्दुस्तान का सोमनाथ मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था और यह मन्दिर प्राचीन काल में जो कुछ था, उसका आज सवा भाग भी नही है ।

इस मन्दिर का शिखर भाग चले जाने से सम्पूर्ण मन्दिर नङ्गा हो गया है और उसके प्रसिद्ध शिखर के टुकड़े फैले पडे हुए हैं । मन्दिर का ऊपरी भाग नष्ट हो गया है और इसीलिये वह अपने प्राचीन गौरव को खो चुका है । फिर भी उस मन्दिर के खण्ड-हरो को देखकर उसके अतीतकालीन गौरव का अनुमान किया जा सकता है । आज मन्दिर मे जो कुछ बच गया है, वह उसके साहस और शौर्य का परिणाम है, जिसने अपने पौरुष के बल पर मुसलमानो की विजय को अधूरा बना दिया था । लेकिन उस समय जो रक्तपात हुआ था और 'ला इल्लाह मोहम्मद रसूल अल्लाह' अर्थात 'पर-मात्मा एक है और मोहम्मद उसका पैगम्बर है, की बाग लगाई जाती थी, उनकी प्रति-ध्वनि आज भी इस देश के लोगो के कानो मे गूजती है ।

इस्लाम के मानने वालो ने सगठित रूप से इस देश मे आकर जब आक्रमण किये थे तो धर्म के नाम पर और अपने खुदा और उसके पैगम्बर को खुश करने के नाम पर क्या नही किया ? उन्होने बे गुनाहो को मारा था । बलात् धर्म परिवर्तन किया था । ग्रामो और नगरो को लूटा था । आश्चर्य की बात तो यह है कि उन लोगो ने यह सब-कुछ किया था, धर्म के नाम पर और अपने खुदा के नाम पर ।

किसी भी धर्म के मानने वाले यदि इस प्रकार का कोई भी अमानुषिक-कार्य करते हैं तो वह धार्मिक नही, खुदा के नाम पर नही, बल्कि अमानुषिक और बर्बरता का परिचय देता है । इसके सम्बन्ध मे अधिक लिखना और आलोचना करना यहाँ पर आवश्यक नही मालूम होता ।

उस मौके की कुछ बाते हैं जो लिखने का इरादा न होने पर भी कुछ या थोड़ी बहुत यहाँ प्रकाश मे आ रही हैं । महमूद का बारहवाँ आक्रमण इस देश मे सबसे अधिक भयानक माना जाता है । वह आक्रमण इस्लाम का झण्डा लेकर किया गया था और 'खुदा एक है' का नारा लगाकर किया गया था । उस समय वे भूल गये थे कि खुदा सबका एक है । उसका कही पर बटवारा नहीं है ।

इस मन्दिर की बनावट चित्तौर के लाखा राना के मन्दिर से और भारत के दूसरे दूरवर्ती शिव मदिरो से—जो इस्लाम के हमलो से किसी प्रकार बच गये हैं—प्रतिकूल नही हैं । इन मन्दिरो मे जिस प्रकार का निर्माण किया गया है, उनमें शिल्प की कला एक-सी है । इस एकता और समानता को स्पष्ट करने के लिये हमारी लेखनी उतना अधिक कार्य नही कर सकती, जितना कि उनके चित्र कर सकते हैं ।

सोमनाथ का मन्दिर चार भागो मे विभाजित है—बाहरी पोल, वह निज मन्दिर का प्रवेशद्वार कहलाता है और बहुत से स्तम्भो से घिरा हुआ है । बाहरी

परिधि ३३६ फीट, लम्बाई ११७ फीट और चौडाई ७४ फीट है। जिन लोगों ने यार्क के गिरजाघर या मिलान के ड्यूमो (१) सैण्ट पीटर अथवा सैण्ट पाल के गिरजाघरों के नमूने पर मदिरो की बनावट का विचार कर लिया हो, उनको यह समझ लेना चाहिये कि एशिया के मूर्ति-पूजक एकत्रित होकर और समूह बनाकर पूजा नही करते, बल्कि वे अपने देवता की आराधना एकत्रित करने की अपेक्षा अलग-अलग करते हैं। उनकी आराधना का दुनिया की बाहरी बातों से कोई सम्बन्ध नही है।

यहाँ पर हमको एक दूसरे मन्दिर की याद आती है। उसकी जानकारी हमको बहुत पहले से रही है। वह मन्दिर कुछ उतना ही पुराना है, जितना पुराना वह नक्शे में प्रकट किया गया है। वह है सिआन (२) का मन्दिर। इसकी लम्बाई तो सोमनाथ के मन्दिर के बराबर ही है। लेकिन यह 'बुद्धिमान राजा (३) का मन्दिर चौड़ाई और ऊँचाई मे सोमनाथ के मन्दिर से कम है। फिर भी, यहूदी इतिहासकार (४) ने लिखा है कि उन दिनो उन देशो मे इस तरह का दूसरा कोई मन्दिर नही बना था।

जब इजराइल के निवासी सीरिया के देवता बालिम (५) और अष्टारथ (६) तथा अमन (७) और बाल देवताओं का पूजन करते थे।

---

(१) इटली का प्रसिद्ध नगर।

(२) जेरुसलम के पास सिआन पर्वत पर बना हुआ।

(३) हाड्रिअन।

(४) जोसेफ़स समय ३७ ई० से ९५ ई० "हिस्ट्री आफ ज्यूविस वार एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ ज्यूस" का रचयिता।

(५) सीरिया में बाल शब्द ग्राम देवता के लिए प्रयोग किया जाता है। बालिम बाल का बहुवचन है। राष्ट्रीय बॉल का पूजन ऊँचे स्थानो पर हुआ करता था। बाद मे पैगम्बरो ने इस प्रकार के पूजन को बदल दिया था।

(६) अष्टारथ एक नगर का नाम है, वह नगर एक देवता का निवास-स्थान माना जाता है। ऐसे बहुत-से स्थान और नगर देवताओ के स्थानों के नाम पर प्रसिद्ध थे। फोईनीशिया में मिलने वाले शिला लेखों से इन देवताओ के सम्बन्ध में बहुत-सी बातों की जानकारी होती है। इनको कैनेनाइट, फोनीशियन और हिब्रू देवता कहा गया है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि पुरुष और स्त्री, दोनो ही रूपो में इस देवता की पूजा होती थी। उसकी पूजा के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की बाते कहने और सुनने में आती है।

(७) मिस्र का बड़ा देवता। इसका प्रभाव यूनान तक फैल गया था। वहाँ पर यह ज्यूस नाम से और रोम में ज्यूपिटर एम्मोन के नाम से प्रसिद्ध था।

योरप में ऐसे बहुत थोड़े गिरजाघर हो सकते हैं जो सोमनाथ के मन्दिर से बड़े न हो। लेकिन सोमनाथ के मन्दिर की दृढ़ता और विशालता दर्शकों के चित्त पर प्रभाव डालती है और मालूम होता है कि सभी प्रकार की कठिनाइयो का सामना करने के लिये ही इस मन्दिर का निर्माण इतनी मजबूती के साथ किया गया है। इस मन्दिर का शिखर मल्लाहो के लिये मार्ग का सकेत करता था और बहुत दूरवर्ती स्थानों से वह दिखायी देता था। इस मन्दिर के प्रवेश-द्वार, गुम्बज-द्वार उसकी छत और दूसरे भाग बड़े अनोखे ढंग से बनाये गये थे। उस मन्दिर की अनेक अच्छाइयाँ थी, जिनको लिखा नही जा सकता।

सोमनाथ का मन्दिर अपनी सभी बातो के लिये अन्य सभी मन्दिरो की अपेक्षा अधिक आदरणीय था और आज भी उसके सम्मान मे किसी का अन्तर नही पड़ा। इसका निर्माण उन दिनो में हुआ था, जब इस देश के हिन्दू सभी प्रकार सम्पन्न और गौरव पूर्ण थे। उस प्राचीन काल की अपेक्षा मन्दिर की परिस्थितियो मे आज बड़ा अन्तर हो गया है। इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व महमूद के ऊपर है। इसका विध्वस हिजरी सम्वत् ४१६, सन् १००८ ईसवी मे गजनी के सुलतान के द्वारा हुआ था। मुझे यह पढ़कर आश्चर्य मालूम होता है कि उस सुल्तान के इस अत्याचार को इस्लामी इतिहासकारो ने उसकी बहादुरी के रूप मे वर्णन किया है। इस मन्दिर मे उसके पतन को छोड़कर आज लिखने योग्य दूसरी कोई सामग्री नही रह गयी। ऐसी दशा मे उसके अतीतकाल के गौरव का अधिक वर्णन करना कुछ अच्छा नही मालूम होता।

यहाँ पर हमारे मुकाम का जो अन्तिम दिन था, वह सामने आ गया। अपने खोज के सम्बन्ध मे जो कुछ सामग्री मुझे यहाँ प्राप्त हो सकी, उसे पाकर मैंने सतोष कर लिया। यहाँ जो चीजें हस्तलिखित मुझे मिली, उनमे एक प्रति कविता मे लिखी हुई, यद्यपि वह सम्पूर्ण नही है, लेकिन जितनी है, उसमें अतीतकाल का कुछ वर्णन है। उसको सुनने के बाद ऐसा मालूम हुआ, मानो वह पुस्तक फारसी कविता में लिखी गयी थी और फिर उसका हिन्दी मे अनुवाद किया गया है। अनुवाद का यह कार्य किसी भाट कवि के द्वारा हुआ है। जो कुछ पृष्ठ हमे प्राप्त हुए हैं। उनको अपनी दृष्टि से और उसे पाटण के पतन की कहानी के रूप मे मैंने नीचे दिया है। मेरा अभिप्राय यह है कि उनमे जो कुछ लिखा है, वह संक्षेप में और सीधे अर्थ मे इस प्रकार के हैं—

"एक हाजी महमूद नाम का व्यक्ति मक्का से एक व्यापारिक जहाज मे आया और पट्टण से उत्तर-पश्चिम की तरफ तीस मील के फासिले पर मांगरोल नामक बन्दरगाह पर उतरा। इस बन्दरगाह के नाम पर वह मांगरोली शाह कहा जाने लगा।"

वहाँ से वह पट्टण आया और एक रैबारी के घर पर रहने लगा। यहाँ पर उसको मालूम हुआ कि सोमनाथ की प्रतिभा के सामने रोजाना एक मुसलमान की बलि दी जाती है और उसके रक्त का टीका मूर्ति के माथे पर लगाया जाता है।

इसको सुनने के बाद हाजी महमूद के दिल में एक जिज्ञासा पैदा हुई। उसको जानने की गरज से वह नगर में गया। उसने देखा कि एक विधवा तेलिन छाती ठोंक-ठोंककर और चिल्ला-चिल्लाकर रो रही है। हाजी महमूद ने उसके करीब जाकर रोने का कारण पूछा।

उस विधवा तेलिन ने रोते हुए जबाब दिया—मेरे इकलौते बेटे को सोमनाथ में बलि देने के लिये पुजारियो ने मांगा है।

हाजी ने उसको शान्त करने की चेष्टा की और उसके उत्तर मे कहा—मैं तुम्हारे बेटे की जान बचाऊँगा और उसके स्थान पर मैं अपनी बलि दे दूंगा।

जब यह समाचार राजा को मिला और उसने सुना कि कोई विदेशी यहाँ पर आया है और वह तेली के बेटे की जान बचाने के लिये अपनी बलि देने के लिये तैयार है तो पहले का निर्णय रद्द कर दिया गया। लेकिन वह संत हाजी महमूद किसी तरह अपनी प्रतिज्ञा छोड़ने के लिये तैयार नही था।

अपने निर्णय के अनुसार हाजी महमूद रवाना हुआ। वह मन्दिर के सामने पहुँचकर बाहरी सीढ़ियों पर बैठ गया, वही से नन्दी की पीतल की प्रतिभा के पास जाने का रास्ता था और जहाँ पर मनुष्य की बलि चढ़ाई जाती थी।

राजा और मन्दिर के पुजारी को पहले से ही वहाँ पर बुला लिया गया था और वलिदान होने वाला भी वहाँ पर मौजूद किया। हाजी महमूद ने राजा से प्रश्न किया—क्या वलिदान होने वाले को नन्दी खा जायगा ?

राजा ने उत्तर दिया—नही, परन्तु यह एक परम्परा है, लड्डुओं की भेट सदा चढ़ाई जाती है।

तब हाजी महमूद ने पानी मँगवाया और जब एक भक्त कुण्ड से पानी लाने के लिए गया तो उसने लड्डुओ की परात उठायी और नन्दी के मुंह के पास वह ले गया तो वह लड्डू खाने लगा। यह देखकर सभी लोग आश्चर्य में आ गये। उसी समय हाजी ने बांग लगायी—अल्लाहो अकबर।

उसी समय सोमनाथ की मूर्ति अपने स्थान से अदृश्य हो गयी और उसके स्थान पर एक हबशी प्रकट हुआ। उसको हाजी ने अपने प्याले में जल लाने का आदेश दिया। जब वह पानी ले आया तो कहा जाता है कि उसी समय किसी ने खबर दी कि उस कुण्ड का पानी सूख गया और उसकी मछलियाँ तड़पने लगी।

इस खबर को सुनने के बाद पानी का वह प्याला वापस कर दिया गया और कुण्ड मे प्याले के पानी के गिरते ही कुण्ड जल के भर गया।

"इस प्रकार तेली के लड़के की जान बच गयी और पट्टण के मूर्ति के पुजारियों को दण्ड देने के लिये अपने चमत्कार को खत्म करने के बाद उसने एक आदमी गजनी रवाना किया।"

जब हाजी का आदेश महमूद के पास पहुँचा तो वह बहुत क्रोधित हुआ और अन्धा हो गया। लेकिन जब उसने हाजी के पवित्र आदेश को श्रद्धा के साथ अपने सिर मे लगाया तो उसकी दृष्टि फिर से लौट आयी। इस चमत्कार को देखकर सुलतान महमूद हाजी के आदेश के अनुसार अपनी तैयारी करने लगा।

हाजी की करामात मे हमारा यकीन हो अथवा न हो, यह घटना सही हो अथवा झूठ हो, उस पर कुछ न कहकर इतना तो लिखना मेरे लिए अनिवार्य हो गया है कि इस कथानक का क्रम और सयोग तिथि और तारीख कुछ भी विश्वास के योग्य नही है। जिस हिन्दू भाट ने ईरानी भाषा से इस घटना का उल्लेख अनुवाद करके अपनी भाषा मे पेश किया है, वह इस ऐतिहासिक भ्रान्ति का उत्तरदायी है।

इसमें बताया गया है कि महमूद ने हाजी के पत्र को पाने के बाद मौंगरोल ने आने के लिये सतलज नदी को उस स्थान पर पार किया, जहाँ पर वह सिन्धु नदी से मिलती है और वह जैसलमेर के रेगिस्तान मे होकर आया। इस हस्तलेख में यह भी लिखा है कि पट्टण को विजय करने से पहले महमूद के चौबीस हजार आदमी मारे गये। उसके बाद उसने नगर पर अधिकार करने की चेष्टा की। इस अवसर पर जो तिथियाँ और तारीखे दी गयी है, वे किसी प्रकार सही नही हो सकतीं।

उसमे लिखा है कि उस समय कुमारपाल पट्टण का राजा था और उसका भाई जयपाल मौंगरोल पर शासन कर रहा था। अब यहाँ पर देखने की बात यह है कि महमूद का आक्रमण १००८ अथवा १०२४ ईसवी मे हुआ था और कुमारपाल की मृत्यु ११६६ ईसवी मे हुई थी। इससे यह जाहिर होता है कि यह एक ऐसा आक्रमण था, जो किसी कारण से मुस्लिम इतिहासों मे लिखा नही किया गया अथवा लिखने से छूट गया। इसका वर्णन चरित्र नामक पुस्तक में आया है और जिसके फलस्वरूप कुमारपाल की राज्य च्युति, धर्म परिवर्तन अर्थात् तबलीग और मृत्यु हुई। उसके बाद पागल अजयपाल सिंहासन पर बैठा।

इस कथानक (१) मे अनेक गडबडी मिलती है। सबसे बडी भूल महमूद के नाम की मालूम होती है। उसके बाद जो लोग गजनी के शासक हुए और सिंहासन पर बैठे, उनमे एक नाम मौदूद भी आया है और वह कम प्रसिद्ध नही है। चरित्र मे जो उल्लेख मिलता है, वह इसके साथ बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, उसमे साफ लिखा है कि कुमारपाल ने मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और इसके गुम्बद पर सोना चढवाया, आदि।

---

(१) यह कथानक सर्वथा गलत है और वैसे भी विश्वास करने योग्य नही है कि उस समय भारत में मुसलमानो की संख्या इतनी कम बल्कि नही के बराबर थी कि नित्य प्रति बलि के लिये एक मुसलमान का मिलना सम्भव होता। [अनुवादक]

गजनी के बादशाह ने महा सरोवर पर मोर्चा लगाया और पट्टण के राजा ने अपनी सेना भलका कुण्ड पर रोकी। दोनो तरफ से एक महीने तक अनेक बार लड़ाइयाँ हुई और खून के नाले बहे। सुल्तान ने अपने पीछे की तरफ मजबूत मोर्चा लगाया और पवित्र त्रिवेणी पर भी मजबूती के साथ प्रबन्ध किया।

पट्टण के राजा की सहायता के लिये हमीर और वेगडा गोहिल बन्धु अपनी सेनाओं के साथ गजनी के बादशाह से युद्ध करने के लिये आये थे। जब दोनो की तरफ की सेनाओ मे भीषण युद्ध आरम्भ हुए तो हमीर (१) और उसके सहयोगी गोहिल बन्धुओं ने अपनी वीरता का परिचय दिया और गजनी की सेना को मारकाट कर छिन्न-भिन्न कर दिया।

इसके बाद पाँच महीने बीत गये तब दोनो ओर की सेनाओ मे भयानक युद्ध हुआ। उस युद्ध मे सुल्तान की सेना के नौ हजार और हिन्दुओं की सेना के सोलह हजार आदमी मारे गये। इस भीषण युद्ध के बाद भी गजनी की महजबी सेनाये लगातार आगे बढती गयी और सुल्तान ने कंकाली के मन्दिर पर अधिकार कर लिया और फिर उसने उसको अपना प्रमुख स्थान कायम किया।

इसके बाद गजनी के सुल्तान ने दूसरे मन्दिरो की इमारतो पर आक्रमण करने का आदेश दिया और यह आक्रमण सोमनाथ के मन्दिर पर होने को था, जिसमे उसकी विजय में किसी प्रकार का संदेह नही मालूम होता था। जिस दिन युद्ध की यह हालत थी, उसी दिन हाजी की मृत्यु हो गयी। उसके मर जाने पर सुल्तान ने शोक में तीन दिनो तक भोजन नही किया, वह बहुत दुखी हुआ।

इस अवसर पर जो युद्ध हुआ, उसमें हिन्दुओ की अपेक्षा मुसलमान अधिक संख्या में मारे गये थे। परन्तु हिन्दुओ की तरफ से सन्धि के लिये कोशिश की जा रही थी। इसके लिये हिन्दू राजा की तरफ से महमूद के पास दूत, चारण और भाट भेजे गये थे, जिन्होने महमूद से प्रार्थना की थी कि वह किसी भी शर्त पर और कितना ही धन लेकर युद्ध को रोक दे।

---

(१) हमीर लाटी और अरटोला के ठाकुर भीम जी गोहिल का छोटा लड़का था। जब महमूद ने सोमनाथ पट्टण पर आक्रमण किया तो अपने मित्र और ससुर वेगड़ा भील की सहायता से पाँच सौ आदमियों को लेकर सोमनाथ की रक्षा के लिये आया और युद्ध करते हुये वह मारा गया। वेगड़ा भील की लड़की से जो संतान पैदा हुई, उसके वंशज देव जिले मे नाघेर नामक स्थान में अब तक पाये जाते हैं और वे गोहल कुली कहलाते हैं। यह घटना महमूद गजनवी के समय की नहीं है। इस कथानक को समझने में यह ऐतिहासिक भूल की जा रही है।

—रासमाला, हिन्दी अनुवाद द्वि० भा०

सन्धि की उस बातचीत मे सबसे पहले महमूद की मांग थी कि सोमनाथ के मन्दिर मे सिजदा पढा जायगा। इस शर्त को मंजूर करने के बाद दूसरी शर्तें पेश की जा सकती हैं।

सन्धि स्वीकृत नही हुई। उन दिनो मे, जब कि सन्धि की बातचीत आरम्भ हुई थी, युद्ध बन्द हो गया था। उसके बाद छठे महीने मे फिर युद्ध की तैयारी हुई और दोनो ओर से भयानक मारकाट हुई। उसमे दोनो राजपूत योद्धा मारे गये। इसके बाद हिन्दुओ मे जो शेष रह गये, उन्होने रानी की रक्षा का सुदृढ प्रबन्ध करके शत्रु का सामना किया।

इस समय जो युद्ध आरम्भ हुआ, उसमे गजनी का सुलतान कुछ कमजोर पडने लगा और जब उसने अपनी सेना की कमजोरी को अनुभव किया तो उसने एक दूरदेशी से काम लिया। उसने अपनी सेना के अधिकारियों को उनके स्थानो से हटा लिया और अपनी सेना के पीछे हटाने का उसने बहाना किया। सुलतान ने अपनी सेना की चौकियाँ कायम की थीं, उनको उसने तोड दिया और वह परकोटे से दस मील पीछे की तरफ हट गया। उसके ऐसा करने से जो हिन्दू सैनिक घेरे में आ गये थे, उन्होंने उसके पीछे हट जाने से खुशियाँ मनायी। हिन्दू सेना ने यह समझ लिया कि शत्रु की सेना पराजित होकर पीछे हट गयी है, इसलिये उनकी तरफ से युद्ध सम्बन्धी समस्त तैयारियाँ ढीली पड़ गयी।

उस दिन जुम्मा अर्थात् शुक्रवार (१) था। आधीरात के समय पैगम्बर का हरा झण्डा खोला गया और जफर तथा मुजफ्फर नाम के दो भाइयो के नेतृत्व में एक चुनी हुई फौज के सुपुर्दगी में दे दिया गया। वे चुपचाप दरवाजे पर पहुँच गये। एक विशाल हाथी—जिसका मजबूत मस्तक प्राचीनकाल मे दरवाजा तोडने के हथियारो की जगह पर काम आता था—दरवाजे के निकले हुये लोहे के कीलो से जडे हुये फाटक से जाकर टकराया।

उस समय एक ऊँट को हरौल के स्थान पर तैयार किया गया। उसके बीच में आ जाने के कारण हाथी का मस्तक जख्मी होने से बच गया और फाटक के किवाडे टूट कर गिर गये। इसी समय भीतर से युद्ध की आवाज उठी और जफर भाइयो की छोटी-सी सेना की सहायता के लिये महमूद स्वयम् अपनी सेना लेकर आ गया।

एकाएक दोनो ओर से मारकाट आरम्भ हो गयी। खुदा की बरकत और इस्लाम के ईमान के नाम पर पट्टण की गलियो मे खून के नाले बह उठे। जिन लोगों ने पैगम्बर के नाम पर रहम की माँग की थी, और कोई भी शर्त स्वीकार करते हुये

---

(१) जुम्मा शुक्रवार का दिन होता है। उस दिन को इस्लाम ने प्रार्थना का दिवस माना गया है।

संधि के लिये प्रार्थना की थी, उन्होंने देखा कि तातार वालो की तलवारो से बच्चा, बूढ़ा, स्त्री, पुरुष कोई भी बच न सका। उनकी संधि की प्रार्थना का यह परिणाम निकला। गजनी के सैनिको ने कीड़ो की तरह पट्टण के नागरिको का सर्वनाश किया। इस आक्रमण में गजनी की सेना के जो लोग मारे गये थे, उनका बदला निर्दयतापूर्वक उन्होंने लिया। इस बदले में प्रत्येक काफिर का सिर काटकर अहले-ईमान के लिये पैगम्बर को भेंट देने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया।

वास्तव में ईमान, मजहब और पैगम्बर का नाम था, इन लुटेरू जातियों ने मजहब के नाम पर लूट-मार करना अपना व्यवसाय बना लिया था। इस्लाम के नाम पर मुसलमानो ने जहाँ कही पाया, लूट-मार की और वही रास्ता उन लोगो ने हिन्दुस्तान में भी अपनाया।

अपने मन्दिरों की रक्षा के लिये जहाँ तक सम्भव हो सका, राजपूत लड़े। लेकिन आपसी संगठन के अभाव में सर्वत्र उनकी पराजय हुई। सोमनाथ के मन्दिर में भी यही हुआ। राजपूतो के सामने उनका अपना स्वाभिमान था, मन्दिर का प्रश्न था और अपने सम्मान और शान को सुरक्षित रखने की अभिलाषा उनके सामने थी। लेकिन जिन लोगो ने आकर आक्रमण किया था, उनके सामने लूट-मार करके बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति ले जाने का प्रश्न था। दोनो तरफ की भावनायें प्रबल हुईं। हजारो की संख्या में लोग मारे गये और बरसाती पानी की भाँति खून जमीन पर प्रवाहित हुआ; धर्म, ईमान और प्रतिष्ठा के लिये दोनों ही तरफ के शूरवीरो ने अपने आपको बलिदान किया।

गजनी के सुल्तान ने अपनी सेना में जिनको लडाकू माना था, वे दोनो जफर और मुजफ्फर भी मारे गये और मन्दिर की पश्चिम दिशा मे उनकी याद में जो मस्जिद बनवायी गयी, वह उन दोनो के शहीद होने का स्थान बता रही है। इस युद्ध मे रास्ते लाशो से भर गये। सोमनाथ के मन्दिर पर जो युद्ध हुआ, उसके भीतर से लेकर बाहर तक कटे हुये आदमी दिखायी दे रहे थे।

यह सब-कुछ हुआ। लेकिन सुल्तान महमूद ने जिस उद्देश्य से इस प्रकार नर-संहार कराया, वह सफल न हुआ। सुल्तान चाहता था कि सोमनाथ के मन्दिर पर इस्लाम का झण्डा फहराया जाय, वैसा वह कर न सका।

युद्ध के बाद का समय सामने आया, जो कुछ गुजरा, दोनो वह तरफ के सामने था। अपने राजा की मौजूदगी में सात सौ राजपूत वीरो ने मन्दिर के प्रमुख द्वार पर अपने देवता की प्रतिष्ठा कायम रखने के लिये युद्ध किया और शत्रु का संहार करते हुए अपने प्राण दे दिये।

इस युद्ध के पहले राजा और राजपूतो की तरफ से सुलह का प्रस्ताव किया गया था। चारण और भाट इसके लिये सुल्तान के पास भेजे गये थे और प्रस्ताव के

साथ-साथ चालीस लाख रुपये देने की भी बात कही गयी थी। इस प्रस्ताव को और इस रकम को सुल्तान ने मंजूर भी कर लिया था, लेकिन कुछ सलाहकारों के कारण सुलह हो न सकी। उसके हिमायती लोगो ने सुलह के प्रस्ताव का विरोध किया और नारा देते हुए कहा—काफिरो के साथ सुलह नहीं हो सकती, मन्दिर को नेस्तनाबूद कर दो !

यही हुआ भी, मन्दिर पर आक्रमण किया गया और भीषण रक्तपात के बाद मन्दिर का विध्वंस और विनाश हुआ। जो लोग उसके रक्षक थे, वे तलवार के घाट उतारे गये। देवता की प्रतिभा के टुकडे-टुकडे किये गये। जहाँ पर सोमनाथ की बेदी थी, वहाँ पर सच्चे खुदा और उसके पैगम्बर के नारे लगाये गये।

इसके बाद गजनी की फौज ने नगर मे प्रवेश किया। काट-मार के साथ-साथ लूट की गयी। मन्दिर की लूट और वहाँ की अपरिमित सम्पत्ति सुल्तान के हक में एकत्रित की गयी। लेकिन नगर की लूट मे जो कुछ मिला, उसमे सेना के सैनिको के सिवा और किसी का कुछ अधिकार न था; जिसने जो कुछ पाया, उसकी वह सम्पत्ति बनी।

मीता खाँ को पट्टण और उसके अधीनस्थ क्षेत्रो का अधिकारी बनाया गया और चौरासी अथवा एक सौ गाँव के साथ माँगरोल हाजी के एक सम्बन्धी को दिया गया। सुल्तान के लौट जाने के बाद हिन्दुओ ने मीता खाँ के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की, लेकिन उनका विद्रोह और सघर्ष उन्ही के लिये घातक साबित हुआ।

इस प्रकार जो हस्तलिखित लेख मिला था, उसकी सभी बातें यहाँ पर ज्यों-की-त्यो दी गयीं हैं और उसके बाद विवरण को खत्म किया जाता है।

जिस हस्त लिखित प्रति के विवरण ऊपर दिये गये हैं, वह प्रति अथवा पुस्तक अधूरी हमे प्राप्त हुई। सोमनाथ के मन्दिर के युद्ध मे जिस राजा ने अपने शूरवीरो की बलि दी, उसका नाम नही लिखा गया। मेरा ख्याल है कि वह सौराष्ट्र के पुराने चावड़ा राजपूतो मे से था। इस युद्ध का वर्णन करते हुये फरिश्ता ने लिखा है कि वह राजा युद्ध के अवसर पर एक नाव मे बैठकर निकल गया, यह सही भी मालूम होता है।

इसी हस्तलिखित प्रति मे लेखक ने एक दूसरी कथा का भी उल्लेख किया है। उसमे आकाश के अधर मे लटकती हुई मूर्ति को महमूद के द्वारा गदा के प्रहार से भूमि पर गिराते हुये दिखाया गया है। यहाँ पर मैं फिर लिख देना चाहता हूँ कि यह हस्तलेख किसी प्रामाणिक पुस्तक का अश है और जिससे यह अश लिया गया है, वह किताब कदाचित् 'तारीखें-महमूद गजनी' हो सकती है। मैंने उसको प्राप्त करने के लिये हिन्दुस्तान की राजधानी तक बड़े परिश्रम के साथ खोज की, लेकिन सफलता नहीं

मिली। मुझे मालूम है कि योरप में इस किताब का अभाव नही है। यदि वह देखने को मिले तो इस बात का निर्णय किया जा सकता है कि ऊपर जो विवरण दिया गया है, यह उसी का अंश है, अथवा नही। उस किताब को देखकर ही हम उस राजा के नाम का भी निर्णय कर सकते है, जिसने सोमनाथ की रक्षा के लिए अपने समस्त वीरों का बलिदान कराया। (१)

इस प्रकार के विवरण पढ़कर हमारे सामने एक प्रश्न पैदा होता है। यदि उसका हल हम निकाल सकें तो एक महत्वपूर्ण परिणाम पर हम पहुँच सकते हैं। प्रश्न यह है कि सोमनाथ में जो खण्डहर दिखायी देते हैं और इस मन्दिर के जो टूटे हुये भाग हमारे नेत्रों के सामने आते हैं क्या ये सब महमूद के आक्रमण के समय के ही हैं ? यदि हमको इस बात की सही जानकारी हो जाय कि दरवाजे की मीनारें और मम्बार अथवा मुल्लां का धर्मासन उसी समय के हैं तो हम उसके विध्वंस के एक परिणाम पर पहुँच सकते हैं।

खोजने के बाद भी किसी दूसरे इस्लामी आक्रमण का उल्लेख नही मिलता। (२) इसलिये हम इस परिणाम पर पहुँचने के लिए विवश हो जाते है कि कुमारपाल के बाद (जिसके लेख से प्रकट होता है कि हम उसके प्रति मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये आभारी हैं) कोई भी राजा ऐसा समर्थ नही हुआ, जो इस प्रसिद्ध इमारत की फिर से प्रतिष्ठा करा सकता। उसके मरने के बाद नहरवाला का साम्राज्य तेजी के साथ पतन और विनाश की ओर जा रहा था।

यहाँ पर एक दूसरा प्रश्न पैदा होता है और उससे एक दूसरी शंका उत्पन्न हो जाती है। वह यह है कि महमूद से पहले इस प्रकार विध्वंस और विनाश करने वाला कौन हुआ ? इसमें सन्देह नही है कि इसमें विध्वंस हुआ और इसका विनाश किया गया, उसमें परिवर्तन भी हुआ। क्योंकि एक स्तम्भ को ध्यान से देखने पर एक बड़े पत्थर पर मेरी नजर गयी, जिस पर संगतराशी का काम होता है। इस पर तराशी हुई मूर्तियाँ उलटी हैं, अर्थात् पत्थर को उलटकर रख दिया गया है। यह सब जीर्णोद्धार के समय मे ही सम्भव हो सकता है।

---

(१) इसके विषय मे हिन्दू-ग्रन्थों में कहीं पर कोई विवरण नहीं मिलता। लेकिन 'इब्ने असीर' नामक पुस्तक के आधार पर—जो सन् ११६० ईसवी में लिखी गयी थी यह कहा जा सकता है कि उन दिनों में भीमदेव प्रथम राजा था।

—रासमाला हि० अनु० भा० १ पृ० सं० १६१-१६४

(२) सन् १४६० ईसवी में महमूद बेगड़ा ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था और वह अन्तिम आक्रमण था। महमूद गजनवी ने नहीं।

बहुत आसानी के साथ यह बात समझ में आती है कि आधुनिक नीव को भरने में प्रचीन इमारत के मलवे को काम मे लाया गया है। लेकिन महमूद से पहले के किसी आक्रमणकारी का हमको ज्ञान नही है। अर्थात् हम किसी भी ऐसे व्यक्ति को नही जानते, जिसके धर्म मे मूर्तियों को तोड़ने के लिये आदेश दिया गया हो। मध्य एशिया के इण्डोगेटिक आक्रमणकारियो में भी कोई ऐसा नही था, जिसने इस प्रकार के कार्य किये हो। मुझे कही से यह जानकारी नही हो सकी कि वे लोग मूर्तियों का तोड़ना अपना एक धार्मिक कार्य समझते थे। यह जरूर है कि उन लोगो ने मन्दिर के रक्षको को आत्म-समर्पण करने के लिए विवश किया था और इसके लिये उन्होंने मार-काट की थी।

वेलावल अथवा वेरावल मे मैंने जो खोज की थी और सोमनाथ से जो शिला-लेख मिले थे, उनके सम्बन्ध में मैं अन्यत्र लिख चुका हूँ। फिर भी इस विषय को अपूर्ण छोडकर मैं आगे नही बढ सकता, इसलिये कि उसके साथ इसका गहरा सम्बन्ध है। उसकी ऐतिहासिक रूप-रेखा पर मैं विवेचन कर चुका हूँ। उससे हमको दो नये सम्वतों का पता चलता है। एक वलभी सम्वत का और दूसरा सिंह सम्वत का। पहला सम्वत् ३७५ विक्रमी से आरम्भ हुआ था और वलभी के सूर्यवशी राजाओ से सम्बन्ध होने के कारण महत्वपूर्ण माना गया था, एक दूसरा शिला लेख मिला है और उसके लेख से इसका समर्थन हो जाता है। इसमे कुमारपाल के शासन-काल को साधारण और विक्रम सम्वत् मे न लिखकर वलभी सम्वत् ८५०+३७५=१२२५ वि० सम्वत् लिखा गया है। इस सम्वत् को पवित्र और आशीर्वाद के रूप मे मानना चाहिए इसलिए कि उस समय से उन समस्त विपदाओ का अन्त हो गया था, जिनका आना बहुत पहले से जारी था। (१)

इण्डो-गेटिक आक्रमणकारियो के द्वारा वलभी का जो विनाश हुआ था, उसके विवरण मेवाड के पुराने लेखों मे पाये जाते हैं। उनमे यह घटना सम्वत् की बतायी गई है, यह मूल बलभी सम्वत् मालूम होता है। इस तरह ३००+३७५=६७५—५६ (विक्रम सम्वत् और ईसवी सन् का अन्तर) ६१६ का समय बलभी के विनाश और लोहकोट मे कनकसेन के वश की इतिश्री का अनुमान होता है।

यह वही समय है जिसको कासमस ने एल्टीरी लास अथवा श्वेत हूणो के जेट लोगो के साथ होने वाले आक्रमण को माना है। वे लोग बाद मे सिन्ध घाटी के

(१) यहाँ पर सम्वत् के सम्बन्ध मे कुछ गड़बड़ी मालूम होती है, लेकिन उसका संशोधन सम्भव नहीं है। कुमारपाल के राज्यपाल के राज्य-सिंहासन पर बैठने का समय ११८६ वि० स० है। लेकिन वलभी और सिंह सम्वत् के लिये कुछ नही कह जा सकता।

—रासमाला प्र० भाग।

मीनागर नामक स्थान में बस गये थे, उस जाति का यह दूसरा आक्रमण था, पहला आक्रमण दूसरी शताब्दी में हुआ था और पेरीप्लस के लेखक ने उसे मजूर किया है। उसके सिवा द आँनविले, गिबन और डी गुइग्नीस आदि ने भी उसी को स्वीकार किया है।

इन जातियों के बहुत-से पारिवारिक लोग सौराष्ट्र में रह गये थे। लेकिन यही नही कहा जा सकता कि उन लोगो ने मन्दिरो को विध्वंस किया था, इसके सम्बन्ध में एक और भी अनुमान लगाया जा सकता है यद्यपि उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। वह यह है कि जिसने ७४६ ईसवी में चावडा वंश के राजाओ को समुद्र मे लूटमार करने के कारण देव पट्टण से निकाला था और अनहिल-वाड़ा की स्थापना की थी, वह प्राचीन लेखो के अनुसार, खलीफा हारूं था।

इस नगर मे आजकल लगभग नौ सौ मकान हैं, उनमे दो सौ ब्राह्मणो के हैं, चार सौ मुसलमानो के और लगभग इतने ही शेष जाति के लोगो के हैं, उन्ही में व्यापारी और रोजगारी शामिल हैं। अगर इन मकानो की यह संख्या ठीक है तो यहाँ की आबादी पाँच हजार से अधिक नही होना चाहिए। बल्कि कुछ ही होना चाहिए।

नगर के आस-पास जो दृश्य हैं, वे आकर्षक और मनोरञ्जक हैं। उनमे प्राचीन काल के वैभवो का कुछ आभास मिलता है। वहाँ पर कितने ही अच्छे जलाशय हैं। वे यहाँ के रहने वालो के सुभीते के अभिप्राय से तैयार कराये गये हैं। इनमे पहला जला-शय उत्तर के द्वार से करीब-करीब एक सौ गज के फासिले पर है। उसकी परिधि अठारह सौ गज की है। देखने मे वह वृत्ताकार मालूम होता है। उसके चारो तरफ दीवार है, जो ठोस किन्तु बिना गढ़े हुए पत्थरो से बनी है। उसमे चारो तरफ से नीचे जाने के लिये सीढियाँ बनी हुई हैं। उसमे जानवरो के पानी के लिये भी स्थान बने हुए हैं।

नगर के उत्तर-पश्चिम मे आधे मील के फासिले पर भलका और पद्मकुण्ड हैं। उनके सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है। हिन्दू जाति की इन प्राचीन बातो की महिमा इसलिये और बढ़ जाती है कि इनसे उन स्थानो का पता चलता है, जहाँ पर उत्तर की तरफ से आने वाली फौजों ने मुकाम किये थे, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है कि महमूद ने भलकाकुण्ड के करीब मुकाम किया था।

पट्टण के चारो तरफ जो बेशुमार मजारे बनी हुई हैं, वे इस्लाम पर शहीद होने वालो के प्रमाण दे रही हैं। इन मजारो की सख्या बहुत है। इतनी अधिक संख्या मे मजारे अथवा कब्रे हिन्दुस्तान के किसी बडे से बड़े शहर मे नही मिलती। समुद्र के किनारे एक बड़ी ईदगाह है। ऐसा मालूम होता है कि जिसने इसको बनवाया है, उसका नाम किसी प्रकार गायब हो गया है।

वेलावल पट्टण का बन्दरगाह है। उसको वेलाकूल भी कहा जाता है। जब अनहिलवाडा के अच्छे दिनों में हुरमुज का नूरुद्दीन यहाँ के जहाजी बेड़े का अधिकारी

था, उन दिनो में इस बन्दरगाह का बड़ा महत्व था। यह बेडा अब बहुत कुछ मिटकर बरबाद हो गया है और वह अब कुछ ही नावो तक सीमित रह गया है। उन नावो से अब थोडा-बहुत केवल समुद्री रास्ते का व्यापार होता है। मक्का जाने वाले बहुत से यात्री उन नावो का भी प्रयोग करते हैं।

योरप के मूर्ति-पूजको ने अन्य नगरो तथा स्थानो की तरह इसको भी बडी क्षति पहुँचायी थी। उनके लालच बहुत बढ गये थे और उसकी पूर्ति के लिये वे लोग भयानक अत्याचर करते थे। उनके अत्याचारो के सामने तातारी और अफगानी लोगो के अत्याचार कुछ भी नही थे।

प्राचीन समुद्री-यात्रा के सम्बन्ध मे कुछ घटनाओ को पहले लिखा जा चुका है, जो १५३२ ईसवी मे (नूना डा कुन्हा) और उसके मददगार (एएटोनियो डी सलाडान्हा) के साथ सम्बन्ध रखती हैं। सही बात यह है कि वे समुद्री लुटेरे थे और उनके इन आचरणो को सभी जानते थे। लूट-मार मे वे लोग कोई अत्याचार बाकी नही रखते थे।

उन लोगों के अत्याचारो का वर्णन उन्ही के आदमी स्पेन वालो ने किया है और उनके कारनामो को ससार के सामने रखा है।

सत्रहवाँ प्रकरण

जूनागढ़-प्राचीन और नवीन

प्राचीन सभ्यता के अंश—वहां के निवासी और उनकी जातियां—जूनागढ़ का प्राचीन इतिहास और वर्तमान जीवन—यादवों का सरोवर—गिरनार का प्राचीन शिला-लेख—लुंगा लोगो का ईश्वरवाद—दामोदर महादेव का मन्दिर—शैव और वैष्णवों के साम्प्रदायिक झगडे—अकबर के समय अहीरो का मान और महत्व।

चूड़वाड़ अथवा चौड़वाड़, ४ दिसम्बर—आज की यात्रा लगभग आठ कोस की थी, जो सोलह मील से कम नही थी। यदि उसको सीधे रास्ते से देखा जाय तो भी साढ़े चौदह मील से वह कम की नही थी। यो तो भारत की यात्रा करने वालो के सामने बहुत-सी बाते आती हैं, लेकिन उनमें से एक ऐसी है, जो आश्चर्य चकित कर देती है।

वह बात यह है कि दूसरे देशो मे दूरी की नाप भिन्न-भिन्न होती है, लेकिन हिन्दुस्तान मे कोई नाप न होने पर भी लोगो के अनुमान दूरी के सम्बन्ध मे एक से पाये जाते हैं। आश्चर्य यह है कि आस-पास के मुकामो की दूरी कही किसी के पास लेख मे नही होती और न उनके सम्बन्ध मे कोई स्मृति रखी जाती है, जो लेख बद्ध हो। लेकिन कही-कही स्थान की दूरी सभी लोग एक ही बताते हैं।

मैं प्रायः विस्मय करने लगता हूँ; जब किसी एक स्थान का फासिला अनेक आदमियो से पूछता हूँ और उन सबके जवाब एक ही होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि उन लोगो ने नाप करके उसकी दूरी अपने पास लिख रखी है। अथवा परामर्श करके एक ही फासिले को सब लोगो ने मान लिया है।

यह समानता, एकता और शुद्धता साधारण नही है। मैं प्रायः सोचने लगता हूँ कि इसका कारण क्या है ? यह संयोग की बात नही है और न किसी का दिया हुआ कोई विवरण है। सही बात यह है कि इस प्रकार के वातावरण जो देखने और जानने मे आते हैं, वे प्राचीन सभ्यता के अंश हैं।

यह सभ्यता आज की नही है, पुरानी है और हिन्दुस्तान इस प्रकार की सभ्यता को सदा से अपनी सम्पत्ति मानता आया है। लेकिन आज का जीवन इस सभ्यता से भिन्न है। प्राचीन काल की जो चीज इतनी अच्छी थी, आश्चर्य यह है कि आज हम लोग स्वाभाविक रूप से उसकी उपेक्षा करने लगे हैं। हम यह नहीं सोचना चाहते कि

इस पुरानी सभ्यता मे समाज का कितना कल्याण था, कितना सुख था और उसके विकास के लिये कितना अच्छा आधार मिलता था।

यह बात दूसरी है कि प्राचीन काल की यह नैतिकता आज पुराने खण्डहरों में दबी हुई पड़ी है, लेकिन उसका अभी तक अन्त नही हुआ है और उसकी विशेषता का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि सैकड़ो और हजारो वर्षों की उपेक्षा के बाद भी वह आज जीवित है। हमारे जीवन के साथ उसका सीधा कोई सम्पर्क नहीं रह गया है परन्तु रूढ़ियो और परम्पराओ के रूप में आज भी हमारे ऊपर प्राचीन सभ्यता का शासन चल रहा है।

कुछ भी हो, इससे यह तो साबित ही है कि हिन्दुस्तान के प्राचीन काल में मार्गों की नाप के तरीके प्रचलित थे और उन तरीकों का ही यह परिणाम है कि इस देश का प्रत्येक आदमी अपने आस-पास के स्थानो की दूरी जानता है प्रशसा की बात तो यह है कि जब इस दूरी को जरीब अथवा नापने के दूसरे यन्त्रों से इन स्थानो की नाप की जाती है तो इस नाप में और लोगो के बताने में कोई विशेष अन्तर नही निकलता और कभी-कभी दोनो ही के द्वारा एक दूसरे का समर्थन होता है।

मेरे देश के लोग यदि यहाँ पर एक हजार अथवा डेढ हजार मील की पैदल यात्रा करे तो उनको यहाँ के कोसो और उनके मीलो में अन्तर मिलेगा। वे यहाँ के लोगो की बताई हुई दूरी को सहज ही स्वीकार न कर सकेंगे। उसका कारण यह नही है कि यहाँ के लोग जो बतलाते हैं, वह सही नही है, बल्कि जो विदेशी लोग यहाँ आते हैं, उनकी नाप-तोल मे और यहाँ की प्राचीन जानकारी में अन्तर है।

इस अन्तर को लेकर मैं अधिक गहराई मे नही जाना चाहता। यहाँ पर मेरा यह उद्देश्य भी नही है। इसलिये इतना ही लिखकर मैं इसको समाप्त कर देना चाहता हूँ कि प्रत्येक देश के अपने-अपने सिक्के होते हैं,अपनी-अपनी तौल होती है और अपनी माप होती है। सिक्का, तौल और माप, जहाँ पर जो प्रचलित होती है, वहाँ पर वही सही मानी जाती है। उसमे किसी को सन्देह करने की आवश्यकता नही होती।

इस प्रदेश की भूमि उस पिछले प्रदेश की भूमि की तरह है जिसकी हम यात्रा कर चुके हैं और जिसके वर्णन लिखे जा चुके हैं। भूमि का तल पानी के बहाव के कारण नीचा हो गया है और उसकी सतह खुल गयी है। मैंने कई स्थानो पर देखा कि यहाँ की मिट्टी बहुत-कुछ बजरी मिली हुई है, जो उन पहाड़ियों की तलहटो मे से बह-कर इस तरफ आती है, जो प्रायद्वीप को बीच से विभाजित करती है।

खेती का काम गाँवों में और उनके आस-पास की जमीन में ही होता है। यहाँ पर अधिकतर गेहूँ और जो की फसल होती है। कुछ और चीजें भी बोयी जाती हैं। गन्ने की खेती यहाँ पर अच्छी होती है। यहाँ की भूमि और मिट्टी उसके लिये बहुत उपयोगी साबित होती है।

मार्ग की परिस्थिति में परिवर्तन हुआ, उसके परिणाम स्वरूप गिरनार की चोटियाँ सामने दिखायी पड़ने लगी और चोरवाड़ से सीधा फासिला उ० २६° पू० में पच्चीस कोस अथवा पैंतालीस मील पढ़ा गया।

पट्टण से लगभग चार मील के फासिले पर अहीरो का गाँव है, उसका नाम ढाव है। उसमे दो मन्दिरो के खण्डहर हैं। एक था सूर्य-मन्दिर। यहाँ पर एक अच्छा जलाशय और बावड़ी भी है। मुझे बताया कि उसमे एक शिला लेख है।

यह शिला लेख पानी की सतह से नीचा था। हमने अनेक नदियाँ पार की। मैंने सुन रखा था कि इनमे से एक नदी जहाँ समुद्र मे गिरती है, वहाँ पर चोरवाड-माता का मन्दिर है और वही पर हनुमान की एक वड़ी मूर्ति भी है।

चोरवाड का मतलब है, चोरो का नगर अथवा चोरो का स्थान। यह कोई आश्चर्य की बात नही है, इसलिए कि पुराने जमाने में समुद्र के किनारे का प्रत्येक बन्द-रगाह समुद्री लुटेरो का निवास-स्थान था। आजकल के लोग विभिन्न प्रकार के दूसरे व्यवसाय करते हैं। लेकिन उन दिनो मे प्रमुख व्यवसाय लूट-मार का था।

रैवारी अथवा अहीर लोग पशु-पालने का व्यवसाय करते हैं। उनकी तरह यहाँ पर कोरिया और रायजादा जाति के लोग भी थे। रायजादा प्राचीन चूड़ासमा शाखा के लोग हैं, जो किसी समय यहाँ के राय अर्थात् मालिक थे। चोरवाड़ के ठाकुर जेठवा राजपूत हैं। यहाँ के सभी लोग देखने मे अच्छे है।

नगर मे कोई विशेष उल्लेखनीय सामग्री नही मिली। परन्तु मुझे एक अच्छा-सा-शिला लेख मिला। जो कोरोसी के पुराने सूर्य-मन्दिर से प्राप्त किया गया था। इसको मैंने अपनी दाहिनी तरफ कुछ दूरी पर देखा। यह शिला-लेख यो तो काम का है ही, लेकिन इसमें विशेषता यह है कि इस शिला-लेख मे गहलोत राजपूतो का उल्लेख भी मिलता है। उसमे लिखा है कि गहलोत राजपूतों ने सौराष्ट्र को विजय किया था।

इस लेख से अबुल फजल के उस विवरण का समर्थन होता है, जो इसके अभाव में अप्रामाणित समझा जा सकता था, वह यह कि अकबर के शासन काल में सोरठ (सौराष्ट्र का दूसरा नाम) एक स्वतत्र प्रदेश था। (१)

यहाँ का अधिकारी गहलोत राजपूत था और उसके अधिकार मे पचास हजार आश्वारोही सैनिक और एक लाख सैनिक थे। यह उसका स्वतंत्र अधिकार था।

---

(१) सूबा गुजरात की सरकारों में सोरठ (काठियावाड़) सरकार भी शामिल है, उसमें तेरह बन्दरगाहो को मिलाकर बाहर महाल हैं। सरकार की आमदनी ६३, ४३, ७६६ दाम हैं।

यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि मेवाड मे इस जाति के बस जाने के बाद भी उनका आराध्य देवता सूर्य था और अब तक ये लोग उसी की अराधना करते हैं। मैं अपने इस अनुसन्धान के लिये लुकागच्छ के एक जैन यति का बहुत आभारी हूँ, वह बहुत विनम्र, साधारण, विद्वान और योग्य था। उसको सभी प्रकार की जानकारी थी। अपनी जानकारी को बढ़ाने के लिये ही उसने बहुत-सी यात्राये की थी। आज से पहले कदाचित् उसको अँगरेज के साथ व्यवहार करने का मौका नही मिला था; फिर भी मैंने उसको बहुत समझदार और शिष्ट पाया। वह बहुत अच्छी बात करता था।

लुका-लोग ईश्वरवादी हैं। (१) वे लोग एक ईश्वर को मानते हैं और मन्दिरो पर विश्वास नही करते और न कभी वे किसी मन्दिर में जाते हैं। वे लोग पहाड़ो और जङ्गलो को ही भगवान की उपासना के लिये उपयोगी स्थान मानते हैं। वे लोग चौवीस तीर्थङ्करो के उपदेशो को महत्व देते हैं और उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। वे लोग इस बात को मानते हैं कि जीवन की पवित्रता के कारण उन लोगो को मोक्ष प्राप्त हुआ। इसलिये वे उनको पूज्य मानते हैं।

मेरे नये मित्र ने पवित्र पर्वत तक मेरे साथ रहकर यात्रा करना और अनुसधान के कार्य मे मेरी सहायता करना मंजूर कर लिया है। यह प्रसन्नता की बात है कि मेरे गुरु यति ने उत्साह के साथ इस व्यक्ति को सहयोग मे लेना मान लिया है। मेरा विश्वास है कि इस सहयोग से लाभ उठाया जा सकेगा।

चोरवाड बहुत बड़ा है। उसमें लगभग पन्द्रह सो मकान हैं और बनियो तथा मुसलमानो की आबादी है। जो लोग रहते हैं, वे प्रमुख रूप से पशुओ के पालने का व्यवसाय करते हैं। वहाँ पर अहीरो की भी आबादी है। हाथी जाति के लोग भी वहाँ पर रहते हैं। इस जाति के सम्बन्ध मे पहले मैंने कभी कुछ नही सुना। व्यवसाय और सूरत-शकल मे हाथी-जाति के लोग अहीर मालूम होते हैं। इस जाति के लोग सौराष्ट्र के मध्य भाग मे अधिक पाये जाते हैं।

इस अहीर जाति के लोग अपराधो से प्रायः दूर रहते हैं। ये लोग प्राचीन काल मे उन्नत थे और अब भी इन लोगो मे पल्लि जाति के आदमियो के बहुत-से लक्षण पाये जाते हैं। मध्य भारत मे एक विशाल क्षेत्र इस जाति के नाम से प्रसिद्ध है, वह अहीरवाडा कहलाता है, जो वहाँ पर मध्य भाग में है। वहाँ पर प्रायः सभी नगरो के

---

(१) वास्तव मे ये लोग अनीश्वरवादी हैं। इस गच्छ का सस्थापक अहमदाबाद का रहने वाला लौंका अथवा लुपाक नामक था। लेख में भूल हो जाने के कारण ज्ञान यति द्वारा अपमानित होकर उसने अपना मत चलाया था।

—रत्न सागर, (जैन इतिहास) भाग ५

नाम के आगे पाल शब्द पाया जाता है। वहाँ पर राजाओं का एक वंश चला था। और उनकी राजधानियाँ भेलसा तथा भोपाल आदि मे थी।

उस क्षेत्र मे बौद्धकालीन शिला-लेख पाये जाते हैं, वे पाली भाषा मे लिखे होते हैं। वहाँ की छानबीन और खोज करने के बाद यह ज्ञात होता है कि पशु-पालन का व्यवसाय करने वाली इस जाति का विस्तार बड़ा रहा है और आज भी उस जाति के लोग अच्छी हालतो में हैं। इस जाति के सम्बन्ध मे मैंने लिखा था कि इस जाति का आदि निवास भारत नही है। (१)

अकबर बादशाह के शासन-काल मे अहीरो का सौराष्ट्र प्रायद्वीप में राजनीतिक महत्व था। अबुल फजल ने लिखा है—"ढूंडी नदी के किनारे अहीरो का एक छोटा-सा जिला था, वह स्थानीय भाषा मे पुरञ्ज कहलाता था। वहाँ पर तीन हजार अश्वा-रोही सैनिक और लगभग इतने ही पैदल सैनिको की एक सेना रहा करती थी। उसका जाम (जाड़ेचा) जाति के साथ हमेशा झगड़ा रहा करता था।"

अबुल फजल का यह एक भ्रम था कि उसने काठी जाति को अहीरो की एक शाखा मान लिया है। लेकिन उसके साथ-साथ, उसने यह भी लिखा है कि 'बहुत से लोग इस शाखा को अरबी मानते हैं।'

इस भूल का कारण यह मालूम होता है कि उन लोगो मे घोड़े की सवारी का शौक था, हमारा ख्याल है कि यही देखकर उसको यह भ्रम पैदा हुआ है। इस भ्रम का कुछ आधार भी है। यह हो सकता है कि ब्राह्मणो, पण्डों और पुजारियो के व्यवहारो से तंग आकर अहीरों ने पशु-पालन के साथ, लूट-मार भी आरम्भ कर दी हो और उनके इस प्रकार के रंग-ढंग देखकर उसने उनको काठी लोगों में मान लिया हो।

मालिया ५ दिसम्बर—सात कोस का सफर। यह स्थान बहुत पुराना है और इसके बहुत थोड़े अंश पाये जाते हैं। मालिया एक झरने के समीप बसा हुआ है। वह झरना ऊपर की पहाड़ियो से निकला है।

आज सवेरे की यात्रा में आदमियो की हालत अच्छी नही रही। रास्ते में जो गाँव मिले, वे बहुत छोटे-छोटे थे, उनके रहने वाले बहुत गरीब और अनेक प्रकार की मुसीबतो में फँसे हुए थे। उन गाँवों मे खेती की दशा भी अच्छी नही थी।

मालिया में बनियो और रेबारी लोगो की बस्ती है। दूसरा गाँव जहाँ से होकर हम निकले, काठियो और हाथियो का है। लेकिन वहाँ पर बहुत-से राजपूत भी थे, वे सभी मेरे लिये नये थे। वे करिया राजपूत कहलाते थे, वे परमारो के वंशज अपने आपको कहते थे। वहाँ पर कुछ कोली लोगो के परिवार भी थे।

---

(१) बाद के अनुसंधानो के अनुसार इस प्रकार अनुमान गलत प्रमाणित हुए हैं।

उनियाला अथवा उनियारा, ६ दिसम्बर—नौ कोस की यात्रा। हमको चढाई की तरफ फैले हुए मैदान की तरफ जाना था। मन्जिल के आखीर मे शेरगढ की चौकी थी। वहाँ से समुद्र के किनारे का मागरोल नगर साफ-साफ दिखाई देता था।

उनियारा से ऊन अथवा गर्मी का अर्थ निकलता है। मेरा ख्याल है कि इसका यह नाम अपनी अरक्षित परिस्थिति का परिचय देता है। यहाँ के निवासी विशेष रूप से मुसलमान और लोवाना जाति के बनिये हैं, उनके पूर्वज भाटी राजपूत थे। और वे सिन्ध की घाटी मे पाये जाते थे।

जूनागढ ७ दिसम्बर—नौ कोस की यात्रा। आज सुबह की अठारह मील की मन्जिल मे हमको बहुत थोडे गाँव मिले। वे एक दूसरे से बहुत दूरी पर बसे हुए थे और उनके आस-पास झाडियाँ और जगल बहुत थे। हालत यह थी कि उनियारा से जूनागढ़ तक जगल और उजाड था। इस जनहीन और जगली स्थानो मे भी हमे कोई अप्रियता नही मालूम हुई। इसलिये कि हम लगातार पर्वत के समीप पहुँचते जाते और हमारी यात्रा का उद्देश्य यही था।

गाँवों मे अधिकतर अहीर लोग रहते थे और वे अपनी बस्ती के आस-पास खेती भी करते थे। लेकिन उनके इस व्यवसाय की हालत अच्छी नही थी, धार्मिक और राजनीतिक—दोनो तरह के अत्याचारो मे यहाँ के निवासियो को जीवन के दिन काटने पड रहे थे। कारण यह था कि यहाँ का सूबेदार मुसलमान था और उसका प्रबन्ध बहुत कठोर था।

जूनागढ का अतीत कालीन वैभव नष्ट हो गया था। परम्परागत कथानको और पुरानी बातो की जानकारी रखने वालो से यहाँ के सम्बन्ध में कुछ पता नही चलता था। मैंने उसके इतिहास के विषय मे जानने की कोशिश की तो लोगो ने इतना ही बताया कि बहुत पहले से लोग इसको पुराना किला कहते आ रहे हैं। पुराना किला का अर्थ उन लोगो ने जूनागढ बताया।

यहाँ के सम्बन्ध मे जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे मालूम होता है कि यहाँ पर यादव राजाओ की किसी समय राजधानी थी। जिन दिनो मे मेवाड के राणाओ के पूर्वज वलभी के राजा थे, उन दिनो मे भी यही कहा जाता था और जब उस वंश के अंतिम शासक माण्डलिक का विनाश महमूद बेगडा के द्वारा हुआ, उस समय भी लोग इसी प्रकार कहा करते थे। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि शासन की पुरानी शृङ्खला का अन्त नही हुआ था और ईसा की दशवी शताब्दी मे जब महमूद का आक्रमण हुआ था, उस समय यहाँ पर किसी यदुवंशी राजा का शासन था।

अबुल फजल जूनागढ के विषय मे प्रकाश डालते हुए लिखता है : "यह नौ जिलो मे विभाजित था, प्रत्येक भाग मे अलग-अलग जाति के लोग रहते थे। पहले

भाग का—जो नवसोरठ कहलाता है बहुत दिनो तक घने जगलो और पहाडो के कारण उसका कुछ पता नही चलता था। उन्ही दिनो मे कोई शोधक वहाँ पर पहुँच गया और उसने अपनी खोज दूसरो को दी। यहाँ पर एक किला है, जो पत्थरो से बना हुआ है। वह जूनागढ कहलाता है। इसको सुल्तान महमूद ने जीत लिया था और इसकी तलहटी में एक दूसरा छोटा-सा किला बनवाया था।

जूनागढ अब आबाद हो गया है। लेकिन इसमें कोई अधिक परिवर्तन नहीं हुआ और देखने मे वह उसी प्रकार का है, जैसा कि अबुल फजल ने शताब्दियों पहले उसका वर्णन किया है। वह चारो तरफ से घने जंगलो के द्वारा घिरा हुआ है। उस जगल मे काँटेदार बबूल के वृक्ष इतने घने हैं कि उनके भीतर प्रवेश करना आसान नही है। लेकिन दो-तीन प्रमुख गाँवो मे जाने के लिये बबूलो को काटकर रास्ते बना दिये गये हैं। इस प्रकार के कँटीले पेड़ो के घने घेराव से किसी भी नगर का उस समय बहुत बड़ा लाभ होता है, जब उस पर किसी बाहरी शत्रु का आक्रमण होता है और वह भीतर प्रवेश नही कर पाता।

यदि उस सुरक्षा के प्रश्न को यहाँ पर छोड दिया जाय तो एक और हानि यहाँ के लोगो को इस घने जगल के कारण उठानी पडती है। जंगलो से घिरे हुए स्थान स्वास्थ्य के लिये बडे भयानक हो गये हैं। घने पेड़ो और वनस्पति के कारण यहाँ के लोगो को शुद्ध वायु नही मिलती। इसका मुझे भी कुछ अनुभव हुआ। (१) ये दिन स्वास्थ्य के लिये अच्छे माने जाते हैं। लेकिन यहाँ पर जब मैंने मुकाम किया तो बहुत जल्दी हमारे साथ के कई आदमी बुखार में बीमार हो गये।

प्राचीन काल में यह नगर सात कोस अथवा चौदह मील के घेरे में था, लेकिन अब उसका घेरा पाँच मील से अधिक नही है। पहले यह बहुत दूर तक फैला हुआ था, लेकिन अब उसका विस्तार बहुत कम हो गया है। फिर भी उसका आज जितना क्षेत्र है, मौजूदा आबादी के हिसाब से अधिक है। इसलिये कि यहाँ के निवासियों की संख्या पाँच हजार से अधिक नही है।

इस नगर मे रहने वाले लोग नागर और गिरनारा जाति के ब्राह्मण हैं। इन्ही की संख्या में यहाँ के मुसलमान हैं। बाकी जो लोग यहाँ पर रहते हैं, वे या तो खेती करते हैं अथवा मजदूर हैं। यहाँ पर खेती करने वाले लोग अहीर और कोली जाति

---

(१) मूल लेखक ने इन स्थानो को अस्वास्थ्यकर होने का कारण यह बताया है कि वह स्थान घने जंगलो से घिरा हुआ है और वहाँ के रहने वालो को शुद्ध वायु नही मिलती। यह धारणा सही नही है। क्योकि शुद्ध वायु मनुष्य को पेडो से ही मिलती है। मनुष्यो की घनी आबादी में शुद्ध वायु नही मिला करती। वहाँ के स्वास्थ्य और जलवायु का कुछ दूसरा ही कारण हो सकता है। [अनुवादक]

के लोग हैं। यहाँ पर राजपूत नही हैं और अगर होंगे भी तो बहुत कम।

आजकल जो जूनागढ का अधिकारी है, वह मुसलमान है। वह नवाब कहलाता है। वह गायकवाड़ को खिराज देता है। उसकी अपनी आमदनी बहुत थोडी है। उसके अरमान बहुत बढे-चढे है, लेकिन दबे पडे हैं। वह जिस स्थान मे रहता है, वह खण्ड-हरो से घिरा हुआ है।

प्राचीन काल मे जूनागढ का निर्माण बडी मजबूती के साथ हुआ था। उसमें ठोस और चौकोर छतरियाँ बहुत थी और उसका परकोटा ऐसे ढँग से बना हुआ था, जिसमे बहुत से स्थान स्थान पर सूराख थे। इसमे कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन काल की परिस्थितियो के अनुसार, इस प्रकार का निर्माण गौरवशाली था।

मैंने इसकी चहारदीवारी को भली प्रकार देखने और उसको नापने की कोशिश की है। इसकी दक्षिणी दीवार जो सबसे छोटी है और मुख्यद्वार की है, सात सौ गज लम्बी है। उसका पूर्वी भाग आठ सौ गज का है। सभी तरफ सत्रह-सत्रह छतरियाँ बनी हुई हैं। उनकी पतली दीवारो से स्थान मे कोई रुकावट नही आती। पश्चिमी दीवार सबसे बडी है, वह लगभग दो मील लम्बी है। उत्तर के तरफ की दीवार बहुत टेढी-मेढी बनी है। उसकी लम्लाई दक्षिणी दीवार से कुछ अधिक है। उसके एक किनारे पर द्वार बना हुआ है। इस तरफ की दीवार सोनारिका नदी के किनारे-किनारे चली गयी है। वह नदी के कगारो की चट्टानो को काटकर बनायी गई है। इसीलिये यह दीवार सब दीवारो से मजबूत है।

चट्टान को काटकर एक खाई भी बनाई गयी है। वह खाई कही पर बीस फीट और कही पर तीस फीट गहरी है। उसकी चौडाई इसके लगभग है। इस खाई से जो सामग्री निकली है, उससे किले के दीवारे बनायी गयी हैं। उससे किले का परकोटा साठ से अस्सी फीट ऊँचा हो गया है। जहाँ पर नदी का किनारा आ गया है, वहाँ पर उसकी ऊंचाई सौ फीट ऊँची कर दी गयी है। परकोटे पर जो स्थान तोपखाने का है, वहाँ पर क्रमशः ढलाव भी है। उसका फायदा यह होता था कि तोप के दागे जाने पर दीवार के मलबे से खाई के भर जाने का कोई अन्देशा नही होता था।

उत्तर की तरफ का दृश्य अधिक प्रभावशाली है। पहाडी के खुलते हुए भाग से गिरनार दिखायी पडता है। जहाँ से यह देखा जाता है, उनमे एक स्थान का नाम दुर्गा के नाम पर है और उस तरफ सोनारिका नदी बहती हुई दिखायी देती है।

मिस्टर विलियम के द्वारा हमको किले मे प्रवेश करने का अवसर मिल गया। मुझे लोगो से मालूम हुआ कि किले में जाने की यह सुविधा पहले-पहल मुझे मिली है। अभी तक किसी योरप के यात्री को यह सुभीता नही दिया गया।

मैंने किले के भीतर जाकर देखा, उसकी भीतरी अच्छाइयाँ अब नष्ट हो गयी

हैं, लेकिन उसके बाहरी दृश्य अभी तक कायम हैं। किले के द्वार पर सैनिक रक्षा दल ने हमारा स्वागत किया। सैनिको की संख्या को देखना मेरे हृदय मे सम्मान और अविश्वास—दोनो प्रकार की भावनाये उठी। लेकिन अपनी इस भावना को प्रकट करने के लिये मैंने जल्दबाजी से काम नही लिया।

यहाँ का प्रत्येक पत्थर हमको अतीत काल के उस अवसर की याद दिलाता है, जब यादवो के छप्पन वश भारत मे राजसत्ता का भोग कर रहे थे। श्यामनाथ के—जिसे बाद में दैव-शक्ति प्राप्त हुई थी—सौराष्ट्र मे शासनकाल का कोई भी समय माना गया हो, लेकिन इसमें सन्देह नही किया जा सकता कि जब राणा के पूर्वज कनकसेन ने पंजाब मे लोहकोट से आकर दूसरी शताब्दी मे बालका देश को विजय किया था, उस समय भी यहाँ पर कोई यदुवंशी राजा राज्य करता था।

दक्षिण-पश्चिम कोने मे दो अर्ध चन्द्रकार बनी हुई मोरियो मे से होकर भीतर गये। वे मोरियाँ मुख्यद्वार की रक्षा के लिये बनी हुई थी। पहले दरवाजे को पार करके हम एक चौक मे पहुँचे, उसके दूसरे किनारे पर पुराने ढँग का एक दरवाजा बना हुआ था। प्रत्येक दरवाजे के बाहर की तरफ नोकदार मेहराब बनी हुई है। लेकिन भीतर की तरफ बडे-बड़े ग्रयानिट पत्थर लगे हुये है। उनके खुरदरे सगमरमर पर कुराई का काम हो रहा है। उनके ऊपरी भाग चार-चार खम्भो पर रखे हुये हैं। ये खम्भे भी उसी पत्थर से बने हुये है।

उसके बीच मे एक विस्तृत आँगन है, वह इसी प्रकार के दरवाजो से घिरा हुआ है। उन्ही के ऊपर बडे-बडे कमरे बने हुये हैं। दरवाजो पर नोकदार मेहराब बनाने के लिये उनको मोटी लकड़ी से ढक दिया गया हैं। उनको ऊपर लोहे के पत्तरों से मढ दिया गया है। वे मौसिम के कारण काले हो गये हैं। इस किले के द्वार पर सबसे प्रिय मुझको वे तलवारे और ढाले मालूम हुई, जो प्रवेश-द्वार से बाहर की तरफ चूने से बनायी गयी हैं। वे ऐसे स्थान पर बनी हैं जिन पर लोगो की आँखे अपने-आप जाती हैं। उनके विषय में वहाँ पर कुछ लिखने की आवश्यकता नही है, इसलिये कि वे अपनी उपयोगिता और महानता का परिचय स्वय देती है।

जिन लोगो ने रूस वाराञ्जियन शासको का इतिहास पढा है, उनको रूरिक (१)

---

(१) रूरिक स्केण्डेनेविया का निवासी था। उसने उत्तरी-पश्चिमी रूस में ६ वी शताब्दी सन् ८५० ईसवी मे अपना साम्राज्य कायम किया था। उसके उत्तराधिकारी और बेटे आइगर के संरक्षक ड्यूक ओलेग ने वर्तमान रूस की नीव रखी थी। कुस्तुन्तुनिया के लोग इनके सिपाहियों के युद्ध-कौशल की प्रशंसा करते थे और उनको वाराञ्जिन कहते थे।—दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री, एच० जी० वेलो पे० ६०८

के पुत्र के द्वारा बाइजेण्टिअम (१) के दरवाजे पर लटकाई हुई ऐसी ढाल का खूँटियो का स्मरण आवेगा, जब वह अस्सी हजार सेना लेकर बोरिस्थिनीज (२) से गुजरा था। हमे इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि वाराञ्चियन नारमन जाति के थे और उस समय तक वे लोग आधे एशियायी थे। हम यहाँ पर इतना और कह देना चाहते हैं कि जिन वाराञ्चियन सैनिको ने युद्ध की संधि को पूरा करने के लिये अपने शस्त्रो की शपथ ली थी, उनको हम अपने अनुमान से राजपूत कह सकते हैं, वे वास्तव में राजपूत थे।

इन दीवारो को छोडकर सीढियो पर चढते हुये हम किले के उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर तोपे रखी जाती थी। इस किले के भीतर पहले चाहे जैसी इमारतें रही हो, लेकिन अब हिन्दुओ के द्वारा बनवायी हुई वहाँ पर एक भी इमारत नहीं है। एक विशाल भवन ने किले की मुण्डेर को गायब कर दिया है। वह विशाल इमारत है, एक लम्बी-चौडी मस्जिद, जिसका निर्माण राजपूतो पर इस्लाम की विजय के स्मारक मे बनवाया गया है और हिन्दुओ के बनवाये हुये मन्दिरों की सामग्री को उसके बनाने मे इस्तेमाल किया गया है।

कहा जाता है कि वहाँ के राजा माण्डलिक को सुलतान मोहम्मद वेगचा (महमूद बेगड़ा) ने पराजित किया था। इस्लाम की प्रेरणा लेकर जितने लोग आये, उन्होने इस देश मे मन्दिरो का नाश किया और इस्लाम के नाम पर मस्जिदो का निर्माण किया गया। उन लोगों ने विनाश और निर्माण का यह कार्य इस्लाम की तरक्की के लिये किया, लेकिन उसका यहाँ के लोगो पर प्रभाव क्या पडा! जो धर्म जबरदस्ती किसी पर लादा जाता है, वह एक बोझे के सिवा और कुछ नही समझा जाता।

हिन्दुस्तान मे इन आक्रमणकारी मुसलमानो ने यही किया। उन्होंने नर-संहार करके बचे हुये लोगो को मुसलमान बनाया और मन्दिरो को गिराकर मस्जिदे खड़ी की। लेकिन इनके द्वारा वे लोग यहाँ के निवासियो को इस्लाम में प्रभावित नही कर सके।

मुसलमानो के द्वारा यहाँ पर जो इमारतें तैयार की गयी, वे बेमेल रही। उनमें बहुत-कुछ सामग्री हिन्दू-मन्दिरो की काम मे लायी गयी। जो इमारत तैयार हुई, उसमें उस सामग्री ने प्राणो का काम किया।

---

(१) बासफोरस नदी के किनारे का एक प्राचीन ग्रीक नगर जो वर्तमान कुस-तुन्तुनिया की सात पहाडियो पर बना हुआ था।

(२) योरप की महानदी जिसका वास्तविक नाम नीपियर था। ग्रीक लोगो ने उसका नाम बोरिथिनीज रखा। यह नदी वाल्डाई की पहाडियो से निकली है और श्याम सागर मे जाकर गिरती है।

यहाँ पर जो मस्जिद बनी है, उसकी लम्बाई एक सौ चालीस फीट और चौड़ाई एक सौ फीट है। उसकी दालानें गोल और चौकोर पत्थरो से बनी हैं और उनका आधार दो सौ स्तम्भों को बनाया गया है। इसके तीन विभाग हैं। दाहिना, बाँया और बीच का भाग। बीच का भाग कोणो के साथ बनाया गया है। प्रत्येक की लम्बाई तीस फीट है और प्रत्येक खम्भो से घिरा हुआ है। स्तम्भो का फासिला आठ-आठ फीट का है। मालूम होता है कि हिन्दू प्रथा के अनुसार इनको गुम्बजों से ढकने की योजना बनायी गयी थी। क्योंकि स्तम्भो मे जो पत्थर लगे हैं, उनको देखकर इस प्रकार का अनुमान होता है।

दोनो बगलों के स्तम्भ चौकोर है। इनका निर्माण भी उसी प्रकार के पत्थरो के द्वारा हुआ है। इनमें से प्रत्येक की ऊँचाई सोलह फीट है। उनके सिर का भाग सादा रखा गया है। बीच की छतरी के चारो ओर दो-दो खम्भो को एक नोकदार मेहराब से जोड़ा गया है। उत्तर और पश्चिम की तरफ का काम पूरा हो चुका है। शेष भाग खुले पडे हैं और नोकदार मेहराबे दो-दो खम्भो पर खडी की गयी हैं।

इस इमारत को देखकर यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि हिन्दुओं के मन्दिरों के सामान से इसका निर्माण किया गया है। इसके विषय में किसी प्रकार का सदेह करने की आवश्यकता नही है। क्योंकि इसमें जो पत्थर लगे हैं, वे ठीक उसी प्रकार के है, जिस प्रकार के पत्थर गढे हुये हिन्दुओ के मन्दिरो मे पाये जाते हैं।

कुमारपाल के मन्दिर का मण्डप उतार लिया गया है और यही हालत नेमिनाथ के मन्दिर की भी हो गयी है। मस्जिद की गुम्बजों मे भी मन्दिर के गढे हुये पत्थर पूरे-पूरे आ जाते है।

पर्वत पर बनी हुई सम्पतिराज की छतरी जिसका व्यास ठीक इसी के बराबर है—तीसरी गुम्बज के निर्माण में प्रयोग की गयी है। इसी प्रकार मस्जिद के और भी भाग हैं, जिनके निर्माण मे हिन्दुस्तान के मन्दिरो की सामग्री काम में लायी गयी है और कदाचित् इसी सामग्री के कारण मस्जिद के निर्माण का कार्य बहुत कुछ मन्दिर की तरह का हो गया है।

यादवों का स्मारक यहाँ पर एक और है और वह है एक सरोवर, जो ठोस चट्टानो को काटकर और खोदकर बनाया गया है। उस सरोवर की गहराई एक सौ बीस फीट से कम नही है। इसकी बनावट वृत्त के आकार मे है, जो सरोवर से छोटी होती चली गयी है। इसके सबसे बडे स्थान का व्यास पचहत्तर फीट के लगभग है, जो पत्थर यहाँ पर लगाये गये हैं, उनमे विभिन्न प्रकार की चित्रकारी की गयी है।

इस किले की एक चीज बहुत अधिक महत्व रखती है और वह है यहाँ की तोप। यह तोप पीतल की बनी हुई है और वह पश्चिम की तरफ एक चबूतरे पर रखी हुई है। उसकी लम्बाई बाईस फीट, जोड़ पर का व्यास दो फीट दो इञ्च, मुख

के ऊपर उन्नीस इञ्च और मुख के छेद का भाग सवा दस इञ्च है। उस पर दो लेख खोदकर लिखे गये हैं। उनसे पता चलता है कि यह तोप टर्की मे ढाली गयी थी। यह भी जाहिर है कि यह तोप सुलेमान महान के साथ आयी थी। उसने पन्द्रहवीं शताब्दी में आक्रमण करके गुजरात के राजा के मुकुट मे लगे हुए सभी रत्नो को अपने अधिकार में कर लिया था।

जूनागढ के इस प्राचीन किले मे इस प्रकार के कुछ पदार्थ जरूर ऐसे रह गये है, जिनका अध्ययन किया जा सकता है, लेकिन साधारण तौर पर वह जङ्गल हो गया है। वहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं, लेकिन शरीफे के वृक्षों की अधिकता है।

उत्तर-पश्चिम के रास्ते से जब मैं उतर रहा था तो वहाँ पर मैंने एक गुफा देखी। वह गुफा यात्रियो के लिये निस्सदेह एक दिव्य स्थान है। वहाँ के एक ऊँचे और विस्तृत पठार को खोदकर कुछ कमरे और कोठे बनाये गये है, जो देखने मे अच्छे नही लगते। उनमे वहाँ के बहुत से लोगो के नाम दिये गये हैं। उन कमरों और कोठो की एक पक्ति पाण्डवो के नामो से है। खापरा नामक चोर का भी वहाँ पर नाम है। प्राचीन काल मे वह व्यक्ति इस इलाके में राबिनहुड (१) हो रहा था। लेकिन वह पुरुषार्थ में हमारे चरित नायक से आगे था। यह व्यक्ति वही था, जो कलश में लगे हुए सोने की चोरी करने के लिये वाडौली के मन्दिर की चोटी पर चढ गया था।

वहाँ पर खापरा की गुफा है, जो कई भागो में विभाजित है। वहाँ पर एक छोटा,सा हॉल है, जो उसके बैठने-उठने के लिये था। उसके एक भाग मे रसोईघर और एक उसमे आश्वशाला भी है। वह अश्वशाला साठ फीट लम्बा और उतना ही वर्गाकार है, यह स्थान लगभग नौ फीट ऊँचे सोलह खम्भो पर बना हुआ है। मुसलमानो ने खापरा की इस गुफा को शेखरमली दरवेश की दरगाह बना डाली है।

अब हम सुरक्षा के पहाड के रास्ते पर आते हैं। यह पहाड उन पच्चीस गिरिराज अथवा पर्वतो के राजा के नामो मे से एक है। जिनके उल्लेख प्राचीन ग्रन्थो मे पाये जाते हैं। गिरिराज को गिरिनार कहा जाता है। गिरि का अर्थ पहाड होना है।

---

(१) अंग्रेजी कथाओ मे राबिनहुड का नाम आमतौर से पढने को मिलता है। प्राचीन काल के बहादुराना काव्यों मे भी उसके उल्लेख पाये जाते हैं। उसके सम्बन्ध मे लिखे गये विवरणो से पता चलता है कि वह धनिको को लूट-मारकर जो सम्पत्ति लाता था, उससे वह गरीबो और अनाथो की सहायता किया करता था। उसके नाम का उल्लेख इतिहासो मे कही पर नही पाया जाता। परन्तु कथाओ और काव्यो मे चौदहवी शताब्दी तक उसके उल्लेख मिलते हैं।

और नार का अर्थ स्वामी होता है। दूसरा नाम उज्जयन्त अथवा उजयन्ती है। यह पापो का- नाश करने वाला पहाड़ माना जाता है। हर्षद शिखर अथवा योगियों का अध्यक्ष शिव, स्वर्णगिरि अथवा सोने का पहाड़, श्रीढांक गिरि अथवा सभी पर्वतों को आश्रय देने वाला पहाड़, श्रीसहस्त्र कोमल अथवा अत्यन्त कोमल पर्वत, मोरदेवी पर्वत अथवा आदिनाथ की मामोरदेवी का पहाड़, बाहुवलि तीर्थ अथवा आदिनाथ के दूसरे लड़के बाहुवलि का स्थान, आदि।

इन सभी नामो में उसका स्वर्ण नाम अधिक सही और सार्थक है, जो यहाँ की निर्झरिणी नामक नदी के लिये प्रयोग में लाया गया मालूम होता है। उसमें काली चट्टानो और पहाडी रास्तो से वहकर आने वाले झरने दिखायी देते हैं। इसके सम्बन्ध में यह विश्वास करना अस्वाभाविक नही है कि इस अत्यन्त प्राचीन कालीन पहाड़ में कोई वहुमूल्य धातु प्राप्त होती रही है और वह धातु सोनारिका अथवा स्वर्ण प्रवाहिनी का अर्थ देता है। राणा वंश के इतिहास के उपसहार भाग में एक ऐसा कथानक पढ़ने को मिलता है, जिससे पता चलता है कि सौराष्ट्र के शक्तिशाली यादव वशीय राजा ने अपनी लड़की एक ऐसे अतिथि को ब्याही थी, जो कीमती धातुओ की खोज करने की कला को भली प्रकार जानता था और अपनी इस खोज के लिये वह मशहूर हो रहा था। उसने गिरिनार के पहाडो में ऐसे स्थानो का पता लगाया था, जहाँ पर सोना मौजूद था।

अब हम जूनागढ़ के किले के पूर्वीद्वार से सीढियो पर चलते हुए आगे की तरफ आते हैं। घोड़ो के व्यवसायी सुन्दरजी का वैभव यहाँ से आरम्भ होता है। उसका यश बढकर उसके नाम को सदा के लिये अमर बना देगा, ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है। इसके साथ-साथ यहाँ आने वाले यात्रियो को अपने स्थान पर पहुँचने के लिये बहुत बडी सहायता मिलती है, जो किसी आर्शीवाद से कम नही है।

नगर की बाहरी दीवाल से आरम्भ होकर एक अच्छा-सा मार्ग जङ्गल की तरफ जाता है। उस मार्ग के दोनो तरफ आम और जामुन की तरह के बहुत-से वृक्ष लगे हुए हैं। इन वृक्षो से यहाँ के थके हुए यात्रियो को शान्ति देने के लिये छाया भी मिलती है और उनके फलो से यात्रियो को अपनी क्षुधा मिटाने मे सहायता भी मिलती है। यह रास्ता जहाँ पर सोनारिका से मिलता है, वहाँ का लम्बा रास्ता पत्थरों से बना हुआ है। वह मार्ग नदी के साथ-साथ चलता है और वहाँ पर जाकर खत्म हो जाता है, जहाँ पर इस दर्रे के बहुत-से मार्ग होकर अपनी-अपनी दिशा बनाते हैं। वहाँ पर तीन महराबो का एक बड़ा खूबसूरत पुल है। उस पुल पर जालीदार खुली दीवारे वनी हुई हैं।

इस पुल से वहाँ का दृश्य अत्यन्त खुशनुमा हो जाता है और उसके साथ-साथ उसकी उपयोगिता वहुत- कुछ आँखो के सामने आ जाती है। सबसे बड़ी बात यह

है कि इसके निर्माण के द्वारा हजारो गरीबो को रोटी कमाने ने लिए काम मिलता है और इस पुल के द्वारा हजारो तथा लाखो भक्त-यात्रियो के सकटो का भी अन्त हो जाता है।

सुन्दरजी अब ससार में नही हैं। उनकी मृत्यु हो चुकी है। उसके परिवार में आज जो लोग भी मोजूद हैं, लडके अथवा उत्तराधिकारी, उन सवकी प्रशसा की जा सकती है। इसलिये नही कि वे एक ऐसे अच्छे आदमी के वशज हैं। बल्कि इसलिए कि उन सवने मिलकर सुन्दरजी के यश और गौरव को कायम रखने की पूरी कोशिश की है। इन लोगो ने सुन्दर जी के किसी कार्य को शिथिल नही होने दिया। उसके पुत्र ने अपने उसी धार्मिक उत्साह का आज तक परिचय दे रखा है, जो उसके पिता मे मौजूद था। पुत्र के कार्यों से पिता की ख्याति की वृद्धि हुई है। सुन्दर जी ने निर्माण का जो कार्य आरम्भ किया था, वह लगातार वढता हुआ दिखायी देता है। इसके लिए सुन्दर जी के उत्तराधिकारियो की और उनके धार्मिक उत्साह की तारीफ हो रही है।

पुल के ऊपर खडे होकर देखने से जो दृश्य दिखायी पडते हैं, वे बडे मोहक और प्रभावोत्पादक हैं। सामने की तरफ पहाड़ो के बीच मे दुर्गा-द्वार के रास्ते पर गिरनार का ऊँचा और प्रसिद्ध शिखर दिखायी देता है। पीछे की तरफ जूनागढ का किला है। ऐसा जान पडता है, मानो उसका प्राचीन गौरव अपनी ख्याति की रक्षा करने मे असमर्थ हो रहा है। उसको देखने से यह भी आभास होता है कि पर्वत के ऊपर जाने के लिये घाटी के मार्ग को सुरक्षित वनाने की आवश्यकता थी, इसीलिये यह किला वनाया गया है।

अव हम पुल को छोडकर एक महत्वपूर्ण स्मारक की तरफ आते हैं। हमारा विश्वास है कि उसका वर्णन और प्रतिपादन इतिहास के पाठको को अधिक प्रिय मालूम होगा।

इस स्मारक को मैं वडे आदर के साथ देखता हूँ। उसका गौरव मेरे जैसे आदमी को बहुत पहले से आकर्षित कर रहा है। ऐसा मालूम होता है कि लोगो के सामने अज्ञान का एक घना अधकार फैला हुआ है, उसको दूर करने के लिए ही यह स्मारक मुझे अपनी ओर आमन्त्रित और आकर्षित कर रहा है। वह स्मारक चाहता है कि युगो से फैला हुआ लोगो का अन्धकार दूर हो।

यहाँ पर इस स्मारक के सम्बन्ध मे इतना लिखना और आवश्यक हो गया है कि यह स्मारक जिस कठिन और घने जगलो के बीच में है, उनमे घने बबूलों के इतने अधिक वृक्ष हैं कि उनसे गुजर कर स्मारक तक पहुँचना साधारण कार्य नही है। उस सारे रास्ते को कांटेदार बबूलो के घने पेड़ो ने बुरी तरह से घेर रखा है।

यहाँ पर मैं पहले दो छोटे स्थानो का उल्लेख करना चाहता हूँ। उन दोनो

स्थानों में एक कुण्ड है, वह छोटा है, लेकिन देखने मे बहुत अच्छा लगता है। यह कुण्ड नगर के बाहर निकलते ही मिलता है। इसका नाम सोनार का कुण्ड है। दूसरा स्थान दुर्गा की पहाड़ी के नीचे बाघेश्वरी माता का छोटा-सा मन्दिर है। यह मन्दिर फ्रीजियन (१) देवी से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। वह कांटों का माला पहने है और शेर पर सवार है।

यह एक स्मारक है, जो किसी विजेता का मालूम होता है। उसका निर्माण काले पत्थरो पर हुआ है। उसकी बनावट बड़ी अनोखी और अजीव है। सारे पत्थर एक-से हैं और सभी इतने समान हैं, जो काट-काटकर बनाये जाने का प्रमाण देते है। उसकी परिधि करीब-करीब नब्बे फीट की है। वह स्मारक कई विभागो में विभाजित है, उनके भीतर प्राचीन अक्षरो में खुदे हुये शिला-लेख हैं, उनमें से दो शिला-लेखो की भी नकल ली गयी। परन्तु अक्षरो की बनावट कुछ दूसरे तरह की होने के कारण नकल संतोषजनक नही रही।

मैंने पहले जिन दो शिला-लेखो की नकल कराई, वे दिल्ली के विजय-स्तम्भो और मेवाड़ के झील के बीच में बने हुए विजय-स्तम्भ (२) एवम् भारत के बहुत-से प्राचीन गुफाओ और मन्दिरों के लेखो के समान हैं। इन लेखों के प्रत्येक अक्षर की लम्बाई लगभग दो इञ्च है। ये शिला-लेख बडी सावधानी के साथ लिखे गये हैं, बहुत प्राचीन होते हुये भी उनके आकार-प्रकार मे कोई विशेष अन्तर नही आया।

जिस प्रकार के अक्षरो मे ये शिला-लेख मिले, वैसे अक्षरो मे पहले भी शिला-लेख मिल चुके थे। कुछ उसी प्रकार की शैली मे यहाँ पर भी अनेक शिला-लेख मिले। इनके अक्षरो की वनावट कुछ उसी प्रकार की है, जिस प्रकार के अक्षरों में मैंने 'ट्राञ्जेक्शन्स आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी' के लिए इण्डो-गेटिक पदकों पर खुदवाये थे और जिनके नमूने मैंने कालीकट के खण्डहरो और अन्य प्राचीन नगरो से प्राप्त किये थे।

इन लेखो के सम्बन्ध में मैं कुछ अधिक गहराई में जाने की कोशिश कर रहा है। मेरी समझ में इन सबका लिखने वाला कोई एक ही था। परन्तु वह व्यक्ति कौन था? अक्षरो की यह शैली-सुरोई के विजेता मीनाण्डर और अयोलोडोटस के बहुत पहले समय की है। अक्षरों की इस शैली मे ग्रीक अक्षरो की बनावट का मिश्रण मालूम होता है। फिर भी इस मिश्रण के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कल्पना नही की जा सकती। ऐसी

(१) फ्रीजिया एशिया माइनर में है। वहाँ के लोग नोकदार टोपियाँ पहनते हैं।

(२) मेवाड़ का विजय-स्तम्भ चित्तौर के दुर्ग में है, वहाँ पर झील नही है।

दशा मे अक्षरो की इस शैली के सम्बन्ध मे अधिक गहराई मे जाने की आवश्यकता नही मालूम होती, अतएव उसे मैं यहाँ पर छोडता हूँ।

मैं इस बात को मानता हूँ कि जब किसी खोज मे पीछे पडा जाता है तो मनुष्य किसी परिणाम पर पहुँचता है, लेकिन उसका निष्कर्ष कहाँ तक सही है, यह आसानी के साथ नही कहा जा सकता। इसलिये इसकी जटिलता के निवारण करने के कार्य को मैं उन विशेषज्ञो पर छोडता हूँ, जो भविष्य मे पुरातत्व के इस प्रश्न को अपने हाथो मे लेंगे।

इस जटिल प्रश्न को हल करने और खोज की अधिक गहराई में जाने का कार्य अपने हाथो मे लेने वालो मे मैं पहला आदमी नही हूँ। आधी शताब्दी पहले उत्तरी भारत से जिस प्रथम अंगरेज ने फीरोज के पुराने महल मे स्तम्भ को देखा था, उसके लेख के सम्बन्ध मे उसने पोरस के विरुद्ध सिकन्दर की विजय का लेख स्वीकार करके उल्लेख किया था। मैं इस प्रश्न को—जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है—भविष्य मे काम करने वाले विद्वानो पर छोडता हूँ। इसका कारण एक यह भी है कि पहले भी जब मैंने उसकी खोज में अधिक समय व्यतीत किया तो कुछ हासिल नही हुआ।

कुछ शिला-लेखो की लिखावट बहुत प्राचीनकाल की होती है। जो शिला लेख जितना ही पुराना होता है, उसका पढा जाना उतना ही कठिन होता है। प्राचीनकाल मे जैनियो ने इन लेखो की लिपि का सुधार-कार्य का विचार लगभग बारहवी शताब्दी मे किया था, मैंने इन लिपियो की पुरानी शैली का सकलन किया था, मेरे उस सकलन मे कुछ पाँचवी शताब्दी के थे। उनमें जेट राजाओ के आक्रमणों के वर्णन लिखे गये थे। मैंने इस कार्य को अपने गुरु और सहायक आदमियो के द्वारा बडी सावधानी के साथ कराया था। मेरे इस कार्य में जो लोग सहायक थे, वे पुरानी लिपियो को समझने मे काफी योग्य थे। लेकिन वे भी कभी-कभी कुछ लिपियो के समझने में असमर्थ हो जाते थे।

अब हम पुल को पार करके अपनी यात्रा में आगे बढ़ने की चेष्टा मे थे, हमारा रास्ता घाटी और दोनो पहाडियो के बीच से होकर गया था। जब मैं अपने इस रास्ते मे था तो उसकी सकीर्णता पर अनेक प्रकार की बातो पर विचार करता रहा, इस मार्ग में हिन्दुओ ने अपनी कल्पनाओ से काम लेने मे कुछ उठा नही रखा था। मैंने देखा, मार्ग के दाहिने ओर अश्वमुखी देवी और बाईं ओर जोगिनी माता रक्षा के लिये मौजूद हैं। खोज करने पर मालूम हुआ कि इनके द्वारा दो प्रकार के कार्य होते हैं, एक तो आने वाले यात्रियो की रक्षा होती है और जिन आने वाले लोगो मे श्रद्धा नही होती, उनका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

घाटी से चलने वाला रास्ता नदी के तटवर्ती वृक्षो और पहाड़ के मध्य भाग से तग रास्ता छोडकर सोनारिका के बाये किनारे से चलता है, वृक्षो मे अधिक पेड

सागवान के हैं। इन पेड़ो में पत्ते बड़े-बड़े होते हैं। इतने बडे पत्ते और इतने छोटे पेड तथा तने में, यह देखकर कुछ विस्मय भी होता है। लेकिन इन पेड़ो की लकड़ी मकान बनाने मे बहुत काम की साबित होती है।

पहाड़ी के किनारे पर जिस पतली इमारत पर दृष्टि जाती है, वह दामोदर महादेव का मन्दिर है। वह एक बडे क्षेत्र मे तैयार कराया गया है। सोनारिका को रोककर वहाँ पर एक कुण्ड बनाया गया है। उस मन्दिर में दर्शनो के लिए जाने वाले यात्री पहले उस कुण्ड में स्नान करते हैं और उसके पश्चात् सीढ़ियो पर चढ़कर मन्दिर में जाते हैं। उस कुण्ड में बिना स्नान किये हुये मनुष्यों को अपवित्र माना जाता है और उस मन्दिर में जाने से रोक दिया जाता है।

उस मन्दिर के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारे हैं। वहाँ पर एक धर्मशाला भी बनी हुई है। थके-मादे यात्री उस धर्मशाला मे जाकर विश्राम करते हैं। एक दूसरे कुण्ड मे जाने के लिए ऊपर की तरफ सीढ़ियाँ जाती हैं। यह कुण्ड चट्टान को काटकर बनाया गया है, उसका अगला भाग पत्थरो को काट कर तैयार किया गया है। कुण्ड के भीतर मूर्तियाँ मौजूद हैं, वे टूट-फूट कर विकृत हो गयी हैं। मुसलमानो के द्वारा ये मूर्तियाँ नष्ट की गयी हैं। इस कुण्ड का नाम रेवती कुण्ड है।

इस कुण्ड के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि जूनागढ के पुराने यादववंशी राजाओं ने अपने आदि पुरुष कन्हैया को समर्पित किया था। वहाँ पर मुझे एक शिला-लेख मिला, उससे मुझको अपार आनन्द हुआ। मूर्तियो को नष्ट करने वालो से वह शिला-लेख किसी प्रकार बच गया था। इस शिला-लेख मे लिखो गयी पक्तियो को पढ़वाने के पश्चात् मेरी समझ मे यह नही आया कि इस मन्दिर को शिव-मन्दिर क्यो कहा जाता है। इसलिए कि मुझे बताया गया है कि कन्हैया अर्थात् श्रीकृष्ण के लड़कपन का एक नाम दामोदर भी है। मालूम होता है कि आठवी शताब्दी मे शैवो और वैष्णवों के बीच साम्प्रदायिक संघर्ष होने पर शैवो के द्वारा यहाँ पर शिव की मूर्ति स्थापित की गयी। इसलिये कि शिव को वे लोग अपना आराध्य देव मानते थे। इन समस्त बातो का अनुमान पुरानी परिस्थितियो के आधार पर होता है और सही जान पड़ता है। यह भी सही मालूम होता है कि शिवजी की मूर्ति के बाद ही उस मन्दिर के नाम मे परिवर्तन हुआ और लोग उसे शिवजी का मन्दिर कहने लगे।

कुण्ड के करीब एक छोटा-सा दूसरा मन्दिर है। उस मन्दिर मे कन्हैया के भाई बल्देव की मूर्ति स्थापित है। उस मूर्ति के हाथो में गदा, चक्र और शख (१) है।

---

(१) यहाँ पर मूल लेखक ने जिस मूर्ति को बल्देव की मूर्ति लिखा है, वह सही नही मालूम होता। इसलिये कि उस मूर्ति में गदा, शंख और चक्र का होना सन्देह पैदा

यहाँ के ब्राह्मणो मे यह देखकर आश्चर्य होता है कि वे अपने जिन देवताओं की पूजा करते हैं, उनके सम्बन्ध में उनको कुछ भी जानकारी नही है। देवताओं के साधारण चिन्हो और उनकी मामूली बातो का ज्ञान तो उनके पुजारियो को होना ही चाहिये।

नदी के दूसरी तरफ उन यात्रियो की समाधि बनी हुई है, जिनकी मृत्यु उनके यहाँ आने पर हो गयी थी। यात्री लोग उसको अपना सौभाग्य मानते हैं। यह भी जाहिर होता है कि सौराष्ट्र के यदुवशों राजा लोगो की समाधियाँ भी यहाँ पर रही हैं। शिला-लेख से इस बात का स्पष्ट समर्थन हो जाता है। विष्णु हिन्दुओ के भगवान का नाम है और कन्हैया में विष्णु की शक्तियो को हिन्दू जाति के लोग स्वीकार करते हैं। ऐसी दशा में कन्हैया को इस कुण्ड का देवता मानने में जरा भी अस्वाभाविकता नही है। इसलिए कि कन्हैया को यदुवशी जाति का मूल पुरुष माना जाता है और मनुष्य की आत्मा को शान्ति देने की उसमें शक्ति भी है।

यहाँ पर जो शिला-लेख हमे मिला, वह कई अर्थों में महत्वपूर्ण है, इसमे उस समय के कितने ही ऐसे राजाओं के नामो का उल्लेख है, जिनके राज्य इस क्षेत्र में रहे थे। और जिन्होंने ख्याति भी प्राप्त की थी। ऐसे राजाओ में राव माण्डलिक और खँगार के नाम विशेषता रखते हैं, उनके सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की कहानियाँ कही जाती हैं।

इस शिला-लेख मे माण्डलिक के नाम का दो बार प्रयोग किया गया है। उसके आरम्भ मे ही लिखा है कि पहला माण्डलिक अत्यन्त प्राचीन काल मे हुआ था। इस प्रकार के शिला लेखों मे प्रायः देखा जाता है कि उनमें किसी न किसी प्रसिद्ध पुरानी घटना का उल्लेख होता है। उसके बाद बहुत सी पीढियो को छोडकर उसके वश के लोगो की कुछ बाते दी जाती हैं। मालूम होता है कि यह शिला-लेख जयसिंह के द्वारा लिखाया गया था और उसने अपने वश के प्रसिद्ध योद्धा अभयसिंह के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए यह शिला-लेख लगवाया था। यह भी बतलाया जाता है कि अभयसिंह झिगरकोट के लोगो से युद्ध करता हुआ मारा गया था। जिन लोगो से अभयसिंह को युद्ध करना पडा था, उनको 'जवन' शिला-लेख मे लिखा गया है। यह जवन शब्द वास्तव में यवन है और यवन शब्द का प्रयोग हिन्दुओ के ग्रन्थो और उल्लेखो मे मुसलमानों के लिए किया गया है। झिगरकोट अथवा जूनागढ के लिये इस शब्द का प्रयोग क्यो किया जाता है, इस विषय में कुछ स्पष्ट नही है। इसका अस्तित्व तलहटी में होने के कारण कदाचित् वह शब्द सार्थक होता हो।

करता है। गदा, शख और चक्र से चतुर्भुज विष्णु का अनुमान होता है। जान पडता है कि लेखक को लिखने के समय नाम का भ्रम हो गया है। —अनुवादक

इस शिला-लेख के गूढ़ अक्षरों से समय की सूचना मिलती है। इन लेखों से स्पष्ट जाहिर होता है कि यहाँ के ब्राह्मणो में भी मिश्र के पुरोहितो के समान किसी भी गुण अथवा जानकारी को गुप्त रखने का स्वभाव था। वे ऐसा क्यो करते थे, यह तो बहुत स्पष्ट नही कहा जा सकता, लेकिन ऐसा होता है कि वे लोग नहीं चाहते थे कि कोई अच्छा गुण दूसरे लोग भी जाने और उसका फायदा उठावें।

शिला-लेख में सम्वत् को कुछ संकेत के रूप में लिखा गया है, ऐसा मालूम होता है—राम तीन हैं, तुरङ्ग यानी सप्ताश्व अर्थात् सूर्य का सात मस्तक वाला अश्व, सागर का अर्थ होता है चारो समुद्रों से जो सम्पूर्ण पृथ्वी को घेरे हुए हैं और यही अर्थात् पृथ्वी एक है।

आगे की ओर लगभग आधा मील चलने पर, नदी को फिर पार करना पडता है, वहाँ पर इमली और पीपल के पेडो की छाया में घाटी का रमणीक स्थान है, वही पर भाव नाथ महादेव का मन्दिर और भव्य का तालाब है। उस तालाब मे फिर से स्नान करना पडता है। उसके पश्चात् यात्री लोग विश्राम करके तथा पवित्रता प्राप्त करके दर्शन करने के लिए जाते हैं तो मन्दिर का पुजारी उनके माथे पर राख का टीका लगाता है।

आधा मील ओर आगे चलकर हम दो मुस्लिम महात्माओ की मजार पर पहुँचे, वहाँ पर कुछ वेदी के रूप में एक स्थान बना हुआ है, वह स्थान वस्त्रो से ढका रहता है, उस स्थान पर करीब एक दर्जन मुर्गे फिरा करते हैं। हिन्दू और मुसलमान—दोनो जातियो के लोग इन मजारो के सामने आकर श्रद्धा के साथ सिर झुकाते हैं। इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण पाये जाते हैं, जिनसे हिन्दुओ की स्वभाविक प्रवृति और भावना का बोध होता है।

हमारे सामने यहाँ पर स्वर्ण पुवारिनी नदी का फिर से दृश्य उपस्थित हुआ। यह रमणीक दृश्य कुछ दूर तक हमारे साथ-साथ चला और उसके बाद घने जङ्गलो में जाकर गायब हो गया। हम आगे चलकर गिरिराज के नीचे दक्षिण पूर्व उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर उसका उद्गम है। यहाँ पर रास्ता बहुत तंग हो गया था। उस स्थान पर एक यात्री अकेला ही चल सकता था। उस स्थान पर वृक्षो की डालियाँ और पत्तियाँ इतनी पास हो जाती हैं कि वो बार-बार मुँह पर आकर लगते हैं। इसलिये उन पत्तो और डालियों को हटा-हटाकर चलना पड़ता है।

कुछ दूर तक इस प्रकार के मार्ग को पार करने के बाद एक अत्यन्त प्राचीन मुनीश्वर की खड़ाऊँ देखने को मिलती हैं। सभी यात्री बड़े आदर-भाव से उनको प्रणाम करते हैं। यहाँ पर पाँच अन्य मन्दिर हैं, जिनका निर्माण बहुत साधारण रूप मे हुआ है। उनकी छतें ग्रेनिट के खम्भो पर बनी हुई हैं। इन मन्दिरों को पाण्डवों का मन्दिर कहा जाता है। इन मन्दिरो के पास अन्य दो मन्दिर और हैं, वे दोनो ही क्षत-

विक्षत हो चुके हैं। कहा जाता है कि उन पाँचो पाण्डवो की पत्नी द्रौपदी के ये मन्दिर हैं।

इस घाटी के तग और सँकरे रास्ते से जो क्रमशः चढ़ाई चढनी पड़ती है, वह साढे तीन मील से कम नही है, जहाँ पर मुनीश्वर के खडाऊँ मिले थे, वहाँ से वह रास्ता सीधा ऊँचाई की तरफ जाता है। यात्रियो को इस मार्ग में पत्थरो के बडे-बडे टीले मिलते हैं। मालूम होता है कि पत्थरो के ये विशाल टीले किसी समय भूकम्पो के कारण पहाडी स्थानो से गिरकर यहाँ पर आ गये हैं। इन पत्थरो के टीलो को देखकर कुछ इसी प्रकार का अनुमान और आभास किया जा सकता है। इसलिए कि वे टीले कुछ ऐसे लटके हुए हैं, मानो वे किसी भी समय अपने स्थान से गिरकर नीचे की तरफ लुढकते हुए जा सकते हैं।

उस मार्ग का यह स्थान 'भैरो आप' के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान करीब एक सौ फीट ऊँचा और उसकी परिधि इससे दो गुनी है। मार्ग का यह स्थान विशाल और अत्यन्त शान्तिपूर्ण है। उसका नाम भैरो आप निश्चय ही कुछ अर्थ रखता है। ऐसा मालूम होता है कि जो लोग अपने सासारिक जीवन से ऊब कर निराश हो जाते हैं, वे इस पहाड की ऊँची चोटो पर आकर जीवन की कठिनाइयो से छुटकारा प्राप्त करने के लिये झाँप मारते हैं अर्थात् चोटी से कूदकर आत्महत्या कर लेते हैं। ऐसे समय पर वे भैरो नामक देवता का नाम लेते हैं। इस प्रकार आत्महत्या करने वालो का विश्वास है कि उनको वर्तमान जीवन की यत्रणाओ से छुटकारा मिल जाता है और उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है। उनका यह भी विश्वास है कि उसके बाद उनका जन्म किसी राजा के यहाँ होता है।

इस प्रकार के आदमियो मे—जो आत्मघात करते हैं—अच्छे श्रेणी के लोग नही होते, बल्कि वही लोग होते हैं, जो अपने जीवन मे किसी प्रकार की सफलता नही प्राप्त करते और जीवन का सुख तथा सतोष पाने की आशा नही रखते। एक आश्चर्य की बात और भी है और वह यह कि ऐसे अयोग्य, अकर्मण्य और निराश व्यक्ति अपने इस प्रकार के अपराधी कार्यों को वे तपस्या के रूप मे लेते हैं।

सन् १८१२ ईसवी में मेरे दोस्त मिस्टर विलियम्स यही पर थे। उस समय करीब बारह हजार यात्रियो मे केवल एक यात्री ने झाँप मारी थी। बाद मे पता लगाने से मालूम हुआ कि वह अत्यन्त गरीब और कठिनाइयो का मारा था। अपनी दरिद्रता से ऊबकर उसने झाँप मारने के सिद्धान्त पर विश्वास किया था। इस प्रकार के कारनामो के कारण उसका नाम भैरो झाँप पडा।

यहाँ पर एक दूसरा पत्थरो का बडा टीला है। उसका नाम हाथी है। यह विशाल टीला पहाड की ऊँचाई से खिसककर एक चट्टान के ऊपर आकर टिका हुआ है। उसकी ऊँचाई सीधी पन्द्रह सौ फीट है। इसके कारण यात्रियो के चलने मे किसी
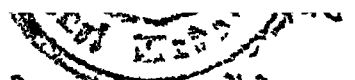
प्रकार की रुकावट नही आयी। यहाँ तक जितना भी पहाडी भाग है, जङ्गलों से ढका हुआ है। इसके बाद सभी प्रकार के वृक्षों का लोप हो गया है और वहाँ पर काली पथरीली चट्टानो के सिवा कुछ दिखायी नही देता। इन चट्टानों पर चलने का कार्य साधारण नही है, बल्कि बडी सावधानी से चलकर खंगार के महलो तक पहुँचने की नौबत आती है।

यह बात अवश्य है कि धनिको ने यात्रियो के सुभीते के लिये बहुत-कुछ काम किया है और चट्टानों के पहाड़ी रास्ते को बहुत-कुछ सुविधाजनक बना दिया है। चट्टानो को काटकर बहुत कम ऊँची सीढियाँ बनी दी गयी हैं। इनके द्वारा यात्रियों को चढने और उतरने मे बहुत सुभीता हो गया है। यह मार्ग बहुत चक्करदार है और मोड़ो के साथ आगे की तरफ बढा है। यहाँ की चट्टानें चलने के नाम पर बडी सकट पूर्ण थी। यहाँ पर उन धनवानों को धन्यवाद देना चाहिए, जिन्होंने अपनी सम्पत्ति के द्वारा इन मार्गों को कठिनाई को किसी हद तक दूर किया है।

कल शाम की बात है। मेरे पैर में अचानक चोट आ गयी, जिससे मैं लगड़ा हो गया और चलने मे असमर्थ हो गया। ऐसी दशा में मुझे एक पहाड़ी पालकी में बैठने के लिये मजबूर होना पडा। इस प्रकार की पालकियाँ, जो यात्रियो को पहाडो पर ले जाने का काम करती हैं, उनका वर्णन मैं आबू पहाड के परिच्छेद मे कर चुका हूँ।

यहाँ पर चट्टानो को काटकर जो सीढियाँ बनायी गयी है, वे कुछ अर्थों मे मेरे अनुकूल साबित नही हुई। किसी प्रकार मैंने अपने मार्ग को पार करने की चेष्टा की। ग्यारह बजे के करीब मैं उस दरवाजे के पास पहुँचा जो सौराष्ट्र के प्राचीन राजाओं के महलो में जाने के लिये था। उसकी काली-काली दीवारे देखने में कुछ अजीब सी लगती है। मैंने यहाँ के विशाल प्रासाद को देखना और अनुभव करना आरम्भ किया। सांसारिक जीवन से दूर पहाड़ो के एकान्त स्थान में इसके निर्माण का क्या अर्थ होता है, मैं यह बार-बार सोचने लगा।

यहाँ की चट्टानो पर बने हुए खगार के प्रासाद मे प्रहरी के लिये एक स्थान बना हुआ है। उसकी छत दो महराबों पर बनी हुई है। मैंने उसी मे बैठकर भोजन किया। उस समय मैं जूनागढ से करीब तीन हजार फीट की ऊँचाई पर था और जूनागढ के टूटे-फूटे मकानों की ओर देख रहा था। ऊपर की तरफ पहाड़ की चोटी पर छै सौ फीट की ऊंचाई पर देवमाता अदिति का मन्दिर है। उसके ऊपर पर्वत का शिखर दूर तक फैला हुआ है। मैं बडी सावधानी के साथ उसकी चोटियो की तरफ देखता रहा। मैं कुछ देर तक सोचता रहा की यहाँ तक पहुँचने मे यात्रियों को कितने संकटों का सामना करना पड़ता है। मेरे मुँह से अकस्मात् निकल गया—सचमुच इन पहाड़ो की यात्रा करना बड़े साहस का कार्य है।

अठारहवाँ प्रकरण

पहाड़ों के कुछ अनोखे दृश्य

आराधना के स्थान—पीडा और प्रसन्नता—अन्वेषण के कार्य—भारत मे आने की उत्सुकता—मेरे भारतीय मित्र और शुभचिंतक—भारत का अटूट सम्बन्ध—गोरखनाथ मन्दिर का शिखर—पहाडो के ऊपर का दृश्य—जन्म और विनाश की देवियाँ—पुरानी कथायें—जगल का प्रसिद्ध राक्षस—दीर्घजीवी साधु—कालिकादेवी के मन्दिर मे जाने का खतरा—पर्वत पर अघोरियो का शिखर—काठियावाड के जङ्गली मनुष्य—नरभक्षी अघोरी।

प्राचीन काल में सदा यह परम्परा रही है कि लोग जीवन की कठिनाइयो से बचने के लिये भगवान के प्रति आकृष्ट होते थे और भजन तथा आराधना करने के लिये एकान्त स्थान की खोज में रहते थे। ऐसे लोगो ने अपने इस पवित्र कार्य के लिये प्राय: जगलो और पहाड़ो को अधिक महत्व दिया था। कुछ इसी आधार पर पहाड़ों की यात्राओ का महत्व बढा था। लोगों का यह भी विश्वास था कि इन निर्जन स्थानों मे भगवान की आराधना करने वाले वडे-बडे तपस्वी, साधु-सन्तो के दर्शन होते हैं। और उनके दर्शनो से मनुष्य के पापो का नाश होता है।

मैं पहाड के जिस स्थान पर बैठा हुआ हूँ, यहाँ पर किसी को आवाज सुनायी नही पडती। अधिक ऊँचाई पर उड़ने वाले कुछ पक्षी दिखायी देते हैं और बिना किसी रुकावट के चलने वाली हवा के साथ बार-बार टकराना पडता है। यहाँ पर पहुँचकर जब मैं नीचे-ऊपर दाहिने बाये और दूसरी दिशाओ की तरफ देखता हूँ तो न जाने क्या-क्या मैं सोचने लगता हूँ। पहाडों का यह जीवन ससार जीवन से बिल्कुल भिन्न है। यहाँ पर न तो किसी प्रकार की पीड़ा है और न किसी प्रकार की प्रसन्नता है। तब यह क्या है और हमारे जीवन मे इसका क्या महत्व है, इस पर मैं बार-बार विचार करने लगा। किसी पुरातत्ववेत्ता के लिये इन स्थानो की यात्रा बहुत-कुछ अर्थ रखती है। अन्वेषण करना ही उनके जीवन का कार्य होता है। फिर वह चाहे सुखमय हो अथवा दुखमय। परन्तु उनको तो वही अच्छा लगता है। लेकिन जो लोग अपने सासारिक जीवन से ऊब कर पहाडो के इन एकान्त स्थानो मे आना पसन्द करते हैं, वे कहाँ तक सही हैं, इसका निर्णय करना साधारण कार्य नही है। मैं इसी उलझन में कुछ समय तक पडा रहा।

अपना देश छोड़े हुए मुझको बाईस वर्ष हो चुके हैं। और जिस मार्ग से चलकर मैं मातृभूमि से इतनी दूर पहुँचा था। अब एक बार फिर उसी मार्ग पर चलना चाहता हूँ। पहले इस तरफ आने का कार्य था; अब इस बार यहाँ से जाने का कार्य है। उन दिनो में मैं इस तरफ आया था और इस बार मैं उस तरफ लौटकर जाऊँगा। बाईस वर्ष तक इस देश के विभिन्न स्थानों में रहकर और अभिलाषा के अनुसार भीषण संकटों का सामना करते हुए जो यात्रायें की हैं, उनकी स्मृतियों को लेकर मुझे अपने उस देश को वापस जाना है, जिसे मैंने बाईस वर्ष पहले छोडा था।

इस समय मेरे विचारो मे जो बाते आ रही थी, उनको मैं लिखना नही चाहता; कहा तक लिखूंगा। फिर भी, न चाहने पर भी मेरी कलम से कुछ लिखा जा रहा हैं। मुझे जीवन की वे घड़ियाँ स्पष्ट याद आ रही हैं, जब मैंने अपने देश में घर वालो से, सगे-सम्बन्धियो से और मित्रो से इस दूरवर्ती भाररवर्ष में आने के लिये खुशी-खुशी बिदाई ली थी। मेरे सामने इस देश में आने के लिये कुछ अरमान थे, अनेक प्रकार की मधुर अभिलाषायें थी। मेरी वे अभिलाषाये वहाँ से लेकर यहाँ लायी और अन्त में मैंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग उन्हीं अभिलाषाओं को पूरा करने में बिताया, इस बात की मुझे खुशी है।

इस देश में आने की उत्सुकता मेरे हृदय में कम न थी, जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है। गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु नदी के मुहानों तक मुझे अगणित मनुष्यो, उनके कार्यों और व्यवसायो तथा नगरो के अनुभव को प्राप्त करने का अवसर मिला। मैंने दिल खोलकर इस देश मे यात्रायें की, उन यात्राओ में मैंने न जाने कितने अपने मित्र और शुभचिन्तक बनायें। जिन्होंने मेरे साथ स्नेह प्रकट किया और मेरे बन गये, उनमें से बहुतेरे आज इस संसार में नही हैं, उनकी मृत्यु हो गयी है। अपनी यात्रा मे मुझे सुविधाओं—और असुविधाओ—सभी प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। अच्छाइयाँ और बुराइयाँ—दोनो ही मेरे सामने आयी। बहुत सी ऐसी घटनायें घटी, जिनके स्मरण मुझे कभी नही भूलेंगे और ऐसी परिस्थितियाँ भी मेरे सामने आयी, जिनके लिये मुझे अफसोस है।

इस देश मे रहकर मैंने सभी प्रकार की परिस्थितियों को अनुभव किया और जब मैं अपने जाने की तैयारी कर रहा हूँ, तब भी मैं इस देश के साथ ऐसा बँधा हुआ हूँ कि उनसे छूटना कठिन मालूम पड़ता है। एक ओर मेरे मन मे अपने देश लौटकर जाने की तीव्र उत्कण्ठा है और दूसरी ओर यहाँ के लोगो के साथ मेरा ऐसा कुछ अनुराग हो गया है कि उसे छोड़ने के लिये दिल तैयार नहीं होता। मेरे मन की कुछ ऐसी अवस्था है कि उसे किसी दूसरे को बता सकना बहुत कठिन जान पड़ता है। मेरी इन परिस्थितियो को सही रूप मे वही अनुभव कर सकते हैं जिनको इन परिस्थितियो का सामना कभी करना पड़ा है।

सूर्य के निकलते ही अपनी सवारी में बैठकर मैंने अपनी यात्रा फिर शुरू कर दी, चढाई की ओर जाते हुए जब मैं अम्बा देवी के मन्दिर में पहुँचा, उस समय पहाड के ऊपरी भाग में सूर्य का प्रकाश फैल चुका था। यहाँ पर रुककर मैं केवल पहाड की चोटी देखना चाहता था। इसलिये उसके पश्चात् मैं गोरखनाथ के शिखर की तरफ चला। इस समय हम लोग काफी ऊँचाई पर थे, लेकिन हवा मालूम नहीं पडती थी। सूरज बादलो में ढँका हुआ था। सूर्य को निकले हुए जब दो घन्टे हो चुके थे, उस समय भी थर्मामीटर अपने आरम्भ की सख्या से अर्थात् ६६° से केवल एक डिगरी आगे बढा था।

गोरखनाथ के शिखर पर पहुँचने के लिये मुझे बहुत नीचे की तरफ आना पड़ा। बीच का कुछ ऐसा भाग था, जिसमे ऊपर की तरफ जाना पडा। यहाँ पर रास्ता बिल्कुल ढालू हो गया था। इसलिये सवारी से उतर कर मुझे पैदल चलना पड़ा। अनेक प्रकार की कठिनाइयो और असुविधाओ के बावजूद मेरे मन के उत्साह में कोई कमी नही आयी थी। इसलिये जिस स्थान की चढाई बिल्कुल खड़ी ऊपर को गयी थी, मैं किसी प्रकार उस पर भी चढ गया।

शिखर पर पहुँचने के बाद मुझे एक चबूतरा मिला, उसका व्यास दस फीट से ज्यादा नही था। उस चबूतरे के मध्य भाग में पूरे पत्थर का छोटा-सा मन्दिर बना हुआ था। यही गोरखनाथ का मन्दिर था। यह शिखर शल्य के आकार-प्रकार का था। वह अपने मूल भाग से दो सौ फीट और अम्बा देवी के शिखर से डेढ़ सौ फीट अधिक ऊँचा है।

गिरिराज के सबसे ऊँचे शिखर पर पहुँचने के पश्चात् मुझे शान्ति मिली। एक छोटे-से मन्दिर मे स्थापित सिद्ध-पादुकाओ के निकट बैठकर मैं शिखरो की तरफ देखने लगा। मैंने उन शिखरो की तरफ भी दृष्टि डाली, जिन पर अपने पैर की चोट के कारण मैं पहुँचने में असमर्थ था। मौसिम ठीक न था, इसलिये दूर की चीजे साफ नजर नही आती थी, फिर भी दृश्य अत्यन्त मोहक था, अपनी आशाओं के प्रतिकूल मैं शत्रुञ्जय की शोभा नही देख सका। उस समय समुद्र की जलधारा पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था और उसके किनारे पर बसे हुए नगर स्पष्ट दिखायी नही देते थे, फिर भी चालीस मील की दूरी पर पट्टण से पार बन्दर तक बहुत कुछ स्पष्ट हो रहा था। पच्चीस मील के अन्दर के स्थान जैसे दुरगी, जैतपुर और कुछ दूसरे नगर साफ दिखायी देते थे।

गिरिनार के छै मशहूर शिखर हैं। उनमे चार नीचे से भी दिखायी देते हैं। इनमे विशेषता यह है कि पूर्व और पश्चिम दोनो तरफ से देखने पर यह एक शल्य के रूप में दिखायी देता है। गोरखनाथ शिखर के ऊपर से देखने पर प्रत्येक शिखर सुन्दर और आकर्षक मालूम होता है। कुछ तो ऐसे हैं, जो पच्चीस मील के फ़ासिले से भी

देखे जाते हैं। उससे अधिक फासिले से उनका अस्तित्व लोप होता हुआ जान पडता है।

गोरखनाथ से देखने पर जो स्थिति पैदा होती है, वह बहुत कुछ इस प्रकार है :

माता जी का शिखर	पश्चिम मे
अघोर (औघड़) शिखर	उत्तर ७०° पू०
गुरुधातृ शिखर	उत्तर ७०° पू०
कालिका माता शिखर	पूर्व मे
राई माता शिखर	दक्षिण ७३° पू०
दूसरे स्थान	
हिडिम्बा झूला	दक्षिण ७०° पू०
जमालशाह का मन्दिर	दक्षिण ३०° पू०

अम्बा देवी और कालिका देवी—दोनो जल और विनाश की देवियाँ मानी जाती हैं। इन दोनो देवियो के मन्दिरो की दूरी दो मील की है। कालिका देवी के मन्दिर को चोटी अम्बा देवी के धरातल से ऊँची नहीं है। परन्तु मध्य भाग के शिखर दक्षिण के मुकाबिले अधिक बाहर की तरफ हैं। उन्हे भली-भाँति समझा जा सकता है। कालिका देवी के मन्दिर से वहाँ की घाटी का रास्ता सीधा और नजदीक का है।

गोरखनाथ के शिखर के ऊपर से इन पहाड़ो को भली-भाँति देखा और समझा जा सकता है। आस-पास की पहाड़ियों के मध्य में यह मुकुट के समान मालूम होता है और अपने इलाके मे वह सभी का सरदार बना हुआ है। ये पहाड़ और पहाड़ियाँ भयानक जगलो से घिरी हुई हैं, उनकी चट्टानो की दरारो से निकलकर कितने ही वहाँ पर झरने प्रवाहित होते हैं। उन झरनों के अपने अलग-अलग नाम हैं—शश बन, हनुमान-भर की भाँति उनके नाम भी लोग लेते हैं।

हमने स्पष्ट रूप से यहाँ पर समझा कि वहाँ के जंगलो, झरनो, पहाडो, उनके शिखरो और पहाड़ी स्थानों के नाम कुछ ऐसे तरीके पर रखे गये हैं, जिनसे सर्वसाधारण में सहज ही भय उत्पन्न होता है। उनके सम्बन्ध में जो कथाये कही जाती हैं, वे और भी अधिक रोमाञ्चकारी हैं। दक्षिण-पश्चिम की तरफ सबसे ऊँचे पहाड़ के शिखर पर जमालशाह नाम के एक मुस्लिम सन्त का स्थान बना हुआ है। लोगो का विश्वास है कि उसके दर्शनो से निजात हासिल होती है। उसकी देख-रेख के लिये वहाँ पर एक बूढ़ा मुसलमान नौकर था, मैंने नम्रता के साथ उससे प्रश्न किया :

यहाँ से हम सबको क्या हासिल होता है ?

मेरे प्रश्न को सुनकर उस बूढे मुसलमान ने बड़ी सावधानी और संजीदगी के साथ जवाब दिया : यहाँ आने वालो को इमाम साहब की दुआ और वे सभी चीजें हासिल होती हैं, जिससे हम सबको और हमारे बाल बच्चों को जिन्दगी तथा तन्दुरुस्ती मिलती है।

यहाँ पर एक हिडिम्ब की लडकी का एक झूला मशहूर है। वह झूला यहाँ के एक जङ्गल का प्रमुख हिस्सा है। कहा जाता है कि प्राचीन काल मे पाण्डवो के समय हिडिम्ब इस जङ्गल का राजा था। यह भी कहा जाता है कि यहाँ पर आने वालो मे बहुतो को अब भी अँगूठियाँ देखने को मिलती हैं। इस प्रकार की बातो का रहस्य क्या है, यह समझ मे नही आता। उस झूले तक जाने का जो रास्ता है, वह बहुत तग है। और वह मार्ग पहाड के नीचे, किनारे-किनारे जाता है। हिडिम्ब उस जङ्गल का एक प्रसिद्ध राक्षस था।

जो कथा उस झूले के सम्बन्ध मे सुनने को मिलती है, उसमे कहा जाता है कि उस राक्षस ने अपनी लडकी का व्याह करना उस वीर पुरुष के साथ करने का निश्चय किया था, जो अपनी शक्ति का प्रदर्शन सबसे अधिक कर सके। कहा जाता है कि इस प्रकार के प्रदर्शन मे भीम ही अकेला समर्थ हो सका था।

एक घाटी का नाम मुकुन्द्रा है। उसके सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार की एक कथा प्रचलित है। एक दूसरे स्थान के बारे मे कहा जाता है कि वहाँ पर एक प्रसिद्ध जलाशय है और उस जलाशय का नाम है कमण्डली अथवा 'कण्डल-कुण्ड।' वहाँ पर एक साधु रहा करता था। उसकी अवस्था बहुत अधिक थी। कहा जाता है कि उसकी अवस्था एक सौ बीस वर्ष की हो चुकी थी, सब लोग उसके दर्शनो के लिये वहाँ पर जाया करते थे। वह साधु अपने जीवन की पवित्रता और अनेक प्रकार की उपयोगिता के लिये प्रसिद्ध था। उस साधु को अपने भक्तो से जो मिलता था, उसके द्वारा उसने गरीब यात्रियो के लिये सदाव्रत खोल रखा था। मेरा इरादा था कि ऐसे साधु के यहाँ जाकर उसके दर्शन किये जाँय। लेकिन शारीरिक निर्बलता के कारण मुझे निराश हो जाना पडा।

कालिका के मन्दिर मे न पहुँच सकने के कारण मुझे बहुत खेद हुआ। इसलिये कि वहाँ की मैंने बहुत-सी रहस्यमय कथाये सुन रखी थी। अतएव मेरी अभिलाषा वहाँ पर जाने की थी। इसी आधार पर मैंने गायकवाड के प्रतिनिधि लल्ल जोशी से कहा था कि चाहे जो मुसीबत मुझे उठानी पडे, मैं सबका सामना करते हुए वहाँ जाऊँगा जरूर। लेकिन जब मैं पैर की चोट के कारण लँगडा हो गया और चलने मे अधिक कष्ट अनुभव करने लगा तो उस जोशी ने भी मुझे उसके लिये परामर्श नही दिया। मेरे पास कोई साधन भी नही था। मेरे साथ के सभी लोगो ने वहाँ मेरे जाने का विरोध किया। सभी की समझ में वहाँ जाने का रास्ता बहुत भयानक था। इसीलिये कोई भी यात्री उस तरफ जाने का साहस नही कर सका। वहाँ की प्रचलित कथाओ मे सुनने को मिलता था कि वहाँ जाना किसी के लिये भी अच्छा नही है। अगर किसी ने अपनी हठ धर्मी से जाने का ही विचार किया तो इसको बुरा परिणाम भोगना पडेगा। इसके सम्बन्ध में लोगो का विश्वास है कि जब कभी यात्री यहाँ पर आते थे तो मार्ग

से ही एक आदमी उन यात्रियो के साथ हो जाता था। वह आदमी के रूप मे देवताओं का शत्रु था। यात्रा में आगे जाकर वह अपना बनावटी भेष बदल कर असली भेष में आ जाता। वह असल में नरभक्षी अघोरी था, वह अघोरी अघोरीश्वरी देवी का पुजारी था और मनुष्यो को मारकर अपनी आराध्य देवी को भेट करने के बाद स्वयं आहार करता था।

कालिका देवी के दर्शनो के लिये जाने वालो के सम्बन्ध मे इस प्रकार की बहुत-सी कथाये प्रचलित थी, उनको मैंने पहले-से सुन रखा था। इसीलिये मेरी तीव्र अभिलाषा वहाँ पर जाने के लिये थी। मैं जानता हूँ कि जिस प्रकार की खोज मेरे जीवन का उद्देश्य है, उसमे ये रहस्यपूर्ण बाते अधिक महत्व रखती हैं। मैं उनका भेद समझने के लिये बहुत उत्सुक था। लेकिन मेरी लालसा इसके सम्बन्ध में अपूर्ण रह गयी।

मैंने यहाँ के अघोरियो के सम्बन्ध मे बहुत-कुछ सुन रखा था, लोग उनकी जो घटनाये सुनाते हैं, वे बड़ी दिलचस्प हैं, इन अघोरियो की एक जमात होती हैं। उनके उद्देश्य क्या होते हैं, सर्वसाधारण को उनकी कुछ जानकारी नही होती, अघोरी लोग साधारण आदमियो में पहुँचकर अपने कुछ चमत्कार दिखाते हैं, उनको देखकर आम लोग भयभीत हो जाते हैं। यहाँ पर अघोरी लोगो की एक अच्छी सख्या है और वे बहुत पहले से इसी क्षेत्र मे रहते आये हैं। वे पहले भी बड़े हिंसक के रूप मे थे और वे कुछ उसी प्रकार के आज भी हैं। वे आरम्भ से खुले स्थानो मे रहने के बजाय पहाडो, गुफाओ और घने जंगलो में सदा से रहने के अभ्यासी रहे हैं। अपने रहने के स्थानो में प्रकाश के बजाय अन्धकार अधिक पसन्द करते है। इनके सम्बन्ध में मैं अन्यत्र लिख चुका हूँ। इसलिये यहाँ पर मैं कुछ अन्य घटनाओ, कथाओ और रहस्यो पर प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा।

इस प्रसिद्ध पर्वत पर एक अघोर शिखर भी है। उसका नाम नरभक्षी अघोरियो के आधार पर ही रखा गया है, ऐसा मालूम होता है। कदाचित् कोई अघोरी उस स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगा था। इसीलिये उस स्थान का नाम अघोरी शिखर पड़ गया।

मनुष्य का आहार करने वाले इन अघोरियो के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार की बातें सुनने को मिलती हैं। कहा जाता है कि इनमे से किसी एक का नाम गाजी था, वह किसी पहाडी गुफा में रहा करता था और भूखा होने पर जब पहाडो में कुछ न मिलता तो वह पहाड से उतर कर नीचे किसी मैदान मे आ जाता। एक वार उस गाजी को देखा गया कि उसके सामने एक बकरा था और शराब से भरा हुआ मिट्टी का एक वरतन था। उसने उस बकरे को फाड़ डाला और उसका वह खून पीकर शराब पीने मे लग गया। इसके पश्चात् वह लेट कर सो गया। जब वह जागा तो उस स्थान से वह जंगल की तरफ चला गया।

सन् १८१६ ईसवी मे मैंने अपने मित्र मिस्टर विलियम्स से—जो आजकल मेरे साथ हैं—बहुत-सी बातें कहकर एक प्रार्थना की थी। उसने उत्तर देते हुए मुझसे कहा था :

मैंने काठियावाड मे तीन-चार आदमी ऐसे देखे थे, जो बिल्कुल जङ्गली जानवरो की तरह का जीवन व्यतीत करते थे। उनको देखकर और उनकी घटनायें सुनकर नेबूचेडनेजर (१) की कहानी का स्मरण आता है। उसमें अन्तर सिर्फ इतना ही हो सकता है कि यहाँ के ये मनुष्य—जो जगलो मे रहते हैं, कच्चा माँस भी खा जाते हैं। उस कहानी में भी कुछ इसी प्रकार के विवरण मिलते हैं। शायद सन् १८०८ ईसवी में इस प्रकार के राक्षसी आदमी मे से एक बडोदा मे आया था, वह सबके देखते-देखते एक मरे हुए बच्चे का माँस खा गया था, इसी प्रकार का एक दूसरा मनुष्य सन् १८११ ईसवी मे काठियावाड के सिरोही नामक स्थान पर आया था, लेकिन उसके द्वारा इस प्रकार का कोई नुक्सान नही हुआ था। उससे लोग जरा भी डरते नही थे। एक बार की घटना है कि एक अघोरी गिरिनार की यात्रा के अवसर पर पहाड पर आया था और यात्रियो के बीच पहुँच गया था। यात्रियो ने उसका बहुत आदर किया, विभिन्न प्रकार से उसकी आराधनायें की, उसको दुशाले और पगडियाँ दी और कितने ही यात्रियो ने अँगूठियाँ भी भेंट मे दी, जिस समय यह हो रहा था, वह चुपचाप बैठा रहा, उसके बाद अपने-आप वह हँसने लगा, लोगो ने देखा कि उसके पश्चात् वह उछलता-कूदता हुआ जगल की तरफ चला गया। मुझे कुछ लोगो से सुनने को मिला कि कई महीने पहले इसी प्रकार का एक अघोरी अपनी पहाडी गुफा से निकल कर आया और उसने एक ब्राह्मण के लडके को—जो किसी मन्दिर से थोडे फासले पर था—मार कर गिरा दिया। लड़के का चिल्लाना सुनकर आदमी लोग दौड़ पडे और उन्होंने पहुँचकर उस लड़के को बचाया। अघोरी ने आसानी से उस लड़के को छोडा नहीं। आदमियो के आने के समय तक उसने उस लड़के को अधमरा कर दिया। लेकिन आदमियो के आ जाने पर वह भाग गया। वह अघोरी काफी मारा गया। इसलिये फिर वह अपनी गुफा से उस तरफ नही आया और अपना जगल छोडकर वह कही चला गया।

जिस समय मैं इस प्रकार की बातो के स्मरण मे ध्यान-मग्न हो रहा था और विभिन्न प्रकार की घटनाये एवम् कही जाने वाली कथायें मेरे मनोभावो मे घूम रही थी, अचानक एक आदमी मेरे पास आ गया। वह ऐसे ढंग से मेरे पास पहुँचा कि उसके आने की जरा भी हमको आहट नही हुई। वह चुपचाप आकर गोरखनाथ के मन्दिर के

(१) बेबीलोन मे इस नाम के तीन बादशाह हुए थे। नेबूचेडनेजर ने ६०४ ५६१ ईसा से पहले तक राज्य किया। उसने जेरूसलम् पर भी अधिकार कर लिया था।

पास द्वार के सामने बैठ गया। उसके शरीर पर एक फटा-पुराना कपड़ा था। बालों की बनी हुई रस्सी से उसने अपनी कमर को बाँध रखा था। सारे शरीर से लेकर उसके सिर के बड़े-बड़े बाल राख से भरे हुये थे। देखने में वह तन्दुरुस्त मालूम होता था। हाथ-पैर सब मजबूत थे। आकृति भी अच्छी थी। उसके मुख पर पौरुष झलक रहा था। देखने से वह लगभग बाईस वर्ष का मालूम होता था।

वह जवान आदमी तगड़ा और तन्दुरुस्त था। लेकिन उसके कारनामे बहुत गिरे हुए थे, उसके नेत्रो में लालिमा भरी हुई थी और देखने से मालूम होता था कि वह रात दिन नशे में रहा करता है। अपनी इस दशा मे भी उसने कुछ क्रियाओ का अभ्यास किया था और उनका वह बखूबी ध्यान रखता था।

इस व्यक्ति की कुछ और बाते भी मैं लिखना चाहता हूँ। गोरखनाथ के छोटे-से मन्दिर के सामने बैठकर उसने अपनी दोनो आँखे बन्द कर ली और समाधि की अवस्था मे वह निश्चल हो गया। कुछ देर के बाद ऐसा मालूम हुआ मानो कि उसके प्राणो में किसी आत्मा का प्रवेश हो रहा है। उस समय उसके मुख की आकृति, रेखाये और मांसपेशियाँ कुछ विचित्र हो रही थी। शरीर के ऊपर के रोम ऐंठने से लगे थे। भीतर से लेकर बाहर तक उसमे एक आन्दोलन-सा होने लगा था। वह एक राक्षसी देवी का उपासक था। वह देवी इस समय उसमें प्रवेश कर रही थी।

कुछ देर तक वह समाधि लगाये बैठा रहा। उसके बाद वह खड़ा हो गया और अलख-अलख का शोर करता हुआ वह अपने मुख की आकृति को विभिन्न प्रकार के रूप मे परिवर्तन करने लगा। मैं उसके इस दृश्य को ध्यानपूर्वक देख रहा था। जब तक वह चिल्लाता रहा, मैं चुपचाप बना रहा और भली प्रकार उसका अध्ययन करता रहा जब वह कुछ शांत हुआ तो मैंने सावधान होकर उससे कुछ कहा।

अपनी बात को कहकर मैं बड़ी सावधानी के साथ उसकी तरफ देखता रहा। उसने मेरी बात को सुना। उसके नेत्र बन्द थे। फिर भी, वह मुस्कराया। लेकिन उसने अपनी आँखे नही खोली। मेरी बात का कोई उत्तर नही मिला, सिवा इसके कि उसके होठो पर छिपी हुई हँसी आ गयी।

उसके पास एक झोला था। कदाचित उसमे खाने-पीने का सामान था। उसके पास नारियल का एक हुक्का भी था। उसके द्वारा वह मादक पदार्थों का दम लगाया करता था। उसके पास लोहे का एक चिमटा भी था। जिसके द्वारा वह आग को पकड़ कर उठाता था। इन सारी बातों ने मुझको प्रभावित नही किया। किन्तु उसके साथ बांस की एक बांसुरी देखकर मुझे विस्मय हुआ। उस बांसुरी को वह हाथ मे लिये था। मैं सोचने लगा, यह व्यक्ति बांसुरी क्यो रखता है? इसका मादक जीवन और बांसुरी का मधुर स्वर, दोनो एक-दूसरे से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखते। ऐसी दशा

में इसके बाँसुरी रखने का क्या अभिप्राय हो सकता है।

उसकी गम्भीर खामोशी के कारण मैं इस विषय में उससे कुछ जान न सका। मैं कुछ सोच ही रहा था कि वह एकाएक अपने स्थान पर उठकर खडा हो गया और अलख का नारा लगाता हुआ, उस स्थान से वह चल दिया। उस समय भी मैं उसकी तरफ देख रहा था। वह अपने स्थान से शिखर के उत्तर तरफ कालिका देवी के मन्दिर की तरफ आगे बढा। उसको किसी से बातचीत करते हुए मैंने नही देखा। यह कौन था, इसके जानने का भी मुझे अवसर नही मिला। उसको देखने के लिये जो लोग एकत्रित हो गये थे, मुझे उनकी बातें सुनने का मौका मिला। लोगो का कहना था कि यह कोई साधारण आदमी नही है।

मैं उस आदमी के सम्बन्ध में अपनी कोई धारणा निश्चित नही कर सका। वह कौन था और उसके जीवन का रहस्य क्या था। इसके समझने का भी मुझे मौका नही मिला। मैं नही कह सकता था कि वह नरभक्षी था या नही। मैंने साफ-साफ देखा कि वह अपने स्थान से उठकर गोरखनाथ मन्दिर से सीधा अघोरी शिखर की तरफ चला गया था। लोगो का कहना है कि वहाँ पर और भी ऐसे कुछ लोग रहते हैं।

मैं अपने स्थान पर बैठा हुआ इस प्रकार की अनोखी और असाधारण बातों पर विचार करता रहा। लोग इस प्रकार के किसी आदमी में असाधारण शक्ति का आभास कैसे अनुभव करने लगते हैं। शायद इसका अर्थ यही होता है कि जिन बातों को लोग नही समझते, उनको वे असाधारण मान लेते हैं। मैं उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक नही कह सकता। कह सकने का मुझे कुछ आधार नहीं मिला। लेकिन यह तो कहा ही जा सकता है कि यह आदमी मनुष्य होकर भी प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य नही है। यदि कोई भी अमानुषिक कार्य और व्यवहार असाधारण जीवन मे माना जा सकता है तो इस प्रकार के लोगो के सम्बन्ध मे जन साधारण की धारणा भी सही हो सकती है।

मैं जिस स्थान पर बैठा हुआ था, वह पृथ्वी के धरातल से तीन-चार हजार फीट की ऊँचाई पर था और वह पर्वत का एक शिखर था। मनुष्य के रूप में जिस अघोरी को मैंने देखा, उसको मैं प्रकृति और सभ्यता के निकट पूर्ण रूप से पतित मानता हूँ। कदाचित प्राचीनकाल मे पहले कभी ऐसा मनुष्य रहा होगा। लेकिन आज का मनुष्य ऐसा नहीं है और न यह मनुष्य का जीवन है।

लगातार धूप तेज हो रही थी और मुझे बार-बार इस बात की याद आती थी कि अभी मुझे और भी अनेक चीजें देखनी हैं। इतना समझने के बाद भी मेरे मनोभावो पर उस अघोरी के जीवन का जो प्रभाव पडा, वह मन से हटता न था। उसके दृश्य को देखकर मैं रोमाञ्च हो रहा था। मैं उसके दृश्य को भुलाना चाहता था, लेकिन भूलता न था। मैं बार-बार सोचने लगता था कि यह भी कोई जीवन है!

ऐसे व्यक्तियो का क्या उद्देश्य हो सकता है और क्या सुख हो सकता है ! साधारण लोगो पर ऐसे आदमियो का क्या प्रभाव पड़ता है, मैं नही जानता। लेकिन मैं तो बहुत प्रभावित हुआ हूँ। इसलिये नहीं कि वह कोई अद्भुत और असाधारण व्यक्ति है, बल्कि इसलिए कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर, उसने अपने आपको राक्षस और जंगली जानवर बना डाला है। उसके हाथ-पैर, आकृति और दूसरे सभी अंग उसके मनुष्य होने का प्रमाण देते हैं। लेकिन उसके कार्य और व्यवहार जगली जानवरो के से हैं। मैं उस अघोरी से कुछ स्पष्ट बाते पूछने की कोशिश करता। लेकिन एकत्रित लोगो के कारण इसके लिए मुझे अवसर नही मिला। इसलिए कि आमतौर पर लोग उसको एक अलौकिक तथा असाधारण व्यक्ति माने बैठे हैं। मेरा ख्याल है कि लोगो की इस प्रकार की धारणा से इन अघोरी लोगो को प्रोत्साहन मिलता है। विशेषकर उस अवस्था मे, जब लोग उसको आराध्य मान लेते हैं और सब प्रकार उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। ऐसी दशा मे लोगों की यह धारणा मेरे लिए एक भयानक बाधा थी। इस प्रकार की बहुत-सी बातो को सोचने के बाद मैंने अपने आपको बदलने की चेष्टा की।

मैं अम्बा देवी के मन्दिर में पहुँच गया। मण्डप के नीचे वेदी पर देवी के दर्शन करके मैं पश्चिम की तरफ आ गया। वहाँ पर एक विशाल काला पत्थर था। मैं उसी पर बैठ गया और खँगार के महलो के आस-पास बने हुए मन्दिरो को देखने लगा। जैनियो ने अपनी सम्पत्ति से इन मन्दिरो का निर्माण किया है और इन मन्दिरो ने जैन सम्प्रदाय के गौरव की वृद्धि की है। ये समस्त मन्दिर पहाड के पश्चिम तरफ बने हुए हैं। उनके अन्त मे पहाड़ी के समीप एक हजार फीट ऊँची दीवार खडी है। वह देखने मे काले पत्थरो की एक ऊँची चट्टान-सी मालूम पडती है। दक्षिण ओर महलो की सुरक्षा के लिए मजबूत ऊँची दीवारे हैं। यहाँ का दुर्ग महलो के बहुत निकट है। यह साफ जाहिर है कि यदि खाने-पीने की व्यवस्था पूरे तौर पर हो और पीने का जल का अभाव न हो तो गोरखनाथ के द्वारा सुरक्षित इस दुर्ग पर कोई शत्रु अधिकार नही कर सकता।

यहाँ पर जो मन्दिर बने हुए हैं, मैं सभी के सम्बन्ध मे कुछ आवश्यक प्रकाश डालना चाहता हूँ, महामाया के शिखर से उतरते हुए रास्ते मे ऊँचे स्थानो पर खम्भो पर बनी हुई छोटी-बड़ी विभिन्न प्रकार की छतरियाँ मिलती हैं। उनको देखकर एक अद्भुत दृश्य की शोभा का आभास होता है। वेला आदि अनेक प्रकार के फूलो को तोड़ती हुई स्त्रियाँ भी दिखायी देती हैं। ये स्त्रियाँ यहाँ से फूल तोड़कर ले जाती है और उनसे माला तैयार करती हैं, वही माला भक्त यात्री लोग खरीदकर गिरनार के देवताओ पर चढ़ाते हैं।

प्रवेश-द्वार के निकट नेमिनाथ का पहला मन्दिर है। वह दिगम्बरों का बनवाया हुआ है। उस मन्दिर मे चौबीस जिनेश्वर आराधना किया करते हैं। जिनको इनके धर्म के विषय में सही जानकारी नही है, उनको समझने के लिये मैं यहाँ पर लिख देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि जैन-धर्म दो भागो मे विभाजित है। दिगम्बर और श्वेताम्बर—दोनो उसके विभाग हैं। दिगम्बर लोग अपने समस्त वस्त्रो को उतार कर बिल्कुल नग्न रहते हैं और दिक अर्थात् दिशाओ तथा आकाश को ही अपना वस्त्र मानते हैं। श्वेताम्बर वे लोग हैं, जो केवल श्वेत वस्त्र धारण करते हैं अर्थात् वे श्वेत वस्त्र को ही पवित्र मानते हैं और उसी को धारण करते हैं।

इस प्रकार जैन-धर्म दिगम्बर सम्प्रदाय और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में विभाजित हो जाता है। दिगम्बर सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा सिद्धसेन देवकाचार्य (१) (दिवाकर) ने की थी। उनका जन्मकाल सम्वत् ४००, सन् ३४४ ईसवी माना जाता है। उस मत के अनुसार, उसके गुरु बिना वस्त्र के रहते हैं। जाडे के दिनो मे शीत से बचने के लिये रजाई अथवा लिहाफ अपने ऊपर डाल लेते हैं। लेकिन अब यहाँ गिरिनार में बहुत थोडे लोग ऐसे रह गये हैं, जिनको इस प्रकार की प्रतिष्ठा मिली हो। (२)

ग्वालियर की गुफाओ मे जो मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जिनमें से कुछ तो पचास पचास फीट तक ऊँची हैं, वे इसी प्रकार की बनी हुई हैं। भारतवर्ष के अन्य स्थानो मे भी उस तरह की मूर्तियाँ मौजूद हैं। वे सभी इसी दिगम्बर मत से सम्बन्ध रखती हैं। इसके वर्तमान गुरु का मुख्य निवास-स्थान सूरत मे है। इनका नाम विद्या और योग्यता की बहुत प्रशसा की जाती है। उनके पास रहने वाले शिष्यो की सख्या तो अधिक नही है। लेकिन भारतवर्ष के अन्य स्थानो मे उनकी सख्या अधिक पायी जाती है। इस मत के मानने वाले अथवा अनुयायी व्यवसायी लोग हैं। उनमें भी विशेषकर हुम्बड़ लोग हैं, वे चौरासी कुलो मे प्रसिद्ध हैं। इस मत के अनुयायियो का कहना है कि हम लोगो की सख्या सब को मिला कर चालीस हजार है। इनमें अधिकांश लोग जयपुर मे रहते हैं। वहाँ पर इस मत से सम्बन्धित मन्दिरो की सख्या अधिक पायी जाती है। परन्तु अब यह सम्प्रदाय भी 'काष्ठासङ्घी' और 'मुर मयूर

---

(१) सिद्ध सेन द्विवाकर जैन धर्म के आदि आचार्य थे और दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनो सम्प्रदायो मे माने जाते है। किसी भी जैन-धर्मावलम्बी के विश्वास में कोई अन्तर नही आता।

(२) मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा है, जिसके पास कुछ भी नही था। लेकिन उसको डालपुर के न्यायालय मे सम्मानपूर्ण स्थान देकर उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की गयी थी।

सङ्घी नामक दो भागों में बंट गया है। (१) दोनों शाखाओं का नामकरण अलग-अलग आधार पर हुआ है। काष्ठा सङ्घी काष्ठ से सम्बन्ध रखता है (२) और दूसरी शाखा का नाम मोर के पंख लेकर चलने के कारण पड़ा है। इस मत के अनुयायी नेमिनाथ के बिल्लौरी अथवा हीरा आदि के नेत्र नही लगाते। अपने मत के अनुसार, ये लोग स्त्रियो के निर्माण में विश्वास नही करते। यद्यपि स्त्रियाँ उस मत के नग्न श्री पूज्य और गुरु की आराधना बड़ी भक्ति के साथ करती है। लेकिन श्री पूज्य स्त्रियो की आराधना को विक्षुब्ध रूप मे ही स्वीकार करते हैं। श्री पूज्य उस शाखा के सर्वे-सर्वा है। उनकी विशेषता में एक बात और है। कहा जाता है कि वे अपने हाथ से भोजन नही करते। अपने किसी सेवक अथवा शिष्य के द्वारा वे भोजन करते हैं। इस मन्दिर मे और कोई उल्लेखनीय बात नही पायी जाती।

अब आगे चलने पर मन्दिर मिलते हैं। कहा जाता है कि उनका निर्माण और सुधार का कार्य तेजपाल और बसन्तपाल नामक दोनो भाइयोने कराया था। इन दोनों भाइयो की अपरिमित सम्पत्ति आबू के मन्दिरो में खर्च की गयी थी। सम्वत् १२०४, सन् ११४८ ईसवी के एक शिला-लेख से पता चलता है कि ये मन्दिर आबू के मन्दिरो से लगभग पचास वर्ष पहले के हैं। लेकिन इनका विस्तार अधिक माना जाता है।

इन तीनो मन्दिरो का निर्माण एक ऊँचे चबूतरे पर किया गया है। उनमें पत्थरो की गढाई अधिक है। बीच के मन्दिर मे उन्नीसवे जैन-तीर्थङ्कर मल्लिनाथ की मूर्ति देखने को मिलती है। दाहिनी तरफ का मन्दिर सुमेरु और बांई ओर का समेत शिखर कहलाता है। इन अद्वैतवादियो के पञ्च तीर्थों अथवा पवित्र शिखरो मे से दो अधिक प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार के तथ्य के सम्बन्ध मे न केवल जनश्रुति है, बल्कि उनके

---

(१) जैनियो के ये संघ मुनियो के आचरण एवम् उनके विश्वासो से सम्बन्ध रखते हैं। उन्ही के आधार पर माथुर-संघ, द्राविड़-संघ, मूल-सघ, यापिनी संघ इत्यादि सघो की प्रतिष्ठा की गयी है। लेकिन इनके नाम ग्रन्थो तक ही है। अब उनके नाम भी लुप्त हो गये हैं।

(२) काष्ठ की प्रतिमा की पूजा करने के कारण ही इस शाखा का यह नाम पड़ा है। कहा जाता है कि नन्दी गाँव के निवासी विनयसेन के शिष्य कुमारसेन ने आजीवन सन्यासी रहने का संकल्प किया था। लेकिन कुछ दिनों के बाद वह उसको निभा नही सका। इस प्रकार उसका सङ्कल्प भंग हो गया। कुछ आचार्यों ने उसको फिर दीक्षा लेने का परामर्श दिया था, लेकिन उसने उसको स्वीकार नही किया, उसने काष्ठ की प्रतिमा तैयार की और वह उसी की आराधना करने लगा।

धर्म ग्रन्थो मे भी ऐसा लिखा हुआ मिलता है। (१) मल्लिनाथ का मन्दिर चार खण्डों में बना है। नीचे से ऊपर के खण्ड लगातार छोटे होते गये हैं। आखिरी मन्जिल पर आठवें तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभु की एक छोटी-सी प्रतिमा स्थापित है। मन्दिर के प्रत्येक कोने मे किसी न किसी की प्रतिमा मौजूद है। एक कोने में लगी हुई प्रतिमा पीले रङ्ग की है।

इसके आगे का मन्दिर पार्श्वनाथ का मन्दिर कहलाता है। कहा जाता है कि उसको सोमप्रति राजा ने बनवाया था। वह राजा विक्रम के पहले दूसरी शताब्दी मे हुआ था। राजा का बनवाया हुआ यह तीसरा मन्दिर है। इसके अनुसधान मे मुझे बड़ी छानबीन करनी पड़ी है। शेष दोनो मन्दिरो का जिक्र मैंने अपने पहली पुस्तक मे किया है। (२) इन मन्दिरो को देखने से जैनियो की निर्माण-कला का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। इस प्रकार की निर्माण-कला योरप के देशो में नहीं है। जैनियो ने जितने भी मन्दिर बनवाये हैं, वे सभी कुछ इसी प्रकार के सुन्दर बने हुए हैं। इसके अस्तित्व की सुन्दरता का एक कारण यह भी है कि वह एक विशाल चट्टान पर बना हुआ है। धरातल से काफी ऊँचाई पर बनी हुई उसकी मञ्जिलें इसलिये भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गयी हैं कि उसमें ग्रेनिट प्रस्तरो का प्रयोग किया गया है।

पश्चिमी प्रवेश के द्वार पर जो सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, उनका निर्माण खम्भो पर हुआ है और वे सीढियाँ ड्योढी तक चली गयी है। उनसे आगे जाकर मन्दिर के सभी भागो का रास्ता मिल जाता है। उसकी छत और मध्यवर्ती गुम्बज बडी खूबसूरती के साथ बनाये गये हैं। केन्द्रीय गुम्बज की लम्बाई और चौडाई—दोनो ही तीस-तीस फीट की है। स्तम्भो पर उसका आधार है। वहाँ के स्तम्भों का निर्माण भी बड़ी सावधानी और मजबूती के साथ किया गया है। उसके चौकोर स्तम्भ दीवारो से मिले हुए हैं। उसकी एक बडी दालान आन्तरिक मण्डप से जाकर मिलती है।

उसके पश्चात् सोमपट्ट का मन्दिर बना हुआ है, उसकी विशाल बेदी पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित है। खम्भो की ऊँचाई चौदह फीट के अधिक नही है। गुम्बज की छत मे जो स्तम्भ बने हुए हैं, उनमे उत्कृष्ट निर्माण-कला देखने को मिलती है। सम्पूर्ण मन्दिर भीतर से बाहर अत्यन्त आकर्षक और मजबूत बना हुआ है। पश्चिमी-

---

(१) पार्श्वनाथ का जो समेत शिखर है, वह विहार मे है, वह स्थान प्राचीन कालमें मगध-राज्य का होता था। उन दिनो मे पार्श्वनाथ-मत के मानने वाले अधिक सख्या मे वही पर रहा करते थे। यह मेरु शिखर सिन्धु नदी के पश्चिम मे है और मेरे अनुमान से वह बलख बामिया की तरफ है। वहाँ की जैन-मूर्तियो का वर्णन अबुल फजल न अपने ग्रन्थ मे किया है।

(२) अखिल भारतवर्षीय पञ्चतीर्थों मे शत्रुञ्जय, गिरिनार, आबू, समेत शिखर और ऋषभदेव के नाम आते हैं।

द्वार के निकट से भूमि के नीचे तहखाने मे होकर एक गुप्त मार्ग जाता है। लोगो का कहना है कि महमूद बेगड़ा के आक्रमण करने पर, उस समय जब उसने राजधानी पर अधिकार कर लिया। वहाँ का राजा माण्डलिक इसी गुप्त मार्ग से निकलकर भाग गया था।

इस मन्दिर से चलकर मैं भीमकुण्ड पहुँचा। उस कुण्ड का निर्माण यहाँ के यदुवशी राजा भीमक ने देवकूट के उत्तरी भाग पर कराया था। चट्टान को काटकर कुण्ड और सीढ़ियाँ बनवायी गयी हैं। कुण्ड का जल सत्तर फीट की लम्बाई और पचास फीट की चौड़ाई मे भरा हुआ है।

उस कुण्ड के पास एक दूसरा मन्दिर है। उसके सम्बन्ध में लोगो का कहना है कि उसे अनहिलवाड़ा के कुमारपाल ने बनवाया था। इस समय उसकी गयी-गुजरी अवस्था को देखकर जन साधारण के इस विश्वास पर यकीन करना पड़ता है कि कुमारपाल के उत्तराधिकारी ने तारिंगा के अजितनाथ मन्दिर को छोड़कर उसके बनवाये हुए सभी मन्दिरो को तुड़वा डाला था।

इस मन्दिर के सभी ऊपरी भाग नष्ट कर दिये हैं। उसके मध्य के कितने ही स्तम्भ भी गायब कर दिये गये हैं, मैंने पहले ही एक स्थान पर लिखा है कि महमूद बेगड़ा अथवा अन्य किसी मुस्लिम विजेता ने जूनागढ मे एक मसजिद बनवायी थी। उसके निर्माण मे अनेक मन्दिरो का कीमती सामान काम में लाया गया है। बहुत सम्भव है कि इस मन्दिर की उत्कृष्ट सामग्री। उसमें लगायी गयी हो।

इस मन्दिर की बनावट बिल्कुल पार्श्वनाथ के मन्दिर की तरह की है, दोनों का क्षेत्र बराबर मालूम होता है। जैनियो की संस्था ने—जो मन्दिरों का प्रबन्ध करती है—इसके उद्धार का कार्य आरम्भ कर दिया और निज-मन्दिर के उद्धार का कुछ भाग तैयार हो गया था, उन्ही दिनो में एक बाधा उत्पन्न हो गयी। इस प्रदेश के एक सेठ ने अपने इष्टदेव शिव की मूर्ति वहाँ पर स्थापित करने का निश्चय किया। जैनियों को जब मालूम हुआ तो उन लोगो ने इसका विरोध किया, लेकिन उनकी न चली और वह सेठ हठधर्मी पर उतारू हो गया, उस समय जैनी लोग हताश हुए और जब उनका उपाय न चला तो उस संस्था के प्रबन्धको ने मन्दिर के द्वार पर प्राण दे देने की धमकी दी। इसके बाद दोनों तरफ से कुछ नही हुआ।

शैव और जैन लोगो में इस प्रकार के झगडे हमेशा से चलते आ रहे हैं। दोनों के आराध्य देवता अलग-अलग हैं और उन दोनो के देवता एक साथ, किसी-किसी एक ही मन्दिर मे नही रह सकते।

यहाँ पर दूसरा मन्दिर पार्श्वनाथ का है, जो ऊंची दीवारों से घिरा हुआ है और उसमे नाग-नाथ के सहस्र फण वने हुए हैं। लोगो का कहना है कि मन्दिर के देवता पर नाग-नाथ ने अपने हजार फण फैलाकर छाया कर रखी है। यह मन्दिर

सोनी पार्श्वनाथ के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। अकबर बादशाह के शासन-काल मे सग्राम नामक एक सोनार दिल्ली में रहता था। उसने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। उसी समय से लोग इस मन्दिर को सोनी पार्श्वनाथ का मन्दिर कहने लगे। यह सोनार जैन मतावलम्बी था और उसके पास अपरिमित सम्पत्ति थी। लोगो का कहना है कि वह सोनार जादू की तरह का कोई चमत्कार जानता था और उसी के द्वारा उसने यह सम्पत्ति अपने पास एकत्रित की थी। सोमप्रीति राजा के मन्दिर की अपेक्षा यह मन्दिर अधिक प्राचीन नही साबित होता। फिर भी, इसके भीतरी भाग मे जिस प्रकार हरे और चमकदार चट्टानो के पत्थर काटकर लगाये गये हैं, उनसे इसकी शोभा और मर्यादा अधिक बढ गयी है। यह भी सही है कि इसके निर्माण की शैली बहुत कुछ पुरानी है और आंगन के पीछे चारो तरफ कोठरियाँ बनी हुई हैं। उन कोठरियो मे विभिन्न प्रकार के देवताओ की मूर्तियाँ स्थापित की गयी हैं।

इसके आगे चलने पर 'गढ टूक' मिलता है। ऋषभदेव अथवा आदिनाथ का मन्दिर अधिक खूबसूरत है। उसमे बने हुए स्तम्भ और कोठे तथा कोठरियाँ देखने के योग्य है। उनके सम्बन्ध मे यहाँ पर अधिक लिखने से कुछ अनावश्यक विवरण आ जायेंगे, अतएव उनके विस्तार मे मैं नहीं जाना चाहता। इसलिए कुछ जरूरी बाते लिखकर मैं आगे बढ़ूंगा।

इस मन्दिर मे मेरु और समेत आदि श्वेत सगमरमर के बने हुए हैं और चौक की दीवारें भी निहायत खूबसूरती के साथ तैयार की गई हैं। मन्दिर मे चौबीस तीर्थङ्कर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की गयी है।

खँगार के महलो से सटे हुए यहाँ पर जितने भी मन्दिर बने हुए हैं, उनमे गिरिनार की रक्षा करने वाले नेमिनाथ का मन्दिर अन्तिम मन्दिर है। इसमे सन्देह नही कि यह मन्दिर बहुत पुराना है। लेकिन विभिन्न परिस्थितियो मे रहने के कारण इसकी रूप-रेखा इतनी खराब हो गयी है कि सोम प्रीति के मन्दिर के सामने यह कुछ महत्व नही रखता। शत्रुञ्जय पर बने हुए आदिनाथ मन्दिर की तरह इसका भीतरी भाग भी चमकीले पत्थरो से जडा हुआ है। उनको देखकर सहज ही अनुमान होता है कि मन्दिर की इस सजावट और बनावट में आवश्यकता से अधिक व्यय किया गया है। स्वर्ण-निर्मित मन्दिर की जजीर, नेत्रो मे लगे हुए हीरा और रत्न-जडित चाँदी का मुकुट पहने हुए नेमिनाथ की श्याम मूर्ति वेदी पर स्थापित है। दीपक जलाने और धूप देने के लिए शुद्ध पीतल के मनोहर पात्र बने हुए हैं, इन दीपको मे रात-दिन प्रकाश होता रहता है। भक्त यात्री लोग यहाँ आकर अपनी-अपनी भेट चढाते हैं।

दूसरे मन्दिरो की अपेक्षा इस मन्दिर की चट्टाने छोटी-छोटी हैं। आने वाले यत्रियों को सुविधापूर्वक चलने के लिए चट्टाने काट-काटकर रास्तो का निर्माण हुआ है। इस मार्ग में बहुत-से शिला-लेख हैं, लेकिन उनके पाषाण ऐसे है कि उनको तोडकर

शिला-लेख निकालना बहुत कठिन है। जब किसी शिला-लेख को निकालने की कोशिश की गयी तो उसका पत्थर चटखकर टुकड़े-टुकड़े हो गया और एक भी शिला-लेख ऐसा नही निकल सका, जो पढ़ा जा सकता। एक-दो शिला-लेख किसी प्रकार निकाले गये, वे भी दो-दो टुकड़ो के हो गये। उनको पढ़ने से मालूम हुआ कि वे पाँचवी शताब्दी से कुछ पहले के हैं और वे केवल उन लोगों के स्मारक हैं, जिन्होंने मन्दिर का जीर्णोद्धार किया था।

दूसरा शिला-लेख खँगार के महलो के फाटक पर लगा हुआ है। उसमें भी यहाँ के राजा माण्डलिक के द्वारा जीर्णोद्धार का ही उल्लेख है। यह राजा माण्डलिक पहला था अथवा तीसरा, इस विषय का उसमें कोई स्पष्टीकरण नही है। एक बात यह भी है कि गिरिनार की राजधानी जूनागढ़ में इस नाम के चार राजा हो चुके। अनुमान से काम लिया जाय तो वह खँगार का चौथा राजा हो सकता है। लेकिन खंगार नाम के भी तो कितने ही राजा हो चुके हैं। (१)

नेमिनाथ के मन्दिर का वर्णन मैं यहाँ पर देना आवश्यक नही समझता। इसलिए इतना ही लिखना चाहता हूँ कि इस मन्दिर की यह बहुत बडी इमारत है और इसका शिखर बहुत ऊँचा है। इसमें सबसे अधिक आकर्षण की चीज तो नेमिनाथ की काली मूर्ति है। वह संगमरमर पर तैयार की गयी है। यह मूर्ति अत्यन्त विशाल है और बैठी हुई दशा में बनायी गयी है। उसके बाल नीग्रो लोगो के समान घुंघराले हैं और उसके मुख पर दया एवम् प्रसन्नता के भाव प्रकट होते हैं।

भारत के बौद्ध लोगों के नेमि और बृटिश-म्यूजियम के मिस्री मेमनान (२) की मूर्तियो मे मैंने बहुत अधिक समता को अनुभव किया है और बर्कहार्ड के उल्लेख से मेरी धारणा और भी अधिक हो गयी। उसने लिखा है—

---

(१) राजपूतो में किसी नाम को बार-बार लाने की एक आम प्रथा थी। उदयपुर के राज-परिवार मे तीन नाम इसी प्रकार मेरी स्मृति मे हैं। ये राजपूत इन नामो के साथ अंगरेजी परम्परा के अनुसार संख्या का प्रयोग नही करते। लेकिन बौद्धिक अथवा शारीरिक विशेषता के कारण जो भिन्नता नामों के प्रयोग मे उत्पन्न होती है, वह भविष्य में आगे चलकर अपने आप लुप्त हो जाती है।

(२) मेमनान ग्रीक ग्रन्थों में टीथानस और इओस के बेटे के नाम से प्रसिद्ध है। वह देखने में बहुत सुन्दर था। ट्राजन की लड़ाई में उसने ग्रीस वालो की पूर्णरूप से सहायता की थी। उस युद्ध में एचीलीज के साथ लड़ता हुआ वह मारा गया था।

एन०—एस० पेज ८७५

नूबिया (१) मे एब्सम्बोल के कोलोसी (२) के सिरो मे इसके साथ बहुत बड़ी समानता है। अन्तर केवल इतना ही है कि वे बलुआ पत्थर के बने हुए हैं। मुख-मण्डल के भाव करीब-करीब एक से हैं। नूबिया वालों मे गम्भीरता अधिक पायी जाती है। लेकिन शान्ति, प्रसन्नता और स्वाभविकता दोनो मे देखने को मिलाती है।

नेमिनाथ का वर्णन इससे अधिक अच्छा नही किया जा सकता कि उनके बाल घुंघराले हैं, पद्म का चिह्न है और वर्ण श्यामल है। इससे मालूम होता है कि प्राचीन काल मे भारत के साथ सीरिया और लाल सागर के तटवर्ती नगरो मे बहुत कुछ सम्बन्ध और सम्पर्क था।

महलो के जो खण्डहर यहाँ पर देखने को मिलते हैं, उनके सम्बन्ध मे विशेष लिखने की आवश्यकता नही है। जूनागढ़ के राजवश की वशावली का उल्लेख भी आवश्यकता से परे हैं। इसलिए महाभारत के बाद अनेक पीढ़ियाँ बीत जाने पर यह वंश रुद्रपाल से आरम्भ होता है। वश का आरम्भ कृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मिणी के लडके से हुआ है। इसके विवरण माण्डलिक और उसके बेटे खगार तक चले जाते हैं। उसका लडका अपने विवाह के सम्बन्ध मे अनहिलवाला के राजा सिद्ध का प्रतिद्वन्दी हुआ था।

दिन भर परिश्रम करने के बाद मैं बहुत थक गया था। इसलिये अपने इस कार्य को छोडकर मैं महल की तरफ आया और विश्राम करने के लिये किसी स्थान की खोज करने लगा। मेरे सामने जिस प्रकार अनुसन्धान का कार्य है, उससे मैं उस समय तक जुदा नही होता, जब तक मुझे प्रकाश मिलता है।

एक बडी थकावट के बाद जब मैंने सूरज की तरफ देखा तो मुझे मालूम हुआ कि वह स्वयं अस्त होने जा रहा है, मुझे यह देखकर कुतूहल हुआ कि यह थकावट मुझ पर ही आक्रमण नही करती, बल्कि दिन-भर यात्रा करने के बाद सूरज भी थक जाता है और इसीलिये वह बडी तेजी के साथ हम सबसे विदा होने जा रहा है।

घाटी के बीच से जूनागढ की छतरियाँ कुछ धुंधली सी दिखायी दे रही थी और हमारा शामियाना इतनी दूर से अपनी सफेदी की झलक दे रहा था, बीच के स्थान कुछ ऊंचे थे। उनकी तरफ देखने से वे दिखायी देते थे। जगल मे कहीं-कहीं

(१) अफ्रीका मे लाल सागर से नील नदी तक और मिस्र से अबीसीनिया तक फैला हुआ पृथ्वी का विस्तृत भाग इथोपिया कहलाने लगा है।

(२) मेमनॉन की दो मूर्तियो की ऊंचाई बडी विशाल बतायी जाती है और उनकी ऊंचाई सत्तर फीट कही गयी है। इनकी विशालता और ऊंचाई कम आश्चर्य-जनक नही है।

पर ऊचे गुम्बज दिखायी देते थे। उनके साथ मिश्रित होकर संध्याकालीन छाया एक अनोखा दृश्य उपस्थित कर रही थी।

दिन मे जो बादल इधर-उधर बिखरे हुए थे, वे अब सब मिलकर एक समूह बना रहे हैं और उनके मिल जाने के कारण आकाश का प्रकाश अब अन्धकार में बदलता जा रहा है। सूर्य चुपके से नीचे उतरकर अन्धकार के पीछे चला गया था। जिस समय मैं समझ रहा था कि सूरज डूब चुका है, अचानक बिजली की चमक से उसका लाल रंग समुद्र के जल पर अपनी छाया डालने लगा। मैंने समझा कि अभी तक सूरज डूबा नही है; लेकिन डूबने जा रहा है और उसकी अन्तिम अवस्था हम सबको जाहिर करती है कि सभी का अन्त कुछ इसी प्रकार का हुआ करता है।

पट्टण से मांगरोल तक का समुद्री किनारा अपनी अस्पष्टता प्रकट कर रहा था। एक क्षण के लिये थोड़ा-सा प्रकाश सफेदी लिये हुए चमका और उसके बाद वह गायब हो गया। उसकी चमक इतनी तेजी के साथ हुई कि आँखे उसे ठीक-ठीक देख भी न पायी और उसका अन्त हो गया। यह चमक नेत्रो के सामने आयी और तेजी के साथ चली गयी। मैं सोचने लगा, यह दृश्य कितना सुन्दर था और कितना क्षणिक था।

मैं बड़ी देर से सूर्य को अस्त होते हुए देख रहा था। कभी-कभी आंखो से तिरोहित होने के कारण मैंने मान लिया था कि उसका अस्तित्व अब लोप हो गया। जब मैं यह सोच रहा था, उसके बाद मैंने एकाएक देखा कि सूर्य की छिपाती हुई किरणे अब भी किसी-किसी समय सोनारिका नदी के जल को आलोकित कर देते हैं।

इस दृश्य को देख-देख कर मैंने अनेक प्रकार की बाते सोच डाली। मैं देख रहा था कि डूबता हुआ सूरज बार-बार अपने अन्तिम प्रकाश से संसार को आलोकित कर देता है। प्रकृति का यह दृश्य बहुत अनोखा था। जब मैं इस दृश्य की बातों पर विचार कर रहा था उसी समय मैंने अचानक देखा कि सूर्य का समस्त प्रकाश अब जाता रहा और उसके आलोक का स्थान अन्धकार ने उसी प्रकार ले लिया, जिस प्रकार एक आक्रमणकारी राजा हमला करके किसी दूसरे राज्य पर अधिकार कर लेता है।

मैं बड़ी देर तक अपनी इन उलझनो में पड़ा रहा और न जाने क्या सोचता रहा। जो कुछ सोच डाला, उसको लिखना नही चाहता। लेकिन मैं यह जरूर बताना चाहता हूँ कि इस प्रकार के अस्थायी दृश्य को देखकर मैं आनन्द लेता रहा। मैं साफ साफ समझता रहा कि ये दृश्य ही अस्थायी नही हैं, हमारे जीवन का सब-कुछ इसी प्रकार अस्थायी है। सन्ध्या के साथ-साथ ठन्ढक भी अपना प्रभाव जाहिर करने लगी। इसलिये अन्त में मैं उसी स्थान को लौट आया, जिसको छोड़कर मैं उस तरफ गया था। मौसिम की तेजी अपना असर डाल रही थी। हवा भी तेज थी और रात के बारह बजे तक वह उसी प्रकार तेज चलती रही। मेरे साथ जो बिस्तर था, वह किसी

भी ऐसे मौके के लिये कम न था। लेकिन यहाँ के मौसिम मे और हवा की तेजी मे मुझे वह काफी नही मालूम हुआ।

बिना दरवाजे और खिडकियो से जो हवा आ रही थी, यदि उसके साथ शीतलता न होती तो सोने वालो को उससे बडी मदद मिलती। जहाँ पर मैं लेटा था उस स्थान मे हवा को रोकने के लिये कोई साधन न था। आवश्यकता से अधिक कोई भी चीज—वह चाहे जितनी फायदेमन्द हो—हानिकारक होती है। इसलिये मैं सोचने लगा कि इसको रोकने के लिये क्या किया जा सकता है। जब कुछ और न सूझ तो हवा आने के रास्ते मे घास के ढेर लगवा दिये। उससे हवा की तेजी मे बहुत कुछ कमी आ गयी। मैं थका तो था ही, कुछ आलस आया और मैं तुरन्त सो गया।

सोने का सुख गहरी नीद में आता है और गहरी नीद प्रायः थकावट मे आती है। मैं कितनी देर तक सोता रहा, इसका कोई अनुमान मैं नही लगा सका। लेकिन जब मैं सो रहा था, अचानक कोई वजनदार चीज मेरे ऊपर आ गयी थी, मेरी नीद टूट गयी और जो दीपक जल रहा था, वह बुझ गया। मैं चौक पडा और सोचने लगा कि मुझ पर किसी जगली जानवर ने तो आक्रमण नही कर दिया। जगली जानवर और भालू की अपेक्षा मुझको अघोरी का अधिक भय लगा। कालिका देवी से भी मैं आतंकित हुआ। इसी समय फिर उस रास्ते से जोर की हवा आयी और मुझे मालूम हो गया कि मेरे ऊपर किसका आक्रमण हुआ है। वास्तव में घास का यह ढेर था, जिसे मैंने हवा को रोकने के लिये लगा दिया था, हवा की तेजी मे वह ढेर मेरे ऊपर आ गया था।

अब मेरे सामने घबराने का कोई कारण न था। मैंने नवाब ने पहरेदारो को आवाज लगायी। वे लोग चौक मे आस-पास बैठे हुए समय बिता रहे थे। जब मैं जग पड़ा तो मैंने उनके बाते करने की आवाज सुनी। उन लोगो ने आकर घास के ढेर को सम्हालकर लगा दिया। उनके चले जाने के बाद मैं फिर सो गया।

दूसरे दिन मैंने पहाड से उतरना आरम्भ किया और महल के ऊँचे स्थानो को छोडकर जैसे ही मैं नीचे आया तो जो स्थल ऊपर से मुझे स्पष्ट और धुंधले दिखायी देते थे, अब साफ-साफ दिखायी देने लगे। सूर्य का उदय हो चुका था और उसका प्रकाश तेज होता जा रहा था। जो स्थान प्रकाश के अभाव मे अपने अस्तित्व को छिपाये हुए थे, वे सब साफ-साफ दिखायी देने लगे। सूर्य के इस आलोक से यात्रा करने वालो को बड़ी खुशी हो रही थी और अब उन सभी ने रात के अन्धकार से छुटकारा प्राप्त कर लिया था।

इसी समय मेरा ध्यान एक वृद्ध स्त्री की तरफ गया, जो एक पत्थर का सहारा लिये हुए लेटी थी। उसका लड़का चढ़ाई के कारण थकी हुई अपनी माँ के कमजोर

अंगों में थपकी लगा रहा था। मैंने उससे बातें की तो मुझे मालूम हुआ कि बूढ़ी स्त्री गोकुल से आयी है। वह अपने आराध्य देव कृष्ण की जन्म-भूमि से पैदल चलकर द्वारका और पीची तक गयी, जहाँ पर कृष्ण ने निर्वाण प्राप्त किया था। अब वह लौटकर वापस जा रही है।

इस वृद्धा की भक्ति-भावना को देखकर भला कौन नही पसीजेगा। मैं स्वयं आश्चर्य-चकित होकर उसकी तरफ देखकर रह गया। जब मैंने आदरपूर्वक उससे पूछा तुम्हारा गाँव कहाँ है। तो उसने मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : मेरा स्थान गोकुल है।

मैंने बहुत पहले से गोकुल का नाम सुन रखा था। उसके मुख से गोकुल का नाम सुनकर मैं गम्भीर हो उठा। उसके मुख की ओर देखकर मैंने अनुभव किया कि मानो उसने बडे गर्व और स्वाभिमान के साथ अपने गाँव का नाम गोकुल बताया है।

जिन लोगो के साथ बैठकर मैं किसी समय गोकुल और वृन्दावन की घटनायें तथा कथायें सुना करता था, उन सब की स्मृतियाँ मेरे अन्तरतर मे एक साथ जाग्रत हो उठीं।

उस वृद्धा के समीप और भी कुछ यात्री बैठे थे, बातचीत के सिलसिले में उन लोगो ने भी अपने-अपने स्थानों के नाम बताये और अपने आने की कथायें कहना आरम्भ किया। उनमें से कुछ लोग गंगा स्नान करके आये थे और कुछ जमुना, कावेरी तथा कुछ काशी से आये थे। मैंने एक आदमी से काशी का अर्थ पूछा तो उसने बताया कि काशी बनारस को कहते हैं।

उसकी बात को सुनकर मुझे एक हलकी हँसी आ गयी। मैंने उसकी तरफ देखा। लेकिन मैंने कुछ कहा नही। इसी समय कई एक यात्रियों ने एक साथ जोर से चिल्लाकर कहा : बोल गंगा मैया की जय।

उन लोगों के मुख से मुझे यह जय घोष बहुत अच्छा मालूम हुआ।

मैं हाथी नामक टूक पर पहुँचा। उस समय धूप बहुत तेज हो गयी थी। यद्यपि आठ बजने का समय था। लेकिन मैं भूल गया, समय और भी कुछ अधिक हो चुका था। लेकिन गिरिनार की गुफाओं मे बसेरा लेने वाले पक्षी अभी तक बाहर नहीं निकले थे। मैंने देखा है कि उनके झुण्ड के झुण्ड पहाडो के वृक्षों में मधुमक्खियो के छत्तों की भाँति लटके रहते हैं, वे पक्षी बसेरा लेने के लिये जो घोसले बनाते हैं, वे सभी एक ही तरह के होते हैं। मुझे ऐसा लगा मानो अद्वैतवादी जीव-रक्षकों ने पक्षियों के रहने के योग्य इन घोसलों को तैयार किया है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इनमें से अधिकांश घोसले ऐसे स्थानों पर बने हैं, जहाँ पर किसी भी ऋतु का प्रभाव जल्दी नहीं पड़ सकता। कुछ घोसले काफी बड़े हैं और उनके भीतर उनके बच्चे के

रहने के लिये छोटे-छोटे स्थान बने हुए हैं। कितने ही स्थानो पर काले-काले साँपो की इतनी अधिकता है कि चट्टान का कोई भाग दिखायी नही देता। मुझे नही पता कि गरुड और गिद्ध इन साँपो का शिकार करते हैं या नही, इस विषय मे मेरी कोई जानकारी नही है। हाँ, यह सुना है कि कौआ गिरिनार पर नही रहा करता, उसकी इसमे स्वाभाविकता मालूम होती है, वास्तव मे वह मांसाहारी शैव लोगो के साथ रहना चाहता है और ऐसे स्थानो को—जो पूर्ण रूप से शाकाहार के लिये होते है—वह जैनियो के लिये छोड देता है।

इस ऊँची पहाडी पर जो चट्टाने हैं, वे नीची-ऊँची है। इसकी एक चट्टान पर राव राणिगदेव का नाम बहुत साफ पढने को मिलता है। उसने सम्वत् १२१५ मे यहाँ की यात्रा की थी, उसके नाम के साथ किसी जाति और देश का नाम नही है। लेकिन मेरा अनुमान है, जो बहुत अशो मे सही है कि यह सौराष्ट्र का झालावाड झाला सरदार था और अनहिलवाडा के राजा भोला भीम प्रथम का सामन्त था। दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज के ऐतिहासिक वर्णन मे इसका नाम आया है और पृथ्वीराय रासो मे सम्मानपूर्वक उसके नाम का उल्लेख किया गया है। राजा भोलाभीम ने ही पृथ्वीराज के पिता साभर के नरेश सोमेश्व को मारा था और इसका बदला लेने के लिए पृथ्वीराज ने अपनी तलवार निकाली थी। पृथ्वीराज का मुकाविला करने के लिये जो शूरवीर एकत्रित हुए थे, उनमे राणिगदेव का प्रमुख नाम लिया गया है। इस अनुमान का समर्थन इससे भी होता है कि झाला सरदार ने अपने राजा के दरबार मे जाने के लिये झालावाड से रवाना होकर रास्ते मे इस पर्वत की यात्रा करते हुए यहाँ पर मुकाम किया था।

खँगार के महलो से लेकर हाथी टूक तक बिल्कुल उजडा हुआ है। लेकिन इसके बाद वृक्षो का मिलना आरम्भ हो जाता है और फिर वे लगातार जूनागढ शहर के अगले दरवाजे तक चले जाते हैं। वही पर एकान्त में वृक्षो के बीच हमारा तम्बू लगा हुआ था। वहाँ पहुँचने के पहले ही मैं बहुत थक गया था। यद्यपि यात्रा के आकर्षण के कारण मेरा मन जरा भी नही थका था। यह दूसरी बात है कि गिरिनार अर्बुद की समता करने के योग्य न हो, लेकिन उसकी झीले, उसके चरागाह और झरने तथा विभिन्न प्रकार के वृक्ष और बहुमूल्य मन्दिर किसी प्रकार कम गौरव नही रखते। यह बात सही है कि मेरी तरह के और यात्री भी ऐसे होंगे, जिनके नेत्रो मे यहाँ के मटमैले भूरे पत्थर और ग्रेनिट पत्थरो से बने हुये स्तम्भ संगमरमर के मुकाबिले मे महत्व न रखते हो, लेकिन समुद्र का लगातार विस्तार मन मे जो भावना उत्पन्न करता है, मरुभूमि के रेतीले मैदानो मे उसकी कल्पना नही की जा सकती।

मैंने अब तक अनेक देशो की यात्राये की हैं। स्विजरलैण्ड मे रिगी (१) पर्वत की

---

(१) लुसिरिन और जूग नामक झीलो के बीच मे यह कायम है।

चोटी पर से हेल्वेटियन (१) आल्प्स में बर्फीले शिखरो पर सूर्य का निकलना देखा है। और तोरतोना (२) के पीछे के भाग से शरदाकाश मे अस्त होने वाले सूर्य की गुलाबी किरणो से बर्फीली ढकी हुई एचीनाइन्स को प्रकाशमान होते हुये भी देखा है। माएट-ब्लंक (३) के समीप में भी होकर निकला हूँ। आधी रात के समय साफ चाँदनी में कालीनिअन (४) की टूटी हुई मेहराबों को ध्यानपूर्वक देखा है। इनके सिवा सिराको (५) और शाके मध्य ज्वर से पीडित होकर वेनिस की परिस्थिति पर भी मैंने विचार किया है और प्रार्थना की है कि यहाँ के प्रासादो के ऊपर मंडराने वाले गिद्धो को इन्द्रदेव तुम अपनी भीषण गर्जना से नष्ट कर दो। मैंने और भी बहुत से दुनिया के उन मुकामों को देखा है, जिन्हे देखकर मनुष्य कम्पायमान हो जाता है। ऐसे बहुत-से स्थानो को मैंने देखा है। लेकिन कही पर भी मेरे मन मे ऐसे भावो का उदय नही हुआ, जैमी अनुभूति मुझको सप्त शिखर गिरिनार के ऊपर गोरखनाथ मन्दिर के आगे नशे मे डूबे हुये चेतनाहीन पागल के समान अघोरी को देखकर हुई थी। कुछ उसी प्रकार की अवस्था मेरी उस समय भी हुई थी, जब चित्रकूट के शिखर पर रात्रि का अन्धकार मुझे चारो तरफ से घेरता हुआ चला आ रहा था और सूर्य की किरणे पहले ही तिरोहित हो चुकी थी। कही से भी कोई आवाज कानो मे नही आ रही थी। उस समय की स्थिति भी कम भयानक नही थी।

मौसम साफ होने के कारण हम चढ़कर ऊपर गये थे, उस समय से बैरो-मीटर १० अङ्क ऊपर प्रकट कर रहा था, जूनागढ़ का अध्यक्ष नवाब से भेंट करने और जवाब मे उनका स्वागत-सत्कार करने के लिए हमको वहाँ पर एक दिन और ठहरना पड़ा।

(१ सन् १७९८ ईसवी मे फ्रांस मे जो गणतंत्र स्थापित हुआ था, वह हैल्वेटिक रिपब्लिक के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(२) स्पेन में यह एक पहाड़ का रमणीक स्थान है।

(३) आल्प्स पर्वत की सबसे ऊंची शिखर, जो फ्रांस और इटली के बीच मे है, १५७८१ फीट ऊँचा है।

(४) रोम का सबसे एक बडा स्थान, रगशाला के नाम से सन् ८० ईसवी मे यह बनकर तैयार हुआ था। इसमें ५०,००० आदमी बैठकर खेल देख सकते थे। इसमें होने वाले बहुत-से खड्ग-युद्धो मे बहुत से ईसाई मारे गये थे।

(५) मध्य सागर के उत्तरी भागो में चलने वाली गर्म और सूखी हवायें, जो अपनी उष्णता के लिए प्रसिद्ध हैं।

उन्नीसवाँ प्रकरण

नगर, राजवंश और विवरण

काठीवाना की विभिन्न जातियाँ—अकाल का प्रभाव—मकानो के स्थान पर झोपडियाँ—डाकुओ का गाँव—गूमली के किले मे जङ्गली जानवर—जेठवा का मशहूर मन्दिर—गणपति के मन्दिर की बनावट—गूमली मे शोध की सामग्री—जेठवा के लोगो के स्मारक—मनुष्यो में पूँछवाली जाति—प्राचीन कथानको मे मत्य की हत्या—पूर्वकाल मे अन्तर्जातीय विवाह।

दाँदूसर, १७ दिसम्बर—चार कोस का फासिला। बबूल के पेड़ों से भरे हुये जङ्गल को पार किया। वहाँ की जमीन के कुछ भाग मे खेती होती है और उन खेतों में चने की खेती अधिक दिखायी देती है। इस गाँव के लोग गरीबी का जीवन बिताते हैं। इस क्षेत्र मे अधिक आबादी अहीर लोगो की है, जो पशुओ के पालने का काम करते हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं, जहाँ पर सिन्धी लोगो की आबादी अधिक सख्या में पायी जाती है।

जिझिरी, १८ दिसम्बर—छै कोस का फासिला। खेती का काम साधारण तौर पर होता है। यहाँ पर लगभग सभी जातियो के साथ-साथ पश्चिमी बलूता जाति के लोग भी रहते हैं।

काठीवाना १६ दिसम्बर—आठ कोस का फासिला। इस स्थान को कस्बे मे गिना जा सकता है। यहाँ पर तीन-चार हजार के लगभग घर हैं और उसके आस-पास सुरक्षा के लिए मजबूत ऊँची दीवारें भी हैं। यह कस्बा भादर नदी के करीब बसा हुआ है। उसमें उन सभी नदियो से अधिक पानी है, जिनको मैंने इस प्रायद्वीप में देखा है।

अबुलफजल ने इस नदी की मछलियो की बहुत प्रशसा की हैं। लेकिन हमने जिस एक मछली को काँटे से पकड़ा, वह अच्छी नही साबित हुई। खाने मे वह बुरी तरह से नमकीन थी और ऐसा मालूम होता था, मानो वह नदी के जल को भी खराब कर रही है।

हमारी यात्रा के आखिरी दो मील इस नदी के किनारे-किनारे चले और आगे जाकर मैंने उसके तट पर ही मुकाम किया। देखने से यह कस्बा पुराना मालूम होता

है और पहले कभी यह कुन्तलपुर कहा जाता था। अब भी यहाँ पर एक दुर्ग बना हुआ है, वह कालीकोट के नाम से प्रसिद्ध है।

लोगों का कहना है कि काठीवाना मे अठारह जाति के लोग रहते हैं। लेकिन यहाँ की आबादी अधिकतर सिंधुघाटी के बनिया-भाटियो और मौमन तथा मुस्लिम जुलाहो की है। भादर नदी ने अपना रास्ता बदल दिया है, यह बात उसके एक बने हुए पुल से जाहिर होती है। यह पुल बहुत ऊंचा है।

पिछले दिनों में जो अकाल पडा था, उसका प्रभाव इस कस्बे और आस-पास के स्थानो पर भी बहुत पड़ा था। उसी का यह असर है कि इस क्षेत्र की आबादी बहुत कम हो गयी है। रहने वाले लोग गरीब हो गये हैं। उनकी गरीबी का एक बड़ा प्रमाण यह है कि यहाँ पर मकानों की अपेक्षा झोपड़ियो की सख्या अधिक है और उनमें रहने वाले अहीर तथा कुनबी लोगो की दशा अच्छी नही है।

तुरसी, १६ दिसम्बर—अठारह कोस का फ़ासिला। यात्रा आरम्भ करने के पश्चात् हम लोग लगभग पाँच मील तक लगातार चलकर उस स्थान पर पहुँचे, जो इसरियो कहलाता है। यहाँ पर भी अहीरो और कुनबी लोगों की आबादी है। यहाँ पर खेती का व्यवसाय अच्छा दिखायी देता है।

हमारे बाये तरफ कराडोरना (१) नामक एक पुराना नगर था, वह जेठवा राजपूतो के अधिकार मे था। देवला में एक गढी उस नदी के किनारे पर है। जो जूनागढ को जाम के राज्य से अलग करती है। तीसरी सीमा बायी तरफ लगभग डेढ़ मील के फासिले पर है, जहाँ खुलसना मे जेठवा राजा की सीमा मानी जाती है।

यहाँ पर खेतों की फसले अधिक कमजोर दिखायी देती हैं। यहाँ के किसान प्रायः उन्ही जातियो के हैं, जिनके नाम ऊपर लिखे गये हैं। तुरसी, बरड़ा की पहाडियों के पूर्व की तरफ है।

---

(१) मैंने एक भाट के पास ऐतिहासिक घटनाओ का सग्रह देखा था। उसमे बहुत से राजवशो के विवरण थे। मैं उस सग्रह से सौराष्ट्र के पुराने नगरो के सम्बन्ध में कुछ बातें नोट की थी, उसमे से कुछ इस तरह हैं—कराडोरना अथवा कराडोला पहले किसी समय बीसल नगरी के नाम से प्रसिद्ध था। उसके बाद शिला नगरी, फिर तिलापुर और उसके बाद उसका नाम घन-कराडोल हो गया और आजकल उसी को कराडोला कहा जाता है। यह क्रम उसके नाम का मैंने उस भाट की पुस्तक से लिया है। मेरा ख्याल है कि यदि जेठवा जाति के शीलकुँवर के नाम पर इसका नाम शिला नगरी पडा हो तो उसके पहले इसका नाम तिलापुर रहा होगा। बहुत दिनो तक मैं मेवाड़ के राणा लोगो के पूर्वजो की राजधानियो में सौराष्ट्र के तिलापुर पट्टन की तलाश करता रहा। लेकिन मुझे सफलता नही मिली। मेरा अनुमान है कि यह वही स्थान है। यह भी सम्भव है कि इसका नाम शिलादित्य के नाम पर शिला नगरी पड़ा हो।

भावल, २० दिसम्बर से २३ दिसम्बर तक—सात कोस का फासिला। अब हम जितना आगे की तरफ चलते हैं, जमीन की दशा हमको उतनी ही खराब दिखाई देता है।

हम मोपुर नामक गाँव से होकर आगे चले। वहाँ पर एक किले के टूटे-फूटे भाग मौजूद है। कुछ दिन पहले यह गाँव डाकुओ का कहा जाता था, इसीलिये वह नष्ट करा दिया गया है। अब इस गाँव मे गरीब अहीरो के पच्चीस घरो से अधिक आबादी नही है।

भांवल नवा नगर के जाम के अधिकार में है और यहाँ पर मोमन जुलाहो के लगभग पन्द्रह सौ मकान हैं। यह एक कस्बा है, जो बनवारी नदी के किनारे पर बसा हुआ है। इसका बहुत-सा पानी नालियो के द्वारा निकाल कर खेती के काम मे लाया जाता है। इसके बाद भी उसका जो जल बाकी रह जाता है, वह विनोद्रा नामक एक बड़ी नदी मे जाकर गिरता है, उसके किनारे पर इन्द्र देवता का एक मन्दिर है।

गूमलो—जेठवा जाति की पुरानी राजधानी गूमली के खडहरो की खोज के लिये हमको कुछ दिनो तक भांवल मे ठहरना पडा। वही पर इस प्रान्त के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर बानवेल मुझसे आकर मिले।

गूमली बरडा की पहाड़ियो के उत्तरी भाग पर कायम है। उसका नाम भारत के प्राचीन भूगोल मे परियाटा पाया जाता है। यह स्थान महर्षि भृगु के आश्रम के नाम से मशहूर है। यह स्थान भांवल से करीब तीन मील की दूरी पर है। यह स्थान पूर्ण रूप से एकान्त मे होने के कारण यात्रियो को बडी असुविधा का सामना करना पडता है। इसलिये कि यहाँ पर जो प्रसिद्ध मन्दिर है, उसका शिखर भी उसी समय दिखायी देता है, जब कोई उसके बहुत निकट पहुँच जाता है। यह एक बडी कठिनाई सामने आती है।

इसका मुख्य कारण यह है कि यह स्थान एक घाटी में पाया जाता है और दक्षिण तथा पूर्व मे लगभग छै फीट ऊँची बरडा की पहाडियो से घिरा हुआ है। शेष दिशाओ मे भी छोटी-छोटी पहाडियाँ हैं। उनके कारण यह स्थान कुछ अप्रकट-सा हो जाता है।

पता चलता है कि गूमली मे कई शताब्दियो से कोई रहता नही है। तीन तरफ से चूने और ककरीट से यह स्थान घिरा हुआ है। उत्तर पूर्व और पश्चिम की तरफ यह स्थान परकोटे से घिरा हुआ है। इसका दक्षिणी भाग पहाडियो से सुरक्षित है। परकोटे की दीवारे पहाडियों के ऊपर तक चली गयी हैं। यहाँ पर जो किला है, उसमे जगली जानवरों ने अपने रहने के लिये स्थान बना लिये हैं। अब भी प्रत्येक दीवार से सम्बन्धित एक द्वार बना हुआ है। पूर्वी और उत्तरी दीवारे क्रमशः पाँच सौ और आठ

सौ गज लम्बी हैं और वे अब भी मजबूती के साथ खडी हैं।

इस कस्बे में प्रवेश करते ही सबसे पहले जेठवा का मन्दिर मिलता है। यह उस स्थान पर बना हुआ है, जहाँ पर महल है और वही से पहाडियो मे प्रवेश किया जाता है। इसका प्रवेश-द्वार सीधा पूर्व की तरफ पड़ता है, इसीलिये सूर्य के निकलते ही उसकी प्रारम्भिक किरणें इस द्वार पर आती हैं। यह मन्दिर एक ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है, जिसकी लम्बाई एक सौ तिरपन फीट, चौड़ाई एक सौ बीस फीट और ऊँचाई बारह फीट है।

इस मन्दिर का निर्माण तराशे हुए पत्थरो पर किया गया है। उसकी नक्काशी अनेक प्रकार की है। मन्दिर में आठ कोने का एक मडप है, उसका व्यास तेईस फीट है, वह मंडप दो खन्डों मे बना है। उसके ऊपर एक गुम्बज बना हुआ है, वह धरातल से लगभग पैंतीस फीट ऊँचा है।

इस मन्दिर की शिल्प कला असाधारण रूप मे है और अब तक मन्दिरो में जो कुछ मैंने देखा है, उन सबसे भिन्न इसमें कला का प्रदर्शन किया गया है। इसका आधार बारह फीट ऊँचे स्तम्भ हैं, इन स्तम्भो का निर्माण बड़ी मजबूती के साथ किया गया है। मन्दिर के ऊपरी भाग मे भी स्तम्भों की पक्तियाँ है, मन्दिर मे रास-मडल और नृत्य के दृश्य जो खोदकर चित्रित किये गये हैं, वे देखने में बड़े सुन्दर मालूम होते हैं।

मन्दिर का कुछ भाग नष्ट भी हो गया है, पूर्व और पश्चिम की तरफ आगे की तरफ निकली हुई दो ड्योढी बनी हुई हैं। उनकी ऊँचाई और चोडाई चौदह फीट तथा आठ फीट है, इनका आधार भी सुदृढ स्तम्भ हैं, छत मे अनेक प्रकार के चित्र देखने को मिलते हैं, बड़ी गुम्बज के चारो तरफ छोटी-छोटी गुम्बजे भी बनी हुई हैं, वे भी खम्भो का आधार लिये हैं,

पश्चिम की तरफ देवखड अथवा निज मन्दिर है, वह दस फीट वर्गाकार एक छोटा-सा कमरा मालूम होता है। वह प्रायः खाली पड़ा रहता है। उसके ऊपर जो शिखर बना हुआ था, वह गिर गया है अथवा गिरा दिया गया है। भीतर से इसकी लम्बाई और चौडाई तिरसठ फीट और चौवन फीट है। लेकिन प्रत्येक अवस्था मे वह प्रशंसनीय है, इस मन्दिर की सभी मूर्तियाँ पौराणिक हैं और देखने में अधिक आकर्षक हैं। जिन खम्भो के आधार पर मन्दिर बना हुआ है, वह तो बहुत-ही प्रशंसा के योग्य है। स्पष्ट रूप से मैं यह कहना चाहता हूँ कि उसके पहले मैंने ऐसा अन्यत्र नही देखा। सिंह, नरसिंह, ग्राह और बन्दरो की आकृतियो का चित्रण इस मन्दिर के पाषाणो पर अभूतपूर्व हुआ है। इन मूर्तियो मे आश्चर्यजनक भावों और भावनाओ का चित्रण किया गया है।

मन्दिर मे ऐसी कोई चीज देखने को नही मिलती, जिससे अनुमान लगाया जा-

सके कि यह मन्दिर किस देवता का है, यद्यपि देव कक्ष के बाहरी भाग मे महाकाल के ऐसे चिन्ह देखने मे आते हैं, जिनसे आभास मिलता है कि यह मन्दिर कदाचित् आरम्भ से शिव का रहा होगा।

कुछ फासिले पर दक्षिण-पश्चिम मे गणपति का मन्दिर बना हुआ है। उसको हिन्दुओ के समस्त देवताओ में प्रधानता दी जाती है। उसका सूंड़ के समान मुख अथवा मस्तक बुद्धि का परिचायक माना जाता है। इस मन्दिर का निर्माण बडे अनोखे ढङ्ग से हुआ है। कोठरियो में सर्वत्र चौखटदार खिडकियाँ हैं और उसकी छत अन्डे के आकार मे है। एक बडे कोठे मे नव-ग्रहो की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। लोगों का विश्वास है कि वे ग्रह मनुष्य के जीवन मे भाग्य और दुर्भाग्य की सृष्टि करते हैं।

इस मदिर के पास उत्तर की ओर ज्ञान का मदिर बना हुआ है, उसका सम्बन्ध नास्तिक बुद्ध के साथ सम्बन्ध और सम्पर्क रखता है। इसकी बनावट इस धर्म के उन सभी मदिरो के प्रतिकूल है, जिनको अब तक मैंने देखा है। इस मंदिर मे एक दूसरे से मिले हुए चार मण्डप हैं। उनका आधार खम्भे हैं। उनका ऊपरी भाग वैसा नही है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

ऐसा मालूम होता है कि ये सब उसी समय के और उन्ही कारीगरो के द्वारा बने है, जिन्होने आस्तिको मे प्राचीन मदिरो के निर्माण किये थे। इसके भीतर एक पार्श्वनाथ की मूर्ति भी लगी हुई है और एक पाषाण पर चौबीस तीर्थङ्करो अथवा जैन सम्प्रदाय के प्रधान आचार्यों की प्रतिमाये उत्कीर्ण की गई हैं। महाकाल का पवित्र वृक्ष अप्रकट रूप से इन इमारतो पर फैलता जा रहा है। ऐसा जान पडता है कि आगामी कुछ वर्षों मे वह इन दोनो को दबा लेने मे समर्थ होगा।

इसके बाद मैं बावडी पर गया। उसको देखकर मैं सहज ही जेठवो के हृदय की उदारता का अनुमान लगा सका। यहाँ पर मेरे शोध का कार्य कुछ सफलता प्राप्त कर सका। इसलिये कि यहाँ पर एक शिला-लेख सम्वत् १२··· (सौ) का प्राप्त हुआ। उससे इसके जीर्णोद्धार की जानकारी होती है।

गूमली मे सबसे अधिक आकर्षक और पूर्णरूप में शोध के कार्य के योग्य राम-पोल अथवा राम का द्वार है। हमे आगे चलकर देखना है कि राम के सेनापति हनुमान से जेठवा लोग अपनी उत्पत्ति मानते हैं या नही। रामपोल पश्चिम की तरफ का दर-वाजा है। परन्तु इसके निर्माण और शिला कला का सही चित्रण सरल नही है। प्रत्येक दिशा मे तीन चौकोर खम्भो पर पत्थरो के द्वारा शीर्षपट लगाये गये हैं और दोनो तरफ प्राचीन प्रणाली की मेहराबे हैं। वहाँ पर दो नोकदार मेहराबे और भी हैं, जो पहली मेहराबो से बिल्कुल भिन्न और प्रतिकूल हैं। वे अधिक पुरानी नही हैं। जब यह बात निश्चित रूप से सही है कि गूमली कसबा लगभग आठ सौ वर्षों से उजाड पड़ा

हुआ है तो हमें इस सत्य को स्वीकार कर लेना पड़ता है कि इन मेहराबों के निर्माण में हिन्दुओं की अपनी प्रणाली है।

यहाँ पर लगभग सभी स्थानों पर असाधारण शिल्प कला दिखायी पड़ती है। कुछ भागों में बड़ौली और अन्य स्थानों की भाँति समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ मनुष्य को पशुओं में श्रेष्ठ सिंह से युद्ध करता हुआ चित्रित किया गया है। मनुष्य घोड़े पर सवार है और घोड़ा अपने पिछले दोनों टाँगो पर खड़ा है, ऐसी दशा में सवार अपने धनुष से तीर मार रहा है। इसके सिवा, कुछ पुरुषों और स्त्रियों की टोलियाँ भी हैं, जो किसी पौराणिक कथा का चित्र उपस्थित करती हैं। लेकिन इनसे आश्चर्यजनक बन के देवताओं की आकृतियाँ हैं, उनका ऊपर से कमर तक का भाग मनुष्य की तरह का है और नीचे का भाग बकरे की तरह का है।

रामपोल से चलकर मैं उन पालियो पर गया, जो जेठवों के साथ स्मारक थे। उन पर घास और काँटेदार थूवरो के पेड़ खड़े थे, अधिकांश पालिए तो टूट-टूटकर नष्ट हो गये है और उन पर जो लिखा गया था, वह सबका सब नष्ट हो गया है। बड़े परिश्रम के साथ खोज करने पर मुझे पाँच स्मारक मिल गये, जिनसे गूमली के नष्ट होने वालो कथाओ का सक्षिप्त में कुछ परिचय मिलता था। उनसे यह तो मालूम ही हो जाता है कि राजपूत लोग अहङ्कारी नही होते। और उनके स्वभाव मे यह बात कभी नही रही कि देश के लिए प्राण देने वालो को जीवन की समस्त महानताये प्रदान करे। उन्होने मृतक के परिचय मे केवल नाम और आत्मत्याग की तिथि लिखकर ही अपने कर्तव्य को पूरा किया, जैसे—

सम्वत् १११२ पोस मास की ७·········धालोत

सम्वत् १११२ कार्तिक मास की १३·········भरुग

सम्वत्······विकट, ऊमरा और वेण जी सेठी

हरिया बनिया चौहान, और सूसिर वा जेठवा। सम्वत् १११८ फागुन (बसन्त) सोमवार पूर्णिमा—महाराजा हरीसिंह जेठवा।

सम्वत् १११९ कार्तिक (दिसम्बर) की ६ बीर जेठवा।

इस प्रकार संक्षेप में तिथि के रूप मे जो सामग्री मिल सकी, उससे मालूम होता है कि यह सब सामग्री १०५६ ईसवी से १०६३ ईसवी तक की अथवा महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद तीस से चालीस वर्षों के बीच की है। अतएव हम विचार करेंगे कि गूमली के नाश और पतन के समय से इन तिथियो का कहाँ तक सम्बन्ध है।

जब हम भावल मे अपने मुकाम पर लौटकर आये तो इस प्रान्त के पोलीटिकल एजेन्ट मेजर बार्नवेल को देखकर बड़ी खुशी हुई। वे (डाक्टर मेकाडम के साथ) जाम

की राजधानी से चलकर मुझसे मिलने आये थे। मैं उनकी सज्जनता का इसलिए कृतज्ञ हूँ कि उनकी सहायता और उदारता से मैं गूमली के जेठवा राजाओ का वर्णन लिख सका। यह जरूर है कि सौराष्ट्र के एक ऐतिहासिक जानकार से मैंने इस प्रकार के विवरण प्राप्त कर लिये थे। परन्तु मेजर बार्नवेल ने अपना एक प्रतिनिधि समुद्र के किनारे पोरबन्दर भेजा था। वहाँ पर जेठवा के वर्तमान नरेश रहते हैं। वह उनके भाट और राजाओ की ऐतिहासिक सामग्री के साथ लौटाया था।

जेठवा-वश इस प्रायद्वीप के बहुत पुराने राजपूत वंशो मे से है। ऐसा आभास होता है कि जब महमूद गजनी के आक्रमण हुए थे, उस समय इनकी शक्तियाँ पश्चिम की तरफ लगी हुई थी। वह क्षेत्र भादर और कच्छ की खाडी से घिरा हुआ था और हालार, बडीरा तथा झालावाड का पश्चिमी भाग भी इसी मे शामिल था।

यह बात जरूर है कि ये लोग उन दिनो मे अपनी पूरी स्वतन्त्रता का दावा करते थे। परन्तु अनहिलवाडा के इतिहास से यह साफ जाहिर होता है कि वे बल्हरो के सामन्तो मे से थे। गूमली का नाश हो जाने के बाद जेठवा वश की शक्तियाँ लगातार क्षीण होती गयी और उनके पडोसी जाम के आक्रमण करने के कारण उनका अधिकार बरडा की पहाडियो के दक्षिण तरफ एक छोटे-से क्षेत्र तक ही सीमित हो गया। उस क्षेत्र की वार्षिक आमदनी एक लाख से अधिक नही थी।

राज्य की कमजोरी के बाद भी पोरबन्दर के पूंछडिया राणा अथवा लम्बी पूँछ वाले राणा छोटे-छोटे अधिकारियो मे उत्पात मचाये रहते थे, और अपने पूर्वजो के गौरव पर गर्व करते हुए अपने जमीदार गायकवाड को नफरत की निगाह से देखते थे।

जब मैं वही-वश की उलझनो मे पडा हुआ था तो मुझको सेन्ट पॉल (१) के द्वारा तिमॉथी (२) को दिये हुए इस शिक्षा में बडा अन्तर जान पडा कि दन्त कथाओ

---

(१) सेन्ट पॉल—एक प्रसिद्ध सन्त और धार्मिक उपदेशक थे। ये पहले ईसा के विरुद्ध थे और ईसा के मानने वालो पर अधिक दोषारोपण करते थे। लेकिन एक बार जब पॉल दमिश्क जा रहे थे तो रास्ते मे ईसा के साथ उनकी भेंट हो गयी और उसी समय वे ईसा के शागिर्द हो गये। ईसाई धर्म के इतिहास मे सेन्ट पॉल का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। रोमन साम्राज्य मे उन्ही की कोशिशो से ईसाई मत का विस्तार हुआ और उनके आध्यात्मिक विचारो का आज भी ससार के समस्त सभ्य देशो मे आदर होता है।

(२) तिमॉथी सेन्ट पाल के साथी और एक सन्त थे। वे उनके साथ योरप गये और मैसीडान मे गिरजा घरो की स्थापना मे उनकी बडी मदद की।

अर्थात् बिना आधार के बनायी जाने वाली घटनाओं और उन वंशागत प्रशंसाओ पर जिनका कही अन्त नही होता, विश्वास नही करना चाहिये ।

मेरे दो दिनो के परिश्रम का फल यह मिला कि मैं भी थोड़ा-बहुत उन लोगो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे उतना जानकार हो गया, जितना कि वे स्वयं अपने सम्बन्ध में जानते थे । पुरानी परम्परा के अनुसार, कुछ नाम, उनसे सम्बन्धित कुछ घटनाये और उनकी तारीखे—इसके अतिरिक्त उनके पास और कुछ नही था । मैंने एक सौ पैंतालीस राजाओ की वंशावली, गुजावली और उनके कामो के विवरण के साथ-साथ, गूमली की स्थापना से लेकर उसके विनाश के समय तक का इतिहास एवम् उसके संक्षिप्त प्रवर्णन अपने अधिकार मे कर सका । मैने और भी सामग्री प्राप्त की जैसे अन्तर्जातीय विवाहो की प्रथा, उनकी स्त्रियो के जीवन की प्रमुख घटनायें, जातीय प्रथायें और प्राचीन परम्पराये आदि । मैंने उन तथ्यो को खोजने और प्राप्त करने की चेष्टा की, जिनका ताल-मेल वेल्स जैसी जातियों के साथ हो सकता हो । (१)

मैं यहाँ पर एक ही ऐसा उदाहरण देना चाहता हूँ, जिससे पता चलता है कि प्राचीन लोगों के सम्बन्ध में सत्य को कितना तोर-मरोड़कर लोगो ने लिखा है, उस प्रकार के उदाहरणो की कमी योरप के भाटों और कवियों में नही है, मैं इस सत्य को भी मानता हूँ । सत्य कुछ और होता है और कवियो तथा भाटो के द्वारा उस सत्य को छिपाना तथा उसे रोचक बनाना कुछ और होता है । दोनो एक दूसरे के साथ नही खपते । इतिहास सत्य चाहता है, वह छिपाना, रोचक बनाना अथवा इस प्रकार की कोई चीज उसके साथ नही खपती । जब इतिहास नही लिखे जाते थे और घटनाओ को कविताओं मे बद्ध किया जाता था, उन दिनो मे इस प्रकार की प्रथायें सर्वत्र थी, कही कम और कही अधिक ।

जातियो की उत्पत्ति के विषय में जो मनगढ़न्त कथाओ के लिखने की पुरानी परिपाटी थी, उन पर मैंने पहले भी और अन्यत्र प्रकाश डाला है । मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि उन दिनो में किसी की बर्बरता को छिपाने के लिये ऐसा किया गया था । और सत्य को छिपाकर अन्धकार पैदा किया गया था ।

पूंछेडिया के सम्बन्ध मे लोगो का कहना है कि उनके सरदारो का पूर्वज लाल सागर के सकोत्रा नामक स्थान से आया था । वह स्थान ग्रीक, अरब, मिस्री और हिन्दू व्यापारियो के द्वारा बसा हुआ था । ऐसा इन लोगो का कहना है । उसको हिन्दुओं के ग्रथो मे शङ्खोद्धार अथवा शङ्ख का द्वार लिखकर शास्त्रीय नाम दिया गया है । यह

---

(१) ये जातियाँ कहलाती है, ये लोग बडे प्रबल होते हैं, शक्तिशाली रोमन लोगों के दाँत इन्होंने खट्टे कर दिये थे । इनकी उत्पत्ति का अब तक ठीक-ठीक पता नही है ।

व्यक्ति राम का सेनापति बानरो का देवता हनुमान था। वह राम की पत्नी सीता को फिर से प्राप्त करने के लिये अपनी सेना लंका पर ले गया था।

जेठवा लोगो की माता का पिता मकर, मनु के अनुसार, एक समुद्र का जानवर था और उस हिसाब से वह कदाचित् घड़ियाल था। जब राम लका को जीतकर लौटे, उस समय मकरध्वज अर्थात् मकरो के ध्वज को उसकी माता ने सौराष्ट्र के पश्चिमी किनारे पर मनुष्य जाति के राजाओ का वंश चलाने के लिये उत्पन्न किया। लेकिन गिबन के अनुसार, शिशु मे माता और पिता मे एक ही के लक्षण प्राप्त होते हैं। दोनो के नही। प्रकृति के इस नियम के अनुसार, उस बालक मे माता की तरफ से कोई प्रभाव नही आया और बालक पिता को पडा। घडियाल की हड्डी उठी हुई होती है, इसलिये उसका असर उसमे आया। उसकी रीढ की हड्डी उठी हुई हो गयी। जैसा कि लार्ड मोनबोडो और डाक्टर प्लाट ने वर्णन किया है कि जातियो की शारीरिक बनावट मे बहुत सी पीढियाँ बीत जाने के बाद अन्तर आ जाता है। ऐसी हालत मे राजवशो का वर्णन करने वाले भाट लोगो के लिये यह समझ सकना बहुत कठिन था कि इस प्रकार का अन्तर कैसे आ जाता है। फिर भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि चार पीढी पूर्व तक उस वश के लोगो मे हड्डी बढी हुई थी।

अब हमको असम्भव तथा असगत बातो को छोडकर और चारण को सहायता लेकर उन बातो के वर्णन मे आ जाना चाहिये, जो साधारण तौर पर बुद्धि सगत मालूम होती है। सकोत्रा से आयी हुई मकरो की इस जाति की प्रथम राजधानी उस स्थान पर स्थापित हुई, जहाँ पर मकरध्वज जमीन पर उतरा था, उसका नाम श्रीनगर रखा गया। और वहाँ के राजा इन्द्रजीत के समय तक अपने नाम के साथ, उसके अन्त मे ध्वज का प्रयोग करते रहे। उसके बेटे शील ने अपनी जाति और राजधानी दोनो के नामो को बदल दिया। उसने गूमली बसायी और मकर के स्थान पर कमर उसके पश्चात् कुमार शब्द का प्रयोग किया। धीरे-धीरे वह शील कुँवर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शील कुँवर गगा की यात्रा करने के लिये निकला। दिल्ली जाकर उसने वहाँ के राजा अनगपाल की पुत्री के साथ विवाह कर लिया। अगर हम जेठवा लोगो की प्राचीन कथाओ पर विश्वास करे, क्योकि उन कथाओ मे वशो का क्रम मिलता है तो हमको गूमली की स्थापना के समय का पता चल जाता है। यह सभी को मालूम है है कि राजा अनगपाल ने दिल्ली के गौरव की वृद्धि की थी और उसका समय विक्रमी सम्वत् ७४९ एवम् सम्वत् ६९३ ईसवी माना गया है। प्राचीन कथाओ के इस सत्य पर हमको विश्वास करना चाहिये। गूमली के सम्पूर्ण जीवन पर नजर डालने से जो तथ्य मिलते हैं, वे इसका स्पष्ट समर्थन करते हैं।

समय-समय पर मध्य एशिया से बहुत-सी जातियाँ आकर इस प्रदेश में आबाद हो गयी है और उनके सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा गया है। इसलिये सकोत्रा की उत्पत्ति विवाद मे न पड़कर हम इतना ही कहना अधिक उचित समझेगे कि कुँवर जाति सदा से एशिया में उल्लेखनीय रही है। अतएव यह पूर्ण रूप से सत्य है कि बानर शब्द बर्बर का अपभ्रंश है और बानर देवता के सम्मान के लिये यह बहुत आवश्यक था कि उस जाति को बर्बर न कहकर बानर कहा जावे। बर्बर और बर्बरता—दोनों शब्द बहुत अधिक बदनाम हो चुके हैं। इसलिये बानर शब्द उससे एक पृथकाव प्रकट करता है। हुआ यह कि बानर जाति, एक नयी जाति उत्पन्न हो गयी।

जेठवा लोगो के वैवाहिक सम्बन्ध बहुत पीढ़ी पहले से जूनागढ के यादवो, ढांक अथवा पट्टण के बल्हों, मूँगीपट्टण के गोहिलो, उमरकोट के सोढो और चावलो के साथ होते रहे हैं। इन लोगों में स्थान के सम्बन्ध मे हमेशा से झगडे होते आये हैं। चावड़ा लोगो से मालूम हुआ है कि उनका और जेठवा लोगो का आदि स्थान एक ही था। वे लोग लाल सागर के सकोत्रा द्वीप से आये और पहले-पहल ओखा मण्डल में बस गये। उसके बाद वहाँ से प्राचीपट्टम और दूसरे स्थानो को चले गये।

शील के पश्चात् चौथे राजा फूलकुँवर ने सूर्य के मन्दिर का निर्माण कराया था। वह मन्दिर अब तक श्रीनगर में मौजूद है। उसके उत्तराधिकारी भीम ने गूमली में फैली हुई बरड़ा की पहाड़ियो के ऊपर किला तैयार कराया था, उसका नाम, उसी के नाम पर भीम कोट रखा गया था।

मेरी यात्रा के साथी मिस्टर विलियम्स ने, ऊपर चढकर गये थे, बताया कि यह किला बहुत लम्बा-चौड़ा है और पत्थरो को गढकर तैयार किया गया है। बिना सीमेण्ट के वे पत्थर जोडे गये हैं। जब उन पत्थरो को ध्यान पूर्वक देखा जाता है तो पता चलता है कि वे लोहे अथवा इस्पात की मदद से जोडे गये हैं। लेकिन प्रशसा की बात तो यह है कि पत्थरों के जोड़ मे कही पर भी एक टाँके का पता नही चलता।

दुख की बात तो यह है कि जेठवा लोगो का यह प्रसिद्ध किला अब जगली जानवरो के रहने के लिये हो गया है। मेरे मित्र ने किले के ऊपर जाकर उसके एक जङ्गली शूकर को उत्तेजित भी किया था। वह किले के भीतर माँद मे पड़ा हुआ सो रहा था।

यहाँ के प्राचीन इतिहास में लिखा है कि आठवे राजा ने कर्ण बाघेला को पराजित किया था। लेकिन अनहिलवाडा के इतिहास से उसको गलत मानने के लिये विवश होना पडता है। उससे प्रकट होता है कि सोलंकी वंश के इस प्रसिद्ध राजा को पराजित करना तो दूर रहा, बल्कि उसके शासन के समय मे ही गूमली का पतन आरम्भ हो गया था।

दसवें राजा भाणजी के द्वारा कच्छ पर होने वाले आक्रमण का विवरण दिया गया है और लिखा गया है कि उसने वहाँ की राजधानी कन्थकोट और सिन्ध के मशहूर नगर वमनवाडा पर अधिकार कर लिया था। (१)

चौदहवें राजाराम के सम्बन्ध मे बताया जाता है कि वह जूनागढ के राव चूडचन्द यदु का समकालीन था। उसका नाम गिरिनार के लेख मे भी पाया जाता है।

राम के उत्तराधिकारी महीप अथवा महपा ने तुलाई के काठी राजा की लडकी के साथ विवाह किया था। इस वर्णन से जाहिर होता है कि जेठवा लोगो की उत्पत्ति वर्वर जाति से है।

गूमली के बाईसवे राजा खेमा तक कोई उल्लेखनीय घटना का वर्णन नही मिलता। खेमा के नाम का उल्लेख इसलिये आता है कि उसका मन्त्री जैतो का नाम इसलिये प्रसिद्ध है कि उसने गूमली का मशहूर तालाब बनवाया था। वह छीगा जाति का था।

पच्चीसवे राजा आदित्य का लडका हरपाल हुआ। उसने एक अहीर की लडकी के साथ विवाह किया था। देदान के बावरिया उसी की सन्तान हैं। उनके अधिकार मे ऊना और देलवाडा के बारह गाँव हैं।

उसके बाद इसके दूसरे उत्तराधिकारियो ने भी मेर लोगो के साथ अन्तर्जातीय विवाह किये थे। इस प्रकार जो एक मिश्रित जाति तैयार हुई, उसके लोगो ने अपने जो नाम करण किये, उनके साथ मातृपक्ष का सम्पर्क रहता है। इन लोगों की सख्या दो हजार से कम नही हैं। ये लोग युद्ध के हथियार धारण करते हैं और जेठवा राजा के सरक्षण में जीवन निर्वाह करते हैं।

पच्चीसवे राजा ज्येष्ठा का यह नाम जैत नक्षत्र मे पैदा होने के कारण पडा। इसका अर्थ जेठ अथवा जेठा होता है। साधारण तौर पर यह जाति जेठवा के नाम से पुकारी गयी। इस जाति के राजा चम्पसेन ने सिन्ध से निकाले हुए सुमेरा-वंश के हमीर को शरण दी थी। यह वही राजा है, जिसके शासन काल मे कगार नदी सूख गयी थी और कवियो के अनुसार वह अब तक सूखी पडी है। यद्यपि इस कथा का कोई महत्व नही है। इसलिये कि अनहिलवाडा के इतिहास मे इस प्रकार का कोई विवरण नही है।

इसी राजा के राज्य का वर्णन करते हुये जेठवा की वंशावली मे कनक सेन चौहान के दरबार में विवाह के सम्बन्ध का एक विवरण दिया गया था। लडकी के साथ विवाह करने के लिये मेवाड़ का हमीर और अनहिलवाड़ा का चावडा राजा भी था। लेकिन लिखा गया है कि पूँछेड़िया जेठवा उसमें सफल हुआ।

---

(१) शिवदादपुर अथवा शिवदासपुर आज तक कोट वह्यन के नाम से मशहूर है।

गूमली का राजा भाँड़ जी ने अनहिलवाड़ा के युवराज को लड़ने मे कैद कर लिया था और इसके बाद उसने बलराय से राणा की उपाधि धारण की थी। भाँड़ जी के नाम के साथ ही हम जेठवा लोगो की ठोस वशावली मे पहुँचते हैं। उसके शासन काल में सुल्तान गोरी का फौजी स्टेशन माँगरोल में था। वह गूमली और श्रीनगर देखने आया था। उस मौके पर वह जेठवा रानो का धर्म-बन्धु बन गया था।

भाँड जी का उत्तराधिकारी श्योजी के नाम का हुआ। उसके पुत्र का नाम सलामन (१) था।

एक पड़ोसी राज्य के चौहान राजा की लड़की में कविता की अनोखी प्रतिभा थी। वह जो कवितायें लिखा करती थी, उसकी प्रशसा दूर-दूर तक थी। उस लड़की ने अपनी प्रतिभा का विकास की स्वयं चेष्टा की। वह अपनी कविता के अंशो को राजपूत जाति के राजकुमारो के पास पूर्ति के लिये भेजा करती थी। इसी के सम्बन्ध की एक घटना गूमली मे भी हुई। उस लडकी की एक अधूरी कविता वहाँ पर पहुँची।

कहा जाता है कि चौहानो के एक भाट ने चौहान राजा की लड़की की एक कविता गूमली के दरबार में सालामन राजकुमार के हाथ में दी। राजकुमार ने उस अधूरी कविता की पूर्ति कर दी। इसका निश्चित पुरस्कार भी उसको मिल गया। अर्थात् चौहान राजकुमारी के साथ उसका विवाह हो गया।

राजकुमार की इस सफलता से उसके पिता जेठवा को प्रसन्नता न हुई। बल्कि वह ईर्षा करने लगा और कुछ ही समय के बाद राजा ने अपने बेटे सालामन को अपने राज्य से चले जाने का आदेश दे दिया।

सालामन अपनी पत्नी को लेकर सिन्ध चला गया और वहाँ के राजा ने उसके जीवन-निर्वाह के लिये दोवा और धरज की भूमि दे दी। सालामन वहाँ पर रहकर इस प्रकार अपनी गुजर करने लगा। उसके कई एक लडके पैदा हुए। सालामन ने अपने परिवार के साथ इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। प्रचलित कथाओं में बताया गया है कि सालामन के लड़को ने सेना लेकर गूमली पर आक्रमण कर लिया और उसका सब प्रकार विनाश किया।

हिन्दू भाटो की वंशावलियाँ ऐतिहासिक होने के स्थान पर रोचक और शिक्षात्मक अधिक होती हैं। यह स्वाभाविक है कि राज्य के विनाश का कोई न कोई कारण होता है। लेकिन ये भाट उस कारण को छिपाने और बदलने का कार्य करते हैं। एक ठठेरे की लडकी का अपहरण करने के कारण गूमली के राज्य को सिंहासन से

(१) भारत के पश्चिम में स का उच्चारण ह होता है। ऐसी दशा मे सालामन प्रसिद्ध हालामण राजकुमार था, जो कथाओ में आता है।

उतारा गया था और वे जिस पश्चिमी प्रायद्वीप के मालिक थे, वहाँ पर भी उनके अधिकार मे कुछ न रहा।

ठठेरे की वह लडकी अधिक सुन्दरी थी। लेकिन उसके विचार धार्मिक थे, उसको देखने के बाद राजा का विचार गन्दा हो उठा। उसने उस लडकी से प्रस्ताव किया। लेकिन उस लडकी ने साहस पूर्वज राजा के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जब उस लडकी ने समझा कि राजा से मेरी किसी प्रकार रक्षा नही हो सकती तो उसने एक चिता बनायी और उसमे बैठकर उसने अपने हाथ से आग लगाने की चेष्टा की। लेकिन काम से पीडित राजा के ऊपर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। उस मरणासन्न युवती को प्राप्त करने की राजा ने पूरी चेष्टा की और उसने उसको चिता से जाकर घसीटा। यह सब लीला मन्दिर के द्वार पर हो रही थी, पुजारी ने राजा से प्रार्थना की कि वह ऐसा पाप न करे। लेकिन राजा पर पुजारी का भी कोई प्रभाव न पड़ा।

इस अपराध और पाप को देखकर पुजारी ने राजा को और उसके वश को चिल्ला-चिल्लाकर श्राप देना आरम्भ किया। राजा ने इसकी भी परवा न की। यह देखकर मन्दिर के पुजारी ने सब के देखते-देखते अपने आपको बलिदान कर दिया। उसकी इस आत्म-हत्या का जो प्रभाव पडा, वह किसी से छिपा नही है।

कहा जाता है कि उस राजा के इस प्रकार के पापो के थोडे ही दिनो के भीतर सिंध से चलकर एक सेना आयी और उसने गूमली को आकर घेर लिया। छै मास तक आक्रमणकारी गूमली को घेरे पडे रहे।

वहाँ के सभी लोगो के परिवार और बाल बच्चे भीमकोट नामक स्थान मे चले गये और उनकी रक्षा का भार भैरो को सौंप दिया गया। राजा और उसके सामन्त शहर के एक भाग की रक्षा करने मे लग गये। गूमली के लोग जब मौका पाते तो किले मे जाकर अपने बाल-बच्चो को देख आते।

यह परिस्थिति कुछ समय के बाद और भी भयानक हो उठी। आक्रमणकारी सेना के लोगो ने गूमली मे प्रवेश किया और बाँसो की सीढ़ियाँ लगाकर वे किले मे पहुँच गये। सिन्ध के सैनिको ने किले मे छिपे हुए गूमली के परिवारो का भयानक रूप से कत्ले-आम किया। वहाँ पर राजवंश के लोग भी थे। सभी मारे गये और जो लोग वहाँ पर मौजूद थे, तलवारो से उनके टुकडे-टुकडे कर डाले गये।

वंशावली में जो इन लोगो के नाम बताये गये हैं, उनमे से अधिकांश तो प्राचीन डाबी जाति के पाये जाते हैं। वंशावली और भाट की मौखिक बातो के अनुसार इस घटना की तिथि सम्वत् ११०६ सन् १०५३ ईसवी है। यह समय बने हुए स्मारको मे जो सन् और सम्वत् दिया गया है, उससे तीन वर्ष पहले का है।

असुरों (राजपूतों के भाँटो ने इस शब्द का प्रयोग मुसलमानो के लिए किया है।)

के लिये साफ-साफ लिखा है कि उनके लम्बी-लम्बी दाढियाँ थी। वे लोग मन्दिर मे गये और कुरान पढकर वापस लौट आये।

मैंने कई बार चित्तौड, गूमली जैसे नगरो का उल्लेख किया है और वहाँ के स्मारको के सम्बन्ध मे भी विवरण दिये हैं। इनमें सतियो के स्मारक अधिक रोमाञ्चकारी हैं। उनके कथानक सुनकर यहूदी पैगम्बर के द्वारा मिस्र, ईडम (१) और टायर को दिये गये शापो की याद आ जाती है। गूमली के विनाश का कारण था। उसके राजा ने जो अधर्म किया, उसका परिणाम गूमली को ही भोगना पडा। उसे नष्ट हो जाना पडा। राजा ने एक धर्म-परायणा युवती को नष्ट करने की चेष्टा की थी, उस युवती की रक्षा के लिए मन्दिर के पुजारी ने मन्दिर की वेदी पर अपनी आत्महत्या कर ली। इसका परिणाम न केवल राजा को, बल्कि राज्य के उन सभी लोगो को भोगना पडा, जिन्होंने राजा के इस अन्याय और अधर्म को बरदाश्त कर लिया था। ऐसे सभी लोगो का किले के भीतर कत्ले-आम हुआ!

धर्म परायणा युवती और धर्म-प्राण पुजारी के शाप का एक-एक अक्षर गूमली के प्रत्येक पत्थर पर उच्चरित हो रहा है। यह उजडा हुआ भविष्य मे सदा-सर्वदा उम अनाचार की कहानी लोगों को सुनाता रहेगा, जिसके परिणाम-स्वरूप इस फलते फूलते दृश्य को देखना पड़ा।

इसी प्रकार की एक घटना भांवल में भी हुई बतायी जाती है। गूमली की सामग्री से वहाँ के कुछ लोगों ने भांवल में कुछ मकान बनवाये थे। वे एक साथ गिर गये और जो लोग उन मकानों को बनवा रहे थे, वे सबके सब अपने परिवारो के साथ दबकर मर गये।

हमें जेठवाँ के इतिहास की दो घटनाये ऐसी मिलती हैं, जो किसी प्रकार निराधार नही हैं। पहली घटना सम्वत् ७४६ मे गूमली की स्थापना की है और दूसरी सम्वत् ११०६ मे इसके विनाश की पापपूर्ण दुर्घटना है।

प्रथम घटना का सम्बन्ध शील कुँवर के साथ है। वह दिल्ली के अनगपाल का समकालीन था। गूमली के इस भयानक विनाश का समर्थन वहाँ के स्मारको के पत्थरो से होता है। बंशावली को स्वीकार करते हुए कुछ वर्षों का अन्तर—सम्वत् १११६ का समय भी माना जा सकता है। इस समय के मध्यकालीन दिनों में तीन सौ साठ वर्षों के भीतर हम बीस राजाओ को सिंहासन पर बैठते हुए देखते हैं। यहां का चारण भी इतने ही राजाओ की संख्या को स्वीकार किया है। गूमली के विनाश की दुर्घटना

---

(१) पैलेस्टाइन का एक दक्षिणी नगर, जो मृत समुद्र और आकाबा की खाडी के बीच के पहाडों के पास है। यहाँ के निवाशी ईसाऊ के सम्बन्धी बताये जाते हैं। यहूदी पादरियों ने इस नगर को अभिशाप दिया था।

आज से सात सौ वर्ष पहले हुई थी। यह समय स्मारको के अनुसार भी सही साबित होता है।

इस बीच में एक ऐसा समय आता है, उस पर ध्यान जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। वह है गूमली के विनाश से दस पीढी पहले का समय। वशावली से जाहिर होता है कि सिंह जी ने चित्तौर की राजकुमारी के साथ विवाह किया था। यदि प्रत्येक राजा का शासन काल औसतन तेईस वर्ष मान लिया जाय तो इस हिसाब से सिंह जी का समय ८२३ ईसवी आता है। यह समय उस घटना के बहुत करीब पड जाती है, जिसका उल्लेख मेवाड के इतिहास मे हुआ है। पहला इस्लामी आक्रमण उस समय हुआ था, जब वहाँ के समस्त राजपूत चित्तौर की रक्षा के लिये एकत्रित हुये थे। उन चौरासी राजाओ मे—जिनके लिए किले के भीतर स्थान बनाये गये थे—मेवाड के भाट ने जेठवा राजा का विवरण साफ-साफ दिया है।

जेठवा लोगो के इतिहास में उन परिस्थितियो का भी वर्णन किया गया है, जिनके कारण यह विवाह पूरा हुआ था। हिन्दुओ के मत के अनुसार, प्रत्येक राजा चित्तौर के महाराणा के सम्मान की रक्षा करने के लिए वहाँ पर पहुँचा था। यह घटना यद्यपि अधिक गम्भीर नही है। परन्तु इसका महत्व इसलिए अधिक हो जाता है कि इसके द्वारा जेठवा लोगो की उत्पत्ति उन दिनो में नही साबित होती।

चित्तौर का कोई एक गायक घूमता-फिरता हुआ, अचानक, बिना किसी उद्देश्य के जेठवा राजा के दरबार में पहुँचा था। उस राजा ने उस गायक को बहुत कुछ इनाम मे देकर खुश किया था और उस गायक को विवाह के प्रस्ताव का माध्यम बनाया।

उस प्रस्ताव के उत्तर मे चित्तौर के रावल ने घृणा पूर्ण शब्दो में कहला भेजा मैं उसके साथ अपनी लडकी का व्याह नही कर सकता, जिसका बाप बानर हो और माता मछली हो।

विवाह के प्रस्ताव का इस प्रकार तिरस्कारपूर्ण उत्तर सुनकर जेठवा राजा को बडी ठेस पहुँची। इसके बाद कहा जाता है कि उसके भाट ने बरडा पहाडी पर बने हुए हर्षद माता के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और उस मन्दिर में वह तपस्या करने लगा। उसने इतनी कठोर तपस्या की कि इस मन्दिर की कुल देवी ने सामने आकर जेठवा लोगो की प्राचीन वशावली को बताया। यह मालूम करके वह चित्तौर गया और वहाँ के राजा से मिलकर उसने इस कथा का सम्पूर्ण विवरण बताया। राजा उसे सुनकर प्रसन्न हुआ और उस भाट की यात्रा सफल हो गयी।

इस प्रकार की घटनाओ को सुनकर हम पूँछेड़िया रावो के एक सौ पैंतालीस राजाओ को नही मान सकते। इसके विषय में हमें जो तिथियो के क्रम मिलते, उनके सामने इस प्रकार की कथाये और घटनाये कुछ भी महत्व नही रखती। यह बात जरूर है कि बिना किसी आधार के इस प्रकार जो ये कथाये गढी गयी हैं, उनसे ऐतिहासिक

घटनाओं के कुछ अंश निकाले जा सकते हैं। भारत मे मुसलमानो के आने के कुछ ही शताब्दी पहले का वह समय था, जब इस देश की राजनीतिक शक्तियाँ क्षीण हो रही थीं, बाहर से लगातार जातियाँ आ-आकर यहाँ पर आक्रमण करती थी और वे बाद मे यहाँ के राजपूतो मे खप जाने का प्रयास करती थी।

हिन्दुओं के राजवंशों के सम्बन्ध मे मिलने वाले सम्वतो के क्रम का जिसने अध्ययन किया है, उसे मालूम होगा कि वल्लभी के शिला-लेखो में चार विभिन्न सम्वतों का उल्लेख मिलता है, जिनमें से एक, जो अन्तिम है, सीहोह अथवा सिंह के नाम से जाहिर है। इससे वल्लभी सम्वत् ६४५ विक्रम सम्वत् १३२० सीहोह सम्वत् १५१ होता है। उसको अगर १३२० में से घटा दिया जाय तो सम्वत् ११६९ अथवा १११३ ईसवी बाकी रहता है। उस समय यह सम्वत् आरम्भ हुआ होगा। उन दिनो मे सिद्ध-राज अनहिलवाड़ा का शक्तिशाली राजा था और इन क्षेत्रो में उसका सम्पूर्ण अधिकार था। क्या यह सम्भव हो सकता है कि वल्हरो के इस शक्तिशाली राजा ने अपने विशाल साम्राज्य के एक छोटे-से टुकड़े मे इस नये सम्वत् को चालू करने की इजाजत दी हो? किसी भी अवस्था मे इसका सम्बन्ध गूमली के सीहोह अथवा सिंह के साथ हो सकता है। लेकिन गूमली का तो विनाश हो चुका था और वहाँ का अधर्मी राजा अपने कर्मों का फल भोग रहा था।

चारण ने सालामन के राज्य से निकाले जाने की दुखपूर्ण घटना का वर्णन किया है। सिन्ध मे सुम्मा वंश के जाम ऊनड़ ने उसको अपने यहाँ शरण दी थी। सालामन के पुत्र वमनिया अथवा वमनिआ ने एक सेना के साथ आक्रमण करके अपने पिता को सिंहासन पर बिठाने की चेष्टा की। लेकिन सालामन ने इसे स्वीकार नही किया। इसलिये कि जहाँ पर उसके पिता और राज्य के ब्राह्मणो का रक्त बहा था और जो राज्य एक सती के शाप से दूषित हो चुका था, वहाँ पर जाकर राज्य करना उसने किसी भी अर्थ मे अच्छा नही समझा।

सालामन ने सिन्ध मे अपने दो विवाह किये थे। एक धमरका के जाड़ेचा की लड़की के साथ और दूसरा उमरकोट के सुमरा के यहाँ। इस तरह से यह वंश मुसलमान हो गया और अब तक सिन्ध में दोवाधार जी की जमीन पर इन लोगो का अधिकार है!

सालामन की कवियित्री पत्नी—जो विवाह के पूर्व चौहान राजकुमारी थी—का पुत्र अपने प्रायद्वीप मे लौटकर आया था और रामपुर में वह रहने लगा था। वहाँ पर उसके वंश के लोग कई पीढ़ियो तक आबाद रहे। सम्वत् ११०९ में गूमली का विनाश हो गया था और सम्वत ११६९ में सीहोह सम्वत चालू हुआ था। ऐसी दशा में हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि सालामन के बेटे और सिंह के पौत्र ने सम्भव है राजधानी कायम करके गूमली के अन्तिम राजा के नाम से उसके नवीन सम्वत को सजीव बनाया हो।

इस घटना का अन्त इस प्रकार होता है। रामपुर में जेठवा बराबर बने रहे। लेकिन एक समय ऐसा आया, जब जाम ने उनको वहाँ से चले जाने के लिये मजबूर कर दिया। तब वे समुद्र के किनारे चले गये और वहाँ पर वे रहने लगे। अपने रहने के लिये उन्होंने जो भवन बनवाये, वे अब तक छाया के नाम से प्रसिद्ध है। उन लोगों ने कुछ समय के बाद सूदामापुर की तरफ अपनी राजधानी भी बना ली। लेकिन उन्होंने छाया नाम से जो भवन बनवाये थे, उनके महत्व को उन्होंने कभी कम नही होने दिया। उनके राजतिलक राजधानी मे नही, अब तक छाया भवनो में ही होते हैं। उन लोगो ने यह एक परम्परा कायम कर दी।

राजधानी कायम करने के पश्चात् उनकी ग्यारह पीढियाँ व्यतीत हो चुकी हैं। आज-कल जो उनके राणा हैं, वे खेमजी के नाम से प्रसिद्ध हैं और वे जाम के भाञ्जे हैं। उनकी दो पत्नियाँ हैं। एक तो ढाक के बल्हो की लडकी है और दूसरी रामपुर के झालो की।

आज की परिस्थितियाँ दूसरी हैं। उनका पहले का सामाजिक ढाँचा समाप्त हो गया है। काठी, कुणाली, मेर, वल्ह, झाला और जाम लोगो के साथ अब उनके रक्त का सम्मिश्रण हो चुका है और सौराष्ट्र की वशावली मे उनकी गणना छत्तीस राजवंशो में होने लगी है। हमें इसके स्पष्ट करने मे कुछ भी सकोच नही है कि उनके सामाजिक परिवर्तन में परिस्थितियो ने बहुत बडा काम किया है, और अब वे हिन्दू हैं।

जेठवा लोगो के यहाँ अब भी जब कोई सामाजिक उत्सव होता है तो उनके यहाँ कपि-ध्वज अर्थात् हनुमान की आकृति वाला झण्डा प्रयोग मे लाया जाता है, जब कभी जेठवा ससुराल जाता है तो ससुराल के लोगो मे उसकी बन्दरी पूंछ का मनोरंजन होता है। ससुराल की स्त्रियाँ इस पूंछ के नाम पर सभी प्रकार का विनोद करती हैं।

हर्षद माता अब भी उन लोगो की कुल देवी है। बरडा के पहाड़ों पर उसके मन्दिर में सर्वसाधारण के प्रवेश की मनाही है। इसलिए मीझाली मे एक दूसरा मन्दिर बन गया है। यहाँ पर हर्षद के उत्सव मे बालनाथ महादेव भाग लेते हैं।

(नगडी), २४ दिसम्बर—सात कोस का फासिला। जनहीन जङ्गलो में होकर हमे यात्रा करनी पडी। आरम्भ मे तीन-चार झोपडियाँ मिली। उनमे अहीर लोग रहते थे। बबूलों और जगली पेडो की जमीन में वे लोग खेती करते थे। उनके खेतो के चारो तरफ थूअरों के पेड इतने अधिक हैं कि उनमे खेत पूर्णरूप से सुरक्षित हैं।

यहाँ पर (राजरियो) नामक एक गाँव मिला। उसमें कुछ सामग्री आकर्षण की मालूम हुई। महमूद के आक्रमण के समय यहाँ के चारण अथवा भाट ने अपनी आत्म-हत्या कर ली थी। किसी दूसरे तरीके से वह अपनी रक्षा नही कर सकता था। उसके इस बलिदान के कारण वह गाँव चारण के वश वालो के लिये तीर्थ स्थान बन गया।

देवला, २५ दिसम्बर—छै कोस का फासिला। लगभग आधे रास्ते पर हमने सानी नामक नदी को पार किया और उसके बाद ओकपात को भी पार किया। वह ओखामण्डल की पूर्वी सीमा के पास असिया-भादरा गाँव के बहुत निकट है। उत्तर मे होलर अथवा हालार है। यहाँ पर केवल अहीर लोग रहते हैं।

कहा जाता है कि इन अहीरो को स्वामीत्व का अधिकार नही है। यहाँ के अधिकारी राजपूत लोग हैं। वे राजपूत जो यहाँ पर अपना अधिकार रखते हैं, अधिक नही हैं और इधर-उधर बहुत थोड़ी सख्या मे रहते हैं।

मैंने यहाँ के अहीरो से उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे बातचीत की। वे अपने आपको यदुवंशी बतलाते हैं। उनका कहना है कि हम लोग जमुना नदी के किनारे सौरसेन गोकुल-भूमि को छोडकर अपने गोपाल कन्हैया के साथ यहाँ चले आये थे। किसी भी अवस्था मे इनका विश्वास पौराणिक कथाओ के आधार पर है। यह निश्चित है कि इनकी जाति भ्रमणशील है। अपने स्वाभाविक जीवन में ये लोग इस प्रायद्वीप के अन्य सभी लोगो से अच्छे हैं।

अहीर लोग शारीरिक शक्ति मे भी अधिक अच्छे माने जाते हैं। उनका शरीर खेती के कार्य के लिये अथवा पशुओ को पालने के लिये बहुत अनुकूल साबित होता है। ये लोग खेती करने के साथ-साथ पशुओ का पालन करते हैं और गाडियाँ भी चलाया करते हैं, उनमें प्रायः बैल जोते जाते हैं।

अहीरो के ये गाँव बहुत साधारण हैं। यहाँ के इन गाँवो मे तीस-चालीस घरो से अधिक कही नही मिले। इन अहीरो मे हमने एक विशेषता यह देखी है कि पारिवारिक सुख कि अपेक्षा ये लोग व्यक्तिगत सुख अधिक पसंद करते हैं। मीआनी हमारे बाईं ओर चार कोस के फासिले पर थी। वही से हमने कुछ अच्छी मछलियाँ मँगायी थी।

मुक्तासार, २६ दिसम्बर—आठ कोस का फासिला। यह फासिला अठारह मील का होता है। इस लम्बे रास्ते मे केवल दो छोटे गाँव मिले। वे एक-दूसरे से दस मील की दूरी पर थे। अर्थात् देवला से दो मील की दूरी पर सतीपुर—जिसमें अहीरों के पचीस से अधिक मकान नही थे और (वगात) मे लगभग पचास घरो की आबादी थी।

इस पहाड़ी क्षेत्र मे बहुत अधिक चरागाह हैं। उन्ही मे होकर हम दिन भर यात्रा करते रहे। इन चरागाहो मे हमने अच्छे से अच्छे पशु देखे, जो घास चर रहे थे। यहाँ की घासो मे दूब अधिक पैदा होती है।

यहाँ के लोग मुक्तासार को सुन्दर झील भी कहते हैं। यहाँ पर जङ्गली जल मुर्गियाँ अधिक पायी जाती हैं। इनके उदर में पीले रंग का वह पदार्थ पाया जाता है, जो उधर के मन्दिरो के सजाने में आता है।

द्वारका, २७ दिसम्बर—दस कोस का फासिला। आनन्द-झील से द्वार के देवता तक बीस मील का रास्ता बिल्कुल उजड है। यहाँ समुद्र के किनारे मादडी नामक एक गाँव मिलता है। उसका अस्तित्व अब नष्ट हो गया है। कहा जाता है कि वह किसी समय एक अच्छा गाँव था। लेकिन समुद्री डाकुओ ने लागातार आक्रमण करके उसे नष्ट कर डाला।

इस उजडे हुए गाँव के पश्चिम मे लगभग चार सौ गज के फासिले पर एक खारी नदी है। उसका निकास बालू की दीवार से वन्द हो गया है। अगर उसको हटा दिया जाय तो उसका आकार-प्रकार फिर पहले की तरह हो जाय। हमने समुद्र के किनारे-किनारे चलना आरम्भ किया। समुद्र की लहरे रह-रहकर कँकरीली चट्टानो के साथ टक्कर लेती थी। यहाँ की जमीन मे बालू से भरी हुई चट्टाने अधिक है, जहाँ पर थूवर के सिवा और कोई पेड नही पैदा होते।

लगभग छै मील के पहले से ही द्वारका के मन्दिर का शिखर दिखायी देने लगा। एक मील आगे की तरफ चलने पर हमको दूसरी खाडी मे प्रवेश करना पडा। उसमे घोडे का जीनतक पानी था। परकोटे से घिरे हुए नगर मे चलते हुए हमको मन्दिर का शिखर साफ-साफ दिखायी दे रहा था।

इस समय बैरोमीटर ३०° ४ पर थर्मामीटर प्रातः ६ बजे ६२° पर एवम् दोपहर मे ८५° और सूर्यास्त के समय ७६° था।

कृष्ण के मन्दिर मे सबसे अधिक ख्याति प्राप्त द्वारिका का मन्दिर है, समुद्र के किनारे से कुछ ऊँचाई पर बना हुआ है। वह मन्दिर ऊँची दीवारो से घिरा हुआ है। मन्दिर को भली-भांति देख सकने के लिए उसके भीतर जाना पडता है और उसका रास्ता बना हुआ है। मन्दिर की बनावट अच्छी है।

यह मन्दिर तीन हिस्सो मे बना हुआ है। उसका एक भाग मण्डप अथवा सभा-भवन है, दूसरा देवखण्ड अथवा निज मन्दिर है और उसका तीसरा भाग मन्दिर का शिखर है।

हम यहाँ पर मन्दिर के मण्डप की बात पहले कहना चाहते हैं। इसकी बनावट लगभग चौकोर है। पूरी इमारत पाँच खण्डो मे विभाजित है। प्रत्येक खण्ड मे बहुत-से स्तम्भ बने हैं। सबसे नीचे के खण्ड की ऊँचाई बीस फीट है। मन्दिर मे गुम्बज का आधार बहुत मजबूत रखा गया है, सबसे ऊँची चोटी धरातल से पछत्तर फीट ऊँची है, मन्दिर के चारो कोनो पर चार-चार मजबूत खम्भे बने हैं, और वही पूरी इमारत का बोझ अपने ऊपर लिये हैं, प्रत्येक खण्ड में एक रविश बनी हुई है और उसके सिरे पर तीन-तीन फीट ऊँची दीवार बनी है, जिससे कोई मनुष्य नीचे न गिर जाय। मन्दिर की बनावट के सम्बन्ध मे वहाँ पर भी लगभग वही सब बाते आयी हैं, जिनके वर्णन ऊपर अनेक मन्दिरो के सम्बन्ध मे किये जा चुके है।

यहाँ पर कृष्ण का पूजन रणछोड़ के रूप मे होता है, कृष्ण का यह वही रूप है और वही समय है, जब उनको मगध के बौद्ध राजा ने उनके पिता के देश सौरसेन से निकाल दिया था, यह मन्दिर विशाल होने पर भी यात्रियो से भरा रहता है, इसके दक्षिण-पश्चिम कोने मे कृष्ण के दूसरे रूप मधुराय का छोटा-सा मन्दिर है और दोनों के बीच में एक रास्ता है।

गोमती एक छोटी-सी नदी हैं, उसका निकास बहुत पवित्र माना जाता है, कहा जाता है कि इसको पार करने के समय आदमी का पैर गीला नही होता, बड़े मन्दिर से सङ्गम पर बने दुए सङ्गम नारायण के मन्दिर तक गोमती के किनारे-किनारे उन यात्रियो की समाधियाँ बनी हुई है, जिनकी यात्रा करते हुए मृत्यु हो गयी थी।

यहाँ पर पाँच पाण्डवो मे से चार भाइयो की समाधियाँ भी है, उनके सम्बन्ध मे विभिन्न प्रकार की कथायें लोगो के मुख से सुनने को मिलती हैं, लोगो का यह भी कहना है कि पाण्डवों का पाँचवाँ भाई हिमालय मे जाकर गल गया था, लोगो का यह भी कहना है कि उसके साथ वल्देव भी था, उसकी प्रतिमा कुछ सीढ़ियो के नीचे स्थापित है।

मेरे शिला-लेखो की खोज यहाँ पर वेकार हो गयी। इसलिये कि जो दो लेख मुझे यहाँ पर मिले भी, वे किसी प्रकार पढ़े नही जा सके। यहाँ की दीवारो मे विभिन्न स्थानो से आये हुए भक्तो और यात्रियो ने अपने-अपने नाम लिख दिये थे। लेकिन उनसे भी मुझे कोई ऐसी सामग्री नही मिल सकी कि जिसका मैं कुछ उपयोग कर सकता।

चोरो और एकता के देवता का भी यहाँ पर एक मन्दिर है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके पुजारी को अपने वश की बातो का भी कुछ अधिक ज्ञान नही है। द्वारिका माहात्म एक नीरस पुस्तक है, उसको पुजारो लोग शास्त्रीय ग्रन्थ कहते हैं। उसमे अशुद्ध और झूठी घटनाओ के सिवा कोई दूसरी चीज नही है। मेरा अनुभव है कि इसी प्रकार के कुछ और भी ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमे कोई भी काम की बात नही मिलती। लेकिन मन्दिरो के पण्डित और पुजारी उन सबको वेद और शास्त्र का अंग मानते हैं।

यहाँ के पण्डे लोग यात्रियो के हाथो मे देवता की छाप लगाने मे वडे पटु हैं। ऐसा करके ये पण्डे यात्रियो के हाथो को सदा के लिए खराब कर देते हैं। यहाँ की बहुत सी बाते अजीब और बुद्धि से बाहर हैं। सिर के बालो को मुडवा कर जल के देवता वरुण को समर्पण किया जाता है और नकदी भेट पण्डा को दी जाती है।

मन्दिर के पण्डे और पुजारी पढे-लिखे नही होते। अपने इन कार्यों के लिए उनको पैतृक अधिकार मिलता है। हमे यह भी पता नही कि इनके पिता और पूर्वज भी कुछ पढे-लिखे थे या नही। आश्चर्य यह है कि इन पुजारियो और पण्डो से यात्रियों को

भगवान की जो कथाये सुनने को मिलती हैं, वे अन्यत्र कही नही मिल सकती और यात्री लोग विश्वास का चश्मा लगाकर उन सबको सत्य और सही मान लेते हैं।

यहाँ के लोगो का कहना है कि ओखा मण्डल के राजा वज्र नाम का बनवाया हुआ यहाँ पर एक मन्दिर है। वज्र नाम कृष्ण का पोता था। उसका वश महाभारत के बाद सिन्ध के पश्चिम में इधर-उधर लगभग एक शताब्दी तक चलता रहा। वज्र नाम स्वयम् बदरिका आश्रम चला गया था और उसके वंश के लोग जगतकूंट लौट आये और वहाँ आकर एक हजार वर्ष तक राज्य करते रहे।

इन्ही दिनो मे रईव और सईव नाम के दो राक्षस प्रकट हुए। उन दोनो ने इन सबको मार डाला और डेढ़ हजार वर्ष तक वहाँ पर अपना अधिकार रखा। इस प्रकार की कथाये भिन्न-भिन्न लोगो से सुनने को मिलती है। जब मोहम्मद घूंकरा दिल्ली से आया, कहा जाता है कि उसके पास विक्रमादित्य की एक आश्चर्यजनक अंगूठी थी। उसने गोर और गजनी पर पहले ही अधिकार कर लिया था।

मोहम्मद ने कलोर-कोट और औरवा पर अधिकार कर लिया। इसके साथ ही बेलम जाति के रईब-सईव के वशजो को मार डाला। इसके बाद पूर्व की तरफ से कनक सेन चावडा आया और उसके वश के लोग कई पीढियो तक राज्य करते रहे।

इसके पश्चात् मारवाड से उम्मेदसिंह राठौर आया। उसने चावडा लोगो को मार डाला और कूट पर अधिकार कर लिया। इन राठौरो के वंशजो ने यहाँ के निवासियो के साथ अन्तर्जातीय विवाह करके वाघेर कहलाने लगे। कुछ दिनो तक इस प्रकार का सिलसिला चलता रहा। जब औरङ्गजेब मन्दिरो को तोड़ता हुआ इस तरफ आया तो द्वारिका का शिखर भी गिरवा दिया गया।

इस प्रकार की बातें उन कथाओ का सक्षिप्त रूप है जो हिन्दुओ के ग्रन्थो में लिखी गयी हैं। उनमे जगतकूंट की स्थापना, कृष्ण के वशजो का यवनो के द्वारा निकाला जाना मोहम्मद (बिन कासिम) का आक्रमण आदि घटनाओ का वर्णन मिलता है।

असुरो और यवनो—बेलम राजाओं, जिनका सफाया महमूद अथवा मोहम्मद ने किया था। इसके आखीर मे चावडा लोगो और राठौरो की प्राचीन कथाओ का विस्तार मे वर्णन मिलता है।

यहाँ की कुछ घटनाये ऐसी जरूर हैं, जिनमे परिश्रम के साथ खोजने पर कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की जा सकती है। लेकिन इन कथो कमा कासमीग्री मे था निकालना कुछ सरल नही है।

———

बीसवाँ प्रकरण

प्राचीन काल की ग्रन्थियाँ

सदियों से होने वाली लूटमार—शुद्ध राठौर रक्त का दावा—मुसलमानों के द्वारा मन्दिरो का विनाश—गोवर्धन का दूसरा नाम—शूरवीरो के स्मारक—कृष्ण की कथाओ में अतिशयोक्ति—कृष्ण का नाम रणछोड़ क्यो पड़ा—प्राचीन काल के युद्धों में शङ्खध्वनि का महत्व—मीराबाई का मन्दिर—जल के डकैत और लुटेरे—जाड़ेचा के स्मारक की बेइज्जती।

३० और ३१ दिसम्बर—आरमरा और बेट। अठारह मील तक हमने खाड़ी के किनारे-किनारे एक अच्छी सड़क पर यात्रा की। वह सड़क बेरावल और कच्छगढ़ के किले में होकर आगे जाती है। आरमरा का प्राचीन और एक प्रसिद्ध कस्बा समुद्र के कारण बेट से अलग हो गया है। यहाँ की जमीन बेकार हो गयी है। उसमें अपने आप पैदा हुए थूवर के पेड़ ही दिखायी देते हैं।

इधर-उधर देखने के बाद कुछ भैंसों के समूह दिखायी पडे। उनको रैबारी लोग चरा रहे थे। उस स्थान में कुछ झाड़ियाँ भी दिखायी पड़ीं। यहाँ पर सदियों से लूट-मार होती रही है और उसी के फल-स्वरूप यह क्षेत्र उजाड हो गया है। एवम् यहाँ की जमीन बहुत दिनों तक जोती-बोयी न जाने के कारण बन्जर हो गयी है।

यहाँ पर हमको लोहरा भाटी लोग मिले। ये लोग बडे परिश्रमी होते हैं। और उन्ही स्थानो पर इनके मिलने की सम्भावना होती है, जो स्थान धन-धान्य से सम्पन्न होते हैं। ये लोग समुद्री लुटेरो बाघेरो अथवा मकवाणों के साथ घुल मिल गये हैं।

आरमरा का पटेल अब तक अपने शुद्ध राठौर रक्त का गर्व करता है। यदि यह सही है तो उसका गर्व करना स्वाभाविक भी है। आस-पास के कुछ स्थानो में मिलने वाले आधार पर यह सही जान पड़ता है कि आरमरा प्राचीन द्वारिका है। यहाँ के टूटे हुए देव-मन्दिर इस बात का प्रमाण दे रहे हैं।

यहाँ के यात्रियो के शरीर पर कही न कही कृष्ण की छाप लगायी जाती है। लेकिन यह काम ब्राह्मणो के बजाय यहाँ पर चारण लोग करते हैं। इस छाप के लिये

प्रत्येक यात्री चारण को ग्यारह रुपये प्रदान करता है। साधु और सन्यासियो को भी यह छाप लेनी पडती है।

आरमरा के करीब अन्य कुछ चीजें भी आकर्षक पायी जाती हैं। उनमें यहाँ के कुछ मन्दिर भी हैं। लेकिन इन मन्दिरो में कोई ऐसा नही है, जिसको नष्ट करने के लिये मुसलमानो ने अत्याचार न किया हो। कृष्ण के सहस्त्र नामो में से एक घन के पर्वत के स्वामी गोरधननाथ के मन्दिर मे उल्लू पक्षियों ने अपना पूरा अधिकार कर रखा है। गोरधननाथ का ही नाम गोवरधन है।

गोरेजा अथवा गुरेचा से होकर हम सवेरे निकले थे। ये लोग इसको कच्छ गजनी के नाम से पुकारते हैं। यहाँ पर हमने मुसलमानो की दो प्रसिद्ध मजारें देखीं। उनमे एक का नाम अस्सा और दूसरे का पूर्रा है। इन मजारों के सम्बन्ध में भी हमको विचित्र कथाये सुनने को मिली। ये मजारें लम्बाई मे बीस फीट से अधिक हैं और इनकी चौडाई भी लगभग इतनी ही है। आरमरा में पाँच मजारें और भी बतायी जाती हैं, उनमें प्रत्येक छत्तीस हाथ लम्बी और छै हाथ चौड़ी है। उन मजारो से इस बात का प्रमाण मिलता है कि इस जगतकूँट मे पहले जो असुर अथवा यवन रहते थे, वे वास्तव में दैत्य अथवा राक्षस थे। बर्कहार्ड ने फिलिस्तीन में नेबी अथवा नबी ओशा की मजार के वर्णन मे लिखा है: "यह एक तावूत की शकल मे है। छत्तीस फीट लम्बी, तीन फीट चौडी और साढे तीन फीट ऊँची है इसका निर्माण उन तुर्कों के विश्वास के अनुसार हुआ है। जो यह मानते थे कि उनके सभी पूर्वज विशेषकर मोहम्मद साहब के पहले के पैगम्बर राक्षस थे।"

आगे उसने यह भी लिखा है कि (सीओलो-सीरिया) मे नूह की मजार इनसे भी बडी और विशाल है। अगर ये आरमरा के असुर अथवा राक्षस आरमीनियन जाति के थे, जो प्राचीन असीरिया से आये थे तो वे सभी बातो मे अपने पूर्वजों की प्रथाओ का ही अनुसरण करते रहे होंगे।

अब हम आरमरा की मजारो को छोडकर अधिक आकर्षक स्मारको की तरफ आते हैं। उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार की भ्रामक कथायें नही हैं। लेकिन यह अवश्य है कि उनमे जो लिखा गया है, वह इतना गूढ है कि उनका पढना और अर्थ लगाना दोनों कठिन है। लेकिन संतोष की बात यह है कि उनके लेख मे कोई भी दो अर्थ नहीं निकाल सकता। अर्थ उनका एक ही होता है।

उसके टूटे-फूटे चबूतरो और क्षत-विक्षत छतों के पत्थरो मे जो दो बच गये हैं, उनमे साफ-साफ उभरे हुए अक्षरो मे लिखा गया है—"युद्ध-रत श्रीकमराय के जहाज।" इनमे से एक स्मारक तीन मस्तूल के जहाज की तरह का है। इसमें तोपो के लिये सूराख बने हुए हैं। दूसरा अधिक पुराना और प्राचीन आकार-प्रकार का जहाज है। उसमें

मस्तूल एक है। उसमें युद्ध के सम्बन्ध में कोई भी बनावट नही है। ये दोनों जहाज पीछा करने के रूप में दिखाये गये हैं। एक आदमी ढाल और तलवार लेकर तेजी के साथ निकलता हुआ दिखाया गया है और दूसरा अपनी नाव से अगले भाग से चलता हुआ।

स्मारकों पर अंकित इन चित्रो को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ये उन शूर-वीरो की आकृतियाँ हैं, जो यहाँ पर समाधिस्थ किये गये हैं।

दूसरा स्मारक राणा रायमल का है। उसने सम्वत् १६२८ सन् १५५७ ईसवी में राजा का आक्रमण होने पर उसका सामना किया था। उसके साथ, उसके सगे-सम्बन्धी इक्कीस आदमी मारे गये और जेठवानी उसके साथ चिता मे बैठकर सती हुई थी। मारे जाने वाले इक्कीसों आदमियो के स्मारक यहाँ पर बने हुए हैं। यहाँ पर स्मारक और भी था, जो अन्य स्मारको के बाद में बना था और वह किसी समुद्री लुटेरा की स्मृति में बानाया गया था। उसके स्मारक मे लिखा था—'सम्वत् १८१६ सन् १७७३ ईसवी में (जदरू) खारवा समुद्र में मारा गया।'

१ जनवरी १८२३—हमने बेट का इलाका पार किया। हिन्दुओ के ग्रन्थों में इसको शंखोद्वार अथवा शंखों का दरवाजा लिखा गया है। उनके यहाँ इसको एक पवित्र तीर्थ माना गया है। यही पर कृष्ण ने पथियन अपोलो की भूमिका अदा की थी। अपने शत्रु तक्षक का वध करके पीड़ित लोगो का उद्धार किया था, जिसको चोरी से उसने महाशंख मे छिपा दिया था। इसी कारण इस द्वीप का यह नाम पड़ा है।

कृष्ण की पूरी कथा को अलंकृत बनाकर लिखा गया है। वह कही पर भी अरुचिकर नही है और ऐसी भी है कि उसकी ग्रन्थियाँ सुलझाई न जा सके। हिन्दुओ की पौराणिक कथाओ में कदाचित् इससे अधिक रोचक कथा दूसरी नहीं है। गरुड़ को कृष्ण की सवारी बतायी गयी है और उनके विरोधी बौद्धो को तक्षक नाग अथवा साँप के रूप में अंकित किया गया है। यह नाम उन जातियो को दिया गया है जो समय-समय पर इस देश मे आकर आक्रमण करती रही हैं। उन्हीं लोगो में (तकसिलो) जाति के लोग भी थे। अलैक्जेण्डर का मित्र, विक्रम के शत्रु तक्षक शालिवाहन के नाम से अधिक मशहूर है।

यादव राजकुमार कृष्ण की कथा मे—जिन्होंने स्वयं बुद्ध के मत को त्याग कर विष्णु का मत ग्रहण किया था—हिन्दुओ के इस दूरवर्ती स्थान पर उनके नाग-शत्रु से स्पष्ट साम्प्रदायिक सघर्ष का आभास मिलता है। इसी के अनुसार उनको मगध के नास्तिक राजा जरासंघ के साथ हार जाने के कारण 'रणछोड़' नाम दिया गया था। अन्त में इन धार्मिक एवम् घरेलू लड़ाइयों के फलस्वरूप ही उनकी मृत्यु हुई

और सम्पूर्ण यादव-वंश इधर-उधर हो गया। इसलिए कि वे ही अपने वंश के एक मात्र आधार थे। (१)

शखद्वार अब तक शखो के लिये प्रसिद्ध माना जाता है। एक किनारे पर जहाँ जल की बहुत कमी है और उसके करीब ही जहाज ठहरने का स्थान है—वही पर ये शख पाये जाते हैं। जो शख किसी समय युद्ध की तैयारी की सूचना देते थे, वे अब ब्राह्मणो की पूजा-पाठ के लिये रह गये हैं।

शखोद्वार के शखो की खपत सबसे अधिक बगाल मे होती है। मुझे खूब याद है कि ढाका मे शख तैयार करने वालों का एक पूरा मोहाल बसता है, वे सभी शख बेट से मँगाये जाते हैं। गायकवाड सरकार के समुद्री किनारे शखो मे भरे रहते हैं। बम्बई के व्यवसायी उनको खरीदते हैं और वहाँ से जहाज़ में भर कर बङ्गाल भेजे जाते हैं।

राजपूतो की वीर-गाथाओ मे शखनाद के बहुत वर्णन मिलते हैं। राजपूतो में शखो का उसी प्रकार प्रचार किसी समय था, जैसे पश्चिमी देशों के वीरों में पीतल के बने युद्ध के बाजो का।

महाभारत मे दो शखों का उल्लेख मिलता है। एक शंख था स्वयं कृष्ण का, जिसका नाम पाञ्चजन्य था और वह इतना भारी था कि उसको वे ही उठा सकते थे। दूसरा उनके मित्र तथा बहनोई अर्जुन का था, जो उलटे छेद के कारण दक्षिणावर्त शख कहलाता था और जो उसके प्रतिद्वन्दी कौरवो के सेनापति भीष्म को विजय के चिह्न के रूप मे मिला था।

इन शङ्खो मे एक का नाम अमोलक बताया जाता है, जिसका कोई मूल्य नही होता। इस प्रकार का शङ्ख अनहिलवाडा के बल्हरा राजा सिद्धराज के पास था,

---

(१) हमारा विश्वास है कि ये समस्त यादव लोग वास्तव मे बौद्ध थे और इण्डोगेटिक प्रणाली के मानने वाले थे जैसा कि बहुपतित्व की प्रथा से जाहिर होता है। हमको एक जैन विद्वान से मालूम हुआ है कि बाईसवाँ बुद्ध नेमिनाथ केवल बुद्ध ही नही था, बल्कि कृष्ण का निकटवर्ती सम्बन्धी भी था। एक गहरी छानबीन के साथ मैं अब साफ-साफ कहना चाहता हूँ कि यदु यति अथवा (जक्सार्तीस) के जेट्स हैं, जिनमे विद्वान प्रोफेसर (नुइमेन) के अनुसार, ईसा से आठ सौ वर्ष से पूर्व एक (शामनीयन) सन हुआ था। दोनो का नेमिनाथ और शामनाथ नाम श्याम वर्ण के कारण पडा है। पहले को श्यामनोभि और दूसरे को श्याम अथवा कृष्ण कहा जाता था। इसका अर्थ श्यामल अथवा काला रङ्ग होता है। यह सत्य केवल कल्पना तक ही सीमित नही है, बल्कि द्वारका में कृष्ण के मन्दिर के भीतर बुद्ध का मन्दिर भी बना हुआ है। अब इसमे किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता कि कृष्ण पहले बौद्ध धर्मावलम्बी थे।

उसका उल्लेख पाया जाता है। यह भी कहा जाता है कि वह शङ्ख अब रूप नगर के सोलकी सरदार के पास है, जो मेवाड़ की दूसरी श्रेणी का सामन्त माना जाता है।

पहले लिखा जा चुका है कि समुद्री डाकुओ का एक किला था और उसका नाम कलोर-कोट है। द्वीप के पश्चिम की तरफ बना हुआ यह किला बहुत प्रसिद्ध है। इसकी ऊँची छतो मे लोहे की मजबूत तोपे रखी हुई हैं। उनका मुख समुद्र को तरफ है।

जितने भी देवस्थान मैंने इधर देखे हैं, उनमें मेरे लिये सबसे अधिक आकर्षक मेवाड़ की रानी लाखा राणा की पत्नी मीराबाई का बनवाया हुआ सौरसेन के गोपाल देवता का मन्दिर है। उसके देवता को मीराबाई अपना इष्टदेव मानती थी। निस्संदेह यह राजपूत रानी उसकी बहुत भक्त थी। लोगों का कहना है कि उसकी कवितायें भक्ति की भावना से भरी हुई थी और वर्तमान भाट लोगो की कवितायें उसकी कविताओं के सामने कुछ भी महत्व नही रखती थीं। लोगो का विश्वास है कि कृष्ण के सम्बन्ध में लिखे गये उसके गीत अथवा भजन जयदेव की रचनाओ के टक्कर के हैं। भक्ति की भावना को लेकर और भी कवियों ने कवितायें लिखो हैं, लेकिन जो श्रेष्ठता और प्रतिभा मीरावाई की रचनाओ में लोगों को मिलती है, वह अन्यत्र नही मिलती।

मीराबाई के सम्बन्ध में—जैसा कि सभी प्रकार के लोग कहते हैं—यह सही है कि उसने भक्ति की भावना से प्रेरित होकर अपने मान, सम्मान, पद और प्रतिष्ठा को भुला दिया था और उसने सभी तीर्थ-स्थानो की यात्रा की थी। उन सभी मन्दिरो मे जाकर—जहाँ उसके इष्ट देवता की प्रतिभा थी। उसकी आराधना उसके बनाये हुए भजनो में थी। वह अपने भजनो को गाती हुई आत्म-विभोर हो जाती थी और नाचने लगती थी। उसकी इस अवस्था पर कभी किसी ने कुछ अर्थ लगाया अथवा आज भी लगावे, यह तो अर्थ लगाने वालों को अधिकार है। लेकिन भक्ति की प्रेरणा के सिवा उसमें कुछ और न था। उसके पति मेवाड़ के राणा ने भी कभी कुछ नही कहा और न कभी किसी प्रकार का सन्देह किया।

कहा जाता है कि मीरा (१) की आन्तरिक भक्ति से गद्‌गद् होकर एक बार मुरलीधर भगवान ने सिंहासन से उतरकर उसका आलिंगन किया था। यह कहाँ तक सत्य है, मैं नही जानता। लेकिन लोगों की ऐसी धारणा है। किसी भी अवस्था में

(१) मीरा बाई के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियाँ भी रही हैं और उन्ही में से कुछ ग्रन्थ के मूल लेखक जेम्स टॉड को भी हो गयी थी, जैसे टॉड साहब ने मीरा को राना लाखा की पत्नी लिखा है। लेकिन यह सही नही है। उसके पति का नाम भोजराज था, जो राणा संग्राम सिंह का दूसरा बेटा था। टॉड साहब को लिखने में या समझने में भूल हो गयी है।

वह पूर्ण रूप से पवित्र थी और उसके जीवन की इस निर्मलता को सभी लोग-बंधु-परिवार से लेकर बाहर तक—स्वीकार करते थे।

झालावंश के एक सरदार से मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई। उसकी बहन का विवाह बेट के अन्तिम समुद्री डाकुओ के राजा के साथ हुआ था। उस सरदार ने अपने वंश वालो के सम्बन्ध मे बहुत-सी विचित्र बाते बतायी, साथ ही बघेलो के सम्बन्ध मे भी कुछ ऐसी बाते कहीं, जिनको सुनकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। बाघेलो ने विगत सात शताब्दियों से ओखामण्डल पर अधिकार कर रखा था।

जगतकूंट के एक भाट से भी मिलने का मुझे अवसर मिला। उसके साथ मेरी बहुत-सी बातें हुईं और उसकी वंशावली से मैंने बहुत-सी बातें नकल करके अपने अधिकार मे कर ली।

ओखामण्डल की इस जाति के पहले राजा का पिता उम्मेदसिह था और वह राठौर था। उसके लडके ने वहाँ के अधिकारी चावड़ों को धोखे में मार कर वाघेल का जातीय पद प्राप्त कर लिया था। आरमरा मे चावडो की राजधानी थी और वही पर अब भी वाघेलो के राजतिलक होते हैं। झाला सरदार और भाट—दो मे से कोई मुझे इस घटना का सही समय नही बता सके और न उस समय से लेकर अब तक पीढियो की सख्या बता सके। लेकिन मारवाड के इतिहास से मुझे इस विषय मे बड़ी सहायता मिली। उस इतिहास मे लिखा है :

भारत की मरुभूमि मे राज्य कायम करने वाले कुछ लोग ओखा मे भी जाकर आबाद हो गये थे। प्राचीनकाल से भूमि प्राप्त करने की भावना राजपूतो में रही है। मूर्ख राठौर ने चावडा लोगो का विनाश करने में राजपूतो की उसी मनोवृति का परिचय दिया। लेकिन अधिक समय तक वह अपने इस अधिकार का सुख नहीं भोग सके। उसने और उसके साथ के लोगो ने चावडा लोगों का रास्ता अपनाया और लगातार लूट-मार करने लगे। उसके परिणाम-स्वरूप, अनहिलवाड़ा के इतिहास के अनुसार, विक्रम की आठवीं शताब्दी में उसका नाश हो गया।

प्रथम वाघेल से अनेक पीढियों के पश्चात् एक राजा के समय में बेट के समुद्री राजाओ का नाम सङ्गमवर हो गया था। वह एक प्रसिद्ध जल-डाकू था, जो बहुत दिनो तक समुद्र मे अपना यही काम करता रहा। लेकिन अन्त में उसकी नीचता का फल उसे मिला। वह कैद करके बादशाह के पास लाया गया। कैदी हालत मे भी उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। बादशाह के सामने भी वह उसी प्रकार का व्यवहार करता रहा, जैसा कि आजादी की दशा में डकैती का व्यवहार करता था।

बादशाह उसका दमन नही कर सका, वह डाकू बहुत चतुर था और उसने बादशाह को पट्टी पढाना आरम्भ किया। राजाओं और बादशाहो को अच्छे आदमी के बजाय इस प्रकार के लोगो की अधिक आवश्यकता होती है, बादशाह उसकी बातों

में आ गया और वह एक विशेष उपाधि के साथ बेट लौट गया। कुछ ही दिनो के बाद उसने कच्छ के जाड़ेचा राव की लड़की के साथ विवाह कर लिया, उसके पश्चात् उसने जेठवा लोगो के नगर वारासरा पर आक्रमण कर दिया। उसमें मारा गया।

सङ्गमधर से तीन पीढी के बाद नवीन उपाधि लेकर रीना सोवा हुआ। वह भी अपने पूर्वज की भाँति साहसी और निर्भीक था, उसकी बहादुरी के सम्बन्ध में वंशावली में लिखा है :

उसने गुजरात के बादशाह मुजफ्फर को शरण दी और उसको शत्रु को सौंपने के बजाय इनकार कर दिया और अपने एक जहाज मे बिठाकर खाड़ी के दूसरी तरफ सुरक्षित पहुँचा दिया। उसने स्वयं आरमरा के घेरे में रहकर शत्रु के साथ युद्ध करते अपने प्राण दे दिये।

इस जल-डकैत का आचरण और शौर्य कितना सराहनीय था ! उसका चरित्र बारह पीढी पूर्व कच्छ के संस्थापक खंगार के बेटे राव भार से बिल्कुल भिन्न था, जिसने प्रायद्वीप मे मोरवी के इलाके के लिए अपनी शरण मे आये हुए सुल्तान की रक्षा करने के लिए रुपयो में सौदा किया था। बादशाह ने अपना वचन पूरा किया। उसने मोरवी का परगना जाडेचा को दे दिया। परन्तु उसने दिल्ली में दो स्मारक बनवाये। उन स्मारको पर लिखा गया। जो आमदनी बाघेल के स्मारक के पास से होकर निकले, वह उस स्मारक पर फूलो की माला चढ़ावे और जो कोई जाड़ेचा के स्मारक के पास से होकर निकले, वह उस पर जूता मारकर अपना कर्त्तव्य अदा करे। जाम जेसा के समय तक जाम भार के स्मारक की इस प्रकार लगातार बेइज्जती होती रही। लेकिन जेसा की एक कर्त्तव्य परायणता के बदले मे उसको इनाम देने का निर्णय किया गया और जब उससे कहा गया कि वह चाहे जो माँग ले तो उसने नम्रता के साथ प्रार्थना की कि जाडेचा के स्मारक को तोड़वा दिया जाय। क्योकि उसकी बेइज्जती से प्रत्येक जाड़ेचा की बेइज्जती होती है।

रीना सोवा अथवा सवाई तो उस चरित्रवान जल-डकैत की उपाधि थी। वास्तव में उसका नाम रायमल था। मुझे खुशी है कि मैंने उसके स्मारक का पता लगा लिया। ऊपर लिखा जा चुका है कि इस स्मारक पर आरमरा के साके में सम्वत् १६२८ सन् १५७२ ईसवी में उसकी मृत्यु का उल्लेख किया गया है। इस समय से हमको बेट के समुद्री डाकुओं के इतिहास के साथ-साथ, गुजरात के सुल्तानों के इतिहास का भी पता चलता है।

नीचे एक सूची दी जाती है। रायमल से संग्राम तक—जिसकी अवस्था पैंता-लीस तक हो चुकी थी—नौराजा होते हैं और अपराधों के भार से उसके वर्तमान

वंशजो तक, सब मिलाकर ग्यारह हुए हैं। वह सूची इस प्रकार है—

राना रायमल	
अखैराज	रायमार
भीम	मेघ
संग्राम	तमाची
भोजराज अथवा भगराज	रायधन
दादोह अथवा दूदा	प्राग
वाहप	गोर
मरदबाई (भाई)	देसिल
सग्राम	लाखो
	गोर
	रायधन भार और देसल (भाई)

राना भीम ने मसकट (१) के हमाम को जल और स्थल मार्ग से आक्रमण करने का मौका दिया था। कारण यह था कि उसके नाविको ने हमाम के आदमियो पर अत्याचार किया था। कच्छ का राव वेरूल भी इस मौके पर मसकट के जहाजी सेना पति के साथ था और उसने कच्छगढ के तट पर कलोरकोट को गोलो से उडा देने के लिए बनवाया था।

जल के डाकुओ के द्वीप पर कई बार सेनायें पहुँचायी गयीं। परन्तु किले की मजबूती के कारण उन फौजो को कोई सफलता न मिली। हुआ यह कि समुद्र के रास्ते में भटक जाने के कारण कुछ नावें इधर-उधर हो जाने और अपने मददगार भुजप्रति के द्वारा कच्छगढ के आस-पास की भूमि से नौ-सेनापति को अपना बेड़ा वापस ले जाना पडा। लौटते हुए वे लोग शख-नारायण के मन्दिर के कीमती दरवाजे अपने साथ लेते आये और उनको पाकर उन्हें सन्तोष करना पडा।

इन किवाडो से उसने एक अच्छा पलंग बनवा लिया। लेकिन एक दिन रात को उसका वह पलग उलट गया। जब वह जागा तो उसे मालूम हुआ कि वह पलंग उसके ऊपर था और वह स्वयम् उसके नीचे हो गया था। कथाओं मे बताया गया है कि इस घटना के बाद उसने उन किवाडो की समस्त-लकडी बेट भिजवा दी।

सङ्गम के आखिरी घाडेती संग्राम के समय तक इन जल के डकैतों के कारनामों में कोई विशेष घटना नहीं मिलती। उसके दादा का सामना एक अंगरेजी युद्ध के जहाज से हुआ था। उसको देखकर उसे बहुत विस्मय हुआ। इसलिये कि उसने पहले कभी

(१) अरब का प्रसिद्ध बन्दरगाह, जो १५०८ ई० से १६५० ईसवी तक पुर्तगालियो के अधिकार में रहा था।

इस प्रकार का जहाज नही देखा था और उस अंगरेजी जहाज ने आसानी के साथ उनके जहाजो को नष्ट कर डाला और उनके आदमियो को अपने अधिकार में ले लिया।

इसके बाद अंगरेजी जहाज के अध्यक्ष कर्नल वाकर ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उसने उन लोगो को प्रायद्वीप में शान्ति कायम करने के लिए एक अच्छी व्यवस्था बतायी और उनकी डकैती की आदते बन्द कर देने के लिए प्रतिज्ञा करायी।

जल के उन डकैतो ने की हुई प्रतिज्ञा का पालन नही किया। इसलिए कि गायकवाड़ के कुछ अफसरो के अत्याचारो के कारण उन जल डकैतो को फिर अपनी सेना तैयार करके मैदान में आना पड़ा। उन्ही दिनो में श्रीकमराय के पुजारी को—जो संग्राम का प्रधान था—समुद्री लूट के लिए तैयार हो जाना पड़ा। इस घटना का परिणाम यह हुआ कि उसने शङ्खोद्वार के स्वामी के भाग्य को पलट दिया और जिस प्रकार द्वारका के वागेरो को नष्ट किया गया था, उसी प्रकार वेट के बाघेलो का विनाश कर दिया गया।

कर्नल लिंकन स्टनहोप के नेतृत्व में बदले के लिए तेजी के साथ आक्रमण किया गया। उसमे संग्राम को सन्धि के लिए विवश होना पडा और उसने बेट को भेंट में देकर आरमरा में रहना मंजूर कर लिया।

यहाँ पर सोचने की बात यह है कि यह आत्म-समर्पण बहुत अंशो तक सुरक्षा की प्रतिज्ञा से सम्बन्ध रखता था। लेकिन यह निश्चित है कि आरमरा में अब संग्राम के लिये आराम का स्थान नही; अन्तिम बाघेल को वहाँ से भी निकाल दिया गया है और अब वह कच्छ मे शरणार्थी के रूप में रह रहा है।

द्वारिका के जो वागेर बहुत दिनो तक आरमरा के बाघेलो के साथ समुद्री डकैती के रूप में अत्याचार करते रहे थे, उनके सम्बन्ध मे भी यहाँ पर कुछ लिखा जाना आवश्यक है। वे भुज के जाड़ेचा वंश की एक मिश्रित शाखा में से हैं। उनमें एक व्यक्ति था, उसका नाम था, आबरा। उसके मुख पर कुछ बेहूदा मूँछें थी और इसीलिये वह मूँछ वाला कहा जाता था। राणा सोवा के समय में वह यहाँ आया था और उसी के वंश में उसने अन्तर्जातीय विवाह करके गोमगी अथवा द्वारका पर अधिकार कर लिया था।

उसके लडके ने एक पतित जाति की स्त्री के साथ सम्बन्ध कर लिया और उससे माणिक और रत्न के नाम से सन्तानें हुईं, उन्होंने वागेर का नाम धारण किया। इस वंश के अन्तिम चार राजा महप मणिक, सादूल माणिक, सामीह माणिक और मलू माणिम हुए। मलू अपने सगे सम्बन्धियों के साथ वागेरो, वाघेलों और अरब वालो के युद्ध में मारा गया। कुछ कथाओं में बताया जाता है कि वह कही जाकर लापता हो गया था।

जो लोग मारे गये थे, उनमें एक आदमी बहुत उत्साही था। उसने द्वारिका के जल-डकैतो पर अपना आक्रमण किया था। वह एक वीरात्मा था और युद्ध करने में बहुत कुशल था। सीढी से फिसलकर जहाँ पर वह गिरा था, वही पर उसका स्मारक बनाने का निश्चय किया गया। लेकिन लोगो ने स्मारक पर ही सन्तोष नही किया। बल्कि उन्होंने स्मारक के एक तरफ उसके नाम का एक स्तम्भ भी खडा किया।

कहा जाता है कि उसको उसी तरह की मृत्यु मिली, जिसके लिए वह हमेशा से अभिलापा रखता था। यद्यपि वह अपनी स्मृतियो के द्वारा अब भी जीवित है। लेकिन एक सन्तोष की बात यह है कि एक हिन्दू योगी ने वहाँ पर अपना आश्रम बनाकर उसे और भी अधिक प्रसिद्ध कर दिया है। जब कभी कोई नाविक उस तरफ जाता है और पूछता है कि यह खम्भा क्यो खडा किया गया है तो उस वीर आत्मा की पूरा कथा उसको सुना दी जाती है।

यह है जगत् कूंट के जल डकैतो का इतिहास। यदि इसमे और भी विवरण लिखे जा सके और इसके लिए इन डकैतो के अधिक विवरण प्राप्त किये जा सके तो यह इतिहास और भी रोचक हो सकता है। लेकिन हमको जो तथ्य मिले हैं, वे क्रम-हीन हैं। सिलसिला ठीक न होने के कारण कोई भी कथानक अधूरा हो जाता है। सिकन्दर से दूसरी शताब्दी में पेरीप्लस तक, आठवी शताब्दी मे चावडो की राजधानी देवबन्दर के विनाश के उन्नीसवी शताब्दी मे द्वारिका और बेट तक उन्ही लुटेरो के कथानक मिलते हैं। जिनके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि वे समुद्र के लुटेरे हैं। जहाँ से वे समुद्र मे लूटमार करने जाते हैं, वही वे फिर लोटकर आ जाते हैं। इस प्रकार यहाँ के कथानक कोई भी क्रम से पूरे नही हैं।

कुछ ग्रन्थकारो ने सङ्गारियनो के एक मुखिया का वर्णन किया है। परन्तु द आनविले उसमे प्रधान है। वह कहता है—

थीवनाट और ओविङ्गटन ने इन सागारिनो का समुद्र के पूर्वी किनारे के निवासियों और जल डकैतो के रूप मे उनका उल्लेख किया है। पूर्वीय देशो मे इस जाति का नाम बहुत प्राचीनकाल से पढने को मिलता है। परन्तु अब वे अपने पुराने नाम से नही सम्बोधित होते। उनका निवास सिन्ध के बहुत करीब था और उन्होंने उस स्थान को बहुत पहले छोड दिया था, जहाँ से सिकन्दर की सेना निकली थी। (१)

(१) सिन्धु से गुजरात तक समुद्र के किनारे हमला करने वाले जल-डकैतो को सांगानिपत कहा गया है। कदाचित् इसलिये कि ये लोग सिन्धु के समुद्री सङ्गम के पास के स्थानो मे रहते थे। सांगानिपन हिन्दू होते थे और वे यात्रियो के साथ उस प्रकार की क्रूरता का व्यवहार नही करते थे, जैसा कि बलोची लुटेरे किया करते थे।

—"इन्डियन ट्रैवेल्स आफ थीवनाट"

यहाँ पर हमारा ख्याल है कि जहाँ पर निकास होता है, वहाँ सङ्गम भी होता है और जहाँ-जहाँ सङ्गम था, वहाँ पर संगद अथवा संगम-धार अर्थात् जल डकैतो का निकाम भी था। यह संगम अथवा निकास चाहे द्वारिका की गोमती पर रहा हो अथवा सिन्धु नदी के डेल्टा की खाड़ी पर, दोनों ही स्थानो पर डकैतों के देवता और रक्षक के मन्दिर पाये जाते हैं और खाड़ी पर 'नारायन-सर' नामक स्थान से ही, जहाँ पर मैं जा रहा हूँ, मेरी वापसी की यात्रा आरम्भ हो जायगी।

द्वारका अथवा आरमरा के लुटेरों का डेल्टा-निवासी डकैतों के साथ कभी किसी प्रकार के मेल-जोल था या नही, इसके सम्बन्ध में कुछ नही कहा जा सकता। लेकिन यह साफ जाहिर है कि इन दोनो मे धर्म और लूट के विषय मे एक ही प्रकार के विश्वास थे इन लुटेरो के अपने इष्ट-देवता थे और जब वे अपने शिकार के लिये अर्थात् लूट मार के लिये निकलते थे तो अपने देवता को प्रसन्न करने के लिये प्रार्थनायें करते थे, मिन्नतें मानते थे, आरती उतारते थे और उसकी पूजा करके अच्छा से अच्छा भोजन करते थे। डकैती और लूट-मार के कार्य को वे लोग शिकार का नाम देते थे और जाने तथा लौटने पर अपने देवता के नाम पर बडे से बडे उत्सव करते थे। अपनी प्रार्थनाओ में वे अपने देवता से अच्छे शिकार की माँग करते थे और जब लूट मे उनको अधिक सम्पत्ति मिलती थी तो समझते थे कि आज हमारे देवता प्रसन्न हैं। इस प्रकार की सफलता और असफलता ने अपने देवता की देन मानते थे। इन लुटेरो का यह धार्मिक कार्य था।

दिन मे कई बार शिकार करने वाले पिण्डारियो की भाँति भारत के ये लुटेरे अपने इस कार्य को धार्मिक और पवित्र मानते थे। यह नही कहा जा सकता कि सिन्धु के सांगारियनो और सौराष्ट्र के सौरो ने कभी समुद्र के पार जाकर दूर देशो मे इस प्रकार का काम किया या नही। परन्तु सिन्धु से अरब तक का समुद्री किनारा हिन्दुओ के देवी-देवताओ से इतना भरा हुआ है कि इनका उनसे सम्बन्ध न रखना समझ के बाहर है। अतएव उसका कोई प्रश्न नहीं पैदा होता।

समुद्री लुटेरों का जहाज, जिसको लाकर ऊपर सूखी जमीन पर रख दिया गया था, एक विशाल जहाज था। उसका पिछला भाग अधिक ऊँचा था। मेरा जहाज घाट पर आ गया है और मुझे वह कच्छ की खाडी के उस पार ले जाने के लिये तैयार खड़ा है, जहाँ पर सिकन्दर के सांगड़ा का प्राचीन अड्डा रहा है।

इक्कीसवाँ प्रकरण

दासता की मिटती हुई प्रथा

विलियम्स की उदारता और मित्रता—गुरु यति ज्ञानचन्द का महत्वपूर्ण सहयोग—वियोग के गहरे जख्म—कृष्ण की भूमि—नामों मे भेद का कारण—लूनी नदी का खारी जल—प्रतिकूल हवा के झोको का परिणाम—बारह घण्टे के स्थान पर एक सप्ताह।

पहली जनवरी १८२३—हमारे रवाना होने के समय हवा चल रही थी और दोनो तरफ के समुद्री किनारे इतने नीचे थे कि वे थोडे ही समय मे नेत्रो से ओझल हो गये। मेरा मन अब कमजोर पड गया था। इसलिये कि मैं अपने उन मित्रो से जुदा हो गया था, जिनके साथ छै मास तक रहकर उनका स्नेह और प्यार प्राप्त किया था। फिर भी, मेरे मित्र विलियम्स (१) का सम्पर्क मेरे अधीर हृदय को शान्ति देने के लिये बहुत कुछ आधार बन गया था। वास्तव मे उनका सहयोग मेरे लिये न केवल सतोषजनक बना बल्कि अनुसन्धान के सम्बन्ध मे भी मुझे बडी सहायता मिली। सच यह है कि वे मेरे लिये मार्ग-दर्शक बन गये और किसी भी परिस्थिति मे मिस्टर विलियम्स से मुझे बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलता। मैं उनके प्रति जितनी भी कृतज्ञता अदा करूँ, वह किसी प्रकार पर्याप्त नही हो सकती।

मिस्टर विलियम्स के प्रति मैं अपनी श्रद्धा के भाव अर्पित करता हूँ। उनके प्रति मेरी श्रद्धा उस समय थी, जब वे मेरे साथ थे, उतनी ही मेरे हृदय मे आज भी है। उसमे कुछ भी अन्तर नही पड़ा।

यही पर मैंने अपने मित्र और गुरु यति ज्ञानचन्द्र से विदा ली। वे मेरे साथ उस समय से हैं, जब मैं एक अधिकारी की हैसियत के काम करता था। इस देश मे जितने दिन मेरे बीते हैं, उनमे आधे से अधिक दिनो तक मेरे साथ उनका मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रहा। इस देश में रहकर मैंने उनसे सभी प्रकार का सुख और सतोष प्राप्त किया। मैंने अपनी इस पुस्तक में और अन्यत्र भी उनके स्नेह-पूर्ण सम्पर्क का उल्लेख किया है। सच बात तो यह है कि मेरे पुराशोध-सम्बन्धी कार्यों में उनकी ऐसी सहायता रही

---

(१) विलियम्स बडोदा के रेजीडेण्ट और गुजरात के राजनीतिक कमिश्नर रह चुके थे। उनकी मृत्यु का समाचार उस समय मिला, जब इन पृष्ठों की छपाई प्रेस में होने जा रही थी।

है, जिसकी प्रशंसा नही की जा सकती। ऐसी दशा में यहाँ पर उनके सम्बन्ध में कुछ कहना जरा भी आवश्यक न होगा।

यति ज्ञानचन्द्र कद में लम्बे और दुबले पतले थे। जिस समय मैं उनसे विदा हुआ, उस समय उनकी अवस्था साठ से अधिक नही थी। फिर भी वे अपने श्वेत बालों के कारण अभिनन्दनीय थे। जब वे अपने अम्बे दुपट्टे के साथ, हाथ मे दण्डा लिये हुये नगे सिर मेरे कमरे में आये तो वे एक अच्छे विद्वान मालूम हुए। वे बुद्ध के उपासक थे। प्राचीन काल के अवशेषो को खोजने मे मेरे साथ उनको भी बहुत आनन्द मिलता था। मेरे कठोर अनुसन्धान में और शिला-लेखो के पढ़ने में अपने असाधारण धैर्य और विशाल ऐतिहासिक ज्ञान के कारण वे मेरे लिये किस प्रकार सहायक बन गये थे, मैं उसे प्रकट नही कर सकता। मैं उनकी उदारता का बहुत कृतज्ञ हूँ।

इसी समय मैं अपने घोडे जावादिया से भी विदा हुआ। उदयपुर के राणा ने मुझे यह घोड़ा भेट में दिया था। मैंने राणा को लिख दिया कि आपके सिवा इस घोड़े पर इसका संरक्षक और सेवक इस पर सवारी कर सकता है। लेकिन किसी तीसरे को आप यह अधिकार न दे। और प्रत्येक दशहरा के अवसर पर सम्मान के साथ इस घोड़े के प्रति व्यवहार किया जाय।

वियोग के जख्म मेरे हृदय में गहरे थे, इसलिये उनसे राहत पाने के लिये मैंने अपने सामने मानचित्र फैलाकर रखा। बराई के द्वीप मेरे नेत्रो के सामने थे, मैं यह सोचने लगा कि टालमी और पेरीप्लस के कर्ता के समय से अब तक कच्छ की काँठी में कितने परिवर्तन हो चुके हैं। सम्भव है लेखक ने अपने व्यावसायिक प्रसङ्ग में भड़ौंच से आकर इसे देखा हो। उसने लिखा है :

बराई के पूर्व में एक गहरी खाड़ी है जो अन्य दीपो से उसको अलग करती है, मिश्र के भूगोलवेत्ता के अनुसार, द अनाविले लिखता है—बलसेटी अथवा बरसेटी नाम का एक बन्दरगाह है जो पूर्व में टालमी के द्वारा बराई और कुछ अन्य द्वीपो को प्रकट करता है और काठी काल्पस के प्रवेशद्वार के दक्षिण की तरफ है। अब इसको प्रमाणित करने के लिये कोई भी प्रमाण आवश्यक नही है कि बेट अथवा जल-डकैतो का द्वीप ही वह स्थान है, जिसको परिस्थितियो के अनुसार द' आनविले ने बलसेटी नाम दिया है। वह स्थान दूसरी शताब्दी में बरायी कहलाता था।

उस स्थान की पूर्वकालीन बातें बहुत कम बाकी रह गयी हैं। यहाँ की स्थानीय भाषा में बेट द्वीप को कहा जाता है और किसी को भी इसके मान लेने में उलझन न होगी कि यह बोलने में बलसेट का ही संक्षिप्त रूप है। अब प्रश्न यह होता है कि यह निकला कहाँ से ?

यह सम्पूर्ण भूमि कन्हैया, कृष्ण अथवा नारायण की मानी जाती है। कन्हैया

के बचपन का नाम बाल, बालनाथ अथवा बालमुकुन्द है और किशोरावस्था में गोपाल एवम् उस समय की सामग्री मे मुरली अथवा मुरली अर्थात बेत जो गाय चराने के लिये डंडा अथवा लाठी का काम करता है। इस प्रकार अनेक बातें पायी जाती हैं, जो समता अथवा समानता का प्रमाण देती हैं। साथ ही उनकी इतनी अधिकता है कि उनका अन्त नही है।

पूर्व के देशो मे जिस प्रकार इनका अतिक्रमण होता है, वह भयानक और विस्मयजनक है। पश्चिमी देशों मे इस प्रकार की परिस्थिति आती है, लेकिन उसका परिष्कार ऐसे ढंग से कर लिया जाता है कि मूल के साथ उनका सम्पर्क और सम्बन्ध बना रहता है।

दो बडे नामों के सम्बन्ध मे यहाँ पर और भी अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। जिस खाडी को टॉलमी ने काठी काल्पस के पूर्व की तरफ बताया है उसको पैरीप्ली ने इरिनस नाम से जाहिर किया है। काठी किसी तट अथवा किनारे को नही कहते। बल्कि आज तक कच्छ के उस भाग के लिये प्रयोग किया जाता है, जो पहाड़ियो और समुद्र के बीच में होता है। एरिअन ने इरिनस शब्द का प्रयोग सिर्फ काल्पस (खाडी) के ऊपरी हिस्से के लिये किया है, जो साधारण तौर पर रण कहलाता है। वास्तव में यह रण संस्कृत के अरण्य शब्द का अपभ्रन्श है।

इसी हिसाब से एरिनस के द्वारा प्रयोग किया गया एरिनोस से बड़े रण का अभिप्राय है, जो छोटे रण से मिलकर सम्पूर्ण कच्छ बन जाता है। इसके बाद आगे आने वाला विवाद शान्त करने के लिये यह जानने की जरूरत है कि लूनी नदी—जिसके विकास से लेकर सम्पूर्ण रास्ते का मैंने अन्वेषण किया और जो बडे रण मे होकर प्रवाहित होती है—वही है जो खारी के नाम से सिन्धु नदी के निकास पर जाकर मिल जाती है।

लूनी और खारी का अर्थ एक ही होता है अर्थात नमकीन पानी की नदी। यदि लूनी के मार्ग का कभी और कच्छ की खाडी का प्रवेश छोटे रण में रहा हो तो टालमी के आरबदरी (१) की जानकारी हो जाती है। उसने वहाँ पर खाडी का

(१) प्लिनी की तालिका मे अन्तिम नाम वेरीटाटल आता है, उसे कही-कही पर भी वेरेरेले लिखा गया है। कुछ पुस्तको में इसी शब्द को वराटाटल भी लिखा गया है। ऐसा मालूम होता है कि यह शब्द अङ्गरेजो में सौराष्ट्र को लिखा है। दक्षिण-पश्चिम भारत के लोगो के लिये वराहमिहिर-कृत बृहत् सहिता में सौराष्ट्र और बादर-दोनों शब्दों को लिखा गया है। ऐसी दशा में बदरी अथवा बदरी के निवासी बादर कहे गये। दक्षिणी राजस्थान में बदरी फल अथवा बेर के पेड अधिक पाये जाते हैं। उससे मिला हुआ प्रदेश 'सौवीर के नाम से प्रसिद्ध था। उसको विदेशी लेखको ने

गिरना लिखा है और हम इसी नाम की व्याख्या करते हुए इस सत्य को साबित कर सकते हैं कि यह नाम संस्कृत भाषा का है और पुराने जमाने मे भूगोल पर हिन्दुओं का अधिकार था ।

भद्रा नदी का साधारण नाम है और उपसर्ग आर का मतलब होता है नमक का दलदल अथवा नमक की झील । उसे ऐसा भी कह सकते है कि वह स्थान जहाँ पर जल में नमक होता है । लूनी नदी का यही अर्थ होता है । लूनी नदी अपने रास्ते मे नमक की परते बिछा देती है । खाड़ी के मुहाने पर जो नगर बसा हुआ है । उसका (अरसर) (१) नाम है । इससे उपरोक्त शब्द की स्पष्ट व्याख्या हो जाती है । इसलिए कि सर झील का पर्यायवाची है और विशेषकर नमक की झील का । अगर यह नदी भादरा इस नगर में होकर बहती थी तो इसके नाम के सम्बन्ध में हमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता ।

मैंने लूनी नदी के निकास को भली प्रकार निरीक्षण किया है और मरुभूमि मे इसको अनेक स्थानो पर पार भी किया है । अब मैं नारायन-सर मे इसके मुहाने को देखने जा रहा हूँ । वहाँ पर सिन्धु नदी के इलाके में हिन्दुओं का आज भी मन्दिर मौजूद है ।

यहाँ पर अब मैं वह बात कहने जा रहा हूँ, जिसे कदाचित् कोई दूसरा नहीं कहेगा । मैं हरिद्वार से—जहाँ से उत्तर की तरफ गङ्गा अपना रास्ता काटकर बनाती है, ब्रह्मपुत्र के सगम तक जिसे टॉलमी ने (ऑरिया रेगिया) लिखा है और जो जल-लुटेरो के लिये भी मशहूर है, सिन्धु नदी के (ओनाम) समुद्र के सगम के पास तक मैं यात्रा कर सकूंगा । मैंने जो पहले यात्राये की थीं, उनके सम्बन्ध मे मैंने कोई टिप्पणी नही लिखी । यदि कुछ लिखा भी था तो उसे मैंने सिलसिले मे नही रखा । इसके सम्बन्ध मे मुझको प्राय: खेद होता है ।

२ जनवरी—भुज पहाड की श्रेणी की (निनोवी) द, अनाविले की (निनोव) अर्थात् चोटी अब उ० उ० पू० में दिखायी दे रही है । हवा रुक जाने के कारण रात-भर

सोफीर अथवा ओफीर लिखा है । अगर यह कहना सही है और बदरी फल के कारण ही वहाँ का नाम सौवीर पडा हो तो यह खम्भात की खाड़ी के ऊपर कही पर होना चाहिये । रुद्रदामन के पुराने लेख में सौराष्ट्र और भारुकच्छ के बाद ही सिन्धु सौवीर का उल्लेख मिलता है । अतएव यह सौवीर सौराष्ट्र तथा भडौच के उत्तर मे और निषध के दक्षिण में होना चाहिये । विष्णु पुराण मे सौवीर का अस्तित्व अर्बुद के समीप लिखी गयी है ।

—कनिङ्घम, एनसेन्ट जाग्रफी आफ इण्डिया । पेज ४६६—४७-

(१) अर का मतलब आरा अथवा नरसल होता है । उसके साथ मिले हुए सर को अरसर कहा गया है ।

हम समुद्र की लहरो के झोके लेते रहे। जब हम लोग माण्डवी की खारी के लंगर पर पहुँचे, उस समय दिन के दो बज रहे थे। परन्तु इससे भी अधिक परेशानी की बात यह हुई कि अब हवा ने अपना रुख बदल दिया था और वह कोटेश्वर एवम् नारायन-सर की तरफ—जहाँ पर जाकर मैं अपनी यात्रा समाप्त करने वाला था—चलने लगी थी। परिणाम यह हुआ कि हवा के झोके पूर्ण रूप से हमारे सामने पडते थे।

हवा की प्रतिकूलता का बुरा असर हमारी नाव की चाल पर पड़ा। मैं भली-प्रकार इसको अनुभव कर रहा था, उसी अवसर पर हमारी नाव के माझी ने कहा—नाव को वहाँ पहुँचने के लिए अठारह घण्टे काफी थे। लेकिन विरोधी वायु के कारण अब एक सप्ताह से कम नही लगेगा।

सराह नामक जहाज इसी महीने की १५ तरीख को बम्बई से इङ्गलैण्ड के लिये जाने वाला था। उस पर बैठने के लिए किराये के नाम पर मैं चार सौ पौण्ड जमा कर चुका था। इसलिए मैं गम्भीर चिन्ता मे पड़ गया। हवा की प्रतिकूलता ने हमे पूरे तौर पर अस्त व्यस्त कर दिया। मेरी अशाओ पर आशकाओ ने अधिकार कर लिया था। लेकिन अब तो निश्चित हो गया था कि हमे अत्र समय पर बम्बई पहुँचना किसी प्रकार सम्भव नही है। इसलिए अपने इस विवरण का एक प्रत्र लिख कर मैंने कच्छ के रेजोडेण्ट मिस्टर गार्डीनर के पास भेजकर मैं पत्र के उत्तर और हवा के रुख—दोनो को देखने के लिए वही पर रुक गया।

माण्डवी के सम्मानित राज्यपाल जेठ जी के बेटे दिन में मुझसे मिलने के लिए आये। वे मेरे साथ समुद्र के किनारे तक गये और तोपों की सलामी के साथ मुझको एक फूलो के बाग मे ले गये। वह स्थान मेरे लिए पहले से ही निश्चय कर लिया गया था। लेकिन मैंने अपनी विशाल नाव मे ही रहना पसन्द किया। इस किनारे पर माण्डवी एक बहुत प्रसिद्ध स्थान है। इसे लोग मस्का-मराडो भी कहते हैं। इसलिये कि मस्का नाम का एक बड़ा कस्बा रुक्मिणी नदी के द्वारा इससे अलग हो रहा है।

नगर के चारो तरफ एक सुदृढ परकोटा है। उसकी बुर्जों पर तोपें रखी गयी हैं। यह नगर अपने जिले का प्रमुख स्थान है। परन्तु इसकी समृद्धि और सम्पन्न अवस्था ने इसके सम्मान को अधिक बढा दिया है। कभा-कभी तो यह भी होता है कि इसके लगर पर दो-दो सौ नौकायें ठहरी रहती हैं। ये नावें अधिकांश यहाँ के निवासियो की अपनी हैं।

यहाँ पर सबसे अधिक सम्पन्न गोसाईं लोग हैं, जो धर्म और व्यापार—दोनो को मिलाकर चल रहे हैं। पल्ली, बनारस आदि स्थानो मे उनके व्यवसाय की बडी-बडी शाखाये खुली हुई हैं। यहाँ पर पच्चास से अधिक सर्राफ और कोठी वाले हैं। उनमे सभी लोग सरकार को अपनी सम्पत्ति पर कर देता है। यहाँ पर यह गृह कर

कहलाता है। इस कर से कोई भी बचा नहीं है। कहा जाता है कि इस-कर से सरकार को आमदनी पचीस हजार रुपये वार्षिक हो जाती है।

यद्यपि माराडवी से अरब और अफ्रीका के सभी बन्दरगाहो तक व्यापार होता है, लेकिन उसका विशेष व्यापारिक सम्बन्ध फारस की खाडी मे कालीकट और मस्कट के साथ है। पूर्व की तरफ से यहाँ पर शीशा, (क्ने) अथवा हरा कांच, इलायची, काली-मिर्च, सोठ, अदरख, बाँस, जहाज बनाने के लिये सागवन की लकड़ी, कस्तूरी, पीली-मिट्टी, रङ्ग और दवाये आदि एवम् मस्कस्ट से सुपारी, चावल, नारियल, छोहारे, खारिक हाजा, पिराडखजूर, रेशम और मशाले आदि का आयात होता है। यहाँ पर चुँगी से होने वाली आमदनी एक लाख रुपये है।

मैं सारा दिन नगर मे और घाट पर घूमता रहा और विभिन्न देशों के लोगों को देखता रहा। कितने ही दृश्य मनोरंजन से पूर्ण मिले। काले रंग के ईथोप, काके-शक के हिन्दकी, लम्बे-चौड़े अरब के लोग, बिनम्र हिन्दू वनिये, पराडे, पुजारी, गोसाईं जो नारगी के रंग के वस्त्र पहने हुए घूम रहे थे, देखने को मिले। मैं सभी लोगों के बीच में गया। चाहे वे नौकाओ के मालिक हो अथवा यात्री लोग हो। मैंने अपनी तरफ से सभी से बाते की। वहाँ पर आये हुए यात्रियो की ओर मैं अधिक आकर्षित हुआ। वे लोग दिल्ली, पेशावर, मुल्तान और सिंध के विभिन्न स्थानो से आये थे। वे गिरोह बनाकर समुद्र के किनारे खडे थे। कुछ लोग पक्तियाँ बनाकर नमाजे पढ़ रहे थे। उनकी स्त्रियाँ खाना बना रही थीं। कुछ स्त्रियो के आस-पास उनके बच्चे घूम रहे थे। मक्का की यात्रा अथवा हज के लिये सभी ने नीले वस्त्र पहन रखे थे। इन यात्राओं में इनका खर्च नही होता, इसलिये कि ये लोग जहाँ पर ठहरते हैं, वहाँ माँग कर खा लेते है। इस प्रकार लोगों को खिलाना अथवा भोजन देना पुराय का काम माना जाता है।

इस प्रकार की बातो से उनका समर्थन होता है, जो कहा करते हैं कि कच्छ पर न तो कभी किसी मुसलमान ने आक्रमण किया और न कभी किसी ने किसी प्रकार का कर लगाया। इस प्रकार की भावना जितनी ही धार्मिक है, उतनी ही राजनीतिक भी है। इस प्रकार की उदारता-सभी को चाहे वे किसी भी जाति और समाज के हों— अपनी ओर आकृष्ट करती है।

मेरे चारो ओर एक भीड़ जमा हो गयी। मेरी बातचीत से वहाँ पर उपस्थित पेशावर की एक मराडली प्रसन्न हो उठी। उसी समय मैंने एक दूसरी टुकड़ी के लोगों से बातें की और धार्मिक अभिमान की चर्चा की। परन्तु उन लोगो ने मेरी बात की ओर ध्यान नही दिया। मैंने जो कुछ कहा, उसे उन्होंने सुन लिया, लेकिन कुछ कहा नही।

इन मण्डलियो को छोडकर मैं आगे बढ़ा और उस स्थान की तरफ पहुँचा, जहाँ पर बन्दरगाह के किनारे जहाज एकत्रित थे। वहाँ का दृश्य अद्भुत और निराला था। उस स्थान से जहाज या तो सोफाला (१) की तरफ जाते हैं अथवा अरब की तरफ। वहाँ पर अरबी मसाले वाले (२) तट पर जाकर रुकते हैं। एकत्रित नौकावो मे लगभग बीस नौकाएँ अफ्रीका के काले आदमियो से भरी हुई थी। इन नावो का वजन लगभग छै सौ कराडी अथवा एक सौ पच्चीस टन था और प्रत्येक नौका में तोपें रखी हुई थी।

अरबी समुद्र-तट के जल-डकैत बहुत समय से इस समुद्र के निकट अपराधी के रूप में थे। वे डकैत माल लूट लेने के बाद कैदियो को जीवित नही छोड़ते थे। इसके सम्बन्ध में उनका कहना था: "बिना खून किये माल लेने को चोरी करना कहा जाता है, वह लूट नही कहलाती। अधिकार में आ जाने के बाद काफिरो को छोड़ देना मजहब के खिलाफ है।"

उन डकैतो के ये सिद्धान्त थे। लेकिन सुना है कि बम्बई-सरकार ने इन अत्याचारो को खत्म करने का निश्चय कर लिया है और उसकी तरफ से जो कदम उठाये जा रहे हैं, उनसे निश्चित रूप से सफलता मिलेगी।

अरब के जहाजो की बनावट वैसी ही है, जैसी हिरम के समय मे थी। इन जहाजो पर किरमिच के बने हुए तिरपाल फैले रहते हैं। इन पालो से नौका को खेने मे बडी सहायता मिलती है। आदमियो की तरह उनकी प्रत्येक चीज काले रंग की थी। जहाज के अगले भाग मे मिट्टी के बहुत-से घडे लटके हुए थे।

जब से मनुष्य के खरीदने और बेचने का अर्थात् दासता की प्रथा का व्यवसाय बन्द हो गया है, उस समय से बहुत-से जहाजो का आना-जाना रुक गया है। यह जरूर है कि यह व्यवसाय कानून की नजरो मे गलत और अमानुषिक है, फिर भी संसार के अनेक भागों मे इसका प्रचार था। लेकिन अब बहुत दिनो से उसके विरोध मे आवाजे उठ रही हैं और उसके फलस्वरूप वह बहुत कुछ बन्द भी हो गया है। लेकिन अभी तक वे बाजारों में बिकते हुए देखे जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि यह गैर कानूनी व्यवसाय अभी तक बिल्कुल बन्द नही हुआ। वह थोडा-बहुत चलता रहता है।

---

(१) सोफाला अफ्रीका के पूर्वीय समुद्र के किनारे पर एक बन्दरगाह है। इसी नाम की नदी के मुहाने पर कायम होने के कारण सोफाला पडा है। सन् १५०५ ईसवी मे पुर्तगालियों के अधिकार में आने के पहले यह एक मुसलमानो का मशहूर नगर और व्यापारिक मुकाम था। यहाँ पर लगभग एक हजार नावो के ठहरने की व्यवस्था थी।

(२) मस्कट बन्दरगाह।

इसके विरोधियों के विचारों का प्रभाव अफ्रीका के दासों पर बहुत-अधिक पड़ा है। वे अब स्वयं बदल रहे हैं। मेरे अपने आदमियों ने मुझे बताया है कि इन दासो में जो पहले अपने मालिक के लिये श्रद्धा और भक्ति पायी जाती थी, उसको इन दासो ने मिटाने की कोशिश की है।

जो लोग दास रखते थे अथवा मनुष्यो को खरीद कर दास बना लेते थे, उनका कहना है—ये दास अब हम लोगों के काम के नही रह गये। इसलिये कि जब उनसे काम करने के लिये कहा जाता है तो वे सीधे बात नही करते और जब बार-बार पूछा जाता है तो वह कहते हैं कि जब हमारी मरजी होगी, तब करेंगे। उनके इस तरह के जवाब को सुनकर जब उनको सजा दी जाती है तो वे बिना बताये हुए चुपके से भाग जाते हैं। जब पहले राव की सरकार थी तो इन दासो को वापस माँग लिया जाता था। लेकिन अब सरकारें बदल गयी हैं और आज की नयी दुनिया इन दासो का पक्ष लेने लगी है। यदि मालिक लोग मजबूर होकर अपना घाटा पूरा करने के लिये इन लोगों को भोजन कम देते हैं तो वे चोरी करके खाते हैं।

दासो के मालिको का यह भी कहना है कि जब इनको मारने पीटने की धमकी दी जाती है तो वे बदले मे तमाचा मारने के लिये तैयार हो जाते हैं और लड़ने-मरने पर अमादा हो जाते हैं। इसलिये आज का यह जमाना दास रखने का नही है।

इन दासो की मुसीबतो का वर्णन करते हुए उनके स्वामी लोग कहते हैं—पहले जमाने मे जब कभी इन दासो को मारा-पीटा जाता था तो न तो ये दास कभी कुछ जवाब देते थे और न कोई उनका पक्ष लेने वाला होता था। लेकिन अब दुनिया बदल गयी है और जिसको देखो वही इन दासो का हिमायती बन गया है। पहले कभी मारे-पीटे जाने पर ये लोग कहा करते थे—"मार डालो, हमारे मरने पर कौन कोई रोने वाला बैठा हैं। हम तो बेसहारा के हैं। न तो माता है, न पिता है और न हमारे कोई परिवार हैं।"

इस प्रकार की बहुत-सी बाते उन लोगो ने मुझसे कही। जिन्होंने इस प्रकार के गैर-कानूनी व्यवसाय से बहुत बड़ा फायदा उठाया था और धन एकत्रित किया था। लेकिन उनके अब ये व्यवसाय ठण्डे हो रहे हैं और जो लोग खरीदे जाने के बाद दास बनाये जाते हैं, वे अपने अधिकारों को समझने लग गये हैं। उनको अब इस बात का ज्ञान हो गया है कि हम भी अब अपने अधिकारों की रक्षा करेंगे। हम भी उसी प्रकार के मनुष्य हैं, जैसे कि दूसरे लोग होते हैं। हमको कोई दास नहीं बना सकता और न हमारा कोई मालिक हो सकता है।

मैंने यहाँ पर सिद्दी नाविकों को देखा। वे प्रसन्न रहते हैं। उनका शरीर सुगठित और मजबूत होता है। अपने स्वस्थ शरीर में वे दूसरो की अपेक्षा अच्छे माने जाते हैं। ये लोग जहाजी बेड़े के अच्छे सिपाही होते हैं। वे जहाजो पर भी काम करते

हैं और बन्दरगाहों पर भी । दासता के दिनो मे इन लोगो की हालत बहुत खराब थी । लेकिन अब उनका वह समय बदल गया है ।

३ जनवरी—हवा अब भी हमारे लिए प्रतिकूल चल रही थी । इसलिए विवश होकर हमको अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करना पडा और उसके अनुसार भुज के समुद्री किनारे पर जाने का मैंने निश्चय किया । यदि वहाँ पर मुझे बम्बई से इङ्गलैण्ड जाने वाले जहाज के देरी मे रवाना होने का समाचार मिला, अथवा लौटने पर इस हवा में कोई परिवर्तन न हुआ तो फिर प्रत्येक क्षण सकट का सामना करने के लिए मैं तैयार हो जाऊँगा ।

मैंने कल रात को ही एक सैनिक सवार के द्वारा मिस्टर गार्डीनर के पास भुज दरबार का निमन्त्रण स्वीकार करने का समाचार भेज दिया है । मेरी यात्रा को जल्दी सम्पन्न कराने के लिए उन्होने एक घोडो की डाक गजनी भेज दी है और दूसरी मैंने यहाँ से भेजी है ।

राज्यपाल माननीय जेठा जी ने एक जीन सवारी का घोडा और कुछ सवार सैनिक पहली यात्रा के लिये मेरे पास भेज दिये हैं । मैं आज ही सायकाल रवाना हो जाऊँगा । फासला लगभग पचास मील का है । कल प्रातःकाल कलेवा के समय वहाँ पर पहुँच जाऊँगा ।

नगर की गलियो में घूमकर और वहाँ के प्राचीन दृश्यों को देखकर मैंने अपना समय पूरा किया । यह एक कस्बा है, जिसमे पाँच हजार मकान हैं । सभी मकान पक्के बने हुए हैं । उनमें बीस आदमियो की आबादी है । जब यह नगर अच्छी हालत में था तो इस बन्दरगाह पर रोजाना आने-जाने जहाजो की सख्या चार सौ से कम न थी । वे सभी जहाज यहाँ के धनी-मानी व्यक्तियो के ही थे । व्यापार के लिए उन लोगो ने इन जहाजो को रखा था । यह अवस्था पहले की थी लेकिन अब हालत बदल गयी है । सभी स्थानो का व्यापार ढीला पड गया है । उसका प्रभाव माण्डवी पर भी पडा है । अरब तथा अफ्रीका जाने वाले कुछ थोडे से जहाजो को छोडकर किनारे मालाबार तक का व्यापार बहुत-कुछ कम हो गया है । इससे नगर की दशा पहले वाली नही रह गयी ।

राव गोर के समय मे माण्डवी की अवस्था बहुत उन्नति पर थी । इसलिये कि राव स्वयम् समुद्री यात्राओ में दिलचस्पी लेता था और अधिक से अधिक फायदा उठाने के लिए उसने डच कारखाने के नमूने पर एक विशाल महल इस बन्दरगाह पर बनवाया था । परन्तु पिछले दिनो के भूकम्प के कारण पश्चिमी भारत की अन्य इमारतों के साथ-साथ राव गोर का यह महल भी हिलकर टुकडे-टुकडे हो गया ।

राव ने जहाज बनाने का एक कारखाना भी खोला था । उसमे जो जहाज बनाये जाते थे, उनकी देख-रेख वह स्वयम् करता था । उत्साही पीटर महान की तरह

उसने भी निश्चय किया था कि उसके कारखाने में बना हुआ जहाज उसी के नेतृत्व में इङ्गलैण्ड तक समुद्र के रास्ते से जायगा।

उसके निश्चय के अनुसार यात्रा आरम्भ हुई। वह जहाज बरसात के दिनो में मलावार के किनारे तक जाकर लौट आया। अभी भी खारी और लंगार पर दो और तीन सौ के बीच जहाज हैं। उनमें से एक जहाज तीन मस्तूल वाला कच्छ के राव का है। राव गोर और भाव नगर के गेहिला राजा—दोनो ही में हमको एक सी मनोवृत्ति मिलती है और वे दोनों ही परिस्थितियो के अनुसार अपने को मोड़ना जानते हैं। इस-लिए कि जहाजो और व्यापार के साथ सम्बन्ध रखने के कारण राजपूतों के स्वभाव में किसी प्रकार की विरोधी भावना नही मिलती।

मोम की मोटी-मोटी रोटी की तरह अर्द्ध-पारदर्शक गैण्डे के चमड़े सारे बाजार में लटके हुए थे। इनसे ढाले तैयार की जाती थी। स्त्रियो के लिए चूड़े और दूसरे गहने बनाने के लिये हाथी-दाँत, सूखे और ताजे खजूर, किशमिश बादाम, पिस्ते आदि से वहाँ का बाजार भरा था। माण्डवी का व्यापार इन पदार्थों के लिए मशहुर था। यहाँ के बाजार में कपास का व्यापार मुख्य माना जाता है। इनकी गोल और चपटी गाँठें दवा-दबाकर बाँधी जाती हैं। यहाँ के बाजार में सूती कपड़ा, शक्कर, तेल और घी भी विकने को आता था।

यहाँ के कागज-पत्रो में माण्डवी को अब भी प्रायः इसके प्राचीन नाम रायपुर-बन्दर अथवा रायपुर का बन्दरगाह लिखा जाता है। जो खाड़ी अथवा खारी से तीन मील ऊपर की तरफ प्राचीन राईं के कारण पडा था। मैंने उस स्थान को जाकर देखा। दो छोटी झोपड़ियाँ वहाँ पर दिखायी पडी। वहाँ पर किसी स्मारक के होने के आसार नही दिखायी पड़े। एक छोटा-सा वहाँ पर मन्दिर अवश्य था, वह मन्दिर तरुणनाथ का कहा जाता है।

उस मन्दिर के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बाते सुनने को मिली। लोगों ने बडे विश्वास के साथ बताया, तरुणनाथ एक प्रसिद्ध योगी थे और कुछ अज्ञात शक्तियों पर उनका अधिकार था, यह भी लोगों ने बताया कि राईं और उसके निकटवर्ती गाँवों के लोगो के द्वारा नैतिक आदेशो का पालन न होने के कारण योगिराज ने उन स्थानों को शाप देकर नष्ट कर डाला था।

मैंने इन बातो को ध्यानपूर्वक सुना। मैं भली प्रकार इन कथाओं के सम्बन्ध में जानता हूँ कि हिन्दुओ के इन आख्यानों में केवल कोरी कल्पनायें नही होतीं। उनके साथ निश्चित रूप से किसी गम्भीर घटना का समावेश होता है। दूसरे स्थानो के हम आख्यानो को सुनकर और फिर उनमें अनुसंधान करने के बाद मैंने अपना ऐसा विश्वास उनके सम्बन्ध में कायम किया है।

राई के प्राचीन राजा वर्तमान भुज के राजाओं से गये-गुजरे नही थे। उनको आज तक प्रायः भूकम्प के धक्के सहने पडते हैं। वे हमेशा यह सोचा करते हैं कि भूकम्प कभी भी आ सकता है और उसके द्वारा थोड़ा अथवा बहुत—कुछ भी विनाश हो सकता है। इसलिये वे सदा इस प्रकार की आशकाओ से सचेत और सावधान रहा करते हैं।

पहले ज्वार के समय राई तक जहाज आ जाते थे। लेकिन अभिशप्त होने के बाद से मिट्टी की एक दीवार ने प्रवेश का रास्ता बन्द कर दिया। उसके नीचे बहने वाली नदी अब खारी नही रही बल्कि उसमे अच्छा जल प्रवाहित होता रहता है। मैं तरुणनाथ के मन्दिर तक गया और जब मैं उस मन्दिर की सीढियों पर चढने लगा, उसी समय मैंने वहाँ पर एक कनफटा देखा। वह कनफटा योगी वृद्धावस्था मे चल रहा था। कानफटे होने के कारण लोग उसको कनफटा कहते हैं।

उस मन्दिर के पास मैंने उस कनफटे को रहस्यमयी क्रियायें करते हुए देखा। वह कनफटा तरुणनाथ के ही सम्प्रदाय का था। वह बडी देर तक अपने गुरुजनो की समाधियो पर जल चढाने के साथ-साथ हरे पत्ते चढाता रहा और धूपवर्ती के द्वारा आहुति करता रहा। मैं लगातार उसकी तरफ देखता रहा। मैंने भारत में अब तक जितने भी स्मारक देखे हैं, यह स्मारक सबसे अधिक विचित्र हमे मालूम हुआ। बाल के पुजारियों के साथ इसके सम्बन्ध स्पष्ट प्रकट हो रहे थे।

ये स्मारक बहुत छोटे हैं और उनकी सीढ़ियाँ भी उन्हीं के अनुरूप बनायी गयी हैं। बीच मे एक स्तम्भ खडा हुआ है। इस श्मशान भूमि के खण्डहरो मे रहने वाले इस एकान्त प्रिय प्राणी से मैंने बातचीत आरम्भ की। मुझे तुरन्त इस बात का आभास हुआ कि वह या तो अपने सम्प्रदाय के कर्मकाण्ड के सिवा और कुछ जानता नही है, अथवा उसने उसके सम्बन्ध में कुछ बातचीत करना उचित नही समझा।

मुझे बताया गया कि वहाँ पर प्रायः चाँदी के सिक्के मिलते हैं। यह जानकर मैं उन खण्डहरो में घूमता-फिरता रहा। बड़ी देर के अन्वेषण के फलस्वरूप, मुझे दो सिक्के वहाँ पर मिले भी। वे सिक्के अच्छी हालत मे थे। उन सिक्को मे एक ओर मुकुट पहने हुए राजा की आकृति बनी थी और दूसरी तरफ एक अजीब शक्ति के साथ कुछ ऐसे अक्षर लिखे थे, जो किसी प्रकार पढे नहीं जाते थे। उनके अक्षर कुछ उसी प्रकार प्रकार के थे, जैसे गिरिनार के शिला-लेख मे मिले थे।

राई के खण्डहरो से लेकर प्राचीन उज्जैन तक समुद्र के तट पर आने वाले नगरों मे समय पर इसी प्रकार के सिक्के मिले हैं। उनसे साफ जाहिर होता रहा है कि इस क्षेत्र में किसी शक्तिशाली राजवंश का विशाल साम्राज्य रहा था। वह विशाल साम्राज्य अनहिलवाडा के बल्हरा राजवंश का था। अथवा किसी दूसरे राजवंश का था, इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

बाईसवाँ प्रकरण

इतिहास और समाज के कुछ विचित्र-चित्र

नीद के साथ मन का लगाव—शोध का कार्य और जन-साधारण की धारणा—अन्वेषको के जीवन का सुख—मकानो और महलो में भूकम्पों का प्रभाव—कच्छ के स्मारक और समाधि-स्थल—लाखा का प्रसिद्ध स्मारक—जाड़ेचा लोगो का बार-बार धर्म-परिवर्तन—मिस्टर गार्डिनर से मुलाकात और उसकी सहायता—जाड़ेचा सरदार का स्वागत्—सात वर्षीय बालक राजा सिंहासन पर—जाड़ेचा जागीरदारो के बैठने का दीवानखाना—भुज के शेर महल और शीश महल—राज महलो के निर्माण में अपरिमित सम्पत्ति का खर्च—सोने से बने हुए पायों का राव लाखा का पलंग—जाडेचा वंश का प्राचीन इतिहास—राजपूतो के विवाहो में गोत्र का विचार—प्राचीन काल के संकुचित विचारो का त्याग—कृष्ण के वंश में बुद्ध के अनुयायी—यादव वंश में बौद्ध धर्मावलम्बी।

४ जनवरी १८२३—यदि किसी पश्चिमी देश के श्रमणशील आदमी को रात का भोजन करा देने के बाद उसको काफी के स्थान पर घोडे की सवारी के लिये आमंत्रित किया जाय और घोडे पर ही सारी रात बिताने के लिये उससे अनुरोध किया जाय तो मेरी समझ में उसको एक भयानक कठिनाई की अनुभूति होगी। लेकिन अभ्यास इसके लिये उसको तैयार कर लेगा। लेकिन यदि इस प्रकार के श्रम के बदले उसको ऐसे दृश्य देखने को मिलें, जैसे मैंने देखे हैं तो उसको एक तरह का एक अद्भुत आनन्द प्राप्त होगा। यदि उसके स्वभाव में साहस का अस्तित्व है तो उसके द्वारा उसे ऐसा सुख प्राप्त होगा, जिससे सारी रात अपने आप कट जायगी और सबेरा होने में देर न लगेगी। इतना नही, कदाचित वह सोचने लगेगा कि उसकी वह रात कुछ और बड़ी होती!

मन को उभारने और स्फूर्ति देने वाली जब कोई सामग्री मिल जाती है तो वे सभी परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, जिनका मनुष्य अभ्यासी होता है। किसी के संस्मरण और स्मारक भी इसी प्रकार की सामग्री में गिने जाते हैं। लेकिन उनका प्रभाव उन्ही के मानोभावों तक काम करता है, जो उनके महत्व को समझने और पहचानते हैं।

अन्धकार पूर्ण जङ्गलो और जनहीन मैदानो में, अपरिचित स्थानों और देशों

मे जो स्मारको और सस्मरणो की खोज करने निकलते हैं, उनके मनोभावो में क्या बात होती है ।, इसे सब कोई नही जानता ।

काठियो की प्राचीन राजधानी कठकोट के खण्डहरो और वहाँ के टूटे फूटे मन्दिर के पत्थरो मे शिला-लेखो की खोज का काम कुछ इसी प्रकार का था, जहाँ पर मैं अपने कुछ साथियो को लेकर पागल की भाँति घूम रहा था । चारो ओर सन्नाटा था । मेरे और मेरे मार्ग प्रदर्शक के पैरो की आवाज के सिवा वहाँ पर कोई आवाज न थी । इस सन्नाटे को हमारे घोडे भी भली प्रकार समझते थे और इसीलिए वे अपने गरदनो को हिला-हिलाकर चल रहे थे । वे कुछ कर नही पाते थे, लेकिन सभी कुछ अनुभव करते थे । यह दृश्य उस समय और भी अनोखा हो गया, जब मशाल की रोशनी उन दाढी वाले लोगो के मुख पर पडती थी, जो इन मुकामो पर घूमते और भटकते हुए एक फिरगी को देखकर आश्चर्य चकित होते थे । उस समय का यह दृश्य तो (गेरार्डडो) (१) अथवा (स्कलकेन) के देखने के योग्य था और कच्छ मे घोडे की पीठ पर बितायी हुई रात के समान था ।

(बर्कहार्ड) का कहना है कि जब वादी मूसा और हारूँ की मजारें देखने गया और वहाँ के खण्डहरो में शिला-लेखो की खोज करने लगा तो जिन्होने उसे देखा, उन लोगो ने उस पर अविश्वास किया और उसको दफीना खोजने वाला कोई जादूगर समझा । सम्पूर्ण भारत मे वही धारणा फैल गयी ।

मेरे सम्बन्ध में भी कोई आश्चर्य की बात नही हुई, यदि इस प्रकार की धारणा किसी ने बना ली हो । यह बात सही है कि मुझे बहुत-से लोग पहले से जानते थे । लेकिन उन लोगो की सख्या कम थी, जो मेरे शोध के कार्य को लक्ष्मी की अपेक्षा सरस्वती से अधिक सम्बन्धित मानते हो । जो कुछ हो, ऐसी धारणा का बिल्कुल आदर न करना सगत नही माना जा सकता । इसलिये कि पूर्वीय देशो के लोग प्राचीन काल से अत्याचारो के शिकार बन चुके हैं, वे सदा लूटे-मारे गये हैं, इसलिये यहाँ के लोग अपनी सम्पत्ति को जमीन के भीतर गाडकर रखने मे अधिक सुरक्षित समझते हैं । इसीलिये वे अनुमान लगाते हैं कि खण्डहरों और उजडे हुए स्थानो मे भटकने वाला कोई व्यक्ति इसलिये घूम रहा है कि उसे कोई खजाना मिलेगा ।

प्रातः होते ही भुज की पहाडियाँ दिखायी देने लगी और उनकी ऊँची चोटियाँ दूर से ऐसी मालूम हो रही थी, मानो वे आसमान को स्पर्श करने जा रही हैं । मैंने दूर से ही वहाँ की पहाड़ियो का यह दृश्य देखा । परतु जाडेचा के निर्माण कला की विशेषता का कोई प्रमाण नही मिल रहा था ।

पिछले दिनो मे जो भूकम्प यहाँ आया था । उसका अधिक प्रमाण यही की

(१) व्यंग्य चित्रकार ।

इमारतो पर पडा था। उस भूकम्प के कारण यहाँ के मकानो और महलो में दरारें हो गयी थी। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि शासन की तरफ से उनकी तरफ से उनकी मरम्मत कराने का कोई कार्य नही किया गया।

सूरज के निकलते-निकलते मैं राजनीतिक एजेण्ट मिस्टर गार्डिनर के निवास-स्थान पर पहुँच गया। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि साहब वायु-सेवन के लिये निकल गये हैं। इसलिये मुझे कुछ समय बिताकर उनसे भेट करनी थी। अतएव मैंने कच्छ के रावो के समाधि-स्थलो की ओर का रास्ता पकडा। ये स्मारक झील के पश्चिमी भाग पर बने हुए हैं। उनके बीच में एक टापू है।

इन स्मारको में पुरातत्व और चित्रकला दोनो ही विषयो की महत्वपूर्ण सामग्री मौजूद है। सन् १८१८ ईसवी के भूकम्प ने जाडेचो के इन स्मारको को बुरी तरह से हिलाकर आघात पहुँचाया था। कुछ स्मारक बिल्कुल अप्रभावित रहे और कुछ स्मारक गिरकर ढेर हो गये, कुछ दस्तूर कायम रहे। राव लाखा के स्मारक में—जो बहुत ठोस बना हुआ था—कुछ भी नुकसान नही पहुँचा।

इन स्मारको की बनावट राजपूताना के स्मारको से बिल्कुल भिन्न है। क्योकि राजपूताना में चबूतरे पर स्तम्भो के ऊपर गुम्बज बना देते हैं। लेकिन यहाँ पर पत्थरों की पतली दीवार सी खड़ी करते हैं और उनकी रक्षा के लिये एक अच्छी खासी जाली लगा देते हैं, जिससे स्मारक घिर कर सुरक्षित बने रहते हैं। उनके ऐसा करने से किसी प्रकार की अपवित्रता अथवा गन्दगी स्मारक के भीतर नही पहुँचती।

इन स्मारको मे होकर मैंने राव लाखा (१) का स्मारक देखा, उसमे घोड़े पर सवार, हाथ मे बल्लम लिये हुए उसकी उभरी हुई आकृति बनी हुई थी। राव लाखा के स्मारक के दोनों ओर बराबर बराबर सख्या मे छोटे-छोटे स्मारक बने हुए हैं, जो उसकी रानियो और उनकी दासियो के है और उन्ही रानियो तथा दासियो के स्मारक यहाँ पर बनाये गये हैं, जिन पर उस समय की तिथि का उल्लेख था।

इन स्मारको के पास ही गदा के रूप मे एक स्तम्भ खडा था। उसके ऊपर दीपक रखने का स्थान खोखला करके बनाया गया है। इससे राजपूतो की दाह क्रिया के साथ-साथ मुसलमानो के तरीको को भी अनुभूति होती है। कहने का अभिप्राय यह कि यहाँ की इस प्रणाली से राजपूतो ओर मुसलमानो—दोनो को परम्पराओ का परिचय मिलता है।

इसका कारण है। वास्तव मे जाडेचा लोगो ने अनेक बार अपने धर्म का परि-

---

(१) इन स्मारक के श्रेष्ठ नक्शे के लिये मैं अपने पाठको को कैप्टेन ग्राइण्डले की लिखी हुई "सीनरी आफ वेस्टर्न इण्डिया" नामक पुस्तक पढ़ने के लिये अनुरोध करता हूँ।

वर्तन किया है । ऐसी दशा मे उनके लिये यह कह सकना बहुत कठिन हो गया है कि वे किस धर्म के अनुयायी हैं ।

इन सभी समाधियो पर छेनी से काट-काटकर बनायी गयी आकृतियों को देख कर ज्ञात होता है कि ये लोग यहाँ के शूर वीर थे । इनमे केवल एक समाधि ऐसे आदमी की है, जिसने स्वयं आत्म-हत्या की थी । उसकी समाधि पर ऐसी आकृति बनायी गयी है, जिसने घुटने टेक रखे हैं और जो शाप देने की मुखमुद्रा मे कटार को अपनी छाती पर रखे हुए है । कदाचित् यह समाधि किसी चारण अथवा भाट को स्मृतियो को कायम रखने के लिये बनायी गयी है ।

भुज नगर तीन शताब्दी से अधिक पुराना नही है । ऐसी हालत में जाडेचा लोगो के सम्बन्ध में वहाँ पर शिला-लेखो की खोज करना बेकार है । लेकिन वहाँ पर कुछ स्मारक ऐसे जरूर थे, जिनमे कुछ पुराने लेख पाये गये हैं । परन्तु वे ऐसे मिट गये हैं कि जो पढे नही जा सकते ।

वापस लौटकर आने पर रेजीडेण्ट साहब और उनके सहायक लेफ्टीनेण्ट वाल्टर से भेंटे हुई । उनके स्वागत-सत्कार के कारण इन यात्राओ में जिन असुविधाओ का सामना करना पडा था, उनकी पूर्ति एक साथ हो गयी । सिन्धु नदी के पूर्वी किनारे की तरफ मेरा जाने का इरादा था, इसे जानकर मिस्टर गार्डिनर ने तुरन्त प्रबन्ध करा दिया, जिससे मैं आसानी के साथ वहाँ पर पहुँच सकूं । लेकिन मेरे सामने एक अनिश्चित अवस्था उत्पन्न हो गयी । अगर मैं उनके प्रबन्ध को स्वीकार करता हूँ तो विना वहाँ पर रुके हुए मुझे फौरन चला जाना चाहिये और जाडेचो के इतिहास तथा उनकी अन्यनय बातो की खोजना अपना निश्चय खतम कर देना चाहिये था । अतएव मैंने भुज मे छत्तीस घन्टे रुकने का निर्णय किया ।

मैंने उस समय अनुमान लगाया कि सम्भव है उस समय तक जो हवा चल रही है, उसमे फिर से परिवर्तन हो जाय और फिर माण्डवी जाकर मैं अपने कार्यक्रम को पूरा कर सकूं । मैंने अपना विचार प्रकट कर दिया, उसे सुनकर हमारे मेजमान साहब बहुत प्रसन्न हुए, मुझे अपने इस कार्य में मिस्टर गार्डिनर से उन सभी बातो की जानकारी हुई, जिनको वे स्वय जानते थे, इसके सिवा भाट अपनी-अपनी पोथियाँ लेकर मेरे पास पहुँच गये ।

प्रतिनिधि-मडल के प्रमुख माननीय रतन जी के साथ मेरी बातें आरम्भ हुईं । उनका स्वभाव बहुत अच्छा था । उन्होंने अपने रोचक तरीको से जाडेचा शासन के विस्तृत विवरण मेरे सामने रखे । उन्होने मुझे यह भी बताया कि इनके और राजपूतो के शासन में किस प्रकार का अन्तर है ।

रतन जी बहुत समय तक मेरे साथ बाते करते रहे और मेरे प्रत्येक प्रश्न को सुनकर बड़ी सावधानी और गम्भीरता के साथ मुझे उत्तर दिया । मेरे लिखने के समय

वे जरा भी ऊबे नहीं और बड़ी प्रसन्नता के साथ वे मेरे पास बैठे बातें करते रहे। उनके सहयोग से मुझे आवश्यक सभी सामग्री मिल सकी।

जब मैं भोजन कर चुका तो भुज के मुसाहब, प्रतिनिधि मंडल के सदस्य और राजधानी में उपस्थित समस्त जाडेचा-सरदार मुझसे मिलने के लिये आये। उन सबके के स्वागत और सत्कार से मैं बहुत प्रभावित हुआ। मुझे उनके व्यवहारों मे बडी शालीनता मिली। उनके सभी तर्ज और तरीके इस बात का प्रमाण दे रहे थे कि वे लोग श्रेष्ठ जगत के आदमी हैं। परन्तु वे लोग इतने लम्बे कद में नही थे, जितना कि मैंने उन सबके सम्बन्ध में सुन रखा था। उनके रग मे भी पूर्वीय राजपूतो से अधिक अन्तर नही था। उनकी ठोढी पर बीच मे कुछ बाल बने हुए थे। इसलिये उनकी दाढ़ियाँ कुछ अन्तर लिये हुए जरूर थी। परन्तु और कोई विशेष अन्तर नहीं था।

जाडेचा लोगो को देखकर मुझे जो एक अन्तर साफ मालूम हुआ, वह यह कि उनके पहनने के वस्त्र बहुत लम्बे-चौडे और ढीले थे। उनके पाजामे तो गजब के ढीले थे, सिर पर वे लोग पगड़ी बाँधे थे, जो अच्छी लगती थी।

दूसरे दिन दोपहर को राजा के दरबार मे गया, वह राजा केवल सात वर्ष का एक बालक था, ऊपर यह लिखा जा चुका है। वंश की परम्परा के अनुसार, अंतिम देसल राजा के बाद पाँचवी पीढ़ी मे इस बालक राजा ने देसल के नाम से सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त किया है। जैसी कि राजपूतों मे परम्परा है, ये लोग भी अपने नाम के साथ पिता का नाम शामिल करते हैं। अतएव वर्तमान राजा देसल भारानी अर्थात् भार का बेटा देसल है। वह देसल गोरानी अथवा यों कहा जाय कि गोर के बेटे देसल के साथ कोई सम्पर्क नही रखता।

इस वंश में इस नाम के केवल दो राजा हुए हैं। इस वंश की लम्बी वंशावली है, उसमें कुछ परिवर्तनों के साथ लाखा और रामधन के नाम बार-बार आते हुए देखे जाते हैं, उस वंश में ये दोनो ही अधिक प्रसिद्ध माने गये हैं। शहर का हिस्सा मैंने महल मे जाते समय ही देखा। मैं नही जानता कि पूरे नगर की क्या अवस्था और व्यवस्था है, लेकिन जितना भाग मैंने देखा यदि उसके अतिरिक्त वहाँ के बाकी हिस्से में कोई विशेष बात नही है तो शेष नगर के न देख सकने का मुझे कोई ख्याल नही है।

बालक राजा एक सिंहासन पर बैठा हुआ था, वह सिंहासन अन्य राजाओ के सिंहासनो से ऊँचा था। कदाचित् इसलिये कि वह दूसरो की बैठको अथवा कुर्सियो से ऊपर दिखायी पड़े। लेकिन बैठने के लिये इस प्रकार की कुर्सियाँ अथवा दूसरी कोई चीज राजपूतों के दरबारो में कभी देखने को नही मिली। लम्बा और विस्तृत दीवान खाना जाडेचा जागीरदारों से पूरे तौर पर भरा हुआ था। जैसे ही मैंने दरबार में प्रवेश

किया, एक साथ दरबार में उपस्थित भाटो ने भूतपूर्व जाडेचा वीरों के नाम और पराक्रम का बखान करना आरम्भ किया, भाटो की आवाज, गुणो के वखान करने के तरीके और वे भी शायरी एवम् कविता मे, सरदारो, जागीरदारो और राज्य के अन्य समस्त अच्छे आदमियो से भरा हुआ विशाल और भव्य राज-दरबार गूंज उठा। उस व श के राजाओ, शूर-वीरो और पूर्वजो के गुण गानो से जो आवाज पृथ्वी पर उठी, वह आकाश तक पहुँची, मैं इस दृश्य को देखकर रह गया।

भाटो की आवाजों के शान्त होने पर वालक राजा ने मेरा स्वागत किया और उसके पश्चात् मैं रतन जी के साथ भुज के शेरमहल और शीश महल को देखने के लिये गया, वहाँ पर जिस प्रकार का शीश महल देखा, वैसे महलो को अन्य राज्यो मे भी मैंने देखा था। इस प्रकार के शीश महल विभिन्न नामो से राज्यो मे प्रत्येक रईस, सरदार और जागीरदार के पास होता है। जिस शीशमहल को मैंने रतन जी के साथ जाकर देखा, उसके निर्माण मे अस्सी लाख अर्थात् कच्छ-राज के तीन वर्षों की आय खर्च की गयी थी। मैंने इस दृष्टिकोण से भी उस महल को देखा। राजा के सिवा, उसके प्रत्येक रईस, सामन्त और जागीरदार के पास ऐसे महल का होना कम चमत्कार पूर्ण नही था। जिन राज्यो की प्रजा भोजन और वस्त्रो की व्यवस्था से सन्तुष्ट न हो उसके रईसो जागीरदारो और अन्य लोगो की यह अवस्था।

मैंने उस शीश महल को भली प्रकार देखा। महल के चमत्कार की अपेक्षा मैंने बनवाने वाले राव लाखा के चमत्कार को देखने और समझने की चेष्टा की। इसके निर्माण मे मैंने लाखा के किसी विवेक को अनुभव नही किया। उसके पूर्वजो ने एक बडी कन्जूपी के साथ इस पूंजी को एकत्रित किया था और अपनी प्रजा को नगे-उघारे रखकर अपना खजाना भरा था, उस पूंजी और सम्पत्ति से इस प्रकार के महलों और मकानो का निर्माण करना अथवा कराना उस सम्पत्ति का अपव्यय ही कहा जा सकता है।

इस शीश महल का भीतरी भाग सगमरमर का बना हुआ है। उसमे सर्वत्र कांच जडे हुए हैं और उसके विशेष भागों को सोने के कीमती आभूषणो से अलकृत किया था है। प्रकाश के लिये छतों मे झाड़ लटक रहे हैं। वे सभी कांच के बने हुए हैं, साथ ही उनमे सुन्दर दृश्यो और चित्रो को अकित किया गया है। फर्श पर चीनी टाइले जडी हुई हैं। वह स्थान डच एवम् अँगरेजी सुरीली घडियो से आरास्ता किया गया है। यदि उन सबको एक साथ आरम्भ कर दिया जाय तो एक पूरा डच-सहगान शुरू हो जायगा।

दीवारो के बीच में बने हुए ताको में कांच के विभिन्न प्रकार के पदार्थ भरे हुए हैं, उनको देखकर मालूम होता है कि ये स्थान किसी मणिहार अथवा बिसाती के हैं

और जो कांच की बनी हुई चीजों को बेचने के लिये दूकान रखता है। कांच अथवा शीशे की बनी हुई तरह-तरह की मूर्तियाँ दीवारो पर लगी हुई हैं। इस कीमती सजावट के बीच में राव लाखा का वह पलङ्ग रखा हुआ है, जिसमे उसकी मृत्यु हुई थी। उस पलङ्ग के चारो पाये सोने के हैं और उस पलङ्ग के सामने सदा अखण्ड ज्योति जलती रहती है।

राव लाखा का यह पलङ्ग, कुल-देवताओं की भाँति इस वंश मे आराध्य और पूज्य मान लिया गया है और यह भी सही है कि जब तक यह नाशमान पलङ्ग बना रहेगा, इसी प्रकार इस वंश मे और विशेषकर राज्य के लोगों द्वारा पूजता रहेगा।

इस विशाल स्थान के चारो ओर एक बरामदा है। उसकी फर्श पर भी टाइल जड़ी हुई हैं। दीवारो मे जो चित्र लगे हुए हैं, वे न तो एक मेल के हैं और एक लम्बाई चौड़ाई के हैं, जैसे मेवाड का राणा जगत सिंह रूस की सम्रारी कैथाराइन के साथ है, मेवाड़ का राजा बख्तसिंह और होगार्थ का चुनाव, दूसरे फ्लेमिश जो बेलजियम का निवासी था, होगार्थ स्वयं प्रसिद्ध अङ्गरेजी चितेरा था। उसका समय १६६७ से १७६४ ईसवी तक माना गया है। वह अपने समय के सभी अविवेक पूर्ण कार्यों पर व्यंग्य चित्र बनाया करता था। इसी प्रकार केचित्रो की एक प्रदर्शिनी अभी तक उसके निवास स्थान पर है और उसका वह स्थान लण्डन मे है। अंग्रेज तथा भारत की प्रजा के लोगो के साथ कच्छ के प्रथम राव से लेकर अब तक के सभी राजा मौजूद हैं। इस प्रकार इन चित्रो मे जो असम्बद्धतायें हैं, वे अनेक प्रकार से बेतुकी हैं, लेकिन इन चित्रो को देखकर जो सूत्र अप्रकट रूप मे दिखायी देते हैं, उनमे अनुसन्धान की कुछ सामग्री प्राप्त की जा सकती है। प्राचीनकाल के रावो मे जिस प्रकार के पर्दे होते थे और सजावट हुआ करती थी, जैसी उनकी पोशाकें होती थी, इन सभी बातो मे बड़ा अन्तर पड गया है। अब न तो वह रहनसहन है और न जीवन की पुरानी अवस्था तथा व्यवस्था है।

वहाँ से चलकर हम लोग नवीन बने हुए दरबार में गये। यह स्थान अभी पूरा बन नही पाया था। लेकिन जिस तरह उसका निर्माण हो रहा था, उसमें सादगी थी और सजावट भी उस प्रकार की नही थी, जैसी कि ऊपर लिखे हुये महलो की बनावट और सजावट का वर्णन किया गया है। इस दरबार अथवा सभा-मण्डप मे सभी प्रकार की दृढ़ता, सुविधा और उपयोगिता साफ-साफ दिखायी देती है। स्पष्ट बात यह है कि इसका निर्माण पिछली इमारतो के निर्माण से बिल्कुल भिन्न है।

यह सभा-स्थल इतना विशाल और लम्बा-चौड़ा है कि उसमे झाड़ेचा वंश के सभी लोग शासनों के साथ एकत्रित होकर बैठ सकते हैं। इस स्थान को चारों ओर से काले पत्थरो से तैयार करके एक टापू-सा बना दिया गया है। इससे लाभ यह होगा कि लोगो को किसी भी मौसिम में शीतल वायु मिलेगी और गरमी के दिनो में यहाँ पर बैठकर लोग बहुत अधिक सुख तथा शान्ति को अनुभव करेंगे।

यह दरबार जिस महल का एक भाग है, वह झील के सामने बनवाया गया है। यहाँ पर भी सजावट के लिये अनेक प्रकार के उपकरण रखे गये होंगे, मेरा ऐसा अनुमान है और मेरा यह भी ख्याल है कि बनावट और सजावट—दोनो में यह महल इससे पहले बने हुए महलो से बिल्कुल भिन्न होगा। लेकिन समय के अभाव में मैं उस महल को —जो नया बन रहा है, देख नही सका और इस दशा मे मैं लौटकर वापस आ गया।

अब मैं जाडेचा लोगों के पुराने इतिहास पर प्रकाश डालना चाहता हूँ। मेरी धारणा थी कि जाडेचा लोगो के राज्य में जाने पर वहाँ के राजवंश की प्राचीन परिस्थितियो की एक अच्छी खासी सामग्री मिलेगी और यह भी विश्वास था कि अन्य वशजो के परिचय प्राप्त हो सकेंगे। टेस्सारियस्टस उन्ही वशो मे से हैं, जिसके राज्य पर ईसा से दो शताब्दी पहले मीनाण्डर और अपोलोडोटस ने आक्रमण किया था।

मुझे यह जानकर बहुत विस्मय हुआ कि कच्छ में जाडेचा लोगो का अधिकार मुस्लिम विजय के दिनो मे ही हुआ था और स्वतन्त्र राज्य की हैसियत मे उनका जीवन तीन सौ वर्ष पहले का नही है। जाडेचा लोगों की वशावली तीन सौ वर्षों के भीतर की है। इन दिनो की तीन-चार घटनायें ही ऐसी मिल सकती हैं, जो उनके इतिहास पर प्रभाव डालती हैं। किसी प्रकार प्राप्त होने पर भी वे घटनाये अपने तथ्य के साथ महत्व रखती हैं। उनको प्राप्त करने वाले हिन्दू पुरातत्व के शोध कर्ता को अपने थकान के दिनो मे किसी सीमा तक सतोष होना चाहिये।

जाडेचा जाति भारत की शक्तिशाली जातियो मे से एक है और यह यदुवश की एक शाखा है। जाडेचा जाति के लोग अपनी उत्पत्ति शौरसेन के राजा कृष्ण से बतलाते हैं। मनु ने शौरसेन के निवासियो को युद्ध कला मे श्रेष्ठ माना है। सिकन्दर के इतिहास-लेखक एरिअन का भी यही कहना है। मेरा ख्याल है कि ईसा से आठ सौ वर्ष पहले जमुना-तट के यदुवंशी राजा शूर सेन के बेटे बसुदेव के पुत्र की वास्तविकता उतनी ही सही है, जितनी कि किसी दूसरे देश मे उसी समय का कोई भी ऐतिहासिक कथन प्रामाणिक हो सकता है। मैंने बडे परिश्रम और सावधानी के साथ कृष्ण के पितामह के द्वारा स्थापित शौर सेन की राजधानी शूरपुर का अनुसधान कर लिया। ऐसा मालूम होता है, मानो हिन्दू इतिहास को ग्रीक इतिहास के साथ जोड़ने के लिए ही मुझे इन खण्डहरो की यात्रा करनी पडी है।

जमुना नदी की धारा अपनी उत्पत्ति के स्थान से चट्टानो को तोड़कर योगिनीपुर (आज का दिल्ली) मथुरा, आगरा, शूरपुर होती हुई गगा के साथ मिलने के लिये प्रयाग (आज का इलाहाबाद) तक प्रवाहित होती है। इसी प्रयाग को मेगस्थनीज ने प्रासी की राजधानी लिखा है। यही पर यादव वंश ने अपना विस्तार किया है और इस जाति की लगातार स्थापित राजधानियो का बयान पौराणिक वंशावलियो तथा

कविता में लिखे हुए ग्रन्थों में ही नहीं मिलता बल्कि इतिहास के इस समर्थन में हमें अलग से भी एक अच्छी खासी सामग्री मिल जाती है, जो दिल्ली, इलाहाबाद और जूना-गढ़ में मिलती है।

यादव-जाति की उत्पत्ति कही से भी हुई हो, वे भले ही अपनी वंशावली के अनुसार, पश्चिमी एशिया के शक जाति की संतानें हों, हमें उसके सम्बन्ध में अधिक जांच पड़ताल नही करनी है। हमें उसी सत्य को आधार मान लेना है जो उन्हीं की पुस्तकों में मिलता है। इस विषय मे हमे और भी सामग्री मिलती है जिससे जाहिर होता कि पिछले जमाने के बाद हिन्दू-धर्म में, उसके शासन और उसकी जातियो में अब तक अनेक प्रकार के सुधार हुए हैं।

आधुनिक राजपूतों में अपने ही मे कुसल गोत्र विवाह के विचार को बहुत बुरा माना जाता है। आमतौर से राजपूत लोग इसका विरोध करते हैं। लेकिन स्वयं कृष्ण की माता देवकी कृष्ण के पिता की फुफेरी अथवा ममेरी बहन थी; इतना ही नहीं है, बल्कि हमें इस जाति मे बहुपतित्व की प्रणाली भी मिलती है और उसी प्रकार की प्रणाली (ट्रान्सोक्षियाना) के गेट लोगो अथवा तीतो—जिनको इतिहासकारों ने यूचि लिखा है—में पायी जाती है।

एक अधिकारी विद्वान (न्यूमैन) के अनुसार बुध का जन्म ईसा से आठ सौ वर्ष पहले हुआ था। जैसलमेर के यादव राजा—जो जाडेचो की तरह अपने वंश की उत्पत्ति कृष्ण से मानते हैं—मेरा यह लिखा हुआ निबन्ध यदि पाठक पढ़े तो वे स्वीकार करेंगे कि इस अपर जाति के लोग अपने को यादवो के वंशज बतलाते हैं, उनकी उत्पत्ति हम गजनी से मानते हैं और विश्वास पूर्वक कहते हैं कि पजाब में सालपुरा होते हुए इस्लाम की उन्नति के साथ-साथ वे सतलज नदी को पार करके भारत के रेगिस्तान मे पहुचे थे।

यदु-भाटी लोग गजनी को अपनी पुरानी राजधानी कहते हैं और चगतई वंश को छोड़ना स्वीकार करते हैं। उनका यह भी कहना है कि वे इस तरफ उन दिनो में आये थे, जब महाभारत हो चुका था और कृष्ण तथा पाण्डवों की मृत्यु हो चुकी थी। लेकिन मेरा कहना यह है, जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूं और यहां पर फिर लिखना चाहता हूँ कि उन दिनो में (आॅक्स) से गङ्गा तक एक ही धर्म को मानने वाली जाति रहती थी और इन प्रदेशों में उसका खूब आना-जाना था। वास्तव में वह हिन्दू जाति थी और बाकी सब लोगो को बर्बर जातियो में मान लिया गया था। लेकिन इस प्रकार के अब संकुचित विचार नष्ट होते जा रहे हैं।

हिन्दू नगर और हिन्दू-गेटिक चन्द्रक काकेशस (१) तक मिलते हैं और मुझे

(१) चन्द्रकों और शिला-लेखो को पढ़ने के बाद किसी सच्चाई को समझने की कोशिश करना चाहिए।

इस सत्य को मान लेने मे बिल्कुल आश्चर्य नही मालूम होता कि महाभारत के यदु, पाण्डु और कुरु लोग (यूची यती) अथवा जेट लोग थे। बुध उनका गुरु, नेता और पैगम्बर था। दिल्ली, प्रयाग और गिरिनार मे जो विजय स्तम्भ मिले हैं, उनमें लिखे हुए लेखो से इनकी सिद्धि होती है।

बुद्ध के धर्म के साथ यदु, यती अथवा जेट-वंश का सम्बन्ध कायम करने के समय इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि बाईसवें बुध अथवा तीर्थङ्कर नेमि भी यदु थे और कृष्ण के ही वंश के थे। वे दो भाइयो की संतान थे। यह भी मानी हुई बात है कि देवत्व को पहुँचने के पहले स्वयं कृष्ण द्वारिका मे बुद्ध-त्रिविक्रम की पूजा करते थे और यह भी जाहिर है कि यह पूजन उनके वंश मे बहुत पहले से चला आ रहा था।

उन दिनो मे बुद्ध की गद्दी का चुनाव होता था और अब भी उसके प्रधान का चुनाव ओसवाल जाति के लोगो मे से होता है। लोग अनहिलवाड़ा के राजाओ के वंशज हैं। यह जरूर है कि इन लोगो ने व्यापर को अपना कर क्षात्र-धर्म का त्याग कर दिया है। मेरी इस प्रकार की ये बाते गिरिनार के गौरव नेमि के निर्वाचन से सम्बन्ध रखती हो।

इसके अतिरिक्त जैन लोगो मे एक परम्परा पायी जाती है जो इस बात का प्रमाण देती है कि इन दोनो सम्प्रदायो का अलगाव कैसे हुआ और बन्द मन्दिर बनने मे बौद्धिक अर्थात् बुद्ध सम्बन्धी उत्सव मनाने की प्रथाओ को कैसे बन्द किया गया! एडोनिस (१) की तरह कृष्ण की पूजा भी सबसे पहले यही के लोगो मे की गयी थी और उस अवसर पर सब लोग बुद्ध की उपेक्षा करके कृष्ण-मन्दिर की ओर आकर्षित हुए थे। उस समय बुद्ध के आचार्य लोगो ने दीवारो से घिरे हुए देवता की पूजा करने के सिद्धान्तो का विरोध किया था और लोगों को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए मन्दिर मे नेमिनाथ की मूर्ति स्थापित की गयी थी।

पुरानी और नई परम्पराओ तथा प्रथाओ से हमको यह स्पष्ट मालूम होता है कि समस्त देवताओ की पूजा उनके धर्म का मुख्य सिद्धान्त है। हम यह भी देखते हैं कि दूसरी प्राचीन जातियो की तरह प्रणाली मे आकाश के ग्रहो को भी शामिल कर लिया गया है। हैरोडोटस का कहना है कि ये जट लोग आत्मा को अमर मानते थे। इसके विषय में अर्जुन और कृष्ण के सम्वाद में जो कुछ लिखा गया है, वह सही है।

ये सब बाते जो यहाँ पर लिखी जा रही हैं, न केवल अरुचिकर हैं, बल्कि अधिकांश लोगों को बुरी लग सकती हैं। अतएव यदुवंश की प्राचीन बातो को छोड़-

---

(१) (एडोनिस) ग्रीक देवता इतना सुन्दर था कि (एफ्रोडाइट) सौन्दर्य-देवी उस पर मुग्ध हो गयी थी। लेकिन बाद मे उसी देवी के कहने से एक शूकर ने उसको मार डाला था। —एन० एस० ई०, पेज १४

कर—जो विचित्र उलझनों से भरी हुई हैं—अब हम सिकन्दर के समय की घटनाओं में आते हैं और सबसे पहले इस बात पर हमको विचार करना है कि सिन्धु नदी के किनारे पर जब सिकन्दर अपनी सेना के साथ आया था। उस समय जाडेचा लोगों के पूर्वजो की परिस्थिति क्या थी?

यहाँ पर हम अपनी बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम कृष्ण को एक मनुष्य के रूप में मानते हैं। हम जानते हैं कि वे यदुवंशी राजकुमार थे। शौरसेन राज्य से उनको भगा दिया गया था। सौराष्ट्र के जंगली आदमियों ने उनको मार डाला था। उनके आठ रानियाँ थी, उनसे अनेक उनके संताने थीं, जिनको वे मरने पर अपने पीछे छोड़ गये थे। उन रानियो मे एक जाम्बवती थी और साम्ब (१) नामक उसके बेटा हुआ था। उसी साम्ब से जाडेचा लोग अपनी उत्पत्ति माने हैं।

कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् यादव जाति छिन्न-भिन्न हो गयी थी। उस अवस्था में कुछ लोग—जैसे कि जैसलमेर के राजवंश के पूर्वज, पञ्जाब के रास्ते से सिन्धु को पार करके आगे बढे और आखिर में उन लोगो ने गजनी पर राज्य कायम किया। उनके कुछ लोग सौराष्ट्र के बने रहे और तीसरे गिरोह के लोग सिन्धु की घाटी में पैर जमाये और अपने नेता के नाम पर ठट्ठा के पास जहाँ पर सिन्धु का दो भागो में हो जाता है, एक नगर साम्ब के नाम का बसाया, वह साम्ब नगर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उस नगर की स्थापना के पश्चात् इस जाति के राजाओ के लिये साम्ब उपाधि बन गया और वह आज तक चलता है। उनके इतिहास मे इसका प्रयोग आता है और मुस्लिम इतिहासकारो ने उनको सिन्ध सुम्मा के नाम से सम्बोधित किया है। साम्ब नगर अथवा साम नगर का उल्लेख जाड़ेचा जाति की वंशावली के साथ-साथ जैसेलमेर की प्रसिद्ध शाखा के इतिहास मे भी सुम्मकोट (२) के नाम से मिलता है। इसीलिये जो बात मैंने कई वर्ष पहले कही थी, उसे आज फिर लिख रहा हूँ और मैं मानता हूँ कि यादवो का यह सामि नगर वही (मिनगर) है जिसका वर्णन पेरीपुल्स के कर्त्ता ने इन शब्दों में किया है कि जब मैं भड़ोच मे था उस समय अर्थात् दूसरी शताब्दी में, उस समय वह मिनगर एक इण्डो-सीथिक राजा की राजधानी थी।

एरियन अगर अपने लेखो में इस बात को स्वीकार करता है कि एशिया से अन्य जातियो के लोग भी आकर सुम्मा लोगो मे मिल गये थे और वह उनको सीथिक

(१) साम्ब का अर्थ शाम अथवा श्याम होता है। कृष्ण के शरीर का रंग श्यामवर्ण का था, यह सबको जाहिर है। कृष्ण अपने श्याम नाम से अनेक पुस्तको में लिखे गये हैं। काव्य मे कुछ भक्ति के आदेश मे उनका श्याम नाम लिया गया है।

(२) जिस शहर में परकोटा होता है, उसे कोट अथवा नगर कहते हैं।

मानता है तो फिर अधिक छानबीन में जाने की आवश्यकता नही है। परन्तु जब यह कहा जाता है कि उस क्षेत्र के निवासी बलूची जाति के लोग वही थे, जो धर्म परिवर्तन करके जेट लोगो में से आये थे और अपने-आप को यदु-बंशी कहने लगे थे तो फिर, शोध का कार्य करने वालो का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इसके सम्बन्ध में सही क्या है, इसकी खोज करें।

सिकन्दर जब भारत में आया था, उन दिनों मे यहाँ की जो जाति सत्ताधारी थी, उसके विवरण देते हुए एरियन लिखता है : 'उनके पूर्वज का नाम बुडिअस अथवा बुध था।' इस तरह वह यदु-बशावली के साथ बौद्ध का सम्बन्ध जोडता है, जो यादवो के इतिहास से पूरे तौर पर मिलता-जुलता है।

हिन्दुओ के इतिहास के विषय में एरियन और जिन दूसरे लेखको ने लिखा है, उन सब का आधार मेगस्थनीज के लेख थे, जो अब पूर्ण रूप से अप्राप्य हैं। मेगस्थनीज को सिल्यूकस ने प्राग (प्रयाग) के निकट प्रासी के राजा के दरबार में अपना राजदूत बनाकर भेजा था। वहाँ पर यादव बश की प्राचीन राजधानी थी। वहाँ का राजा सान्द्र कोटस चन्द्रगुप्त था। सान्द्रकोटस का नाम अनेक वार बदल चुका था। चन्द्रगुप्त का नाम प्राचीनकाल से यदु, चौहान और परमार जाति के इतिहासों में मिलता है। लेकिन नाम की इस समता को लेकर और ग्रीक लेखक के द्वारा यह लिखे जाने पर कि उस समय के प्रधान राजवंश का पूर्वज बुडियस था, हमको विचार करते हुए इस परिणाम मे आना पडता है कि वह प्राग का राजा यदु-वंशी ही था, भारत मे सार्व-भौम शासन नष्ट कर देने के बाद भी, यादवो की सत्ता किसी प्रकार बनी रही, इसका प्रमाण दूसरी शताब्दी मे बाहार के राजा सोमप्रीति के प्राप्त होने वाले विवरणो में मिलता है।

वह राजा बौद्धधर्मावलम्बी यदुवंशी था, उसकी प्रभुता के प्रमाण अजमेर, कोमलमेर और गिरिनार में मौजूद हैं, लेकिन सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में जिसका प्रभाव उनके नेता की मृत्यु वहाँ हो जाने से अधिक हो गया था, नष्ट होने के बाद भी यादव जाति शक्तिशाली बनी रही। इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। साथ ही इनके लिये हमें शिला-लेखों और स्मारकों को देखना चाहिये, जिनमें जूनागढ ने यादव राजाओं के द्वारा बौद्ध धर्म के मन्दिरो के जीर्णोद्धार कराये गये हैं और उनके प्रमाण भी पाये जाते हैं।

दूसरे राज्यो के इतिहासो में भी जूनागढ के यदुवंशी राजाओ के उल्लेख उस प्राचीन काल से पाये जाते हैं, जब उन राज्यो की स्थापना की गयी थी। जिस प्रकार मेवाड के इतिहास में जूनागढ के अधिकारियो के रूप में यादवो (१) का वर्णन विक्रम

(१) इसको कभी नही भूलना चाहिये कि सरवेग और चूडासमा की मशहूर जातियाँ, जो अब सौराष्ट्र मे नही हैं, यदुवंश की ही शाखाये हैं।

की दूसरी शताब्दी से मिलने लगता है, जब वे आरम्भ में यहाँ पर आकर आबाद हुये थे।

जेठवा और चावड़ा लोगो के इतिहास भी इसी प्रकार हैं, उनमे विक्रम की सातवी और दसवी शताब्दी में उनके वैवाहिक सम्बन्धो के विवरण पाये जाते हैं और यह समय जाड़ेचा लोगो के सिन्ध से कच्छ जाने से बहुत पहले का है। इस प्रायद्वीप मे यादवो के सम्बन्ध मे प्राचीन कथाये इतनी अधिक सख्या में मिलती है, जिनके कारण मेरी धारणा अनेक बातो मे स्पष्ट हो गयी थी और उसी का यह परिणाम था कि मैं उनको और जाड़ेचा राजाओ को उस समय तक एक समझता रहा, जब तक कि उनके इतिहास से मुझे यह जाहिर नहो हो गया अपर वंश की प्रभुता सिन्ध पर सामनगर मे बारहवी शताब्दी तक कायम रही।

मेरा निर्णय सक्षेप मे इस प्रकार है—

यादव पश्चिमी एशिया से आये हुए इण्डोसीथिक वंश के हैं और यहाँ आये हुए उनको बहुत समय बीत गया है।

अपने पूर्व पुरुष नेता बुध—जिसको एरियन ने बुडेन्स लिखा है—के नेतृत्व में उन लोगो ने अपने अधिकृत राज्य को छोटी-छोटी रियासतो में शाखाओ के अनुसार बाँट लिया था। वे इतिहास में छप्पन कुल यादव जैसे कुरु पान्डु, अश्व, तक्षक, शक, जेट आदि नामो से प्रसिद्ध हैं।

अन्तर्जातीय युद्धो के सबब से वे तितर-बितर हो गये और उनमें से कुछ लोग अपने देशो की तरफ लौट गये। उनके देश कदाचित् आक्सस और जक्षार्तीस (१) के करीब थे।

उन्होने काकेशस के इलाके में गजनी, पंजाब मे सालपुर अथवा स्यालकोट और सिन्धु नदी के किनारे पर सामनगर, सहेवान और कुछ दूसरे नगरो को आबाद किया।

धर्म-परिवर्तन अथवा कुछ दूसरे कारणो से बहुत-से लोग फिर भारत में आ गये।

जैसलमेर के भाटी और कच्छ के सिन्ध-सुम्मा अथवा जाड़ेचा उस वंश की प्रमुख शाखायें हैं, जिसके पूर्व पुरुष कृष्ण थे।

अब मुझे सिन्ध-सुम्मा जाड़ेचा लोगो के सम्बन्ध में कुछ और प्रकाश डालना है। उनके पड़ोसी राजाओं के इतिहास के आधार पर मैं उनके इतिहास की वास्तविकता को समझने की कोशिश करूँगा और इस बात को साबित करने की चेष्टा करूँगा कि विक्रम की प्रारम्भिक शताब्दियो मे भी सिन्ध के किनारे उनकी प्रभुता कायम थी। हम जाडेचा की वंशावली मे वर्तमान राजा से पीछे की तरफ चल कर

(१) मध्य एशिया की नदियाँ।

अन्वेषण करेंगे और उस समय तक खोज करेंगे, जब तक कुछ निश्चित आधार न मिल जावे।

वर्तमान राजा से चालीस पीढ़ी पहले चूड़चन्द हुआ। वह जेठवा इतिहास के अनुसार, गूमली के सस्थापक शील की चौदहवी पीढी में राम चामर अथवा राम कँवर का समकालीन था। अब ४० राज्य काल × २३ (प्रत्येक राज्यकाल के लिये अनुमानित वर्ष) = ६२० वर्ष हुये, तो १८८०—६२० = ६६० सम्वत् अथवा ६०४ ईसवी सामनगर के राजा चूडचन्द का समय हुआ। अब हम इसकी जांच गूमली के स्मारको पर लगे हुए शिला-लेखो से करते हैं, जहाँ का राजकुमार सालामन निकाले जाने पर जाम ऊनड के पास चला गया था और उसने अपनी सेना देकर शरण मे आये हुए का पुनः गद्दी पर बिठाने के लिये पूरी सहायता की थी।

जाडेचा लोगो के इतिहास मे जाम ऊनड का नाम प्रसिद्ध हैं। क्योंकि वह पहला राजा था जिसने पूर्वजो की उपाधि सुम्मा को जाम मे जोड़ दिया था। वह चूडचन्द की आठवी पीढ़ी में था, इसलिये ८ × २३ = १८४ + ६६० = सम्वत् ११४४ उसका समय हुआ जिसमे और जेठवा के इतिहास के समय मे बहुत थोडे दिनो का अन्तर है। अर्थात् जेठवा के इतिहास के अनुसार सिन्ध के बामनी सुम्मा जाति के लम्बी दाढ़ी वाले और सच्चे मुसलमान असुरो के द्वारा गूमली का विनाश सम्वत् ११०६ मे हुआ, और अगर हम स्मारको के शिला लेखो को आधार माने तो यह सम्वत् १११६ आता है।

इस प्रकार हमें इतिहास की दो प्रसिद्ध तिथियो का पता चल जाता है—पहली जाम अनड की १०५३ ईसवी, जब मुसलिम मजहब में कुछ परिवर्तन हुए, दूसरी चूडचन्द की जो सन् ६०४ ईसवी गूमली के रामकँवर का समकालीन था। जेठवा लोगो के इतिहास मे यह भी लिखा गया है कि इस राजकुमार का विवाह कथकोट के तुला जी काठी की लडकी के साथ हुआ था, उससे एक और उसी समय की तिथि का पता लगता है। अर्थात् इन्डोगेटिक जाति इस प्रायद्वीप में एक हजार वर्ष पहले आ गयी थी।

इसके साथ-साथ, हम एक दूसरे महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर आते हैं। यदु-सुम्मा, काठी, चामर अथवा जेठवा, आला, बाल और हूण आदि इन सभी जातियो के लोग रक्त और वंश मे एक ही थे, राजपूतो की तरह उनमें वैवाहिक सम्बन्ध बिना किसी भेदभाव के होते थे। ऐसी अवस्था मे हम यह स्वीकार करते हैं कि वे लोग—जैसा कि एरियन और कासमस आदि लेखको ने अनेक स्थानों पर लिखा है—उन्ही जातियो मे से थे, जो विभिन्न अवसरों पर टोलियाँ बना-बनाकर एशिया से इस देश मे आई थी।

ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर हम यह माने लेते हैं कि सन् ६०४ ईसवी मे ये लोग सिन्ध मे राज्य करते थे, अतएव उनके सम्बन्ध मे अब अधिक बातो के खोज करने की आवश्यकता नही है।

इन लोगों में साम्ब की उपाधि चूडचन्द के लडके के शासन-काल में खत्म हो गयी थी, यह परिवर्तन बहुत कुछ इसलिये हुआ था कि उनका धर्म भी बदलकर इस्लाम में आ गया था। इसके सम्बन्ध में हमको वंशावली मे एक नवीन बात मिलती है, जो इस जाति से सम्बन्धित है। मैं साम नगर के राजा चूडचन्द के समय अर्थात् सम्वत् ६६० सन् ६०४ ईसवी की बात कहने जा रहा हूँ। उसके बेटे साम यदु के पांच बेटे थे, उनके नाम असपति, नरपति, गजपति, भीमपति और समपति थे।

आज से लगभग दो शताब्दी पहले खलीफो ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया था। (१) अरोर के राजा दाहिर एवम् मुस्लिम सेनापति मोहम्मद बिन-कासिम को भारतीय इतिहास पाठक भली प्रकार जानते हैं। विजय और धर्म परिवर्तन की घटनाये साथ-साथ घटी थी। जब सामनगर के राजा साम्ब के वंशजों के सामने इस्लाम और हिन्दू-धर्म का प्रश्न आया तो उन्होंने एक नवीन कहानी गढी। इसके विषय में मैं जाड़ेचा लोगो के इतिहास में से एक उद्धरण देना चाहता हूँ।

रोम नामक देश में जो कोई शाम से आता है, वह सुम्मा कहलाता है। कृष्ण और जाम्बवती का पौत्र शाम में रहता था, वहाँ से उसके वंश के लोग, नबी के डर से भाग गये और ऊसम के पहाड़ के ऊपर पहुँच गये। लेकिन उन लोगों ने वहाँ पर भी नबी को देखा तो बडे परेशान हुए, जब उनको अपनी रक्षा का कोई भी उपाय न सूझा तो वे लोग आत्म समर्पण करते हुए नबी के सामने लेट गये और असपति ने नबी के साथ बैठकर भोजन करने और उसके मिट्टी के बरतन का पानी पीना मन्जूर कर लिया। इस प्रकार धर्म-परिवर्तन के बाद वह चगताइयों का राजा बनाया गया और उसके भाइयो को सामन्त नियुक्त किया गया। उसी सिलसिले मे नरपति को सिन्ध मिला और वह समाई नामक स्थान में रहने लगा। गजपति के वंश के लोग भाटी-सुम्मा कहे गये और उनको जैसलमेर दिया गया।

इस प्रकार के लोग सौर क्षेत्र—जिसमें असम की पहाड़ी है— को छोड़कर सीरिया के साथ सम्बन्ध जोड़ लेते हैं और खुलकर इस्लाम में आ जाते हैं। इसलाम को मानने वालो में सम्मिलित होने के बाद उन्होने अपने-आपको शैमेटिक वंश का बताना आरम्भ कर दिया। नबी से अभिप्राय कदाचित् पैगम्बर से है। लेकिन यहाँ पर एक प्रश्न यह पैदा होता है कि अपनी किन्ही भी परिस्थितियो में उनको धर्म-परिवर्तन करना पड़ा। लेकिन अपने वंश के गौरव को वे भूल किस प्रकार गये।

एक बात और आश्चर्य की है। वह यह कि जैसलमेर के यदु-भाटियो की तरह

---

(१) हिजरी सन् ६५ अर्थात ७१३ ईसवी, राजस्थान का इतिहास देखिए। लेकिन सिन्ध की अन्तिम विजय लगभग आधी शताब्दी बाद में हुई थी।

वे तक्षक, तुरुष्क अथवा टर्किश जाति के चगताई (१) वंश एवम् गोर वंश के साथ भी अपना सम्बन्ध बताते हैं। आश्चर्य यह है कि इस अन्तिम वंश को शाम का उपनाम देकर एक नया प्रकाश डाला गया है, उसका प्रयोग भारत के प्रथम विजयी मोइज़ुद्दीन के द्वारा किया था। यह सब इसीलिए किया था कि उनके वश पर लगने वाली कालिमा छिप जाय, क्योंकि उन्होने अपना धर्म छोडकर राजपूत वंश से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था।

उनकी भीतरी हालत कुछ और भी थी। वे हिन्दू-धर्म और इस्लाम-धर्म के बीच मे निराधार लटके हुए थे। इसलिए दोनो तरफ के आकर्षण मे पडे रहने के कारण साम्ब की उपाधि के द्वारा हिन्दुत्व को भी रक्षा न करके पारसी जमशेद को स्वीकार कर लिया था।

अपने धर्म को त्यागने वाले साम यदु के पितामह चूडचन्द्र और लाखा के बीच को सात पीढियाँ छोडे देते हैं। लाखा का उपनाम गोरारो अर्थात् गर्वीला था। उसका शासन साम नगर मे था। उसके अनेक सताने हुईं और उन्ही मे से एक की शाखा में स जाडेचा लोगो की उत्पत्ति हुई। धावडा-वंश की राजकुमारी से उसके चार लडके उत्पन्न हुए। उनके नाम मोर, बीर, सन्द और हमीर थे। दूसरी रानी से भी—जिसकी जन्मभूमि कन्नौज थी—चार लडके हुए, उनके नाम ऊनड़, मुनई, जय और फूल थे।

लाखा गोरारो के पश्चात् जाम ऊनड सिंहासन पर बैठा। कहा जाता है कि वह पहला सुम्मा था, जिसने जाम के नाम को धारण किया। जो उल्लेख मिलता है, वह इस प्रकार है: 'लाखा का बेटा ऊनड़ कन्नौज की राजकुमारी से पैदा हुआ था।' अब प्रश्न यह है कि बड़े भाइयो के होते हुए वह सिंहासन पर क्यों बैठा? लेकिन हम वहाँ की वर्तमान परिस्थितियो का अध्ययन करने के बाद अनुमान लगा सकते हैं कि वह राजकुमारी प्रतिष्ठा मे बडी थी।

किसी भी अवस्था मे उसका सिंहासन पर बैठना अनिष्टकर हुआ और उससे हमको बहुविवाह के कारण होने वाले दुष्परिणामो को समझने के लिए एक और उदा-

---

(१) गजनी के राजा शालिवाहन के बेटे का नाम बालन्द था, उसके दूसरे लड़के का नाम भूपति था। भूपति अपने पिता के जीवन मे ही सिंहासन पर बैठ गया था, उसका बडा बेटा चिकेता था। भूपति के मरने के बाद जब चिकेता सिंहासन पर बैठा तो उसने बाल्हीक (बलख) के म्लेच्छ राजा उजबक की सुन्दरी लडकी के साथ विवाह कर लिया और उसके पिता के राज्य पर भी अधिकार कर लिया। इस चिकेता ने अपने आठ बेटो के साथ इस्लाम ग्रहण कर लिया था। उसी के वंश के लोग आगे चलकर चकत्ता अथवा चगतई मुगलो के नाम से प्रसिद्ध हुए।

—जैसलमेर का इतिहास, श्रीहरिदत्त गोविन्द व्यास, पृ० १२

हरण मिल गया। ऊनड़ अपने भाइयों के साथ वेद्यम प्रदेश में शेरगढ जिसे बाद में लखपत (१) कहा गया, था। वहाँ साम नगर की बड़ी रानी का भाई चावड़ा शासन करता था। वहाँ पर उसको अप्रकट रूप से राव लाखा के मर जाने का समाचार मिला। इसलिए वह अपने भाइयों को समझा-बुझाकर और कोई भेद न देकर अपनी राजधानी लौट आया। उसके बाद वह सिंहासन पर बैठ गया।

इसके कुछ दिनो के बाद उसके सौतेले भाइयो ने—जो सिंहासन पर बैठने के अधिकार से वञ्चित हो गये थे और बडे होने के कारण वास्तव में अधिकारी थे—विद्रोह किया। इस विद्रोह मे उसका सगा भाई मुनई भी शामिल हुआ और इन सबने मिल कर उसको दड़ी-दन्ड (२) के त्योहार मे मार डाला। इस अपराध के कारण ही मुनई को कायर मुनई कहा जाता है।

ऊनड़ की पत्नी—जो राजकुमारी कहलाती थी—उस समय गर्भवती थी। इसलिये वह चुपके से निकल कर अपने पिता के यहाँ चली गई। उसके पिता ने एक सेना भेजी। उसने मुनई और बन्धु-घाती भाइयो को सिन्ध से भगा दिया। उन भाइयो को बध करने के बाद वहाँ पर रहते हुए बारह वर्ष बीत चुके थे।

डरपोक मुनई, उसके भाई और साथी लोग कच्छ चले गये और वहाँ काठियों पर आक्रमण करके उनको कथ कोट से निकाल दिया। मुनई ने कंथकोट के पास ही एक नगर बसाया और उसका नाम कायरा रखा। उसके बड़े भाई मोर को कन्टर कोट मिला और दूसरे भाइयो ने बावरियों, जेठवा लोगों एवम् दूसरी जाति के लोगो से बहुत-सी भूमि छीन कर अधिकार कर लिया।

इस तरह सिन्ध की सुम्मा जाति कच्छ के प्रान्त में पहले-पहल आबाद हुई। उसके बाद उसकी कितनी ही शाखाये हो गयी। उनमें सिधु के डेल्टा से खम्भात की खाड़ी तक चावड़ा लोग सब में प्रधान थे। इसी आधार पर इसे साहस पूर्वक कहना चाहते हैं इस क्षेत्र में जो देश थे, उनको चावराष्ट्र, चावडा राष्ट्र अथवा सौराष्ट्र का नाम दिया

(१) वास्तव में यह नाम लाखा के नाम पर पड़ा है। लखपत के सिवा सिन्ध में और भी कितने ही नगरों के यही नाम हैं, उनसे सुम्मा वंश की प्रभुता का पता चलता है।

(२) यह गेंद बल्ल का खेल होता है जो गाँवों में मकर-संक्रान्ति के दिन खेला जाता है। यह गेंद पुराने कपड़ों के कई परतो में लपेटकर और फिर सुतली अथवा डोरी से बाँधकर बनायी जाती है। कभी-कभी परतों के भीतर पत्थर रख देते हैं। इस प्रकार यह गेंद और मजबूत लकड़ी के बल्लों का खेल, आजकल की हाकी का पुराना रूप हो सकता है। गेंद का यह खेल गाँवों में प्रचलित है। बल्ले को गेड़िया और गेंद को दड़ी कहा जाता है।

गया। इसको यद्यपि हिन्दू भूगोल के विद्वानो ने केवल प्रायद्वीप तक ही सीमित रखा है। लेकिन ग्रीक और रोमन भूगोल के विद्वानो ने बडी दूरदर्शिता के साथ सायराष्ट्रीन के नाम से उस सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रसिद्ध किया, जिसका ऊपर वर्णन किया गया है।

सात पीढियो तक सुम्मा का नाम किसी प्रकार बदला नही, वे सुम्मा के नाम से ही प्रसिद्ध थे। इसके बाद साम नगर से एक दूसरे गिरोह ने आकर सन् १०७७ ईसवी मे इस पहली के विजय को बिल्कुल उलट दिया।

लाखा गोरार का वश जाम उनड के मर जाने के बाद उत्पन्न हुए उसके लड़के तमाच के द्वारा सामनगर मे उनड को सातवी पीढी में हाला सुम्मा तक बराबर उन्नति करता रहा। लेकिन उन्ही दिनो मे एक ऐसी घटना हो गयी, जिससे जाडेचा लोगो मे शिशु-बध की एक प्रथा चालू हो गयी। हाला सुम्मा के समय में ही जाडेचा नाम की उत्पत्ति हुई थी। अर्थात् यह नाम सोचा गया था। उसके साथ एक छोटी सी घटना का सम्बन्ध बताया जाता है। इस तरह की छोटी-मोटी घटनाये भी राजपूतो में वंश के नाम करण के लिये एक कारण बन जाती हैं।

इस राजा के सात लड़के हुए, उनमे छे लडके किसी न किसी बीमारी के कारण मर गये। लेकिन सातवां जीवित रहा। कहते हैं कि उसको किसी साधु ने आर्शीवाद दिया था। इस प्रदेश में किसी भी बीमारी अथवा कष्ट मे झाड़ने की एक अपूर्व प्रथा है। उसके अनुसार कोई साधु अथवा जोगी मोर के पंखों को हिलाता हुआ बीमार को झाड़ा करता है और उसके रोग को दूर करने के लिये मन्त्र की तरह बहुत धीरे-धीरे मुंह से कुछ बोलता है। उस प्रकार सुम्मा सरदार का जो बालक झाडे जाने के बाद रोग से छुटकारा पा गया था, वह जाडेजा कहलाने लगा और उसके वंशज भी इसी नाम से भविष्य में प्रसिद्ध हुए।

उस वंश की अनेक शाखायें हो गयी। हाला की लड़की का विवाह सूमरा जाति के ऊमर नामक पडोसी राजा के साथ हुआ था, (१) उसका निवास-स्थान मोहब्बत कोट मे था। कुछ दिनो के बाद उसका नाम, उसी के नाम पर ऊमर-कोट हो गया।

उस विवाह के मौके पर एक झगडा हो गया; उसमें सूमरा ने सिंध के राजा को अपने किले में गिरफ्तार कर लिया। जब यह अपमानजनक समाचार सामनगर पहुँचा तो सुम्मा लोगो ने अपने वंश के सभी लोगो को एकत्रित किया। उस समय उन लोगो ने उसकी मुक्ति के लिये निश्चय किया और सभी लोग वहाँ से रवाना हो गये।

सूमरा भी इसके लिये तैयार था। वह जानता था कि इस कैद का समाचार

---

(१) हैदराबाद (सिंध) के उत्तर में हाला नामक एक नगर है, जो अपने राजा के नाम पर बसा हुआ है। ऊमर-कोट सुमरावंश की उत्पत्ति के लिये पाठको को राजस्थान का इतिहास पढना चाहिए।

पहुँचते ही उसके वंश के लोग एक बड़ी संख्या मे आवेंगे। इसलिये वह स्वयं पूरी तैयारी मे था। परिणाम यह हुआ कि दोनो वंशो के पचास हजार पुरुष मोहब्बत-कोट के मकानो के पास एक दूसरे का नाश करने के लिये भिड़ गये। दोनों ओर से भयानक मार-काट हुई। लेकिन विजय सुम्मा लोगो की हुई। यद्यपि उस वंश के दस हजार आदमी मारे गये और उन आदमियो के साथ उनका राजा भी मारा गया।

सूमरा लोगो को अपने वंश के साथ हजार आदमियो की बलि देने के बाद अपनी राजधानी खो देनी पड़ी। इस दुर्घटना मे सूमरावंश की बहुत-स्त्रियाँ अपने अपने पतियो के साथ सती हुईं, उनमें नव विवाहिता वधू भी चिता लगवाकर अपने पति के साथ जलकर भस्म हो गयी। उस समय सती होने वाली स्त्रियों ने शाप दिया—जो कोई जाडेचावंश की किसी लड़की से विवाह करेगा, उसका सर्वनाश हो जायगा।

उस समय से इस वंश की लड़कियो के साथ विवाह करने का कोई साहस नही करता। इस प्रकार जाड़ेचा वंश के इतिहास के अनुसार, जाड़ेचा लोगो में बाल-वध की एक प्रथा आरम्भ हो गयी, जो अब तक चालू है। (वाँकर) जैसे एक महापुरुष ने भी, जिसने इस प्रथा को समाप्त कर देने के लिये बहुत बड़ी चेष्टा की थी। इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट संकेत नही करता और इसके मूल कथानक का कोई आधार नहीं मिलता। यह बात जरूर है कि यह प्रथा उस वंश में छै शताब्दी से बराबर चली आ रही थी।

इस विषय में जो सामग्री मिलती है, उससे इस प्रथा के चालू होने का पूरा कथानक पढ़ने अथवा जानने को नही मिलता और साधारण छानबीन के बाद भी कोई तथ्य हासिल नहीं होता। बहुत कुछ सोचने और समझने के बाद इस विषय में मेरी धारणा तो यह है, जैसा कि मैंने अन्य स्थानो पर भी अपने विचारों को प्रकट किया है कि यहाँ पर जो घटना बतायी गयी है, उससे कई पीढी पहले, सुम्मा लोगो के इस्लाम धर्म स्वीकार करने के समय से ही, जिसके परिणाम स्वरूप राजपूतो के साथ उनके वैवाहिक सम्बन्ध हो गये थे, इस प्रकार की प्रथा का जन्म हुआ था।

बाल-वध की प्रथा का कारण सतियों के शाप के साथ जोड़ा गया है, यह बात किसी समझदार व्यक्ति के विश्वास करने योग्य नहीं है। वास्तव मे जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, उस प्रकार की प्रथा पहले से चालू थी। लेकिन उसको सतियों के साथ जोड़कर उनके शाप के महत्व को बढ़ाने की चेष्टा की गयी है। इससे किसी वंश की बर्बरता को अपराधी नही बनाया जा सकता और यह मान लेना पड़ता है कि इस प्रथा का कारण सतियों का शाप था। लेकिन सत्य की अपेक्षा यह मनगढ़न्त अधिक है।

रही सतियों के शाप की बात तो शिशु-वध की प्रथा का कारण इस शाप के साथ जोड़ा है, उसने कदाचित् अपनी समझ से बड़ी बुद्धिमानी का कार्य किया है। लेकिन वास्तव में सती होने की घटना से उसका कोई सम्बन्ध नही है। इसलिये कि सतियों

को शाप उन लोगो को देना चाहिए था, जिन्होंने उनके पतियो को मारा था और जिनके अपराधो से उनको सती होना पड़ा था। लेकिन उस वंश की लड़कियो के साथ जो विवाह करेगा, उसका नाश हो जायगा, यह बिल्कुल बेतुकी बात है।

सत्य यह है कि उस वंश में जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है, पहले शिशु-वध की प्रथा चालू थी और उसकी वंश मे नही, प्राचीन काल मे अनेक जातियो और वंशो मे इस प्रकार की प्रथाये थी और उनके मूल कारण भी थे। राजपूतो मे भी इस प्रकार की प्रथाये रही हैं मुसलमानो की इन प्रथाओ की साक्षी उनके इतिहास स्वय देते हैं।

मैंने विभिन्न सूत्रो से इस प्रकार की प्रथाओ के सवन्ध मे पता लगाने की चेष्टा की है और मुझे भली प्रकार यह जानने को मिला है कि इन प्रथाओ के नष्ट करने के सम्बन्ध मे यहाँ के लोगो ने कभी कोई चेष्टा नही की। वल्कि उनके मूल कारणो को ढकने और छिपाने की हमेशा चेष्टा की गयी है।

मुझे यह भी जानने को मिला हैं कि लडकियो की तरह लडको के साथ भी इस प्रकार का अपराध किया जाता रहा है। उनके मारे जाने की एक बहुत सरल विधि यह थी कि दूध के साथ छोटे शिशु को अफीम घोलकर दे दी जाती थी। इस प्रकार के ऐतिहासिक सत्य में बहुत-सी घटनायें और प्रमाण मुझे मिले हैं। हम आगे के विश्लेषण मे भी इसको स्पष्ट करने की चेष्टा करेगे। उसमे कच्छ और मारवाड़ में एक साथ आवाद हो जाने वाले जाडेचा लोगो और राठौरो की जन-सख्या की तुलना से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

जन गणना करने पर जाडेचा-वंश मे सब मिलाकर बारह हजार ऐसे पुरुष पाये गये, जो शस्त्र धारण करने के योग्य थे। जबकि राठौर एक शताब्दी पहले भी औरङ्गजेब से अपने राजा की रक्षा करने के लिये पचास हजार आदमी लेकर आये थे और वे आज भी ला सकते हैं। वे सब एक ही वंश के बेटे हैं।

जाडेचा-वश ऐसी परिस्थितियो में रहा है कि जिनमे उसको युद्ध की हानियो से सदा बचना पडा था। राठौरो ने हमेशा युद्ध किये थे और उन युद्धो मे उनके वंश की सख्या सदा क्षीण होती रही थी। लेकिन युद्ध की परिस्थितियो मे होकर जाड़ेचा-वंश के लोगो को कभी नहीं गुजरना पडा। उस दशा में उस वंश की जन-सख्या के कम होने का क्या कारण हो सकता है, सिवा इसके कि इस बात पर विश्वास कर लिया जाय कि अकालो और भूकम्पो ने उनके वश की आबादी को कभी बढने नही दिया।

हाला के बाद प्रथम जाडेचा लाखा सिंहासन पर बैठा। उसके कोई सन्तान नही हुई। लाखा और लख्यार हाल के अथवा हाला के छोटे भाई वीर के लडके थे और इनमे से ही किसी एक की बीमारी से सेहत होने के कारण इस जाति का नाम झाडेजा

के स्थान पर जाडेचा पड़ा था। इसी तरह इसका भी अनुमान लगाया जा सकता है कि वह लड़की भी, हाला को नही, वेर की ही थी, जिसने शाप दिया था और जिसका पहला प्रभाव लाखा के वंश पर ही पड़ा था।

इतिहास में लिख गया है कि लाखा के वंश में सात लड़कियाँ पैदा हुईं, जो इस अभिशाप की शिकार बनी। उस वश का कुल-गुरु एक सारस्वत ब्राह्मण था। वह इन लडकियो के इस दृश्य से बहुत दुखी हुआ और उसके परिणामस्वरूप उसने उस वंश की गुरु की पदवी को भी अस्वीकार कर दिया। इसके सम्बन्ध में वशावली में स्पष्ट लिखा गया—'जब सारसोत बापू ने अपना काम छोड दिया तो एक औदीच्य ब्राह्मण को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। उसने अपना कार्य करना आरम्भ किया। उसने इन सातो लड़कियो को जला दिया, उस समय से उस ब्राह्मण के वंशज जाड़ेचों के राजगुरू बने हुए हैं।

अच्छा होता, यदि इस वंश के लोग मुसलमान बने रहते और हिन्दुओ में फिर से आने की कोशिश न करते। अब वे लोग न तो हिन्दू रहे और न मुसलमान। इस दशा में किसी दूसरे वर्ग में इन लोगों को ढकेलने के बजाय यदि उनको ईसाई-मत में परिवर्तित कर दिया जाय तो कदाचित् इस जाति के लोग अधिक अच्छे रहेंगे, उनमें जो आज जंगली प्रथाये पायी जाती हैं, उनका अन्त हो सकेगा और उनका मानव जीवन सुखी तथा सफल हो सकेगा।

लाखा का उत्तराधिकारी रायधन हुआ। उसी को कच्छ मे जाड़ेचा-रियासत का संस्थापक माना जा सकता है। यद्यपि कुछ नवीन स्थान बसाये गये थे, लेकिन जाम ऊनड़ के लड़को ने उनको कमजोर कर दिया था और अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिये उन हत्यारों को कायरा से भी खदेड़कर भगा दिया था। इसी आधार पर यह माना जाता है कि कायर मुनई के वंशज मेर और मीणो की नीच जातियों से मिल गयी और कुछ समय के बाद उन्ही में मिश्रित हो गयीं।

कंथर-कोट के विजयी मोर के वंशजों ने यहाँ पर पाँच पीढ़ी तक अपना अधिकार रखा। लेकिन बाद मे प्रसिद्ध लाखा फूलानी के साथ—जिसका जिक्र उस समय के प्रत्येक जाति के इतिहास में मिलता है—यह शाखा भी मिट गयी। मोर के सरज, सरज के फूल और फूल के उपनाम धारी लाखा हुआ। वह सतलज से लेकर समुद्र के किनारे तक उन दिनो में लूट-मार करने के सम्बन्ध में बहुत प्रसिद्ध था, जब राठोरो ने भारत की मरुभूमि में जाकर अपना राज्य कायम किया था।

मारवाड़ के इतिहास मे लिखा है कि वह सीहाजी के द्वारा उसके भाई सीताराम की हत्या के बदले में मारा गया था। राठोरो के इतिहास के अनुसार, यह घटना भारत में उस समय की है, जब शहाबुद्दीन ने ११६३ ईसवी में यहाँ पर आक्रमण किया था। रायधन जाम ऊनड़ की आठवी पीढी मे हुआ था, जिसका समय जेठवा-

इतिहास के आधार पर १०५३ ईसवी होता है। ऐसी दशा मे कच्छ में जडेचा लोगों के द्वारा आखिरी विजय और राज्य की स्थापना के समय को हम आसानी के साथ उत्तरी भारत मे मुसलमानो की जीत का समकालीन अर्थात् ११६३ ईसवी मान सकते हैं।

रायधन ने सिन्ध के पास से लेकर बहुत दूर तक एक नया उपनिवेश कायम किया और वही पर आरम्भ मे चूडी मे निवास स्थान बनवाया। लेकिन थोडे ही समय के बाद बुचाऊ के पास वेन्द अथवा ऊँद स्थानान्तरित हो गया।

रायधन के चार लड़के उसके साथ साम, नगर से आये थे। लेकिन वंशावली में लिखा है कि रायधन के पोयला नामक एक और लडका भी था और वह उसका पञ्चम पुत्र (१) था। वह किसी दासी से उत्पन्न हुआ था और उसके दो लड़के जुदुब और कुतुब सिन्ध में ही रह गये थे। रायधन ने किस कारण अपना देश छोडा था, इसका कही कोई उल्लेख नही मिलता। इस बात का भी कोई पता नही चलता कि उसके उन लडको की सिन्ध में क्या हालत थी, जो मुसलमान हो गये थे और उनका पिता सिन्ध में छोडकर चला आया था। लेकिन अनुमान से मालूम होता है कि उनको वहाँ से निकाल दिया गया होगा। उसके चार बेटे थे—

१—देदा—उसने मथर-कोट का सिंहासन प्राप्त किया था।

२—गजन—उसने जेठवा लोगो को पराजित किया था और उनके लडके हाला ने अपने जीते हुए देश का नाम हालार रखा और नवा नगर आबाद किया। उसने जाम की उपाधि को कायम रखा।

३—ओठो—इससे भुज के वंश की उत्पत्ति हुई।

४—होठी उसने बरधा के बारह ग्राम प्राप्त किये। उसके वंश होठी कहलाते हैं।

उसका तीसरा बेटा ओठो अपने पिता के राज-सिंहासन पर बैठा। इससे जाहिर होता है कि इस वंश में उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कोई निश्चित व्यवस्था नहीं थी। लड-भिडकर जो जितना भाग पा जाता, वह उसका अधिकारी बन जाता।

जाडेचा लोगों के वर्तमान शासन पर विचार करने के समय हमे यह ध्यान में रखना चाहिये और प्राचीन लाखा गोरार की तरह के राज्य-व्यवस्थापको को भी नही भुला देना चाहिये। इसलिए कि अगर ये नवीन उपनिवेश कायम न हो पाते तो यह निश्चित था कि उनका कोई अस्तित्व न होता। चूडचन्द और सुमाओ के इस्लाम मे चले जाने से पहले भी अनेक प्रकार के उत्पात होते रहे हैं और इस भाग का नाम इतिहास मे उन्नासी पाया जाता है। उससे इस बात का प्रमाण मिलता है कि प्रथम सँगार के लड़के उन्ना के नाम पर उसका यह नाम रखा गया था।

---

(१) राजपूतों में अविवाहित पत्नी से उत्पन्न होने वाले लड़के को पञ्चमपुत्र कहा जाता है।

इस इतिहास में ओठो की सातवी पीढ़ी में हमीर तक कोई घटना उल्लेखनीय नही है, जिसको इस वंश की वडी शाखा वाले हालार के जमाने तेहरा ग्राम के पास मार डाला था। परन्तु इस हत्या का उद्देश्य सफल नही हो सका, इसलिये कि स्वयं हालार की पत्नी ने—जो चावड़ावंश की थी और हमीर के पुत्रों की माता की बहन अर्थात् मौसी थी, उसकी रक्षा करने का प्रत्येक सूरत में निश्चय किया और उसको अपने भाई (ककुल) चावड़ा के पास भेज दिया। उसके भाई ने अपने कर्त्तव्य का पालन यहाँ तक किया कि अपने पुत्र के मारे जाने की परवाह की लेकिन उन लोगो के छिपने का स्थान जाम को नही बताया। इतिहास मे लिखा है कि उसी दिन से ककुल को सामान्तो को न मारे जाने का वरदान-सा मिल गया। जिसने किसी के प्राणो की रक्षा की थी, उसके प्राणों की रक्षा होना और उसके लिये वरदान मिलना स्वाभाविक और प्राकृतिक है, जो होना ही चाहिये था।

तरुण राजकुमार सुरक्षित होने के वाद भी कुछ दिनो तक गुप्त रहने की चेष्टा की। उन्ही दिनो में वह पूर्व की तरफ चला गया और मानिकमेर से मिला। मानिकमेर भविष्य वताने में बहुत प्रसिद्ध हो रहा था। राजकुमार के पैर में राज का चिह्न था, उस भविष्य वक्ता ने उसे देख लिया। वह जानता था कि इसका चिह्न जिसके पैर में होता है, वह राज्यधिकारी होता है, उसमे किसी प्रकार का अन्तर नही पड़ता।

राजकुमार को देखकर भविष्य वक्ताने अपनी भविष्य वाणी की और आजादी के साथ कहा कि तुमको एक दिन सिंहासन पर वैठना है। ज्योतिषी ने राजकुमार को अहमदावाद जाने का परामर्श दिया।

राजकुमार को ज्योतिषी की वातो से परम सतोष मिला। वह सोचने लगा—यह कैसे होगा? लेकिन फिर सोचा कि इस प्रकार की भविष्य-वाणी सच हुआ करती है। क्योंकि उसने किसी लोभ-लालच में ऐसा नही कहा। ज्योतिषी के परामर्श के अनुसार, बड़ी खुशी के साथ वह उससे विदा होकर अहमदावाद के लिये रवाना हुआ।

राजकुमार को मार्ग में एक काला घोड़ा मिला। यह एक अच्छा शकुन होता है। राजकुमार को संतोष मिला। वह अपने रास्ते में आगे वढा। उसे कुछ दूर के वाद एक राजा मिला, वह शिकार के लिये निकला था। वह राजा उसके परिचय का था। भेट होने पर राजकुमार के साथ राजा ने वड़ा स्नेह प्रकट किया और उसने राजकुमार को अपने साथ ले लिया।

उसी मौके पर राजा ने हाका के वाद (१) शेर का शिकार किया और राज-

---

(१) राजा के शिकार पर आने पर साथ के लोग हल्ला मचा कर जानवर को जगल से वाहर आने का मौका देते हैं, उसी समय राजा निशाना लगाता है। इस प्रकार हल्ला को हाका कहा जाता है।

कुमार के साथ वह अपनी राजधानी में आया। उसने राजकुमार को बड़े सम्मान के साथ रखा और उसे राव की पदवी देकर कच्छ और मोरवी की जागीर का उसे अधिकारी बना दिया। राजकुमार को अपना पलटता हुआ भाग्य दिखायी देने लगा।

सेना के बल पर जाम ने राजकुमार को निकाला था और उसको असहाय दशा में हालार जाकर शरण लेनी पड़ी थी। इस प्रकार हमीर के बेटे हमीरानी ने सन् १५३७ ईसवी मे अपना अधिकार प्राप्त कर लिया और सन् १५४६ ईसवी में अगहन की पञ्चमी को भुज नगर की स्थापना की। उसने ज्योतिषी मानिकमेर को भुलाया नही। उसने ज्योतिषी और उसके वंशजो को वीर नामक—जो आजकल अंजार कहलाता है—सदा के लिये देकर उसे सम्मानित किया। उस अंजार के अधिकारी आजकल अङ्गरेज हैं।

यहाँ पर यह भी जान लेना चाहिए कि हमीर ने अपने मारे जाने के पहले अपने वंश के कुछ लोगो को—जो बालिग नही थे—जागीरें दी थी, वे लोग अब तक कच्छ में सामन्त हैं। जिनको इस प्रकार जागीरें दी गयी थीं, उनमें रोहा, बीजम, मावतेड़ा, नलिया, अटिसर आदि हैं।

भुज के संस्थापक राव खंगार से लेकर अब तक नाबालिग राव तक चौदह पीढ़ियाँ होती हैं। उनके नाम और सिंहासन पर बैठने की तिथि—जो गद्दी पर बैठे—सभी कुछ सावधानी के साथ इतिहास में लिखा गया है। इसके साथ-साथ उनके मरने की तिथियाँ भी उसमे दी गयी हैं। उन बातो मे पाठको की रूचि हो अथवा न हो, यह दूसरी बात है। लेकिन क्रम से जो लोग सिंहासन पर बैठे, उनके नामों के साथ वहाँ के प्रचलित विशेषण लगाये गये हैं। उन विशेषणों से उनके वंश और शाखाओ का पता चलता है। जो लोग जातियो के पारस्परिक सम्बन्ध, राजनीतिक परिस्थितियाँ और वंश के सम्बन्ध में सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, ये विवरण उनके बड़े काम के साबित होंगे।

इसलिये आवश्यक समझकर यहाँ पर उनके विवरण, लेकिन संक्षेप में दिये गये हैं। यह बात जरूर है कि इस प्रकार के विवरण पश्चिमी देशों के पाठको के काम के नही भी हो सकते, अतएव उनकी अरूचि का होना इन घटनाओ के साथ अस्वाभाविक नही होगा। जैसे कि उनको हमीरानी, खंगरानी, भारानी, तमाचीयानी, नोधानी, हालानी, रायधनानी, कारानी और जो रानी इत्यादि की विस्तृत वंशावलियो से कोई सरोकार न होना स्वाभाविक है। विशेष कर उन स्थानो के साथ, जहाँ पर राजाओं के वंशो और उनकी शाखाओ को स्पष्ट करने के लिये विशेषणो को कई-कई बार दोहराया गया है, जैसे खंगार हमीरानी, खंगार तमाचीयानी, खंगार नोधानी इत्यादि। कही-कही पर खगार अथवा दूसरे इसी प्रकार के नामधारी राजाओ की शाखा का

अन्तर प्रकट करने के लिये आधा दर्जन से अधिक पैतृक नामों अथवा विशेषणों को बार-बार दोहराया गया है ।

इस प्रकार के विवरणो के सग्रह जाड़ेचा के भाट ने अपनी पोथियो में अधिक एकत्रित कर रखा है । वह देखने मे अथवा अधिक ध्यान देने से चाहे भले बेकार मालूम पड़े, लेकिन जब उत्तराधिकार जैसे विवाद खडे होते हैं तो उनको ईमानदारी के साथ, सही-सही निर्णय करने के लिये केवल ये वशावलियाँ और शाखाओ के विवरण ही सहायता करते हैं ।

मूल वंशावलियों के भीतर रहकर इस विषय पर विस्तार से लिखना कुछ अधिक कठिन कार्य नही था । लेकिन यहाँ पर मेरा प्रधान उद्देश्य वर्तमान राजवश की वास्तविक वंशावली को समझना, चालू शासन-पद्धति की विशेषताओं का सही विवरण देना और जाडेचा लोगो के रहन सहन, स्थिति एवम् धार्मिक, परिवर्तनों का वर्णन करना है ।

अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के पहले मैं इस जाति के प्रमुख गुणों पर दृष्टिपात करना चाहता हूँ और विशेष रूप से मंथन करने के बाद, जो दो मत कायम हुए हैं, उन पर प्रकाश डालूगा ।

भारत में यदुवश की प्रधान सत्ता और प्रभुता ईसा से पहले लगभग बारह सौ वर्ष पहले छिन्न-भिन्न हो गयी थी । उसके बाद उनके जो अधिकार छिन्न-भिन्न अवस्था में मिलते हैं, उनको देखना और टटोलना भी मेरे लिये बहुत आवश्यक है । यह बात जरूर है कि जिनके सम्बन्ध में मैं खोज करने और समझने-बूझने जा रहा हूँ, वे इतिहासो मे कही नही मिलती । उस अवस्था में उनके आधार उन वंशावलियो में—जो आसानी के साथ शुद्ध और सही नही कही जा सकती—में पाये जाने के साथ-साथ तीर्थ स्थानो के माहात्म्यों, परम्पराओं, प्रथाओ और शिला-लेखों तथा स्मारकों में मिलते है, जिनकी उपेक्षा भी नही की जा सकती । लेकिन बहुत मथने की आवश्यकता है । बिना मथे हुए सत्य की खोज नही की जा सकती । इस मथने और खोज करने का कार्य जितने ही परिश्रम और धैर्य के साथ किया जाता है, उतनी ही अच्छी और सही सामग्री प्राप्त होती है ।

एक बात और है, जिसके सम्बन्ध में पहले भी मैं लिख चुका हूँ और आज यहाँ पर भी लिख देना चाहता हूँ । जो सामग्री बहुत सही और प्रामाणिक न मालूम हो, उसे न तो छोड़ देना ठीक है और न उस पर आँखें बन्द करके विश्वास कर लेना ठीक होता है । पुरातत्व विषयक कार्य शोध का वह कार्य है, जो शोध कर्त्ता को बारीक से बारीक कार्य की तहो में प्रवेश करने के लिये मजबूर करता है और वहाँ—अत्यन्त अन्धकार मे पहुँचने पर भी बहुत सावधानी के साथ आँखे खोलकर देखना और समझना पड़ता है । अविश्वास करके छोड़ देने से यह निश्चित है कि उसमें छिपी हुई

कुछ ऐतिहासिक सामग्री से हाथ धोना पड़ता है और आँखे बन्द करके विश्वास कर लेने से ऐसी सामग्री ही मिलने की पूरे तौर पर सम्भावना होती है, जो कृतिम, बनावटी और गढी हुई होती है, इस प्रकार की सामग्री से हित के स्थान पर अहित ही अधिक होता है।

हमने ऊपर जो वर्णन किया है, वह ऐतिहासिक सामग्री देने के स्रोत बन जाते हैं और उन्ही से हमे पता चलता है कि इन यादवो की एक शाखा पश्चिमी एशिया की तरफ चली गयी और जाबुलिस्तान में जाकर बस गयी। दूसरी शाखा सिन्ध की तरफ गयी और वहाँ साम्ब की राजधानी साम नगर की स्थापना की। वह राजधानी सिकन्दर के आने के समय तक मौजूद थी।

यह पैतृक नाम साम्ब अथवा सामवाद मे भी जारी रहा और उस समय तक चलता रहा, जब तक कि उन्होंने अपना धर्म छोडकर इस्लाम को स्वीकार नही कर लिया। उन्हे आगामी इतिहास मे सिन्ध सुम्मा वंश के लोग लिखा गया है। उनका यह नाम और वश उनके सिन्ध से निकाले जाने के समय तक बराबर चलता रहा, इस तरह हमको सिन्ध-सुम्मा-इतिहास के निम्नलिखित प्रधान समयो का पता चलता है—

पहला—साम्ब का सिन्ध में जमा होना ११०० से १२०० ईसवी पूर्व तक।

दूसरा—इस वश की सिकन्दर के समय अर्थात् ३०२ ईसवी पहले तक ज्यो की त्यों परिस्थिति। इस समय से चूडचन्द तक अर्थात् ६०४ ईसवी तक के तो नाम लिखे हुए पाये जाते हैं, परन्तु तिथियो का कोई उल्लेख नही मिलता। उसके बेटे सामयदु के साथ फिर प्राचीन नाम दिखायी देता है। कहा जाता है कि उसके वश के लोगो ने भी साम नगर के सुम्मा राजा की श्रेष्ठ पदवी को सुरक्षित रखा।

उन्ही मे कुछ लोगो ने अपना धर्म छोड दिया था। एक विदेशी ने लिखा है कि दूसरी शताब्दी मे एक पार्थियन अथवा इण्डोसीथिक संघ ने सिन्ध के नीचे के भाग पर अधिकार कर लिया था और उसके राजा ने मिनगर मे अपनी राजधानी कायम की थी। अब प्रश्न पैदा होता है—क्या उस नयी जाति ने साम्ब के वशजो को नष्ट कर दिया था अथवा वहाँ से बाहर निकाल दिया था। क्या एरियन के द्वारा लिखित, चूड़चन्द और आधुनिक जाडेचा लोगो की वह इण्डोसीथिक जाति है, जो ऊपरी एशिया मे अपने धर्म और रहन-सहन की अपेक्षा दूसरे धार्मिक वातावरण मे आकर इन लोगो मे मिल गयी थी और इनके इतिहास को भी अपनी वशावली मे शामिल कर लिया था।

प्राचीन काल से जो कथायें उनके सम्बन्ध में प्रचलित हैं, उनमे इस सत्य का प्रकाश अपने आप झलक रहा है। इनमें से नगर के जाम राजाओ के विषय मे एक कथा कही जाती है—

'इनका पूर्वज जसोदर मोरानी मुल्तान और पंजाब छोड़ कर सिन्ध आ गया था।'

अगर सुम्मा लोग दूसरी शताब्दी में सिन्ध विजय करने वाली यूची जाति के नही हैं तो उन लोगो ने उनको निकाल दिया होगा। हम स्पष्ट देखते हैं कि हिजरी सन् की पहली और विक्रम की आठवीं शताब्दी मे ऊपरी सिन्ध के सिंहासन पर दाहिर (१) का वंश शासन करता था और कर्नल पॉटिङ्गर (२) के अनुसार इस जाति ने टाक अथवा तक्षक (गेटिक वंश की एक मशहूर) जाति से अधिकार प्राप्त किया था। ऐसी दशा में हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि सुम्मा-यादव पश्चिमी एशिया से आने वाली इन जातियो और वंशो के सत्रो में मिश्रित हो गये। अथवा उन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

सन् ६०४ ईसवी में चूड़चन्द से पहले छत्तीस राजाओं के नाम मिलते हैं। जिनसे दूसरी शताब्दी मे इण्डोसीथिक लोगो के द्वारा सिन्ध विजय से लेकर उसका सम्पर्क जोडने में सहायता मिलती है। यद्यपि सामेत्र से उसका सम्बन्ध जोडने के लिये आवश्यक कड़ियाँ नहीं पायी जाती। ऐसी दशा में यह मान लेना चाहिये कि इस प्रकार के नाम लिखे हुये नही मिलते। इनमें से अधिकांश नाम राजपूतो में पाये जाते हैं, लेकिन कुछ ऐसे हैं जो सिन्ध के हिन्दुओं से नही मिलते और उन नामो में सीथिक तथा हूँणी जातीयता पायी जाती है। यह जाहिर है कि उनके दल भारत में दूसरी तथा छठी शताब्दी मे आये थे।

निकास, अथवा उत्पत्ति कही से अथवा किसी से हो, लेकिन यह निश्चित है कि यह वंश साम नगर मे चूड़चन्द से कई पीढी पहले आ चुका था। उसका नाम उसके आस-पास के राज्यो मे ख्याति प्राप्त कर चुका था और उसके समय ६०४ ईसवी से अब तक की जो सामग्री मिलती है, उसके द्वारा हमारी इन बातों का समर्थन होता है।

---

(१) यह एक अजीव-सी बात मालूम होती है कि दाहिर देशपति अथवा सिन्ध के राजा दाहिर ने इस्लाम के पहले आक्रमण के समय चित्तौर की रक्षा करने मे राणा लोगों की सहायता की थी। —राजस्थान का इतिहास

(२) कर्नल सर हेनरी पार्टिङ्गर का जन्म १७८६ ईसवी में आयरलैन्ड में हुआ था, चो सन् १८३६-१८४० ईसवी तक सिन्ध मे गवर्नर रहे और उसके पश्चात ओपीन के युद्ध मे ख्याति प्राप्ति करके हांगकाङ्ग के आरम्भ में ब्रिटिश गवर्नर के पद पर नियुक्त हुए और फिर उसके बाद मद्रास मे भी १८४७ से १८५४ ई० तक गवर्नर रहे। उन्होंने अपने संस्मरण भी लिखा हैं।

—वेबस्टर्स बायोग्रेफिकल डिक्सनरी पेज १२६६, १६५६

अतएव अब हमको कल्पना तथा अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है और न हम को भूल-भुलैयों मे पडने की आवश्यकता है। इससे कोई परिणाम नही निकलेगा। चूड़चन्द के वेटे साम-यदु के समय में ही सुम्मा लोगो का वंश और नाम सिन्ध में अच्छी तरह प्रसिद्ध हो चुका था।

जाम ऊनड़ के नाम के साथ, जो उस समय भी उस क्षेत्र का अधिकारी था, १०५३ ईसवी मे इन लोगो का सौराष्ट्र से सबसे पहले सम्पर्क होना स्पष्ट जाहिर करता है और ११६३ ईसवी में रायधन के समय में स्थान का त्यागन और उपनिवेश का स्थापन होने के बाद कच्छ पर विजय प्राप्त होती है, उसने १५३७ ईसवी में प्रथम राव खंगार के समय में स्थायी सरकार का रूप धारण किया था।

यह खगार वंशावलियों मे पाँचवां राजा था, जो इस नाम से हुआ था। लगभग एक हजार वर्ष तक इस प्रकार का ताना-बाना चलता रहा। उसकी उलझनो को छोड देने के बाद मुझे यह समझकर पूर्ण रूप से सतोष मिलता है कि मैंने उलझन से भरे हुए इस लम्बे ऐतिहासिक काल से कुछ सामग्री प्राप्त कर सका।

जब तक खङ्गार को अहमदाबाद के सुल्तानों की सहायता से स्वतन्त्र राजा होने का पद नही प्राप्त हुआ अथवा उसने इस अधिकार को प्राप्त नही कर लिया, तब तक जाडेचा लोग वरावरी का दावा करते रहे और बिरादरी में किसी को भी उसने अधिकारी के रूप में स्वीकार नही किया। उनका ऐसा करना कदाचित इसलिये सही था कि वे अपने राज्य में दृढता और स्थायीत्व का निर्माण करना चाहते थे।

उस समय से लेकर अब तक सब मिलाकर बारह राजा हुए हैं। उनमे प्रत्येक की सन्तानो को जागीरे दी गयी हैं और वे तथा खङ्गार से पहले की पुरानी शाखायें मिलकर एक मयाद का निर्माण करती हैं। उनका सक्षिप्त विवरण देना यहाँ पर आवश्यक हो जाता है। वे शाखायें दूरवर्ती पूर्व की राजपूत रियासतो के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क और सम्बन्ध नही रखती।

तेईसवाँ प्रकरण

राजनीति के दाँव पेंच

रतन जी की सहायता—जाड़ेचा-रियासत का विस्तार—रियासत की जन-संख्या—राज्य के सरदार और सामन्त—जागीरों के पट्टे—रियासत का विघान—राजा और सामन्तों के बीच मतभेद—राव भारमल की अदूरदर्शिता—नाबालिग राजा सिंहासन पर—जागीरदारों के द्वारा विदेशी सरकार का आमन्त्रण और समर्थन—जाड़ेचा-राज्य के अच्छे दिनों का सपना—समुद्र की ह्वेल मछली—मसखरा अय्यूब—हमारी यात्रा का अन्त !

कच्छ के सम्बन्ध में अनेक राजनीतिक और भौगोलिक विवरण मैंने पहले ही लिख दिये हैं। इसलिये यहाँ पर मुझे उस लिखे हुये के आगे चलना है और जो बातें तथा घटनायें अभी तक स्पष्ट नहीं हो सकीं, उन पर प्रकाश डालना है।

सीधी बात यह है कि मैं जाड़ेचा लोगों और दूसरे राजपूत रियासतों की आन्तरिक नीतियों की खोज करना चाहता हूँ। इस विषय में विद्वान रतन जी के द्वारा जो मुझको जानकारी प्राप्त हुई है, मैं उसके लिये उन्हें बार-बार धन्यवाद देना चाहता हूँ। वे एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनको इस प्रकार के रहस्यों की जानकारी है। मुझे यह समझ कर बड़ी प्रसन्नता हुई थी, उस समय जब उनके साथ बैठकर मैंने इस विषय में गम्भीर बातें की थी और उन्होंने उदारता पूर्वक अपनी जानकारी की सम्पूर्ण बातें मुझे बतायी थीं।

मैं रतन जी का इसलिये भी आभारी हूँ कि वे स्वयं इतिहास के एक अच्छे पारखी हैं। वे न तो अन्धकार में रहना चाहते हैं और न किसी को डालना चाहते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं आसानी के साथ उनकी बतायी और समझायी हुई बातों को लेकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सका। मैं जो उनसे प्रश्न करता था और उनके वे जो उत्तर देते थे, उनको मैं उन्हीं के सामने लिए लेता था। मैं नीचे जो कुछ भी लिखने जा रहा हूँ, उन्हीं की दी हुई सामग्री के आधार पर है।

जाड़ेचा-रियासत की विस्तार लगभग एक सौ अस्सी मील लम्बे और साठ मील चौड़े क्षेत्र पर है। वहाँ की भूमि की मिट्टी कृषि के लिए साधारण है और आबादी हलकी है। इसका पता इसी से चल जाता है कि जिस रियासत का विस्तार दस हजार वर्ग मीलों में है, उसके निवासियों की संख्या पचास हजार से अधिक नहीं है।

इसका बीसवाँ भाग भुज की राजधानी मे है और कुछ इतना ही माण्डवी के बन्दरगाह मे है।

इन दो प्रमुख स्थानो को छोडकर रियासत मे कोई स्थान ऐसा नही है, जिसको नगर कहा जा सके। कुछ कस्बे जरूर हैं, जैसे अजार, लखपत, मूँडिया आदि जो समुद्र के किनारे पर होने के कारण ख्याति प्राप्त कर सके हैं।

रियासत की इस जन-संख्या मे शासक जाति के शस्त्र-धारण करने योग्य जाडेचो की संख्या लगभग बारह हजार बतायी जाती है। बाकी लोगो मे हिन्दू, मुसलमान और दूसरी जातियो के हैं। राज्य की सम्पूर्ण आमदनी, जिसमे सामन्तो से वसूल होने वाला कर और राजस्व भी शामिल है, पचास लाख कोडी अथवा सोलह लाख रुपये हैं।

इस रियासत के पाँच भागो मे से तीन भाग खालसा के और दो भाग जागीरी के हैं। जागीरदारो की संख्या लगभग पचास है। कुछ और जागीरदार भी हैं, जिनको सिर्फ एक-एक गाँव मिला हुआ है। इन छोटे जागीरदारो को यदि उनमे शामिल कर दिया जाय तो सबको मिलाकर दो सौ हो जाते हैं। दूसरी राजपूत रियासतो की तरह कच्छ मे भी कुछ श्रेष्ठ पदवी के जागीरदार हैं और उसी प्रकार कच्छ मे तेरह प्रमुख सरदार हैं। श्रेष्ठ जागीरदारो को दूसरो की अपेक्षा कुछ अधिक भूमि दी जाती है और सम्मान भी उनको अधिक मिलता है। मेवाड मे सोलह, आमेर मे बारह (१) और जोधपुर मे आठ (२) बडे जागीरदार हैं।

सरदारो मे भी कुछ श्रेष्ठ सरदार होते हैं। उनमे प्रधान वे हैं, जो खँगार से पहले कायम हुये थे और वंशज हैं। पहले सरदारो के सम्बन्ध में कुछ विशेष नियम थे, वे अपनी अथवा अपने पूर्वजो के द्वारा जीती हुई भूमि के सम्पूर्ण मालिक थे और उनके अधिकारो में कोई दखल नही देता था। सन् १५३७ ईसवी मे खँगार राजा के घोषित

---

(१) आमेर के बारह कोटड़ी महाराज पृथ्वीराज के उन्नीस बेटो मे से ५ के सतानहीन मर जाने और दो के राजा एवम् जोगी बन जाने के कारण शेष बारह के नामो पर स्थापना हुई थी। साधारण तौर पर उनके नाम इस प्रकार हैं (१) नाथावत, स्थान चौमू, सामोद, (२) रामसिहासन (खोह-गुणासी), (३) पच्याणोत, नायला सामस्थो (४) सुल्तानोत सूरोठ (५) खगारोत, साईवाड, नरैणा, डिग्गी (६) बलभद्रोत, अचरोल (७) प्रताप पोता, साँड-कोटणा (८) चतुर्भुजोत, बगरू (९) कल्याणोत, कालवाड (१०) साईदासोत, बडोद (११) साँजोत, साँगानेर और (१२) रूप सिंहोत कुम्माणी।

(२) मारवाड के प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—(१) रियाँ, (२) रायपुर (३) खेखो (४) आऊओं (५)आसोप (५)बगडी (७) कणाणा (८) खीवसर।

हो जाने पर भी वे सरदार अपनी निजी भूमि पर अधिकारी बने रहे और राज्य की वे सभी प्रकार की सेवायें करते तथा सहायता करते रहे, जिनकी राज्य को आवश्यकता पड़ती थी।

कच्छ की रियासत में ये सामन्त स्वतन्त्र हैं। उनकी स्वतंत्रता का एक प्रमुख कारण यह भी है कि उन्ही के बल-पौरुष पर यहाँ का शासन चल रहा है। साथ ही यह भी है कि ये लोग राजवंश की शाखाओ में प्रधान माने जाते हैं। खंगार के पहले इन लोगो ने उस भूमि को स्वयं अपने अधिकार मे जाहिर कर लिया था। कुछ इस प्रकार के कारणो से कच्छ मे ये लोग स्वतन्त्रता का भोग करते है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यहाँ के राजा को अन्य रियासतो के राजाओ की अपेक्षा कम अधिकार मिले हैं। राजा और इन सामन्तो के अधिकारों का विभाजन ऐसे ढंग से किया गया है कि अगर जरा भी संतुलन मे अन्तर पडता है तो वहाँ की शासन-प्रणाली में अनेक प्रकार के उथल-पुथल पैदा हो सकते हैं।

मुझे इसके समझने का अवसर नहीं मिला कि जब असंगठित जाडेचा सामन्तों ने खंगार को अपना राज स्वीकार किया था, उस समय इन अधिकारों का कोई विभाजन हो गया था अथवा नहीं। लेकिन उस अवसर पर एक प्रतिज्ञा अवश्य की गयी थी और वह प्रतिज्ञा उनके विशेष अधिकारो के सरक्षण के सम्बन्ध में थी, वह यह कि सामन्तो के सम्बन्ध का कोई भी उपस्थित होने पर उसके निर्णय के लिए भायाद का परामर्श निश्चित रूप से लिया जायगा और उसके विना सामन्तों के किसी मामले का निर्णय नही किया जायगा। उस राज में भायाद अथवा भाइयो की एक राज्य-सभा है, उसमें रियासत का प्रत्येक प्रमुख जागीदार भाग लेता है।

समस्त जाड़ेचा सामन्तो को एक साथ बुलाने का अधिकार राव को है, इसप्रकार बुलाने को वहाँ पर 'खेर' कहा जाता है। लेकिन राव के इस अधिकार में सामन्तों की स्वतन्त्रता का सम्मान करने के लिए एक शर्त अथवा नियम भी रखा गया है। यानी एक साथ सामन्तों को बुलाने पर राजा की तरफ से उनको एक निश्चित भेंट दी जाती है। यद्यपि वह भेंट बहुत साधारण होती है और वह केवल सामन्तों के सम्मान की परिचायक होती है।

इस छोटी-सी भेंट के सम्बन्ध में अधिक विचार करने पर जाहिर होता है कि इस विषय में कुछ आपसी समझौता है। इसलिये कि इसको स्वीकार करने में सरदार को तो यह मालूम होता है कि यह सेवा अनिवार्य नही है और राजा भी समझता है कि सरदार अथवा सामन्त को आदर के लिये यह आवश्यक है।

किसी जाडेचा सरदार की मृत्यु पर राव की तरफ से मृतक के उत्ताराधिकारी को एक तलवार और पगड़ी भेजी जाती है। लेकिन इसके आधार पर उसको उत्तरा-

धिकार का अधिकार नही मिलता और न उसका कोई दूसरा लाभ ही उठाया जा सकता है। उस तलवार और पगडी का पाने वाला, यदि कोई उत्पन्न हो जाय तो वह जागीर का उत्तराधिकारी भी केवल इसी के आधार पर नही माना जा सकता।

मेवाड मे इस प्रकार की भेट की कीमत उस जागीर की एक वर्ष की आय मानी जाती है। कच्छ मे इस भेट को उत्तराधिकार का एक सम्मान माना जाता है। इसके बदले मे किसी भे: अथवा किसी दूसरी रम्भ की अदायगीर की प्रथा नही है। ऐसे मौके तिलक, विवाह अथवा राजकुमार के जन्मोत्सव के समय पर ही आते हैं और उन अवसरो के लिये ये प्रथाये सुरक्षित रहती हैं। ऐसे मौको पर प्रत्येक जाडेचा सरदार अथवा सामन्त को राज-दरबार मे उपस्थित होकर सम्मान प्रदर्शन के साथ-साथ भेट देनी पडती है।

जागीरो के पट्टे सामन्तो के नाम होते हैं, उन पट्टो के लिखे जाने के समय इस विषय का कोई विचार नही होता कि वह पट्टा पहले-पहल किसी को दिया जा रहा है अथवा उसकी पुनरावृत्ति हो रही है। यहाँ पर मेवाड की प्रथा के अनुसार, काला पट्टा (१) अर्थात पट्टा लेने वाले के अन्तिम जीवन तक है अथवा बीच मे भ। वह किसी दूसरे को दिया जा सकता है, इस तरह की कोई बात नही होती। यह व्यवस्था इस रियासत की पुरानी है। हमारे मित्र रतन जी के अनुसार, इस रियासत में लिखा जाने वाला पट्टा हमेशा के लिये होता है, चाहे वह किसी को भी क्यो न दिया गया हो। उसमें जाति अथवा वंश का कोई प्रभाव नही पडता। पट्टा लिखाने वाले का उस पर सर्वाधिकार होता है।

सक्षेप मे यह नियम इस रियासत का बहुत स्पष्ट और साफ है और इन जागीरो पर जागीरदारो का उनना ही और उसी प्रकार अधिकार होता है, जितना और जिस प्रकार इगलैन्ड मे किसी लार्ड का अपनी जायदाद पर होता है।

जागीरदारों को दी गयी भूमि (२) और उनके अधिकारो के सम्बन्ध मे राजा को हस्तक्षेप करने का अधिकार उसी अवसर पर होता है, जब उसके जागीरदारों में किसी प्रकार का झगडा अथवा विवाद पैदा होता है, उस समय उस विवाद का निर्णय राजा करता है।

---

(१) राजवंश के अतिरिक्त जब किसी जागीर का पट्टा दूसरे वंश अथवा जाति के नाम होता है तो वह काला पट्टा कहलाता है। यह जागीर कभी भी किसी दूसरे को दी जा सकती है।

(२) जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर जब उसका पट्टा किसी दूसरे के नाम लिखा जाता था, उस समय उसमे लगी हुई भूमि का कुछ भाग कम कर दिया जाता था। इससे वह जागीर लगातार कम होती चली जाती थी। उसको चूडा उतार पट्टा कहा जाता है। इस प्रकार राज्य मे कई प्रकार के पट्टे होते हैं।

राजा के इस अधिकार को जागीरदारों ने अपनी इच्छा से मन्जूर किया है, लेकिन यह उन्ही तक सीमित है, जिनको राज्य की ओर से जागीरी भूमि दी जाती है, लेकिन यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिये कि सरदारों और सामन्तो के परामर्श के बिना राजा कोई भी कार्य—जो गम्भीर हो और विशेषकर राज्य तथा प्रजा से सम्बध रखता हो—कर नही सकता।

इस राज्य मे उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एक विवाद पूर्ण विषय चल रहा है। यहाँ पर सरदारो और सामन्तो की एक समिति है। इस समिति के सदस्यों के साथ राव का मतभेद है। यहाँ पर राज्य का सचालन करने वाली समिति भी है, वह समिति राजा के अल्पवयस्क होने पर अपने अधिकारो का प्रयोग करती है। लेकिन साधारण तौर पर किसी विवाद के मौके पर उसके सदस्यों का भी परामर्श लिया जाता है।

विवाद यह है कि स्वतन्त्र जाडेचा जागीरदारो मे किसी एक छोटे जागीरदार की मृत्यु हो गयी, उसकी न तो अपनी संतान थी और न कोई निकटवर्ती सम्बन्धी था। उसने भाटिया जाति की एक स्त्री को बिठा लिया था उससे एक अवैध लड़का है। लेकिन वह अपने पिता की जागीर का अधिकारी है अथवा नही, यह एक विकट प्रश्न राव के सामने है। इस विवाद को निर्णय करने मे दो भाग हो गये हैं। दोनो ही पक्ष के लोग अपने-अपने विचारो का समर्थन कर रहे हैं।

राज्य की ओर से कहा जाता है कि यह प्रश्न साधारण उत्तराधिकार का है, इसलिये इस जागीर को खालसा अर्थात् राज्य के द्वारा फिर से प्राप्त करने का एक नया हक पैदा हो जाता है। लेकिन जो इस प्रकार को दलील पेश करते हैं, यह जागीर उनकी दी हुई नही है।

दूसरे पक्ष में सरदार लोग गैर कानूनी परम्परा को रोककर उसे चालू नहीं होने देना चाहते। दोनों पक्ष के लोग अपने-अपने विचारों पर दृढ हैं। इस विवाद को हल करने के लिये सबसे सरल तरीका यह होगा कि परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार कुछ परिवर्तन के साथ आपसी समझौता करने की कोशिश करें। इसके अनुसार यह हो सकता है कि सरदारो की साधारण समिति मृतक के निकटवर्ती वंशज को—चाहे वह कितनी पीढ़ी की दूरी पर क्यो न हो—उसका दत्तक पुत्र स्वीकार कर ले और राज्य की ओर से इस गोद नशीनी प्रथा को स्वीकार कर लिया जाय। परन्तु एक पक्ष इस समझौते को स्वीकार नही करता। और मूल सिद्धान्तों को देखते हुए यह सही भी मालूम होता है। ये लोग दूसरी राजपूत रियासतों की परम्परा का हवाला देकर अपने पक्ष का समर्थन कर सकते हैं। यह बात दूसरी है कि राजपूती की रिया-

सतो के सिद्धान्त को मानने के लिये जाडेचा की रियासत मजबूर नही हो सकती। इस-लिये कि रियासतो के अपने-अपने नियम और विधान होते हैं।

इस अवस्था मे पुरानी परम्परा को खत्म करने के लिए यह दलील काफी नहीं मानी जा सकती। किसी भी अवस्था मे इस विवाद का हल जाडेचा लोगो के सिद्धान्त के अनुसार ही निकलना चाहिये, जो निर्णायको और मध्यस्थ लोगो के द्वारा हो और ब्रिटिश अधिकारियो के हस्तक्षेप से बरी हो।

इस प्रकार के अवसरो पर कच्छ मे, परम्परा और सिद्धान्त के नाम पर विवादो का निर्णय विनाश के मार्ग तक पहुँच गया है। मनु के अनुसार, जब सभी लडके अपने पिता की रियासत के समान अधिकारी होते हैं, यद्यपि सब मे बडे पुत्र का अधिकार पुरानी तथा नयी—किसी भी प्रथा के अनुसार सुरक्षित रहता है, साथ हीं यह भी सही है कि प्रत्येक पुत्र को उसका हिस्सा मिलना ही चाहिये। उस दशा मे प्रश्न यह पैदा होते हैं कि छोटे भाइयो के अधिकारो का क्या परिणाम होगा? यदि प्रत्येक के अधिकारो के अनुसार, रियासत के टुकडे लगातार किये गये तो उसका अस्तित्व ही खतरे मे पड जायगा।

इस प्रकार के विवाद साधारण नही होते। अधिकारो की रक्षा के लिये परम्पराओ की शरण ली जाती है और जिनके हक मारे जाने की स्थिति में आ जाते हैं, वे परम्पराओ का विरोध करते हुए नयी धाराओ को महत्व देते हैं। परिमाण यह होता है कि प्रकृति और परमात्मा का नियम भंग होता है। यह कि बाल वध की कुप्रथाओ का जन्म होता है। (१)

इस विषय में मेरा एक परामर्श है यदि ब्रिटिश इस रियासत के लोगो को यह समझाने का कार्य करे कि इस प्रकार के अधिकार विभाजन से कितना बडा खतरा पैदा हो सकता है। इसलिये दोनो पक्षो के लोगों में एक आपसी समझौता कराने और उसके निर्णय के अनुसार, एक नयी प्रथा को जन्म दिया सके तो एक राज्य के बहुत-से विवाद हल हो जांयगे और दोनो पक्षो के सम्बन्ध में फिर से एक नया जीवन आ जायगा।

हमने सक्षेप में अपनी सम्मति प्रकट की है और एक ऐसे व्यक्ति को बीच मे डालने का सुझाव दिया है, जिसको राजनीति मे अथवा शासन सम्बन्धी कोई अधिकार प्राप्त नही है। लेकिन सामाजिक जीवन को शक्तिशाली बनाये रखने में राज्य-शक्ति का

---

(१) मिस्टर एलीफिन्स्टन ने—जिनके उदाहरणो को मैंने अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है—अपनी कच्छ की रिपोर्ट मे इसका समर्थन किया है और स्पष्ट रूप मे लिखा है कि इस प्रकार की प्रथा के कारण ही एक मात्र उत्तराधिकारी पाया गया है।

प्रयोग कर सकता है। वह न तो किसी को इनाम दे सकता है और न किसी को दण्ड देने का अधिकारी है। वह इस वंश के लोगो का एक संगठित संघ है और वे वंश के कल्याण को सुरक्षित रखने के लिये अपना संघ बनाये हुए हैं।

मैं यहाँ पर यह भी बता देना चाहता हूँ कि खँगार से पहले यहाँ पर ऐसा विधान था और यदि उस विधान को फिर से प्रभावित किया जा सके तो विनाशकारी सम्भावनाओं का अन्त हो सकता है।

पश्चिम की दूसरी राजपूत रियासतों और कच्छ की बहुत-सी बातों में अन्तर है। उनके विचार और रहन-सहन मे बडी भिन्नता है। इसीलिये उनकी सरकारो नीतियों और प्रणालियो में भी अन्तर हैं। यही कारण है कि उनके सामन्तो का संघ अपनी पुरानी स्वतन्त्रता के साथ अब तक जीवित है। इस सत्य को हमें समझने की चेष्टा करना चाहिये। मैंने कच्छ की यात्रा करके और यहाँ सुयोग्य व्यक्तियो से बातें करने के साथ साथ, उनके इतिहास को भली भाँति समझने की चेष्टा की है। यदि इसके पहले मैंने यहाँ की सारी बातो को जानने की कोशिश करता हो जो यहाँ के सकट मेरे सामने आये हैं, कदाचित् उनका समझ सकना भी मेरे लिये कठिन हो जाता।

यह बात सही है कि अगर मैं यहाँ आकर और यहाँ की भीतरी तथा समस्याओ को न समझकर मैं कही दूरवर्ती स्थान मे बैठा रहता और यहाँ के कानूनो, जागीरो के पट्टो का लेखन उनका पुनः ग्रहण अथवा त्यागन आदि से मैं परिचय प्राप्त करता तो मैं बडी आसानी के साथ इस बात को स्वीकार कर लेता और अपनी धारणा बना लेता कि कोई भी ऐसी सरकार, जिसके सामन्त राजा से स्वतन्त्र अपने अधिकार रखते हैं, बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकती। जहाँ तर्क का प्रश्न है, मेरी बात बिल्कुल ही सही है। मेरा अटूट विश्वास है कि यदि ऐसी सरकार कहीं राजस्थान् में अथवा उसके निकट होती तो वह एक शताब्दी भी नही चल सकती थी। किन्तु जाड़ेचा की भूमि एक ओर समुद्र से और दूसरी तरफ महान रज से घिरी होने के कारण हिन्दू रियासतो से निर्भय होकर रही है। इसके साथ-साथ यहाँ के लोगो ने मुसलमान यात्रियों को मक्का पहुँचाने में बड़ी उदारता का व्यवहार किया है, इसलिए मुसलमानों की सहानुभूति इन लोगों के साथ स्वाभाविक रूप से थी। उसी का यह फल है कि यहाँ पर कभी किसी मुस्लिम शक्ति ने आक्रमण नहीं किया।

यह सम्भव था कि जाड़ेचा राज्य की सामन्ती प्रथा में इसी प्रकार कुछ शताब्दी और बीत जातीं। लेकिन सौभाग्य से इस राज्य को एक महान सभ्य और प्रगतिशील तथा शक्तिशाली राज्य का पड़ोस प्राप्त हो जाने के कारण पुरानी परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाना आवश्यम्भावी है। मेरा अभिप्राय ब्रिटिश सरकार से है।

मराठा युद्धों के कारण बड़ौदा का गायकवाड़ दरबार हमारी सरकार से

प्रभावित हो चुका है और उसी के फलस्वरूप सौराष्ट्र के प्रायद्वीप मे जो प्रभावित राज्य उसके अधिकार मे थे, वहाँ पर भी हमारा दखल हो गया है। उन राज्यो और कच्छ को रियासत के बीच मे एक खाडी मात्र है। लेकिन धीरे-धीरे बढते हुए हम दूरवर्ती सिन्ध के लोगो के पास तक पहुँच गये हैं।

योरप के देशो मे भी सामन्त प्रणाली के द्वारा शासन रहा है। लेकिन उन देशो मे राजा और सामन्तो के बीच जो एकता और समानता रही है, उसका यहाँ पर अभाव है। यहाँ के राव और सामन्त-दोनो ही एक दूसरे के प्रति वह सम्मानपूर्ण व्यवहार नही करते, जो कि होना चाहिये। ऐसी दशा मे कुछ थोडी सी राजनीतिक चालो के द्वारा सामन्तो की शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो सकती थी और सम्पूर्ण अधिकार राजा के हाथ मे आ जाते। लेकिन ऐसा नही किया गया और न ऐसा होना ही उचित था।

सम्पूर्ण सामन्तो की अपेक्षा राजा का खालसाई क्षेत्र अधिक विस्तृत है। और उनके नगरो तथा कस्बो के व्यापारिक कर से राज्य की आय अधिक की जा सकती है। इस प्रकार की सुविधाओ का उपयोग करके राजा अपने सामन्तो से कुछ अधिक सेवायें ले सकता है।

प्रत्येक राज्य और दरबार में सदा से विरोधी दल चले आये हैं और उस दशा मे उनके सिद्धान्त एक दूसरे के प्रतिकूल काम करते ही रहे हैं। यह कोई नयी बात नहीं है।

मुझे कुछ ऐसे उदाहरण जानने को मिले हैं कि अनेक अवसरो पर राजा की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाने वाले काम करने के कारण एक सदस्य को दण्ड दिये जाने पर राज-वश के समस्त लोग सगठित होकर विरुद्ध खड़े हो गये थे। ऐसे मौके पर सम्पूर्ण सामन्तो को एकत्रित कर लेने का कार्य कुछ कठिन नही था और जब राज्य पर बाहरी कोई आक्रमण होता तो समस्त जाडेचा सामना करने के लिये तैयार हो जाता।

ऐसे अवसरो पर मैं कुछ और भी सोचने लगता हूँ। पिछले दिनो मे यहाँ के राजाओ का इतिहास कुछ दूसरी बातो की तरफ सकेत करता है। उन दिनो मे राजाओ ने अपनी रक्षा के लिये अरबो, सिन्धियो और रुहेलो को सेनाओ में भर्ती किया था। उसका परिणाम यह हुआ था कि इन राजाओ के सरदारो में ईर्षा की एक भावना उत्पन्न हो गयी थी। दूसरी बात यह भी है कि ये भाड़े के टट्टू कितने दिन काम कर सकते थे।

सामन्त लोग अपने स्वामी की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिये प्रत्येक कोमन के साथ तैयार रहते हैं। लेकिन बलिदान की यह भावना उस समय नष्ट हो जाती है, जब उनके दिलों मे वेदना और ईर्षा उत्पन्न हो जाती है। वे सरदार यह

समझने लगते हैं कि हम पर और हमारी सेना पर विश्वास न रखने के कारण ही बाहरी जाति के आदमियों को सेनाओ में भर्ती किया गया है।

अन्तिम राव भारमल का उदाहरण हमारे सामने है। उसने प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास किया था, उसके दुष्परिणाम उसके सामने आये। मद्यपान की बढती हुई आदतो ने उसके स्वभाव को और भी अधिक उग्र बना दिया था और उसने विदेशी जातियो के भाडे के नौकरों पर विश्वास करके अपने अधिकारों की रक्षा का विश्वास किया था। अपने आदमियो के विरोध करने के बावजूद उसने अपने देश की प्राचीन प्रणाली को ठुकराना आरम्भ कर दिया था। उसके इन कामो मे बाहरी जातियों के सैनिको का ही अधिक सहारा था।

राव भारमल के दरबार में विरोधी प्रवृत्तियो की वृद्धि होने लगी थी, राव ने उन प्रवृत्तियों को शान्त करने की कोई चेष्टा नहीं की। इसका परिणाम और भी घातक निकला। उसकी अपनी प्रजा ने उसके सामने आत्म-समर्पण करने के बजाय बृटिश सत्ता को मध्यस्थ बनाने का निश्चय किया और इसके लिये उन लोगो ने अङ्ग-रेज अधिकारियों को आमन्त्रित भी किया।

अङ्गरेज अधिकारियो ने उस आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया और उसके अनुसार वहाँ पर प्रजा की सहायता के लिये बृटिश सहायक सेना आ गयी। राव भारमल ने उस समय भी बुद्धि से काम नही लिया। उसका आवेश बढ गया और प्रत्येक कार्य उसके पागलपन का प्रमाण देने लगा। उसका परिणाम यह निकला कि वह गद्दी से उतारा गया, कैद किया गया और उसके बेटे राव देसल को सिंहासन पर बिठाया गया।

जिसे सिंहासन बर बिठाया गया, वह एक बालक था। इसलिये उसकी तरफ से शासन का प्रबन्ध करने के लिये एक प्रतिनिधि समिति कायम की गयी। उसमे प्रधान जाडेचा सरदार और राज्य के अनुभवी कर्मचारी रखे गये। इन सब लोगो में रतन जी का नाम भी सम्मिलित है, जिनसे जाडेचा इतिहास को समझने मे मुझे बडी सहायता मिली है। इतना ही नही, रतन जी अँगरेजों के परम हितैषी है।

इस प्रकार जो समिति कायम की गयी, उसका अध्यक्ष बृटिश रेजीडेण्ट को बनाया गया। इस प्रकार नये तरीकों पर राज्य का कार्य आरम्भ हुआ। मैंने जहाँ तक देखा और सुना है, इस नयी व्यवस्था से प्रजा को अधिक संतोष मिल रहा है। सम्पूर्ण रियासत मे शान्ति है। सभी के साथ न्याय किया जा रहा है और सभी लोग स्वा-भाविक रूप से अपने अधिकारो का सुख भोग रहे हैं।

इन दिनों में राव देसल नाबालिग है, उसकी सहायता के लिए—जैसा कि ऊपर लिखा गया है—एक व्यवस्था कर दी गयी है। जब तक राव देसल बालिग नहीं

हो जाता, इस व्यवस्था के द्वारा राज्य मे बराबर शासन चलता रहेगा। उसके बालिग हो जाने के बाद इस प्रतिनिधि समिति की कोई आवश्यकता न रहेगी। देसल स्वयम् शासन की देख-भाल करेगा। रियासत का भविष्य नये राजा की योग्यता और समझ-दारी पर निर्भर है। उसके सम्बन्ध मे आज कुछ नही कहा जा सकता।

राज्य के जिन जागीरदारो ने अपने राजा के साथ रहने की अपेक्षा विदेशी शक्ति को अपनी स्वतन्त्रता सौंप देना अधिक उपयोगी समझा, उन्होने अब नयी व्यवस्था के समय एक नया जीवन प्राप्त किया और उनके तथा उनकी प्रजा के बीच एक शान्ति पूर्ण जीवन का अकुर उगा। जो सामन्त पहले अपनी परतन्त्रता अनुभव करते थे, वे अब अपने आपको अधिक स्वतन्त्र मानते हैं।

हमारी समझ मे यह रियासत पहले की अपेक्षा अब अधिक सुखी है और जो न्याय राजा की ओर से प्रजा को पहले नही मिलता था, वह आज मिलता है।

इस रियासत की इन पुरानी बातो को छोडकर मैं अब कुछ दूसरी बातो मे आता हूँ। इस राज्य मे जो जातियाँ रहती हैं, उनमे कुछ बातें विचित्रता की भी हैं। साथ ही राज्य के कुछ रहन-सहन भी अनोखे हैं। उन सब बातो पर विचार करने से यह रियासत भारत मे सबसे श्रेष्ठ मालूम होती है। यहाँ की शासन-व्यवस्था अब अँगरेजी सत्ता के अधिकार मे है। शक्तिशाली गायकवाड, अनहिलवाडा का स्वामी, उसके सामन्त, गोहिल, चावडा, घुमक्कड़, काठी, जगत कूंट के जल-डकैत और साम तथा यदु के वशज जाडेचा—सभी ने अपने-अपने सामन्तो के सघ को समाप्त कर दिया है और अब इन सबने अपनी इच्छा से विदेशी शासन के आगे आत्म-समर्पण कर दिया है।

यहूदियो के बुद्धिमान उपदेशक और राजपूतो के अन्तिम भाट ने एक स्वर से नाबालगी के खतरो की आवाज उठायी है। जो घोषणा की गयी है, उसमे कहा गया है कि 'हे देश यह महान दुख की बात है कि तेरा राजा आज एक बालक है।' इसके आगे चन्द कवि पूर्ति करता हुआ लिखता है—'और जब स्त्रियाँ राज्य करती हैं' और ऐसी परिस्थिति के परिणाम राजपूतो के लिए उपदेशक के इस पद्य का अश 'और जब तेरे राजकुमार प्रात काल भोजन करते हैं'—से भी अधिक भय पैदा करने वाले होते हैं। अगर अमल और मद्य-पान का प्रेमी राजपूत जीवन की सध्या काल में पहुँचने तक 'कलेवा' (१) करने की अभिलाषा को छोड़ दे तो निश्चय ही उसका पुनर्जीवन समझा जायगा।

परन्तु जो सहायक-सधि हुई है, उसके राजनीतिक एवम् पैशाचिक परिणामो का न तो यहूदी उपदेशक को कुछ अनुमान था और न राजपूत चारण को ही इसका

(१) प्रातःकाल की अफीम सेवन से सम्बन्ध रखता है।

ज्ञान था। यह अनुमान लगाना एक बड़ी भूल होगी कि इस प्रकार की अटूट और अटल संधि के लिए जाडेचा अपवाद होकर रहेगा, जिसने ध्रुव सत्य की तरह स्थापित होकर एक ऊँची सभ्यता के मेल से बर्बर परिस्थिति का अन्त कर दिया है।

यहाँ पर मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि हमारे मंसूबे कितने ही अच्छे क्यों न हों और प्रतिनिधि सभा के बृटिश रेजीडेण्ट एवम् हमारे सहृदय मित्र रतन जी कितनी ही भलाई क्यों न करे लेकिन जो जागीरदारों ने जाडेचा-राज्य का शासन हमारे चरणों पर लाकर उपस्थित किया है, उनका यह एक अक्षम्य अपराध है। इसलिए कि ये सब अपनी रक्षा के लिए हमारे आश्रित हो गये हैं।

यह एक अजीब बात होगी, अगर इस रियासत को—जिसका अस्तित्व अतीत काल से चला आ रहा है और जो भविष्य में भी कायम रहेगा—इस नियम का एक अपवाद बना दिया जावे, उस समय तक जब तक कि राजपूताना के अन्तिम नेस्टर (१) जालिमसिंह की भविष्यवाणी—'समस्त भारत में एक ही सिक्का चलेगा'—पूरी न हो जाय। उसका यह भविष्य कथन पूर्ति की तरफ तेजी के साथ बढ़ता हुआ दिखायी दे रहा है। जालिमसिंह अपने देशवालों की अदूरदर्शिता को भलो प्रकार जानता था और समझता था कि वे एक दिन शीघ्र ही उन विदेशियों के शासन को स्वीकार करेंगे, जिनसे कभी उनको छुटकारा न मिलेगा।

मद्यपान की विनाशकारी आदतों ने भाटो, चारणों और बरदाइयो की योग्यता और प्रतिमा को भी विकृत कर दिया है, जिसके द्वारा वे लोग अपने सरदारो को आपत्तियो के प्रति सावधान करते हुए सदा प्रोत्साहन दिया करते थे। अब तो हालत ही कुछ और है, भाट और चारण जब स्वयं अपने स्वामी के साथ मद्य की अमृत का पान किया करते हैं तो वे दूसरो का पथ-प्रदर्शन कैसे कर सकते हैं।

अब जाडेचा जाति के परिवर्तन का समय आया हुआ अनुभव करना चाहिये। जिसके साथ इस रियासत का गठबंधन हुआ है, उसके प्रभाव से इन सारे दुर्गुणो को नष्ट होना चाहिये। अंगरेजी शासन-प्रणाली का प्रभाव अब इस राज्य पर भी पड़ेगा। शासन में चारों तरफ परिवर्तन होंगे, अदालते नये तरीके से काम करना आरम्भ करेगी, कर्मचारी और अधिकारी ईमानदारी सीखेंगे। प्रजा का दुर्बल जीवन बदलेगा, उसके जीवन की निराशाये नष्ट होंगी और आशा का दीपक प्रकाश देना आरम्भ करेगा।

यह निश्चित है कि जाड़ेचा रियासत के दिन फिरेंगे, जो बर्बरता बढ़ती जा रही थी, उसके स्थान पर शिक्षा और सभ्यता का विकास होगा। अभी तक इस वंश

(१) नेस्टर पाइलास का शासक था। उसने ट्राजन के युद्ध में अपनी सेना का नेतृत्व किया था—

—दी आक्सफोर्ड कंमपेनियन्स टू इङ्गलिश लिटरेचर पेज ५५२

मे जो बुराइयाँ चली आ रही हैं और जिसके फलस्वरूप, सम्पूर्ण प्रजा अपने जीवन की शान्ति से निराश हो चुकी है, उसमें अब आमूल परिवर्तन होंगे। यहाँ के लोगों में शिक्षा का अभाव है, उसकी पूर्ति होगी, बाल-वध और बहुविवाह जैसी फैली हुई बुराइयाँ नष्ट होगी। यहाँ के लोगों को ससार का, ससार की सभ्यता का और उसकी उन्नति का ज्ञान होगा, इस प्रकार के सभी उत्थानों के लिये यह आवश्यक था इस राज्य के लोगों का किसी अच्छी जाति के साथ सम्पर्क हो, अतएव दैवयोग से वह समय आ गया है।

रियासत के लोगों ने अँगरेज अधिकारियों को मध्यस्थ बनाने का निश्चय किया था, समय और सयोग ने आगे बढकर काम करने का अवसर दिया। भविष्य के अच्छे लक्षणों की यह सूचना है। सबसे बडी बात यह है कि राज्य के सामन्तों और सरदारो ने कुछ सोच-समझकर अँगरेजी शासन को स्वीकार किया है।

माण्डवी ७ जनवरी सन् १८२३—अपने पट्टामार जहाज के तख्ते पर। मैंने जाडेचा की राजधानी से प्रस्थान किया और आज प्रातःकाल फिर माण्डवी में आ गया। हवा बिल्कुल अनुकूल चल रही थी। इसलिए मुझको सिन्ध के मुहाने पर जाने का विचार त्याग देना पड़ा। मैं जहाज पर चढ गया। इस जहाज के द्वारा बम्बई पहुँचने के लिये मुझे पाँच सौ मील का रास्ता पार करना था।

जहाज के पाल खोल दिये गये। माण्डवी के मित्रों से विदा होकर मैं जहाज के एक स्थान पर खडा हो गया, जहाँ पर बढ़िया समुद्री हवा लग रही थी। कुछ समय के बाद जहाज रवाना हुआ और हम जगतकूंट से चलकर अपने रास्ते मे चावड़ों की प्राचीन राजधानी देवबन्दर की तरफ आगे बढे, जहाँ पर उतरकर मैंने अनहिलवाडा के सस्थापकों के सम्बन्ध में शिला-लेखो की खोज करने का निश्चय कर रखा था, लेकिन इसके लिये मुझे अवसर नही मिला। मुझे बताया गया कि यदि मैं इस प्रकार रास्ते मे उतरता-चढता रहा तो इस समय जो हवा अनुकूल मिल गई है, उससे मिलने वाला लाभ मैं स्वय खो दूगा और फिर उस दशा मे १४ तारीख तक बम्बई पहुँचना सम्भव नही हो सकेगा।

मेरी समझ में यह बात आ गई और बिना किसी तर्क के मैंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। मेरे जहाज का रुख बदल दिया गया। जहाज चालक इब्राहीम ने उस समय यह भी कहा कि हमको अब नीले के स्थान पर लाल मे खेना पडेगा। यह मल्लाहो की भाषा थी, जिससे मैं परिचय नही रखता था। मैं इब्राहीम के कुतुबनुमा के सन्दूक के सामने बैठकर कुछ समझने के अभिप्राय से पिछले भाग की तरफ से नीचे उतरकर आ गया।

मैं जो समझना चाहता था, उसका राज खुल गया। मैंने देखा कि उसके

कम्पास-यन्त्र के सिरों पर अक्षरों के स्थान पर नीले, लाल, हरे और पीले आदि विभिन्न प्रकार के रङ्ग थे और वे अपने रङ्गों के साथ उस स्थान पर थे, जहाँ पर साधारण आदमी की बुद्धि काम नही कर सकती।

इब्राहीम पढ़ा-लिखा नही था, लेकिन अपने इस कार्य को समझने में किसी प्रकार होशियार हो गया था। अशिक्षित होने पर भी उसकी बुद्धि का विकास कार्य के अनुभव पर हुआ था और अक्षरों की सहायता के बिना न केवल जहाज चलाना जानता था, बल्कि अपने मार्ग को समझने के लिये सितारो अर्थात् तारों की चालो को भी वह समझता था।

जिस समय हमारा जहाज चल रहा था, हवा बड़ी मधुर थी और आकाश निर्मल था। अँधेरा होने के समय तक हम बराबर चलते रहे। उस समय हवा बिल्कुल बन्द हो गई थी। रात गम्भीर और सुखद थी, अगहन मास के नक्षत्र अपनी सेना के साथ आकाश के ऊपरी भाग में हमारे सिर के ऊपर दिखाई दे रहे थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि वे शीतल रात का सुखोपभोग कर रहे हैं।

सायंकाल की गम्भीरता में मैं अनेक प्रकार की स्मृतियों की उधेड़-बुन में पड़ गया। इधर इन दिनों में जिस प्रकार का जीवन मैंने व्यतीत किया था, उनके बार-बार स्मरण मुझे आने लगे। मैं कभी अतीत की बातें सोचता और कभी भविष्य की आनन्दमयी कल्पनायें करने लगता। उस समय मैं भूल गया कि मैं जहाज पर चल रहा हूँ और तेजी के साथ बम्बई की तरफ बढ़ रहा हूँ।

सम्पूर्ण दिन की थकावट और रात का मधुर आलिङ्गन, सभी के नेत्र बन्द हो रहे थे। केवल इब्राहीम नाखुदा और दूसरा मल्लाह अय्यूब अथवा जोब—दोनो ही जग रहे थे। वे प्रायः आकाश के तारों की तरफ देखने लगते थे। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि इब्राहीम अनेक तारों के नाम भी जानता है। उसने रायदीम (हया-दस) (१) का नाम अरबी बतलाया, जिसको हिन्दवी में भैंस होता है। लेकिन अरबी में इसको क्या कहा जाता है, यह नही मालूम।

हमारी इस यात्रा का दूसरा दिन भी अच्छा रहा। हवा साधारण और आराम पहुँचाने वाली थी। दोपहर के करीब जब हम इस मौसिम का सुख उठा रहे थे, और बहुत दूर तक जमीन दिखाई नही पड़ती थी तो हमारे पट्टामार जहाज से कुछ दूरी पर एक विशाल व्हेल मछली अपनी शिशुमार मछलियों के समूह के साथ निकली। वह समूह कई सौ गज तक फैला हुआ था। लगभग एक घण्टे तक हमारे जहाज के बराबर-बराबर तैरती हुई वह बड़ी मछली लगातार चलती रही। वह हमसे

(१) सात तारों का एक गुच्छा।

न तो पीछे होती थी और न आगे जाती थी। वह कभी डुबकी लगा जाती और कभी बाहर आ जाती।

उस व्हेल मछली के साथ—जैसा कि ऊपर लिखा है—बहुत-सी छोटी-छोटी मछलियाँ थी, वे अथाह जल में उछल-कूद मचा रही थी, ठीक उसी प्रकार जैसे छोटे-छोटे बच्चे उछलते और कूदते हैं। मेरे साथ जो नौकर, सिपाही और सेवक थे, वे सभी उन सब मछलियो को देखकर विस्मय अनुभव कर रहे थे। उन लोगो ने तो छोटी मछलियाँ तो गंगा के जल मे बहुत देखी थी, लेकिन व्हेल मछली को देखा नही था। उन लोगो ने उसका नाम सुन रखा था।

मेरा इरादा हुआ कि मैं इस व्हेल मछली पर गोलियाँ चलाऊँ। इसके लिये मैंने अपनी बन्दूक माँगी। लेकिन उसी समय इब्राहीम ने रोककर कहा—नही, ऐसा कभी नही करना।

उसकी बात को सुनकर मैं चुप हो रहा और उसकी तरफ देखने लगा। मैं उसके रोकने पर गोली नही चलाना चाहता था, फिर भी मैं आश्चर्यचकित होकर उसकी तरफ देख रहा था। उसी समय उसने फिर कहा—नही, कभी नही। ऐसा न करना।

मैं अब भी चुप था। मुझे रोकने के लिये इब्राहीम ने उसी प्रकार मुझसे कहा, जैसे स्वर्गीय बर्कहार्ड के वफादार बेडूइन पथ-प्रदर्शक आइद ने उस समय कहा था, जब उसने अकाबा की खाडी पार करते समय किसी शिशुमार मछली पर गोली चलाने का इरादा किया था और कहा था—इनको मत मारना बडे आजाब का काम है। अर्थात् पाप होता है। क्योकि ये सब इन्सान के दोस्त हैं और कभी किसी को नुकसान नही पहुँचाती।

मैं अपने दो मल्लाहो के नाम ऊपर बता चुका हूँ। एक का नाम इब्राहीम जो नाव का मालिक अर्थात् नाखुदा था और दूसरा अय्यूब, इनके साथ ही एक इस्माइल भी था। यह बताने की जरूरत नही है कि ये सभी माँझी मुसलमान जाति के थे।

अय्यूब बातूनी और बडा मसखरा था। यद्यपि वह कभी-कभी समझदारी की बात भी करता था। लेकिन जो अच्छाइयाँ उसमे नही थीं, उनकी बाबत भी वह अपनी जिन्दादिली का बखान करता था। ऐसा करने मे उसे बडी खुशी होती थी।

अय्यूब अपनी इस आदत के सामने किसी का लिहाज नही करता था, वह सब को मजाक उडाता था। वह कुछ लापरवाह भी था। इसका अनुमान मैंने इस प्रकार लगाया कि उसके नाखुदा अर्थात् मालिक को किसी काम के लिये उससे दो-दो, तीन-तीन बार कहना पड़ता था। उस अय्यूब ने इस्लाम की हिदायतो के खिलाफ आबे

हयात का जायका भी चख लिया था, यह बात मुझे मालूम हो चुकी थी, लेकिन मैंने उससे कुछ कहा नहीं था।

इब्राहीम से बातचीत करते समय अय्यूब बीच-बीच में बोलने लगता था। उसने मौका पाकर गम्भीरता के साथ कहा—

मैंने विलायती दूध अथवा योरप के दूध के बारे में बड़ी अजीबो-गरीब कहानियाँ सुनी हैं कि वह एक ऐसी पीने की दवा है, जो दिल और दिमाग की सभी खराबियों को दूर करके राहत पहुँचाती है। क्या आप जानते हैं, वह क्या चीज है?

इसके बाद ही उसने कुछ कहना चाहा, तब तक मैंने जवाब दिया—मैं जानता क्यों नहीं हूँ।

उसी समय उसने पूछा—क्या आपके पास है?

मैंने कहा—मैं उस चीज को जानता हूँ और मेरे पास है भी। अगर तुम चाहते हो तो तुम्हारी तबीयत को शान्त करने के लिये मैं तुमको कुछ दे भी सकता हूँ।

उसको कुछ कहने का मौका न देकर मैंने उससे पूछा—तुमको उस चीज के गुण कैसे मालूम हुए, जबकि शरीयत के मुताबिक तुम्हारे लिये उसका छूना भी गुनाह है?

उसने जवाब दिया—बरसात के दिनों में बरसते हुए पानी में मैंने एक साहब का सामान बम्बई से पोरबन्दर ले जाकर उतारा था। उस समय उसने मुझको और मेरे साथियों को एक-एक गिलास उस अर्क को पिलाया था और मेरे पूछने पर उसने यही नाम बताया था।

इसके बाद मैं अपनी कोठरी में पहुँच गया और मोमबत्ती जलाकर कुछ पढने लगा। उसी समय किसी ने अन्दर आने की इजाजत माँगी। वह और कोई नहीं, अय्यूब था और अपने हाथ में खोपरा अथवा नारियल का कटोरा लिये हुआ था। मेरे सामने पहुँचते ही उसने कहा—अपना वादा पूरा करिये।

उसकी बात को सुनकर मैंने अपने एक सेवक से बोतल लाने को कहा। बोतल के आ जाने पर मैं उसे खोलकर उसके खोपरे में डालने ही वाला था कि अचानक मुझे ख्याल हो आया कि मैं भूल कर रहा हूँ, ऐसा करने से यह बेकाबू हो जायगा, मेरी समझ में आ गया कि ऐसे अवसर पर जब वह एक माँझी का कार्य कर रहा है और हम सब की खैरियत उसकी सावधानी पर निर्भर है, उसे पीने के लिये यह देना बहुत बड़ी भूल साबित होगी।

उँडेलने के लिये मैंने बोतल को टेढ़ा किया था, लेकिन तुरन्त ही मैंने उसे सीधा कर लिया। अय्यूब ने इसे देखा, लेकिन वह कुछ न कह सका। वह अपने हाथ में खोपरा लिए था और मेरी तरफ एक बड़ी उत्सुकता के साथ देख रहा था। उसकी इस हालत में मैंने उससे कहा—अय्यूब सोचो, इसे पीकर तुम होश में नहीं रह सकते और उस दशा में तूफान आ गया तो?

उसके मुख से आकस्मात निकल गया—साहब!

उसने आगे कुछ नहीं कहा। उसके मुख के भाव वैसे ही बने रहे। मैंने उससे फिर कहा—सोचो अय्यूब, मेरी बात पर गौर करो। बम्बई के बन्दरगाह पर पहुँचने के बाद यदि मैं तुमको पूरी बोतल दे दूँ तो क्या तुम आज की रात अपनी माँग को रोक नहीं सकते ?

मेरी बात को सुनने के बाद उसने अपना हाथ पीछे की तरफ खीच लिया, वह कुछ बे मन मुस्करा उठा। मैं नहीं जान सका कि मेरी बात उसको अच्छी लगी अथवा बुरी, परन्तु उसने मुस्कराते हुए कहा—आप ठीक कहते हैं, मैं इसको समझ रहा हूँ।

मैं पाँच दिनों तक उस मधुर मौसिम में समुद्र की यात्रा करता रहा, उस बीच मे फिर कोई विशेषता नही हुई। इसके बाद मैं यात्रा करता हुआ बम्बई के पास पहुँच गया। वहाँ का वातावरण दूर से ही बडा गम्भीर दिखाई देने लगा। जो कुछ दिखाई देने लगा, वह सभी प्रिय मालूम हुआ।

उस दिन चौदहवी तारीख थी, इङ्गलैंड जाने के लिये जहाज रवाना होने वाला था, दो बडे जहाजो के खुले हुये आगे के पालो की तरफ मेरा ध्यान गया। उसी समय मैंने पेंसिल से एक नोट लिखा और किसी प्रकार उसको जहाज के तख्ते पर भेजकर यह मालूम करने की कोशिश की इनमे से कोई जहाज मेरा भी है ?

इसके बाद तेजी से अपने सिपाहियो, नौकरों और सेवको को नाव से उतारा, मुझे कुछ सन्देह हो रहा था। लेकिन कुछ ही देर में मेरा वह सन्देह दूर हो गया। वे दोनों ही जहाज सराह से पहले ही इङ्गलैंड के लिये रवाना होने वाले थे। मैंने मल्लाहो को इनाम और इकराम दिये, अय्यूब को विलायत को दूध अर्थात् ब्राण्डी की बोतल देकर मैं अपना सभी प्रकार का सामान उतरवाया, मेरे उस सामान में देवताओ की टूटी हुई प्रतिमायें, शिला-लेख, शस्त्रास्त्र, पाण्डुलिपियाँ आदि चालीस बकसो मे भरी थी। उन सबको अपने तम्बुओ के नीचे रखवाया। उनके सम्बन्ध में मेरे मित्रो ने पहले से ही मेरा सहायता कर दी थी।

जहाज रवाना होने के समय तक मुझे वहाँ पर तीन सप्ताह रुकना पडा। मेरे दिल में इस बात का बडा दुख हुआ कि यदि इन तीन सप्ताहो का मौका मुझे रास्ते में मिला होता तो मैंने अपने अनुसंधान का शेष कार्य भी बहुत कुछ कर डालता। समय को बेकार व्यय करने के लिये मेरे पास गुन्जाइश कहाँ है ? प्रतीक्षा के इन दिनों को बेकार खोने का मुझे बहुत रंज हो रहा था। लेकिन जो अपने समय का सदुपयोग करना चाहता है, वह कर भी लेता है। मेरी चिन्ताओं ने मुझे अवसर दिया और मैं इन दिनों का अच्छा लाभ उठा सका।

जहाज पर रवाना होने के कई दिन पहले उस समय के प्रधान सेनापति जनरल सर चार्ल्स मालविन से अपनी यात्रा के विषय में मैंने बातचीत की। आबू पर्वत की शोभा, पालीताना के खण्डहर, सोमनाथ, अनहिलवाडा और चन्द्रावती आदि के सम्बन्ध मे मेरी बातें हुईं।

बम्बई छोड़ने के बाद कोचीन में जब जहाज को देर तक ठहरना पडा तो उस

मौके पर मैंने अपनी यात्रा के सम्बन्ध में एक विस्तृत विवरण तैयार कर लिया और उसको उनके पास भेज दिया। मेरे उस विवरण का उन्होंने बहुत फायदा उठाया और कितने ही प्रमुख स्थानों की उन्होंने यात्रा की, जिनकी जानकारी केवल मुझको थी। मुझे उस समय अधिक प्रसन्नता हुई, जब मैंने जाना कि प्रधान सेनापति के सहायक लोगों में कर्नल हण्टर ब्लेयर भी हैं और उनके साथ श्रीमती हण्टर ब्लेयर भी हैं। ये लोग सभी और विशेषकर श्रीमती हण्टर वास्तु विज्ञान, पुरातत्व और हिन्दू-शिल्प के सम्बन्ध में विशेष रुचि रखती हैं।

मेरी यात्रा की कहानी यहाँ पर समाप्त होती है। एक हिन्दी पत्र-लेखक ने मुझसे अनुरोध किया है कि मैं अपनी इस यात्रा का उपसंहार लिखूँ। लेकिन किसी विशेषता और आवश्यकता के लिए!

मैं जब जहाज की यात्रा कर रहा था, मेरी आँखें सूखी जमीन की ही खोज करती रही। लेकिन मेरे मन के भाव भविष्य की कल्पना करते रहे। मेरे राजदूत मित्रों ने शीघ्र वापस लौटने के लिये आग्रह किया था। मैं उन सबके भविष्य की विभिन्न कल्पनाये करता रहा।

अन्त में जब मैं भारत के आखिरी भाग में पहुँचकर मनार की खाड़ी पार कर रहा था, उस समय मैंने ध्रुवतारा देखा। मुझे अनुभव हुआ, मानो भारत से विदा होने के समय ध्रुवतारा अन्तिम बिदाई देने आया है। इस समय मुझे फिर एक बार भारत की याद आई, उस भारत की, जहाँ पर मैंने अपने जीवन का श्रेष्ठ भाग व्यतीत किया था और जहाँ पर अर्से तक रहकर मैं हजारों मनुष्यों के कल्याण की बातें सोचा करता था। कोई भी पाठक ज्योतिषी नही होता, इसलिये यहाँ पर मुझे एक विवरण देना है। इसलिये कि यह तारा पूर्व और पश्चिम—दोनों के सम्बन्ध और सम्पर्क को जोडने का सदा से कार्य करता रहा है।

उदयपुर में मेरे घूमने के लिये प्रमुख स्थान मेरी पोल अथवा दरवाजे के ऊपर की छत थी। वही पर बैठकर मैं प्रायः भोजन किया करता था। और वहीं पर सो भी जाता था, विशेषकर गर्मी के दिनों में, जब बाहर आकर व्यायाम करना बड़ा कठिन मालूम होता था। उस क्षेत्र के गम्भीर नीले आकाश के प्रकाश में यह तारा अपने सुनहले प्रकाश के साथ, इस प्रकार चमकता था, जिसके सम्बन्ध में कुछ कहना और बता सकना सरल काम नही है। जब उसका चन्दोवा मेरे सिर के ऊपर होता था तो मैं अपने आपको एक साबा-निवासी अनुभव करता था। यदि उस छत के आर-पार एक रेखा खींची जाय और उसको सीधा बढ़ाया जाय तो वह ध्रुव तारे पर जाकर खतम हो सकती थी।

मैं यहाँ पर यह कहना चाहता हूँ कि यह तारा कितने ही वर्ष रात के समय सुदूर आकाश में रहकर मुझे प्रकाश देता रहा है। मुझे इसको देखकर विभिन्न प्रकार की बातो की याद आती थी। उन दिनो में चन्द्रमा का पूरा प्रकाश तो जीवन का एक मधुर और शीतल सुख बन जाता था।

उस आनन्दपूर्ण घाटी और उसके आस-पास के आकर्षक दृश्य उन दिनों में भी मुझे बहुत प्रिय लगते थे और भविष्य में भी उनकी स्मृतियाँ उनके सुन्दर दृश्यो का स्मरण दिलाती रहेंगी। सच बात तो यह है कि उन दृश्यो से मुझे कभी तृप्ति नही हुई और न आज ही हो रही है।

वे सारे दृश्य आज मेरे नेत्रों से ओझल हैं, लेकिन उनके स्मरण कभी भुलाये नही जा सकते। जब मैं उन दिनो की याद करता हूँ तो ऐसी कौन-सी बात है, जो हठात मेरे सामने आकर उपस्थित नही हो जाती। मैं उस नक्षत्र को ओर टकटकी लगाकर कुछ समय देखता रहा। मानो मैं उसके साथ कुछ बातें करना चाहता था। मैं भी अवाक था और ध्रुव तारा भी। मुझे ऐसा लगा, मानो वह मेरी विदायी मे फीका हो रहा है और मैं उसको सेवा के प्रति अपना आभार प्रदर्शन कर रहा हूँ।

जब मैं कुछ सोचने लगता तो ऐसा मालूम होता, मानो वह ध्रुव दिखायी नही दे रहा है, लेकिन कुछ ही क्षणो मे उसका प्रकाश फिर मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लेता। इसी प्रकार के भावावेश मे लहरो के साथ छिपता और निकलता हुआ कुछ देर में वह आँखो से ओझल हो गया, उस समय मैंने एक अभाव अनुभव किया और अचानक ऐसा लगा मानो मेरा एक मित्र—जो बहुत दिनो से साथ में था—मुझसे विदा हो गया।

जब मैं उत्तरी अटलाण्टिक सागर में यात्रा कर रहा था, उस समय उसका प्रकाश फिर नेत्रो पर पडा; मानो मुझे देखने के लिए वह फिर से झाँकने लगा है। प्रसन्न होकर मैंने उसका स्वागत किया। मुझे हँसी आ गयी और उसका प्रकाश उसकी मुस्कराहट का परिचय दे रहा था।

पाठको को कदाचित् इससे कोई मतलब न हो कि मैं सेण्टहेलेना (१) में ठहरा और वही पर मैंने अपनी इस यात्रा का उपसहार उसकी मजार पर किया, जिसके शौर्य पूर्ण एवम् विशाल मस्तिष्क के साथ सम्पूर्ण ससार का परिचय है। मजार के सामने खडे होते ही मेरे मुख से निकल गया—

तुम्हारी वह महत्वाकांक्षा कितनी विशाल थी और आज वह
तंग होकर किस कदर सिकुड गयी है !
जब इस शरीर में प्राण थे तो,
एक विशाल और विस्तृत साम्राज्य भी उसके लिये कम था,
लेकिन प्राण निकल जाने पर,
एकान्त की दो कदम जमीन भी काफी हो गयी है !

२८ अक्टूबर १८४५ ईसवी।

समाप्त

(१) सेण्ट हेलेना में नैपोलियन की १८२१ ईसवी में मृत्यु हुई थी।